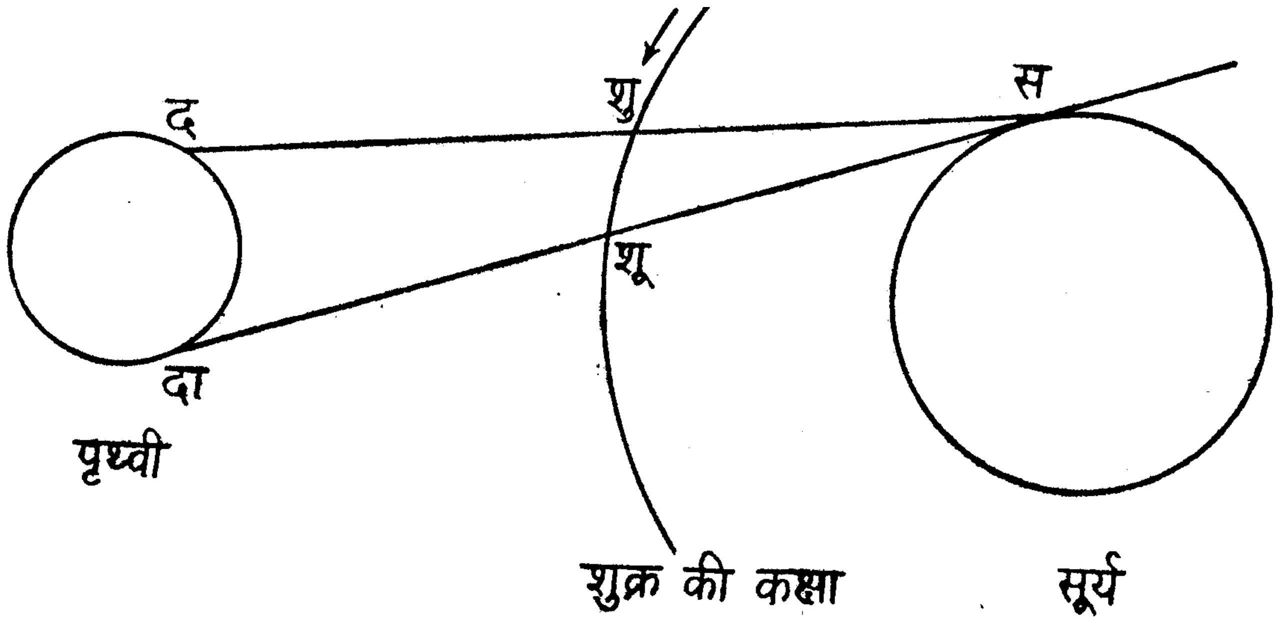
सूर्य सिद्धान्त

विज्ञान भाष्य

भाग १ तथा २

भाष्यकार

स्व. महावीर प्रसाद श्रीवास्तव



डा. रत्नाकुमारी स्वाध्याय संस्थान

विज्ञान परिषद् भवन, इलाहाबाद-२

परिचय

स्वर्गीय महावीर प्रसाद श्रीवास्तव का जन्म कार्तिक शुक्ल २ संवत् १९४४ वि० तदनुसार १८ अक्टूबर, १८८७ में ग्राम बिझौली तहसील हँडिया, जिला इलाहाबाद में हुआ। इलाहाबाद के ही कायस्थ पाठशाला से हाईस्कूल (१९०६) तथा इन्टर परीक्षाएँ (१९०८) और म्योर कालेज से बी० एस-सी० परीक्षा (१९१०) उत्तीर्ण की। आर्थिक स्थिति ठीक न होने से नौकरी कर ली। सं० १९७९ वि० के कार्तिक मास से 'सूर्य-सिद्धान्त' का 'विज्ञानभाष्य' लिखना प्रारम्भ किया जो विज्ञान परिषद् की मासिक पत्रिका में लगातार छपता रहा। यह भाष्य सं० १९९७ वि० में समाप्त हुआ। विज्ञान परिषद् ने इसे दो भागों में पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित किया था।

इस ग्रंथ पर उन्हें मंगलाप्रसाद पारितोषिक तथा चुन्नूलाल पुरस्कार प्राप्त हुए।

इस ग्रंथ का प्रथम संस्करण समाप्त हो जाने पर पाठकों के शतत अनुरोध पर इसे पुनः प्रकाशित किया जा रहा है।

अपनी कोटि की 'विज्ञान भाष्य' टीका से युक्त यह ग्रंथ 'सूर्य-सिद्धान्त' प्राचीन भारतीय साहित्य की अमूल्य निधि एवं हिन्दी का एक गौरव ग्रंथ है। 'सूर्य-सिद्धान्त' समस्त पुस्तकालयों एवं जिज्ञासुओं के लिए उपयोगी एवं संग्रहणीय है।

सूर्य-सिद्धान्त

का

विज्ञान भाष्य

प्रथम खण्ड

[मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार, त्रिप्रश्नाधिकार]

भाष्यकार

स्व० महावीरप्रसाद श्रीवास्तव

डा० रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान

इलाहाबाद

प्रकाशक
डा० रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान
विज्ञान परिषद् भवन
महर्षि दयानन्द मार्ग
इलाहाबाद-२११००२
फोन नं० ५४४१३

प्रथम संस्करण, दिसम्बर १६४०
[विज्ञान परिषद् प्रयाग से]
द्वितीय संस्करण, मार्च १६८२
(स्वाध्याय संस्थान से)

मूल्य रु० ४०.००

मुद्रक
सरयू प्रसाद पाण्डेय
नागरी प्रेस, अलोपीबाग, इलाहाबाद

प्रस्तावना

डॉ० रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान की ओर से प्राचीन वाङ्मय के कई ग्रन्थ प्रकाशित किये जा चुके हैं—स्वामी सत्यप्रकाश और डॉ० उषा ज्योतिष्मती के ग्रन्थ, जैसे बखशाली-मेनुस्क्रिप्ट, शुल्ब-सूत्र (संस्कृत और अंग्रेजी में)। इसी परम्परा में हम स्वर्गीय श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव के सूर्य-सिद्धान्त का विज्ञान भाष्य प्रकाशित कर रहे हैं। यह गौरव हमें विज्ञान-परिषद्, प्रयाग की उदारता से प्राप्त हुआ है, जिसके लिए हम परिषद् के अधिकारियों के उपकृत हैं।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन का व्ययसाध्य कार्य सम्पादित करना हमारे लिए कठिन होता यदि हमें करनाल के आदरणीय रायसाहब चौधरी प्रताप सिंह जी और उनके द्वारा स्थापित न्यास द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त नहीं हुई होती। चौधरी साहेब के हम अत्यन्त आभारी हैं। अभी हम प्रथम खण्ड प्रकाशित कर रहे हैं, जिसमें मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार और त्रिप्रश्नाधिकार हैं। दूसरे खण्ड में यह ग्रन्थ संपूर्ण समाप्त हो जायगा।

एस० रंगनायकी,
एम०एस-सी०, डी० फिल, डी० एस-सी०
निदेशिका

फाल्गुनी पूर्णिमा
९ मार्च, १९८२.

भूमिका

स्वामी दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में १८७४ ई० में विद्यालयों के स्नातकों के पठन-पाठन का एक समग्र पाठ्य-क्रम दिया। इस पाठ्यक्रम का एक ऐतिहासिक महत्व है क्योंकि ऋषि दयानन्द की इस आयोजना से पूर्व इस देश में पाठ्यक्रमों की कोई सर्वांगीण पद्धति न थी। १८५८ ई० में देश में तीन विश्वविद्यालय खुले—कलकत्ता, मद्रास और बम्बई के। १८८८ ई० में प्रयाग और लाहौर के दो और विश्वविद्यालय (महर्षि दयानन्द की मृत्यु के बाद) स्थापित हुए। संस्कृत की ऐसी परीक्षायें भी, जैसे काशी की, आरम्भ नहीं हुई थीं। अत: हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं, कि ऋषि दयानन्द की समग्र पाठ्यक्रम विधि ही इस दिशा में प्रथम प्रयास है। व्याकरणादि पढ़ने के अनन्तर ऋषि ने मनुस्मृति, वाल्मीक रामायण, महाभारत, षड् दर्शन, ब्राह्मण ग्रन्थ, उपवेद (आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद; अर्थवेद-शिल्पादि) सिखाने की बात कही। फिर लिखा कि दो वर्ष में ज्योतिष शास्त्र, सूर्य-सिद्धान्त, जिसमें बीजगणित, अंक, भूगोल, खगोल, और भूगर्भ विद्या हैं, इसको यथावत् सीखें।

ज्योतिष् विषयों का आदि स्रोत वेद की ऋचाएँ हैं। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के सूक्त १६४ का नाम अस्यवामीय सूक्त है। इस सूक्त के मन्त्रद्रष्टा ऋषि दीर्घतमस् हैं। यह सूक्त ज्योतिष् शास्त्र का प्रेरणादायक स्रोत है—

> द्वादशारं न हि तञ्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य।
> आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्तशतानि विंशतिश्च तस्थु: ॥
>
> (ऋ० १/१६४/११)

सूर्य का चक्र जिसमें बारह अरे हैं, जो निरन्तर घूमता रहता है, कभी थकता भी नहीं, जीर्ण भी नहीं होता, मरता भी नहीं। ७२० इसके पुत्र हैं (३६० दिन और ३६० रात्रियाँ)। अथर्ववेद में दो सूक्त उन्नीसवें काण्ड में हैं (सूक्त ७ और ८), जिनका ऋषि गार्ग्य है। इस सूक्त में २७ नक्षत्रों का गणना दी गयी है। वेद से प्रेरणा पाकर लगध मुनि ने वेदांग ज्योतिष की रचना की जिसके श्लोक ऋग् ज्योतिष और यजु:-ज्योतिष् नाम से मिलते हैं। लगध का काल ६०० ईसा से पूर्व माना जाता है। ज्योतिष् के लिए एक और शब्द **काल-विधान-शास्त्र** (यजु:-ज्योतिष् ३) है। "गणित" शब्द का भी प्रयोग इसी अर्थ में लगध ने किया है, और वेदांग के इस अंग की महिमा इस प्रकार व्यक्त की है—

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा ।
तद्वद् वेदाङ्ग शास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम् ।।

(यजु: ज्योतिष्, श्लोक ४)

मयूर के शरीर में जो शिखा की शोभा है, और साँपों के शिर में मणि की वही महिमा वेदांगों में गणित की अर्थात् गणित-ज्योतिष् की है ।

वेदांग ज्योतिष् के बाद ज्योतिष्. शास्त्र के क्षेत्र में ज्योतिष् के कई सिद्धान्तों का प्रचलन हुआ । इनमें से पांच सिद्धान्त विशेष महत्व के हैं । इनका तुलनात्मक विवेचन वराहमिहिर ने अपनी प्रसिद्ध रचना "पंचसिद्धान्तिका" में किया है । पांच सिद्धान्त निम्न श्लोक में गिनाये हैं—

पौलिश-रोमक-वासिष्ठ-सौर-पैतामहास्तु पंचसिद्धान्तः ।

इन पांचों में से प्रथम दो का (पौलिश और रोमक का) लाटदेव ने विवेचन किया । वराहमिहिर की दृष्टि से पौलिश सिद्धान्त में गणना यथार्थ है, रोमक-सिद्धान्त भी लगभग ऐसा ही है । इन दोनों से भी अधिक स्पष्ट सावित्र-सिद्धान्त अर्थात् सौर सिद्धान्त या सूर्य-सिद्धान्त है । शेष दो वासिष्ठ और पैतामह झूठे (दुरविभ्रष्ट) हैं । पंचसिद्धान्तिका का एक संस्करण प्रोफेसर थीबोट (G. Thibaut) और महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी ने अंग्रेजी अनुवाद सहित प्रकाशित किया । सुधाकर जी के संस्कृत भाष्य का नाम "पंचसिद्धान्तिका प्रकाशिका" है (प्रयाग, १५ दिसम्बर' १८८८) ।

इसकी परम्परा में ही विज्ञान परिषद, प्रयाग, के पुराने पार्षद श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव ने सूर्यसिद्धान्त के विज्ञान-भाष्य का दुस्तर कार्य हाथ में लिया । उनके जीवन भर का यह गुरुतर कार्य १९४० ई० में समाप्त हुआ । १९२२ में ग्रन्थ आरंभ हुआ, इसका प्रथम अध्याय (मध्यमाधिकार) १९२४ में प्रकाशित हुआ । बारहवां अध्याय १९३१ में छपा । धनाभाव से फिर काम रुक गया । अन्तिम दो अध्याय १९४० में छपे । इस प्रकार यह भाष्य भ्रातृ द्वितीया संवत् १९९७ वि० अर्थात् सन् १९४० ई० को समाप्त हुआ था । श्रीवास्तव जी का यह ग्रन्थ थोड़ा-थोड़ा करके विज्ञान-मासिक पत्रिका में लगभग प्रतिमास निकलता था, और ग्रन्थ रूप में इसकी कुछ प्रतियाँ अलग से भी तैयार कर दी गयीं । पिछले लगभग २० वर्ष से सूर्य-सिद्धान्त का यह विज्ञान भाष्य अनुपलब्ध रहा है ।

डा० रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान को यह गौरव प्राप्त है, कि विज्ञान परिषद्, प्रयाग के अधिकारियों की असीम उदारता से इसके प्रकाशन की अनुमति इस संस्थान को प्राप्त हुई । प्राचीन वाङ्मय के अनमोल ग्रन्थों के प्रकाशन की आयोजना, स्वाध्याय संस्थान ने अपने हाथ में ली है । इस ग्रन्थ को हम दो खण्डों में प्रकाशित कर रहे हैं । ग्रन्थ के अन्तर्गत जो चित्र हैं, उनके ब्लाक विज्ञान-परिषद् ने

तैयार कराके संस्थान को सौंपे। स्वर्गीय महावीर प्रसाद श्रीवास्तव के पुत्र श्री श्रीकृष्ण श्रीवास्तव, अवकाश प्राप्त जज, ने इस कार्य में रुचि ली। विज्ञान परिषद् के महामंत्री डा० शिवगोपाल मिश्र जी ने समस्त ग्रन्थ का प्रूफ-संशोधन कार्य स्वयं तपस्या-पूर्वक तत्परता से किया। सूर्य-सिद्धान्त का मूल संस्कृत पाठ प्रो० कृपाशंकर शुक्ल, लखनऊ विश्वविद्यालय, के सम्पादित संस्करण के आधार पर दिया गया है। पाठ के संशोधन में हमें यथेष्ट सहायता अपने वयोवृद्ध सदस्य पं० ओंकारनाथ शर्मा जी से भी प्राप्त हुई थी। हम इन सब के आभारी हैं।

स्वर्गीय श्री श्रीवास्तव जी ने पुस्तक की एक विस्तृत भूमिका (४३ पृष्ठों की) लिखी थी, जो अन्तिम खण्ड के साथ प्रकाशित हुई थी (१६४०)। खेद है, कि उनकी यह भूमिका वर्तमान संस्करण में पूरी तरह से नहीं दी जा सकी है। इसके कुछ ही आवश्यक अंश हम यहाँ दे रहे हैं। स्व० श्रीवास्तव जी ने विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा प्रकाशित "सरल विज्ञानसागर" (१६४६) ग्रन्थ में भारतीय ज्योतिष् पर अत्युपयोगी सामग्री दी है। यदि यह अलग से प्रकाशित हो जाय, तो अत्युत्तम होगा।

स्वर्गीय श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव ने यह विज्ञान-भाष्य अपने दिवंगत पूज्य पिता जी को समर्पित किया था। समर्पण के शब्द थे—"पूज्य पिताजी की पुण्य स्मृति में, जिनके चरणों में बैठकर गणित का प्रथम पाठ पढ़ा था।"

—उषा ज्योतिष्मती
अध्यक्ष
अनुसंधान विभाग

डॉ० रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान,
प्रयाग
१५ मार्च १६८२

भाष्यकार की भूमिका

[स्व० श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव द्वारा लिखित
भूमिका का संक्षिप्त अंश]

ज्योतिषशास्त्र वेद का प्रधान अंग है क्योंकि इसी से यज्ञों का समय निश्चित किया जाता है। इसलिए प्राचीन काल में भारतवर्ष में ज्योतिषशास्त्र का अध्ययन-अध्यापन पुण्यकार्य समझा जाता था। इसका दूसरा नाम कालविधानशास्त्र अथवा कालज्ञान भी है। कश्यप संहिता के अनुसार ज्योतिषशास्त्र के प्रवर्तक १८ आचार्य थे जिनके नाम यह हैं :—

१—सूर्य, २—पितामह, ३—व्यास, ४—वसिष्ठ, ५—अत्रि, ६—पराशर, ७—कश्यप, ८—नारद, ९—गर्ग, १०—मरीचि, ११—मनु, १२—अंगिरा, १३—लोमश, १४—पौलिष, १५—च्यवन, १६—यवन, १७—भृगु और १८—शौनक।

यहाँ जो १८ नाम गिनाये गये हैं उन सब के सिद्धान्त-ग्रन्थों का पता नहीं है। इनमें कई संहिता और सिद्धान्त दोनों के कर्ता हैं, कोई दोनों में केवल एक ही विषय के हैं, किसी के नाम का ग्रन्थ दोनों विषयों पर भी नहीं उपलब्ध है।

जिन प्राचीन सिद्धान्तों की चर्चा वराहमिहिर के समय से अब तक होती आयी है वे हैं १—पौलिश, २—रोमक, ३—वासिष्ठ, ४—सौर, और ५—पैतामह सिद्धान्त, जिनका संग्रह वराहमिहिर ने (५५० ई० के लगभग) अपनी पंच-सिद्धांतिका नामक पुस्तक में किया है जिसमें यह भी बतलाया है कि पौलिश सिद्धान्त स्पष्ट है, उसी के निकट रोमक-सिद्धान्त है, परन्तु सबसे स्पष्ट सूर्य-सिद्धान्त है, शेष दो बहुत भ्रष्ट है। पंचसिद्धान्तिका-प्रकाशिका टीका के पृष्ठ २ पर म० म० सुधाकर द्विवेदी जी सूर्यारुण-संवाद का अवतरण देकर कहते हैं कि गर्गादि मुनियों का जो ज्ञान पुलिश महर्षि ने कहा वह पौलिश सिद्धान्त, ब्रह्मशाप के कारण रोमक नगर में उत्पन्न होकर, सूर्य भगवान ने जो ज्ञान रोमक के यवन जाति को बतलाया वह रोमक सिद्धान्त, जिसे वसिष्ट ने अपने पुत्र पराशर को दिया वह वसिष्ट सिद्धान्त, जिसे सूर्य ने मय दैत्य को दिया वह सौर-सिद्धान्त और जिसे ब्रह्मा ने अपने पुत्र वसिष्ठ को दिया वह पैतामह-सिद्धान्त है।

यह सूर्यारुण संवाद कहाँ से लिया गया यह नहीं बतलाया गया है। इसके अनुसार रोमक सिद्धान्त और सौर-सिद्धान्त दोनों के उपदेशक सूर्य भगवान् हैं, पहला

रोमक नगर में यवनों को बतलाया गया और दूसरा मय दैत्य को जिनके स्थान का पता नहीं है परन्तु जिसको पाश्चात्य विद्वान यूनानी (यवन) तथा भारतीय विद्वान असीरिया या बैबीलोनिया का निवासी समझते हैं। परन्तु ब्रह्मगुप्त ने (६२८ ई०) केवल रोमक-सिद्धान्त को विदेशी (स्मृति वाह्य) समझा था, सौर-सिद्धान्त को नहीं। वर्तमान सूर्य-सिद्धान्त के पहले अध्याय के श्लोक २-९ में लिखा है कि सतयुग के अंत में मय नामक असुर ने ज्योतिष सीखने के लिए सूर्य भगवान् की तपस्या की, तब उन्होंने अपने अंश पुरुष को इस काम के लिए नियुक्त किया। इसी अंश पुरुष ने सारा सूर्य-सिद्धान्त जिसे पहले के युगों में स्वयं सूर्य भगवान् ने महर्षियों को बतलाया था मयासुर को बतलाया जिससे महर्षियों ने फिर प्राप्त किया।

यदि वद की संहिताओं, ब्राह्मण-ग्रन्थों और उपनिषदों का निष्पक्ष भाव से अध्ययन किया जाय तो पता चलेगा कि उस प्रागैतिहासिक काल में भी आकाश-दर्शन के अनुभव जहाँ-तहाँ भरे पड़े हैं और उन पर खूब तर्क-वितर्क किया गया है। यदि ऐसा न होता तो अयन विन्दु के भिन्न-भिन्न नक्षत्रों में होने की बात कहाँ से आती, ऋतुओं और महीनों तथा तिथियों और नक्षत्रों का सम्बन्ध किस प्रकार जान पाते! मध्यकालीन भारत में भी बुद्धिमान और सूक्ष्मदर्शी ज्योतिषियों और गणितज्ञों का अभाव नहीं था। आर्यभट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, मुंजाल, केशव, गणेश आदि के ग्रन्थ पढ़नेवाले यह जान सकते हैं कि आकाश की घटनाओं के बारे में इन्होंने कैसी-कैसी सूक्ष्म बातें लिखी हैं। अब तो शंकर बालकृष्ण दीक्षित, प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त आदि ने प्राच्य और पाश्चात्य ज्योतिषियों के ग्रन्थों के तुलनात्मक अध्ययन से भी यह सिद्ध कर दिया है कि भारतीय ज्योतिष हिपार्कस या टालमी की ज्योतिष से सर्वथा स्वतंत्र है।

आर्यभटीय से स्पष्ट प्रतीत होता है कि आर्यभट ने भारत के प्राचीन ज्योतिष् का मंथन करके तथा सूर्य, चन्द्र, ग्रहों और नक्षत्रों का स्वयं निरीक्षण करके आर्यभटीय ग्रन्थ का निर्माण किया था।[1]

जी० आर० के (G. R. Kaye) लिखते हैं, "इसमें संदेह नहीं कि वराह-

[1] सदसज्ज्ञान समुद्रात् समुद्धृतं देवताप्रसादेन।
सज्ज्ञानोत्तर रत्नं मया निमग्नं स्वमतिनावा ॥४९॥
आर्यभटीयं नाम्नापूर्वं स्वायम्भुवं सदासद्यत्।
सुकृतायुषोः प्रणाशं कुरुते प्रति कञ्चुकं योऽस्यः ॥५०॥
क्षितिरवियोगाद्दिनकृद्रवीन्दुयोगात् प्रसाधितश्चेन्दुः।
शशि तारा ग्रह योगात्तथैव ताराग्रहास्सर्वे ॥४८॥ (आर्यभटीय गोलपाद)

मिहिर के पास यवनों के सिद्धान्तग्रंथ मौजूद थे और उनकी व्याख्या के ढंग से यह जान पड़ता है कि वे नये विचार या कम से कम ऐसे विचार और शब्द जो दोनों में सामान्य नहीं थे अपने ग्रंथों में ला रहे थे और यह तो निश्चय है कि इनमें से कुछ विचार टालमी के बाद के हैं।" इस मत का खण्डन करने के लिए मुझे सबसे प्रबल प्रमाण यह जान पड़ता है जिसमें वराहमिहिर ने अयन-चलन या बसंत-सम्पात-चलन की अनभिज्ञता दिखलायी है, यद्यपि उनको इस बात का ज्ञान था कि उनके समय में दक्षिणायन कर्क राशि के आरम्भ में अथवा पुनर्वसु नक्षत्र में होता था और प्राचीन काल में यह अश्लेषा के आधे भाग पर होता था।[1] यदि उनको हिपार्कस या टालमी के ग्रंथ से परिचय होता तो इनके लिखे बसन्त-सम्पात-चलन (precession of equinoxes) को अवश्य मान लेते। इस बात पर ब्रह्मगुप्त ने भी नहीं ध्यान दिया था जिससे प्रकट होता है कि ब्रह्मगुप्त के समय तक बसंत-सम्पात-चलन की बात मध्यकालीन भारतीय ज्योतिषियों को नहीं खटकी थी यद्यपि प्राचीन काल में आकश के प्रत्यक्ष दर्शन से उनको अनुभव हो गया था कि उत्तरायण और दक्षिणायन के नक्षत्र बदल गये हैं क्योंकि मैत्रायिणी उपनिषद में इस बात का उल्लेख है कि दक्षिणायन उस समय होता था जब सूर्य मघा से लेकर धनिष्ठा के आधे भाग तक रहता था और उत्तरायण उस समय होता था जब सूर्य श्रविष्ठार्ध से अश्लेषा तक रहता था। वेदांग ज्योतिष में भी यह साफ़-साफ़ बतलाया गया है कि उत्तरायण का आरम्भ उस समय होता था जब सूर्य श्रविष्ठा के आदि में आता था। वराहमिहिर इसी की चर्चा करते हुए बतलाते हैं कि हमारे समय में दक्षिणायन पुनर्वसु में होता है, जब इससे भिन्न हो तो निरीक्षण करके निश्चय कर लेना चाहिए[2]।

ऊपर के अंकों से स्पष्ट है कि नाक्षत्र वर्ष के भारतीय मान यथार्थ नाक्षत्र वर्ष से ३ मिनट २७ सेकण्ड से अधिक बड़े नहीं हैं और ब्रह्मगुप्त का मान इसके सबसे निकट है। वास्तव में यह मान मन्द-केन्द्र वर्ष के मान से सवा मिनट के लगभग कम हैं इसलिए इससे प्रायः बिल्कुल मिलते हैं। यही कारण है कि सूर्य के मन्दोच्च की गति हमारे ग्रन्थों में प्रायः नगण्य सी मानी गयी है। इनकी तुलना में मेटन और बैबीलोनिया के नाक्षत्र वर्ष के मानों में अधिक भूल है। टालमी और केपलर के सायन वर्ष के मान यथार्थ सायन वर्ष से साढ़े ६ या ७ मिनट अधिक हैं। इसलिए

---

१. आश्लेषार्द्धादासीद्यदा निवृत्तिः किलोष्णकिरणस्य।
युक्तमयनं तदासीत् साम्प्रतमयनं पुनर्वसुतः ॥२१॥

२. वाराही संहिता आदित्य चार पृष्ठ १६, १७, विज्ञानभाष्य पृष्ठ ३३६।

सौर वर्ष के मान—भिन्न-भिन्न मतों के अनुसार

	दिन	घंटा	मिनट	सेकंड	
वर्तमान सूर्य सिद्धान्त	३६५	६	१२	३६.५६	यथार्थ से ३ मिनट २७ से० अधिक
आर्यभटीय	३६५	६	१२	२९.६४	,, ३ ,, २० ,, ,,
ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त	३६५	६	१२	९	,, ३ मिनट अधिक
मध्यमनाक्षत्र वर्ष लॉकियर के अनुसार	३६५	६	९	९.३	यथार्थ नाक्षत्र वर्ष
मन्द-केन्द्र-वर्ष ,,	३६५	६	१३	४९.३	
सायनवर्ष ,,	३६५	५	४८	४६.०५४	
सायनवर्ष टालमी के अनुसार*	३६५	५	५५	१२	यथार्थ सायन वर्ष से ६ मि० २६ से० अधिक
,, कोपरनिकस के अनुसार×	३६५	५	५५	५८	,, ,, ७ ,, ९ ,,
नाक्षत्रवर्ष मेटन के अनुसार†	३६५	६	१८	५७	यथार्थ नाक्षत्र वर्ष से ९ ,, ४८ ,,
,, वेबीलोनियन§	३६५	६	१३	३९.३	,, ,, ४ ,, ३० ,,

* Syntaxis, Karl Manitius's edition, Vol. I, p. 146.

× Heroes of Science, p. 63

§ Encyclopaedia Britannica, History of Astronomy.

सिद्ध है कि हमारे ज्योतिषियों के बेध टालमी वा केपलर के बेधों की अपेक्षा अधिक शुद्ध हैं और इसलिए स्वतन्त्र भी हैं।

इसी प्रकार यदि मन्दोच्चों, पातों तथा अन्य ध्रुवांकों की तुलना की जाय तो प्रगट हो जाता है कि हमारे आचार्यों के माने हुए ध्रुवांक अधिकांश में यथार्थ से अधिक निकट हैं। इसलिए यह सिद्ध हो जाता है कि हमारा ज्योतिष टालमी या किसी अन्य विदेशी ज्योतिष की छाया नहीं है वरन् स्वतन्त्र है। इन बातों का दिग्दर्शन विज्ञान-भाष्य में जगह-जगह कराया गया है।

सूर्य-सिद्धान्त का रचना काल—इस सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। इस पुस्तक में जो रचना काल बतलाया गया है वह तर्क से तो समझ में आता नहीं क्योंकि यदि यह इतने प्राचीनकाल, इक्कीस लाख पैंसठ हजार वर्ष से इसी प्रकार चला आता तो आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व महाभारत-काल में उस समय के महाराजाधिराज दुर्योधन के दरबार में जहाँ उस समय के बड़े-बड़े विद्वान मौजूद थे यह प्रश्न क्यों उठ खड़ा होता कि पाण्डवों के चौदह वर्ष का बनवास-काल कब पूरा होगा ? इस सम्बन्ध में भीष्म का जो उत्तर है उससे तो यह समझ में नहीं आता कि उस समय सूर्य-सिद्धान्त जैसे ग्रन्थ की ज्योतिष-गणना का उनको परिचय था। परन्तु इसमें संदेह नहीं कि इस ग्रन्थ का आदि रूप वराहमिहिर के बहुत पहले का है और संभव है कि पंचसिद्धान्तिका में जो रूप देख पड़ता है वह आदि रूप नहीं है वरन् उसमें वराहमिहिर ने कुछ संशोधन किया है। परन्तु आश्चर्य है कि आर्यभट्ट (४७६ ई०) ने अपने ग्रन्थ इसकी कहीं चर्चा नहीं की है, इससे यह अनुमान होता है कि आर्यभटीय के रचना काल के आसपास ही इसकी रचना भी हुई है। वराहमिहिर ने सूर्य-सिद्धान्त का जो रूप दिया है वह वर्तमान सूर्य-सिद्धान्त से भिन्न है जिसमें अयन-चलन की बातें पीछे से बढ़ायी गयी हैं क्योंकि यदि अयन-चलन की चर्चा सूर्य-सिद्धान्त में वराहमिहिर के पहले होती तो यह पञ्चसिद्धान्तिका में कहीं न कहीं इसका समावेश जरूर करते और इतना ही लिखकर न संतोष करते कि प्राचीनकाल में अयन-विन्दु आश्लेषा नक्षत्र में था अब पुनर्वसु में है। ब्रह्मगुप्त (६२८-६६५ ई०) के समय में भी सूर्य-सिद्धान्त का जो रूप था उसमें अयन-चलन की बात नहीं थी क्योंकि ऐसी दशा में ब्रह्मगुप्त इसकी चर्चा अवश्य करते। यह बात तो भास्कराचार्य के कुछ पहले मिलायी गयी होगी परन्तु फिर भी उस रूप में नहीं जैसा कि अब देख पड़ती है क्योंकि भास्कराचार्य ने स्वयं इसकी शुद्धता पर शंका प्रकट की है। इसलिये यह सिद्ध है कि वर्तमान सूर्य-सिद्धान्त का आदि-रूप तो वही है जो पञ्च सिद्धान्तिका में दिया गया है और वराहमिहिर के पहले भी मौजूद था अथवा वाराही सूर्य-सिद्धान्त उसका संशोधित रूप है और बाद में भी उसमें ज्योतिषियों ने समय-समय पर संस्कार

ग्रह	कलियुग के आरंभ में ३१०२ ई० पूर्व			कलि संबत १००० में २१०२ ई० पूर्व			कलि संबत २००० में ११०२ ई० पूर्व			कलि संबत ३००० में १०२ ई० पूर्व			कलि संबत ३६३९ में ५३८ ई०			कलि संबत ४१०२ में १०९१ ई०			ठीक कब था
	अंश	कला	विकला	अंश	कला	विकला	अंश	कला	विकला	अंश	कला	विकला	अंश	कला	विकला	अंश	कला	विकला	ईस्वी
बुध	+३३	२५	३५	+२५	९	५२	+१६	५४	९	+८	३८	२६	+३	२१	४०	−१	१२	२८	९४५
शुक्र	+३२	४३	३६	−२४	३७	३१	−१६	३१	२६	−८	२५	२१	−३	१४	४५	+१	१४	३	९३९
मंगल	+१२	५	४२	+९	२६	३२	+६	४७	२२	+४	८	१२	+२	२६	३०	+०	५८	२९	१४५८
गुरु	−१७	२	५३	−१२	४४	१६	−८	२५	३९	−४	७	२	−१	२१	४७	+०	४१	१४	९०६
शनि	+२०	५९	३	+१५	४३	२०	+१०	२७	३७	−५	११	५४	+१	५०	१०	−१	४	२५	८८७
चन्द्र	−५	५२	४१	−३	५०	४८	−२	९	१७	−०	५२	३२	−०	१८	३०	−०	०	११	१०९७
चंद्रोच्च	−३०	११	२५	−२३	९	३६	−१६	७	४७	−९	५	५८	−४	३६	२६	−०	४३	१०	११९३
चन्द्र-पात	+२३	३७	३१	+१७	५९	२१	+१२	३१	११	+७	३	१	+३	३३	१९	+०	३१	५०	११८८

मध्यम मान १०९१

करके इसको वर्तमान रूप में प्रकट किया है, जिसके लिये आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त आदि के ग्रन्थों या बेधों से सहायता ली गयी होगी, जैसा कि सेनगुप्त महोदय अपनी खण्डखाद्यक की भूमिका में सिद्ध करते हैं।

पाश्चात्य विद्वानों का मत—इसके रचना काल के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों ने बड़ा ऊहा-पोह किया है जिसके लिये उनको धन्यवाद देना हमारा परम कर्त्तव्य है। इस विषय में बेंटली महोदय ने बहुत परिश्रम किया है। इन्होंने सूर्य-चन्द्रमा आदि ग्रहों की गणना सूर्य-सिद्धान्त तथा नवीन वेधों के अनुसार भिन्न-भिन्न कालों के लिये करके उस समय को सूर्य-सिद्धान्त का रचनाकाल स्थिर किया है जब दोनों गणनाओं के अनुसार ग्रहों के भोगांश एक हो जाते हैं। यह बात पृष्ठ १४ के कोष्ठक से स्पष्ट होगी जिसमें ग्रहों की अशुद्धियाँ दिखलाई गयी हैं।

इससे बेंटली यह परिणाम निकालते हैं कि सूर्य-सिद्धान्त ११वीं सदी के अन्तिम चरण में लिखा गया। देखने में तो यह बहुत ही युक्ति-युक्त जान पड़ता है और इसमें संदेह नहीं कि लेखक महोदय ने इसमें बड़ी नवीनता दिखलाई है परन्तु यथार्थ में यह रीति बिना अच्छी तरह परीक्षा किये मानने योग्य नहीं है। यह बात मैं बर्जेस के अनुवाद की प्रकाशन समिति के शब्दों में ही बतला देना पर्याप्त समझता हूँ :—

"दूसरे ग्रहों के सम्बन्ध में बेंटली ने शून्य अशुद्धि के जो समय निकाले हैं वे हमारे निकाले हुए समयों से बहुत मिलते हैं जिनको हमने १८६० ई० की अशुद्धियों से पीछे की तरफ गणना कर के निकाले हैं और जो ६७वें श्लोक की टीका के साथ दिये गये हैं।"

"इन दोनों कोष्ठकों की तुलना करने पर यह तुरन्त देख पड़ेगा कि बेंटली ने अपना निर्णय ग्रहों के निरपेक्ष स्थानों की अशुद्धियों से नहीं निकाला है वरन् सूर्य के स्थान की तुलना में। परन्तु सूर्य के स्थान की अशुद्धि का उन्होंने विचार ही नहीं किया है। हिंदुओं का राशि-चक्र नाक्षत्रिक (Sidereal) है और सूर्य की गति पर किसी प्रकार निर्भर नहीं है। अन्य ग्रहों की तरह सूर्य भी ३१०२ ई० पूर्व उस स्थान पर नहीं था, जहाँ मान लिया गया है और इसलिये इस पद्धति के अनुसार सूर्य की जो गति मानी गयी है वह यथार्थ से भिन्न है क्योंकि नाक्षत्रवर्ष ३॥ मिनट बड़ा माना गया है। इसलिये सूर्य की अशुद्धि का विचार क्यों न किया जाय और ग्रहों की नाक्षत्रिक गति का विचार इसी अशुद्ध गति की तुलना में क्यों किया जाय ? यह प्रकट है कि बेंटली को सूर्य के स्थान का भी पूरी तरह विचार करना चाहिए था और यह दिखलाना चाहिए था कि इससे भी वही परिणाम निकलता है जैसा कि अन्य ग्रहों की गणना से और यदि नहीं तो असंगति का कारण क्या था ? ऐसा

पहली जनवरी सन् १८६० ई० को वाशिंगटन की मध्यरात्रि में ग्रहों के मध्यम भोगांश

ग्रह	सूर्य-सिद्धान्तानुसार						अर्वाचीन ज्योतिषानुसार		
	मूल			बीज संस्कृत					
	अंश	कला	विकला	अंश	कला	विकला	अंश	कला	विकला
सूर्य	९६	१८	२१	९६	१८	२१	१००	५	६
बुध	१५५	२	३०	१४८	२५	३९	१५१	२८	२०
शुक्र	३३९	५४	५५	३३४	५७	१८	३६६	१३	३६
मंगल	१९२	३६	५	१९२	३६	५	१९७	२६	३२
गुरु	१०४	७	२२	१००	४८	५६	१०३	३५	१७
शनि	१२८	१७	११	१३३	१४	४९	१३७	१०	१०
चन्द्रमा	९	४	९	९	४	९	१२	४१	२३
चन्द्रोच्च	३२७	५०	२४	३२६	११	११	३२६	४७	३५
चन्द्रपात	३१२	२९	५१	३१०	५०	३८	३१२	४८	१०

सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार निकाले हुए ग्रहों के मध्यम भोगांशों की अशुद्धियाँ

ग्रह	मूल ग्रन्थ के अनुसार अशुद्धियाँ				बीज संस्कृत ग्रन्थ के अनुसार अशुद्धियाँ			
	*निरपेक्ष अंश कला विकला	कब शुद्ध ई०	सूर्य की अपेक्षा अंश कला विकला	कब शुद्ध ई०	निरपेक्ष अंश कला विकला	कब शुद्ध ई०	सापेक्ष अंश कला विकला	कब शुद्ध ई०
सूर्य	—३ ४६ ४५	२५०	० ० ०	......	—३ ४६ ४५	२५०	० ० ०	......
बुध	+३ ३४ १०	२३३२	+७ २० ५५	३२७१	—३ २ ४१	१५१७	+० ४४ ५	१६७०
शुक्र	+३ ४१ १६	१२२२	+७ २८ ४	६४१	—१ १६ १८	२१२६	+२ ३० २७	१५०६
मंगल	—४ ५० २७	८८६	—१ ३ ४२	१४५५	—४ ५० २७	८८६	—१ ३ ४२	१४५५
गुरु	+० ३२ ५	१५७१	+४ १८ ५०	८३२	—२ ४६ २१	४२०३	+१ ० २४	१५७५
शनि	—८ ५२ ५६	६६६	—५ ६ १४	८५७	—३ ५५ २१	१२५०	—० ८ ३६	१८२५
चन्द्रमा	—३ ३७ १४	११५	+० ६ ३१	१०६७	—३ ३७ १४	११५	+० ६ ३१	१०६७
चन्द्रोच्च	+१ २ ४६	१६७६	+४ ४६ ३४	१२५२	—० ३६ २४	१६६६	+३ १० २१	१४५६
चन्द्रपात	—० १८ १६	१६७६	+३ २८ २६	११६२	—१ ५७ ३२	२७१४	+१ ४६ १३	१४६८

*निरपेक्ष स्थान वह है जो राशि-चक्र के स्थिर आदि विन्दु से नापा जाता है और सापेक्ष वह स्थान है जो सूर्य से नापा जाता है जिसकी स्थिति सौर नाक्षत्र वर्ष के अनुसार निश्चय की जाती है जो यथार्थ से ३ मिनट के लगभग बड़ा है, इसलिये सूर्य का स्थान भी इसी के अनुसार बदल रहा है।

न करके हमारी समझ में सारी गणना का बहुत ही महत्त्वपूर्ण अंश छोड़ दिया गया है जिससे बहुत ही महत्वपूर्ण परिणाम निकलता है।''......

''लेकिन हमारे सिद्धान्त के बारे में यथार्थ बात क्या है? हमें यह मिलता है कि इसमें ग्रहों के ऐसे ध्रुवाङ्क दिये गये हैं जिनके स्थानों की भूलों की परीक्षा ऊपर बतलायी हुई रीति से करने पर जान पड़ता है कि इन ध्रुवाङ्कों का निश्चय इस विचार से नहीं किया गया है कि किसी निर्दिष्ट काल में इनकी यथार्थ नाक्षत्रिक स्थिति जानी जा सके। बल्कि इसके प्रतिकूल ये ऐसी गवाही देते हैं कि ईसा की १० वीं या ११वीं सदी में इस बात का प्रयत्न किया गया है कि ग्रहों की स्थिति सूर्य की स्थिति की तुलना में ठीक-ठीक जानी जा सके। इसका भी ठीक-ठीक समय संदेहात्मक है क्योंकि उन समयों में बड़ी भिन्नता है, जिनमें अशुद्धि शून्य समझी जाती है। संस्कृत साहित्य के इतिहास में यह बात उतनी ही ध्रुव है जितनी कोई बात हो सकती है कि उस समय से बहुत पहले सूर्य-सिद्धान्त का अस्तित्व था। अन्य ज्योतिष के ग्रन्थों के निर्देशों और उद्धरणों से इस बात का भी पता चलता है कि इस नाम के ग्रन्थ के कई पाठान्तर भी थे और हम ऊपर (श्लोक ६ में) यह देख भी चुके हैं जो बहुत अस्पष्ट सूचना नहीं है कि वर्तमान ग्रन्थ में ठीक-ठीक वही ध्रुवाङ्क नहीं दिये गये हैं जो पहले सूर्य-सिद्धान्त के माने गये थे। इसलिए इस अनुमान के निकट और क्या हो सकता है कि १०वीं या ११वीं शताब्दी में संशोधन के लिये बीज की जो गणना की गयी थी यह मूल में केवल चार या पाँच श्लोकों को बदल कर खपा दी गयी। इसलिये जबकि दूसरे ग्रहों की तुलनात्मक अशुद्धियाँ उस समय का निर्देश करती हैं जब यह बीज संस्कार किया गया था, सूर्य की निरपेक्ष अशुद्धि मूल पुस्तक का प्रायः सच्चा समय प्रकट करती है।''

''हमारे कोष्ठक में सूर्य की शून्य अशुद्धि का समय २५० ई० है। इस तारीख की अशुद्धता के लिये बहुत जोर देने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि यह उस बेध की शुद्धता पर निर्भर है जिससे सूर्य का स्थान पहले-पहल निश्चय किया गया और फिर उस विन्दु से निर्देश किया गया जिसको आकाश चक्र का आदि विन्दु कहते हैं। कोरी आँख से इसका वेध करना असंभव था कि सूर्य का केन्द्र मध्यम गति के अनुसार रेवती के योग तारा Zeta Piscium के दस कला पूर्व कब था और यह तो स्पष्ट है कि हिन्दुओं ने इस विन्दु से राशिचक्र के अन्य विन्दुओं का जो निश्चय किया है उनमें बड़ी-बड़ी भूलें हैं और यदि सूर्य के स्थान के निश्चय करने में एक अंश की भी भूल हो जाय तो इससे शून्य अशुद्धि के काल में ४२५ वर्ष का अन्तर पड़ सकता है।

ब्रह्मगुप्त आदि के दिये हुए योग तारों के ध्रुवांकों (Polar longitude) की तुलना से भी सूर्य-सिद्धान्त का समय इसीके आस-पास आता है। इनमें कुछ ध्रुवांक परम्परा प्राप्त हैं। ये वह हैं जो तीनों ग्रन्थों में अभिन्न हैं, कुछ को ग्रन्थ-कर्त्ताओं ने स्वयं शुद्ध कर दिया है। इनके तुलनात्मक अध्ययन से हम सूर्य-सिद्धान्त काल की परा और अपरा सीमा (Superior and inferior limit) जान सकते हैं। वराह की पञ्चसिद्धान्तिका में भी (थीबो के अनुसार) सात योग तारों के ध्रुवांक दिये गये हैं जिनको हम उस प्राचीन सूर्य-सिद्धान्त के ध्रुवांक मानते हैं जो वराह के पहले मौजूद था (देखो पृष्ठ २०-२१)।*

प्राचीन सूर्य-सिद्धान्त के समय निरूपण के लिये नीचे लिखे नक्षत्र चुने जाते हैं जिनके ब्रह्मगुप्त के ध्रुवांक सूर्य-सिद्धान्त के ध्रुवांक से जितने अधिक हैं वह सामने लिखे जाते हैं :—

	अंश	कला
कृत्तिका	४	४८
रोहिणी	१	२८
पुनर्वसु	५	३
मघा	३	०
पू० फाल्गुनी	३	०
चित्रा	३	०
योग	२०	१६
मध्यममान	३	२३

इन छः तारों के ध्रुवांकों की अधिकता का मध्यमान ३ अंश २३ कला के समान है। यदि अयन चलन के कारण ध्रुवांकों की एक अंश की वृद्धि ७२ वर्ष में मानी जाय, तो यह वृद्धि लगभग २४४ वर्ष के समय में हुई होगी। परन्तु ब्रह्मगुप्त का समय हमें निश्चयपूर्वक मालूम है कि ६२८ ई० है। इसलिए सूर्य-सिद्धान्त का समय इससे २४४ वर्ष पूर्व अथवा ३८४ ईस्वी आता है। इसको स्थूल रूप से ४००ई० समझा जा सकता है। जो इस समय की परा सीमा (Upper limit) है। अपरा सीमा की खोज करने के लिए हमें नीचे लिखे तारों के ध्रुवकों को देखना चाहिए जिनके ध्रुवांक ब्रह्मगुप्त के ध्रुवकों से जितने अधिक हैं उनका मध्यमान १ अंश १५

*बर्जेस के सूर्य-सिद्धान्त के अनुवाद के दूसरे संस्करण की पी० सी० सेनगुप्त की लिखी भूमिका पृष्ठ XXVI-XXIX

योग तारों के ध्रुवक (Polar Longitude)

तारा	पंच सिद्धान्तिका		ब्राह्मस्फुट सद्धान्त		शिष्यधीवृद्धि		वर्तमान सूर्य-सिद्धान्त		वर्तमान सूर्य सिद्धान्त के ध्रुवक कहाँ से लिये गये
	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	
अश्विनी	...		८	०	८	३	८	३	परम्पराप्राप्त
भरणी	...		२०	०	२०	०	२०	०	,,
कृत्तिका	३२	४०	३७	२८	३६	०	३७	३०	ब्रह्मगुप्त
रोहिणी	४८	०	४९	२८	४९	०	४९	३०	,,
मृगशिरा	...		६३	०	६२	०	६३	०	,,
आर्द्रा	...		६७	०	७०	०	६७	२०	नया ?
पुनर्वसु	८८	०	९३	३	९२	०	९३	०	ब्रह्मगुप्त
पुष्य	९७	२०	१०६	०	१०५	२०	१०६	०	,,
अश्लेषा	१०७	४०	१०८	०	११४	०	१०९	०	नूतन
मघा	१२९	०	१२९	०	१२८	०	१२९	०	ब्रह्मगुप्त
पू० फाल्गुनी	...		१४७	०	१३९	२०	१४४	०	परम्पराप्राप्त
उ० फाल्गुनी	...		१५५	०	१५४	०	१५५	०	ब्रह्मगुप्त

हस्त		......	१७०	०	१७३	०	१७०	०	ब्रह्मगुप्त
चित्रा	१८०	५०	१८३	०	१८४	२०	१८०	०	परम्पराप्राप्त
स्वाती		......	१९९	०	१९७	२०	१९९	०	ब्रह्मगुप्त
विशाखा		......	२१२	०	२१२	०	२१३	०	नूतन
अनुराधा		......	२२४	०	२२२	०	२२४	०	ब्रह्मगुप्त
ज्येष्ठा		......	२२९	०	२२८	०	२२९	०	,,
मूल		......	२४१	०	२४१	०	२४१	०	परम्पराप्राप्त
पूर्वाषाढ़ा		......	२५४	०	२५४	०	२५४	०	,,
उत्तराषाढ़ा		......	२६०	०	२६७	०	२६०	०	ब्रह्मगुप्त
अभिजित		......	२६५	०	२६७	२०	२६६	०	नया
श्रवण		......	२७८	०	२८३	१०	२८०	०	,,
धनिष्ठा		......	२९०	०	२९६	२२	२९०	०	ब्रह्मगुप्त
शतभिषा		......	३२०	०	३१३	२०	३२०	०	,,
पूर्वभाद्रपदा		......	३२६	०	३२७	०	३२६	०	,,
उत्तराभाद्रपदा		......	३३७	०	३३५	०	३३७	०	,,
रेवती		......	०	०	३५९	०	३५९	५०	,,

कला है जो ब्रह्मगुप्त से ६० वर्ष बाद हुआ होगा। इस प्रकार यह अपरा सीमा ६२८+६०=७१८ ईस्वी होती है।

	अंश	कला
अश्लेषा	१	०
विशाखा	१	०
अभिजित	१	०
श्रवण	२	०
योग	५	०
मध्यम	१	१५

इस प्रकार यह परिणाम निकाला जा सकता है कि सूर्य-सिद्धान्त की रचना ४०० ई० से लेकर ७२५ ई० तक हुई। बेंटली और बर्जेस ने भी सूर्य-सिद्धान्त में दिये हुए नक्षत्रों के ध्रुवाङ्कों की तुलना अर्वाचीन ज्योतिर्गणित से सिद्ध ध्रुवांकों से करके सूर्य-सिद्धान्त का समय निरूपण इसी प्रकार किया है, परन्तु वह इतना ठीक नहीं जान पड़ता, क्योंकि वेधों के विषय में जिस प्रकार की भूल सूर्य-सिद्धान्तकार ने की होगी, वैसी ही ब्रह्मगुप्त आदि ने भी की होगी। इस प्रकार रचनाकाल की परा सीमा इससे अधिक बढ़ायी जा सकती। परन्तु अपरा सीमा ११०० ई० तक आ सकती है जैसा कि बेंटली ने सिद्ध किया है।

अयन-चलन की बात से भी बेंटली के मत का समर्थन होता है। भास्कराचार्य के समय में सूर्य-सिद्धान्त में लिखित अयन गति उतनी नहीं थी जितनी वर्तमान सूर्य-सिद्धान्त में है। इससे जान पड़ता है कि अयन गति का संशोधन भास्कराचार्य के बाद किया गया है। परन्तु भास्कराचार्य का समय ११५० ई० है।

सूर्य-सिद्धान्त का लेखक—यह दिखलाया जा चुका है कि सूर्य-सिद्धान्त के ध्रुवाङ्क यूनानी ज्योतिषी हिपार्कस, टालमी या अन्य पाश्चात्य देशों के ज्योतिषियों के ध्रुवाङ्कों से नहीं मिलते। इसलिये यह ग्रन्थ उन लोगों के वेधों के आधार पर नहीं लिखा गया। इसकी परम्परा विवस्वान् अर्थात् सूर्य से बतलायी गयी है (देखो मध्यमाधिकार श्लोक ८-९) जिस प्रकार भगवद्गीता में बतलाये हुए योग मार्ग की परम्परा बतलायी गयी है (देखो भगवद्गीता अध्याय ४ श्लोक १-२)। मयासुर विदेशी नहीं है। उसने भारत का निवासी होकर यह ज्ञान प्राप्त किया था और उसी से ऋषियों ने भी पीछे सीखा। यही सूर्य-सिद्धान्त में दी हुई कथा का रहस्य मालूम होता है। ब्रह्मशाप के कारण सूर्य भगवान् का रोमक नगर में उत्पन्न होने की कथा मनगढ़न्त है और केवल एक या दो हस्त-लिखित पुस्तकों में पायी जाती

है, इसलिए प्रक्षिप्त है जिसको किसी ने स्वीकार नहीं किया। यदि सूर्य-सिद्धान्त विदेशी के द्वारा प्राप्त हुआ होता तो ब्रह्मगुप्त अवश्य लिखते, क्योंकि रोमक सिद्धान्त के लिये, जो निस्सन्देह विदेशी है, उन्होंने साफ-साफ लिख दिया है। पंचसिद्धान्तिका प्रकाशिका टीका में म० म० पं० सुधाकर द्विवेदी का दिया हुआ सूर्यारुण-संवाद के मूल का पता नहीं है, इसलिए नहीं कहा जा सकता कि यह किसने लिखा और किस आधार पर लिखा। नित्यानान्द[1] का यह लिखना कि यह कलियुग के ३६०० वर्ष बीतने पर अर्थात् शक ४२१ या ४९९ ई० में लिखा गया जब कि आर्यभट्ट ने अपना आर्यभटीय ग्रन्थ लिखा है, भ्रम है। शायद इसी भ्रम के कारण मुनीश्वर ने भी आर्यभट्ट को सूर्य-सिद्धान्त का रचयिता मान लिया था। अलबेरूनी का यह कहना कि इसको लाटाचार्य या लाटसिंह ने बनाया भ्रम है[2] क्योंकि वराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त किसी ने भी लाटाचार्य को सूर्य सिद्धान्त का रचयिता नहीं माना। वराहमिहिर के अनुसार लाटाचार्य रोमक और पौलिश सिद्धान्तों के व्याख्याता हैं। लाट के अहर्गण[3] यवनपुर के सूर्यास्त-काल के हैं। इस प्रकार मत प्रकट है कि सूर्य-सिद्धान्त के रचना काल तथा रचयिता के सम्बन्ध में जितने अनुमान हैं वे सिद्ध नहीं होते। अंतरंग प्रमाणों के आधार पर केवल इतना ही कहा जा सकता है कि इसकी वृद्धि ४०० ई० के आसपास से प्रारम्भ होकर १२०० ई० तक समाप्त हुई। पहले-पहल इसका विस्तार (संशोधन) वराहमिहिर ने किया होगा। फिर अन्य संशोधकों ने आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, मंजुल आदि के वेधों से लाभ उठाकर इसको अप्-टु-डेट (Up-to-date) बनाने की कोशिश की। यह संशोधन उस समय तक जारी था जब तक रंगनाथ जी ने इसकी टीका लिखकर इसके श्लोकों को बाँध नहीं दिया। माधव पुरोहित की टीका में कुछ श्लोक अधिक मिलते हैं, पता नहीं वे किसी पुराने ग्रन्थ के आधार पर लिखे गये या यों ही बढ़ा दिये गये।

प्रयाग
भ्रातृ-द्वितीया; सं १९९७ वि०

महावीर प्रसाद श्रीवास्तव

---

[1] सूर्य-सिद्धान्त रचनाकालस्तु नित्यानन्देन सिद्धान्तराजकृता कलेः षट्त्रिंशच्छतमिते अब्दगणे व्यतीते निगद्यते—पंचसिद्धान्तिका प्रकाशिका पृष्ठ २

[2] लाटाचार्येणोक्तो यवनपुरेऽर्द्धास्तगे सूर्ये पंच सिद्धान्तिका अध्याय १ श्लोक ३.

[3] वही अध्याय १५ श्लोक १८.

प्रथम अध्याय

मध्यमाधिकार

(संक्षिप्त वर्णन)

[१ श्लोक—ईश्वर वंदना । २-७ श्लोक—ज्योतिःशास्त्र जानने के लिए मयासुर का सूर्य भगवान की तपस्या करना, सूर्य भगवान का प्रसन्न होकर वर देना तथा अपने शरीर से एक पुरुष का उत्पन्न करना । ८-९ श्लोक—सूर्यांश पुरुष का मायासुर से कहना कि जो शास्त्र पहले सूर्य भगवान ने महर्षियों से कहा था वही कुछ परिवर्तन के साथ कहा जा रहा है । १० श्लोक—काल के दो भेद (१) अनादि और अनन्त, (२) कलनात्मक । ११-२० श्लोक—निमेष से लेकर कल्प तक की काल की इकाइयाँ । २१-२३ श्लोक—ब्रह्मा की वर्तमान आयु । २४ श्लोक—कल्प के आरंभ से कितने समय में सृष्टि रची गयी । २५-२७ श्लोक—नक्षत्रों और ग्रहों की गति का कारण । २८ श्लोक—कोण नापने की इकाइयाँ । २९-३४ श्लोक—एक महायुग में ग्रहों, उनके शीघ्रोच्चों, चन्द्रमा के उच्च और पात तथा नक्षत्रों के कितने चक्कर होते हैं । ३५-३६ श्लोक—चान्द्र और सौर मासों का सम्बन्ध । ३७-३९ श्लोक—एक महायुग में कितने सावन दिन, अधिमास तथा तिथियाँ होती हैं । ४० श्लोक—एक कल्प में कितने सावन दिन तथा तिथियां होती हैं । ४१-४४ श्लोक—एक कल्प में ग्रहों के मन्दोच्चों तथा पातों के कितने चक्कर होते हैं । ४५-४७ श्लोक—कल्प के आरंभ से सत्ययुग के अंत तक का समय । ४८-५० श्लोक—सृष्टि के आरंभ से अब तक कितने दिन बीते, यह जानने की रीति । ५१-५२ श्लोक—दिनपति, वर्षपति और मासपति जानने की रीति । ५३-५४ श्लोक—ग्रहों के मध्यम स्थान जानने की रीति । ५५ श्लोक—वृहस्पति का वर्ष (संवत्सर) जानने की रीति । ५६-५८ श्लोक - सत्ययुग के अंत में ग्रहों के स्थान क्या थे । ५९ श्लोक—व्यास और परिधि का सम्बन्ध तथा भूपरिधि का परिमाण । ६०-६१ श्लोक—किसी स्थान के अक्षांश-वृत्त का परिमाण जानना तथा उससे ग्रह का मध्यम स्थान निकालना । ६२ श्लोक—भारतवर्ष की मध्यरेखा पर कौन-कौन प्रसिद्ध नगर हैं। ६३-६५ श्लोक—चंद्र-ग्रहण से यह जानना कि अमुक स्थान मध्य रेखा से कितना पूर्व या पश्चिम है । ६६ श्लोक—सौर-प्रवृत्ति कब होती है । ६७ श्लोक—किसी इष्टकाल में ग्रहों का स्थान क्या है । ६८-७० श्लोक—चन्द्रमा इत्यादि ग्रह कान्ति-वृत्ति से कितने उत्तर या दक्षिण जा सकते हैं ।]

अचिन्त्याव्यक्तरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने ।
समस्तजगदाधारमूर्तये ब्रह्मणे नमः ।।१।।

अनुवाद—उस परब्रह्म को नमस्कार है जिसका रूप न तो ध्यान में आ सकता है और न प्रकट किया जा सकता है, जो निर्गुण है परन्तु जिससे सब गुण उत्पन्न हुए हैं और जो सम्पूर्ण विश्व का आधार है ।। १ ।।

अल्पावशिष्टे तु कृते मयो नाम महासुरः ।
रहस्यं परमं पुण्यं जिज्ञासुर्ज्ञानमुत्तमम् ।। २ ।।
वेदाङ्गमग्र्यमखिलं ज्योतिषां गतिकारणम् ।
आराधयन्विवस्वन्तं तपस्तेपे सुदुष्करम् ।। ३ ।।

अनुवाद—सत्ययुग के कुछ शेष रहने पर मय नामक महा असुर ने सब वेदाङ्गों में श्रेष्ठ, सारे ज्योतिष्क पिण्डों की गतियों का कारण बतलाने वाले, परम पवित्र और रहस्यमय उत्तम ज्ञान को जानने की इच्छा से कठिन तप करके सूर्य भगवान की आराधना की ।। २-३ ।।

विज्ञान भाष्य—सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग की व्याख्या इसी अध्याय के १६वें श्लोक में की गयी है ।

वेदाङ्ग ६ हैं—शिक्षा, छन्द, व्याकरण, निरुक्त, कल्प और ज्योतिष । इनसे वेदों के समझने-समझाने में सहायता मिलती है, इसलिए यह वेदाङ्ग कहलाते हैं । वेदाङ्गों में ज्योतिष की श्रेष्ठता भास्कराचार्य जी ने इस प्रकार दिखलाई है—शब्द-शास्त्र वेद भगवान का मुख है, ज्योतिःशास्त्र आँख है, निरुक्त कान है, कल्प हाथ है, शिक्षा नासिका है, छन्द पाँव हैं, इसलिए जैसे सब अंगों में आँख श्रेष्ठ होती है वैसे ही सब वेदाङ्गों में ज्योतिःशास्त्र श्रेष्ठ है ।

तोषितस्तपसा तेन प्रीतस्तस्मै वरार्थिने ।
ग्रहाणां चरितं प्रादान्मयाय सविता स्वयम् ।। ४ ।।

अनुवाद—उसकी तपस्या से संतुष्ट और प्रसन्न होकर सूर्य भगवान् ने स्वयम् वर चाहनेवाले मय को ग्रहों के चरित अर्थात् ज्योतिःशास्त्र का उपदेश दिया ।। ४ ।।

विज्ञान भाष्य—पाश्चात्य ज्योतिषी ग्रह उन ज्योतिष्क पिंडों को कहते हैं जो सूर्य की परिक्रमा किया करते हैं । इस परिभाषा के अनुसार बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, गुरु, शनि, युरेनस और नेपच्यून यह आठ ग्रह हैं, जिनमें से पिछले दो ग्रहों का पता

पिछले दो सौ वर्ष के भीतर लगा है और यह कोरी आँख से नहीं दिखाई पड़ते। चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता है, इसलिए यह उपग्रह है। अन्य ग्रहों के भी उपग्रह दूरवीक्षण यंत्र से देखे गये हैं। परन्तु हमारे ज्योतिष ग्रन्थों में पृथ्वी को नहीं वरन् सूर्य को ग्रह माना है। चन्द्रमा भी ग्रहों की श्रेणी में रखा गया है। युरेनस और नेपचून की कहीं चर्चा नहीं है। इसलिए हमारे यहाँ सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, गुरु अथवा वृहस्पति, शुक्र और शनि सात स्थूल ग्रह तथा राहु और केतु दो सूक्ष्म ग्रह माने जाते हैं। दो सूक्ष्म ग्रहों का पूरा विवरण इसी अध्याय में चन्द्रमा के पातों का वर्णन करते समय लिखा जायगा। ज्योतिःशास्त्र में इन ग्रहों की गतियों से जो घटनाएँ आकाश में होती हैं उनका वर्णन है, इसलिए इस श्लोक में ज्योतिःशास्त्र का दूसरा नाम 'ग्रहों का चरित' बतलाया गया है।

विदितस्ते मया भावः तपसाऽऽराधितस्त्वहम्[1] ।
दद्यां कालाश्रयं ज्ञानं ज्योतिषां[2] चरितं महत् ।। ५ ।।
न मे तेजस्सहः कश्चिदाख्यातुं नास्ति मे क्षणः ।
मदंशः पुरुषोऽयं ते निश्शेषं कथयिष्यति ।। ६ ।।

अनुवाद—भगवान सूर्य ने कहा कि तेरा भाव मुझे विदित हो गया है और तेरे तप से मै बहुत संतुष्ट हूँ, मैं तुझे ग्रहों के महान् चरित का उपदेश करता हूँ, जिससे समय का ठीक-ठीक ज्ञान हो सकता है; परंतु मेरा तेज कोई सह नहीं सकता और उपदेश देने के लिए मुझे समय भी नहीं है इसलिए यह पुरुष, जो मेरा अंश है, तुझे भली भांति उपदेश देगा ।। ५-६ ।।

इत्युक्ताऽन्तर्दधे देवस्तमादिश्यांशमात्मनः ।
स पुमान्मयमाहेदं प्रणतं प्राञ्जलिं स्थितम् ।।७।।*
शृणुष्वैकमनाः पूर्वं यदुक्तं ज्ञानमुत्तमम् ।
युगे युगे महर्षीणां स्वयमेव विवस्वता ।।८।।

---

* इस श्लोक के पहले पूना के आनन्दाश्रम के सूर्य सिद्धान्त की एक टीका रहित प्रति में यह श्लोक भी पाया जाता है :—

तस्मात्वं स्वां पुरीं गच्छ तत्र ज्ञानम् ददामि ते ।
रोमके नगरे ब्रह्मशापान्म्लेच्छावतार धृक् ।।

परन्तु यह सूर्य सिद्धान्त की अन्य किसी प्रति में नहीं है। आगे पीछे के श्लोकों से इसका कोई सम्बन्ध भी नहीं देख पड़ता, इसलिए यह क्षेपक है।

शास्त्रमाद्यं तदेवेदं यत्पूर्वं प्राह भास्कर: ।
युगानां परिवर्तेन कालभेदोऽत्र केवलम् ।।९।।

अनुवाद—इतना कह कर सूर्य भगवान अन्तर्ध्यान हो गये और सूर्यांश पुरुष ने, आदेशानुसार, मय से जो विनीत भाव से झुके हुए और हाथ जोड़े हुए थे कहा—एकाग्र चित होकर यह उत्तम ज्ञान सुनो, जिसे भगवान सूर्य ने स्वयम् समय-समय पर महर्षियों से कहा था; भगवान सूर्य ने पहले जिस शास्त्र का उपदेश दिया था वही आदि शास्त्र यह है; युगों के परिवर्तन से केवल काल में कुछ भेद पड़ गया है ।।७-९।।

विज्ञान भाष्य—नवें श्लोक के दूसरे पद का कुछ लोग यह अर्थ करते हैं कि सूर्य भगवान ने जिस शास्त्र का उपदेश महर्षियों को किया था वही शास्त्र बिना किसी परिवर्तन के यह है, केवल कहने के समय में भेद है । परन्तु यदि इसका यही अर्थ होता तो यह कहने की क्या आवश्यकता थी कि केवल काल में भेद है, पहले पद में जो कुछ कहा गया है वही पर्याप्त था । इसलिए इस पद का अधिक युक्तियुक्त अर्थ यह है कि पहले के बतलाये हुए और इस समय बतलाये जाने वाले ज्योतिः-शास्त्र में यदि कुछ भेद है तो वह काल के कारण हो गया है, तत्वत: कोई अन्तर नहीं है । काल के कारण भेद कैसे हो सकता है; इसका कारण यह है कि ज्योतिः-शास्त्र प्रयोगात्मक विज्ञान है और प्रयोग में कुछ न कुछ सूक्ष्म भूल रह ही जाती है, जिसे प्रयोगात्मक भूल (Experimental error) कहते हैं । ज्योतिःशास्त्र में यह भूल प्रति वर्ष इकट्ठी होती रहती है और सैकड़ों वर्ष के बाद वह बहुत बड़ा रूप धारण कर लेती है; इसलिए समय-समय पर उसका संशोधन करना पड़ता है, जिसको बीज-संस्कार कहते हैं । इसी दृष्टि से यह वाक्य सूर्यांश पुरुष ने कहा है जिसके प्रमाण में सूर्य सिद्धान्त के अन्तिम अध्याय में 'बीजोपनयन' नाम के २१ श्लोक हैं, जिनकी टीका रंगनाथ जी ने तथा पं० इन्द्रनारायण द्विवेदी जी ने क्षेपक मान कर नहीं की है और क्षेपक मानने का कारण यह बतलाया है कि सूर्य भगवान के कहे हुए शास्त्र में बीज-संस्कार स्वयम् सूर्य भगवान कैसे करते । परन्तु रंगनाथ जी अपनी गूढ़ार्थ-प्रकाशिका टीका में ९ वें श्लोक की व्याख्या करते हुए यह भी बतलाते हैं कि काल पाकर कुछ अन्तर हो जाया करता है । उनके वाक्य ज्यों के त्यों यह हैं :—

"तथा च कालवशेन ग्रहचारे किञ्चिद्वैलक्ष्यण्यं भवतीति युगान्तरे तत्तदनन्तरं ग्रहचारेषु प्रसाध्य तत्कालस्थित लोकव्यवहारार्थं शास्त्रान्तरमिव कृपालुरुक्तवानिति-नानन्तर शास्त्राणां वैयर्थ्यम् । एवञ्च मया वर्तमान युगीय सूर्योक्त शास्त्र सिद्धग्रहचार-मंगीकृत्याद्य सूर्योक्त शास्त्रसिद्धं ग्रहचारं च प्रयोजनाभावादुपेक्ष्य तदुक्तमेवत्वां प्रत्युपदिश्यत इति भाव: । एवञ्च युग मध्येऽप्यवान्तर काले ग्रहचारेष्वन्तर दर्शने तत्तत्काले तदन्तरं

प्रसाध्यग्रंथास्तत्काल वर्तमानाभियुक्ताः कुर्वन्ति । तदिदमन्तरं पूर्व ग्रंथे बीजमित्याम-नन्ति । पूर्वग्रंथानां लुप्तत्वात्सूर्य्येषि संवादोऽपीदानीं न दृश्यत इति । तदप्रसिद्धिरागम प्रामाण्याच्च नाशंक्या ।।''†

काल पाकर अन्तर पड़ने के उदाहरण अनेक हैं, जो इसी टीका में उचित स्थान पर बतलाये जायेंगे ।

लोकानामन्तकृत्कालः कालोन्यः कलनात्मकः ।
स द्विधा स्थूल सूक्ष्मत्वान्मूर्त्तश्चामूर्त उच्यते ।।१०।।

अनुवाद—एक प्रकार का काल संसार को नाश करता है और दूसरे प्रकार का कलनात्मक है अर्थात् जाना जा सकता है । यह भी दो प्रकार का होता है—(१) स्थूल और (२) सूक्ष्म । स्थूल नापा जा सकता है, इसलिए मूर्त कहलाता है और सूक्ष्म नापा नहीं जा सकता इसलिए अमूर्त कहलाता है ।।१०।।

विज्ञान भाष्य—पहले प्रकार के काल की कल्पना भी नहीं हो सकती, क्योंकि न तो यही मालूम है कि वह कब से आरंभ हुआ और न यही मालूम होगा कि उसका अन्त कब होगा । यह अखंड और व्यापक है; परन्तु इसके बीच में ही अथवा इसके उपस्थित रहते ही लोक का अन्त हो जाता है, ब्रह्मा उत्पन्न होते, सृष्टि रचते तथा लय करते हैं, परन्तु काल बना ही रहता है । इसलिए इसको लोकों का अन्त कर देनेवाला, नाश कर देनेवाला, कहते हैं । इसीलिए मृत्यु को भी काल कहते हैं ।

काल का जो थोड़ा-सा मध्य भाग जाना जा सकता है; उसमें भी जो बहुत छोटा है वह नापा नहीं जा सकता है और अमूर्त कहलाता है । नापने में जितनी ही सूक्ष्मता होगी अमूर्त काल की परिभाषा भी नयी होती जायगी; जैसा कि अगले श्लोक की व्याख्या में दिखाया जायगा ।

प्राणादिः कथितो मूर्तः त्रुट्याद्योऽमूर्तसंज्ञकः ।
षड्भिःप्राणैः विनाड़ी स्यात्तत्षष्ट्या नाड़िका स्मृता ।।११।।
नाड़ी षष्ट्या तु नाक्षत्रमहोरात्रं प्रकीर्तितम् ।
तत्त्रिंशता भवेन्मासः सावनोऽर्कोदयैःस्मृतः ।।१२।।
ऐन्दवस्तिथिभिः तद्वत्सङ्क्रान्त्या सौर उच्यते ।
मासैर्द्वादशभिर्वर्षं दिव्यं तदह उच्यते ।।१३।।

अनुवाद—प्राण से लेकर ऊपर की जितनी समय की इकाइयाँ हैं वह मूर्त

†वेंकटेश्वर प्रेस का १९५३ वि० का छपा सूर्य सिद्धान्त, पृष्ठ ७ ।

कहलाती हैं और त्रुटि से लेकर प्राण के नीचे की इकाइयों को अमूर्त कहते हैं। ६ प्राणों की एक विनाड़ी (पल) तथा ६० विनाड़ियों की एक नाड़ी (घड़ी) होती है ॥ ११ ॥ ६० नाड़ियों का एक नाक्षत्र अहोरात्र (दिन रात का एक जोड़ा) तथा ३० नाक्षत्र अहोरात्रों का एक नाक्षत्र मास होता है। इसी प्रकार ३० सावन दिनों का एक सावन मास होता है ॥ १२ ॥ उसी प्रकार ३० चान्द्र तिथियों का एक चान्द्रमास तथा एक संक्रान्ति से दूसरी संक्रान्ति तक के समय को सौरमास कहते हैं। १२ मासों का एक वर्ष होता है; जिसको* दिव्यदिन अथवा देवताओं का दिन कहते हैं।

विज्ञान भाष्य—स्वस्थ मनुष्य सुख से बैठा हुआ हो तो जितने समय में वह सहज ही हवा (प्राण वायु) भीतर खींचता और बाहर निकालता है उस समय को प्राण कहते हैं। यही सबसे छोटी इकाई है, जो उस समय नापी जा सकती थी। इससे कम समय के नापने का कोई साधन उस समय नहीं था; इसलिए उसको अमूर्त कहते थे। अब ऐसी घड़ियाँ बनायी जाती हैं जिनसे उस इकाई का भी नापना सहज है जो अमूर्त कही गयी हैं। एक नाक्षत्र दिन में ६० घड़ी=६०×६० पल=६०×६०×६० प्राण अथवा २१६०० प्राण होते हैं। इसी तरह १ दिन में २४ घंटे=२४×६० मिनट=२४×६०×६० सेकंड अथवा ८६४०० सेकंड होते हैं। इसलिए १ प्राण में ४ सेकंड होते हैं। जिस घड़ी में सेकंड जानने की सुई लगी रहती है उससे सेकंड का नापना कितना सहज है, यह सबको विदित है। ऐसी घड़ियाँ भी हैं जिनसे १ सेकंड का पांचवाँ अथवा दसवां भाग सहज ही जाना जा सकता है। परन्तु १ सेकंड का दसवां भाग १ प्राण के चालीसवें भाग के समान है। इसलिए आजकल प्राण के नीचे की कुछ इकाइयाँ भी मूर्त कही जा सकती हैं।

प्राण को असु भी कहते हैं। प्रसिद्ध ज्योतिषी भास्कराचार्य जी सिद्धान्त-शिरोमणि में प्राण की दूसरी परिभाषा छन्द-शास्त्र के शब्दों में यों देते हैं— एक गुरु अक्षर के उच्चारण करने में जितना समय लगता है उसके दस गुने समय को प्राण कहते हैं। सानुस्वार, विसर्गान्ति, दीर्घ और जिस लघु अक्षर के पीछे कोई संयुक्ताक्षर हो उसको गुरु अक्षर कहते हैं।

पल तोलने की एक इकाई का भी नाम है, जो चार तोले के समान होता है।

---

*इस शब्द से यह प्रकट होता है कि जिन १२ मासों का वर्ष होता है वह सौर-मास हैं। चांद्र, नाक्षत्र अथवा सावन मासों का वर्ष नहीं होता है।

जितने समय में १ पल अथवा ४ तोला जल एक विशेष नाप के छिद्र द्वारा घटिका[1] यंत्र में चढ़ता है उस समय को पल कहते हैं ।

तुटि की कल्पना भास्कराचार्य जी ने[2] इस प्रकार की है । जितने समय में पलक गिरती है उसको निमेष कहते हैं । १ निमेष के तीसवें भाग को तत्पर तथा १ तत्पर के सौवें भाग को तुटि कहते हैं । निमेष के ऊपर की इकाइयों का सम्बन्ध यह है :—

१८ निमेष = १ काष्ठा
३० काष्ठा = १ कला
३० कला = १ घटिका
२ घटिका = १ मुहूर्त
३० मुहूर्त = १ दिन (नाक्षत्र)

इस प्रकार १ नाक्षत्र दिन = ३० × २ × ३० × ३० × १८ निमेष
= ९७२००० निमेष

पहले दिखलाया गया है कि १ दिन में २१६०० प्राण अथवा ८६४०० सेकंड होते हैं इसलिए १ प्राण में $\frac{९७२०००}{२१६००}$ निमेष अथवा ४५ निमेष और १ सेकंड में ११$\frac{१}{४}$ निमेष होते हैं ।

नाक्षत्र अहोरात्र—नक्षत्र का अर्थ है तारा, तारा-समूह तथा उस चक्र का २७वाँ भाग जिस पर सूर्य एक वर्ष में एक परिक्रमा करता हुआ दीख पड़ता है । पृथ्वी की दैनिक गति के कारण आकाश के सब तारे पूरब में उदय हो कर ऊपर उठते, पश्चिम की ओर बढ़ते, पश्चिम में अस्त होते और फिर पूरब में उदय होते हैं । किसी तारे के उदय का समय घड़ी में देखकर लिख लीजिये और देखिए कि वह तारा फिर कब उदय होता है । यदि घड़ी ठीक हो तो इन दोनों उदयों के बीच का समय २३ घंटा ५६ मिनट और ४ सेकंड के लगभग होता है । इसी को नाक्षत्र अहोरात्र या केवल नाक्षत्र दिन कहते हैं । यह सदा एक-सा होता है, घटता बढ़ता नहीं, यदि तारों के बहुत सूक्ष्म गति का विचार न किया जाय । इसलिए ज्योतिषी लोग इसीसे समय का हिसाब लगाते हैं ।

सावन दिन—सूर्य के एक उदय से लेकर दूसरे उदय तक के समय को सावन दिन कहते हैं । यह नाक्षत्र दिन से कोई ४ मिनट बड़ा होता है । सावन दिन का

---

१. इसका विशेष विवरण ज्योतिषोपनिषत नामक १३वें अध्याय में किया जायगा ।

२. सिद्धान्त शिरोमणि गणिताध्याय मध्यमाधिकार, काल मानाध्याय श्लोक १६, १७ ।

मान समान नहीं होता। इसलिए मध्यम सावन दिन का जो मान होता है वही समय घड़ियों के द्वारा जाना जाता है।

ऐन्दव तिथि या चान्द्र तिथि—चन्द्रमा आकाश में चक्कर लगाता हुआ जिस समय सूर्य के बहुत पास पहुँचता है उस समय अमावस्या होती है। एक अमावस्या से दूसरी अमावस्या तक के समय को चान्द्रमास कहते हैं। इसका मध्यम मान २९·५३०५८७९४६ मध्यम सावन दिन का होता है। अमावास्या के बाद चन्द्रमा सूर्य से आगे पूर्व की ओर बढ़ता जाता है और जब १२ अंश आगे हो जाता है तब पहली तिथि (परिवा) बीतती है, १२ अंश से २४ अंश तक का जब अन्तर रहता है तब दूइज रहती है। २४ अंश से ३६ अंश तक जब चन्द्रमा सूर्य से आगे रहता है तब तीज रहती है। जब अन्तर १७८ से १८० अंश तक होता है तब पूर्णिमा होती है, १८० अंश से १९२ अंश तक जब चन्द्रमा आगे रहता है तब १६वीं तिथि अथवा परिवा (प्रतिपदा) होती है, १९२° से २०४° तक दूइज होती है, इत्यादि। पूर्णिमा के बाद चन्द्रमा सूर्यास्त से प्रति दिन कोई २ घड़ी (४८ मिनट) पीछे निकलता है। पूर्णिमा से अमावस्या तक के १४, १५ दिन को कृष्णपक्ष कहते हैं। अमावस्या को ३०वीं तिथि भी कहते हैं, इसीलिए पंचांगों में अमावस्या के लिए ३० लिखते हैं।

सौरमास—सूर्य जिस मार्ग से चलता हुआ आकाश में परिक्रमा करता है उसको क्रांतिवृत्त कहते हैं। इसके बारहवें भाग को राशि कहते हैं। सूर्यमंडल का केन्द्र जिस समय एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश करता है उस समय दूसरी राशि की संक्रान्ति होती है। एक संक्रान्ति से दूसरी संक्रान्ति तक के समय को सौरमास कहते हैं। १२ सौर मास परिमाण में भिन्न-भिन्न होते हैं; इसका कारण यह है कि सूर्य की गति सर्वदा समान नहीं होती। जब सूर्य की गति तीव्र होती है तब वह एक राशि को जल्दी पूरा कर लेता है और वह सौरमास छोटा होता है। इसके प्रतिकूल जब सूर्य की गति मन्द होती है तब सौरमास बड़ा होता है।

वर्ष—जितने प्रकार के महीने होते हैं उतने ही प्रकार के वर्ष होते हैं, बारह चान्द्र मासों का एक चान्द्रवर्ष, १२ सावन मासों का एक सावनवर्ष तथा बारह सौरमासों का एक सौरवर्ष होता है। हमारे ज्योतिषी परम्परा से यही मानते आये हैं। परन्तु १३वें श्लोक में दूसरे पद का सीधा अर्थ यह है कि १२ मासों का वर्ष होता है, जिसको दिव्यदिन कहते हैं। इसलिए जिन बारह मासों का वर्ष कहा गया है वह अन्य मास नहीं हैं, केवल सौरमास हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि सूर्य सिद्धान्त में केवल सौर वर्ष की चर्चा है और सौर वर्ष को ही वर्ष माना गया है, अन्य को नहीं।

दिव्यदिन—पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव पर देवताओं के रहने का तथा दक्षिणी ध्रुव पर राक्षसों के रहने का स्थान बतलाया गया है। इसलिए उत्तरी ध्रुव को देव-लोक तथा दक्षिणी ध्रुव को असुरलोक कहते हैं। जिस समय सूर्य विषुववृत्त पर आता है उस समय दिन और रात समान होते हैं। यह घटना वर्ष में केवल दो बार होती है। ६ महीने तक सूर्य विषुववृत्त के उत्तर तथा ६ महीने तक दक्षिण रहता है। पहली छमाही में उत्तर गोल में दिन बड़ा और रात छोटी तथा दक्षिण गोल में दिन छोटा और रात बड़ी होती है। दूसरी छमाही में ठीक इसका उलटा होता है। परन्तु जब सूर्य विषुववृत्त के उत्तर रहता है तब वह उत्तरी ध्रुव पर (सुमेरु पर्वत पर) ६ महीने तक सदा दिखाई देता है और दक्षिणी ध्रुव पर इस समय में नहीं दिखाई पड़ता। इसलिए इस छमाही को देवताओं का दिन तथा राक्षसों की रात कहते हैं। जब सूर्य ६ महीने तक विषुववृत्त के दक्खिन रहता है तब उत्तरी ध्रुव पर देवताओं को नहीं देख पड़ता और राक्षसों को ६ महीने तक दक्षिणी ध्रुव पर बराबर देख पड़ता है। इसलिए इस छमाही को देवताओं की रात और असुरों का दिन कहा गया है। इसलिए हमारे १२ महीने देवताओं अथवा राक्षसों के एक अहोरात्र के समान होते हैं।

सुरासुराणामन्योन्यमहोरात्रं विपर्ययात्।
षट् षष्टिसङ्गुणं दिव्यं वर्षमासुरमेव च ॥१४॥

अनुवाद—जो देवताओं का दिन होता है वही असुरों की रात होती है और जो देवताओं की रात होती है वह असुरों का दिन कहलाता है। यही देवता या असुर के अहोरात्र का ६० × ६ गुना दिव्य या असुर वर्ष कहलाता है।

विज्ञान भाष्य—जैसे ३६० सावन दिन के एक सावन वर्ष की कल्पना की गयी है उसी प्रकार ३६० दिव्य दिन का एक दिव्य वर्ष माना गया है। इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि हमारे ३६० वर्षों का देवताओं का एक वर्ष होता है।

तद्द्वादशसहस्राणि चतुर्युगमुदाहृतम्।
सूर्याब्दसंख्यया द्वित्रिसागरैरयुताहतैः ॥१५॥
सन्ध्यासन्ध्यांशसहितं विज्ञेयं तच्चतुर्युगम्।
कृतादीनां व्यवस्थेयं धर्मपादव्यवस्थया ॥१६॥
युगस्य दशमो भागः चतुस्त्रिद्व्येक सङ्गुणः।
क्रमात्कृतयुगादीनां षष्ठांऽशः सन्ध्ययोः स्वकः ॥१७॥

अनुवाद—इन बारह हजार दिव्य वर्षों का एक चतुर्युग होता है जिसकी संख्या सौर वर्षों में तैंतालीस लाख बीस हजार (४३२००००) होती है। इसमें संध्या और संध्यांश के वर्ष भी मिले हुए हैं। एक चतुर्युग में सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और

कलियुग चार युग होते हैं; जिनके मान धर्म के चरणों के अनुसार होते हैं। चतुर्युग के दसवें भाग का चार गुना सत्ययुग, तीन गुना त्रेता, दो गुना द्वापर और एक गुना कलियुग होता है। प्रत्येक युग के छठें भाग के समान उसकी दोनों संध्याएँ होती हैं ॥ १५-१७ ॥

विज्ञान-भाष्य—१४वें श्लोक में बतलाया गया है कि सुरों या असुरों के ३६० दिन का एक दिव्य वर्ष होता है। तेरहवें श्लोक में बतलाया गया है कि देवताओं का एक दिन एक सौर वर्ष के समान होता है इसलिए यह स्पष्ट है कि देवताओं का एक वर्ष ३६० सौर वर्षों के समान हुआ। १५वें श्लोक के अनुसार १२००० दिव्य वर्षों का अथवा १२०००×३६० (अर्थात् ४३२००००) सौर वर्षों का एक चतुर्युग होता है। चतुर्युग को महायुग भी कहते हैं। एक महायुग में चार युग सत्ययुग; त्रेता, द्वापर और कलियुग होते हैं इसीलिए इसको चतुर्युग भी कहते हैं। सत्ययुग में धर्म चार चरण होता है, त्रेता में तीन चरण, द्वापर में दो चरण और कलियुग में एक चरण। इसी तरह एक महायुग में सत्ययुग चार भाग, त्रेता तीन भाग, द्वापर दो भाग और कलियुग एक भाग होता है। इसलिए

			दिव्य वर्षों में	सौर वर्षों में
दोनों संध्याओं सहित सत्ययुग का मान हुआ			४८००	१७२८०००
,,	त्रेता	,,	३६००	१२९६०००
,,	द्वापर	,,	२४००	८६४०००
,,	कलियुग	,,	१२००	४३२०००
	महायुग		१२०००	४३२००००

प्रत्येक युग की दोनों सन्ध्याएँ उसके छठें भाग के समान होती हैं इसलिए एक संध्या (सन्धि-काल) बारहवें भाग के समान हुई। युग के आदि में जो संध्या होती है उसको आदि संध्या और अन्त में जो संध्या होती है उसको संध्यांश कहते हैं। इनके मान यह हुए :—

	दिव्य वर्षों में	सौर वर्षों में
सत्ययुग की आदि वा अन्त संध्या	४००	१४४०००
त्रेता की ,, ,,	३००	१०८०००
द्वापर की ,, ,,	२००	७२०००
कलियुग की ,, ,,	१००	३६०००

जैसे एक, अहोरात्र में प्रातः और सायं दो संध्याएँ होती हैं वैसे ही चतुर्युग के प्रत्येक युग में दो संध्याएँ होती हैं, एक आरम्भ में और एक अन्त में।

युगानां सप्ततिस्सैका मन्वन्तरमिहोच्यते ।
कृताब्दसङ्ख्या तस्यान्ते सन्धिः प्रोक्तो जलप्लवः ॥१८॥
ससन्धयस्ते मनवः कल्पे ज्ञेयाश्चतुर्दश ।
कृतप्रमाणः कल्पादौ संधिः पञ्चदश स्मृताः ॥१९॥

अनुवाद—७१ महायुगों का एक मन्वन्तर होता है, जिसके अंत में सत्ययुग के समान संध्या होती है। इसी संध्या में जलप्लव होता है। संधि सहित १४ मन्वन्तरों का एक कल्प होता है, जिसके आदि में भी सत्ययुग के समान एक संध्या होती है; इसलिए एक कल्प में १४ मन्वन्तर और १५ सत्ययुग के समान संध्याएँ हुई ॥१८-१९॥

विज्ञान भाष्य—चतुर्युग के प्रत्येक युग में दो संध्याएँ मानी गयी हैं; परन्तु मन्वन्तर के केवल अंत में एक संध्या मानी गयी है जिसका मान सत्ययुग के समान होता है। १ मन्वन्तर ७१ महायुगों का अर्थात् ७१×४३२००००=३०६७२०००० सौरवर्षों का होता है। प्रत्येक मन्वन्तर के अंत में १७२८००० सौर वर्षों की एक संध्या होती है तथा कल्प के आदि में भी इसीके समान एक संध्या होती है। इस प्रकार

१ कल्प=१४ मन्वन्तर+१५ सत्ययुग के समान संध्याएँ

$$=१४\times ७१ \text{ महायुग} + १५ \text{ सत्ययुग}$$

$$=९९४ \text{ महायुग} + \frac{१५\times ४}{१०} \text{ महायुग} \quad [\text{क्योंकि सत्ययुग} = \text{महायुग का } \tfrac{४}{१०}]$$

$$=९९४+६ \text{ महायुग}$$

$$=१००० \text{ महायुग}$$

अथवा $=१०००\times १२०००=१२०००००० \text{ दिव्य वर्ष}$

अथवा $=१०००\times ४३२००००=४३२००००००० \text{ सौर वर्ष}$

महायुग अथवा मन्वन्तर के यह मान मनुस्मृति इत्यादि धर्मशास्त्रों से मिलते हैं; परन्तु आर्यभट ने अपने आर्यभटीय में युगों के मान कुछ भिन्न दिये हैं। इनके अनुसार १ कल्प में १४ मनु और १ मनु में ७२ चतुर्युग के प्रत्येक युग सत्ययुग त्रेता, द्वापर और कलियुग समान[1] होते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि आर्यभट के अनुसार एक कल्प में १४×७२=१००८ चतुर्युग होते हैं।

---

१. देखिये २३वें श्लोक का विज्ञान भाष्य।

इत्थं युगसहस्रेण भूतसंहारकारकः ।
कल्पो ब्राह्ममहः प्रोक्तं शर्वरी तस्य तावती ॥२०॥

अनुवाद—इस प्रकार एक हजार महायुग का एक कल्प होता है जो ब्रह्मा के एक दिन के समान है । इतने ही समय की ब्रह्मा की एक रात होती है, जिसमें सृष्टि का लय हो जाता है ॥ २० ॥

विज्ञान भाष्य—ब्रह्मा के दिन और रात का बहुत ही अच्छा चित्र भगवान कृष्ण ने श्री मद्भगवत्गीता में आठवें अध्याय में यों किया है :—

"सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रां तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥ १७ ॥
अव्यक्ताद् व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्त संज्ञके ॥ १८ ॥
भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥ १९ ॥

अर्थात् "(१७) अहोरात्र को (तत्वतः) जाननेवाले पुरुष समझते हैं कि (कृत, त्रेता, द्वापर और कलि इन चार युगों का महायुग होता है और ऐसे) हजार महा-युगों का समय ब्रह्मदेव का एक दिन होता है और ऐसे ही हजार युगों की (उसकी) एक रात्रि होती है ।

(१८) 'ब्रह्मदेव के दिन का आरंभ होने पर अव्यक्त से सब व्यक्त (पदार्थ) निर्मित होते हैं और रात्रि होने पर उसी पूर्वोक्त अव्यक्त में लीन हो जाते हैं । (१९) हे पार्थ ! भूतों का यही समुदाय (इस प्रकार) बार-बार उत्पन्न होकर अवश होता हुआ, अर्थात् इच्छा हो या न हो रात होते ही लीन हो जाता है और दिन होने पर (फिर) जन्म लेता है ।"*

परमायुश्शतं तस्य तयाऽहोरात्रसङ्ख्यया ।
आयुषोऽर्धमितं तस्य शेषात्कल्पोऽयमादिमः ॥ २१ ॥
कल्पादस्माच्च मनवः षड् व्यतीतावस्ससंधयः ।
वैवस्वतस्य च मनोः युगानां त्रिघनो गतः ॥ २२ ॥
अष्टाविंशाद्युगादस्माद्यातमेकं कृतं युगम् ।
अतः कालं प्रसंख्याय सङ्ख्यामेकत्र पिण्डयेत् ॥ २३ ॥

अनुवाद—(२१) ब्रह्मा की आयु उन्हीं के दिन-मान से सौ वर्ष की होती है । इस समय ब्रह्मा की आधी आयु बीत चुकी है, शेष आधी आयु का यह पहला कल्प

*गीता रहस्य पृष्ठ ७३४. ७३५

है। (२२) इस कल्प के संधियों सहित ६ मनु बीत गये हैं और सातवें मनु वैवस्वत के २७ महायुग बीत गये हैं, तथा (२३) अठाईसवें महायुग का सत्ययुग बीत गया है; इसलिए काल गणना के लिए इतनी संख्याओं को एकत्र कर लेना चाहिये ॥ २१-२३॥

विज्ञान भाष्य—आयु का परिमाण सौ वर्ष का माना गया है। मनुष्य की परम आयु सौ सौर वर्षों की होती है, देवता की आयु सौ दिव्य वर्षों की होती है और एक दिव्य वर्ष ३६० सौर वर्षों का होता है। इसी तरह ब्रह्मा की आयु सौ ब्राह्म वर्षों की समझनी चाहिये। एक ब्राह्म वर्ष ३६० ब्राह्म दिनों का और एक ब्राह्म दिन (अहोरात्र) दो कल्प अथवा २००० महायुगों का होता है। इस गणना से ब्रह्मा के ५० वर्ष बीत गये हैं, इक्यावनवें वर्ष का पहला दिन (कल्प) आरंभ हो गया है जिसके संधियों सहित ६ मनु, २७ महायुग और २८वें महायुग का सत्ययुग बीत गया है। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि यह बात सत्ययुग के अंत में कही जा रही है; जैसा कि दूसरे श्लोक के 'अल्पावशिष्टेतु कृते'* इत्यादि से प्रकट है। इस गणना से वर्तमान कल्प के आरम्भ से २८ वें महायुग के सत्ययुग के अन्त तक का समय यों निकलता है :—

		सौ वर्षों में
कल्प की आदि संध्या	=	१७,२८,०००
६ मन्वन्तर=६ × ३०,६७,२०,०००	=	१,८४,०३,२०,०००
६ मन्वन्तरों की ६ संध्याएँ =६ × १७,२८,०००	=	१,०३,६८,०००
सातवें मन्वन्तर के २७ महायुग =२७ × ४३,२०,०००	=	११,६६,४०,०००
२८वें महायुग का सत्ययुग	=	१७,२८,०००
∴ कल्प के आरम्भ से वर्तमान महायुग के सत्ययुग के अन्त तक का समय	=	१,९७,०७,८४,०००

इस समय १९७९ वि० में कलियुग के ५०२३ वर्ष बीते हैं; इसलिए यदि कल्प के आरम्भ से अब तक का समय जानना हो तो ऊपर सत्ययुग के अन्त तक के सौर वर्षों में त्रेता के १२,९६,००० सौर वर्ष, द्वापर के ८, ६४,००० सौर वर्ष तथा कलियुग के ५०२३ वर्ष और जोड़ देने चाहिये। इस प्रकार कल्प के आरम्भ से अब तक का समय हुआ १, ९७, २९, ४९, ०२३ सौर वर्ष। संकल्प के मंत्र में समय की गणना इसी प्रकार की गई है जिसका समय संबन्धी भाग यह है :—

*देखिये १९वें श्लोक का विज्ञान भाष्य

प्रवर्तमानस्याद्य ब्रह्मणो द्वितीये परार्धे श्री श्वेतवाराह कल्पे वैवस्वत मन्वन्तरे अष्टाविंशति तमे कलियुगे कलि प्रथम चरणे···बौद्धावतारे वर्तमानेऽस्मिन् वर्तमान् संवत्सरेऽमुकनाम वत्सरेऽमुकायने अमुक ऋतौ अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुक-वासरे अमुकनक्षत्रे संयुक्ते चन्द्रे···तिथौ···।

आर्यभट के मत से कल्प के आरम्भ से कलियुग के आरम्भ तक का समय

=६ मनु+२७ चतुर्युग+३/४ चतुर्युग†

=६×७२+२७+३/४ चतुर्युग

=४३२+२७+३/४ चतुर्युग

=४५९ ३/४ ×४३, २०,००० सौर वर्ष

=(४६०−१/४)×४३, २०,००० "

=१,९८,७२,००,०००—१०,८०,००० सौर वर्ष

=१,९८,६१,२०,००० सौर वर्ष।

इसमें यदि ५०२३ वर्ष और जोड़ दिये जायँ तो १९७९ वि० में कल्प के आरम्भ से जितने सौर वर्ष बीते हैं वह निकल आवेंगे। ब्रह्मगुप्त भास्कराचार्य इत्यादि ने आर्यभट के इस मत को नहीं माना है। उनके मत से कल्प के आरम्भ से अब तक की सौर वर्षों की संख्या वही आती है, जो सूर्य सिद्धान्त के अनुसार आती है।

बीते हुए ६ मन्वन्तरों के नाम हैं—(१) स्वायम्भुव, (२) स्वारोचिष, (३) औत्तमि, (४) तामस, (५) रैवत और (६) चाक्षुष। वर्तमान मन्वन्तर का नाम वैवस्वत है। वर्तमान कल्प को श्वेत-वाराह-कल्प कहते हैं।

ग्रहर्क्षदेवदैत्यादिसृजतोस्य चराचरम्।
कृताद्रिवेदा दिव्याब्दा: शतघ्ना वेधसो गता: ।।२४।।

अनुवाद—ग्रह, नक्षत्र, देव, दैत्य, मनुष्य, पशु, पक्षी, पर्वत, वृक्ष इत्यादि चराचर जगत के बनाने में ब्रह्मा को ४७,४०० दिव्य वर्ष अथवा ४७,४००×३६० =१,७०,६४,००० सौर वर्ष लग गये। (इसलिए कल्प के आदि से इतने समय के बाद सारी सृष्टि तैयार हुई) ।। २४ ।।

विज्ञान भाष्य—सूर्य सिद्धान्त का यह मत है कि कल्प के आदि में सृष्टि की रचना नहीं थी। इसके लिए ब्रह्मा को १,७०,६४,००० सौर वर्ष लगाने पड़े थे।

---

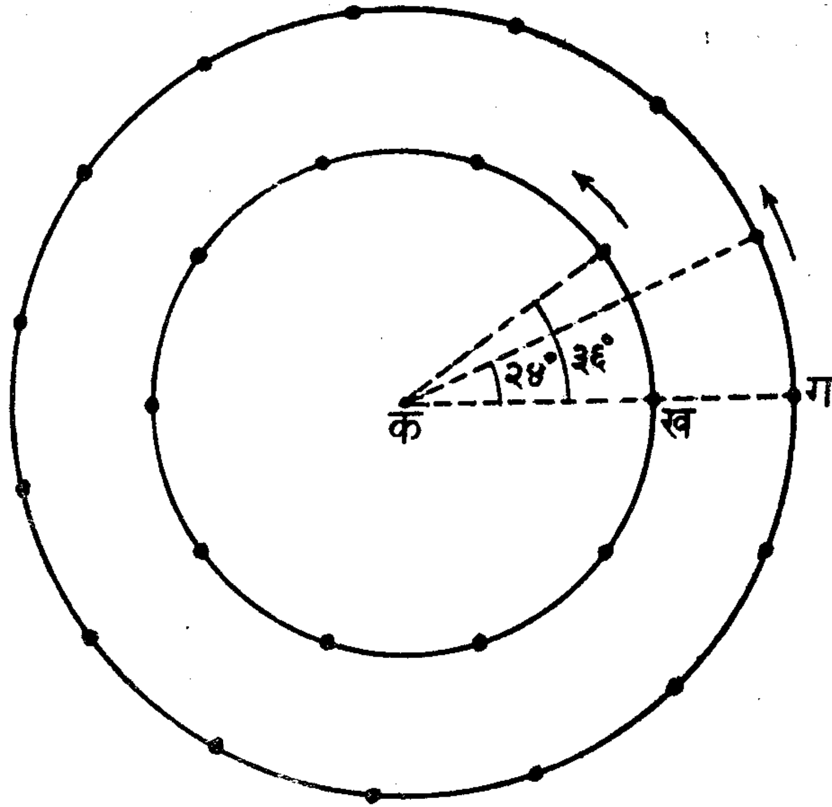
†काहो मनवोढ (१४) मनुयुग श्ख (७२) गतास्ते च (६) मनुयुग छ्ना (२७) च। कल्पादेर्युगपादा ग (३) च गुरु दिवसाच्च भारतात्पूर्वम् ।। ३ ।। आर्य-भटीय प्रथम पाद, बा० उदयनारायण सिंह द्वारा संपादित।

दूसरे आर्यभट का भी यही मत है; परन्तु ब्रह्मगुप्त भास्कराचार्य इत्यादि के गणित से जान पड़ता है कि इनको यह मत मान्य नहीं था, क्योंकि इन्होंने ग्रहों का स्थान जानने के लिए कल्प के आदि से गणना की है; परन्तु सूर्य सिद्धान्त ने सृष्टि के तैयार होने में जितना समय लगा है उसको ग्रह गणित में छोड़ दिया है।

पश्चाद्व्रजन्तोऽतिजवान्नक्षत्रैस्सततं ग्रहा: ।
नीयमानाश्च लम्बन्ते तुल्यमेव स्वमार्गगा: ।।२५।।
प्राग्गतित्वमतस्तेषां भगणै: प्रत्यहं गति: ।
परिणाहवशाद्भिन्ना: तद्वशाद्भानि भुञ्जते ।।२६।।
शीघ्रगस्स्वर्क्षमल्पेन कालेन महताऽल्पग: ।
तेषां तु परिवर्तेन पौष्णान्ते भगणास्स्मृत: ।।२७।।

अनुवाद—(२५) शीघ्रगामी नक्षत्रों के साथ सदैव पश्चिम की ओर चलते हुए ग्रह अपनी-अपनी कक्षा में समान परिमाण में हारकर पीछे रह जाते हैं; (२६) इसलिए वह पूर्व की ओर चलते हुए देख पड़ते हैं और कक्षाओं की परिधि के अनुसार उनकी दैनिक गति भी भिन्न देख पड़ती है; इसलिए नक्षत्र चक्र को भी यह भिन्न समय में अर्थात् (२७) शीघ्र चलनेवाले थोड़े समय में और कम चलने वाले बहुत समय में पूरा करते हैं। रेवती के अंत में पूरे होनेवाले चक्र को भगण कहते हैं ।।२५–२७।।

विज्ञान भाष्य—इन तीन श्लोकों में ग्रहों की गति का सिद्धान्त बतलाया गया है; इसलिए यह बड़े महत्व के श्लोक हैं। इनसे संक्षेप में यह पता चलता है कि भारत के प्राचीन ज्योतिषी ग्रहों के बारे में क्या विचार रखते थे। २५वें श्लोक में बतलाया गया है कि आकाश में जितने तारे देख पड़ते हैं वह सब ग्रहों के साथ पश्चिम की ओर जा रहे हैं; परन्तु नक्षत्रों के बहुत शीघ्र चलने के कारण ग्रह पीछे रह जाते हैं और इसीसे पूर्व की ओर चलते हुए देख पड़ते हैं। इनकी पूरब की ओर बढ़ने की चाल तो समान है, परन्तु इनकी कक्षाओं का विस्तार भिन्न होने से इनकी गति भी भिन्न देख पड़ती है। इसका रहस्य आगे के चित्र से प्रकट होगा—मान लीजिये कि दिये हुए चित्र में भीतरी वृत्त १० इंच का और बाहरी १५ इंच का है और मान लीजिये कि ख और ग स्थानों से, जो क केन्द्र की सीध में हैं दो चींटियां १ इंच प्रति सेकंड की चाल से भीतरी और बाहरी वृत्त की परिक्रमा करने को चलती हैं; तो यह स्पष्ट है कि बाहरी वृत्त पर चलनेवाली चींटी एक परिक्रमा १५ सेकंड में और भीतरी वृत्त पर चलने वाली चींटी एक परिक्रमा १० सेकंड में कर डालेगी। इससे यह सिद्ध हुआ कि समान रेखात्मक गति से चलने पर भिन्न-भिन्न आकार की कक्षा का चक्कर भिन्न-भिन्न समय में होगा। परन्तु २७वें श्लोक में



चित्र १

कहा गया है कि शीघ्र चलनेवाले ग्रह थोड़े काल में तथा मंद चलने वाले ग्रह अधिक काल में चक्कर पूरा करते हैं। यहाँ कुछ विरोध जान पड़ता है, परन्तु यह विरोध नहीं है; क्योंकि पहले श्लोक में जो समान गति बतलायी गई है वह योजनात्मक गति है और इस श्लोक में गति का मान कोणात्मक (Angular velocity) है। एक चक्कर ३६० अंशों का होता है; इसलिए बाहरी वृत्त का एक इंच, केन्द्र पर $\frac{३६०}{१५}$° = २४° का कोण बनाता है और भीतरी वृत्त का एक इंच $\frac{३६०}{१०}$ = ३६° का कोण बनाता है। इसलिए यद्यपि चींटियों की रेखात्मक (rectilinear) गति १ इंच प्रति सेकंड होने से समान है यद्यपि इनकी कोणात्मक गति प्रति सेकंड भिन्न है। बाहरी चींटी प्रति सेकंड २४° तथा भीतरी ३६° चलती है। इसलिए यह स्पष्ट है कि शीघ्र चलनेवाली कम समय में तथा मंद चलनेवाली अधिक समय में चक्कर पूरा करेगी।

२७वें श्लोक में भगण की परिभाषा भी दी गयी है। रेवती नक्षत्र के अंत से आरम्भ करके पूरब की ओर बढ़ता हुआ जब ग्रह एक चक्कर लगाकर फिर वहीं रेवती के अंत में आ जाता है तब वह एक भगण (नक्षत्र गण जो २७ हैं) पूरा करता है। इसलिए भगण को चक्कर भी कहते हैं।

इस सिद्धान्त के अनुसार यह मानना पड़ेगा कि ग्रहों की दूरी और उनके भगण-काल में एक विशेष सम्बन्ध है। जो ग्रह जितना ही दूर है उसका भगण काल (चक्कर लगाने का समय) उतना ही अधिक है। यह सम्बन्ध यहाँ बहुत संक्षेप में बतला दिया जाता है। इसकी पूरी व्याख्या भारतीय तथा पाश्चात्य ज्योतिषियों के सिद्धान्तों की तुलना करते हुए भूगोलाध्याय नामक बारहवें अध्याय में की जायगी।

जब सभी ग्रहों की रेखात्मक गतियाँ समान मान ली जायं तब यह सहज ही सिद्ध हो सकता है कि ग्रहों की दूरियों का परस्पर सम्बन्ध क्या है; क्योंकि यह जानना तो कुछ कठिन नहीं है कि कौन ग्रह कितने दिन में एक चक्कर लगा लेता है। जब यह मालूम हो गया कि शनि एक चक्कर स्थूल रीति से ३० वर्ष में लगाता है और सूर्य १ वर्ष में और दोनों की रेखात्मक गतियाँ समान हैं तब यह स्वयंसिद्ध है कि सूर्य की कक्षा की ३० गुनी शनि की कक्षा है; क्योंकि ३० वर्ष में सूर्य अपनी कक्षा का ३० गुना चलता है और शनि अपनी कक्षा को केवल एक ही बार पूरा कर पाता है। इसलिए शनि की कक्षा = ३० × सूर्य की कक्षा। अर्थात् पृथ्वी से शनि की दूरी, सूर्य की दूरी की ३० गुनी है। इसी प्रकार और ग्रहों की दूरी भी जानी जा सकती है।

आजकल की गवेषणाओं से जाना गया है कि ग्रहों की परस्पर दूरियों का सम्बन्ध इतना सरल नहीं है और न इनकी रेखात्मक गति ही समान है। अब तो यह सिद्ध होता है कि पृथ्वी से जितनी सूर्य की दूरी है उसका लगभग १० गुना शनि पृथ्वी से दूर है।

विकलानां कला षष्ट्या तत् षष्ट्या भाग उच्यते।
तत्त्रिंशता भवेद्राशिः भगणो द्वादशैव ते ॥ २८ ॥

अनुवाद—६० विकलाओं की एक कला, ६० कलाओं का एक भाग या अंश, ३० भागों या अंशों की एक राशि तथा १२ राशियों का एक भगण होता है ॥२८॥

विज्ञान भाष्य—यह कोण नापने की इकाइयां हैं। पूरे नक्षत्रचक्र को भगण कहते हैं। यदि इस चक्कर के १२ समान भाग किये जायं तो प्रत्येक भाग को राशि कहते हैं। राशि के तीसवें भाग को अंश, अंश के साठवें भाग को कला तथा कला के साठवें भाग को विकला कहते हैं। इनमें से भगण और राशि का प्रयोग तो केवल उस आकाश-स्थित चक्र के लिए होता है जिसके तल (plane) में सूर्य पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ देख पड़ता है और अन्य ग्रह इधर उधर कुछ हटकर परिक्रमा करते हैं। परन्तु अंश, कला और विकला का प्रयोग अन्य कोणों के नापने में भी किया जाता है। आजकल अंश को संक्षेप में लिखने की रीति यह है कि अंश का परिमाण बतलाने वाले अंक के ऊपर तनिक-सा दाहिने हटकर एक छोटा-सा वृत्त

लिख देते हैं, कला लिखने के लिए अंक के ऊपर कुछ दाहिने हटकर बायें हाथ को झुकती हुई एक टेढ़ी रेखा छोटी-सी खींच देते हैं और विकला के लिए उसी प्रकार की दो तिरछी रेखाएं खींच देते हैं; जैसे ५ अंश १६ कला और ५० विकला लिखना हो तो ५°१६′५०″ यों लिखते हैं।

कोण और समय नापने की इकाइयों में घनिष्ट सम्बन्ध है। सूर्य जितने समय में एक भगण पूरा करता है वह एक वर्ष, जितने समय में एक राशि चलता है वह एक मास, जितने समय में एक अंश चलता है वह एक दिन, जितने समय में एक कला चलता है वह एक घड़ी और जितने समय में एक विकला चलता है वह पल के प्रायः समान होता है।

युगे सूर्यज्ञशुक्राणां खचतुष्करदार्णवाः।
कुजार्किगुरुशीघ्राणां भगणाः पूर्वयायिनाम् ॥ २९ ॥
इन्दो रसाग्नि त्रित्रीषुसप्तभूधरमार्गणाः।
दस्त्रत्र्यष्टरसाङ्काक्षिलोचनानि कुजस्य तु ॥ ३० ॥
बुधशीघ्रस्य शून्यर्तुखाद्रित्र्यङ्कनगेन्दवः।
बृहस्पतेः खदस्राक्षिवेदषड्वह्नयस्तथा ॥ ३१ ॥
सितशीघ्रस्य षट्सप्तत्रियमाश्विखभूधराः।
शनेर्भुजङ्गषट्पञ्चरसवेदनिशाकराः ॥३२ ॥
चन्द्रोच्चस्याग्निशून्याश्विवसुसर्पार्णवा युगे।
वामं पातस्य वस्वग्नियमाश्विशिखिदस्रकाः ॥ ३३ ॥

अनुवाद—(२९) एक (महा) युग में पूर्वाभिमुख चलनेवाले सूर्य, बुध और शुक्र के ४३,२०,००० भगण, मंगल, शनि और वृहस्पति के शीघ्रों के भी उतने ही भगण, (३०), चन्द्रमा के ५,७७,५३,३३६ भगण, मंगल के २२,९६,८३२ भगण (३१) बुधशीघ्र के १७९,३७,०६० भगण, वृहस्पति के ३,६४,२२० भगण. (३२) शुक्रशीघ्र के ७०,२२,३७६ भगण, शनि के १,४६,५६८ भगण और (३३) चन्द्रोच्च के ४, ८८,२०३ भगण तथा बायीं (पच्छिम की) ओर चलने वाले चन्द्रपात के २,३२,२३८ भगण होते हैं ॥२९–३३॥

विज्ञान भाष्य—इस जगह यह बतला देना अच्छा होगा कि हमारे यहाँ संख्या लिखने की पुरानी परिपाटी क्या है। एक, दो, तीन, चार इत्यादि अंकों को पद्य में लिखने के लिए कुछ शब्द नियत कर लिये गये हैं। वही या उनके पर्याय पद्य में 'अंकानां वामतो गतिः' नियम के अनुसार क्रम से रख दिये जाते हैं अर्थात् इकाई के स्थान में लिखे जाने वाले अंक का सूचक शब्द पहले, फिर दहाई के स्थान में लिखे

जाने वाले अंक का सूचक शब्द, फिर सैकड़े के स्थान में लिखे जाने वाले अंक का सूचक शब्द क्रम से रख दिये जाते हैं। जैसे ३२५ कहना हुआ तो पहले ५ का सूचक कोई शब्द पंच, इषु, मार्गण इत्यादि लिखकर उसके पीछे २ का सूचक कोई शब्द द्वि, अश्वि, यम इत्यादि लिखा जाता है, फिर ३ का सूचक त्रि, अग्नि, शिखि इत्यादि लिखा जाता है। इस तरह ३२५ को हम पंचाश्विशिखि या इषुयमाग्नि लिख सकते हैं। सूर्य सिद्धान्त, ब्राह्मस्फुट-सिद्धान्त तथा सिद्धान्त-शिरोमणि में संख्याओं के लिखने की यही परिपाटी है। प्रथम आर्यभट के आर्यभटीय तथा दूसरे आर्यभट के महा-सिद्धान्त में संख्या लिखने की रीतियां इससे भिन्न हैं।

एक महायुग में ग्रहों के जितने भगण होते हैं वह सूर्य सिद्धान्त के अनुसार ऊपर दिये गये हैं। आर्यभट तथा ब्रह्मगुप्त के सिद्धान्तों के अनुसार महायुगीय भगणों के मानों में कुछ अंतर है तथा आजकल सूक्ष्मयंत्रों की सहायता से भगणों के जो मान जाने गये हैं वह भी किसी सिद्धान्त के अनुसार नहीं मिलते वरन् थोड़ी सी भिन्नता रखते हैं। अगले पृष्ठ में हम सूर्य सिद्धान्त, ब्रह्मगुप्त-सिद्धान्त तथा आधुनिक भगण-कालों के मान तुलनात्मक दृष्टि से देते हैं, जिनसे यह प्रकट होगा कि हमारे प्राचीन ज्योतिषियों के निकाले हुए भगण काल में और आजकल के सूक्ष्मयंत्रों के द्वारा निकाले हुए भगण काल में कितना कम अंतर है। जितने समय में किसी ग्रह का एक भगण या चक्कर पूरा होता है उसको भगण काल कहते हैं। इसके निकालने की रीति सिद्धान्त के अनुसार यह है कि एक महायुग में जितने भगण उस ग्रह के होते हैं उससे महायुग के सौर वर्षों में भाग दे दीजिये तो १ भगण काल (सौर वर्षों में) निकल आवेगा। अब इसको चाहे आप दशमलव भिन्न में लिखिये और चाहे सावन दिनों में। सावन दिनों में भगणकाल निकालने के लिए सबसे सुगम रीति यह है कि महायुग में जितने सावन दिन हों उनमें महायुगीय भगण का भाग दे दीजिये, जितनी लब्धि आवे वह सावन दिन है। शेष की घड़ी, पल, विपल इत्यादि बना लीजिये। जैसे १ घड़ी में ६० पल होते हैं वैसे ही १ पल में ६० विपल की तथा १ विपल में ६० प्रतिविपल की भी कल्पना की जा सकती है।

इन श्लोकों में जिन नये शब्दों का प्रयोग हुआ है वह हैं ग्रह-शीघ्र, चन्द्रोच्च और पात। इन शब्दों को समझने के लिए पहले हमको अपने ऋषियों की उन कल्पनाओं का ज्ञान होना चाहिये जिन्हें उन्होंने ग्रहों की चाल के सम्बन्ध में मान रखी थीं। उन्होंने पृथ्वी को अचल समझा था और सूर्य, चन्द्रमा, ग्रहों और नक्षत्रों को पृथ्वी की परिक्रमा करते हुए समझा था। परन्तु इतने से ही ग्रहों की गतियों का हिसाब ठीक-ठीक नहीं निकलता था; इसलिए उन्होंने ग्रहशीघ्रों की कल्पना की थी। वह यह तो देखते ही थे कि दो ग्रह बुध और शुक्र सूर्य के आसपास ही रहते हैं; इसलिए

ग्रहों के भगणकाल का कोष्टक

ग्रह	सूर्यसिद्धान्त के अनुसार				ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त के अनुसार				आधुनिक खोज के अनुसार			
	दिन	घड़ी	पल	विपल	दिन	घड़ी	पल	विपल	दिन	घड़ी	पल	विपल
रवि	३६५	१५	३१	३१.४	३६५	१५	३०	२२.५	३६५	१५	२२	५६.८७
चंद्र	२७	१९	१८	१.६	२७	१९	१८	० २५	२७	१९	१७	५८.८६६
चंद्रोच्च	३२३२	५	३७	१३.६	३२३२	४४	२	४५	३२३२	३४	३१	१४.०८८
चन्द्रपात या राहु	६७९४	२३	५९	२३.५	६७९२	१५	१४	१४.७	६७९८	१६	४४	२४.०००
बुध	८७	५८	१०	५५७	८७	५८	११	४३.७	८७	५८	९	२४.९८९
शुक्र	२२४	४१	५४	५०.६	२२४	४१	५२	३४.७	२२४	४२	२	४७.४८६
मंगल	६८६	५९	५०	५.८७	६८६	५२	५२	३३.७	६८६	५८	४६	२.५१८
गुरु	४३३२	१९	१४	२०.९	४३३२	१४	२४	१९.२	४३३२	३५	५	१७.४९
शनि	१०७६५	४६	२३	४.१	१०७६५	४८	५४	५१.२	१०७५९	१३	१०	५७.४९

—मराठी के भारतीय ज्योतिःशास्त्र पृ० २०३ से उद्धृत ।

इनका स्थान जानने के लिए सबसे पहले यह जानना चाहिये कि सूर्य कहाँ है। सूर्य का स्थान जान लेने पर यह निश्चय हो जाता है कि बुध सूर्य से या तो २८[1] अंश के लगभग आगे होगा या पीछे और शुक्र सूर्य से या तो ४७[2] अंश के लगभग आगे होगा या पीछे। इसीलिए २९वें श्लोक में सूर्य, बुध और शुक्र का महायुगीय भगण समान बतलाया गया है। परन्तु यह जानने के लिए कि बुध या शुक्र सूर्य से कितना आगे या पीछे है बिना इनके शीघ्रों या शीघ्रोच्चों के स्थानों के जाने काम नहीं चल सकता। इनके शीघ्रोच्चों के भगण काल उस समय के समान हैं जितने समय में आजकल के मतानुसार बुध या शुक्र सूर्य की परिक्रमा करते हैं। इसलिए बुध या शुक्र के शीघ्रोच्च के भगण काल से उस समय को समझना चाहिये जितने समय में यह नक्षत्र चक्र की परिक्रमा नहीं, वरन सूर्य की परिक्रमा करते हैं। मंगल, गुरु और शनि के शीघ्रोच्चों की बात उपर्युक्त दो ग्रहों के शीघ्रोच्चों से न्यारी है। इनके शीघ्रों का भगण काल वही माना गया है जो सूर्य का है। इसका अर्थ यह हुआ कि मंगल, गुरु और शनि के शीघ्रोच्च वह बिन्दु हैं जो १ वर्ष में पूरे नक्षत्र चक्र की परिक्रमा कर आते हैं। किन्तु सूर्य भी १ वर्ष में नक्षत्र चक्र की एक परिक्रमा कर लेता है; इसलिए मंगल, गुरु और शनि के शीघ्रोच्च सूर्य के पास ही रहते हैं। इन शीघ्रोच्चों के संबंध में दूसरे अध्याय में विशेष चर्चा की जायगी।

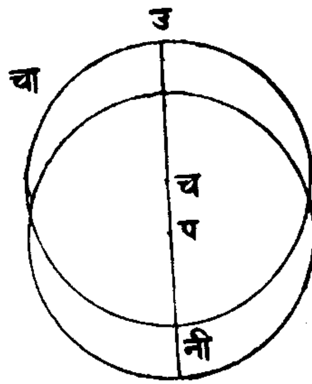
मन्दोच्च अथवा उच्च—ऊपर बतलाया गया है कि चन्द्रमा का उच्च एक महायुग में ४,८८,२०३ भगण करता है, इसलिए एक भगणकाल सूर्य सिद्धान्त के मत से ३२३२ सावन दिन, ५ घड़ी, ३७ पल और १३·६ विपल होता है। चन्द्रमा का उच्च चन्द्रकक्षा का वह बिन्दु है जो पृथ्वी से चन्द्र-कक्षा के अन्य विन्दुओं की अपेक्षा सबसे अधिक दूरी पर है। जब चन्द्रमा इस विन्दु पर रहता है तब बहुत दूर होने के कारण आकार से अत्यन्त छोटा देख पड़ता है और गति भी बहुत मंद होती है। चन्द्र-कक्षा में चन्द्रोच्च से १८०° पर एक विन्दु ऐसा भी है जो पृथ्वी के बहुत पास है। जब चन्द्रमा इस विन्दु पर आता है तब उसकी गति सबसे तीव्र हो जाती है और बहुत पास होने के कारण आकार भी बहुत बड़ा देख पड़ता है। चन्द्रमा की इस विषम गति के कारण यह सहज ही नहीं बतलाया जा सकता कि किसी समय उसका स्थान क्या होगा। ऊपर यह भी

---

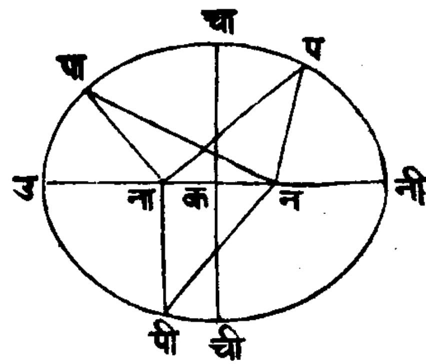
१. बुध का सूर्य से महत्तम अन्तर १६° १२' और २८° ४८' के बीच होता है।

२. शुक्र का सूर्य से महत्तम अन्तर ४७° से अधिक नहीं होता। (Outlines of Astronomy by Herschel pp. 281 and 291)

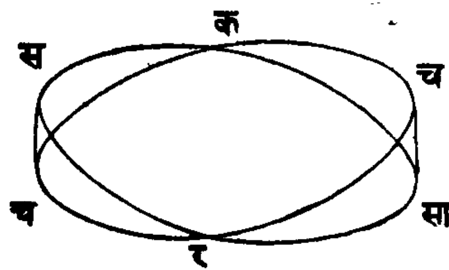
बतलाया गया है कि चन्द्रमा का भगण काल २७.३२१६७ मध्यम सावन दिन का होता है। इससे चन्द्रमा का जो स्थान निकलता है वह मध्यम स्थान कहलाता है। इस मध्यम-स्थान से चन्द्रमा कभी कुछ आगे और कभी कुछ पीछे देख पड़ता है। चन्द्रमा प्रत्यक्ष जिस स्थान पर देखा जाता है उसको स्पष्ट स्थान कहते हैं। मध्यम स्थान से स्पष्ट स्थान का सबसे अधिक अन्तर ५°२′ ३०″ होता है। इतने कोण की जो ज्या (sine) होती है उसी के समान अन्तर पर पृथ्वी से चन्द्र-कक्षा का केन्द्र माना गया है और चन्द्रमा इसी केन्द्र की परिक्रमा करता हुआ पृथ्वी के चारों ओर घूमता हुआ देख पड़ता है। चित्र २ में प पृथ्वी का केन्द्र है, च चन्द्र-कक्षा का केन्द्र है और पच



चित्र २



चित्र ३



चित्र ४

५°२′ ३०″ की ज्या है। चन्द्रमा उ चा नी वृत्त पर घूमता हुआ पृथ्वी की परिक्रमा करता है। यह स्पष्ट है कि जब चन्द्रमा उ पर होता है तब वह प से अत्यन्त अधिक दूरी पर रहता है और जब नी पर रहता है तब अत्यन्त निकट रहता है। उ को चन्द्रोच्च (apogee) तथा नी को नीच (perigee) कहते हैं। यह उ बिन्दु

आकाश में एक ही जगह स्थिर नहीं रहता वरन् मन्दमति से पूरब की ओर बढ़ता रहता है। चन्द्रमा का उच्च १ चक्कर प्रायः ३२३२ सावन दिनों में कर लेता है। अन्य ग्रहों के उच्च या मन्दोच्च और भी मंदगति से पूरब की ओर बढ़ते हैं। आज-कल इस कल्पना से काम नहीं लिया जाता। गणित से यह सिद्ध किया गया है कि चन्द्रमा पृथ्वी की और पृथ्वी तथा अन्य ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं और परिक्रमा करने का मार्ग वृत्ताकार नहीं वरन् दीर्घ-वृत्ताकार है। इस सम्बन्ध में कुछ कहने के पहिले दीर्घ-वृत्त के कुछ गुणों का बतला देना आवश्यक है। उ चा नी एक दीर्घ-वृत्त का चित्र है (चित्र ३)। उ नी को दीर्घ अक्ष तथा चा ची को लघु अक्ष कहते हैं और इन दोनों अक्षों के मिलने के विन्दु क को दीर्घ वृत्त का केन्द्र कहते हैं। केन्द्र पर लघु अक्ष तथा दीर्घ अक्ष के दो समान भाग हो जाते हैं। दीर्घ अक्ष पर केन्द्र से समान दूरी पर न ना दो ऐसे बिन्दु होते हैं जिनको यदि दीर्घ-वृत्त के किसी बिन्दु प, पा या पी से मिला दिया जाय तो प न+पना=पान+पाना=पीन+पीना। न, ना बिन्दुओं को दीर्घवृत्त की नाभि कहते हैं। यदि उ चा नी चन्द्र-कक्षा मान लिया जाय तो पृथ्वी का स्थान न होगा। न से चन्द्र कक्षा की दूरी उ बिन्दु पर सबसे अधिक तथा नी बिन्दु पर सबसे कम है, इसलिए उ विन्दु चन्द्रमा का उच्च या मन्दोच्च कहलायेगा और नी बिन्दु चन्द्रमा का नीच। यदि मन्दोच्च का स्थान ज्ञात हो तो नीच का स्थान सहज ही जाना जा सकता है, क्योंकि यह सदैव उच्च से १८०° पर रहता है।

इसी प्रकार पृथ्वी, मङ्गल, बुध, शुक्र इत्यादि भी दीर्घवृत्त में सूर्य की परिक्रमा करते हैं और सूर्य इन कक्षा-वृत्तों की नाभि पर रहता है। उच्च स्थान पर गति बहुत मंद और नीच स्थान पर बहुत तीव्र क्यों होती है, इसका कारण आकर्षण शक्ति की घटती-बढ़ती है। जब ग्रह उच्च पर रहता है तब उसका अंतर अत्यन्त अधिक होने के कारण आकर्षण शक्ति अत्यन्त कम होती है, जिससे ग्रह की गति मंद पड़ जाती है और जब वह नीच पर होता है तब अंतर अत्यन्त कम होने से आकर्षण शक्ति अत्यन्त अधिक होती है, जिससे ग्रह की गति बहुत तीव्र हो जाती है। इसके सम्बन्ध में कई नियम जाने गये हैं, जो केपलर के सिद्धान्त के नाम से प्रसिद्ध हैं; जिनकी चर्चा स्पष्टाधिकार नामक दूसरे अध्याय में उचित स्थान पर की जायगी।

पात—सूर्य जिस मार्ग पर चलता हुआ १ वर्ष में आकाश का चक्कर लगाता हुआ जान पड़ता है, उसको क्रान्ति-वृत्त कहते हैं। इसी तरह चन्द्रमा, जिस मार्ग पर चलता हुआ पृथ्वी की परिक्रमा लगाता है उसको चन्द्र-कक्षा कहते हैं। क्रान्ति-वृत्त और चन्द्र-कक्षा एक ही तल पर नहीं हैं और समानान्तर भी नहीं हैं; इसलिए यह दोनों कक्षाएँ एक दूसरे से दो विन्दुओं पर मिलती हुई जान पड़ती हैं; जैसे दो उड़ती हुई पतंगों की डोरियाँ एक दूसरी से बहुत दूर रहती हुई भी एक विन्दु पर मिलती

हुई जान पड़ती हैं और उन पतंगों की गतियों में भिन्नता होने से यह विन्दु एक ही दिशा में नहीं देख पड़ता। इन्हीं विन्दुओं को चन्द्रमा के पात कहते हैं। चन्द्रमा अपनी कक्षा में चलता हुआ आधे भ्रमण काल तक क्रान्तिवृत्त के उत्तर और आधे भ्रमण काल तक क्रान्तिवृत्त के दक्खिन रहता है। जब वह अपने पात पर पहुँचता है तब या तो वह क्रान्तिवृत्त से उत्तर की ओर बढ़ता है और/या दक्खिन की ओर। जिस पात पर पहुँच कर वह उत्तर की ओर जाता है उसे उत्तर पात (Ascending node) और जिस पात पर पहुँच कर वह दक्खिन की ओर जाता है उसे दक्खिन पात (Descending node) कहते हैं। उत्तर पात को राहु तथा दक्खिन पात को केतु भी कहते हैं। जब चन्द्रमा पूर्णमासी या अमावस्या के समय इन्हीं पातों के पास होता है तब चन्द्र-ग्रहण या सूर्य-ग्रहण लगता है; इसीलिए यह कल्पना हो गयी कि राहु और केतु राक्षस हैं, जो ग्रहण के कारण होते हैं। कुछ लोग पृथ्वी की छाया की नोक को राहु और चन्द्रमा की छाया की नोक को केतु मानते हैं; परन्तु यह भ्रम है।

इन पातों के स्थान भी स्थिर नहीं हैं वरन् पश्चिम की ओर खिसकते हुए जान पड़ते हैं। जितने समय में यह पश्चिम की ओर खिसकते हुए एक परिक्रमा कर लेते हैं उतने समय को इनका भगण-काल कहते हैं। इसी तरह अन्य ग्रहों के पातों के बारे में समझ लेना चाहिये। यह पश्चिम की ओर क्यों खिसकते हैं, इसका कारण भौतिक ज्योतिर्विज्ञान (Physical Astronomy) में बहुत ही सूक्ष्मगणित के द्वारा समझाया गया है, जो उचित स्थान पर इस विज्ञान भाष्य में भी समझाया जायगा। चित्र ४ में यदि स र सा क को सूर्य का मार्ग अर्थात् क्रान्तिवृत्त समझा जाय और च र चा क को चन्द्रकक्षा तो र और क विन्दु चन्द्रमा के पात कहलाते हैं। चन्द्रमा तीर की दिशा में भ्रमण करता हुआ जब र पात से आगे बढ़ता है तब क्रान्तिवृत्त से उत्तर हो जाता है और र चा क भाग तक उत्तर रहता है, इसलिए र पात को उत्तर पात कहते हैं। क विन्दु पर पहुँच कर चन्द्रमा क्रान्तिवृत्त से दक्खिन जाता है, इसलिए क दक्खिन पात कहा जाता है। भारतीय ज्योतिषी चन्द्रमा के उत्तर पात को राहु तथा दक्षिण पात को केतु कहते हैं। चा र सा कोण क्रान्तिवृत्त और चन्द्रकक्षा के तलों के बीच का कोण है, जिसका मान ५° के लगभग है। इसी कोण को चंद्रमा का विक्षेप कहते हैं, जिसकी चर्चा इसी अध्याय के ६८वें श्लोक में की गयी है।

यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि ऊपर जो भगण काल दिये हुए हैं वह कैसे जाने गये और भिन्न-भिन्न मतों में अन्तर क्यों है। इसका उत्तर भास्कराचार्य जी के मतानुसार यों है :—

सातु तत्तद्भाषाकुशलेन तत्तत् क्षेत्रसंस्थानज्ञेन श्रुत गोलेनैव श्रोतुं शक्यते, नान्येन। ग्रह मन्द शीघ्रोच्च पाताः स्व स्वमार्गेषु गच्छन्तः एतावतः पर्य्ययान् कल्पे

कुर्व्वन्तीत्यत्रागम एव प्रमाणम् । स चागमो महता कालेन लेखकाध्यापकाध्येतृ दोषैर्बहुधा जातः; तदा कतमस्य प्रामाण्यम् ? अथ यद्येवमुच्यते गणितस्कन्ध उपपत्तिमानेवागमः प्रमाणम् । उपपत्त्या ये सिध्यन्ति भगणास्ते ग्राह्याः । तदपि न । यतोऽतिप्राज्ञेन पुरुषेणोपपत्तिर्ज्ञातुमेव शक्यते । न तया तेषां भगणानामियत्ता कर्त्तुं शक्यते; पुरुषायुषोऽल्पत्वात् । उपपत्तौ तु ग्रहः प्रत्यहं यन्त्रेण वेध्यः, भगणान्तं यावत् । एव शनैश्चरस्य तावद्वर्षाणां त्रिंशता भगणः पूर्य्यते । मन्दोच्चानान्तु वर्षशतैरनेकैः । अतो नायमर्थः पुरुषसाध्य इति । अत एवातिप्राज्ञा गणकाः साम्प्रतोपलब्ध्यनुसारिणं प्रौढ़गणकस्वीकृतं कमप्यागममङ्गीकृत्य ग्रहगणित आत्मनो गणितगोलयोर्निरतिशयं कौशलं दर्शयितुं तथाऽन्यैर्भ्रान्ति ज्ञानेनान्यथोदितानर्थांश्च निराकर्त्तुमन्यान् ग्रन्थान् रचयन्ति । ग्रह गणित इति कर्तव्यतायामस्माभिः कौशलं दर्शनार्यं भवत्वागमो योऽपिको ऽप्ययमाशयस्तेषाम् ।*

अर्थ—किन्तु यह रीति केवल वही जान सकता है जिसने (ज्योतिःशास्त्र की) विशेष भाषा में कुशलता प्राप्त की हो, नक्षत्रादि के स्थानों को जानता हो और जिसने भूगोल खगोल के बारे में अच्छी तरह सुना हो । अपने अपने मार्गों में जाते हुए ग्रह, मन्दोच्च, शीघ्रोच्च तथा पात एक कल्प में इतने भगण करते हैं, इसका प्रमाण आगम अर्थात् परम्परागत ज्ञान ही है । किन्तु अधिक समय बीतने के कारण लेखकों, अध्यापकों तथा पढ़ने वालों की भूल से आगम अनेक हो गये हैं ! इसलिए प्रश्न होता है कि कौन-सा आगम प्रमाण माना जाय । यदि ऐसा कहा जाय कि जो आगम गणित के अनुसार खरा सिद्ध हो उसी को प्रमाण मानकर जो भगण निकले वही माने जायँ तो यह भी ठीक नहीं है । क्योंकि अत्यन्त ज्ञानी पुरुष भी केवल रीति के ही जानने में समर्थ हो सकता है; परन्तु रीति से ग्रहों के भगण की संख्या नहीं निकाल सकता । कारण यह है कि मनुष्य की आयु बहुत थोड़ी होती है और उपपत्ति जानने के लिए ग्रह को प्रतिदिन वेध करना होता है, जब तक कि भगण पूरा न हो । इस तरह शनिश्चर का एक भगण ३० वर्षों में पूरा होता है । मन्दोच्चों के भगण तो अनेक शताब्दियों में पूरे होते हैं । इसलिए यह कार्य पुरुषसाध्य नहीं है । इसलिए बुद्धिमान गणक किसी ऐसे आगम को मानकर जो उस समय ठीक समझा जाता हो और जिसको प्रतिष्ठाप्राप्त गणक ने स्वीकार कर लिया हो, अपनी गणित तथा गोल सम्बन्धी ग्रहों की गणना की कुशलता दिखाने के लिए तथा भ्रमवश जो कुछ अनर्थकारी दोष आ गये हैं उनके दूर करने के लिए, दूसरे ग्रंथ बनाते हैं । उनका यह अभिप्राय है कि हमको ग्रहों की ठीक गणना करने में कुशलता दिखानी चाहिये, आगम चाहे जो हो ।

---

*सिद्धान्त शिरोमणि गणिताध्याय पृ० १६-१७ (कलकत्ते का छपा । द्वितीय संस्करण)

सूर्य, बुध और शुक्र के भगण के सम्बन्ध में भास्कराचार्य जी कहते हैं कि कल्प में जितने वर्ष होते हैं उतने ही सूर्य के भगण होते हैं। इसलिए सूर्य का भगण काल ही वर्ष है। बुध और शुक्र रवि के पास कभी कुछ आगे और कभी कुछ पीछे सदा अनुचर की तरह रहते हैं। इसलिए इनके भगण भी रवि भगण के समान हुए।

सूर्य का भगण काल जानने के लिए यह युक्ति बतलायी गयी है—

समतल भूमि में एक वृत्त खींचकर उसमें दिशाओं के चिह्न लगा लो। जब सूर्य उत्तरायण हो तब जिस दिन वह पूर्व दिशा से कुछ ही दक्षिण होकर उदय हो उस दिन वृत्त के मध्य में गड़ी हुई कील के द्वारा उदय होते हुए सूर्य को बेध लो। इसके बाद एक वर्ष तक सूर्य के उदय की गणना करनी चाहिये। एक वर्ष में ३६५ बार उदय होगा। अन्तिम उदय पहले दिन के उदय-स्थान के कुछ दक्षिण होगा। इन दोनों में अन्तर हो वह लिख लो। दूसरे दिन फिर उदय होते हुए सूर्य को बेध करो। इस दिन यह पूर्व दिशा से कुछ उत्तर हो कर उदय होगा। पिछले दिन के उदय स्थान से कितना उत्तर होकर उदय होता है इसको भी जान लो। फिर अनुपात के द्वारा यह जान लो कि जब ६० घड़ी में इतना उत्तर बढ़ता है तब पहला अन्तर कितने समय में हुआ होगा। इस प्रकार १५ घड़ी ३० पल २२ विपल ३० प्रति-विपल और ३६५ सावन दिनों में सूर्य का उदय उसी स्थान पर होता है जिस स्थान पर वर्ष के आरम्भ में हुआ था। इसलिए यही समय सूर्य का भगण काल हुआ। फिर अनुपात के द्वारा यह जान लो कि जब १ वर्ष में उतने सावन दिन होते हैं तब १ कल्प वर्षों में कितने सावन दिन होते हैं, इत्यादि।

आजकल वसन्त-सम्पात जानने के लिए जो रीति काम में लायी जाती है उससे भास्कराचार्य जी की बतलायी हुई रीति बहुत कुछ मिलती है। अन्तर यह है कि भास्कराचार्य जी ने क्षितिजवृत्त पर बेध करने को कहा है और आजकल यामोत्तर-वृत्त पर बेध किया जाता है, जिससे लम्बन और प्रकाश वक्रीभवन के कारण कोई भूल नहीं हो सकती; दूसरा अंतर यह पड़ता है कि आजकल के यन्त्र बहुत सूक्ष्म हैं पर भास्कराचार्य की बतलायी हुई रीति में कोरी आँख से ही काम लिया गया है।

चन्द्र भगण की उपपत्ति भी गोल यन्त्र के द्वारा जिसमें नक्षत्र-चक्र, क्रान्तिवृत्त, विषुवद्वृत्त, चंद्रकक्षा, ग्रहकक्षा इत्यादि बने रहते हैं, बेध करके जानना चाहिये। इसका वर्णन बहुत विस्तार के साथ करने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। यह केवल इसलिए लिखा गया है कि प्राचीन ज्योतिषी भी बेध के द्वारा ग्रन्थ में दी हुई बातों की परीक्षा करते थे और जो ठीक निकलता था उसी को मानते थे।

चन्द्रोच्च का भगणकाल जानने की रीति

प्रतिदिन गोल यंत्र के द्वारा चंद्रमा का बेध करके स्पष्ट गति निकालनी चाहिये। जिस दिन गति सबसे कम हो उस दिन मध्यम और स्पष्ट चन्द्रमा के स्थानों में अंतर नहीं होता। यही चंद्रमा के उच्च का स्थान है। इसी प्रकार प्रतिदिन वेध करते-करते जब चन्द्रमा की गति फिर परम अल्प हो तब उसी स्थान को उच्च समझना चाहिये। यह स्थान पहले स्थान से कुछ आगे रहता है। कितना आगे हो जाता है यह जानकर अनुपात के द्वारा यह गणित कर लेना चाहिये कि उच्च की दैनिक गति कितनी होती है तथा एक भगण काल कितने दिन में पूरा होता है।

चन्द्रपात का भगण काल जानने की रीति—प्रति दिन चन्द्रमा का बेध करते हुए यह देखना चाहिये कि किस दिन चन्द्रमा का दक्षिण विक्षेप कम होते-होते शून्य हो जाता है। जिस समय विक्षेप शून्य हो उस समय चन्द्रमापात स्थान पर होता है। इसी प्रकार जब दूसरे चक्कर में चंद्रमा का दक्षिण विक्षेप कम होते-होते शून्य हो जाय तब समझना चाहिये कि वह अपने पात पर पहुँच गया। दूसरी बार पात का स्थान पहले स्थान से कुछ पश्चिम होता है, इसीलिए यह कहा जाता है कि पात की गति विलोम होती है अर्थात् पश्चिम की ओर होती है। फिर अनुपात के द्वारा जानना चाहिये कि जब इतने दिन में पात इतना चलता है तो एक दिन में कितना चलेगा। यही पात की दैनिक गति समझनी चाहिये। इसी प्रकार यह भी जानना चाहिये कि एक कल्प में कितने भगण होते हैं।

मंगल, गुरु और शनि के शीघ्रोच्चों के सम्बन्ध में—जब सूर्य, शनि, गुरु या मंगल से आगे रहता है तब ग्रह मध्यम स्थान से कुछ आगे रहते हैं और जब सूर्य पीछे रहता है तब ग्रह मध्यम स्थान से पीछे रहते हैं; इसलिए विद्वानों ने यह कल्पना की कि इन तीनों के शीघ्रोच्च सूर्य के साथ ही रहते हैं और ग्रहों को अपनी ओर अर्थात् सूर्य की ओर आकर्षित करते हैं; इसलिए इनके शीघ्रोच्चों के भगण सूर्य के समान होते हैं।

भानामष्टाक्षिवस्वद्रित्रिद्विद्विघ्नष्ट्शरेन्दवः।
भोदया भगणैः स्वैः स्वैरूनाः स्वस्वोदया युगे ॥३४॥

अनुवाद—1 महायुग में नक्षत्रों के १,५८,२२,३७,८२८ भगण होते हैं। किसी ग्रह के महायुगीय भगण को नक्षत्र के महायुगीय भगण में से घटा देने से जो बचता है उतने ही बार एक महायुग में वह ग्रह पूर्व क्षितिज में उदय होता है ॥३४॥

विज्ञान भाष्य—१२वें श्लोक के विज्ञान भाष्य में नाक्षत्र-अहोरात्र की परिभाषा दी गयी है। एक नाक्षत्र-अहोरात्र में तारे पश्चिम की ओर चलते हुए एक

परिक्रमा कर लेते हैं। इसी परिक्रमा को नाक्षत्र भगण कहते हैं। इसलिए एक महायुग में जितने नाक्षत्र भगण होते हैं उतने ही नाक्षत्र-अहोरात्र होते हैं।

ऊपर के श्लोक के पिछले भाग में यह जानने की रीति बतलायी गयी है कि एक महायुग में कौन ग्रह कितने बार पूर्वक्षितिज में उदय होता है। एक महायुग में ग्रह के जितने भगण होते हों उसको एक महायुग के नाक्षत्र भगण की संख्या से घटा दो; शेष जो संख्या होगी उतने ही बार वह ग्रह एक महायुग में पूर्व-क्षितिज में उदय होगा। मान लो कि यह जानना है कि सूर्य पूर्व-क्षितिज में एक महायुग में कितनी बार उदय होता है। २९वें श्लोक में बतलाया गया है कि सूर्य एक महायुग में ४३,२०,००० भगण करता है। इसको यदि महायुगीय नाक्षत्र भगण १,५८,२२,३७,८२८ में से घटा दिया जाय तो शेष १,५७,७९,१७,८२८ होता है। इतने ही बार सूर्य पूर्व क्षितिज में एक महायुग में उदय होता है। परन्तु १२वें श्लोक के विज्ञान-भाष्य में यह बतलाया गया है कि सूर्य के एक उदय से दूसरे उदय तक के समय को सावन दिन कहते हैं। इसलिए ३४वें श्लोक के अनुसार १ महायुग में १,५७,७९,१७,८२८ सावन दिन होते हैं।

इसी तरह और ग्रहों के उदय की संख्या भी जानी जा सकती है। इसकी उपपत्ति यह है:—यदि किसी दिन सूर्य किसी तारे के साथ उदय हो तो दूसरे दिन वह तारा सूर्य से कोई ३ मिनट ५६ सेकंड पहले उदय होता है। क्योंकि इतने समय में सूर्य कोई एक अंश पूर्व की ओर चला जाता है। तीसरे दिन वह तारा सूर्य से ३ मिनट ५६ सेकंड के दूने समय अर्थात् ७ मिनट ५२ सेकंड पहले उदय होगा, चौथे दिन उसके तिगुने समय पहले और १६वें दिन उसके १५गुने समय पहले अर्थात् ५९ मिनट वा १ मिनट कम १ घंटा पहले वह तारा उदय होगा। इस तरह पिछड़ते पिछड़ते ३६१वें दिन अर्थात् ३६० नाक्षत्र दिन बाद वह तारा सूर्य से २४ मिनट कम २४ घंटे पहले और ३६६ नाक्षत्र दिन बाद पूरे २४ घंटे अर्थात् १ दिन पहले उदय होगा जब कि सूर्य और वह तारा फिर साथ हो जावेंगे। इसलिए जितने समय में नक्षत्र ३६६ भगण करता है उतने समय में सूर्य १ बार कम उदय होता है और एक भगण पूरा करता है। इसलिए सूर्य एक भगण काल में (१ सौर वर्ष में) ३६६—१ बार उदय होता है। इसी प्रकार अन्य ग्रहों के उदय के बारे में समझना चाहिये।

भवन्ति शशिनो मासाः सूर्येन्दुभगणान्तरम्।
रविमासोनितास्ते तु शेषाः स्युरधिमासकाः ॥३५॥

अनुवाद—सूर्य और चन्द्रमा के महायुगीय भगणों का जो अंतर होता है

उतने ही चान्द्र मास एक महायुग में होते हैं। एक महायुग में जितने सौर मास होते हैं उनकी संख्या को महायुगीय चान्द्र मासों की संख्या से घटा देने पर शेष अधिमासों की संख्या होती है ।।३५।।

विज्ञान भाष्य—जिस समय सूर्य और चन्द्रमा की युति होती है उस समय को अमावस्या कहते हैं। इस समय चन्द्रमा और सूर्य बहुत पास होते हैं। एक अमावस्या से दूसरी अमावस्या तक के समय को चान्द्र-मास कहते हैं। इसलिए यदि यह जानना हो कि एक महायुग में कितने चान्द्र मास होते हैं तो पहले यह जानना चाहिये कि एक महायुग में सूर्य और चन्द्रमा की युति कितने बार होती है। इसके लिए सूर्य और चन्द्रमा के महायुगीय भगणों का अंतर निकाल लेना पर्याप्त है। क्योंकि यह बात सहज ही जानी जा सकती है कि यदि दो लड़के किसी गोल मैदान का चक्कर लगाने लगें और यदि एक लड़का घन्टे में ५ चक्कर लगाता हो और दूसरा ३ तो दोनों यदि एक ही स्थान से एक ही समय दौड़ना आरंभ करें तो घन्टे भर में दोनों लड़के ५—३=२ बार एक दूसरे से मिलेंगे। इसके लिए घड़ी की घण्टा और मिनट बतलाने वाली सुइयों की चाल का उदाहरण बहुत उपयुक्त है। बारह बजे दोनों सुइयाँ एक दूसरे से मिली रहती हैं अर्थात् दोनों की युति रहती है। इसके बाद दोनों चक्कर लगाना आरम्भ करती हैं और १ बज कर ५$\frac{५}{११}$ मिनट पर पहले पहल मिलती हैं। दूसरी बार वे २ बज कर १०$\frac{१०}{११}$ मिनट पर, तीसरी बार ३ बज कर १६$\frac{४}{११}$ मिनट पर, चौथी बार ४ बज कर २१$\frac{९}{११}$ मिनट पर, पांचवीं बार ५ बज कर २७$\frac{३}{११}$ मिनट पर, छठी बार ६ बज कर ३२$\frac{८}{११}$ मिनट पर, सतवीं बार ७ बज कर ३८$\frac{२}{११}$ मिनट पर, आठवीं बार ८ बज कर ४३$\frac{७}{११}$ मिनट पर, ९ वीं बार ९ बज कर ४९$\frac{१}{११}$ मिनट पर दसवीं बार १० बज कर ५४$\frac{६}{११}$ मिनट पर और ११ वीं बार ठीक बारह बजे मिलेंगी। इन ग्यारह युतियों के लिए मिनट वाली सुई को १२ चक्कर और घण्टे वाली सुई को १ चक्कर लगाना पड़ा। इसलिए युतियों की संख्या दोनों के चक्करों का अंतर (१२—१) हुई। इसी प्रकार महायुगीय चांद्र-मासों को संख्या

=महायुगीय चन्द्र-भगण—महायुगीय सूर्य-भगण

=५,७७,५३,३३६—४३,२०,०००

=५,३४,३३,३३६

अधिमास—मासों की गणना चान्द्र मास से और वर्षों की गणना सौर वर्ष से होती है। एक सौर वर्ष में १२ सौर मास तथा ३६५·२५८७५ मध्यम सावन दिन होते हैं परन्तु १२ चांद्रमास ३५४·३६७०५ मध्यम सावन दिन का होता है; इसलिए

१२ चान्द्रमासों का वर्ष सौर वर्ष से १०·८९१७० मध्यम सावन दिन छोटा होता है; इसलिए कोई तैंतीस महीने में यह अन्तर एक चान्द्रमास के समान हो जाता है। जिस सौर वर्ष में यह अंतर १ चांद्रमास के समान हो जाता है उस सौर वर्ष में १३ चांद्रमास होते हैं। तब एक चान्द्रमास अधिमास या मलमास के नाम से छोड़ दिया जाता है। यदि ऐसा न किया जाय तो चांद्र मास के अनुसार मनाये जानेवाले त्योहार, पर्व इत्यादि भिन्न-भिन्न ऋतुओं में मुसलमानी त्यौहारों की तरह पड़ने लगें। ऊपर के श्लोक में यह बतलाया गया है कि एक महायुग में जितने सौरमास होते हैं उनसे चांद्रमासों की संख्या जितनी अधिक हो उतने ही चांद्रमास अधिमास के नाम से छोड़ दिये जायँगे। इसलिए एक महायुग में अधिमासों की संख्या।

=महायुगीय चांद्रमास—महायुगीय सौरमास

=(५,३४,३३,३३६—४३,२०,०००)×१२

=१५,९३,३३६

सावनाहानि चान्द्रेभ्यो द्युभ्यः प्रोज्झ्य तिथिक्षयाः।
उदयादुदयं भानोर्भूमिसावनवासराः॥ ३६॥

अनुवाद—एक महायुग में जितनी चान्द्र तिथियाँ होती हैं उस संख्या में से महायुग के सावन दिनों की संख्या घटाने से उन तिथियों की संख्या निकल आती है जो क्षय होती है अर्थात् जिनकी गणना नहीं की जाती। सूर्य के एक उदय से दूसरे उदय के बीच के समय को भूमिसावन दिन कहते हैं॥३६॥

विज्ञान भाष्य—एक चांद्रमास में ३० तिथियाँ होती हैं इसलिए यदि महायुगीय चांद्रमासों की संख्या को ३० से गुणा कर दिया जाय तो एक महायुग में कितनी तिथियाँ होती हैं यह मालूम हो जाय। यह पहले ही बतलाया गया है कि एक महायुग में कितने सावन दिन होते हैं और एक सावन दिन में एक ही तिथि की गणना होती है, इसलिए सावन दिनों की संख्या से तिथियों की संख्या जितनी अधिक होती हैं उतनी तिथियों की गणना नहीं की जाती; इसलिए यह क्षय या अवम तिथियाँ कहलाती हैं।

इस श्लोक के उत्तरार्द्ध की व्याख्या कई बार की जा चुकी है। यहाँ केवल यह अधिक बतलाया गया है कि सावन दिन को भूमिसावन दिन भी कहते हैं।

वसुद्व्यष्टाद्रिरूपाङ्कसप्ताद्रितिथयो युगे।
चान्द्राः खाष्टखखव्योमखाग्निखर्तुनिशाकराः॥३७॥
षड्वह्नित्रिहुताशाङ्कतिथयश्चाधिमासकाः।
तिथिक्षया यमार्थाश्विद्व्यष्टव्योमशराश्विनः॥३८॥

खचतुस्कसमुद्राष्टकुपञ्च रविमासकाः ।
भवन्ति भोदया भानुभगणैरूनिताः कहाः ॥३९॥

अनुवाद—(३७) एक महायुग में १,५७,७९,१७,८२८ सावन दिन; १,६०,३०,००,०८० चान्द्र दिन अर्थात् तिथियाँ; (३८) १५,९३,३३६ अधिमास; २,५०,८२,२५२ क्षय तिथियाँ तथा (३९) ५,१८,४०,००० सौर मास होते हैं। नक्षत्र के उदय में से सूर्य के भगण की संख्या घटाने से भूमिसावन दिन होते हैं ॥३७-३९॥

विज्ञान भाष्य—इन श्लोकों में जो संख्याएँ दी गयी हैं वह इनसे पहले के तीन श्लोकों के उदाहरण हैं।

ऊपर जो महायुगीय अंक दिये गये हैं वह सब सिद्धान्तों में एक से नहीं हैं। थोड़ा बहुत अन्तर पाया जाता है। एक महायुग में सावन दिनों की संख्या भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों में जैसी मिलती है वह नीचे की सारिणी से सहज ही जानी जा सकती है :—

प्रचलित सूर्य सिद्धान्त के मत से १,५७,७९,१७,८२८
पंचसिद्धान्ति के सूर्य सिद्धान्तके मत से १,५७,७९,१७,८००
आर्यभटीय के मत से १,५७,७९,१७,५००
ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त, सिद्धान्त शिरोमणि के मत से १,५७,७९,१६,४५०
महासिद्धान्त के मत से १,५७,७९,१७,५४२

अधिमासोनरात्र्यर्क्षचान्द्रसावनवासराः ।
एते सहस्रगुणिताः कल्पे स्युर्भगणादयः ॥४०॥

अनुवाद—अधिमासों, अवम तिथियों, नाक्षत्र, चान्द्र और सावन दिनों तथा ग्रहों के भगणों की जो संख्याएँ (बतलायी गयी) हैं उनका एक हजार गुना कर देने से कल्प की संख्याएँ निकल आती हैं ॥ ४० ॥

विज्ञान भाष्य—१००० महायुगों का एक कल्प होता है इसलिए महायुगीय भगण इत्यादि की संख्याओं को १००० से गुणा कर देने पर कल्प की संख्याएँ जानी जा सकती हैं।

प्राग्गतेस्सूर्यमन्दस्य कल्पे सप्ताष्टवह्नयः ।
कौजस्य वेदखयमा बुधस्याष्टर्तुवह्नयः ॥४१॥
खखरन्ध्राणि जैवस्य शौक्रस्यार्थगुणासवः ।
गोऽग्नयश्शनिमंदस्य पातानामथ वामतः ॥४२॥

मनुदस्रास्तु कौजस्य बौधस्याष्टाष्टसागराः ।
कृताद्रिचन्द्रा जैवस्य त्रिखाङ्काश्च भृगोस्तथा ।।४३।।
शनिपातस्य भगणाः कल्पे यमरसर्तवः ।
भगणाः पूर्वमेवाऽत्र प्रोक्ताः चन्द्रोच्चपातयोः ।।४४।।

अनुवाद—(४१) पूर्व की ओर चलते हुए एक कल्प में सूर्य का मन्दोच्च ३८७ भगण, मङ्गल का मन्दोच्च २०४ भगण, बुध का मन्दोच्च ३६८ भगण, (४२) वृहस्पति का मन्दोच्च ९०० भगण, शुक्र का मन्दोच्च ५३५ भगण और शनि का मन्दोच्च ३९ भगण करता है। पातों की गति पश्चिम की ओर को होती है। एक कल्प में मङ्गल का पात २१४ भगण, बुध का पात ४८८ भगण, वृहस्पति का पात १७४ भगण, शुक्र का पात ९०३ भगण और (४४) शनि का पात ६६२ भगण करता है। चन्द्रमा के उच्च और पात के भगणों की संख्या पहले (३३वें श्लोक में) बतलायी जा चुकी है।

विज्ञान भाष्य—ग्रहों के मन्दोच्चों और पातों की गति बहुत सूक्ष्म होती है। इनमें से कोई भी १ महायुग में १ पूरा चक्कर नहीं कर पाते, इसलिए इनकी संख्या कल्प के अनुसार दी गयी है।

मन्दोच्च और पात किसे कहते हैं इसका विवेचन चन्द्रमा के उच्च और पात के साथ किया गया है। यह संस्थाएँ कैसे जानी गयीं, इसका स्पष्ट प्रमाण कहीं नहीं मिलता; परंतु इसमें संदेह नहीं कि इसकी जानकारी बहुत काल के पर्यवेक्षण से की गयी होगी। कुछ पाश्चात्य विद्वान कहते हैं कि इसका ज्ञान भारतीय ज्योतिषियों को यूनानियों से हुआ होगा; परंतु यह उनका भ्रम है जैसा कि नीचे की सारिणी से जान पड़ेगा। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि इन भगणों की संख्या आजकल के सूक्ष्मयंत्रों से जाने गये अंकों से बहुत भिन्न है।

आधुनिक ग्रन्थों में इन मन्दोच्चों और पातों की वार्षिक गति दी हुई है; इसलिए सूर्य सिद्धान्त के कल्पीय भगणों से वार्षिक गति का मान निकाल कर तुलना की जा सकती है। वार्षिक गति इस प्रकार निकाली गयी :—कल्प में जितने भगण होते हैं उसको कल्प के सौर-वर्ष से भाग दे दिया गया तो भगण की एक भिन्न संख्या प्राप्त हुई। इसको ३६० से गुणा करने पर अंश, अंश को ६० से गुणा करने पर कला और कला को ६० से गुणा करने पर विकला में वार्षिक गति निकल आयी। जैसे सूर्य-मन्दोच्च एक कल्प में ३८७ भगण करता है तो एक वर्ष में वह

$$\frac{३८७ \times ३६० \times ६० \times ६०}{४३२००००००} \text{ विकला अर्थात् } \frac{११६१}{१००००} \text{ विकला अर्थात् } ·११६१$$

विकला चलेगा।

इसी प्रकार अन्य ग्रहों के मन्दोच्चों तथा पातों की वार्षिक गति विकला में जानी जा सकती है।

इस सारिणी के जिन अंकों के पहले धन का चिह्न (+) है उससे यह प्रकट होता है कि गति पूर्व की ओर है और जिन अङ्कों के पहले ऋण का चिह्न (−) है उससे प्रकट होता है कि गति पश्चिम की ओर है।

दूसरे स्तम्भ में जो अंक दिये गये हैं वह सायन-मेष के विचार से दिये गये हैं अर्थात् उनसे यह प्रकट होता है कि सायन-मेष से (वसंत सम्पात से) ग्रहों के मन्दोच्चों और पातों का अन्तर प्रति वर्ष कितना होता जाता है।

परन्तु सायन-मेष चल है। यह प्रति वर्ष ५०·२६ विकला पच्छिम की ओर हटता जाता है; इसलिए यदि निरयन-मेष से जो स्थिर है मन्दोच्चों और पातों का वार्षिक अन्तर जानना हो तो दूसरे स्तम्भ के अंकों से ५०.२६ विकला घटा देना चाहिये। ऐसा करने से जो अन्तर आवेंगे वह निरयन-मेष से मन्दोच्चों और पातों के वार्षिक अन्तर होंगे। ऐसा करने से देखा जाता है कि शुक्र के मन्दोच्च की गति पश्चिम की ओर है अर्थात् शुक्र का मन्दोच्च तारों के मध्य पूर्व न जाकर पश्चिम की ओर खिसक रहा है। हमारे व्यावहारिक ज्योतिष ग्रन्थों में अयन चलन ६० विकला माना गया है। क्योंकि हमारा वर्षमान वास्तविक नाक्षत्र-वर्ष से ८॥ विकला अधिक है; इसलिए यदि वसंत सम्पात की वार्षिक गति ६० विकला मानी जाय और दूसरे स्तम्भ में जो अंक दिये गये हैं उनमें से ६० विकला घटायी जाय तो जो अन्तर आता है वही चौथे स्तम्भ में लिखा गया है। इस स्तम्भ में जो अंक आये हैं उनकी तुलना सूर्य सिद्धान्तीय अङ्कों से करनी चाहिये।

मन्दोच्चों और पातों की वार्षिक गति

ग्रह	आधुनिक सूक्ष्म* बेधों के अनुसार			
	सायन-मेष या वसंत संपात से	वास्तविक निरयन-मेष से	हमारे सिद्धान्तों के निरयन-मेष से	सूर्य सिद्धान्त के अनुसार
१	२	३	४	५
मन्दोच्च	विकला	विकला	विकला	विकला
रवि	+६१.५	+११.२४	+१.५	+०.११६१
मंगल	+६५.७	+१५.४६	+५.७	+०.०६१२

*Loomis की Practical Astronomy से लिया गया

भारतीय ज्योतिः शास्त्र पृष्ठ २०७

१	२	३	४	५
बुध	+५६.१	+५.८१	−३.९	+.११०४
गुरु	+५६.९	+६.६५	−३.१	+.२७
शुक्र	+४७.०	−३.२४	−१३.०	+.१६०५
शनि	+६९.६	+१९.३१	+९.६	+.०११७
मंगल का पात	+२५.०	−२५.२२	−३५.०	−०.०६४२
बुध ,,	+४०.२	−१०.०७	−१९.८	−.१४६४
गुरु ,,	+३४.३	−१५.९०	−२५.७	−.०५२२
शुक्र ,,	+२९.७	−२०.५०	−३०.३	−.२७०९
शनि ,,	+३०.७	−१९.५४	−२९.३	−.१९८६

इस सारिणी के ४थे और ५वें स्तम्भों में बहुत अन्तर है। परन्तु यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि ५वें स्तम्भ में जो कुछ लिखा गया है वह कोरी आँख से और स्थूल यंत्रों से जाना गया है।

यदि इन सिद्धान्तों के मानों की तुलना यूनानियों के मानों से की जाय तो जान पड़ेगा कि हमारे सिद्धान्तकार कितनी सूक्ष्म परीक्षा करते थे (देखिए ३५वें पृष्ठ की सारिणी)।

४थे और ७वें स्तम्भों के अंकों को मिलाने से जान पड़ेगा कि हमारे सिद्धान्तकार वास्तविक स्थिति से कितना निकट थे और टालमी कितनी दूर। केरोपन्त ने जो गणना की है वह आधुनिक मानों के अनुसार है, इसलिए इनकी गणना से मन्दोच्चों और पातों की वास्तविक स्थिति का पता लगता है। इस तुलना से यह भी प्रकट है कि हमारे सिद्धान्तकारों ने स्वतंत्र अनुभव से इन सब भगण-मानों को जाना था न कि यूनानियों या अन्य देशवालों से लिया था जैसा कि कुछ पाश्चात्य विद्वानों का मत है।

षण्मनूनां च संपिण्ड्य कालं तत्सन्धिभिस्सह।
कल्पादिसन्धिन सार्धं वैवस्वतमनोस्तथा ॥४५॥
युगानां त्रिघनं यातं तथा कृतयुगं त्विदम्।
प्रोज्झ्य सृष्टेस्ततः कालं पूर्वोक्तं दिव्यसंख्यया ॥४६॥
सूर्याब्दसंख्यया ज्ञेयाः कृतस्यान्ते गता अमी।
खचतुष्कयमाद्रयग्निशरनन्दनिशाकराः ॥४७॥

अनुवाद—(४५) छः मनुओं, उनकी छः सन्धियों और कल्प की आदि संधि के काल को जोड़कर योगफल में वैवस्वत मनु के (४६) २७ युगों को तथा इस (अट्ठाईसवें) सत्ययुग को जोड़ दो और उसमें से सृष्टि के रचने में (२४वें श्लोक में) पहले कहे के अनुसार जितना समय लगा है उसको घटा दो। (४७) जो शेष बचे

१	२			३			४			५			६			७		
	मन्दोच्चों और पातों के स्थान									सम्वत् २०५ वि० में मन्दोच्चों और पातों के स्थान (सायन)								
	केरोपंत की गणना के अनुसार			सूर्य सिद्धान्त के अनुसार			अन्तर			केरोपंत की गणना से			टालमी की गणना से			अन्तर		
	राशि	अंश	कला	रा०	अं०	क०		अं०	क०	रा०	अं०	कला	रा०	अं०	क०		अं०	क०
रवि का उच्च	२	१७	७	२	१७	१५	+	०	८	२	११	५	२	५	३०	−	५	३५
मंगल ,,	४	८	११	४	१०	१	+	१	५०	४	१	३९	३	२५	३०	−	६	९
बुध ,,	७	२४	१	७	१०	२६	−	१३	३५	७	१८	३२	६	१०	०	−	३८	३२
गुरु ,,	५	२०	३८	५	२१	१६	+	०	३८	५	१५	७	५	११	०	−	४	७
शुक्र ,,	९	२१	३	२	१९	४९	−	२११	१४	९	१६	१८	१	२५	०	−	२३१	१८
शनि ,,	८	५	१२	७	२६	३७	−	८	३५	७	२८	४५	७	२३	०	−	५	४५
मंगल का पात	१	८	९	१	१०	५	+	१	५६	१	५	२९	०	२५	३०	−	९	५९
बुध ,,	१	०	१८	०	२०	४४	−	९	३४	०	२६	५	०	१०	०	−	१६	५
गुरु ,,	२	२५	३०	२	१९	४१	−	५	४९	२	२२	१	१	२१	०	−	३१	१
शुक्र ,,	२	३	४०	१	२९	४६	−	३	५४	२	०	३९	१	२५	०	−	५	३९
शनि ,,	३	१०	१३	३	१०	२५	+	०	१२	३	७	२८	६	३	०	+	८५	३२

भारतीय ज्योतिःशास्त्र पृ० २०५, २०६

वही (वर्तमान) सत्ययुग के अन्त तक सौर वर्षों में संख्या हुई जो १,९५,३७,२०,००० है ॥४५-४७॥

विज्ञान भाष्य—पिछले २२वें और २३वें श्लोकों में जो कुछ कहा गया है यही यहाँ फिर दुहराया गया है। इन श्लोकों के विज्ञान-भाष्य में कल्प के आरम्भ से वर्तमान महायुग के सत्ययुग के अन्त तक के सौर वर्षों की संख्या जानने की रीति बतलायी गयी है जो १,९७,०७,८४,००० होती है। इसमें से सृष्टि के रचने के १,७०,६४,००० सौर वर्ष घटा दिये जाँय तो शेष १,९५,३७,२०,००० होता है। इतने ही सौर वर्ष सृष्टि के आदि से सत्ययुग के अन्त तक बीते हैं।

> **अत ऊर्ध्वममी युक्ता गतकालाब्दसङ्ख्यया ।**
> **मासीकृता युता मासैर्मधु शुक्लादिभिर्गतैः ॥४८॥**
> **पृथक्स्थास्तेऽधिमासघ्नाः सूर्यमासविभाजिताः ।**
> **लब्धाधिमासकैर्युक्ता दिनीकृत्य दिनान्विताः ॥४९॥**
> **द्विष्ठास्तिथिक्षयाभ्यस्ताश्चान्द्रवासरभाजिताः ।**
> **लब्धोनरात्रिरहिता लङ्कायामार्धरात्रिकः ॥५०॥**

अनुवाद—(४८) ऊपर बतलाये गये (सृष्टि के आदि से सत्ययुग के अंत तक के) सौर वर्षों में सत्ययुग के उपरान्त जितने सौर वर्ष बीते हों उनको जोड़ लो। योगफल इष्टकाल तक के सौर वर्षों की संख्या होगी। इसके मास बना लो अर्थात् १२ से गुणा कर दो। मासों की संख्या में चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से इष्टकाल तक जितने मास बीते हों उनको भी जोड़ दो। (४९) इस संख्या को दो स्थानों पर रखो, एक को महायुग के अधिमासों की संख्या से गुणा कर महायुग के सौर मासों की संख्या से भाग दे दो, जो लब्धि आवे वही सृष्टि के आदि से इष्टकाल तक के अधिमासों की संख्या होगी। इस लब्धि को दूसरे स्थान में रखे हुए मासों में जोड़ दो। योगफल सृष्टि के आदि से इष्टकाल तक के चांद्र-मासों की संख्या है। इसको ३० से गुणा कर (चान्द्र) दिन अर्थात् तिथियाँ बना लो और इष्टकाल तक वर्तमान मास की जितनी तिथियाँ बीती हों उनको जोड़ लो तो सृष्टि के आदि से इष्टकाल तक जितनी तिथियाँ बीती हैं वह मालूम हो जायँगी। (५०) इन तिथियों की संख्या को भी दो स्थानों पर रखो। एक को महायुगीय क्षय-तिथियों की संख्या से गुण दो और गुणनफल को महायुगीय तिथियों की संख्या से भाग दे दो, जो लब्धि आवे वही सृष्टि के आदि से इष्टकाल तक की क्षय-तिथियों की संख्या हुई। इसको दूसरे स्थान में रखी हुई तिथियों की संख्या में से घटा दो, जो शेष हो उससे एक कम लङ्का की अर्द्ध-रात्रि तक सावन-दिनों की संख्या हुई ॥४८-५०॥

विज्ञान भाष्य—जब यह जानना होता है कि किसी इष्ट समय ग्रहों के स्थान क्या हैं तब सबसे पहले यह जानना चाहिये कि सृष्टि के आदि से उस इष्ट समय तक कितने सावन दिन बीते। जब सावन दिनों की संख्या मालूम हो गयी तब त्रैराशिक के द्वारा ग्रहों का स्थान जान लेना सुगम होता है। क्योंकि सृष्टि के आदि में सब ग्रह एक साथ थे और एक महायुग में वह कितने भगण करते हैं तथा कितने सावन दिन होते हैं, यह भी बतला दिया गया है; इसलिए जब महायुगीय सावन दिनों में अमुक भगण होते हैं तब इष्टकाल तक के सावन दिनों में कितने भगण होंगे, यह जान लेने से ही ग्रह का स्थान निकल आता है। इष्टकाल तक के सावन दिनों की संख्या जिसे अहर्गण कहते हैं जानने की रीति ऊपर के तीन श्लोकों में बतलायी गई है।

उदाहरण—१६७६ विक्रमीय की वसंत पंचमी (माघ सुदी ५) तक सृष्टि से कितने दिन बीते ?

सृष्टि के आदि से सत्ययुग के अंत तक =१,६५,३७,२०,००० सौर वर्ष
त्रेता ,, ,, = १२,६६,००० सौर वर्ष
द्वापर ,, ,, = ८,६४,००० ,,
१६७६ वि० की चैत्र शुक्ल १ के आरम्भ तक = ५,०२३* ,,
इसलिए सृष्टि के आदि से १६७६ वि० के
चैत्र शुक्ल १ के आरम्भ तक = १,६५,५८,८५,०२३ वर्ष
=२३,४७,०६,२०,२७६ सौरमास*
चै० शु० १ से माघ शु० १ के आरंभ तक = १० चांद्रमास
इसलिए सृष्टि के आदि से
१६७६ के मा० शु० १ तक =२३,४७,०६,२०,२८६ मध्यम मास

जब एक महायुग में ५,१८,४०,००० सौर मास होते हैं तब १५,९३,३३६ अधिमास होते हैं; इसलिए २३,४७,०६,२०,२८६ मध्यम मासों में अधिमासों की संख्या हुई

$$\frac{२३,४७,०६,२०,२८६ \times १५,९३,३३६}{५,१८,४०,०००} = ७२,१३,८४,७२६ \text{ अधिमास}$$

इसलिए सृष्टि के आदि से
१६७६ वि० की माघ शु० १ तक हुए २४,१६,२०,०५,०१२ चांद्रमास
=७,२५,७६,०१,५०,३६० तिथियाँ
∴ माघ सुदी ५ तक हुईं ७,२५,७६,०१,५०,३६५ तिथियाँ

---

* १६७६ वि० में जिस समय मेष-संक्रान्ति लगेगी उस समय पूरे होंगे। इसलिए इन्हें मध्यम सौर वर्ष या मास कहना चाहिये।

परन्तु एक महायुग में ५३४३३३३६ चान्द्रमास तथा २,५०,८२,२५२ क्षय तिथियाँ होती हैं, इसलिए २४,१६,२०,०५,०१२ चान्द्र*मासों में क्षय तिथियों की

$$\text{संख्या} = \frac{२४,१९,२०,०५,०१२ \times २,५०,८२,२५२}{५३४३३३३६} = ११,३५,६०,१८,७६१$$

∴ माघ सुदी ५, तक सृष्टि के आदि से

सावन दिनों की संख्या = ७,१४,४०,४१,३१,६०४

माघ सुदी ५ के पहले की अर्द्धरात्रि

तक के अहर्गण = ७,१४,४०,४१,३१,६०३

किसी समय तक के सावन दिनों की संख्या जानने का यह नियम बहुत कष्टप्रद है और तनिक सी भी भूल हो जाने से घंटों का परिश्रम व्यर्थ जाता है। इसलिए व्यवहार में इतने बड़े समय की गणना नहीं की जाती वरन् करण ग्रन्थ और सारणियाँ बनी हुई हैं जिनके द्वारा यह गणना सहज ही हो जाती है। आगे चलकर इस पुस्तक में भी सत्ययुग के अन्त से अहर्गण बनाने का उपदेश दिया गया है। यदि स्वतन्त्र गणना सुगम रीति से करना हो तो नीचे लिखी रीति काम दे सकती है :—

यह बतलाया जा चुका है कि एक महायुग में ४३,२०,००० सौर वर्ष तथा, १,५७,७९,१७,८२८ सावन दिन होते हैं।

$$\text{इसलिए एक सौर वर्ष में } \frac{१,५७,७९,१७,८२८}{४३,२०,०००} \text{ सावन-दिन}$$

अर्थात् ३६५·२५८७५६४८१५ सावन-दिन होते हैं। जिस समय तक के अहर्गण की संख्या जाननी हो वह जिस सम्वत् में हो उसकी मेष संक्रान्ति के दिन का अहर्गण निकाल लो। ऐसा करने के लिए एक वर्ष के सावन दिनों की संख्या को सृष्टि के आदि से इष्ट सम्वत् तक के सौर वर्षों से गुणा कर दो। उपर्युक्त उदाहरण में १९७९ वि० की मेष संक्रान्ति के दिन सृष्टि के आदि से १,९५,५८,८५,०२३ सौर वर्ष बीते हैं; इसलिए इस सम्वत् के मध्यम मेष-संक्रान्ति के समय तक ३६५·२५८७५६४८१५ × १,९५,५८,८५,०२३ सावन दिन अर्थात् ७,१४,४०,४१,३१,३२१. ७७००२६०७४५ सावन दिन बीते। परन्तु स्पष्ट मेष-संक्रान्ति मध्यम संक्रान्ति से २.१७०६९४४ सावन दिन पहले ही हो जाती है। इसलिए यदि मध्यम मेष संक्रान्ति तक के अहर्गण में से २.१७०६९४४ सावन दिन घटा दिये जांय तो स्पष्ट मेष-संक्रान्ति के समय तक ७,१४,४०,४१,३१,३१९.५९९३-

---

*पुस्तक में चन्द्र मासों की जगह तिथियाँ कही गयी हैं जिससे गणना शुद्ध होती है; परन्तु गुणा भाग अधिक करना होता है इसलिए चान्द्र मास लिये गये हैं। इससे सम्भव है कि एक दिन की भूल पड़े, जो वार निकालने से शुद्ध हो सकती है।

३१६७४५ सावन दिन बीते। इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि सृष्टि के आदि से इतने मध्यम सावन दिन बीतने पर १९७९ वि० की मेष संक्रान्ति लंका में हुई।

इसलिए जिस दिन मेष संक्रान्ति थी उस दिन की आधी रात तक के अहर्गण हुए ७,१४,४०,४१,३१,३२०। अब देखना चाहिये कि मेष की संक्रान्ति से कितने दिन पर बसंत पंचमी पड़ी।

इसके लिए पहले यह जानना चाहिये कि मेष संक्रान्ति के दिन कौन तिथि थी।

१ चान्द्रमास २९·५३०५८७९४६०७ सावन दिनों का होता है। इसलिए यदि मेष संक्रान्ति के अहर्गण को इतने सावन दिनों से भाग दे दिया जाय तो जो लब्धि आवेगी वह सृष्टि के आदि से मेष संक्रान्ति तक के बीते हुए चान्द्रमासों की संख्या होगी और जो शेष बचा है वह चालू चान्द्रमास के सावन दिन होंगे। इस शेष को यदि ३० से गुणा करके गुणनफल को चान्द्रमास के सावन दिनों से फिर भाग दिया जाय तो जो लब्धि आवेगी वह तिथियों की संख्या होगी।

ऐसा करने से मेष संक्रान्ति के समय तिथि की संख्या १६५२५७६ आती है, जो पूर्णिमान्त गणना से वैशाख बदी २ और अमान्त गणना से चैत बदी २ होती है।

अब यह जानना चाहिये कि वैशाख बदी २ से माघ सुदी ५ तक कितने सावन दिन बीते। इसलिए पहले यह देखना चाहिये कि इस समय में कितनी तिथियाँ बीतीं। वैशाख बदी ३ से माघ बदी २ तक ९ चान्द्रमास होते हैं, क्योंकि इस वर्ष कोई मलमास नहीं पड़ा, तथा माघ बदी ३ से माघ सुदी ५ के आरम्भ तक अर्थात् चौथ के अन्त तक १७ तिथियाँ होती हैं। इसलिए मेष संक्रान्ति से माघ सुदी ४ के अन्त तक ९ × ३० + १७ तिथियाँ अर्थात् २८७ तिथियाँ बीतीं।

परन्तु ३० तिथियाँ = २९·५३०५८७९४६०७ मध्यम सावन दिन; इसलिए २८७ तिथियाँ

$$= २८७ \times २९·५३०५८७९४६०७ \times \frac{१}{३०}$$
$$= २८२.५०९२९१३५०७३६$$
$$= २८२.५१ \text{ सावन दिन स्थूल रूप से}$$

परन्तु मेष संक्रान्ति की अर्द्धरात्रि के अहर्गण = ७,१४,४०,४१,३१,३२०

इसलिए सृष्टि से माघ सुदी ५ तक के अहर्गण =

७,१४,४०,४१,३१,६०२.५१

अर्थात् माघ सुदी ५ की पहली अर्द्ध-रात्रि तक ७,१४,४०,४१,३१,६०३ सावन दिन बीते; जो पहली रीति से निकाले गये अहर्गण से मिलता है। इस गणना के लिए दशमलव के ग्यारहवें स्थान तक के अंकों को लेना पड़ता है क्योंकि गुणक (सृष्टि से

अब तक के सौर वर्षों की संख्या) अरबों में है। यदि त्रेता या कलियुग के आदि से अहर्गण निकालना हो जिसके लिए आगे आदेश है, तो चान्द्रमास और सौर वर्ष के सावन दिनों की संख्या सात दशमलव स्थानों तक लेना पर्याप्त होगा।

अब यह परीक्षा करना रह गया कि यह संख्या शुद्ध है या नहीं। इसके लिए केवल यह जाँचना पर्याप्त होगा कि सृष्टि से इतने दिनों के बाद कौन वार आरम्भ होगा। यदि वार ठीक निकल आवे या १ दिन का अन्तर पड़े तो समझना चाहिए कि अहर्गण ठीक है, नहीं तो अशुद्ध है। इसकी रीति आगे के श्लोक में दी हुई है।

सावनो द्युगणस्सूर्याद्दिनमासाब्दपास्ततः।
सप्तभिः क्षयितश्शेषः सूर्याद्यो वासरेश्वरः ॥५१॥
मासाब्ददिनसंख्याप्तौ द्वित्रिघ्नौ रूपसंयुतौ।
सप्तोद्धृतावशेषौ तु विज्ञेयौ मासवर्षपौ ॥५२॥

अनुवाद—(५१) सावन दिनों की जो संख्या हो उससे दिनपति, मासपति और वर्षपति सूर्य से गिनकर जानना चाहिये। इस संख्या को ७ से भाग दे दे जो शेष बचे वही सूर्य से वारों के क्रम से आरंभ होकर दिनपति है। (५२) यदि इस (सावन दिनों की) संख्या को क्रम से मास और वर्ष के दिनों की संख्याओं से भाग दे दें और भागफलों को क्रम से दो और तीन से गुणा करके, प्रत्येक गुणनफल में एक जोड़ दे और योगफलों को ७ से भाग दे दें तो जो शेष बचे वही सूर्य से वारों के क्रम से आरंभ हो कर क्रमानुसार मासपति और वर्षपति है ॥५१-५२॥

विज्ञान-भाष्य—वार (दिन) का नाम उस ग्रह के नाम पर रखा गया है जो वार के आरंभ में पहले घंटे (होरा) का स्वामी समझा गया है। जो ग्रह पहले घंटे का स्वामी होता है वही उस वार का भी स्वामी समझा जाता है। इसी तरह सावन* मास के आरंभ में जो वार पड़ता है उसी का स्वामी उस सावन मास का स्वामी समझा जाता है और सावन वर्ष के आरम्भ में जो वार पड़ता है उसी का स्वामी उस सावन वर्ष का स्वामी समझा जाता है। जैसे रविवार के पहले घंटे का स्वामी रवि, उस दिन का स्वामी रवि, जो सावन मास रविवार से आरंभ होता है उस मास का स्वामी रवि और जो सावन वर्ष रविवार से आरंभ होता है उस वर्ष का स्वामी भी रवि ही है।

---

*सावन को श्रावण न समझना चाहिये। ३० सावन दिनों का जो मास होता है वह सावन मास और १२ सावन महीनों का जो वर्ष होता है वह सावन वर्ष कहलाता हैं।

किस घंटे (होरा) का स्वामी कौन ग्रह है यह जानने के लिए वह क्रम समझ लेना चाहिये जिस क्रम से घंटे के स्वामी बदलते हैं। शनि ग्रह पृथ्वी से सब ग्रहों से अधिक दूर है, उससे निकट बृहस्पति है, बृहस्पति से निकट मंगल, मंगल से निकट सूर्य, सूर्य से निकट शुक्र, शुक्र से निकट बुध[१] और बुध से निकट चन्द्रमा है। इसी क्रम से होरा के स्वामी बदलते हैं। यदि पहले घंटे का स्वामी शनि है तो दूसरे घंटे का स्वामी बृहस्पति, तीसरे का स्वामी मंगल, चौथे का सूर्य, पांचवें का शुक्र, छठें का बुध, सातवें का चन्द्रमा, आठवें का फिर शनि, इत्यादि क्रमानुसार हैं। परन्तु जिस दिन पहले घंटे का स्वामी शनि होता है उस दिन का नाम शनिवार होना चाहिये। इसलिए शनिवार के दूसरे घंटे का स्वामी बृहस्पति, तीसरे घंटे का स्वामी मंगल इत्यादि हैं। इस प्रकार सात-सात घंटे के बाद स्वामियों का वही क्रम फिर आरंभ होता है। इसलिए शनिवार के २२वें घण्टे का स्वामी शनि, २३वें का बृहस्पति, २४वें का मंगल, और २४वें के बाद वाले घंटे का स्वामी सूर्य होना चाहिये। परन्तु यह २५वां घंटा अगले दिन का पहला घंटा है जिसका स्वामी सूर्य है इसलिए शनिवार के बाद रविवार होता है। रविवार के दूसरे घंटे का स्वामी शुक्र, तीसरे का बुध, चौथे का चन्द्रमा, इत्यादि क्रमानुसार चलते हुए ११वें, १८वें २५वें घंटों का स्वामी भी चन्द्रमा होता है। परन्तु २५वां घंटा अगले दिन का पहला घंटा है इसलिए इसी घंटे के स्वामी के नाम से अगला दिन चन्द्रवार पड़ा। इसी प्रकार और वारों का नामकरण[२] हुआ है।

अब यह स्पष्ट हो गया कि शनिवार के बाद रविवार और रविवार के बाद सोमवार और सोमवार के बाद मंगलवार क्यों होता है। ग्रहों के क्रम में शनि से रवि चौथा ग्रह है, रवि से चंद्रमा चौथा ग्रह है, चन्द्रमा से मंगल चौथा ग्रह है। इसलिए यह नियम हो गया है कि ग्रहों के क्रम को शनि से गिनते हुए प्रत्येक चौथा ग्रह अगले वार का स्वामी होता है।

---

१. पृथ्वी से बुध शुक्र की अपेक्षा अधिक दूर है परन्तु हमारे ज्योतिष ग्रन्थों में शुक्र ही अधिक दूर माना गया है। कारण इसका यह है कि जो ग्रह जितनी ही दूर है उतनी ही देर में वह भगण पूरा करता है। ऐसा विश्वास हमारे ज्योतिषियों का भी है परन्तु इन्होंने पृथ्वी से यह दूरी ली है और आधुनिक ज्योतिषियों ने सूर्य से।

२. वारों का यह क्रम प्रायः सभी देशों में पाया जाता है। परन्तु इनके नामकरण की उपपत्ति जैसी यहाँ की गयी है वैसी कहीं और भी है या नहीं यह खोजने के योग्य है।

मासपति—यदि किसी सावन मास का पहला दिन रविवार हो तो अगले सावन मास का पहला दिन रविवार से ३१वाँ दिन होगा क्योंकि सावन मास ३० दिन का होता है। परन्तु रविवार से ३१वां दिन पांचवें सप्ताह का तीसरा दिन मंगलवार होता है। इसलिए दूसरे सावन मास का स्वामी मंगल ग्रह हुआ। तीसरे सावन मास का पहला दिन मंगलवार से ३१वां हुआ अर्थात् मंगलवार से आरम्भ करके पांचवें सप्ताह का तीसरा दिन, वृहस्पतिवार हुआ। इसलिए तीसरे सावन मास का स्वामी वृहस्पति हुआ। इसी प्रकार चौथे सावन मास का स्वामी, वृहस्पतिवार से तीसरे दिन शनिवार का स्वामी शनि और पांचवें सावन मास का स्वामी शनिवार से तीसरे दिन सोमवार का स्वामी सोम तथा छठें सावन मास का स्वामी बुध और सातवें सावन मास का स्वामी शुक्र हुआ। आठवें सावन मास से फिर यह क्रम चलेगा। इसलिए वारों के क्रम से तीसरा वार आने वाले सावन मास का पहला दिन तथा उसका स्वामी उस सावन मास का स्वामी होता है। अब यदि ध्यान से देखा जाय तो जान पड़ेगा कि मासपतियों का क्रम ग्रहों के क्रम के अनुसार इस प्रकार है—रवि, मंगल, वृहस्पति, शनि, सोम, बुध और शुक्र; फिर रवि, मंगल, वृहस्पति शनि इत्यादि। यदि चन्द्रमा से यह चक्र आरंभ हो तो इनका क्रम वही रहेगा जिस क्रम से ये पृथ्वी से क्रमानुसार दूर समझे गये हैं।

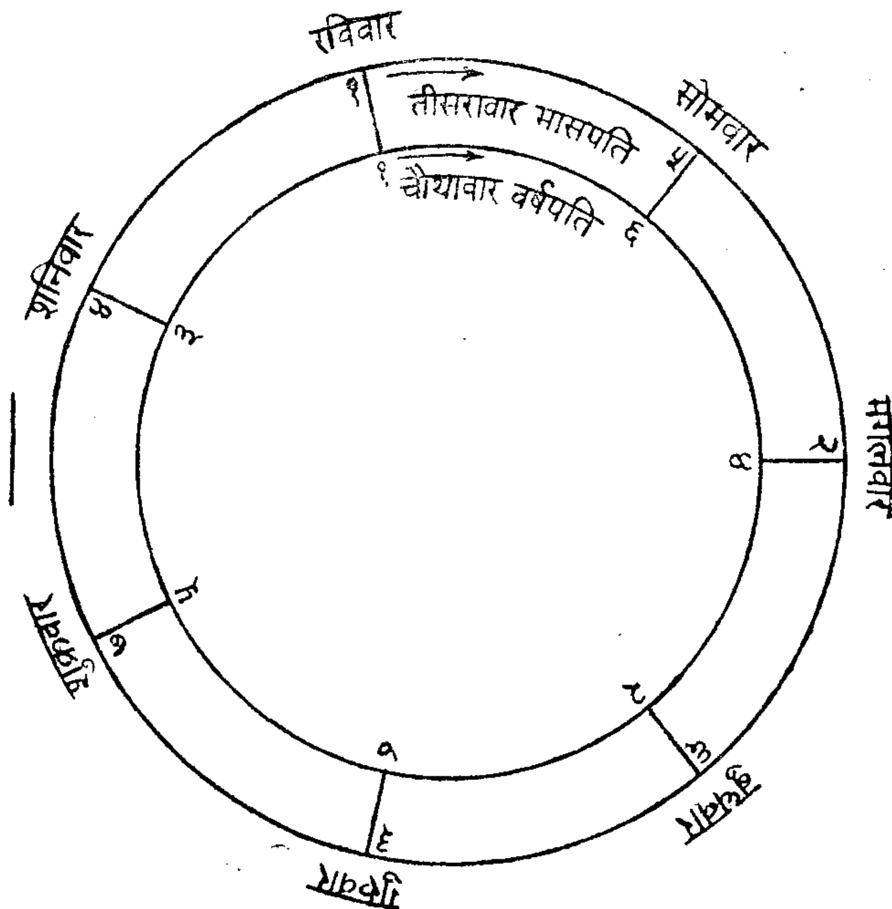
वर्षपति—सावन वर्ष का आरम्भ जिस दिन से होता है उसी दिन का स्वामी उस वर्ष का स्वामी समझा जाता है। यदि पहले सावन वर्ष का आरम्भ रविवार को हो तो दूसरे सावन वर्ष का आरम्भ रविवार से ३६१वें दिन होगा जो ५१ सप्ताह के बाद वाले सप्ताह का चौथा दिन अर्थात् बुधवार है इसलिए दूसरे सावन वर्ष का स्वामी बुध होगा। तीसरे सावन वर्ष का आरम्भ दूसरे सावन वर्ष से ३६१वें दिन होगा इसलिए यह बुधवार से चौथा दिन शनिवार होगा जिसका स्वामी शनि है इसलिए तीसरे सावन वर्ष का स्वामी शनि होगा। इसी प्रकार चौथे सावन वर्ष का स्वामी शनिवार से चौथे दिन मंगलवार का स्वामी मंगल है। पाँचवें सावन वर्ष का स्वामी, मंगलवार से चौथे दिन शुक्रवार का स्वामी शुक्र है। छठें सावन वर्ष का स्वामी शुक्रवार से चौथे दिन सोमवार का स्वामी सोम, सातवें सावन वर्ष का स्वामी सोमवार से चौथे दिन वृहस्पतिवार का स्वामी वृहस्पति तथा आठवें सावन वर्ष का स्वामी वृहस्पतिवार से चौथे दिन रविवार का स्वामी रवि फिर होगा। इस तरह आठवें सावन वर्ष से फिर वही क्रम आरम्भ होगा। इन स्वामियों का क्रम इस प्रकार हुआ रवि, बुध, शनि, मंगल, शुक्र, सोम, वृहस्पति; फिर रवि, बुध, शनि इत्यादि। इसलिए यदि वारों के अनुसार क्रम मिलाया जाय तो आने वाले सावन वर्ष का

पहला दिन गत सावन वर्ष के पहले दिन से चौथा होगा। और यदि ग्रहों का क्रम मिलाया जाय तो शनि से आरम्भ करके प्रति तीसरा ग्रह वर्ष का स्वामी होता है। इन बातों को सूत्र रूप में भूगोलाध्याय के ७८वें और ७९वें श्लोकों में यों लिखा गया है :—

> मन्दादधःक्रमेण स्युश्चतुर्था दिवसाधिपाः।
> वर्षाधिपतयस्तद्वत्तृतीयाश्च प्रकीर्तिताः॥ ७८॥
> ऊर्ध्वक्रमेण शशिनो मासानामधिपाः स्मृताः।
> होरेशाः सूर्यतनयादधोऽधः क्रमशस्तथा॥ ७९॥
>
> सूर्य सिद्धान्त, भूगोलाध्याय

वर्षपति, मासपति, दिनपति और होरापति जानने की दोनों रीतियाँ दो चित्रों (चित्र ५ तथा ६) के द्वारा दिखलायी जाती हैं।

वारों के अनुसार क्रम



चित्र ५

वारों के नामों तथा वर्षपतियों और मासपतियों के सम्बन्ध का यह नियम जान लेने पर अब ५१वें और ५२वें श्लोकों की उपपत्ति सहज ही समझी जा सकती है।

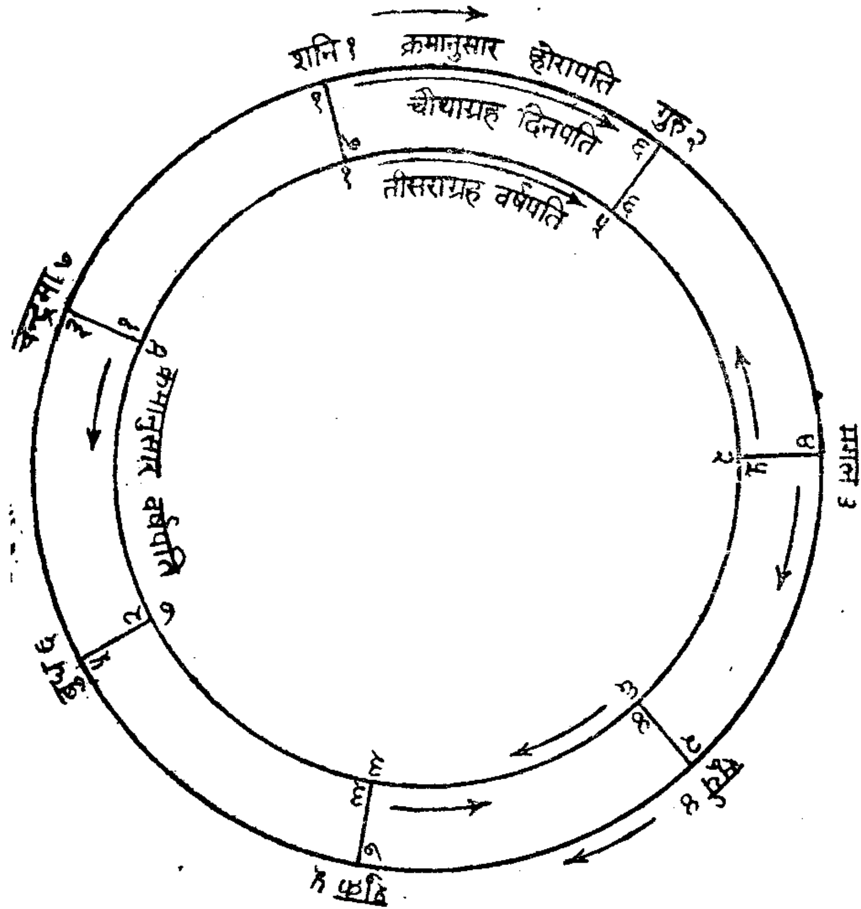
इष्टकाल तक जो अहर्गण (सावन दिन) आया हो उसको सात से भाग देने पर जो शेष बचे उतने ही दिन सप्ताह के बीत चुके हैं। सृष्टि का आरम्भ रविवार से हुआ इसलिए रविवार सप्ताह का पहला दिन है और शनिवार पिछला दिन अर्थात् सातवाँ दिन। इसलिए यदि शेष ५ बचे तो समझना चाहिए कि वृहस्पति का दिन है जिसकी मध्य रात्रि को वह अहर्गण पूरा होता है क्योंकि वृहस्पति सप्ताह का पाँचवाँ दिन है। जैसे पिछले उदाहरण में अहर्गण की जो संख्या ७,१४,४०,४१,३१,६०३ आयी है उसको सात से भाग देने पर शेष १ बचता है। इसलिए जिस दिन का अहर्गण निकाला गया है वह सप्ताह का पहला दिन रविवार है। परन्तु यह अहर्गण बसंत-पंचमी से पहले की अर्द्धरात्रि तक का है इसलिए बसंत-पंचमी को सोमवार होगा।

मासपति जानने के लिए इष्ट अहर्गण को ३० से भाग देना चाहिए जो लब्धि आवे वही सृष्टि के आदि से सावन मासों की संख्या हुई। इन सावन मासों को दो से गुणा करके १ जोड़ दो और सात से भाग दे दो, क्योंकि मासपतियों का क्रम वार के अनुसार तीसरे दिन बदलता है और सात मास बीतने पर फिर वही क्रम आरम्भ होता है। जो शेष बचे, सप्ताह के उसी दिन का स्वामी उस मास का स्वामी होता है जो चल रहा है। जैसे ऊपर के अहर्गण को ३० से भाग देने पर २३, ८१,३४,७१,०५३ सावन मास और १३ सावन दिन होते हैं। इन सावन मासों की संख्या को २ से गुणा करके १ जोड़ने पर ४७,६२,६९,४२,१०७ होता है। इसको ७ से भाग देने पर शेष ३ बचता है। इसलिए चलते सावन मास का पहला दिन मंगलवार था। इसलिए इस मास का स्वामी मंगल है।

वर्षपति जानने के लिए इष्ट अहर्गण को ३६० से अथवा ऊपर निकाले हुए सावन मासों को १२ से भाग दे दो, जो लब्धि आवे उतने ही सावन वर्ष बीते हैं। इनको तीन से गुणा करके १ जोड़ दो और सात से भाग दे दो क्योंकि वर्षपतियों का क्रम वार के अनुसार चौथे दिन बदलता है और सात वर्ष के बाद फिर वही क्रम आरम्भ होता है। जो शेष बचे (सप्ताह के) उसी दिन का स्वामी चलते सावन वर्ष का स्वामी होता है क्योंकि सप्ताह का आरम्भ रविवार से होता है।

जैसे ऊपर के उदाहरण में अहर्गण को ३६० से भाग देने पर अथवा सावन मासों को १२ से भाग देने पर गत सावन वर्षों की संख्या १,९८,४४,५५,९२१ हुई।

इसको तीन से गुणा कर १ जोड़ने से ५,६५,३३,६७,७३४ हुआ। इसको ७ से भाग देने पर शेष १ बचता है। इसलिए चलते सावन वर्ष का आरंभ रविवार को हुआ और इस वर्ष का स्वामी रवि हुआ।



चित्र ६—पृथ्वी से ग्रहों की दूरी के अनुसार क्रम

यह तो हुई सूर्य सिद्धान्त के अनुसार वर्षपति निकालने की रीति। आजकल के सभी पंचांगों में वर्षपति (वर्षेश) उस दिन का स्वामी माना जाता है जिस दिन चैत्र शुक्ल प्रतिपदा होती है और वर्ष का मंत्री उस दिन का स्वामी समझा जाता है जिस दिन मेष संक्रान्ति होती है। मेघेश उस दिन का स्वामी होता है जिस दिन आर्द्रा नक्षत्र लगता है, इत्यादि इसी विचार से वर्ष भर का फल निकाला जाता है। मकरंद सारिणी में सूर्य सिद्धान्त से भिन्न नियम यह है:—

चैत्र शुक्ल प्रतिपद्दिवसे यो वारः स राजा। मेष संक्रान्ति दिवसे यो वारः स मंत्री। कर्क संक्रान्ति दिवसे यो वारः स सत्याधिपः। तुला संक्रान्ति दिवसे (यो) वारः स रसाधिपः। मृग संक्रान्ति दिवसे यो वारो (स) नीरसाधिपः। आर्द्राप्रवेश

दिवसे यो वारः स मेघाधिपः । धनुः संक्रान्ति दिवसे यो वारः स पश्चिमधान्याधिपः* ॥

सावन वर्ष तथा सावन मास का व्यवहार आजकल कहीं नहीं है । इसलिए वर्षाधिप और मासाधिप निकालने का जो नियम सूर्य सिद्धान्त में दिया गया है वह किस काम आता है यह मैं नहीं जानता । यदि कोई सज्जन जानते हों तो कृपया सूचित करें । तेरहवें श्लोक से, जैसा कि मैंने उसकी टिप्पणी में लिखा है, यह ध्वनि निकलती है कि यथार्थ वर्ष सौर वर्ष ही है । फिर सावन वर्ष और सावन मास के अनुसार वर्षपति और मासपति निकालने की क्या आवश्यकता है ?

यथा स्वभगणाभ्यस्तो दिनराशिः कुवासरैः ।
विभाजितो मध्यगतो भगणादिग्रहो भवेत् ॥५३॥
एवं स्वशीघ्रमन्दोच्चा ये प्रोक्ताः पूर्वयायिनः ।
विलोमगतयः पातास्तद्वच्चक्राद्विशोधिताः ॥५४॥

अनुवाद—(५३) जितने अहर्गण आवें उनसे किसी ग्रह के महायुगीय भगण को गुणा कर दो और गुणनफल को महायुगीय सावन दिनों से भाग दे दो । जो लब्धि आवेगी उतने ही भगण उस ग्रह के (सृष्टि के आदि से) मध्यम गति के अनुसार पूरे हुए हैं । जो शेष बचे उसको १२ से गुणा करके फिर (महायुगीय सावन दिनों से) भाग देने से उस राशि की संख्या आवेगी जितनी राशियां वह ग्रह वर्तमान भगण में पूरा कर चुका है । अब जो शेष बचे उसको ३० से गुणा करके महायुगीय सावन दिनों की संख्या से भाग देने पर उन अंशों की संख्या निकल आवेगी जितने अंश वह ग्रह वर्त्तमान राशि में पूरा कर चुका है इत्यादि । (५४) इसी प्रकार पहले कहे हुए पूर्व की ओर चलने वाले शीघ्रों और मन्दोच्चों के स्थान भी जाने जा सकते हैं । पातों की गति उलटी (पच्छिम की ओर) होती है, इसलिए पातों की जो राशि अंश कला विकला आवें उनको पूरे चक्र में से अर्थात् १२ राशि में से घटा देने पर, जो शेष बचे वही पातों के स्थान हैं ॥ ५३-५४ ॥

विज्ञान भाष्य—इन श्लोकों में वह रीति बतलायी गयी है जिससे किसी इष्ट समय में ग्रहों के मध्यम स्थान जाने जाते हैं । इसका संक्षेप में अर्थ यह है कि जब एक महायुग में (महायुगीय सावन दिनों में) ग्रह ऊपर कहे हुए भगण करता है तब इष्ट समय तक के सावन दिनों में कितने भगण करेगा । इसलिए त्रैराशिक की रीति से इस नियम को यों प्रकट कर सकते हैं :—

महायुगीय सावन दिन : इष्ट अहर्गण :: महायुगीय भगणः इच्छित भगण

* वेंकटेश्वर प्रेस की १९६० वि० की छपी मकरंद सारिणी पृष्ठ ४७९

यदि 'स' को महायुगीय सावन दिन, 'अ' को इष्ट अहर्गण, 'भ' को महायुगीय भगण तथा 'भा' को अभीष्ट भगण माना जाय तो संक्षेप में इसको यों लिखेंगे :—

$$भा = \frac{अ \times भ}{स}$$

यह एक भिन्न है, जिसको सरल किया जाय तो जो पूर्णाङ्क आवेगा वह ग्रह के उन भगणों की संख्या है जो उस समय तक पूरे हो चुके हैं और शेष भिन्न को १२ से गुणा करके सरल करने पर जो पूर्णाङ्क आवेगा वह गत राशि तथा फिर जो भिन्न होगी उसको ३० से गुणा करके सरल करने पर वर्तमान राशि के अंश निकलेंगे। यदि कला विकला भी जानना हो तो ६० से गुणा करके सरल करते जाना होगा।

यह नियम सभी पूर्व चलने वाले ग्रहों, शीघ्रोच्चों और मन्दोच्चों के लिए लागू है। यदि किसी ग्रह के पातों का स्थान जानना हो तो ऊपर लिखी रीति से जो राशि, अंश, कला, विकला आवे उसे १२ राशियों में से घटा देना चाहिये क्योंकि पात की चाल उलटी होती है इसलिए वह उलटे क्रम से राशि चक्र पर चलेगा। यदि गणित से निकले कि अमुक पात 'भा' भगण पूरे करके २ राशि ३ अंश ५ कला पर है, तो इसे मेष के आदि विन्दु से उलटा गिनना चाहिये अर्थात् मीन, कुंभ, और मकर के अंतिम विंदु से ३ अंश ५ कला अर्थात् मकर के २६ अंश ५५ कला पर। इसलिए यदि १२ राशियों में २ राशि ३ अंश ५ कला घटाया जाय तो ९ राशि २६ अंश ५५ कला आवेगा जिसका अर्थ यह हुआ कि वह पात राशि चक्र की ९ राशियों के उपरान्त दसवीं राशि के २६ अंश ५५ कला पर है।

द्वादशघ्ना गुरोर्याता भगणा वर्तमानकैः।
राशिभिस्सहिताश्शुद्धाष्षष्ट्या स्युर्विजयादयः ॥५५॥

अनुवाद—वृहस्पति के गत भगणों को १२ से गुणा करके गुणनफल में वर्तमान भगण की जिस राशि में वृहस्पति हो उसकी क्रम संख्या को जोड़ दे, योगफल को ६० से भाग देने पर जो शेष बचे उसी क्रम संख्या का सम्वत्सर विजय से आरंभ होकर चल रहा है, ऐसा समझना चाहिये ॥ ५५ ॥

विज्ञान भाष्य—वृहस्पति मध्यम गति से जितने समय में एक राशि चलता है उसको सम्वत्सर कहते हैं। इसलिए वृहस्पति के एक भगण काल में (४३३२·३२०६ सावन दिनों में) बारह सम्वत्सर होते हैं और एक सम्वत्सर में ३६१·०२६७२ सावन दिन होते हैं। इसलिए यह स्पष्ट है कि सौर वर्ष की अपेक्षा संवत्सर ४·२३२०३ सावन दिन छोटा और सावन वर्ष से १·०२६७२ सावन दिन बड़ा होता है।

एक चक्र में ६० सम्वत्सर होते हैं जिनके नाम क्रम से यह हैं :—

१ विजय	२१ प्रमादी	४१ श्रीमुख
२ जय	२२ आनन्द	४२ भाव
३ मन्मथ	२३ राक्षस	४३ युवा
४ दुर्मुख	२४ अनल (नल)	४४ धाता
५ हेमलम्ब	२५ पिंगल	४५ ईश्वर
६ विलम्ब	२६ कालयुक्त	४६ बहुधान्य
७ विकारी	२७ सिद्धार्थी	४७ प्रमाथी
८ शार्वरी	२८ रौद्र	४८ विक्रम
९ प्लव	२९ दुर्मति	४९ वृष
१० शुभकृत	३० दुंदुभी	५० चित्रभानु
११ शोभन	३१ रुधिरोद्गारी	५१ सुभानु
१२ क्रोधी	३२ रक्ताक्ष	५२ तारण
१३ विश्वावसु	३३ क्रोधन	५३ पार्थिव
१४ पराभव	३४ क्षय	५४ व्यय
१५ प्लवंग	३५ प्रभव	५५ सर्वजित
१६ कीलक	३६ विभव	५६ सर्वधारी
१७ सौम्य	३७ शुक्ल	५७ विरोधी
१८ साधारण	३८ प्रमोद	५८ विकृति
१९ विरोधकृत	३९ प्रजापति	५९ खर
२० परिधावी	४० अंगिरा	६० नन्दन

वराहमिहिर ने वृहत्संहिता में[१] संवत्सर चक्र का आरंभ विजय से न मानकर ३५वें सम्वत्सर प्रभव से माना है। यही प्रथा आजकल भी प्रचलित है। यह प्रथा कब से आरंभ हुई इसकी खोज करना आवश्यक है। ६० संवत्सरों के चक्र में कई छोटे-छोटे विभाग हैं जिनका आरंभ भी प्रभव से ही होता है। इनकी चर्चा मानाध्याय नामक अंतिम अध्याय में की जायगी।

---

१. नवलकिशोर प्रेस से १८८४ ई० में प्रकाशित और पं० दुर्गाप्रसाद जी द्वारा अनुवादित पृष्ठ ६०—

आद्यं धनिष्ठांशमभिप्रपन्नो माघे यदायात्युदयं सुरेज्यः।
षष्ठ्यब्द पूर्वः प्रभवः सनाम्ना प्रवर्तते भूतहितास्तदाब्दः॥

जब यह जानना हो कि किसी इष्ट समय में कौन संवत्सर चल रहा है तब सबसे पहले ५३वें श्लोक के अनुसार यह जानना चाहिये कि उस समय वृहस्पति का मध्यम स्थान क्या है । सृष्टि के आदि से अहर्गण निकाल कर मध्यम ग्रह जानने की क्रिया बहुत कठिन है, इसलिए यदि कलियुग के आदि से अहर्गण साधा जाय तो अधिक सुभीता होगा; क्योंकि इस समय से भी विजय सम्वत्सर का आरंभ हुआ है । जो लोग दशमलव भिन्न की रीति जानते हों उनको अहर्गण की जगह सौर वर्षों से काम लेने में और भी सुभीता होगा । इस प्रकार मेष-संक्रान्ति के समय वृहस्पति का जो मध्यम स्थान होगा वह निकल आवेगा । जैसे मान लीजिये कि यह जानना है कि सम्वत् १९८१ विक्रमीय मेष संक्रान्ति के समय कौन सम्वत्सर वर्तमान होगा और वह कितने दिन तक रहेगा ?

कलियुग के आरंभ से १९८१ वि० की मेष संक्रान्ति तक ५०२५ सौर वर्ष बीत चुकेंगे । उस समय तक वृहस्पति कितने भगण पूरा करके किस राशि पर रहेगा, यह जान लेने से सम्वत्सर का पता चल जायगा । एक महायुग अर्थात् ४३,२०,००० सौर वर्षों में वृहस्पति के ३,६४,२२० भगण होते हैं; इसलिए ५०२५ सौर वर्षों में

$$= \frac{३,६४,२२० \times ५०२५}{४३,२०,०००} \text{ भगण}$$

$$= \frac{३,६४,२२० \times ५०२५}{४३,२०,०००} \times १२ \text{ संवत्सर}$$

$$= ५०८३\cdot९०४१६६६६ \text{ संवत्सर होते हैं ।}$$

जिसका अर्थ यह हुआ कि १९८१ वि० की मेष संक्रान्ति के समय ५०८४वाँ सम्वत्सर चल रहा है, उसका ·९०४१६६६६ भाग बीत गया है और, ·०९५८३३३४ भाग रह गया है ।

६० संवत्सरों का एक चक्र होता है इसलिए ५०८४ को ६० से भाग देने पर ८४ लब्धि आती है और ४४ शेष होता है जिसका अर्थ यह हुआ कि कलियुग से ६० सम्वत्सरों का चक्र ८४ बार हो चुका है ८५वें चक्र का ४४वाँ सम्वत्सर धाता चल रहा है और मेष संक्रान्ति के समय उसका ·०९५८३३···भाग बीतने को शेष है ।

यदि यह जानना हो कि धाता सम्वत्सर १९८१ विक्रमीय में कितने दिन तक रहेगा तो इस शेष को एक सम्वत्सर के सावन दिनों से अर्थात् ३६१·०२६७२ से गुणा कर देना चाहिये । ऐसा करने से गुणनफल ३४·५९८४ सावन दिन आता है, इसलिए १९८१ की मध्यम मेष संक्रान्ति के समय से ३४·५९८४ सावन दिन बीतने

पर धाता का अंत और ईश्वर नामक सम्वत्सर का आरम्भ होगा। यह पहले बतलाया गया है कि स्पष्ट मेष संक्रान्ति मध्यम मेष संक्रान्ति से २·१७०७ सावन दिन पहले ही होती है; इसलिए स्पष्ट मेष संक्रान्ति से ३६·७६६१ सावन दिन पर अथवा ३६ दिन ४६ घड़ी ८ पल ४० विपल पर ईश्वर का प्रवेश होगा।

विस्तरेणैतदुदितं संक्षेपाद्व्यावहारिकम्।
मध्यमानयनं कार्यं ग्रहाणामिष्टतो युगात् ॥५६॥
अस्मिन् कृतयुगस्यान्ते सर्वे मध्यगता ग्रहाः।
विना तु पातमन्दोच्चान्मेषादौ तुल्यतामिताः ॥५७॥
मकरादौ शशाङ्कोच्चं तत्पातस्तु तुलादिगः।
निरंशत्वं गताश्चान्येनोक्तास्ते मन्द चारिणः ॥५८॥

अनुवाद—(५६) ग्रहों के मध्यम स्थान जानने की रीति अब तक विस्तार के साथ कही गयी है; परन्तु व्यवहार के लिए इष्ट युग से ही यह काम संक्षेप में करना चाहिये। (५७) इस सत्ययुग के अंत में पातों और मन्दोच्चों को छोड़कर सब ग्रहों के मध्यम स्थान मेष के आदि में समान थे अर्थात् सातों ग्रह मेष के आरम्भ स्थान पर पहुँचे हुए थे। (५) चन्द्रमा का उच्च मकर राशि के आदि में तथा उसका पात (राहु) तुला के आदि में थे। अन्य ग्रहों के पात और मन्दोच्च मन्दगति के कारण किसी पूरे अंश पर नहीं थे; इसलिए इनके बारे में कुछ नहीं कहा जाता है। (५६—५८)॥

विज्ञान भाष्य—इस अध्याय के ४५-५० श्लोकों में ग्रहों के मध्यम स्थान निकालने की जो रीति बतलायी गयी है वह गणित विस्तार के कारण व्यवहारोपयोगी नहीं है जैसा कि दिये हुए उदाहरणों से स्पष्ट है। इसलिए सृष्टि के आदि से सत्य-युग के अंत तक के वर्षों का अहर्गण निकालने की कोई आवश्यकता नहीं है। वर्तमान युग का आरम्भ जबसे हुआ है तभी से इष्टकाल तक का अहर्गण ४८वें श्लोक के उत्तरार्द्ध और ४६-५० श्लोकों के अनुसार जानकर ग्रहों के मध्यम स्थान जान लेने चाहिये।

जिस समय सूर्यांश पुरुष ने मय को सूर्य सिद्धान्त का उपदेश दिया है वह इसी अध्याय के दूसरे श्लोक के अनुसार सत्ययुग के अंत का समय है, इसलिए ५७वें श्लोक में त्रेता के आदि से अहर्गण बनाने का संकेत है और यह भी दिखलाया गया है कि इस समय सब ग्रहों के मध्यम स्थान मेष राशि के आदि में समान थे। इस नियम के अनुसार कलियुग में कलियुग के आदि से ही अहर्गण निकालने की रीति सुविधाजनक है जो आजकल प्रचलित भी है। जैसे त्रेता के आदि में सब ग्रहों के मध्यम स्थान मेष के आदि में समान थे वैसे ही कलियुग के आदि में भी मेष राशि के आदि में

स्मान थे; क्योंकि त्रेता के आदि से कलियुग के आदि तक आधा महायुग होता है जितने समय में सब ग्रह पूरे-पूरे भगण करते हैं। हाँ चन्द्रमा का उच्च एक महायुग में विषम भगण करने के कारण मकर के आदि में न होकर कर्क के आदि में था, परन्तु पात तुला के ही आदि में था। यह मत सूर्यसिद्धान्त का है। भास्कराचार्य[1] के अनुसार कलियुग के आदि में सूर्य चन्द्रमा के सिवा अन्य ग्रहों के मध्यम स्थान यह थे :—

	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	चंद्रोच्च	राहु*
राशि	११	११	११	११	११	४	५
अंश	२९	२७	२९	२८	२८	५	३
कला	३	२४	२७	४२	४६	२९	१२
विकला	५०	२९	३६	१४	३४	४६	५८

यहाँ तक तो वह रीति बतलायी गयी है, जिससे ग्रहों का मध्यस्थान लंका या उज्जैन की आधी रात के समय का निकलता है। आगे के श्लोकों में लंका के पूरब पच्छिम के देशों में आधी रात के समय ग्रहों का मध्य स्थान जानने की रीति बतलायी जायगी।

योजनानि शतान्यष्टौ भूकर्णो द्विगुणानि तु।
तद्वर्गतो दशगुणात्पदं भूपरिधिर्भवेत् ॥ ५९ ॥

अनुवाद—पृथ्वी का व्यास ८०० के दूने १६०० योजन है; इसके वर्ग का १० गुना करके गुणनफल का वर्गमूल निकालने से जो आता है वह पृथ्वी की परिधि है ॥ ५९ ॥

विज्ञान भाष्य—यदि पृथ्वी का व्यास 'व' मान लिया जाय तो इसकी परिधि $=\sqrt{व^२ \times १०} = व \times \sqrt{१०} = व \times ३.१६२३$, जिससे सिद्ध होता है कि परिधि व्यास का ३.१६३१ गुना होती है। आजकल यह सम्बन्ध ३.१४१६ दशमलव के चार स्थान तक शुद्ध समझा जाता है जो ३.१६२३ से बहुत भिन्न है। परन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिये कि सूर्यसिद्धान्तकार को व्यास और परिधि का ठीक-

1. सिद्धान्त शिरोमणि गणिताध्याय पृष्ठ ३२-३३; कलकत्ते की १९१५ ई० की छपी।

* राहु की यह स्थिति कलकत्ते की छपी सिद्धान्त शिरोमणि में तथा म. म. पं० बापूदेव शास्त्री की संपादित सिद्धान्त शिरोमणि में लिखी है; परन्तु मेरी गणना से इसको ६ राशि २६ अंश ४७ कला २.४ वि० पर कलियुग के आरम्भ में होना चाहिये जो १२ राशियों में से ऊपर दी हुई स्थिति को घटाने से आती है।

ठीक सम्बन्ध मालूम नहीं था; क्योंकि दूसरे अध्याय में अर्द्धव्यास और परिधि का अनुपात ३४३८ : २१६०० माना गया है, जिससे परिधि व्यास का ३·१४१३६ गुना ठहरती है। इसलिए इस श्लोक में परिधि को व्यास का $\sqrt{१०}$, सुविधा के लिए, गणित की क्रिया संक्षेप करने के लिए, माना गया है; जैसे आजकल जब स्थूल रीति से काम लेना होता है तब कोई इसको $\frac{२२}{७}$ और कोई ३·१४ मानते हैं और जहाँ बहुत सूक्ष्म गणना करने की आवश्यकता पड़ती है वहाँ दशमलव के पांच-पांच सात-सात स्थानों तक इसको शुद्ध लेना पड़ता है।

भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों में इस सम्बन्ध का मान क्या लिया गया है यह नीचे के अवतरण से जान पड़ेगा।

	व्यास : परिधि		व्यास : परिधि
सूर्यसिद्धान्त, ब्रह्मगुप्त[1], द्वितीय आर्यभट[2]	१ : $\sqrt{१०}$	अर्थात्	१ : ३·१६२३
प्रथम आर्यभट[3]	२०००० : ६२८३२	,,	१ : ३·१४१६
द्वितीय आर्यभट[2], भास्कराचार्य[4]	२२ : ७	अर्थात्	१ : ३·१४२८
भास्कराचार्य[4]	१२५० : ३९२७	,,	१ : ३·१४१६
३४३८ कला को त्रिज्या मानने से, जो ब्राह्मस्फुट के सिवा सभी सिद्धान्तों में पाया जाता है।	६८७६ : २१६००	,,	१ : ३·१४१३६
आजकल के सूक्ष्म गणित से			१ : ३·१४१५९२७

भास्कराचार्य और द्वितीय आर्यभट ने दो प्रकार से व्यास और परिधि का संबंध बतलाया है, एक सूक्ष्म तथा दूसरा स्थूल और व्यवहारोपयोगी। आगे व्यास और परिधि के सम्बन्ध को π चिह्न से सूचित किया जायगा जैसी कि आज कल प्रथा है अर्थात् यदि व्यास १ है तो परिधि π है, जब कि π का मान व्यवहार के

१. ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त गोलाध्याय श्लोक १५।
२. महासिद्धान्त पाटीगणिताध्याय श्लोक ८८, ९२।
३. आर्यभटीय पृष्ठ २९ श्लोक १०, (ब्रह्मप्रेस इटावा का छपा)।
४. लीलावती पृष्ठ ५४ क्षेत्रव्यवहाराध्याय श्लोक ४०।

अनुसार २२/७, ३·१४, ३·१४२, ३·१४१६ इत्यादि जैसा आवश्यक हो लिया जा सकता है।

इस श्लोक में दूसरा शब्द 'योजन' बड़े महत्व का है। आजकल लोग योजन को साधारणतः चार कोस का समझते हैं परन्तु कोस का मान स्वयम् स्थिर नहीं है। किसी-किसी प्रान्त में कोस बहुत छोटा होता है और किसी प्रान्त में बहुत बड़ा। इसी प्रकार योजन का भी परिमाण स्थिर नहीं है। यही कारण है कि भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों में भूपरिधि या भूव्यास के मान भिन्न-भिन्न अंकों में दिये हुए हैं। नीचे लिखे अवतरणों से प्रकट होगा कि सिद्धान्तों में भूव्यास के मान क्या दिये हुए हैं:—

पंचसिद्धान्तिका के[१]	मत से	भूव्यास	१०१८ ६/१०	योजन
आर्यभट[२] और लल्ल	,,	,,	१०५०	,,
वर्तमान सूर्यसिद्धान्त	,,	,,	१६००	,,
सिद्धान्त शिरोमणि[3]	,,	,,	१५८१ १/२४	,,
द्वितीय आर्यसिद्धान्त (महासिद्धान्त)[४]			२१०६	,,
आधुनिक यूरोपीय मत से[५]				
	विषुवद्वृत्तीय		७९२७	मील
	ध्रुवीय		७९००	,,

ऊपर के अंकों से प्रकट है कि वराहमिहिर, आर्यभट तथा लल्ल के योजन प्रायः समान हैं और सूर्य सिद्धान्त तथा सिद्धान्तशिरोमणि के भी योजन प्रायः समान हैं; परन्तु पहले के तीन आचार्यों का योजन इन दोनों के योजन का प्रायः डेढ़ गुना है। इसलिए इन्हीं दो प्रकार के योजनों की तुलना वर्तमान मील से की जायगी। हमारे सिद्धान्तों में पृथ्वी को बिलकुल गोल माना गया है जिससे यह भेद नहीं रखा

१. डाक्टर थीबो और पं० सुधाकर द्विवेदी संपादित पंचसिद्धान्तिका पृष्ठ ३४ श्लोक १८ में भूपरिधि का मान ३२०० योजन दिया है जिसको ३·१४१६ से भाग देने पर १०१८·६ योजन पृथ्वी का व्यास हुआ।

२. आर्यभटीय पृष्ठ १०, प्रथम पाद का ५वाँ श्लोक।

३. गोलाध्याय पृष्ठ २०, भुवनकोश श्लोक ५२।

४. महासिद्धान्त पृष्ठ १६१, भुवनकोश श्लोक ३५।

५. Sir Robert Ball's Spherical Astronomy pp, 44.

गया कि विषुवद्वृत्तीय भूपरिधि ध्रुवीय भूपरिधि से भिन्न है। इसलिए तुलना के लिए ध्रुवीय भूपरिधि ही लेना उचित होगा क्योंकि आचार्यों ने इसी की नाप से भूपरिधि का परिमाण स्थिर किया था। इसलिए,

आर्यभट के मत से

१०५० योजन = ७९०० मील

$\therefore$ १ योजन = $\frac{७९००}{१०५०}$ मील

= ७.५२ मील

यदि १ योजन में चार कोस हों तो

१ कोस = $\frac{७.५२}{४}$ मील = १.८८ मील

सिद्धान्तशिरोमणि के मत से

१५८१ योजन = ७९०० मील

$\therefore$ १ योजन = $\frac{७९००}{१५८१}$ मील

= ५ मील

$\therefore$ १ कोस = $\frac{१}{४}$ योजन = १$\frac{१}{४}$ मील

आजकल १ कोस २ मील के समान समझा जाता है इसलिए आजकल का योजन आर्यभट के योजन से बहुत मिलता है। सिद्धान्तशिरोमणि वाला कोस आजकल के 'गऊ-कोस' (गो-कोस) के कदाचित् समान हो, जो किसी-किसी प्रान्त में अब तक प्रचलित है।

अब प्रश्न यह रह गया कि भूपरिधि नापी कैसे गयी। सूर्य सिद्धान्त में इस विषय पर कुछ नहीं लिखा गया है। भास्कराचार्य[1] कहते हैं कि उत्तर-दक्षिण-रेखा पर स्थित दो स्थानों की दूरी योजनों में नाप लो। उन दो स्थानों के अक्षांशों का भी अन्तर निकालो। फिर त्रैराशिक द्वारा यह जान लेना चाहिये कि जब इतने अक्षांशों में अन्तर होने से दो स्थानों की दूरी इतने योजन होती है तब ३६०° पर क्या होगी। इसकी उपपत्ति यह है :

चित्र ७ में एक ही उत्तर-दक्षिण-रेखा पर स्थित दो स्थानों (स, सा) का योजनात्मक अन्तर स सा नापना चाहिये। फिर दोनों के अक्षांशांतर स भ सा कोण को जानना चाहिये।

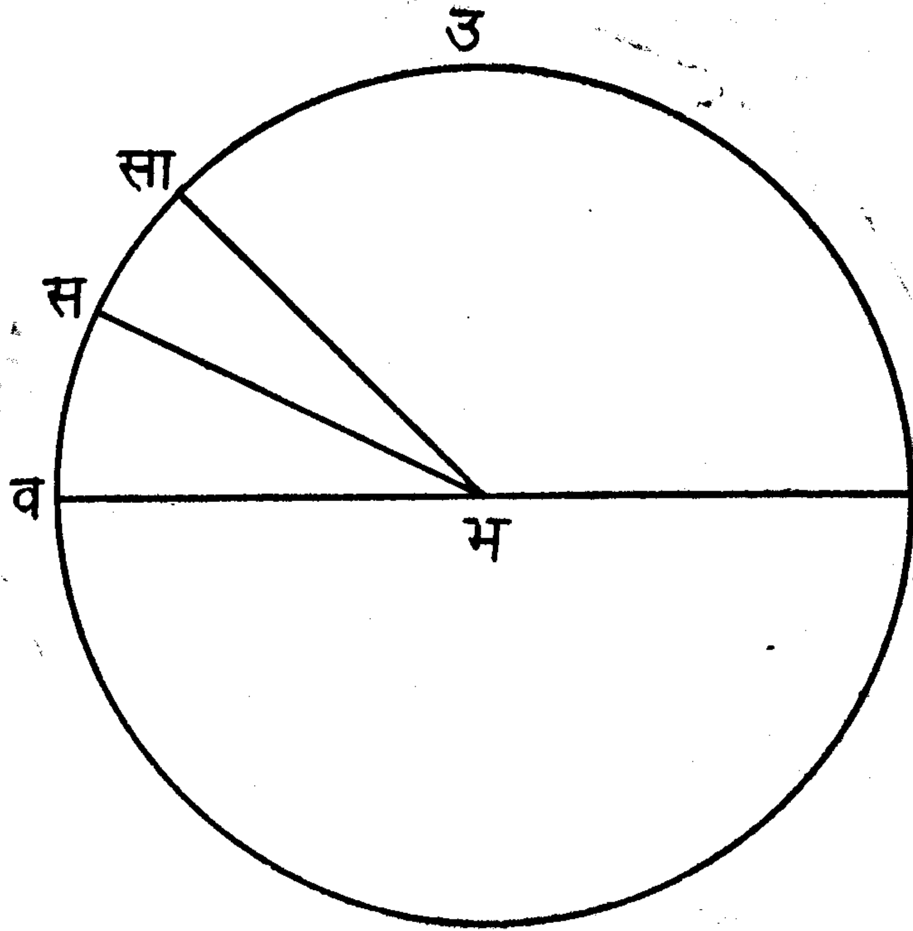
---

१. गोलाध्याय भुवनकोश, पृष्ठ १३ श्लोक १४—

पुरान्तरं चेदिदमुत्तरं स्यात् तदक्ष विश्लेष लवैस्तदाकिम्।
चक्रांशकैरित्यनुपातयुक्त्या युक्तं निरुक्तं परिधेः प्रमाणम्॥

अथवा गणिताध्याय, पृष्ठ ५६ श्लोक १—

याम्योदक पुरयोः पलान्तर हतं भूवेष्ठनं भांश हृत्।
तद्भक्तस्य पुरान्तराध्वन इह ज्ञेयं समं योजनम्॥



चित्र ७

भ=पृथ्वी का केन्द्र ।
वभ=विषुवद्वृत्तीय त्रिज्या ।

उ=उत्तरी ध्रुव या सुमेरु । स, सा एक ही उत्तर-दक्षिण रेखा (meridian) के दो स्थान ।

स का अक्षांश = ∠व भ स ।
सा ,, = ∠व भ सा ।

दोनों के अक्षांशों का अन्तर = ∠स भ सा ।

फिर यह अनुपात करना चाहिए

∠स भ सा : ३६०° : : स सा : भूपरिधि

$$\therefore \text{ भूपरिधि} = \frac{३६०^{\circ} \times \text{स सा}}{\angle \text{स भ सा}}$$

अक्षांश निकालने की रीति त्रिप्रश्नाध्याय नामक तीसरे अध्याय में कई प्रकार से बतलाई जायगी ।

भूपरिधि इसी रीति से आजकल भी नापी जाती है; केवल सूक्ष्मयंत्रों के कारण अब अधिक शुद्धतापूर्वक यह काम किया जाता है ।

लम्बज्याघ्नस्त्रिजीवाप्तस्स्फुटो भूपरिधिः स्वकः ।
तेन देशान्तराभ्यस्ता ग्रहभुक्तिर्विभाजिता ॥६०॥
कलादि तत्फलं प्राच्यां ग्रहेभ्यः प्रविशोधयेत् ।
रेखाप्रतीची संस्थानां प्रक्षिपेत्तु स्वदेशजम् ॥६१॥

अनुवाद—(६०) भूपरिधि को (अपने स्थान की) लम्बज्या से गुणा करके त्रिज्या से भाग देने पर अपने स्थान की स्फुट परिधि निकलती है। अपने स्थान के देशान्तर योजना को ग्रह की दैनिक गति से गुणा करके गुणनफल को इसी स्फुट परिधि से भाग देना चाहिये। (६१) (यदि दैनिक गति कला में ली गयी है तो) फल कला में आवेगा। यदि अपना स्थान लंका से पूरब में हो तो लंका की अर्द्धरात्रि के समय के मध्यमग्रह में से इस फल को घटाना चाहिये और यदि अपना स्थान लंका से पच्छिम में हो तो जोड़ना चाहिये। ऐसा करने से अपने स्थान की अर्द्धरात्रि के समय के मध्यम ग्रह (ग्रहों के मध्यम स्थान) निकल आते हैं ॥६०-६१॥

विज्ञान भाष्य—बीज-गणित के अनुसार इन श्लोकों को इस प्रकार प्रकट कर सकते हैं :—

$$\text{स्फुट परिधि} = \frac{\text{भूपरिधि} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}} \qquad (१)$$

$$\left.\begin{matrix}\text{देशान्तर}\\ \text{फल}\end{matrix}\right\} = \frac{\text{देशान्तर योजन} \times \text{ग्रह की दैनिक गति (कला में)}}{\text{स्फुट परिधि}} \qquad (२)$$

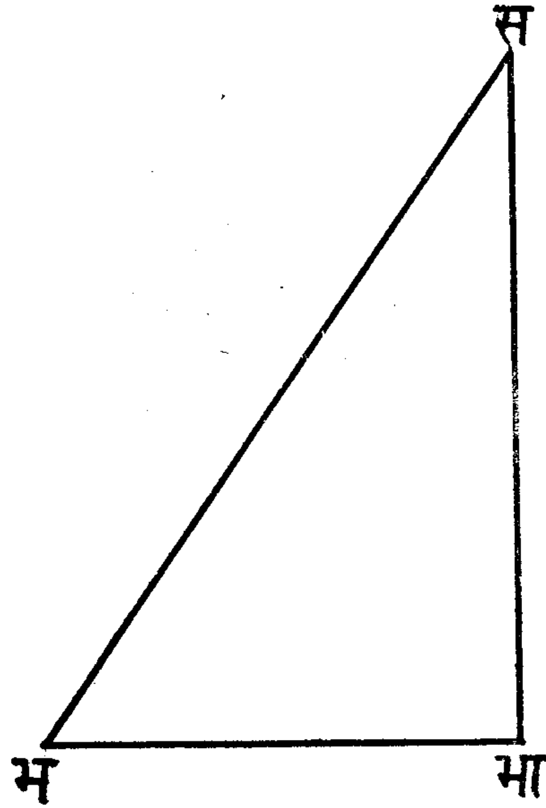
अपने स्थान की अर्द्धरात्रि के समय के मध्यम ग्रह

$$= \text{लंका की अर्द्धरात्रि के मध्यम ग्रह} \pm \text{देशान्तर फल} \qquad (३)$$

यदि स्थान लंका से पूरब हो तो ऋणात्मक चिह्न और पच्छिम हो तो धनात्मक चिह्न लेना चाहिये।

इसकी उपपत्ति समझने के लिए पहले यह जानना चाहिये कि लम्बज्या, स्फुट परिधि, देशान्तर इत्यादि क्या हैं ?

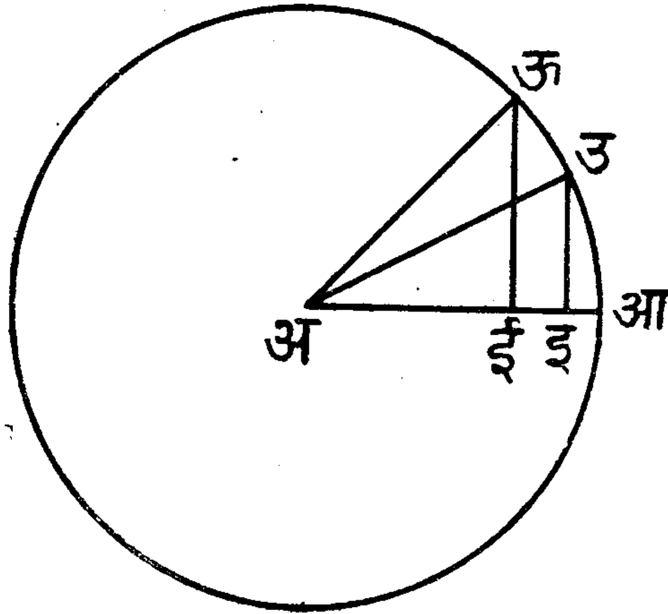
ज्या—यदि किसी समकोण त्रिभुज के किसी भुज की लम्बाई को उसके कर्ण की लम्बाई से भाग दे दिया जाय तो लब्धि उस भुज के सामने के कोण की ज्या कहलाती है। चित्र ८ में स भा भ एक समकोण त्रिभुज है; इसलिए इसके स भ भा कोण की ज्या $= \frac{\text{सभा}}{\text{सभ}}$ और भ स भा कोण की ज्या $= \frac{\text{भभा}}{\text{सभ}}$ । समकोण त्रिभुज के



चित्र ८

कर्ण की लम्बाई किसी भुज की लम्बाई से अधिक होती है; इसलिए किसी भुज के सामने के कोण की ज्या एक से कम होगी इसलिए ज्या दशमलव भिन्न में लिखी जाती है। यह आजकल की प्रथा है। प्राचीन काल में जब कि दशमलव भिन्न का प्रचार नहीं था कोण की ज्या पूर्णाङ्कों में लिखी जाती थी।

किसी कोण की ज्या जानने के लिए हमारे सिद्धान्तों में ऐसा वृत्त लिया गया है, जिसकी त्रिज्या (अर्द्धव्यास) ३४३८ इकाइयां और परिधि २१६०० इकाइयां होती हैं, जिससे एक-एक इकाई एक-एक कला के समान होती है। क्योंकि परिधि एक चक्र के समान होती है जिसमें ३६० अंश अथवा ३६०×६०=२१६०० कलाएँ होती हैं। फिर केन्द्र से परिधि तक दो त्रिज्याएं ऐसी खींचते हैं जिनके बीच का कोण उस कोण के समान होता है जिसकी ज्या जानना है तथा त्रिज्या और परिधि के मिलन-विन्दु से दूसरी त्रिज्या पर लम्ब डालते हैं। इस लम्ब की लम्बाई जितनी इकाइयाँ (कलाएं) होती हैं उसी को उस कोण की ज्या कहते हैं। चित्र ९ में अ केन्द्र है; अ आ, अ उ तथा अ ऊ तीन त्रिज्याएं हैं जो अ से परिधि तक खींची गई हैं। उ या ऊ से उ इ या ऊ ई लम्ब अ आ पर डाले गये हैं। त्रिज्या की नाप ३४३८ इकाइयों में मानकर उ इ या ऊ ई को जो नाप इन्हीं इकाइयों में होगी वह उ अ इ कोण या

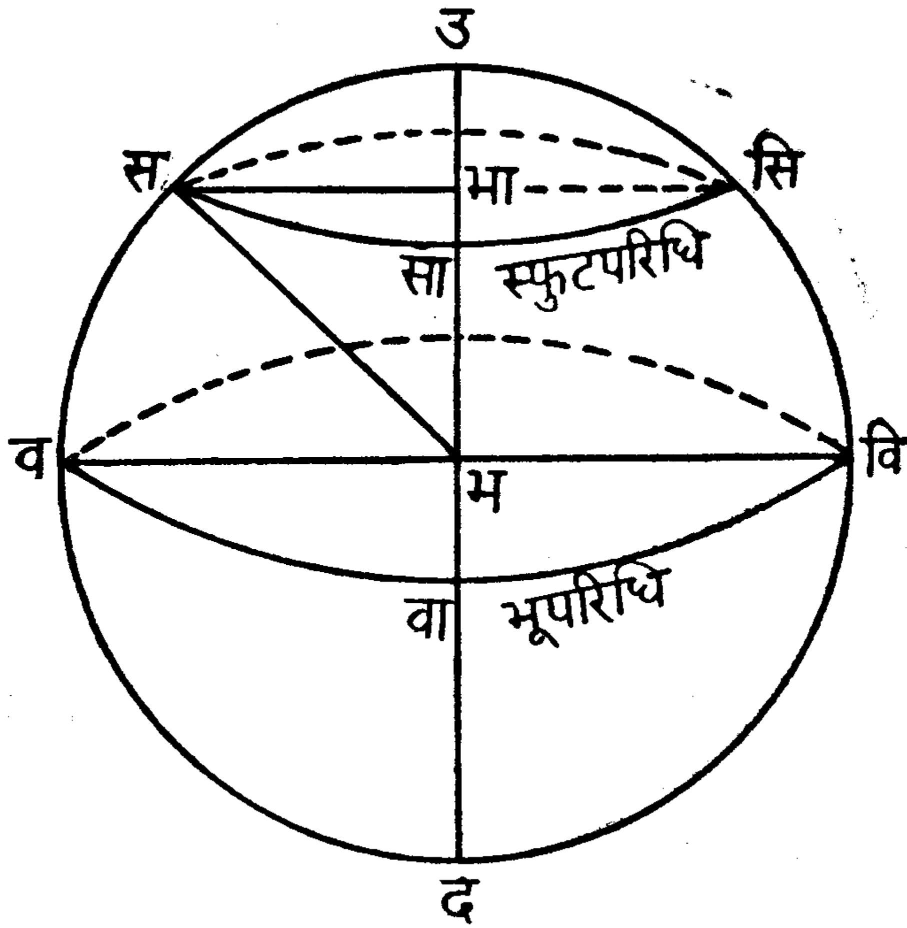


चित्र ९

ऊ अ ई कोण की ज्या कहलायेगी। जो लोग केवल आजकल की प्रथा से परिचित हैं उन्हें भ्रम हो सकता है; इसलिए उन्हें यह भेद अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। त्रिज्या का मान ३४३८ इसलिए लिया गया कि जब परिधि कलाओं में विभाजित की जाती है तब त्रिज्या का मान ३४३७$\frac{3}{4}$ कला आजकल की सूक्ष्म गणना से ठहरता है जिसका निकटतम पूर्णाङ्क ३४३८ है। आजकल के एक रेडियन* (radian) में जितनी कलाएँ होती हैं उतनी ही पूर्ण कलाओं के समान त्रिज्या का परिमाण माना गया है।

स्फुट परिधि—भूतल का वह वृत्त जो उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों से समान अन्तर पर दोनों के बीचों बीच होता हुआ भू पृष्ट को दो समान भागों में बाँटता है विषुवत् रेखा कहलाता है; विषुवत् रेखा के उत्तर वाले आधे भूगोल को उत्तर गोल और दक्षिण वाले को दक्षिण गोल कहते हैं। इस रेखा से आकाशीय ध्रुव (आकाश का वह विन्दु जो पृथ्वी के उत्तरी या दक्षिणी ध्रुव के ठीक ऊपर होता है, उत्तरी ध्रुव तारा उत्तरी ध्रुव से प्राय: १° दूर है) क्षितिज पर दिखाई देते हैं। यहाँ पर अक्षांश शून्य और लम्बांश ९०° होता है। इसलिए विषुवत् रेखा को निरक्षवृत्त भी कहते हैं। चित्र १० में व वा वि विषुवत् रेखा है। यदि किसी स्थान 'स' से निरक्षवृत्त के समानान्तर स सा सि वृत्त (Parallel of latitude) भूतल पर खींचा जाय तो इसके परिमाण को 'स' स्थान की स्फुट परिधि कहते हैं। विषुवत् रेखा से

* १ रेडियन = ५७°·२९५८ = ३४३७·७४८ कला



चित्र १०

भ=पृथ्वी का केन्द्र ।

उ=पृथ्वी का उत्तरी ध्रुव (सुमेरु) ।

द=पृथ्वी का दक्षिणी ध्रुव (कुमेरु) ।

व=विषुवत् रेखा का वह विन्दु जो स के ठीक दक्षिण है ।

स=अभीष्ट स्थान; उसवद स स्थान की उत्तर-दक्षिण रेखा ।

∠व भ स=स का अक्षांश ।

∠स भ उ=स का लम्बांश ।

उ द=पृथ्वी का अक्ष ।

स भ=स से पृथ्वी के अक्ष की दूरी

=स स्थान की लम्बज्या, सिद्धान्तीय पद्धति से

जैसे-जैसे उत्तर या दक्षिण जाइये तैसे-तैसे स्फुट परिधि कम होती जाती है यहाँ तक कि ध्रुवों पर स्फुट परिधि शून्य हो जाती है । इसी तरह अक्षांश बढ़ता जाता है और लम्बांश कम होता जाता है और ध्रुवों पर अक्षांश ६०° और लम्बांश शून्य हो जाता है । चित्र से यह भी प्रकट है कि 'स' स्थान की स्फुट परिधि स सा सि की

त्रिज्या 'स भा' है जो 'स' की लम्बज्या भी कहलाती है, क्योंकि स का लम्बांश $<$ स भ उ है जिसके सामने की भुज स भा है।

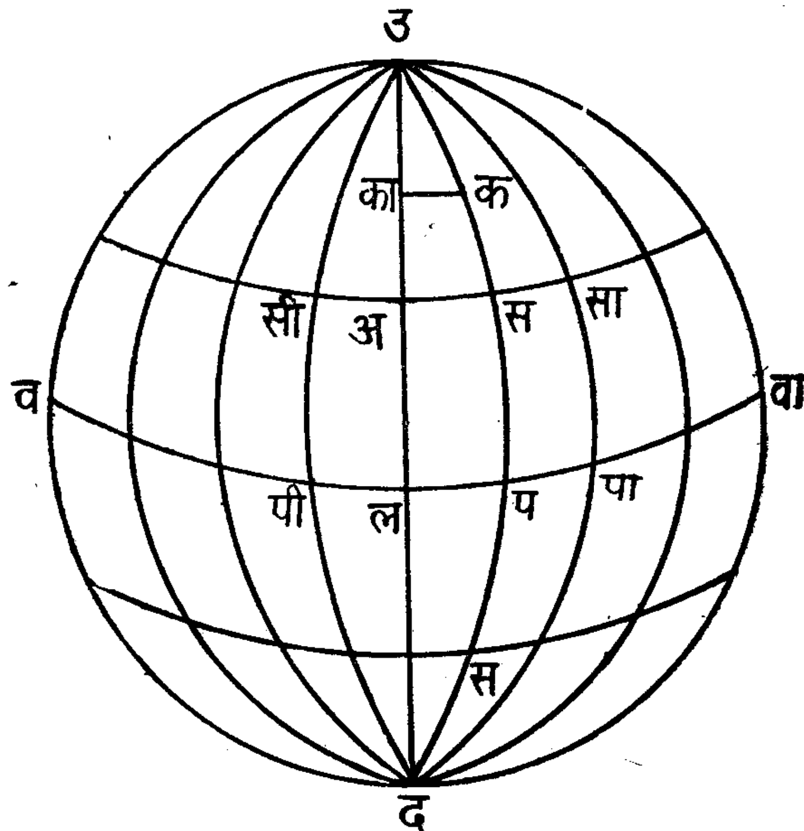
रेखागणित से यह सिद्ध है कि दो वृत्तों की परिधियों में वही अनुपात होता है जो उनकी त्रिज्याओं या व्यासों में होता है इसलिए,

$$\text{व भ : स भा :: व वा वि : स सा सि}$$

$$\therefore \text{स सा सि} = \frac{\text{व वा वि} \times \text{स भा}}{\text{व भ}} = \frac{\text{भू परिधि} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$, जब त्रिज्या ३४३८ हो और लम्बज्या का मान सिद्धान्तीय पद्धति के अनुसार कलाओं में हो जिसकी सारिणी दूसरे अध्याय में दी हुई।

यदि आजकल की प्रथा के अनुसार स्फुट परिधि निकालना हो तो स सा सि = भूपरिधि × लम्बज्या (Sine of Colatitude) जबकि लम्बांश की ज्या दशमलव में दी हुई हो $\left(\text{क्योंकि इस रीति से लम्बज्या} = \frac{\text{स भा}}{\text{स भ}} = \frac{\text{स भा}}{\text{व भ}}\right)$

देशान्तर—चित्र ११ भूगोल के आधे गोले के पृष्ठ का चित्र है जिसमें उत्तर गोल के सी, अ, स, सा स्थानों के अक्षांश एक ही हैं इसलिए इन चारों स्थानों की



चित्र ११

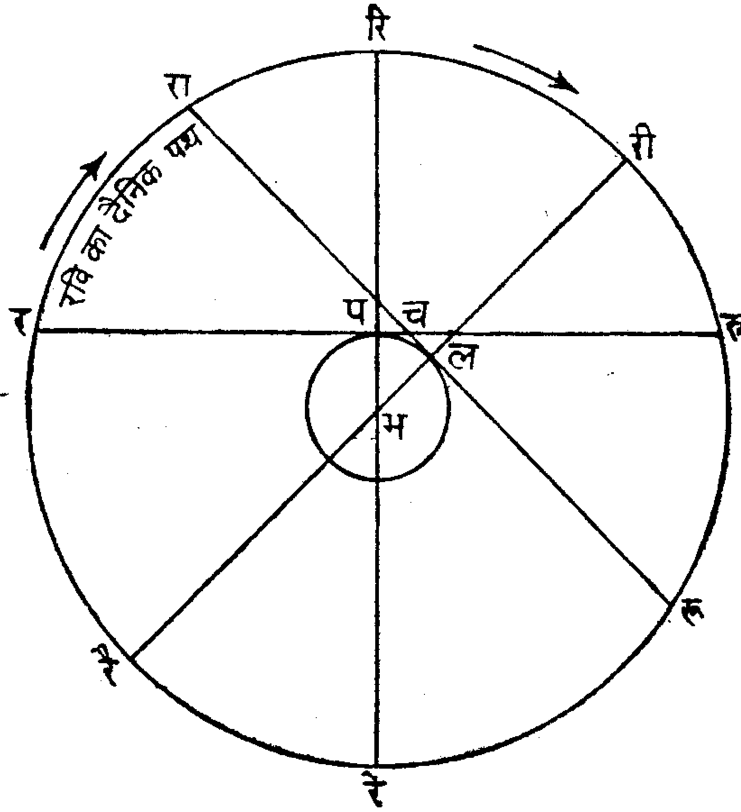
स्फुट परिधि भी एक ही है । इन स्थानों की उत्तर-दक्षिण-रेखा (Meridian) क्रम से उ सी पी द, उ अ ल द, उ स प द और उ सा पा द हैं । यदि उ अ ल द रेखा पर अ अवन्ती (उज्जैन) और ल लंका के स्थान हों तो इसको भारतवर्ष की मध्य रेखा (standard meridian) कहेंगे; जैसे आजकल ग्रीनविच से जाने वाली उत्तर-दक्षिण-रेखा यूरोप और अमेरिका वालों की भूमध्य रेखा कही जाती है । किसी स्थान की स्फुट परिधि का वह खंड जो उस स्थान की उत्तर-दक्षिण-रेखा और मध्य रेखा के बीच में पड़ जाता है उस स्थान का देशान्तर (योजनों में) (Difference of longitude in yojan) कहलाता है, जैसे स का देशान्तर स अ, सा का देशान्तर सा अ और सी का देशान्तर सीअ हुए । इसी तरह प का देशान्तर प ल, पा का देशान्तर पा ल और पी का देशान्तर पी ल हुए । चित्र से यह भी स्पष्ट है कि यद्यपि प, स एक ही उत्तर-दक्षिण रेखा पर है तथापि प, स के देशान्तर (योजनों में) समान नहीं है क्योंकि स की स्फुट परिधि प की स्फुट परिधि (भूपरिधि) से छोटी है । यदि इसी रेखा पर कोई स्थान क हो तो इसका देशान्तर क का (योजनों में) और भी छोटा होगा । ६०वें श्लोक में देशान्तर का शब्द इसी परिभाषा के अनुसार प्रयुक्त हुआ है । परन्तु यह परिभाषा सरल तथा व्यवहारोपयोगी नहीं है । आगे चलकर ६४वें श्लोक में देशान्तर नाड़ी की चर्चा है । यह भी देशान्तर की एक परिभाषा है जो सरल है; इसलिए इस जगह उसको भी समझा देना उचित होगा ।

एक ही उत्तर-दक्षिण रेखा पर जितने स्थान हैं सब में जैसे क, स, प, ख स्थानों में मध्याह्न या अर्द्ध-रात्रि एक ही समय होती है । परन्तु जो स्थान इस रेखा से पूरब है वहां मध्याह्न या अर्द्धरात्रि पहले और जो स्थान पच्छिम हैं वहाँ पीछे होती है । स पर अ से (मध्य रेखा से) जितना पहले मध्याह्न होता है उतने ही समय को हम स का पूर्व देशान्तर काल (Time difference of longitude) कहते हैं । इसे हम समय की इकाइयों में प्रकट कर सकते हैं; यदि घड़ी पल में लिखें तो इसे देशान्तर घटिका या देशान्तर-नाड़ी कहेंगे और यदि घंटे मिनट में लिखें तो देशान्तर घंटा या मिनट कहेंगे । इस परिभाषा से हमको यह सुविधा होती है कि एक ही बात से हम क, स, प, ख सब का देशान्तर सहज ही प्रकट कर सकते हैं, जब कि योजनों में इनके देशान्तर भिन्न-भिन्न लिखने पड़ेंगे ।

इसी प्रकार सी पर मध्य रेखा से जितना पीछे मध्याह्न होता है उस समय को सी का पच्छिम देशान्तर काल कहेंगे ।

आगे पीछे मध्याह्न या मध्यरात्रि इसलिए होती है कि पृथ्वी २४ घंटे में या ६० घड़ी में एक बार अपने अक्ष पर पच्छिम से पूरब की ओर लट्टू की तरह घूम जाती है जिससे सूरज चाँद तारे इत्यादि आकाशीय पिंड पूरब से पच्छिम को चक्कर

लगाते हुए जान पड़ते हैं। आकाशीय पिंडों की इस प्रत्यक्ष गति को ही हमारे सिद्धान्तों में प्रवह-वायु-जनित गति कहा गया है। आगे सुविधा के लिए सूरज को ही कभी-कभी चक्कर लगाता हुआ लिखा जायगा, क्योंकि ऐसा मान लेने से हिसाब में कोई बाधा नहीं पहुँचती।



चित्र १२

चित्र १२ में भ पृथ्वी का केन्द्र और प, ल विषुवत् रेखा पर के दो स्थान है; प भ पृथ्वी का अर्द्धव्यास है जो चित्र को स्पष्ट करने के लिए बहुत बढ़ाकर खींचा गया है, यथार्थ में सूर्य की दूरी पृथ्वी के अर्द्धव्यास की कोई तेईस हजार गुनी है। सूर्य पृथ्वी के चारों ओर ६० घड़ी में र रा रि री···मार्ग से एक बार चक्कर लगा लेता है। विषुवत् रेखा को छूती हुए र प रु एक स्पर्श-रेखा है जो प की क्षितिज कहलाती है। जब सूर्य इसके ऊपर रहता है तब प स्थान से दिखाई पड़ता है। जब सूर्य क्षितिज से ऊपर 'र' विन्दु के पास आवेगा तब प निवासियों के लिए सूर्योदय होगा। प में जिस समय मध्याह्न होगा उस समय सूर्य रि पर रहेगा। जब वह रु पर आवेगा तब प-निवासियों का डूबता हुआ देख पड़ेगा और जब रे पर आवेगा तब प में मध्यरात्रि होगी। इसी प्रकार ल स्थान से सूर्य का उदय उस समय देख पड़ेगा जब वह रा' पर होगा, मध्याह्न उस समय होगा जब वह 'री' पर रहेगा, सूर्यास्त उस

समय होगा जब वह 'रू' पर रहेगा और अर्द्धरात्रि उस समय होगी जब वह 'रै' पर रहेगा।

चित्र से यह स्पष्ट है कि जिस समय 'प' पर सूर्योदय होगा उस समय से उतनी देर पीछे 'ल' पर सूर्योदय होगा जितनी देर में सूर्य 'र' से 'रा' तक जाता है। परन्तु र से रा तक जाने में उसको र च रा कोण अथवा प भ ल कोण घूमना पड़ता है क्योंकि परिधि की दो स्पर्श-रेखाओं के बीच का कोण स्पर्श-विन्दुओं से खींची गयी त्रिज्याओं के बीच के कोण के समान होता है। यह बात मध्याह्न काल या मध्यरात्रि की सूर्य की स्थितियों से और भी सरलतापूर्वक समझ में आयगी; क्योंकि यह बतलाया ही जा चुका है कि सूर्य के 'रि' पर आने से 'प' पर और 'री' पर आने से 'ल' पर मध्याह्न होता है इसलिए जितनी देर में सूर्य रि' से 'री' तक जाती है प की अपेक्षा उतनी ही देर पीछे ल पर मध्याह्न होगा। इसी समय को 'प' 'ल' के बीच का देशान्तर काल कहते हैं। प, ल के देशान्तर को प भ ल कोण से भी प्रकट कर सकते हैं और देशान्तर को अंश, कला विकला में भी लिख सकते हैं चाहे देशान्तर प्रकट करने की इकाई घड़ी पल में हो, चाहे अंश कला में, दोनों तरह से सुविधा होती है और जहाँ जिसकी आवश्यकता पड़ती है वहाँ वही लिखते हैं। यह स्पष्ट ही है कि ६० घड़ी में अथवा २४ घंटे में सूरज एक चक्कर अर्थात् ३६०° चलता है इसलिए एक घड़ी में ६° और १ घंटों में १५° चलेगा; इसलिए यदि दो स्थानों का देशान्तर एक अंश हो तो उन दोनों के मध्याह्न काल या मध्यरात्रि के समयों में १० पल अथवा ४ मिनट का अन्तर होगा। संक्षेप में यों लिखा जाता है कि दोनों का देशान्तर १°, १० पल अथवा ४ मिनट है। साधारणतः मध्य रेखा से देशान्तर नापने की परिपाटी है। जो स्थान मध्य रेखा से पूरब में है उनके देशान्तर के पहले 'पूर्व' और जो पच्छिम में हैं उनके देशान्तर के पहले 'पच्छिम' अवश्य लिख देना चाहिये, नहीं तो भ्रम होने का डर रहता है।

चित्र से यह भी सहज ही जाना जा सकता है कि यदि लंका (ल) की अर्द्ध रात्रि के समय का किसी ग्रह का मध्यम स्थान निकाला जाय तो वह 'प' स्थान की अर्द्ध रात्रि के समय का भी मध्यम स्थान नहीं होगा क्योंकि प लंका से पूरब है इसलिए वहाँ अर्द्ध रात्रि पहले ही हो जायगी और ग्रह सदा गतिमान होने के कारण लंका के मध्यम स्थान से कुछ पहले रहेगा। कितना पहले रहेगा, इसकी जानकारी त्रैराशिक द्वारा करनी चाहिये कि जब ६० घड़ी में ग्रह इतना चलता है तो 'प' की देशान्तर घड़ी में कितना चलेगा। जो आवे वह लंका की अर्द्ध रात्रि के मध्यम स्थान से घटा देना चाहिये। यदि स्थान मध्य रेखा से पच्छिम हो तो वहाँ मध्य रात्रि लंका की मध्य रात्रि से उस स्थान की देशान्तर घड़ी के समान पीछे होगी और ग्रह इतनी

देर में कुछ आगे बढ़ जायगा। इसलिए पच्छिम के स्थानों के लिए त्रैराशिक द्वारा जो कुछ आवे वह जोड़ना चाहिये।

देशान्तर को यदि योजन में न लिख कर घड़ी या अंश में लिखा जाय तो ६०वें श्लोक के नियम का सरल रूप यह होगा :—

६० घड़ी : देशान्तर घड़ी :: ग्रह की दैनिक गति : देशान्तर घड़ी में गति

$$\text{अर्थात् देशान्तर फल} = \frac{\text{देशान्तर घड़ी} \times \text{ग्रह की दैनिक गति}}{\text{६० घड़ी}} \qquad (४)$$

इस एक समीकरण से ६०वें श्लोक के नीचे दिये हुये पहले दो समीकरणों का काम निकल जायगा और सरलता भी होगी; क्योंकि उन समीकरणों के लिए देशान्तर घड़ी से ही देशान्तर योजन आगे के ६४-६५ श्लोकों के अनुसार बनाना पड़ता है। इसलिए सीधी ही क्रिया क्यों न की जाय ?

आगे के श्लोक में यह बतलाया गया है कि मध्यरेखा पर कौन-कौन नगर पड़ते हैं।

राक्षसालयदेवौकश्शैलयोर्मध्यसूत्रगा ।
रोहीतकमवन्ती च यथा सन्निहितं सरः ॥६२॥

अनुवाद—(६२) राक्षसालय अर्थात् लंका और देवलोक अर्थात् सुमेरु पर्वत (उत्तरी ध्रुव) के बीच से गयी हुई रेखा पर जो देश हैं जैसे रोहीतक, अवन्ती, कुरुक्षेत्र इत्यादि (वे मध्य रेखा पर हैं) ॥६२॥

विज्ञान भाष्य—पिछले श्लोक के विज्ञान भाष्य में देशान्तर के सम्बन्ध में मध्य रेखा की चर्चा अच्छी तरह हुई है। यहाँ इतना कहना और आवश्यक है कि उज्जैन से होती हुई उत्तर-दक्षिण-रेखा विषुवत् रेखा से जिस स्थान पर मिलती है उसे ही लंका कहते हैं। ज्योतिष की यह लंका वही लंका है, जिसमें रावण रहता था अथवा अन्य कल्पित स्थान है और गणित की सुविधा के लिए मान लिया गया है, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। कुछ लोग[1] वर्तमान सिंहल द्वीप (सीलोन) को ही रावण की लंका और पोलन नरुआ को रावण की राजधानी कहते हैं और अनुमान करते हैं कि यह पौलस्त्य-नगर का अपभ्रंश है।

रोहीतक वर्तमान रोहतक है या इस नाम का कोई और स्थान था यह विचारणीय है; क्योंकि वर्तमान रोहतक का देशान्तर इंडियन क्रोनोलाजी पृ० १९० में १९२ सेकंड 'पूर्व' दिया हुआ है, जिससे जान पड़ता है कि रोहतक मध्य रेखा से

---

१. देखो श्रावण १९८० वि की माधुरी पृष्ठ ६-७।

८ पल पूरब[1] है। कुरुक्षेत्र का देशान्तर आजकल क्या माना जाता है यह जानने के लिए यहाँ कोई साधन नहीं है, इसलिए यह नहीं सिद्ध किया जा सकता कि कुरुक्षेत्र ठीक-ठीक मध्य रेखा पर ही है या इससे कुछ पूरब-पच्छिम हटा हुआ है।

आगे के तीन श्लोकों में यह बतलाया गया है कि चन्द्रग्रहण से देशान्तर घड़ी कैसे जानी जाती है और उससे देशान्तर से योजन कैसे निकाला जाता है :

> अतीत्योन्मीलनादिन्दोः पश्चात्तद गणितागतात्।
> यदा भवेत्तदा प्राच्यां स्वस्थानं मध्यतो भवेत् ॥६३॥
> अप्राप्य वा भवेत्पश्चात् एवं वाऽपि निमीलनात्।
> तयोरन्तरनाडीभिः हन्याद्भूपरिधिं स्फुटम् ॥६४॥
> षष्ट्या विभज्य लब्धैस्तैर्योजनैः प्राक्तथापरे।
> स्वदेशपरिधिर्ज्ञेयः कुर्याद्देशान्तरं हि तैः ॥६५॥

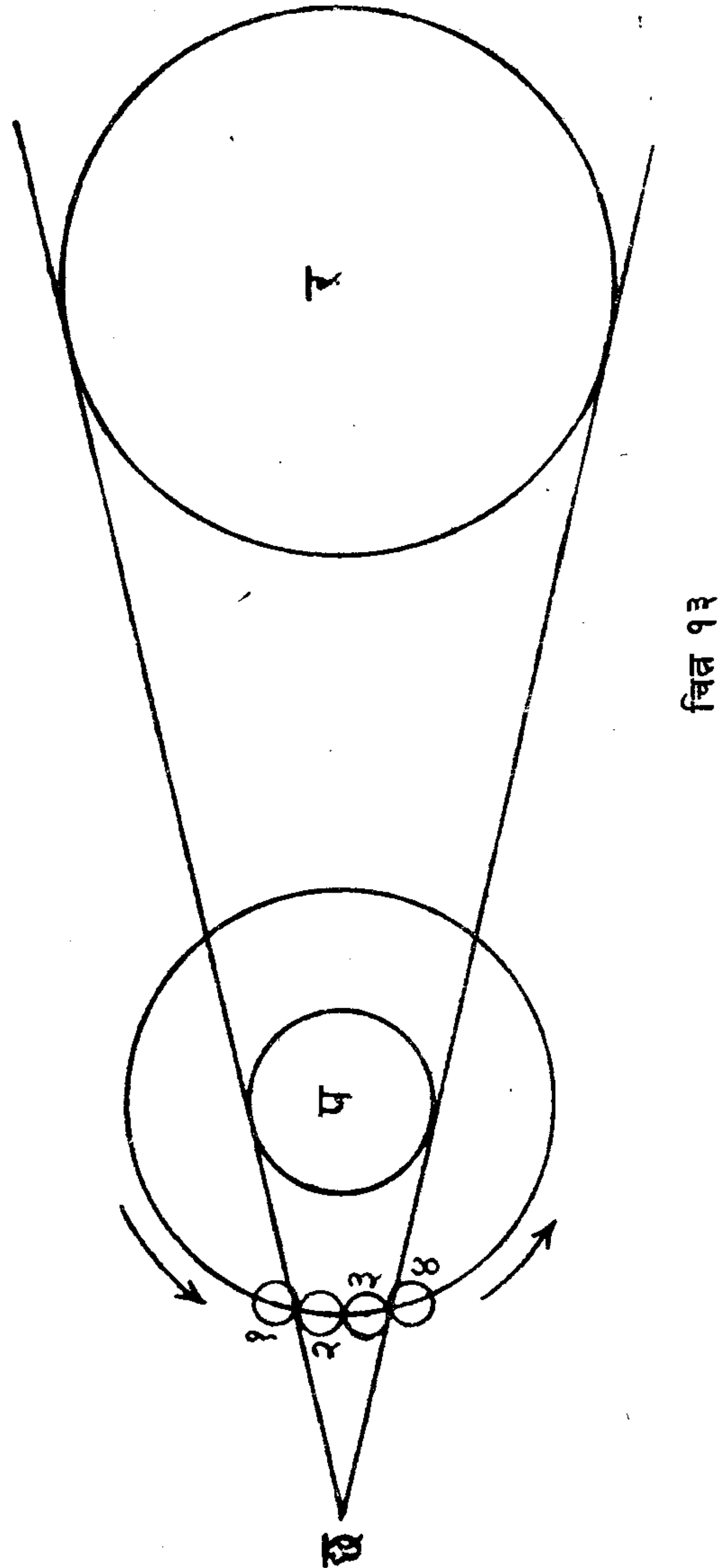
अनुवाद--(६३) मध्य रेखा पर (उज्जैन या लंका की उत्तर-दक्षिण रेखा पर) किस समय (मध्य रात्रि से कितनी घड़ी पीछे) पूर्ण ग्रसित चंद्रमा अंधकार से बाहर निकलने लगेगा, यह गणित से जान लेना चाहिये। फिर वेध करके देखना चाहिये कि अपने स्थान में किस समय (अपने यहाँ की मध्य रात्रि से कितनी घड़ी पीछे) पूर्णग्रसित चंद्रमा अंधकार से बाहर निकलने लगता है। यदि गणित-सिद्ध समय से दृक्-सिद्ध समय (यंत्र द्वारा वेध करके जाना हुआ समय) अधिक हो तो समझना चाहिये कि अपना स्थान मध्य रेखा से पूर्व है और (६४) यदि गणित-सिद्ध समय से दृक्-सिद्ध समय कम हो तो समझना चाहिये कि अपना स्थान मध्य रेखा से पच्छिम है। इसी प्रकार उस समय को भी देख कर यह बात जानी जा सकती है जिस समय चंद्रमा का पूर्ण विम्ब अंधकार में चला जाता है। गणित-सिद्ध और दृक्-सिद्ध कालों में जो अन्तर हो वही अपने यहाँ का देशान्तर काल या देशान्तर घड़ी कहलाता है (क्योंकि काल प्रायः घड़ियों में लिखा जाता है)। इस देशान्तर घड़ी को स्फुट परिधि से गुणा करके (६५) गुणनफल को साठ से भाग देने पर जो लब्धि आवे वही अपने स्थान का पूर्व देशान्तर योजन है (यदि स्थान पूर्व में हो) और पच्छिम देशान्तर योजन है (यदि स्थान पच्छिम में हो)। इसी देशान्तर योजना से (६०-६१ श्लोकों में बतलायी हुई रीति के अनुसार ग्रहों का) देशान्तर संस्कार करना चाहिये ॥६३-६५॥

---

१. शायद इसीलिए भास्कराचार्य ने रोहतक को मध्य रेखा पर नहीं लिखा है—

> यल्लङ्कोज्जयिनीपु रोपरिकुरुक्षेत्रादि देशान् स्पृशत्।
> सूत्रं मेरुगतंवुधैर्निगदिता सामध्य रेखाभुवं ॥

गणिताध्याय पृष्ठ ५७



चित्र १३

विज्ञान भाष्य—निमीलन=(१) आंखों का बंद होना, (२) लुप्त होना, (३) चन्द्रमा के पूरे विम्ब का अंधकार में चला जाना। इसलिए निमीलन काल उस

समय को कहते हैं जिस समय खग्रास या सम्पूर्ण ग्रहण का आरंभ होता है। इसको सम्मीलन काल भी कहते हैं।

उन्मीलन=(१) आँखों का खोलना, (२) प्रकट होना, (३) पूर्ण ग्रसित चन्द्रमा का अंधकार से बाहर निकलना। इसलिए उन्मीलन काल उस समय को कहते हैं जिस समय चन्द्रमा का पूर्णग्रसित बिम्ब अंधकार से बाहर निकलने लगता है।

स्पर्श काल उस समय को कहते हैं जिस समय चन्द्रमा का बिम्ब अंधकार में घुसने लगता है अर्थात् जिस समय से यथार्थ ग्रहण का आरंभ होता है।

मोक्ष काल उस समय को कहते जिस समय चन्द्रमा का पूरा बिम्ब अंधकार के बाहर आ जाता है।

चित्र १३ में र रवि का केन्द्र, प पृथ्वी का केन्द्र और छ पृथ्वी की छाया की नोक है। चन्द्रकक्षा में चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता है। जब चन्द्रमा का केन्द्र चन्द्रकक्षा के उस विन्दु पर पहुँचता है जहाँ १ लिखा हुआ है तब चन्द्र बिम्ब पृथ्वी-की छाया को स्पर्श करता है, इसलिए चन्द्रमा की यह स्थिति ग्रहण के समय स्पर्श काल की स्थिति है। इसी समय चन्द्र बिम्ब अंधकार में प्रवेश करता हुआ देख पड़ता है। जब चन्द्रमा उस स्थिति पर पहुँचता है जो २ अंक से सूचित किया गया है तब उसका पूरा बिम्ब अंधकार में हो जाता है। यह सम्मीलन काल अथवा निमीलन काल की स्थिति है। जब चन्द्रमा उस स्थिति पर पहुँचता है जो ३ अंक से प्रकट किया गया है तब चन्द्रमा अंधकार से बाहर निकलने को होता है। यही उन्मीलन काल की स्थिति है। और जब चन्द्रमा का पूरा बिम्ब अंधकार के बाहर निकल आता है जैसा कि ४ अंक से प्रकट किया गया है तब मोक्ष काल की स्थिति होती है।

इन चार घटनाओं में से कोई घटना आकाश में जिस समय होती है उसी समय[1] भूतल पर भी देख पड़ती है। परन्तु भूतल के सब स्थानों में सूर्योदय या मध्याह्न जिससे घड़ियाँ[2] सुगमतापूर्वक शुद्ध की जा सकती हैं, एक ही समय नहीं होता जैसा कि ६०-६१ श्लोकों के विज्ञान-भाष्य में देशान्तर की परिभाषा बतलाते हुए सिद्ध किया गया है, इसलिए भिन्न-भिन्न स्थानों की घड़ियों में किसी घटना के देखने का समय भिन्न होता है। मध्य रेखा से पूर्व के स्थानों की घड़ियाँ मध्य रेखा

---

१. यदि प्रकाश की गति का भी विचार किया जाय तो यह कहना अधिक शुद्ध होगा कि चन्द्रमा की कोई घटना भूतल पर सवा सेकंड पीछे देख पड़ती है।

२. समय जानने के यंत्र।

की घड़ी से देशान्तर काल के समान आगे रहती हैं क्योंकि यहाँ सूर्योदय पहले होता है। इसलिए यहाँ जिस समय ग्रहण देख पड़ेगा वह मध्य रेखा के समय से अधिक होगा और पच्छिम के स्थानों में कम। मध्य रेखा पर जिस समय ग्रहण देख पड़ता है वही गणित करने पर भी निकलता है। इसलिए गणित से यह जान कर कि मध्य रेखा पर कौन घटना कब देख पड़ेगी और अपने स्थान की घड़ी के अनुसार कब देख पड़ती है, यह सहज ही जाना जा सकता है कि इन दोनों स्थानों के स्थानीय कालों में क्या अन्तर है। यही अन्तर अपने स्थान का देशान्तर काल कहलाता है।

देशान्तर काल जानने के लिए उन्मीलन काल की स्थिति जानने की चर्चा पहले की गयी है। इसका कारण यह है कि उस समय चंद्रमा अंधकार से बाहर निकलने को होता है, भूतल पर भी अंधकार छाया रहता है इसलिए ज्यों ही चंद्र बिम्ब प्रकाश में आने लगता है त्यों ही स्पष्टतापूर्वक देख पड़ता है और समय जानने में बहुत अशुद्धि नहीं होती। सम्मीलन काल के समय चन्द्रमा किस समय अंधकार में पूरा प्रवेश करता है यह जानने में कुछ कठिनाई होती है इसलिए इससे देशान्तर काल निकालने में कुछ अशुद्धि हो सकती है। स्पर्श काल और मोक्ष काल के समय तो कई पल तक यह पता नहीं लग सकता है कि यथार्थ घटना किस समय हुई, इसलिए देशान्तर काल निकालने के लिए इनसे काम नहीं लिया जाता।

देशान्तर काल से देशान्तर योजन कैसे जाना जाता है यह ६०-६१ श्लोकों के विज्ञान भाष्य से समझना चाहिये। यह बात तो स्पष्ट है कि सूर्य ६० घड़ी में पृथ्वी की परिक्रमा कर लेता है जिसमे किसी स्थान की स्फुट परिधि के चारों ओर वह ६० घड़ी में घूम आता है, इसलिए किसी स्थान के देशान्तर काल में स्फुट परिधि का वह खंड पूरा होगा जो उस स्थान से मध्यरेखा का अन्तर है। त्रैराशिक द्वारा इसे यों प्रकट करते हैं :—

६० घड़ी : देशान्तर घड़ी :: स्फुट परिधि : देशान्तर योजन।

यहाँ देशान्तर जानने की कुछ अन्य रीतियों की चर्चा संक्षेप में करना आवश्यक है।

देशान्तर जानने की रीतियां :—एक रीति तो ऊपर लिखी जा चुकी है। यह बहुत पुरानी रीति है और जब आजकल की तरह सूक्ष्म यंत्रों का निर्माण नहीं हुआ था तब इससे बढ़कर कोई दूसरी रीति हो भी नहीं सकती थी। आजकल जितनी रीतियाँ प्रचलित हैं उनमें से अधिकांश इसी के रूपान्तर हैं, यदि कुछ अन्तर है तो यह कि आजकल ग्रहण इत्यादि आकाशीय घटनाओं के होने के समय का सूक्ष्म ज्ञान किया जा सकता है जिससे देशान्तर काल जहाँ तक संभव है बहुत सूक्ष्मतापूर्वक जाना जा सकता है। जो रीति ऊपर बतलायी गयी है उसमें कुछ अशुद्धि रह जाती

है, इसका कारण यह है कि कोरी आँख से अथवा दूरवीक्षण यंत्र से यह ठीक-ठीक नहीं देखा जा सकता कि चन्द्र ग्रहण का उन्मीलन अथवा सम्मीलन किस क्षण से आरम्भ हो जाता है। यदि पास ही पास के दो दर्शक अपनी अपनी घड़ी लेकर यह देखने बैठें कि सम्मीलन किस समय आरम्भ होता है और चुपके से उस समय को लिख लें जिस समय प्रत्येक को सम्मीलन देख पड़े तो देखा जाता है कि उन दोनों के देखे हुए कालों में दो-[1]तीन मिनट का अन्तर होता है। शायद यही कारण है जिससे उज्जैन, कुरुक्षेत्र और रोहतक के देशान्तरों में दो तीन मिनट का अन्तर है यद्यपि यह ६२वें श्लोक में एक ही उत्तर-दक्षिण रेखा पर अर्थात् भूमध्य रेखा पर बतलाये गये हैं। नीचे ग्रीनविच से इन स्थानों के देशान्तरों की तुलना की जाती है :—

नगर	ग्रीनविच से देशान्तर		उज्जैन से देशान्तर (कोणात्मक)		उज्जैन से देशान्तर (कालात्मक)			
					घड़ी	पल	विपल	मिनट सेकंड
उज्जैन[2]	७५°४६′६″	पूर्व						
कुरुक्षेत्र[3]	७६°२०′	,,	०°३३′५४″	पूर्व	०	५	३९	(२ १५.६)
रोहतक	७६°३५′	,,	०°४८′५४″	,,	०	८	९	(३ १५.६)
काशी[4]	८३°३′४″	,,	७°१६′५८″	,,	१	१२	५०	(२९ ८)

इन अंकों से सिद्ध है कि चंद्रग्रहण से देशान्तर जानने की रीति में दो तीन मिनट का अन्तर हो सकता है।

दूसरी रीति—जिस प्रकार चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता है और उसमें ग्रहण लगता है इसी प्रकार वृहस्पति के चारों ओर भी ४, ५ पिंड परिक्रमा करते हुए दूरवीक्षण यंत्र से देखे जाते हैं। यह वृहस्पति के चन्द्रमा कहलाते हैं। जब यह बृहस्पति की छाया में घुसते हैं तो इनमें भी ग्रहण लगता है। वृहस्पति के चन्द्रमा बहुत छोटे हैं और इनके परिक्रमण काल भी छोटे हैं इसलिए इनमें ग्रहण जल्दी-जल्दी लगते हैं। ग्रहण के कारण इनके छिपने और प्रकट होने का समय ग्रीनविच काल के अनुसार नाविक पंचांगों में (Nautical almanac) दिया रहता है। इसलिए यदि किसी स्थान में उसके स्थानीय काल के अनुसार वृहस्पति के चन्द्रमा के छिपने या प्रकट होने

१. Godfray's Treatise on Astronomy. Sixth edition, page 261.

२. Indian Chronology, page 60.

३. Imperial Gazetteer of India.

४. भारत भ्रमण (मकरंद सारिणी में काशी का देशान्तर ६९ पल दिया है जो ऊपर के मान से ४ पल कम है)।

का समय देखा जाय तो नाविक पंचांग में दिये हुए समय से जो अन्तर होता है वही उस स्थान का ग्रीनविच से देशान्तर है। परन्तु यह रीति भी ऊपर कही हुई रीति की तरह स्थूल है क्योंकि वृहस्पति के चंद्रमा के छिपने या प्रकट होने का क्षण निश्चित रूप से दूरवीक्षण से भी नहीं जाना जा सकता परन्तु इसमें उतनी अशुद्धि नहीं होती जितनी पहली रीति में होती है।

तीसरी रीति—टूटनेवाले तारों के प्रकट होने और लुप्त होने के क्षण को भिन्न-भिन्न स्थानों के स्थानीय कालों से तुलना करने पर देशान्तर सूक्ष्मतापूर्वक जाना जा सकता है यदि तारों के टूटने के समय का निश्चय पहले से हो सके और उनके पहचानने में कोई गड़बड़ न हो।

चौथी रीति : विद्युत द्वारा समाचार भेज कर देशान्तर जानना—यदि दो स्थानों का एक दूसरे से ऐसा सम्बन्ध हो कि एक स्थान से दूसरे स्थान को विद्युत् द्वारा समाचार भेजा जा सके तो इन दोनों स्थानों का देशान्तर सहज ही जाना जा सकता है क्योंकि विद्युत् समाचार के पहुँचने में इतना कम समय लगता है कि उससे जो अशुद्धि हो सकती है वह नहीं के समान है।

मान लीजिए काशी से लखनऊ का देशान्तर जानना है। दोनों नगरों के दर्शकों को एक ही प्रकार की घड़ी रखनी चाहिये, जैसे यदि एक की घड़ी सावन काल बतलाती हो तो दूसरे की घड़ी भी सावन काल बतलाती हो। दोनों घड़ियों को अपने अपने यहाँ के स्थानीय काल से मिला लेना चाहिये जिससे प्रत्येक घड़ी अपने यहाँ का स्थानीय काल शुद्धतापूर्वक बतला सके। काशी लखनऊ से पूर्व है इसलिए काशी का स्थानीय काल लखनऊ के स्थानीय काल से आगे रहेगा और इन दोनों में जितना अन्तर होगा वही काशी से लखनऊ का देशान्तर है। जिस समय काशी की घड़ी में '$स_1$' समय हो उसी समय काशी से विद्युत् संकेत किया जाय। जिस समय यह संकेत लखनऊ पहुँचे उसी समय लखनऊ की घड़ी में समय देख लिया जाय। यदि इस घड़ी में '$स_2$' समय हो और यह मान लिया जाय कि लखनऊ में संकेत उसी क्षण पहुँचा है जिस क्षण काशी से भेजा गया है तो काशी से लखनऊ का देशान्तर '$द_1$' नीचे लिखे समीकरण से सिद्ध होगा :—

$$द_1 = स_1 - स_2$$

परन्तु इस समीकरण से देशान्तर का जो मान निकलेगा वह यथार्थ देशान्तर से कुछ कम होगा क्योंकि काशी से लखनऊ तक विद्युत् संकेत के पहुँचने में कुछ न कुछ समय अवश्य लगता है। यदि इस समय का मान 'य' हो और काशी से लखनऊ का यथार्थ देशान्तर 'द' हो तो पूर्वोक्त समीकरण का रूप यह होगा :—

$$द = (स_1 + य) - स_2 = द_1 + य \qquad (१)$$

क्योंकि जिस समय लखनऊ में समाचार पहुँचेगा उस समय काशी में '$स_1 + य$' समय होगा। 'य' का मान जानने के लिए लखनऊ से काशी को संकेत भेजकर दोनों के स्थानीय काल फिर जानना चाहिए। मान लीजिए लखनऊ से जिस समय संकेत भेजा गया उस समय लखनऊ की घड़ी में '$सा_2$' समय था और जिस समय संकेत काशी पहुँचा उस समय काशी की घड़ी में '$सा_1$' समय था, और यदि मान लिया जाय कि संकेत के पहुँचने में कुछ समय नहीं लगता तो इन दोनों का अन्तर $द_2$ लखनऊ का देशान्तर होगा जिसका रूप यह है :—

$$द_2 = सा_1 - सा_2$$

परन्तु $द_2$ का मान यथार्थ से कुछ अधिक होगा क्योंकि संकेत के पहुँचने में कुछ न कुछ समय अवश्य लगता है जो 'य' के समान फिर होगा इसलिए यथार्थ देशान्तर

$$द = सा_1 - (सा_2 + य) = (सा_1 - सा_2 - य) = द_2 - य \qquad (२)$$

(१) और (२) समीकरणों के समान पक्षों को जोड़ने से

$$२\, द = द_1 + द_2$$

$$\text{अथवा } द = \frac{द_1 + द_2}{२} \qquad (३)$$

जिसका अर्थ यह हुआ कि काशी से लखनऊ संकेत भेजने से जो देशान्तर काल आवे उसको उस देशान्तर काल में जोड़ दो जो लखनऊ से काशी उलटा संकेत भेजने से ज्ञात हो। फिर दोनों को जोड़कर आधा कर दो तो यथार्थ देशान्तर काल ज्ञात हो जायगा। देशान्तर जानने की और भी कई रीतियाँ हैं जो जहाज़वालों के काम की होती हैं और जिनमें नाविक पंचांग से अथवा ग्रीनविच से मिली हुई घड़ी से सहायता लेनी पड़ती है; इसलिए इस स्थान पर उनका वर्णन नहीं किया जाता है।

वारप्रवृत्तिः प्राग्देशे क्षपार्धेऽभ्यधिके भवेत् ।
स्वदेशान्तरनाडीभिः पश्चादूने विनिर्दिशेत् ॥६६॥

अनुवाद—(६६) जो स्थान मध्य रेखा से पूर्व दिशा में हैं वहाँ वार की प्रवृत्ति अर्थात् दिन का आरम्भ उस स्थान की अर्द्ध रात्रि से उतने समय पीछे होती है जितना उस स्थान का देशान्तर काल है। मध्य रेखा के पच्छिम के स्थान में उस स्थान की अर्द्धरात्रि से उतने समय पहले ही वार की प्रवृत्ति हो जाती है जितना इस स्थान का देशान्तर काल है।

विज्ञान भाष्य—इस नियम के अनुसार काशी में जो उज्जैन से अथवा भारतवर्ष की मध्य रेखा से ७३ पल पूर्व है, वार की प्रवृत्ति उस समय होती है जब

काशी में स्थानीय काल के अनुसार रात को १२ बजकर ७३ पल अर्थात् १२ बजकर २६ मिनट १२ सेकंड होता है, और बम्बई में जो उज्जैन से कोई २६ पल पच्छिम है वार की प्रवृत्ति १२ बजे रात से कोई २६ पल अथवा ११ मिनट ३६ सेकंड पहले ही हो जाती है। इसका अर्थ यह हुआ कि जिस समय भारतवर्ष की मध्य रेखा पर अर्द्धरात्रि होती है उसी समय भारत के अन्य स्थानों में भी वार-प्रवृत्ति समझनी चाहिए। इसलिए ग्रहों का जो स्थान लंका या उज्जैन की अर्द्धरात्रि के समय गणित से सिद्ध होता है वह अन्य स्थानों में उस समय होता है जिस समय वहाँ वार-प्रवृत्ति होती है। इसीलिए यदि किसी स्थान की अर्द्धरात्रि के समय का ग्रह निकालना हो तो देशान्तर-फल घटाना या जोड़ना चाहिये।

यह मत सूर्य सिद्धान्त का है कि वार-प्रवृत्ति उज्जैन की अर्द्धरात्रि के समय सब स्थानों में होती है। ब्रह्मगुप्त,[1] भास्कराचार्य इत्यादि आचार्यों ने वार-प्रवृत्ति उस समय से माना है जिस समय लंका में सूर्योदय होता है क्योंकि इनके मत से सृष्टि का आरम्भ उस समय से हुआ जिस समय लंका में पहले पहल सूर्य देख पड़ा था और इसी समय पहले दिन का भी आरम्भ हुआ था। आजकल यही नियम साधारणतः प्रचलित भी है, हाँ वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायी[3] अर्द्धरात्रि से ही वार की प्रवृत्ति मानते हैं और कम से कम धार्मिक कृत्यों के लिए दिन में वही तिथि मानते हैं जो पिछली आधी रात के समय वर्तमान रहती है, इसलिए इनकी एकादशी प्रायः द्वादशी के दिन होती है। अधिकांश पंचांगों में भी ग्रह स्पष्ट अर्द्धरात्रि के समय का ही दिया रहता है।

इन दोनों मतों में अर्द्ध रात्रि से वार-प्रवृत्ति का मानना अधिक सरल और व्यापक है। एक ही उत्तर-दक्षिण रेखा पर स्थित जितने स्थान हैं सब जगह अर्द्ध रात्रि या मध्याह्न सदा युगपद् होती है परन्तु सूर्योदय वर्ष में दो दिनों को छोड़कर कभी एकसाथ नहीं होता। सूर्योदय सूर्य की क्रान्ति और स्थानों के अक्षांश के

---

१. जगति तमोभूतेऽस्मिन् सृष्टयादौ भास्करादिभिः सृष्टैः।
यस्माद्दिनप्रवृत्तिर्दिनवारोऽर्कोदयात् तस्मात् ॥ ३३ ॥
ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त — मध्यमाधिकार।

२. लङ्कानगर्य्यामुदयाच्च भानोस्तस्यैव वारे प्रथमं बभूव।
मधोःसितादेर्दिन मास वर्ष युगादिकानां युगपत् प्रवृत्तिः ॥१५॥
सिद्धान्त शिरोमणि गणिताध्याय पृष्ठ ७

३. माधुरी, खंड २ संख्या ४ पृष्ठ ४३७।

अनुसार कुछ आगे पीछे होता है जिसकी व्याख्या तीसरे अध्याय में की जायगी। फिर पूरब पच्छिम के देशों में देशान्तर संस्कार के कारण भी सूर्योदय काल में बहुत अंतर पड़ जाता है। इन सब कारणों से वार-प्रवृत्ति कभी-कभी सूर्योदय के घंटे भर पीछे या पहले ही हो जाती है जो बहुत पेचदार है। परन्तु यदि आधी रात से वार-प्रवृत्ति मानी जाय तो सूर्य की क्रान्ति और स्थानों के अक्षांश के कारण कोई भेद नहीं पड़ सकता। हाँ देशान्तर संस्कार फिर भी करना पड़ेगा परन्तु इससे भी वार-प्रवृत्ति रात में ही हो जायगी जिससे कोई गड़बड़ नहीं हो सकता। लोक व्यवहार में भी किसी दिन की प्रातः, संध्या अथवा यात्रा सूर्योदय के पहले ही की जाती है जिससे जान पड़ता है कि साधारणतः सूर्योदय के दो तीन घड़ी पहले से ही दिन का आरम्भ मान लिया जाता है। इस विषय पर धर्म सिंधु[1], निर्णय सिंधु इत्यादि ग्रन्थों में बहुत चर्चा की गयी है।

आजकल यूरोपीय देशों में आधी रात से ही तारीख बदलती है तथा दिन का आरम्भ माना जाता है, इसीलिए अंगरेजी तारीखें भी आधी रात से ही बदलती हैं। इससे बहुत से लोग यह समझते हैं कि आधी रात से वार की प्रवृत्ति मानना अंग्रेजी मत है, परन्तु यह भूल है। हमारे यहाँ भी आधी रात से वार-प्रवृत्ति मानने का नियम है।

यहाँ तक तो यह बतलाया गया कि किसी स्थान की अर्द्ध रात्रि के समय किसी ग्रह का मध्यम स्थान क्या होता है और कैसे जाना जाता है। अगले श्लोक में यह बतलाया जा रहा है कि मध्य रात्रि के सिवा दिन के किसी अन्य समय में मध्यम ग्रह निकालना हो तो क्या करना चाहिये।

इष्टनाडीगुणा भुक्तिष्षष्ट्या भक्ता कलादिकः।
गते शोध्यो युते गम्ये ग्रहस्तात्कालिको भवेत् ॥६७॥

अनुवाद—(यदि मध्य रात्रि के सिवा किसी अन्य समय का मध्यम ग्रह जानना हो तो) इष्ट घड़ी को अर्थात् मध्य रात्रि से जितनी घड़ी पहले या पीछे का समय हो उस घड़ी को ग्रह की दैनिक मध्यम गति से (जो कलाओं में लिखना सुविधा-जनक होता है) गुणा करके गुणनफल को ६० से भाग दे दो। जो लब्धि आवे उसे अर्द्धरात्रि के मध्यम ग्रह में से घटा दो यदि इष्ट काल मध्य रात्रि से पहले ही बीत

---

१. सूर्योदयात् प्राक् घटिकात्रयं प्रातः संध्या, सूर्यास्तोत्तरं घटिकात्रयं सायं संध्या। धर्म सिंधु, प्रथम परिच्छेद पृष्ठ २ निर्णयसागर प्रेस का छपा (शक १८२६)

जाय और जोड़ दो यदि इष्ट काल मध्य रात्रि से पीछे आवे। ऐसा करने से ग्रह का तात्कालिक स्थान निकल आवेगा। ॥६७॥

विज्ञान भाष्य—यह स्पष्ट है कि ग्रह का मध्यम स्थान अर्द्ध रात्रि के समय जो कुछ होता है वह अन्य समय नहीं रहता क्योंकि ग्रह निरंतर चलते रहते हैं। इसलिए अर्द्ध रात्रि के पहले या पीछे किसी इष्ट समय में किसी ग्रह का मध्यम स्थान जानने के लिए यह जानना आवश्यक है कि उस समय में ग्रह कितना हट जायगा। यह बात त्रैराशिक से सहज ही जानी जा सकती है—

६० घड़ी : इष्ट घड़ी :: दैनिक गति : इष्ट घड़ी में गति

$$\therefore \text{इष्ट घड़ी में गति} = \frac{\text{इष्ट घड़ी} \times \text{दैनिक गति}}{\text{६० घड़ी}}$$

इसलिए अभीष्ट काल की ग्रह की स्थिति

$$= \text{अर्द्ध रात्रि की स्थिति} \pm \frac{\text{इष्ट घड़ी} + \text{दैनिक गति}}{\text{६० घड़ी}}$$

यदि इष्ट काल अर्द्धरात्रि के पहले हो तो ऋण का चिह्न रखना चाहिये और पीछे हो तो धन का चिह्न।

यह इतना स्पष्ट है कि उदाहरण देकर पुस्तक का आकार बढ़ाने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

भचक्रलिप्ताशीत्यंशैः परमं दक्षिणोत्तरम्।
विक्षिप्यते स्वपातेन स्वक्रान्त्यंशादनुष्णगुः ॥६८॥
तन्नवांशं द्विगुणितं जीवस्त्रिगुणितं कुजः।
बुधशुक्रार्कजाः पातैर्विक्षिप्यन्ते चतुर्गुणं ॥६९॥
एवं त्रिघनरन्ध्रार्करसार्कार्का दशाहताः।
चन्द्रादीनां क्रमादेषां मध्यविक्षेपलतिप्तिकाः ॥७०॥

अनुवाद—(६८) अपने पात के कारण चन्द्रमा अपने पासवाले क्रान्ति वृत्त के विन्दु से अधिक से अधिक २७० कला उत्तर या दक्षिण हट जाता है। (६९) इसका $\frac{२}{९}$ भाग बृहस्पति, $\frac{३}{९}$ भाग अथवा $\frac{१}{३}$ भाग मंगल और $\frac{४}{९}$ भाग बुध, शुक्र और शनि अपने अपने पातों के द्वारा हट जाते हैं। (७०) इस प्रकार चंद्रादि छः ग्रहों (चन्द्रमा, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, और शनि) के मध्यम विक्षेप २७०, ९०, १२०, ६०, १२०, १२० कलाएँ क्रम से हैं। ॥६८-७०॥

विज्ञान भाष्य—पिछले ३३ वें श्लोक के विज्ञान भाष्य में चंद्रमा के पात का वर्णन है। चित्र ४ में चंद्र कक्षा और क्रान्ति वृत्त एक दूसरे को काटते हुए

दिखलाये गये हैं। जिस समय चन्द्रमा अपने पात पर रहता है उस समय यह क्रान्ति वृत्त पर देख पड़ता है, अन्य समय यह क्रान्ति वृत्त से उत्तर या दक्षिण कुछ हटा हुआ देख पड़ता है। किस समय कितना हटा रहता है यह गणित से सहज ही जाना जा सकता है। जिस समय चंद्रमा पात से ९०° आगे या पीछे रहता है उस समय क्रान्ति वृत्त से परम अंतर पर होता है। चित्र ४ में यह परम अंतर चासा या चस से सूचित होता है। इसी को चंद्रमा का परम विक्षेप कहते हैं। इसी तरह अन्य ग्रह भी क्रान्ति वृत्त से उत्तर या दक्षिण हट जाते हैं जिनके मध्यम विक्षेप ६९-७० श्लोकों में दिये हुए हैं। ग्रहों के विक्षेप और पातों में बहुत घना सम्बन्ध है इसीलिए हमारे प्राचीन आचार्यों का विचार था कि पात ही ग्रहों को उत्तर या दक्षिण ढकेल देते हैं।

ग्रहों के परम विक्षेप सब आचार्यों के मत से एक से नहीं हैं। आजकल सूक्ष्म यंत्रों के द्वारा जो जानकारी हुई है वह हमारे किसी ग्रन्थ के मानों से नहीं मिलती। तुलना के लिए परम विक्षेपों की तालिका नीचे दी जाती है:—

	सूर्य सिद्धान्त	[1]ब्राह्म-स्फुट सिद्धान्त, सिद्धान्त शिरोमणि	[3]महा सिद्धान्त	[4]सिद्धान्त दर्पण	[5]टालमी	[6]आधुनिक
चंद्र	४°३०′	४°३०′	४°३०′	५°९′०″	५°०′	५°८′४२″
मंगल	१°३०′	१°५०′	१°४६′	१°५१′०″	१°०′	१°५१′१″
बुध	२°०′	२°३२′	२°१८′	२°४४′०″	७°०′	७°०′१०″
गुरु	१°०′	१°१६′	१°१४′	१°१८′०″	१°३०′	१°१८′४२″
शुक्र	२°०′	२°१६′	२°१०′	२°१८′०″	३°३०′	३°२३′३७″
शनि	२°०′	२°१०′	२°१०′	२°२९′०″	२°३०′	२°२९′३९″

१. ब्राह्म-स्फुट सिद्धान्त पृष्ठ ७३, ११२।

२. सिद्धान्त शिरोमणि गणिताध्याय पृष्ठ १७५, २१२।

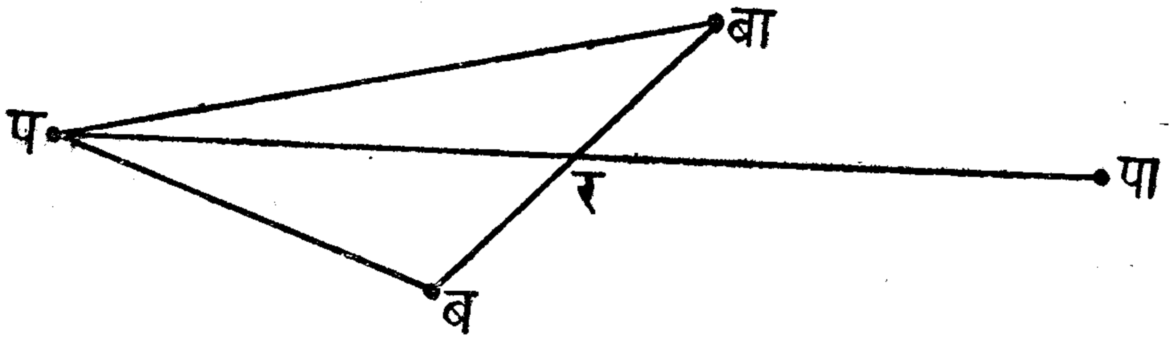
३. महासिद्धान्त स्पष्टाधिकार श्लोक ३९,

४. सिद्धान्त दर्पण पृष्ट ३१, श्लोक ३२-३३, योगेश चन्दराय द्वारा सम्पादित और कलकत्ते से १८९९ ई० में प्रकाशित।

५. भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ट ३२४

६. Sir Robert Ball's Spherical Astronomy. pp 491.

ऊपर की तालिका से देख पड़ेगा कि बुध और शुक्र के मध्य विक्षेपों के आँधुनिक मानों और सिद्धान्तों में दिये हुए मानों में बहुत अंतर है। इसका कारण यह है कि आधुनिक विक्षेप मान रविकेन्द्रगत (heliocentric) हैं अर्थात् वह हैं जो सूर्य के केन्द्र से देख पड़ते हैं और हमारे सिद्धान्तों के मान भूकेन्द्रगत (geocentric) हैं अर्थात् वह हैं जो पृथ्वी के केन्द्र से देखने पर जान पड़ते हैं। दर्शक के स्थानों की भिन्नता के कारण उन ग्रहों के विक्षेपों में बहुत अंतर नहीं पड़ता जो सूर्य से दूर हैं। परन्तु सूर्य के पास वाले ग्रह बुध और शुक्र के विक्षेपों में बहुत अंतर पड़ जाता है जो नीचे के उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा :—



चित्र—१४

दिये हुए चित्र १४ में र रवि का केन्द्र, प पृथ्वी का केन्द्र प र पा क्रान्तिवृत्त और ब र बा बुध कक्षा हैं। र से देखने पर बुध कक्षा क्रान्तिवृत्त से ब र प या बा र पा कोण बनाती है जो आधुनिक मत से ७°०'१०" है। परन्तु पृथ्वी के केन्द्र प से देखने पर बुध कक्षा ब प र कोण बनाती हुई जान पड़ती है जिसका मान ब र प कोण से कहीं कम हैं क्योंकि प ब (बुध से पृथ्वी का माध्यम अंतर) यदि १ है तो ब र (सूर्य से बुध का माध्यम अंतर) केवल ·३८७१ है। त्रिकोणमिति से ब प र कोणिका मान सहज ही निकल सकता है क्योंकि किसी त्रिभुज सामने के कोण की ज्या से भाग देने पर लब्धि समान होती है। इसलिए—

$$\frac{\text{ज्या} \angle \text{बपर}}{\text{ब र}} = \frac{\text{ज्या} \angle \text{बरप}}{\text{प ब}}$$

$$\text{अथवा ज्या} \angle \text{बपर} = \frac{\text{बर}}{\text{पब}} \times \text{ज्या} \angle \text{ब र प}$$

$$= \frac{\cdot\text{३८१७}}{\text{१}} \times \text{ज्या ७०}^{\circ}\text{'१०''}$$

$$= .\text{३८७१} \times .\text{१२१६}$$

$$= \text{०.०४७२}$$

$$\therefore \angle \text{बपर} = \text{२}^{\circ}\text{४२'}$$

यह आधुनिक मत से बुध का भूकेन्द्रगत मध्यम विक्षेप है जो सिद्धान्त शिरोमणि के मध्यम विक्षेप से १०′ अधिक है। सिद्धान्त दर्पण के मान आधुनिक मत से बहुत मिलते हैं।

इसी प्रकार शुक्र का (रविकेन्द्रगत) मध्यम विक्षेप ३°२३′३७″ और सूर्य से मध्यम अंतर .७२३३ है जब कि पृथ्वी का १ है, इसलिए यदि चित्र १४ में ब, बा की जगह शु, शू रखकर शु शू को शुक्र की कक्षा मान ली जाय तो पहले की नांई सम्बन्ध यह होगा—

$$\text{ज्या} \angle \text{शुपर} = \frac{.७२३३}{१} \times \text{ज्या } ३^\circ २३' ३७''$$

$$= .७२३३ \times .०५९२$$

$$= .०४२८$$

$$\therefore \angle \text{शुपर} = २^\circ २७'$$

जो सिद्धान्त शिरोमणि के २°१६′ से ११′ अधिक और सिद्धान्त दर्पण के २°२८′ से केवल १′ कम है।

इससे प्रकट है कि हमारे पुराने आचार्यों के अनुसार बुध, शुक्र के मध्यम विक्षेप आधुनिक मानों से केवल १० या ११ कला कम हैं जो उस समय की स्थिति को देखते हुए बहुत सूक्ष्म हैं।

सूर्य सिद्धान्त के मध्यमाधिकार नामक प्रथम अध्याय का विज्ञान भाष्य समाप्त हुआ।

द्वितीय अध्याय

स्पष्टाधिकार

(संक्षिप्त वर्णन)

[१-११ श्लोक—शीघ्रोच्च, मन्दोच्च और पात नामक काल की अदृश्य मूर्तियाँ ग्रहों की गति में कैसी भिन्नता उत्पन्न करती हैं। १२-१३ श्लोक—ग्रहों की आठ प्रकार की गतियों के नाम। १४ श्लोक—गणितसिद्ध और प्रत्यक्ष देखे हुए ग्रह के स्थानों की तुल्यता के लिए स्पष्टीकरण की आवश्यकता। १५-१६ श्लोक—समकोण के २४ खंडों की ज्या जानने की रीति। १७-२१ श्लोक—किस खंड की ज्या क्या होती है, इसकी सारिणी। २२वें श्लोक का परार्द्ध—उत्क्रम ज्या जानने की रीति। २३-२७ श्लोक—किस खंड की उत्क्रम ज्या क्या होती है, इसकी सारिणी। २८ श्लोक—परम विक्षेप की ज्या से क्रान्ति जानने का गुर। २९-३० श्लोक—मन्द केन्द्र से भुज ज्या और कोटि ज्या बनाना। ३१-३२ श्लोक—सारिणी में दिये हुए कोण खंडों के सिवा अन्य कोण की ज्या अनुपात से जानने की रीति। ३३ श्लोक—ज्या ज्ञात हो तो धनु या कोण कैसे जाना जाय? ३४-३५ श्लोक—सातों ग्रहों की मंद-परिधि के मान विषम और सम पदों में क्या होते हैं? ३६-३७ श्लोक—पाँच ग्रहों की शीघ्र परिधि के मान विषम और समपदों में क्या होते हैं। ३८ श्लोक—पद के बीच में किसी विन्दु पर मंद तथा शीघ्र परिधि का क्या परिमाण होता है। ३९ श्लोक—मन्द फल जानने का नियम। ४०-४१ का पूर्वार्द्ध—शीघ्रकर्ण जानने का नियम। ४१ श्लोक का उत्तरार्द्ध-४२ श्लोक—शीघ्र फल जानने की रीति। ४३-४४ श्लोक—ग्रहों का स्पष्ट स्थान जानने के लिए मंदफल और शीघ्रफल का संस्कार कैसे किया जाय। ४५ श्लोक—मेषादि केन्द्र में मंदफल या शीघ्र फल जोड़ना चाहिये और तुलादि केन्द्र में घटाना चाहिये। ४६ श्लोक—भुजान्तर संस्कार की आवश्यकता। ४७-४९ श्लोक—ग्रहों की मध्यगति से मन्द स्पष्टगति जानने की रीति। ५०-५१ श्लोक—मन्दस्पष्टगति से स्पष्ट गति जानने की रीति; वक्र गति कब होती हैं। ५२ श्लोक—वक्र गति का कारण। ५३-५४ श्लोक—भौमादि पांच ग्रह शीघ्रोच्च से कितनी दूरी पर वक्री होते हैं और कहाँ पहुँच कर वक्र गति को त्यागते हैं। ५५ श्लोक—शीघ्रपरिधि के भिन्न-भिन्न परिमाण के कारण वक्रगति भिन्न-भिन्न अंतर पर होती है। ५६-५७ श्लोक—ग्रहों का विक्षेप जानने का नियम। ५८ श्लोक—ग्रहों

की स्पष्ट क्रान्ति जानने का नियम। ५९ श्लोक—ग्रहों की अहोरात्रि का मान जानने का नियम। ६० श्लोक—द्युज्या जानने की रीति। ६१—क्षितिज्या और चर ज्या जानने की रीति। ६२-६३ श्लोक—चर ज्या के धनु से दिन और रात का परिमाण जानने का नियम। ६४ श्लोक—नक्षत्र और तिथि के मान तथा यह जानने की रीति कि ग्रह किस नक्षत्र में है। ६५ श्लोक—योग जानने की रीति। ६६ श्लोक—तिथि जानने की रीति। ६७ श्लोक—चार स्थिर कारणों के नाम और उनके समय। ६८ श्लोक—सात चर करण महीने में कितने फेरे करते हैं। ६९ श्लोक—आधी तिथि एक करण के समान होती है।]

मध्यमाधिकार नामक पहले अध्याय में मध्यम गति के अनुसार ग्रहों के स्थान जानने की रीति बतलायी गयी है। परन्तु इस रीति से ग्रह का जो स्थान मालूम होता है वह उससे बहुत भिन्न होता है जहाँ ग्रह प्रत्यक्ष देख पड़ता है। इस भिन्नता को मिटाने के लिए कुछ संस्कार करने की आवश्यकता पड़ती है। इस अध्याय में यह बतलाया गया है कि यह संस्कार कैसे किये जाते हैं। इन संस्कारों से ग्रहों का स्थान गणित से भी वही आता है जो स्पष्ट आकाश में देख पड़ता है। इसलिए इस अध्याय का नाम स्पष्टाधिकार रखा गया।

अदृश्यरूपाः कालस्य मूर्तयो भगणाश्रिताः।
शीघ्रमन्दोच्चपाताख्या ग्रहाणां गतिहेतवः ॥१॥
तद्वातरश्मिभिर्नद्धास्तैस्सव्येतरपाणिभिः।
प्राक्पश्चादपकृष्यन्ते यथासन्नं स्वदिङ्मुखम् ॥२॥
प्रवहाख्यो मरुत्तांस्तु स्वोच्चाभिमुखमीरयेत्।
पूर्वापरापकृष्टास्ते गतीर्यान्ति पृथग्विधाः ॥३॥
ग्रहात्प्राग्भगणार्धस्थः प्राङ्मुखं कर्षति ग्रहम्।
उच्चसंज्ञोऽपरार्धस्थस्तद्वत्पश्चान्मुखं ग्रहम् ॥४॥
स्वोच्चापकृष्टा भगणात्प्राङ्मुखं यान्ति यद्ग्रहाः।
तत्तेषु धनमित्युक्तमृणं पश्चान्मुखेषु च ॥५॥

अनुवाद—(१) शीघ्रोच्च, मन्दोच्च और पात नामक काल की मूर्तियां जो आंख से देखी नहीं जा सकतीं और जो स्वयम् क्रान्तिवृत्त पर चक्कर लगाती हैं ग्रहों की गति के कारण हैं। (२) यह मूर्तियां अपने दाहिने और बायें हाथों से यदि (ग्रहों से) पूरब हुईं तो पूरब की ओर और पच्छिम हुईं तो पच्छिम की ओर जैसी दूरी हो उसके अनुसार ग्रहों को जो उन (मूर्तियों) से वायु रूपी रस्सियों से बंधे हुए हैं अपनी ओर खींच लेती हैं। (३) प्रवह नामक वायु भी इन ग्रहों को इनके उच्चों की ओर ढकेल देती है। इसी कारण पूरब या पच्छिम की ओर खिचे हुए ग्रहों की

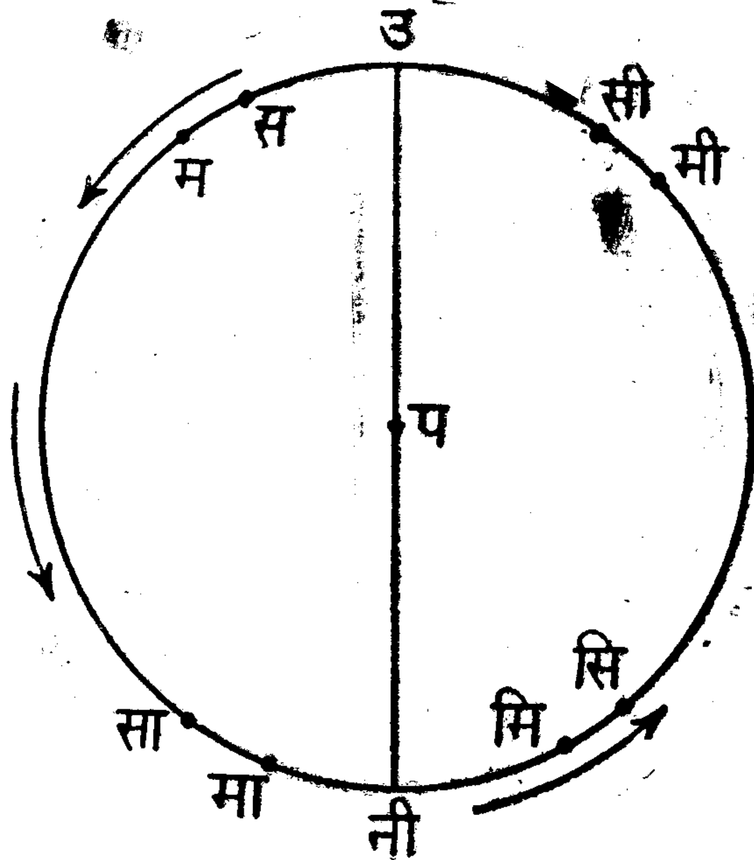
गतियों में भिन्नता हो जाती है। (४) यदि ग्रह का उच्च ग्रह से पूरब हो और ६ राशि या १८०° से अधिक दूर न हो तो वह ग्रह को मध्यम स्थान से पूरब की ओर खींच लेता है, परन्तु यदि १८०° से अधिक दूर हो तो (ग्रह से पच्छिम होने के कारण) वह ग्रह को पच्छिम की ओर खींच लेता है। (५) अपने-अपने उच्चों से खिंचे हुए ग्रह मध्यम स्थान से जितना पूरब की ओर बढ़े रहते हैं उतना (मध्यम स्थान में) जोड़ने से तथा जितना पच्छिम की ओर पिछड़े रहते हैं उतना (मध्यम स्थान में से) घटाने से स्पष्ट स्थान निकलता है। जोड़े जानेवाले संस्कारों को धन संस्कार तथा घटाये जाने वाले संस्कार को ऋण संस्कार कहते हैं ॥१-५॥

विज्ञान भाष्य—इन पांच तथा अगले ६—११ श्लोकों में हमारे आचार्यों की आकर्षण सम्बन्धी कल्पनाएँ हैं जिनसे सिद्ध होता है कि वह कितने सूक्ष्म निरूपण से काम लेते थे। वह देखते थे कि चक्कर लगाता हुआ ग्रह किसी समय ऐसे स्थान पर पहुँचता है जहाँ उसकी स्पष्ट गति अत्यन्त मंद पड़ जाती है। बस इसी को उन्होंने ग्रह के मन्दोच्च[1] का स्थान निश्चय किया था। मन्दोच्च का स्थान भी स्थिर नहीं है, वरन् अत्यन्त मंद गति से चल रहा है, इसलिए इसको भगणाश्रित अर्थात् राशिचक्र पर चलता हुआ माना है। राशिचक्र में ग्रहों की साधारण गति पच्छिम से पूर्व को होती है। जब ग्रह अपने मन्दोच्च पर पहुँचता है तब उसकी गति अत्यन्त मंद होने के कारण मध्यम गति से कम होती है। इसलिए जब ग्रह मन्दोच्च से आगे बढ़ता है तब दिन भर में मध्यम गति से जहाँ पहुँचना चाहिये वहाँ न पहुँच कर पीछे ही रह जाता है। इस प्रकार ग्रह के मध्यम तथा स्पष्ट स्थानों में अंतर पड़ जाता है। यह अंतर प्रतिदिन बढ़ता जाता है और जब ग्रह मन्दोच्च से ९०° आगे (पूर्व की ओर) बढ़ जाता है तब यह अंतर सबसे अधिक होता है। इसके बाद यह अंतर कम होने लगता है, परन्तु ग्रह मध्यम स्थान से पीछे ही रहता है जब तक कि वह मन्दोच्च से १८०° आगे नहीं बढ़ जाता। मन्दोच्च से १८०° पर ग्रह के मध्यम और स्पष्ट स्थान एक हो जाते हैं। इससे यह कल्पना करना स्वाभाविक है कि जब ग्रह मन्दोच्च से १८०° से कम अंतर पर पूर्व की ओर रहता है तब मन्दोच्च उसको मध्यम स्थान से कुछ पच्छिम की ओर जिधर वह है खींच लेता है। इसलिए मध्यम स्थान में ऋण संस्कार करने से ग्रह का स्पष्ट स्थान निकलता है। जैसे-जैसे ग्रह मन्दोच्च से दूर होता जाता है तैसे-तैसे स्पष्ट गति अधिक होती जाती है; इसलिए यह समझा गया कि आसन्नता के अनुसार मन्दोच्च का आकर्षण बढ़ता-घटता है।

---

१. मन्दोच्च, शीघ्रोच्च और पात की कुछ चर्चा 'विज्ञान' भाग १६ पृष्ठ १८७-१९१ में अथवा मध्यमाधिकार के २९-३३ श्लोकों के विज्ञान भाष्य में है।

जिस समय ग्रह मन्दोच्च से १८०° पर पहुँचता है उस समय उसकी गति अत्यन्त अधिक होती है। यही ग्रह का नीच स्थान है। इस विन्दु से जब ग्रह आगे बढ़ता है तब उसकी दैनिक स्पष्ट गति मध्यम गति से अधिक रहती है, इसलिए उसको मध्यम गति से जहाँ पहुँचना चाहिये उससे भी आगे बढ़ जाता है और प्रति दिन आगे बढ़ता जाता है। इसलिए ग्रह के मध्यम स्थान में धन संस्कार करने से स्पष्ट स्थान ज्ञात होता है। जब ग्रह मन्दोच्च से १८०° से आगे हो जाता है तब मन्दोच्च ग्रह से १८०° के भीतर पूर्व की ओर होता है। इसलिए यहाँ भी ग्रह मन्दोच्च की ओर खिचा हुआ जान पड़ता है। इसी कारण यह कल्पना निश्चय हो गयी कि ग्रह को मन्दोच्च अपनी ओर अर्थात् पूरब में हुआ तो पूरब की ओर और पच्छिम में हुआ तो पच्छिम की ओर खींच लेता है।



चित्र १५

दिये हुए चित्र १५ में उ म नी मी सूर्य का मार्ग है। प पृथ्वी का केन्द्र है जो सूर्य मार्ग के केन्द्र पर नहीं है।

सुविधा के लिए किसी ग्रह को हम दो नामों से पुकारेंगे मध्यम ग्रह और स्पष्ट ग्रह, जिनका अंतर यह है—मध्यम ग्रह वह काल्पनिक ग्रह है जो मध्यम गति से राशि चक्र पर पृथ्वी-की परिक्रमा करता हुआ माना गया है और स्पष्ट ग्रह वह

ग्रह है जो पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ प्रत्यक्ष देखा जाता है। मध्यम ग्रह की गति सदैव समान होती है; परन्तु स्पष्ट ग्रह की गति घटती बढ़ती रहती है। प्रतिदिन की स्पष्ट गतियों का औसत निकालने से जो कुछ आता है वही मध्यम गति है। इसलिए यह स्पष्ट है कि स्पष्ट गति मध्यम गति से कभी कम होती है और कभी अधिक। जब ग्रह अपने मन्दोच्च पर रहता है तब उसकी स्पष्ट गति अत्यन्त मन्द होती है। इस जगह मध्यम और स्पष्ट ग्रह एकसाथ होते हैं। परन्तु इसके आगे मध्यम ग्रह स्पष्ट ग्रह से तीव्र होने के कारण आगे बढ़ जाता है और स्पष्ट ग्रह पीछे रह जाता है। चित्र में म, मा मध्यम सूर्य के स्थान और स, सा स्पष्ट सूर्य के स्थान हैं। इसलिए स या सा का स्थान जानने के लिए म या मा के स्थान में से घटाने की आवश्यकता होती है। जब मध्यम सूर्य नी पर पहुँचता है अर्थात् मन्दोच्च से १८०° आगे हो जाता है तब स्पष्ट सूर्य भी नी पर देख पड़ता है। इस जगह स्पष्ट सूर्य की गति अत्यन्त अधिक होती है और वह मध्यम सूर्य से बहुत तीव्र होता है इसलिए नी से आगे चलकर स्पष्ट सूर्य ही मध्यम सूर्य से आगे बढ़ा रहता है। सि, सी स्पष्ट सूर्य के और मि, मी मध्यम सूर्य के स्थान हैं। यहाँ भी स्पष्ट सूर्य उच्च की ओर हटा हुआ देख पड़ता है और मध्यम सूर्य से आगे है, इसलिए इसका स्थान जानने के लिए मध्यम सूर्य के स्थान में जोड़ने की आवश्यकता होती है।

सूर्य और चन्द्रमा के मध्यम और स्पष्ट स्थानों की भिन्नता का कारण तो इतनी ही कल्पना से समझाया जा सकता है परन्तु मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि इन पाँच ग्रहों के मध्यम और स्पष्ट स्थानों में और भी भिन्नता होती है। इसलिए मन्दोच्च की कल्पना के साथ शीघ्रोच्च की कल्पना भी की गयी। इसकी कल्पना कैसे हुई इसका अनुमान भास्कराचार्य जी के अनुसार यों है[1] :—

'जब शनि, गुरु और मंगल इन तीन ग्रहों से सूर्य आगे रहता है तब स्पष्ट ग्रह मध्यम ग्रह से आगे होते हैं अर्थात् सूर्य की ओर बढ़े देख हुए पड़ते हैं। परन्तु जब इनसे सूर्य पीछे रहता है तब स्पष्ट ग्रह मध्यम ग्रह से पीछे रहते हैं अर्थात् सूर्य की ओर पिछड़े हुए देख पड़ते हैं।' इसलिए विद्वानों ने यह कल्पना की कि इन तीनों ग्रहों के शीघ्रोच्च सूर्य के साथ रहते हैं। इसलिए यह अनुमान करना स्वाभाविक है कि इन ग्रहों को इनके शीघ्रोच्च भी जो सूर्य के समान या साथ रहते हैं खींचते हैं। यदि इस कल्पना को और बढ़ा दिया जाता तो सूर्य को ही शीघ्रोच्च अथवा इन ग्रहों का आकर्षक मान लेने में न्यूटन का सिद्धान्त ज्ञात हो जाता।

ऊपर मन्दोच्च और शीघ्रोच्च स्थानों की जो कल्पना की गयी है, उनकी ओर ग्रह कुछ खिंच जाते हैं यह जानकर यह अनुमान होता ही है कि यह स्थान कुछ

१. सिद्धान्त शिरोमणि गणिताध्याय पृष्ठ २०

विशेष शक्ति रखते हैं और अदृश्य भी हैं; इसलिए इनको विशेष शक्तिमान समझने के कारण अदृश्य देवमूर्तियाँ कहा गया है जो अदृश्य वायु रूपी रस्सी से ग्रहों को अपनी ओर खींचे रहते हैं और इनको प्रवह नामक वायु भी सहायता पहुँचाती है।

पात के बारे में पहले लिखा जा चुका है। वहाँ चन्द्रमा के पात के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा गया है वही अन्य ग्रहों के पातों के लिए भी लागू है। जब ग्रह उत्तर पात पर आता है तब क्रान्ति वृत्ति पर देख पड़ता है। जब यहाँ से आगे बढ़ता है तब क्रान्तिवृत्ति से उत्तर हो जाता है। जब तक वह दक्खिन पात पर अर्थात् उत्तर पात से १८०° आगे नहीं पहुँच जाता तब तक क्रान्तिवृत्त से उत्तर ही रहता है। ऐसी दशा में उत्तर पात ग्रह से पच्छिम रहता है। इसीलिए आगे के ७वें श्लोक में यह बतलाया गया है कि ग्रह से १८०° तक पच्छिम में स्थित पात (उत्तर पात) ग्रह को उत्तर की ओर ढकेलता है और १८०° तक पूर्व में स्थिति पात उसको दक्खिन की ओर ढकेलता है। यह भी अदृश्य है और क्रान्ति वृत्त से ग्रह को उत्तर या दक्खिन की ओर ढकेलते हुए जान पड़ता है। इसलिए इसमें भी दैवीशक्ति मानी गयी है। परन्तु यथार्थ कारण यह है कि सूर्य और ग्रहों की कक्षाएं एक ही तल में नहीं हैं, जिससे प्रत्येक ग्रह की कक्षा सूर्य की कक्षा को दो विन्दुओं पर काटती हुई जान पड़ती है।

आगे के ९—११ श्लोकों में यह बतलाया गया है कि जिन ग्रहों का आकार बड़ा है वह भारी होने के कारण अपने मन्दोच्चों, शीघ्रोच्चों इत्यादि के द्वारा कम खिचते हैं और जो हल्के हैं वह बहुत खिचते हैं। यह अनुमान सूक्ष्म निरूपण का फल है और आकर्षण सिद्धान्त के बिल्कुल अनुकूल है।

सूर्य सिद्धान्त के इन्हीं आठ श्लोकों के आधार पर कुछ विद्वान यह कहते हैं कि आकर्षण सिद्धान्त के आविष्कारक न्यूटन नहीं कहे जा सकते वरन् हमारे ही प्राचीन ज्योतिषाचार्य हैं। निष्पक्ष भाव से विचार करने पर यह सिद्ध होता है कि हमारे पूज्य आचार्यों ने प्रत्यक्ष देखकर अपनी कल्पना और तर्क शक्ति से जितने अनुमान किये थे वह उस समय की दशा को देखते हुए परम सराहनीय हैं। उन्होंने यह अवश्य समझा था कि ग्रहों की गति की भिन्नता का कारण कोई शक्ति है, परन्तु यह नहीं ज्ञात हो सका था कि यह शक्ति किस प्रकार काम करती है, केवल पृथ्वी तथा ग्रहों के शीघ्रोच्चों, मन्दोच्चों और पातों में ही है अथवा जगत के सब पदार्थों में, और गणित की किस क्रिया द्वारा उपपत्ति बतलायी जा सकती है। आकर्षण सिद्धान्त के इस व्यापक नियम का आविष्कारक न्यूटन है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि ज्योतिष का अध्ययन-अध्यापन भारतवर्ष में उसी प्रकार चला आता जैसा भास्कराचार्य, गणेश दैवज्ञ इत्यादि के समय में था या जैसा यूरोप के फ्रांस, जर्मनी और इंगलैंड में कोपर-निकस, टाइकोब्राही, केपलर, न्यूटन इत्यादि के समय में १६वीं, १७वीं शताब्दी में

था तो संभव है कि आकर्षण सिद्धान्त हमारे आचार्यों को पहले ही उस रूप में प्रकट हो जाता जिस रूप में न्यूटन ने स्थिर किया है। हमारे यहाँ आकर्षण सम्बन्धी कल्पना कल्पना (hypothesis) के रूप में ही रह गयी और न्यूटन ने इसे सिद्धान्त (theory) के रूप में परिणत कर दिया।

इस जगह ग्रहों की भिन्न गतियों के कारण पर विचार करते हुए आकर्षण सम्बन्धी कल्पना की गई है इसलिए यह असंगत न होगा यदि ग्रहों की गति संबंधी कोपरनिकस, केपलर और न्यूटन के सिद्धान्त संक्षेप में बतला दिये जायं।

कोपरनिकस की कल्पना

१५८७ वि० (१५३० ई०) में कोपरनिकस ने जो ग्रन्थ लिखा उसमें दिखलाया कि यदि पृथ्वी तथा अन्य ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हुए मान लिये जायँ तो ग्रहों की प्रत्यक्ष टेढ़ी, सीधी गतियाँ सहज ही समझायी जा सकती हैं। इसी को कोपरनिकस की रीति कहते हैं।

केपलर के नियम

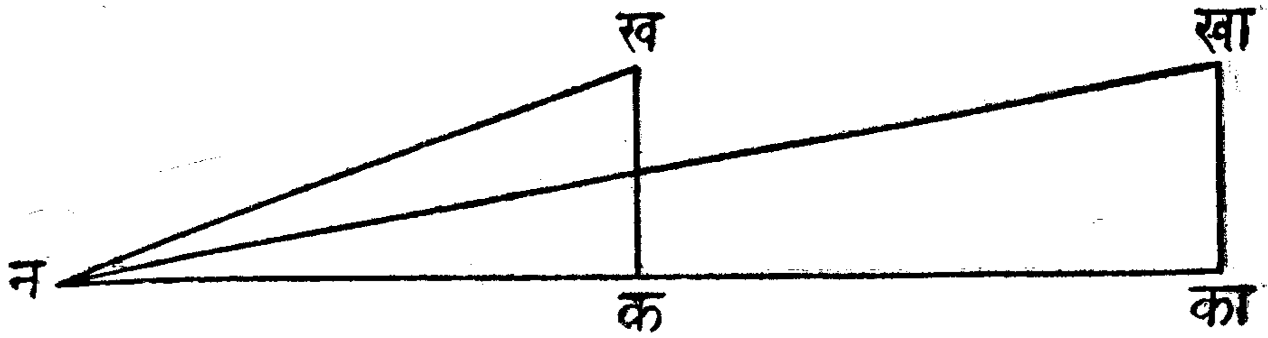
(१) जिस कक्षा में यह सूर्य की परिक्रमा करता है वह दीर्घवृत्त के आकार की होती है, जिसकी एक नाभि पर सूर्य का केन्द्र होता है।

(२) सूर्य और किसी ग्रह के केन्द्रों को मिलाने वाली रेखा समान काल में समान क्षेत्रफल बनाती है।

(३) दो ग्रहो के भगणकालों के वर्गों का परस्पर सम्बन्ध वही होता है जो सम्बन्ध सूर्य से उनकी मध्यम दूरियों के घनों का होता है।

अब संक्षेप में यह बतलाया जाता है कि केपलर ने किस गणना से यह नियम निकाले थे।

यह सब को अनुभव होगा कि जैसे-जैसे कोई वस्तु दूर होती जाती है वैसे-वैसे देख पड़ता है कि वह छोटी होती जाती है क्योंकि दूर हो जाने से उस वस्तु से जो कोण नेत्र पर बनता है वह छोटा होता जाता है। मान लो न नेत्र का स्थान है और क ख एक वस्तु है जो दूर होती जा रही है। जब वह क ख स्थान पर होगी तब न पर उससे क न ख कोण बनेगा और जब वह का खा स्थान पर पहुँच जायगी तब न पर उससे का न खा कोण बनेगा जो क न ख कोण से छोटा है। इसी कारण का खा स्थान पर वही वस्तु छोटी देख पड़ेगी, यद्यपि वस्तुतः उसके आकार में कोई भेद नहीं पड़ा। (देखो चित्र १६)।



चित्र १६

यदि सूर्य बिम्ब प्रतिदिन वेध करके देखा जाय ता प्रतिदिन वह एक ही आकार का नहीं देख पड़ता। जब सूर्य धनु राशि के कोई १६° पर होता है (३ जनवरी को) तब उसका बिम्ब सबसे बढ़ा देख पड़ता है। इस दिन इसके बिम्ब का मान ३२′३५·२″ होता है। इसी दिन इसकी दैनिक स्पष्ट गति भी तीव्रतम अर्थात् ६१′६·६″ होती है। इसके बाद शनैः-शनैः सूर्य बिम्ब छोटा होता जाता है और गति मंद होती जाती है। जब सूर्य मिथुन राशि के कोई १६° पर होता है अर्थात् पहले स्थान से १८०° बढ़ जाता है तब बिम्ब सबसे छोटा अर्थात् ३१′३०·७″ का होता है और दैनिक स्पष्ट गति मन्दतम अर्थात् ५७′११·५″ हो जाती है। बिम्ब के छोटा-बड़ा देख पड़ने का कारण यह तो नहीं है कि सूर्य का आकार ही वास्तव में छोटा-बड़ा हो जाता है वरन् यह है कि सूर्य की दूरी ही घटती-बढ़ती रहती है। यह मत हमारे सिद्धान्तों का भी है।[1]

यदि सूर्य बिम्ब के अर्द्धव्यास का मान स हो और पृथ्वी से सूर्य की निकटतम दूरी क हो तो सूर्य के अर्द्ध बिम्ब से जो कोण पृथ्वी पर बनेगा उसकी ज्या=स/क

परन्तु इस दिन सूर्य का बिम्ब ३२′३५·२″ होता है, इसलिए अर्द्धबिम्ब १६′१७·६″ होगा,

$$\text{इसलिए ज्या } १६'१७\cdot६'' = \frac{\text{स}}{\text{क}}$$

परन्तु जब कोण बहुत छोटा होता है तब कोण और कोण की ज्या के मानों में कोई अन्तर नहीं होता जब कि कोण का मान Circular measure में हो या ज्या क मान भारतीय रीति से लिखा जाता हो![2]

१. सूर्यसिद्धान्त चन्द्र ग्रहणाधिकार श्लोक १ – ३

२. मध्यमाधिकार के ६० — ६१ श्लोकों का विज्ञान भाष्य देखो।

$$\therefore \frac{\text{स}}{\text{क}} = \text{१६}'\text{१७·६}' \quad \text{या स} = \text{क} \times \text{१६}'\text{१७·६}''$$

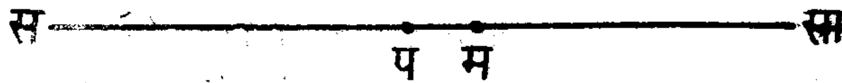
इसी प्रकार सूर्य का बिम्ब ३१'३०·७" अथवा बिम्बार्द्ध १५'४५·४" होता है तब यदि सूर्य की अत्यन्त अधिक दूरी 'का' हो तो

$$\frac{\text{स}}{\text{का}} = \text{१५}'\text{४५·४}'' \quad \text{या स} = \text{का} \times \text{१५}'\text{४५.४}'$$

$$\therefore \text{क} \times \text{१६}'\text{१७·६}'' = \text{का} \times \text{१५}'\text{४५·४}''$$

$$\text{अथवा} \frac{\text{क}}{\text{का}} = \frac{\text{१५}'\text{४५·४}''}{\text{१६}'\text{१७·६}''} \qquad (१)$$

जिस स्थान पर सूर्य सबसे बड़ा देख पड़ता है उससे जब १८०° आगे जाता है तब सबसे छोटा देख पड़ता है। इसलिए ऊपर निकाली हुई क, का दूरियाँ एक रेखा में होती हैं। इसलिए यदि दिये हुए चित्र १७ में प पृथ्वी का स्थान हो तो स और सा सूर्य के स्थान होंगे जब कि सूर्य क्रमानुसार सबसे बड़ा और सबसे छोटा देख पड़ता है अर्थात् जब प स=क और प सा=का



चित्र १७

समीकरण (१) का प्रत्येक पक्ष यदि १ में से घटा दिया जाय तो,

$$\text{१} - \frac{\text{क}}{\text{का}} = \text{१} - \frac{\text{१५}'\text{४५·४}''}{\text{१६}'\text{१७·६}''}$$

$$\text{या} \frac{\text{का} - \text{क}}{\text{का}} = \frac{\text{३२.२}''}{\text{१६}'\text{१७.६}'} \qquad (२)$$

और यदि समीकरण (१) के प्रत्येक पक्ष में १ जोड़ दिया जाय तो,

$$\frac{\text{का} + \text{क}}{\text{का}} = \frac{\text{३२}'\text{३}''}{\text{१६}'\text{१७·६}''} \qquad (३)$$

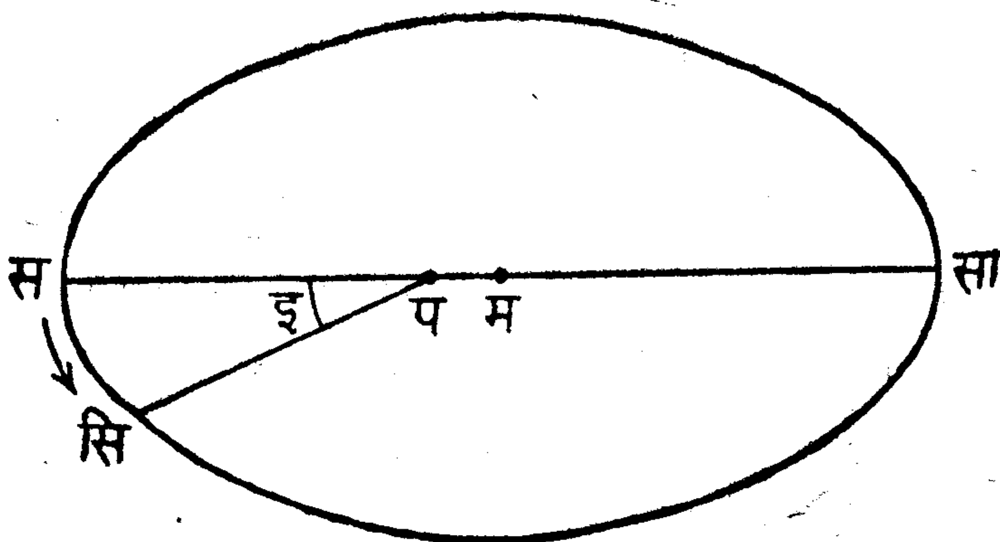
अब यदि समीकरण (२) को समीकरण (३) के समपक्षों से भाग देदें तो,

$$\frac{\text{का} - \text{क}}{\text{का} + \text{क}} = \frac{\text{३२·२}''}{\text{३२}'\text{३}''} = \frac{\text{३२.२}''}{\text{१९२३}''} = \frac{\text{१}}{\text{६०}} \text{ के लगभग}$$

इस सम्बन्ध से प्रकट होता है कि प उस दीर्घवृत्त की नाभि है जिसका दीर्घ अक्ष स सा, केन्द्र स सा का मध्यविन्दु म और च्युति (eccentricity) $\frac{\text{१}}{\text{६०}}$ है; क्योंकि किसी दीर्घवृत्त के केन्द्र से उसकी नाभि तक जो दूरी होती है उसको दीर्घ

अक्ष के आधे से भाग देने पर च्युति का मान निकल आता है[1]। वहाँ का क केन्द्र से नाभि की दूरी का दूना और का+क दीर्घ अक्ष की लम्बाई है।

इस प्रकार यदि स सा दूरी को दीर्घ अक्ष, प को उसकी एक नाभि तथा $\frac{१}{६०}$ को च्युति मानकर दीर्घवृत्त खींचा जाय तो किसी कर्ण (Radius vector) प सि की दूरी जो स प रेखा के साथ इ कोण बनाता है इस गुर[2] से जाना जा सकता है—



चित्र १८

$$\text{प सि} = \frac{\text{म स}\ (१ - \text{च}^{२})}{१ + \text{च} \times \text{कोज्या इ}}$$

जब कि च$=\frac{१}{६०}=$·०१६७ और म स सूर्य और पृथ्वी का मध्यम अंतर स्थिर है।

इसलिए $\frac{१}{\text{प सि}}$ का मान १+च× कोज्या इ के मानानुसार बदलता है जिसको संक्षेप में यों लिखते हैं :—

$$\frac{१}{\text{क}} \propto १ + \text{च कोज्या इ}$$

जहाँ क सूर्य का पृथ्वी से अंतर (कर्ण या Radius vector) है। यह सम्बन्ध वेध से ठीक उतरता है। इसलिए यह सिद्ध हुआ कि सूर्य दीर्घवृत्त में चक्कर

१. आशुतोष मुखोपाध्याय की Geometry of Conics, Chapter, II. proposition III.

२. Loney's Elements of Coordinate Geometry, pp. 307 and 229 (1910 edition.)

लगाता है और पृथ्वी इस दीर्घवृत्त की नाभि पर है। इसकी जगह यह कहना अधिक शुद्ध है कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती हुई दीर्घवृत्त के आकार की कक्षा बनाती है और सूर्य केन्द्र इस कक्षा की नाभि पर रहता है।

इसका प्रमाण 'विज्ञान' भाग १२ पृष्ठ ७५-७६, १८८-१८६, २०३ से २०७ में दिया गया है। यही केपलर का पहला नियम है।

ऊपर बतलाया गया है कि सूर्य की तीव्रतम गति ६१′ १०′ और इसी समय इसका महत्तम बिम्ब ३२′ ३५″ होता है तथा मंदतम गति ५७′ १२″ और इसी समय न्यूनतम बिम्ब ३१′ ३१″ होता है। इसलिए यह स्पष्ट है कि तीव्रतम और मन्दतम गतियों में जो अंतर होता है वह मध्यम गति का $\frac{३'५८''}{५९'११''}$ अथवा स्वल्पान्तर से $\frac{१}{१५}$ के समान है और स्पष्ट बिम्ब के महत्तम और न्यूनतम आकारों में जो अंतर होता है वह मध्यम बिम्ब का $\frac{१'४''}{३२'३''}$ अथवा स्वल्पान्तर से $\frac{१}{३०}$ के समान है। इसलिए स्पष्ट बिम्ब के परिवर्तन का सम्बन्ध १ : १ + $\frac{१}{३०}$ और स्पष्ट गति के परिवर्तन का सम्बन्ध १ : १ + $\frac{१}{१५}$ है।

परन्तु $१+\frac{१}{१५}=(१+\frac{१}{३०})^२$ स्वल्पान्तर से

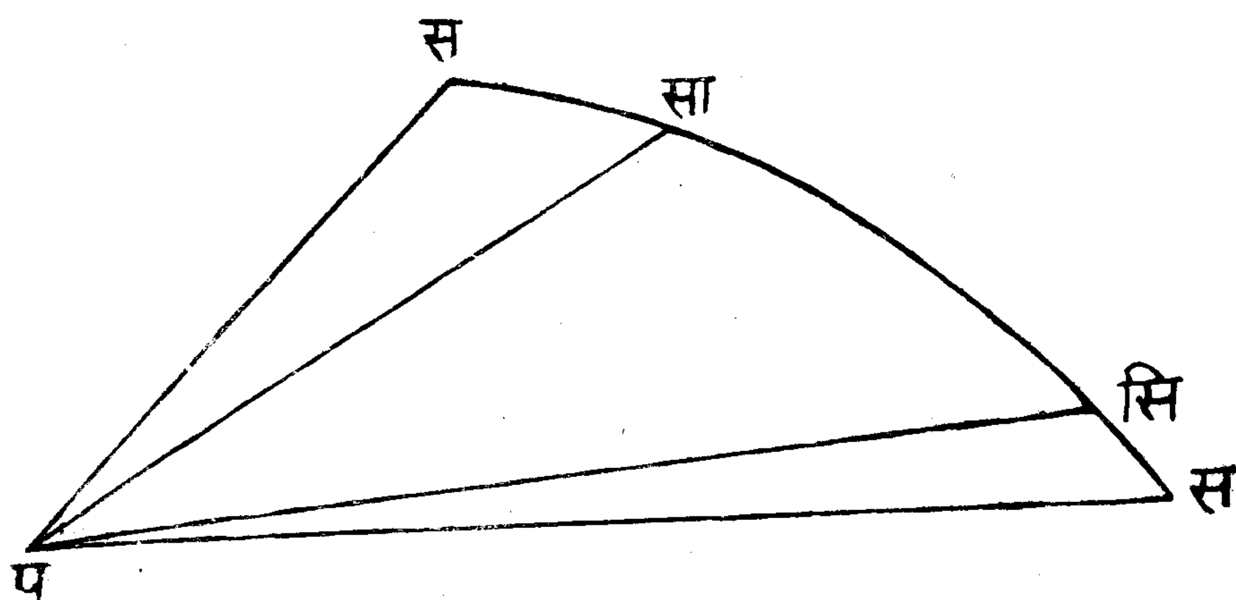
$\therefore$ गति के परिवर्तन का सम्बन्ध १ : $(१+\frac{१}{३०})^2$ है।

चाहे जिस समय देखा जाय यही पाया जायगा कि किसी ग्रह का कोणीय वेग स्पष्ट व्यास के वर्ग के अनुसार बदलता है। परन्तु सूर्य की का स्पष्ट व्यास सूर्य दूरी के प्रतिलोम के अनुसार बदलता है, जैसा कि पिछले पृष्ठों में बतलाया जा चुका है। इसलिए कोणीय वेग स्पष्ट व्यास के वर्ग के अनुसार अथवा कर्ण के वर्ग के प्रतिलोम के अनुसार बदलता है। संक्षेप में

$$\text{कोणीय वेग} \propto (\text{स्पष्ट व्यास})^२$$

$$\text{या} \propto \left(\frac{१}{\text{कर्ण}}\right)^२$$

चित्र १९ में प पृथ्वी का स्थान है, स सूर्य का स्थान है और स प सि वह कोण है जो सूर्य १ दिन में चलता है। इसी प्रकार सा सूर्य का दूसरा स्थान है और सा प सी वह कोण है जो सूर्य १ दिन में चलता है। स, सि या सा, सी परस्पर बहुत पास हैं इसलिए प स और प सि के मानों में इतना कम अंतर है कि दोनों समान समझे जा सकते हैं। इसी तरह प सा और प सी समान समझे जा सकते हैं। ऐसी दशा में प स सि त्रिभुज उस वृत्त का एक खंड समझा जा सकता है, जिसका केन्द्र प है और त्रिज्या प स या प सि है। इसलिए



चित्र १६

$$\text{इस वृत्त खंड का क्षेत्रफल} = \angle \text{स प सि} \times \frac{(\text{पस})^2}{2}$$

$$= \text{स स्थान का कोणीय वेग} \times \frac{(\text{पस})^2}{2}$$

$$\text{और सा प सी का क्षेत्रफल} = \angle \text{सा प सी} \times \frac{(\text{पसा})^2}{2}$$

$$= \text{सा स्थान का कोणीय वेग} \times \frac{(\text{पसा})^2}{2}$$

परन्तु ऊपर बतलाया जा चुका है कि

कोणीय वेग $\propto \frac{1}{(\text{कर्ण})^2} = \text{अ} \times \frac{1}{(\text{कर्ण})^2}$ जब कि अ कोई अचल राशि है है।

$$\therefore \frac{\text{स प सि वृत्त खंड का क्षेत्रफल}}{\text{सा प सी वृत्त खंड का क्षेत्रफल}} = \frac{\text{स का कोणीय वेग} \times \frac{(\text{पस})^2}{2}}{\text{सा का कोणीय वेग} \times \frac{(\text{पसा})^2}{2}}$$

$$= \frac{\text{स का कोणीय वेग} \times (\text{पस})^2}{\text{सा का कोणीय वेग} \times (\text{पसा})^2}$$

$$=\frac{\text{स का कोणीय वेग} \times (\text{स का कर्ण})^{२}}{\text{सा का कोणीय वेग} \times (\text{सा का कर्ण})^{२}}$$

$$=\frac{\text{अ} \times \frac{१}{(\text{स का कर्ण})^{२}} \times (\text{स का कर्ण})^{२}}{\text{अ} \times \frac{१}{(\text{सा का कर्ण})^{२}} \times (\text{सा का कर्ण})^{२}}$$

$$=१$$

इससे सिद्ध हुआ कि स पा स और सा प सी दोनों वृत्त खंड समान हैं। यही केपलर का दूसरा नियम है।

केपलर के तीसरे नियम से सूर्य से सब ग्रहों की दूरियों का सम्बन्ध जाना जा सकता है। जैसे शुक्र और पृथ्वी के भगण काल क्रमशः २२४·७ दिन और ३६५·३ दिन हैं, इसलिए इनके भगण कालों के वर्गों का सम्बन्ध $=\frac{(३६५.३)^{२}}{(२२४.७)^{२}}=२.६४५$

परन्तु केपलर के तीसरे नियम के अनुसार

$$\frac{(\text{सूर्य से पृथ्वी की दूरी})^{3}}{(\text{सूर्य से शुक्र की दूरी})^{3}}=\frac{(३६५.३)^{२}}{(२२४.७)^{२}}=२.६४५$$

यदि सूर्य से पृथ्वी की दूरी १ मान ली जाय तो

$$\text{सूर्य से शुक्र की दूरी}=\left(\frac{१}{२.६४५}\right)^{\frac{१}{३}}$$

$$=(\cdot३७८)^{\frac{१}{३}}$$

$$=\left(\frac{३७८}{१०००}\right)^{\frac{१}{३}}=\frac{१}{१०}(३७८)^{\frac{१}{३}}$$

$$=\frac{१}{१०}\times(७^{3}+३५)^{\frac{१}{३}}=\frac{१}{१०}\times७\left(१+\frac{५}{७^{२}}\right)^{\frac{१}{३}}$$

$$=\frac{७}{१०}(१+\cdot१०२)^{\frac{१}{३}}$$

$$=\frac{७}{१०}\{१+\tfrac{१}{३}\times(.१०२)+\tfrac{१}{२}\times\tfrac{१}{३}(\tfrac{१}{३}-१)(.१०२)^{२}$$

$$+\tfrac{१}{|३}\times\tfrac{१}{३}\times(\tfrac{१}{३}-१)(\tfrac{१}{३}-२)(.१०२)^{3}+\cdots\}$$

$$=\frac{७}{१०}(१+.०३४-.००११६+.००००६६$$

—एक बहुत सूक्ष्म संख्या)

$$=\frac{७}{१०}\times१.०३२९=\frac{७.२३०३}{१०}=.७२३$$

केपलर ने यह तीनों नियम ग्रहों के सूक्ष्म निरूपणों से सं० १६६४-१६७४ वि० (१६०८-१६१८ ई०) में बनाये थे। उसको इस बात का पता नहीं था कि किन शक्तियों से ग्रहों में इन नियमों के अनुसार गतियाँ होती हैं। कोई ७५ वर्ष तक इन नियमों की उपपत्ति नहीं बतलायी जा सकी। इसके पश्चात् न्यूटन ने यह सिद्ध किया कि विश्वव्यापी गुरुत्वाकर्षण ही इन सब का कारण है। न्यूटन ने जिन तीन नियमों के आधार पर यह सिद्ध किया है वह गति के नियम कहलाते हैं, उसी के नाम से प्रसिद्ध हैं और यह हैं :—

पहला नियम—यदि कोई बाहरी शक्ति न लगायी जाय तो प्रत्येक वस्तु या तो अपनी अचल दशा में, या सीधी रेखा में समान गति से चलती हुई दशा में, रहना चाहती है।

दूसरा नियम—गति का परिवर्तन लगायी जाने वाली शक्ति के मानानुसार होता है और यह परिवर्तन उस सीधी रेखा की दिशा में होता है जिस दिशा में शक्ति लगायी जा रही हो।

तीसरा नियम—प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया होती है, जो परिमाण में सदैव समान, परन्तु दिशा में विरुद्ध होती है अर्थात् प्रत्येक क्रिया के समान परन्तु उसके विरुद्ध दिशा में प्रतिक्रिया होती है।

यह नियम स्वयम्सिद्ध हैं। विशेष जानकारी के लिए गतिविज्ञान (Dynamics) के किसी ग्रन्थ को पढ़ना चाहिये।

केपलर के पहले और दूसरे नियमों से न्यूटन ने यह सिद्ध किया कि प्रत्येक ग्रह एक ऐसी शक्ति के कारण चल रहा है, जिसकी दिशा सूर्य की ओर है और जिसका परिमाण सूर्य से ग्रह की दूरी के वर्ग के विलोम मानानुसार होता है। केपलर के तीसरे नियम से न्यूटन ने यह सिद्ध किया कि एक ग्रह की गति की वृद्धि दूसरे ग्रह की गति की वृद्धि से क्या सम्बन्ध रखती है और इसीसे उसने विश्वव्यापी गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त निकाला, जो यह है :—

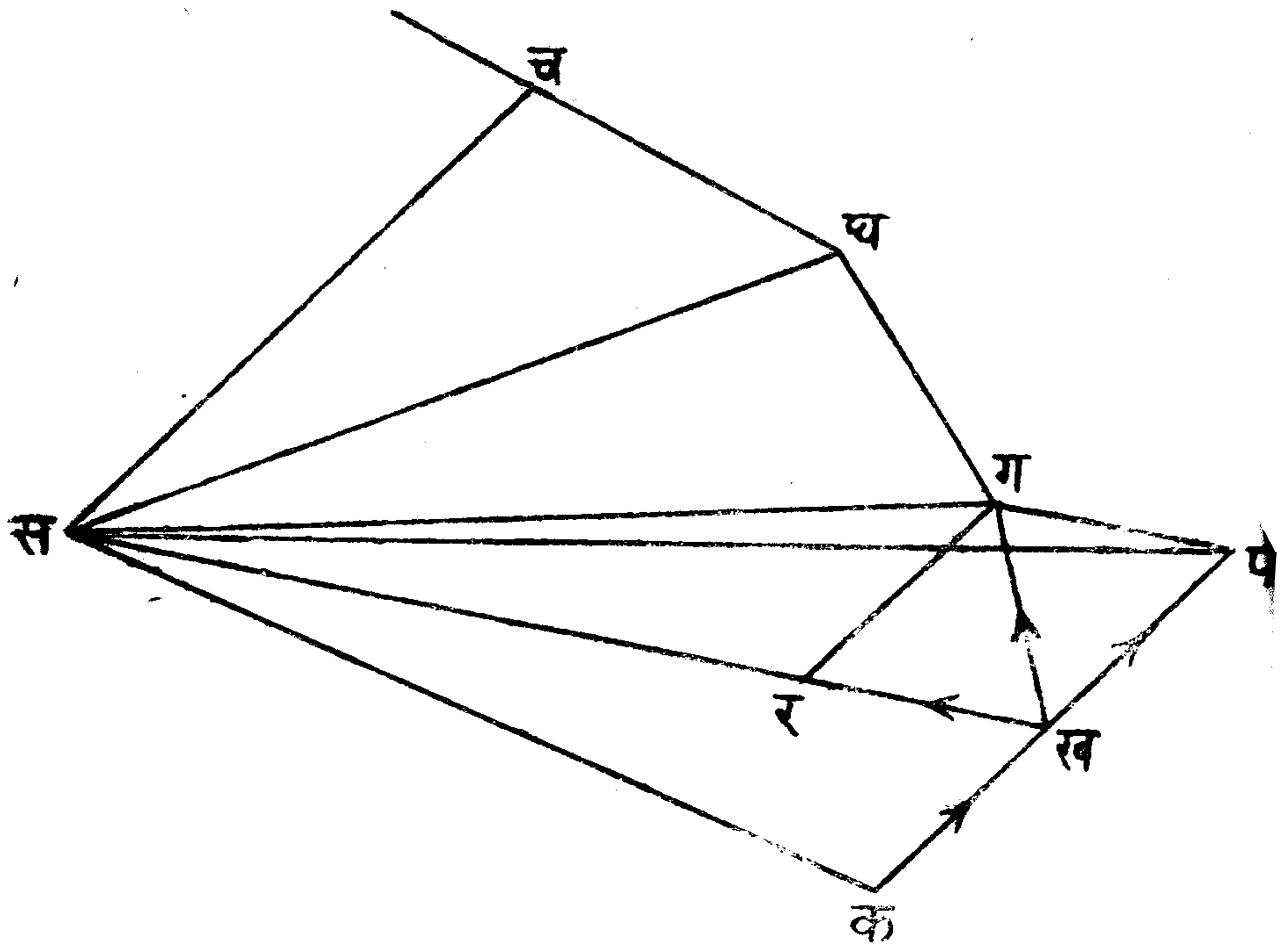
द्रव्य (matter) का प्रत्येक कण दूसरे कण को उस शक्ति से आकर्षित करता है, जो उन कणों की मात्राओं के गुणनफल के अनुसार तथा उन दोनों के बीच की दूरी के वर्ग के विलोम मानानुसार बदलती है।

अब यह सिद्ध करना है कि यदि किसी स्थिर बिन्दु से किसी गतिमान कण तक रेखा खींची जाय और वह समान काल में समान क्षेत्रफल बनावे तो वह कण जिस शक्ति से चल रहा है उसकी दिशा उसी स्थिर बिन्दु की ओर है। यह बात चलनकलन (Differential Calculus) तथा गतिविज्ञान के आधार पर संक्षेप में

सिद्ध हो सकती है, जो पीछे दी जायगी। इस जगह साधारण गणित के ही आधार पर कुछ विस्तार के साथ सिद्ध की जाती है।[1]

मान लो कि 'स' एक स्थिर विन्दु है और किसी वस्तु का कोई कण स के चारों ओर घूमता हुआ क ख ग घ च बहुभुज क्षेत्र बना रहा है और क ख, ग घ, या घ च भुज समान काल में अथवा १ पल में चलता है। यह भी मान लो कि इन भुजों के मान भिन्न-भिन्न हैं और और जब तक कण किसी एक भुज पर रहता है तब तक उसकी गति एकरूप (uniform) रहती है। स क ख, स ख ग, स ग घ, स घ च त्रिभुजों के क्षेत्रफल भी समान समझ लेने चाहिये।

अब यह प्रत्यक्ष है कि समान काल में वह कण स के चारों ओर घूमता हुआ समान क्षेत्रफल बनाता है। गति के पहले नियम के अनुसार जब तक कण बहुभुज



चित्र २०

१. यह युक्ति Heroes of Science : Astronomers के पृष्ठ १७३—१७४ के आधार पर है।

क्षेत्र की कोई सीधी भुज बना रहा है तब तक उस पर कोई शक्ति काम नहीं कर रही है और वह अपनी प्राप्त शक्ति से सीधी रेखा में जा रहा है, परन्तु एक भुज से दूसरी भुज पर जैसे ही मुड़ने लगता है वैसे ही क्षण भर के लिए कुछ न कुछ शक्ति उस पर अवश्य लगनी चाहिये, जिससे वह अपनी पहले की सीधी चाल को बदल कर दूसरी सीधी चाल पर आ जाय।

जिस समय कण ख पर है उस समय की दशा पर ध्यान दो। यदि इस समय कोई शक्ति न लगे तो दूसरे पल में वह क ख की ही सीध में ख प राह पर जायगा और क ख प रेखा सीधी रेखा होगी तथा ख प और क ख समान होंगे क्योंकि गति में कोई अन्तर नहीं होगा। प को ग और स से मिला दो। स ख प त्रिभुज का आधार ख प है जो क ख के समान है और क ख की ही सीधी रेखा में है, इसलिए रेखा-गणित के अनुसार दोनों त्रिभुज स क ख और स ख प के क्षेत्रफल समान हैं। यह आरम्भ में ही मान लिया गया है कि स क ख, स ख ग इत्यादि त्रिभुजों के क्षेत्रफल समान हैं। इसलिए यह सिद्ध हो गया कि स ख प और स ख ग त्रिभुज भी परस्पर समान हैं जो एक ही आधार स ख पर हैं इसलिए रेखागणित के अनुसार यह दोनों त्रिभुज स ख और ग प समानान्तर रेखाओं के बीच में हैं अर्थात् ग प रेखा स ख के समानान्तर है। ख प के समानान्तर ग र रेखा खींचो जो स ख रेखा से र विन्दु पर मिले। तब ख प ग र समानान्तर चतुर्भुज क्षेत्र होगा। जिस समय कण ख पर था उस समय यदि कोई शक्ति न लगी होती तो वह बिन्दु प पर पहुँचता; परन्तु शक्ति लगने से वह ग पर पहुँचा, इसलिए प्रकट है कि ख पर कण की प्रथम गति ख प थी और शक्ति लगने के कारण वह ख ग में बदल गयी। इसलिए गतिविज्ञान के 'गति के समानान्तर चतुर्भुज-नियम' (parallelogram of velocities) के अनुसार लगी हुई शक्ति के कारण कण में ख प की गति के साथ ख र गति का संयोग हो गया, अर्थात् ख बिन्दु पर कण में जो गति ख प दिशा की ओर थी उसमें ख र की दिशा में ख र के समान ही दूसरी गति मिल गयी, जिससे वह कण ग विन्दु पर पहुँचा। इसलिए इस मिलने वाली शक्ति के कारण वह वस्तु स की ओर मुड़ी। इसी प्रकार यह सिद्ध हो सकता है कि बहुभुज क्षेत्र के कोण विन्दुओं ग, घ, च पर भी जो शक्ति लगती है वह स की दिशा में ही लगती है।

अब कल्पना करो कि यह बहुभुज क्षेत्र करोड़ों अत्यन्त छोटी-छोटी भुजों से बना है और स के चारों ओर घूमने वाला कण प्रत्येक छोटी-छोटी भुज को पल के करोड़वें भाग में चल कर पूरा करता है तो यह प्रकट है कि उस कण पर स की दिशा में करोड़ों बार शक्ति लगेगी। इसलिए यह सिद्ध है कि कण ने प्रायः वक्र (curved) मार्ग को स की ओर ले जाने वाली एक अनवच्छिन्न (continuou

शक्ति के कारण पूरा किया। यदि कल्पना को और बढ़ा दिया जाय और बहुभुज क्षेत्र की भुज इतनी छोटी हो जायँ कि उनकी कोई सीमा ही न बँध सके और उनकी संख्या असंख्य हो तब भी यह तर्क लागू हो सकता है। इसलिए यह सिद्ध होता है कि यदि कोई कण किसी स्थिर विन्दु के चारों ओर ऐसे मार्ग पर चले कि उससे समान काल में समान क्षेत्रफल बने तो इस कण पर जो शक्ति निरन्तर लगी हुई है वह उस स्थिर बिन्दु की दिशा में है अर्थात् वह स्थिर बिन्दु उस कण को निरन्तर आकर्षित किये हुए है।

यदि स को सूर्य का केन्द्र मान लिया जाय और क, ख, ग इत्यादि को किसी ग्रह के स्थान, तो केपलर के दूसरे नियम से सिद्ध होता है कि सूर्य के चारों ओर घूमने वाले ग्रहों को उनकी थांभने के लिए जो शक्ति काम कर रही है वह सूर्य की ही आकर्षण शक्ति है। इसी प्रकार ग्रह भी अपने उपग्रहों को खींच रहे हैं।

दक्षिणोत्तरयोरेवं पातो राहु स्वरंहसा।
विक्षिपत्येष विक्षेपं चन्द्रादीनामपक्रमात् ॥६॥
उत्तराभिमुखं पातो विक्षिपत्यपरार्द्धगः।
ग्रहं प्राग्भगणार्द्धस्थो याम्यायामपकर्षति ॥७॥

अनुवाद—(६) चन्द्रमा आदि ग्रहों को इनके पात या राहु क्रान्तिवृत्त से विक्षेप के समान उत्तर या दक्षिण भी अपने वेग से हटा देते हैं। (७) जब पात ग्रह से पच्छिम परन्तु ६ राशि या १८०° से कम दूरी पर रहता है तब उसको क्रान्तिवृत्त से उत्तर हटा देता है और जब वह ग्रह से पूरब परन्तु ६ राशि से कम दूरी पर रहता है तब उसको क्रान्तिवृत्त से दक्षिण हटा देता है।

विज्ञान भाष्य—इन दोनों श्लोकों का साधारण अर्थ यह है कि ग्रह और उसके पात के स्थानों को देखकर समझना चाहिये कि ग्रह ठीक क्रान्तिवृत्त पर है अथवा उससे कुछ उत्तर या दखिन हटा हुआ है। यदि ग्रह और पात दोनों एक ही जगह हों तो समझना चाहिये कि ग्रह क्रान्तिवृत्त पर है। यदि ग्रह पात से आगे अर्थात् पूरब हो परन्तु १८०° से अधिक दूर न हो तो वह क्रान्तिवृत्त से उत्तर हटा हुआ होगा और यदि ग्रह पात से पीछे अर्थात् पच्छिम हो परन्तु १८०° से अधिक दूर न हो तो वह क्रान्तिवृत्त से दक्षिण हटा हुआ होगा। इसका कारण राहु का आकर्षण या अपकर्षण नहीं है वरन् यह है कि किसी ग्रह की कक्षा क्रान्तिवृत्त के समतल में नहीं है इसलिए ग्रह सदैव क्रान्तिवृत्त पर नहीं रहता। ग्रह की कक्षा और क्रान्तिवृत्त जिन दो विन्दुओं पर मिलते हुए जान पड़ते हैं उन्हीं को पात कहते हैं। जब ग्रह अपनी कक्षा इन दो विन्दुओं पर रहता है तब क्रान्तिवृत्त पर देख पड़ता है अन्यथा क्रान्तिवृत्त

से उत्तर या दक्खिन ऊपर कहे हुए के अनुसार होता है। क्रान्तिवृत्त से उत्तर या दक्खिन ग्रह की जो दूरी होती है उसी को विक्षेप कहते हैं। यह उस वृत्त पर होता है जो क्रान्तिवृत्त से समकोण बनाता हुआ कदम्ब (क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव) से होकर जाता है।

बुधभार्गवयोः शीघ्रात्तद्वत्पातो यदास्थितः।
तच्छीघ्राकर्षणात्तौ तु विक्षेप्येते यथोक्तवत् ॥८॥

अनुवाद—(८) बुध और शुक्र के पात जब इनके शीघ्रोच्चों से उपर्युक्त (६, ७ श्लोकों में लिखे हुए) नियम के अनुसार होते हैं तब शीघ्रोच्चों में आकर्षण करके ग्रहों को क्रान्तिवृत्त से उत्तर या दक्खिन उसी प्रकार हटा देते हैं।

विज्ञान भाष्य—६, ७ श्लोकों में जो नियम बतलाया गया है वह केवल सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, गुरु और शनि के लिए लागू है। बुध और शुक्र दो ग्रहों के स्थान जानने के लिए यह देखना चाहिये कि इनके शीघ्रोच्च पातों से किधर और कितनी दूर है। यदि शीघ्रोच्च पात से पूरब परन्तु १८०° से कम दूर हो तो ग्रह क्रान्तिवृत्त से उत्तर होगा और पच्छिम परन्तु १८०° से कम दूर हो तो ग्रह क्रान्तिवृत्त से दक्षिण होगा।

महत्त्वान्मण्डलस्याऽर्कः स्वल्पमेवाऽपकृष्यते।
मण्डलाल्पतया चन्द्रस्ततो बह्वपकृष्यते ॥९॥
भौमादयोल्पमूर्तित्वाच्छीघ्रमन्दोच्चसंज्ञितैः।
दैवतैरपकृष्यन्ते सुदूरमतिवेगिताः ॥१०॥
अतो धनर्णं सुमहत्तेषां गतिवशाद्भवेत्।
आकृष्यमाणास्तैरेवं व्योम्नि यान्त्यनिलाहताः ॥११॥

अनुवाद—(९) सूर्य का मण्डल बहुत बड़ा है इसलिए वह अपने उच्च द्वारा बहुत कम खिचता है। चन्द्रमा का मण्डल छोटा है इसलिए यह बहुत खिचता है। (१०) मंगल आदि ग्रहों के मण्डल बहुत छोटे हैं इसलिए इनके शीघ्रोच्च मन्दोच्च देवता इनको बहुत दूर तक बड़े वेग से खींच ले जाते हैं। (११) इसलिए इनमें धन और ऋण संस्कार इनकी गति के कारण बहुत करना पड़ता है। इस प्रकार यह ग्रह अपने शीघ्रोच्च मन्दोच्च देवताओं से खिचे हुए और प्रवह वायु का धक्का खाते हुए आकाश में चलते हैं।

विज्ञान भाष्य—हमारे आचार्यों ने यह देखा कि सूर्य की अपेक्षा चन्द्रमा अपने मध्यम स्थान से पूरब या पच्छिम अधिक रहता है और मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि इत्यादि तो अपने मध्यम स्थान से कहीं अधिक पूरब या पच्छिम देख पड़ते

ग्रहों के नाम	विषुवद्वृत्तीय × अर्द्धव्यास			मात्रा (mass) जब कि पृथ्वी का १ माना जाय	मध्यम घनत्व जब पानी का १ माना जाय	गुरुत्वाकर्षण पृष्ठ पर जब कि पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण १ माना जाय
	कोणात्मक †	मीलों में	जब कि पृथ्वी का १ माना जाय			
सूर्य	१६′१″.१८	४,३२,८६०	१०६.२	३,२६,३६०	१.४०	२७.६१
बुध	३″.३४	१,५०४	०.३८०	०.०५५?	५.५६?	०.३८
शुक्र	८″.४०	३,७८३	०.६५५	०.८०७	५.१४	०.८६
पृथ्वी	८″.८०	३,९६३	१.०००	१.०००	५.५६	१.००
मंगल	४″.६८	२,१०८	०.५३२	०.१०८	३.६२	०.३८
गुरु	१′३७″.३६	४३,८५०	११.०६	३१४.५०	१.३७	२.५७
शनि	१′२४″.७५	३८,१७०	९.६३	९४.०७	०.६४	१.०१
वरुण*	३४″.२८	१५,४४०	३.९०	१४.४०	१.३५	०.९५
इन्द्र *	३६″.५६	१६,४७०	४.१५	१६.७२	१.२९	०.९७

† कोणात्मक.अर्द्ध व्यास ग्रह के बिम्बार्ध का कोणात्मक मान है जब कि द्रष्टा ग्रह से उतनी दूरी पर हो जो सूर्य से पृथ्वी की मध्यम दूरी है।

*यह नामकरण केतकरकी ज्योतिर्गणित के अनुसार है।

?जिस संख्या के सामने यह चिन्ह है उसका ठीक ठीक निश्चय अभी तक नहीं हो सका है।

× ग्रहों के आकार भी पूर्ण गोल नहीं हैं उनमें भी ध्रुवों पर कुछ चपटा है जैसी हमारी पृथ्वी है इसलिए उनमें भी विषुववृत्त होते हैं।

इसलिए उन्होंने इन ग्रहों के मण्डलों को चन्द्रमा से भी छोटा समझा जैसा कि यह प्रत्यक्ष देख पड़ते हैं, और यह निश्चय किया कि इनके मण्डल बहुत छोटे हैं इसीलिए इनमें शीघ्रोच्चों और मन्दोच्चों के आकर्षण का प्रभाव बहुत पड़ता है।

परन्तु ग्रहों के मध्यम स्थान से कुछ पूरब या पच्छिम देख पड़ने के यथार्थ कारण हैं ग्रहों की कक्षाओं के आकार। ग्रहों की कक्षाएँ दीर्घवृत्त के आकार की हैं जिनकी च्युति (eccentricity) के परिमाण एक से नहीं हैं; इसीलिए मध्यम और स्पष्ट स्थानों में मुख्यत: अन्तर पड़ता है, ग्रहों के मण्डलों के आकार के कारण नहीं। इनके आकारों का ज्ञान पिछले पृष्ठ की सारिणी से स्पष्ट होगा जो राबर्ट बाल की 'स्फेरिकल एस्ट्रानोमी' पृष्ठ ४९२ से ली गयी है। चन्द्रमा का अर्द्धव्यास १०७६ मील है।

> वक्रानुवक्रा कुटिला मन्दा मन्दतरा समा।
> तथा शीघ्रतरा शीघ्रा ग्रहाणामष्टधा गति: ॥१२॥
> तत्रातिशीघ्रा शीघ्राख्या मन्दा मन्दतरा समा।
> ऋज्वीति पञ्चधाज्ञेया या वक्रा सानुवक्रगा ॥१३॥

अनुवाद—(१२) वक्र, अनुवक्र, कुटिल, मन्द मन्दर, सम, शीघ्रतर और शीघ्र नामक आठ प्रकार की गतियां ग्रहों में होती हैं। (१३) इनमें से अति शीघ्र शीघ्र, मन्द, मन्दतर और सम गतियाँ सीधी होती हैं अर्थात् जब ग्रह में यह गतियां होती हैं तब वह राशि-चक्र में पच्छिम से पूरब को जाता हुआ देख पड़ता है और वक्र के साथ जो अनुवक्र और कुटिल गतियां हैं वह वक्र गति कहलाती हैं क्योंकि जब ग्रह में ऐसी गतियां होती हैं तब वह राशि-चक्र में पूरब से पच्छिम को उलटा जाता हुआ देख पड़ता है। जब ग्रह में सीधी गतियां होती हैं तब वह मार्गी और जब वक्र गतियाँ होती हैं तब वक्री कहलाता है।

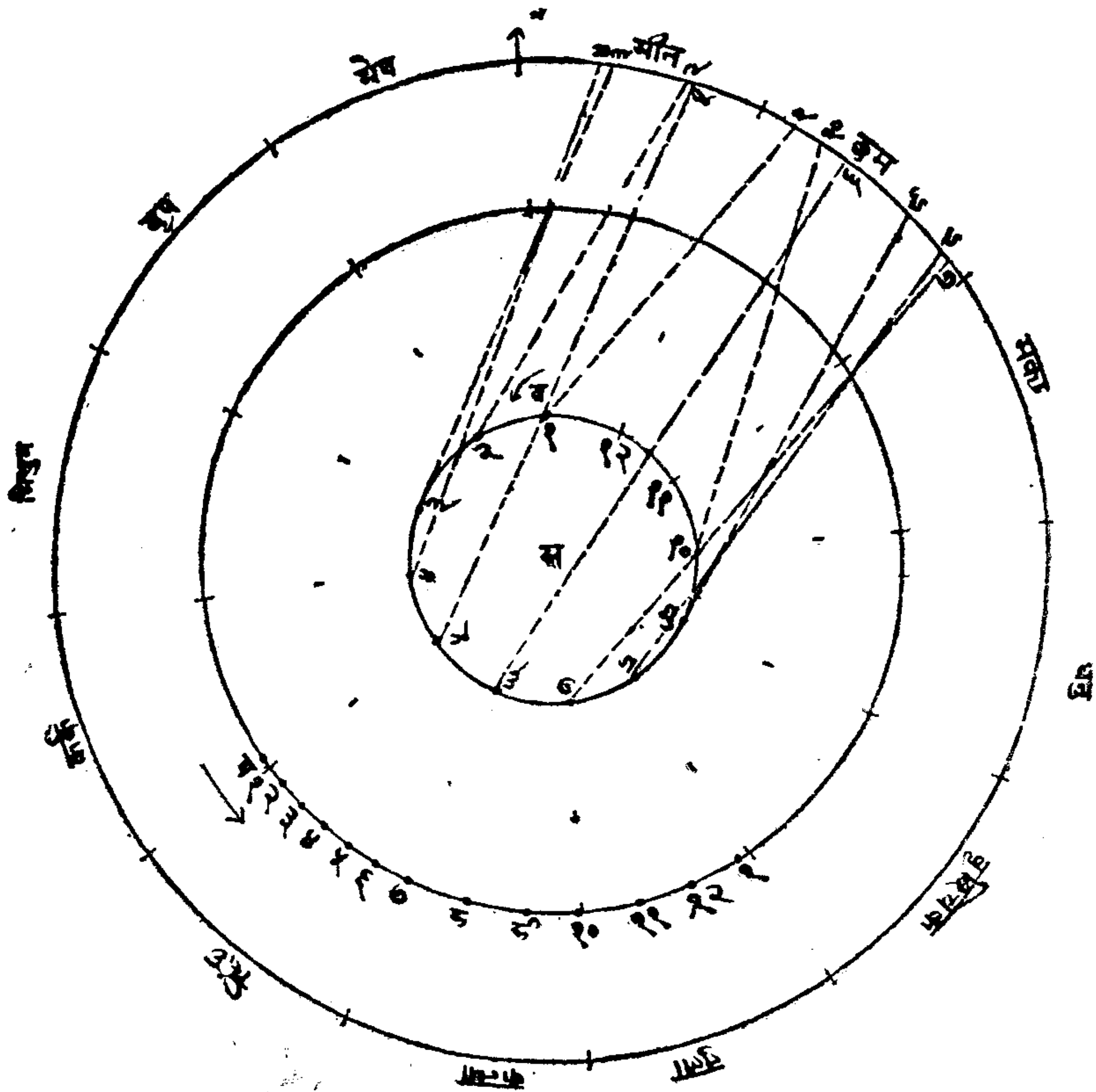
विज्ञान भाष्य—यह भिन्न-भिन्न गतियां ग्रह में कैसे हो जाती हैं इसका कारण हमारे सिद्धान्तों में कहीं नहीं बतलाया गया है, क्योंकि जब तक पृथ्वी अचल समझी जायगी तब तक इसका कारण अच्छी तरह नहीं समझाया जा सकता। हाँ यदि पृथ्वी को भी अन्य ग्रहों की भाँति सूर्य की परिक्रमा करती हुई मान लिया जाय जो कई प्रयोगों से सिद्ध भी हो गया है तो यह सहज ही समझा जा सकता है कि किसी ग्रहों में यह आठ गतियां कैसे देख पड़ती हैं; यद्यपि यथार्थ में ग्रह निरंतर पच्छिम से पूरब को जाता हुआ सूर्य की परिक्रमा कर रहा है। इस सम्बन्ध में मैंने 'विज्ञान' भाग १३ पृष्ठ २६४-२६९ पर जो लिखा था वही यहाँ उद्धृत करता हूँ।

यदि आप मैदान में एक झंडा गाड़ दें और झंडे से ४,७,१०,१५,५२,६५, १६२, और ३०० फर्लांग के अन्तर पर एक एक घेरा दो तीन फुट ऊँचा करवा दें; प्रत्येक घेरे के पास एक एक घुड़सवार नियुक्त कर दें; आप स्वयं झंडे के पास खड़े हो जायँ और घुड़सवारों को आज्ञा दे दें कि प्रत्येक घुड़सवार अपने अपने घेरे के पास इस तरह खड़ा हो जाय कि सब एक ही सीध में दिखाई पड़ें और तदनन्तर सब सवार एक साथ ही घेरे का इस वेग से चक्कर लगाने लगें कि सबसे पास वाला एक चक्कर ८८ सेकंड में, इससे कुछ दूरवाला २२५ सेकंड में, तीसरा ३६५ सेकंड मे, चौथा ६८७ सेकंड में, पांचवां ४३३२ सेकंड में, छठा १०७५६ सेकंड में, सातवां ५१० मिनट में और आठवां १००३ मिनट में, चक्कर पूरा करने लगे, तो जिस प्रकार यह घुड़सवार सेकंडों में आपकी परिक्रमा करते हुए जान पड़ेंगे वैसे ही सौर-मंडल में ग्रह दिनों में सूर्य की परिक्रमा करते हुये दिखाई पड़ते हैं। अंतर केवल इतना होगा कि सवार एक धरातल में चक्कर लगावेंगे पर ग्रह कुछ उत्तर दक्खिन हट भी जाते हैं।

यदि आप झंडे के पास न खड़े होकर स्वयं झंडे से तीसरे घोड़े पर सवार होकर पहले कहे हुये वेग से चक्कर लगाने लगें तो आपको झंडे और घुड़सवार जैसे दिखाई पड़ेंगे वही दृश्य हम पृथ्वी निवासियों को ग्रहों के सूर्य का चक्कर लगाने में दिखाई पड़ता है। कभी यह जान पड़ता है कि ग्रह आगे बढ़ते जा रहे हैं और कभी जान पड़ता है कि कोई पीछे हो रहे हैं और कभी ठहरे हुये भी दिखाई पड़ते हैं।

ऊपर सवारों के उदाहरण से आपको विदित हो गया होगा कि यदि सवार तीसरे घोड़े पर बैठ कर झंडे की परिक्रमा करे तो बाहर और भीतर दोनों ओर वाले घोड़ों की गतियों में वही 'वक्रानुवक्रा कुटिला' तथा 'शीघ्रा शीघ्रतरा' गतियों की विलक्षणता दिखाई देती है, जैसे पृथ्वी रूपी घोड़े पर सवार पृथ्वी निवासियों को अन्य ग्रहों की गतियों में विलक्षणता दिखाई देती है। समझाने के लिये हमको दो उदाहरण लेने होंगे—एक ऐसे ग्रह का जो पृथ्वी और सूर्य के बीच में है और दूसरा ऐसे ग्रह का जो सूर्य और पृथ्वी के बाहर है। पहले के लिये बुध और दूसरे के लिये मंगल २१ तथा २३ चित्रों में लिये गये हैं।

चित्र २१ में सबसे बड़ा वृत्त राशि-चक्र है, जिस पर घूमता हुआ सूर्य एक वर्ष में एक चक्कर लगाता हुआ जान पड़ता है। जहाँ वसंत-विषुव लिखा हुआ है वहाँ जब सूर्य दिखलाई पड़ता है तब वसंत ऋतु का आरम्भ होता है और इस दिन दिन रात समान होते हैं। यहीं से आरम्भ करके राशिचक्र बारह भागों में बांटा गया है। इसलिये जिस-जिस भाग पर मेष वृष इत्यादि लिखा हुआ है उसे सायन मेष, सायन वृष समझना चाहिये। सायन मेष का आरम्भ २१, २२ मार्च को होता



चित्र २१—पृथ्वी मार्ग और ... तथा अन्य गतियां

है। सायन मेष से २३ और आगे निरयन मेष मास का आरम्भ होता है, यह १३, १४ अप्रैल को पड़ता है। सूर्य राशि चक्र में मेष से वृष, वृष से मिथुन इत्यादि राशियों में जाता हुआ जान पड़ता है।

राशि चक्र मे छोटा वृत्त भूकक्षा है। इसी पर पृथ्वी चलती हुई 'स' सूर्य की, जो केन्द्र में है, एक वर्ष में एक परिक्रमा कर लेती है। सूर्य निवासियों को पृथ्वी भी मेष से वृष, वृष से मिथुन, मिथुन से कर्क, कर्क से सिंह इत्यादि राशियों में भ्रमण करती दिखाई देती है। इसी के भ्रमण से हम लोगों को सूर्य भ्रमण करता हुआ जान पड़ता है। चित्र २१ में इसका भ्रमण प से आरम्भ होता हुआ दिखाया गया है और

२, ३, ४, इत्यादि बिन्दुओं पर घड़ी की सुइयां जिस दिशा में चलती हैं उसके प्रतिकूल दिशा में पृथ्वी जाती है। चलने की दिशा तीर की दिशा से जानी जा सकती है। पृथ्वी की दैनिक गति विषम होने से भूकक्षा के विन्दु असमान अंतर पर दिखाये गये हैं।

सबसे छोटा वृत्त बुध ग्रह की कक्षा है। मान लीजिये कि बुध ब$_1$ से चलना आरंभ करता है और अपनी कक्षा में २, ३, ४ इत्यादि विन्दुओं पर घड़ी की प्रतिकूल दिशा में तथा सूर्य निवासियों को मेष, वृष, मिथुन इत्यादि राशियों में जाता हुआ दिखाई देता है। चित्र में ब$_1$ वहाँ लिखा है जहाँ बुध उस समय है जब कि पृथ्वी प$_1$ पर है। जब बुध विन्दु २ पर जाता है तब पृथ्वी अपनी कक्षा में विन्दु २ पर जाती है। जब बुध अपनी कक्षा में विन्दु २ से विन्दु ३ पर जाता है तब पृथ्वी अपनी कक्षा में विन्दु २ में विन्दु ३ पर जाती है। इसी तरह और विन्दुओं के लिये भी समझना चाहिये, जैसे जब बुध अपनी कक्षा में विन्दु ७ पर होता है तब पृथ्वी अपनी कक्षा में विन्दु ७ पर रहती है, इत्यादि। यदि यह देखना हो कि पृथ्वी से बुध किस दिशा में राशि चक्र पर दिखाई देगा तो बुध और पृथ्वी उस समय जहाँ हों, उन विन्दुओं को मिलाकर राशि-चक्र तक ले जाइये। जहाँ यह रेखा पहुँचेगी वहीं बुध का स्थान होगा। चित्र की सरलता के लिये पृथ्वी और बुध को मिलानेवाली रेखाएँ नहीं दिखाई गई हैं परंतु बुध से राशि चक्र तक यह कटी रेखाओं से प्रकट की गयी हैं। जैसे जब पृथ्वी प$_1$ और बुध ब$_1$ विन्दुओं पर होते हैं तब प$_2$, ब$_1$ का मिलाने वाली रेखा राशि चक्र में १ विन्दु कर पहुँचती है अर्थात् पृथ्वी निवासियों को बुध राशि-चक्र के विन्दु १ पर अथवा कुंभ राशि के अन्त में दिखाई पड़ेगा। जब पृथ्वी प$_2$ पर पहुँचती है तब बुध ब$_2$ पर पहुँचता है और राशिचक्र में विन्दु २ पर अथवा मीन राशि में दिखाई देता है और प$_3$ (अर्थात् जब पृथ्वी अपनी कक्षा में विन्दु ३ पर होती है) से बुध ब$_3$ पर होने के कारण राशिचक्र में विन्दु ३ पर मीन के अन्त में दिखाई देगा। जब बुध अपनी कक्षा में ४ पर होगा तब पृथ्वी भी अपनी कक्षा में ४ पर होगी और पृथ्वी निवासियों को बुध राशि-चक्र में विन्दु ४ पर अर्थात् ३ से कुछ ही आगे दिखाई पड़ेगा। जब बुध अपनी कक्षा में १ से २ तक आया तब पृथ्वी भी १ से २ पर अपनी कक्षा में आयी और हम लोगों को बुध राशि चक्र में कुंभ से मीन में जाता हुआ दिखाई पड़ा। जब बुध २ से ३ पर अपनी कक्षा में गया तब पृथ्वी भी २ से ३ पर अपनी कक्षा में गयी और यहाँ के निवासियों को बुध राशि चक्र में २ से ३ तक मीन राशि में आगे जाता हुआ दीख पड़ा। इस बार बुध राशि चक्र मे उतना आगे नहीं बढ़ा जितना पहले बढ़ा था अर्थात् बुध की चाल

पहुंचने से मन्द पड़ गयी। ३ से ४ तक पहुँचने में बुध राशि-चक्र बहुत ही कम आगे बढ़ा, इसलिये यदि यह कहा जाय कि बुध की चाल नहीं के समान है तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। ऐसी दशा में बुध कुछ ठहरा हुआ जान पड़ता है। जब बुध अपनी कक्षा में ४ से ५ पर जायगा, पृथ्वी भी अपनी कक्षा में ४ से ५ पर आयगी और पृथ्वी निवासियों को बुध राशि-चक्र में उलटा ४ से ५ तक जाता हुआ दिखाई पड़ेगा अर्थात् बुध वक्री हो गया, ऐसा जान पड़ेगा। जब बुध ५ से ६ पर अपनी कक्षा में जायगा तब पृथ्वी भी अपनी कक्षा में ५ से ६ पर जायगी और हम लोगों को बुध राशि चक्र में ५से ६ तक उलटा मीन से कुम्भ राशि में जाता हुआ दिखाई पड़ेगा, परंतु चाल बहुत तीव्र हो जायगी। यहाँ भी बुध वक्री कहा जायगा, यद्यपि वह अपनी कक्षा में उसी क्रम से जा रहा है। जब बुध ६ से ७ तक जाता है, राशि चक्र में ६ से ७ तक उलटा जाता हुआ दिखाई पड़ता है। परन्तु अपनी कक्षा में ८ से ९ तक जाते-जाते यह राशि चक्र में ८ से ९ तक सीधा आता दिखाई देगा अर्थात् बुध की चाल मार्गी हो जायगी, परन्तु रहेगी बहुत मन्द। अब यह स्पष्ट हो गया होगा कि यद्यपि सूर्य के विचार से बुध और पृथ्वी दोनों एक ही दिशा में जाते हुए दिखाई पड़ते हैं तथापि पृथ्वी निवासियों को बुध राशि चक्र में एक से ४ तक आगे बढ़ता हुआ जान पड़ता है और ४ से ७ तक पीछे हटता हुआ जान पड़ता है। जब आगे बढ़ता है तब मार्गी कहलाता है और पीछे हटता है तब वक्री हो जाता है। जब मार्गी रहता है तब भी इसकी चाल एक सी नहीं दीखती वरन् कभी बहुत शीघ्र बढ़ती हुई जान पड़ती है, कभी मन्द पड़ जाती है और कभी ठहरी सी जान पड़ती है। और जब वक्री होता है तब भी चाल द्रुत, द्रुततर, मंद, मंदतर तथा स्थिर सी जान पड़ती है।

यहाँ एक बात और जानने योग्य है। जब पृथ्वी प^{१} पर होती है और बुध ब^{१} पर तब सूर्य और पृथ्वी को मिलाने वाली रेखा मकर के अन्त पर पहुँचती है अर्थात् सूर्य मकर में दिखाई देता है, परन्तु बुध कुम्भ के अन्त में। इसलिए बुध सूर्य के पूरब रहता है और सूर्यास्त के बाद पच्छिम में दिखाई देता है। प^{२} से सूर्य कुम्भ राशि के आदि में दिखाई पड़ता है और बुध मीन के आदि में, प^{३} से सूर्य कुम्भ में कुछ और आगे बढ़ा हुआ जान पड़ता है, परन्तु बुध मीन के अन्त तक पहुँचा हुआ दिखाई पड़ता है और इसी के पास सूर्य और बुध का अन्तर सबसे अधिक होता है। ऐसी दशा में यदि पृथ्वी और बुध को मिलाने वाली रेखा बढ़ायी जाय तो वह बुध की कक्षा को स्पर्श करती हुई जायगी, और पृथ्वी और सूर्य को मिलाने वाली रेखा से जो कोण बनायेगी वह सबसे बड़ा होगा। इसी को सूर्य और बुध का महत्तम अन्तर (Greatest elongation) कहते हैं और यह अन्तर सूर्य के पूर्व की ओर होता है। महत्तम अन्तर के कुछ दिन पीछे ही बुध की गति वक्री हो जाती है और अन्तर

घटने लगता है और घटते-घटते बुध पृथ्वी और सूर्य के बीच में आ जाता है अर्थात् अन्तर शून्य हो जाता है। ऐसी दशा में बुध सूर्य के साथ उदय और अस्त होता है। इसी को बुध की भीतरी युति (Inferior conjunction) कहते हैं। जब सूर्य से बुध का अन्तर १२° के लगभग हो जाता है तब सूर्य के निकट होने से उसके प्रकाश के कारण कोरी आँख से बुध नहीं दिखाई पड़ता। इसलिए कहा जाता है कि बुध का अस्त पच्छिम में हो जाता है क्योंकि बुध पच्छिम में ही दीखते-दीखते छिप जाता है। भीतरी युति के समय से कुछ पहले वक्री होने पर बुध दाहिने हाथ की ओर जाता है और सूर्य बायें हाथ की ओर, इसलिये सूर्य से बुध बहुत ही शीघ्र हटता है अर्थात् पच्छिम में अस्त होने के बाद थोड़े ही दिनों में वह सूर्य से पच्छिम चला आता है और सूर्योदय के पहले ही उदय होकर पूर्व में दिखाई देने लगता है, तब कहते हैं कि बुध का पूर्व में उदय हो गया। जब बुध १२° सूर्य से पच्छिम हो जाता है तब फिर दिखाई पड़ने लगता है। तभी उसका उदय मानते हैं, गति भी वक्री से कुछ ही दिनों में मार्गी होने लगती है।

इस प्रकार मार्गी होने के पीछे बुध क्रमशः सूर्य से दूर होता जाता है और जब वह अपनी कक्षा में विन्दु ७ और ८ के बीच में जाता है तब भी सूर्य से इसका अन्तर महत्तम हो जाता है। फिर बुध सूर्य के पास होता जाता है और डेढ़ महीने में सूर्य के इतना पास हो जाता है कि आँख से दिखाई नहीं पड़ता। सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार जब अन्तर १४° का रह जाता है तब अस्त होना मानते हैं। जब बुध और सूर्य का अन्तर शून्य हो जाता है तब दोनों एकसाथ क्षितिज के ऊपर आते हैं। ऐसी दशा में बुध और सूर्य की बाहरी युति (Superior conjunction) होती है। बाहरी युति के समय बुध मार्गी रहता है।

बाहरी युति के समय बुध और सूर्य दोनों बायीं ओर को जाते हुए दिखाई पड़ते हैं, इसलिये बुध को सूर्य से दूर होने में अधिक दिन लगते हैं अर्थात् जब बुध पूर्व में अस्त होता है तब पच्छिम के अस्त काल से अधिक काल तक अस्त रहता है और पच्छिम में देर में उदय होता है।

यह लिखा गया है कि पच्छिम में बुध तब अस्त होता है जब सूर्य और बुध का अन्तर १२° से कम हो जाता है और पूर्व में अस्त तब होता है जब दोनों का अन्तर १४° से कम हो जाता है। इसका कारण यह है कि भीतरी युति के समय बुध पृथ्वी से बहुत पास रहता है इसलिये उसका बिम्ब बड़ा दिखाई पड़ता है और जब तक सूर्य से १२° की दूरी तक नहीं हो जाता तब तक दिखाई पड़ता है। परन्तु बाहरी युति के समय बुध सूर्य से भी दूर हो जाता है इसलिये उसका बिम्ब छोटा

दिखाई पड़ता है और जब उसकी दूरी १४° रहती है तभी छिप जाता है। शुक्र भी भीतरी युति के समय सबसे बड़ा दीखता है और बाहरी युति के समय सबसे छोटा।

इससे सिद्ध हो गया होगा कि ग्रह अस्त होने के पीछे कहीं चले नहीं जाते वरन् सूर्य के इतने पास हो जाते हैं कि आंख से दिखाई नहीं पड़ते। हाँ दूरबीन से यह सूर्य के चाहे जितने पास हों दिखाई पड़ सकते हैं।

बुध और शुक्र दोनों ग्रहों की कक्षाएँ पृथ्वी की कक्षा के भीतर हैं इसलिए जो बात बुध के लिए कही गयी है वह शुक्र के लिए भी लागू है। अन्तर केवल इतना है कि शुक्र की कक्षा बुध की कक्षा से बड़ी है इसलिए भीतरी युति के समय शुक्र पृथ्वी से अत्यन्त निकट हो जाता है। दूरबीन से देखने पर बुध और शुक्र दोनों में उसी प्रकार कलायें दिखाई पड़ती हैं जैसी चन्द्रमा में बाहरी युति के समय दोनों ग्रह पूर्ण गोल दीखते हैं, क्योंकि उस समय पूरा प्रकाशित बिम्ब हमारे सामने रहता है। जब ग्रह कुछ बगल में हो जाता है तब पूरा प्रकाशित भाग हम लोगों को नहीं दीखता, दिन-दिन बिम्ब कुछ खंडित होता जाता है। परन्तु प्रकाश अधिक मिलता है, क्योंकि दूरी कम होती जाती है इसलिए खंडित ग्रह भी पास होने के कारण अधिक प्रकाश देता है। भीतरी युति के समय ग्रह का प्रकाशित भाग सूर्य की ओर होता है इसलिए हमको ग्रह से ज़रा भी प्रकाश नहीं मिलता और वह एक काले धब्बे की तरह दूरबीन में दिखाई पड़ता है। शुक्र की कलायें चित्र २२ में दिखाई गई हैं।

चित्र २३ में राशि-चक्र का केवल वह भाग दिखाया गया है जहाँ मंगल वक्री और फिर मार्गी होता हुआ जान पड़ता है। स सूर्य केन्द्र में है। पृथ्वी अपनी कक्षा में और मंगल अपनी कक्षा में सूर्य की परिक्रमा इस प्रकार करते हैं कि वह राशि चक्र में मेष से वृष, वृष से मिथुन में जाते हुये (सूर्य से) दिखाई देते हैं। सूर्य में स्थित मनुष्य को कोई ग्रह वक्री होते हुये नहीं दीख सकते; उसे सब ग्रह एक ही तरफ से परिक्रमा करते हुये देख पड़ते हैं। हाँ पृथ्वी निवासियों को मंगल मार्गी, शीघ्रगामी, मन्दगामी, स्थिर तथा वक्री, मन्द गामी, फिर मार्गी दिखाई पड़ता है। मंगल की एक परिक्रमा ६८६ दिन में पूरी होती है इसलिए १०° की परिक्रमा वह $\frac{६८६ \times १०}{३६०}$ दिन वा १६ दिन में कर लेता है और इतने समय में पृथ्वी १६° के लगभग चलती है, क्योंकि पृथ्वी की एक परिक्रमा ३६५ दिन में पूरी होती है अर्थात् १ दिन में प्राय: १° परिक्रमा होती है।

मान लीजिये पृथ्वी अपनी कक्षा में विन्दु १ पर है और मंगल भी अपनी कक्षा में विन्दु १ पर है तब पृथ्वी निवासियों को मंगल राशि चक्र में १ विन्दु पर

चित्र २९—शुक्र की कलाएँ

चित्र २३'—मंगलकी भिन्न भिन्न गति

दिखाई देगा। जब पृथ्वी १६ दिन में अपनी कक्षा के विन्दु २ पर पहुँचती है, मंगल भी १०° चलकर अपनी कक्षा में विन्दु २ पर पहुँचेगा और हम लोगों को दिखाई पड़ेगा कि वह राशि चक्र में विन्दु २ पर है। जब पृथ्वी अगले १६ दिन में विन्दु ३

पर पहुँचेगी, मंगल भी विन्दु ३ पर अपनी कक्षा में पहुँचेगा और दिखाई पड़ेगा कि राशि चक्र में वह २ विन्दु के पास ही जरा सा आगे हटा है। यहाँ मंगल कुछ दिनों तक स्थिर सा जान पड़ेगा, क्योंकि १६ दिन के भीतर राशि चक्र में २ से ३ तक बहुत कम गया है। जब पृथ्वी और मंगल अपनी अपनी कक्षा में विन्दु ४ पर पहुँचेंगे तब मंगल राशि चक्र में विन्दु ४ पर अर्थात् पीछे हटा हुआ दिखाई पड़ेगा। इसी को कहते हैं कि मंगल वक्री है यद्यपि मंगल की चाल अपनी कक्षा में वैसी ही सीधी है। ४ विन्दु पर पृथ्वी, मंगल और सूर्य के बीच में हो जाती है, अर्थात् पृथ्वी के दाहिने सूर्य होता है और बायें मंगल। इस प्रकार सूर्य का अन्तर ६ राशि या १८०^0 का हो जाता है। इसी स्थिति को कहते हैं कि मंगल सूर्य से षडभान्तर पर (In opposition) है। जब सूर्य अस्त होता है तभी मंगल पूर्व में उदय होता है और जब सूर्य उदय होता है तभी मंगल पच्छिम में अस्त होता है। इस स्थिति में मंगल पृथ्वी से अत्यन्त निकट होता है, इसलिए इसका बिम्ब बहुत बड़ा दिखाई पड़ता है और दूरबीन से देखने पर उसी समय मंगल ग्रह की बहुत सी बातें दिखाई देती हैं।

जब पृथ्वी और मंगल अपनी-अपनी कक्षा में ५ विन्दु पर होते हैं तब हम लोगों को मंगल राशि चक्र में ५ बिन्दु पर और पीछे हटा हुआ देख पड़ता है। दोनों ग्रह अपनी-अपनी कक्षा में जब ६ विन्दु पर आते हैं तब मंगल राशि चक्र में कुछ आगे खसका हुआ ६ विन्दु पर दिखाई देता है, यहाँ भी मंगल कुछ देर के लिए स्थिर सा जान पड़ता है, फिर आगे बढ़ता हुआ दिखाई पड़ता है।

जब पृथ्वी और मंगल के बीच में सूर्य होता है अर्थात् जब पृथ्वी ४ पर और मंगल 'म' पर होता है तब मंगल की दूरी पृथ्वी से अत्यन्त अधिक होती है। ऐसी स्थिति को 'मंगल की सूर्य से युति होती है', ऐसा कहते हैं। इस दशा में मंगल का बिम्ब बहुत छोटा दीखता है।

इन दोनों चित्रों से प्रकट है कि भूकक्षा के भीतरवाले ग्रह उस समय वक्री होते दिखाई देते हैं जब भीतरी युति होने को होती है और भीतरी युति के समय वह वक्री ही रहते हैं। परन्तु भू कक्षा के बाहर वाले ग्रह उस समय वक्री होते हैं जब वह सूर्य से ६ राशि अथवा १८०^0 के लगभग दूरी पर होते हैं और जिस समय वह ठीक आमने सामने (In opposition) होते हैं, उस समय वक्री ही रहते हैं। भीतरी ग्रह (Inferior planets) प्रत्येक परिक्रमा की भीतरी और वाहरी दोनों युतियों के समय अस्त रहते हैं अर्थात् सूर्य के पास रहने के कारण सूर्य के प्रचण्ड प्रकाश में कोरी आँख से नहीं दिखाई देते हैं परन्तु बाहरी ग्रह (Superior planets) की एक परिक्रमा में केवल एक युति होती है, तभी यह अस्त हुए कहे जाते हैं।

इस प्रकार यह प्रकट है कि पृथ्वी को चलती हुई मान लेने से ग्रहों की विलक्षण गतियों का समझना बड़ा ही सहज है। यदि पृथ्वी अचला मानी जाय तो यह किसी प्रकार नहीं समझाया जा सकता कि ग्रहों की वक्री गति क्यों होती है।

तत्तद्गतिवशान्नित्यं यथा दृक्तुल्यतां ग्रहाः।
प्रयान्ति तत्प्रवक्ष्यामि स्फुटीकरणमादरात् ॥१४॥

अनुवाद—(१४) इन इन गतियों के वश होकर ग्रह जिस प्रकार दृकतुल्यता को प्राप्त होते हैं अर्थात् वेध के स्थान में पहुँचकर प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं वही स्पष्ट करने के (उसी को गणित से जानने के) नियम आदर के साथ कहता हूँ।

विज्ञान भाष्य—यह श्लोक बड़े महत्व का है। इससे सिद्ध होता है कि हमारे पुराने आचार्य ग्रहों के स्पष्ट स्थान इसीलिए निकालते थे जिससे गणित और प्रत्यक्ष वेध में कोई अंतर न पड़े। इसके लिए स्पष्टाधिकार में सूक्ष्म से सूक्ष्म नियम बनाये गये। परन्तु जैसा कि मध्यमाधिकार के ६वें श्लोक के विज्ञान भाष्य में मैं बतला चुका हूँ कि चाहे यंत्र स्थूल हों चाहे सूक्ष्म, इनसे वेध करने में कुछ न कुछ प्रयोगात्मक अशुद्धि (Experimental error) रह ही जाती है इसलिए काल पाकर कुछ भेद पड़ जाता है, जिससे समय-समय पर संशोधन करना पड़ता है। इसी को 'बीज' संस्कार कहते हैं। उदाहरण के लिए मान लीजिये कि कोई घड़ी प्रति दिन एक सेकंड मंद होती हो तो ६० दिन में वह १ मिनट और १ वर्ष में ६ मिनट पीछे हो जायगी। परन्तु व्यवहार में यही कहा जायगा कि घड़ी बहुत शुद्ध है; क्योंकि ६० दिन में १ मिनट का अंतर या प्रतिदिन एक सेकंड का अंतर नहीं के समान है। यदि यह अंतर सदैव होता जाय और घड़ी में संशोधन न किया जाय तो कई वर्षों में इतना अंतर पड़ जायगा कि उसको भी नहीं के समान समझना असम्भव होगा और संशोधन करना ही पड़ेगा। जैसे घड़ी में प्रतिदिन १ सेकंड का अंतर कुछ काल में बड़ा भारी रूप धारण कर सकता है उसी प्रकार सूर्य चन्द्रमा इत्यादि ग्रहों के भगणकालों में १ पल का भी अंतर सैकड़ों वर्षों में बहुत बड़ा हो जाता है। इसीलिए बीज संस्कार करना पड़ता है। बीच-बीच में संशोधन करने की प्रथा हमारे प्राचीन आचार्यों को मान्य थी, जिनके अवतरण मैं नीचे दूँगा; परन्तु कुछ दिनों से इस विषय पर मतभेद हो गया है। एक पक्ष कहता है कि आर्ष ग्रन्थों पर किसी प्रकार की टीका टिप्पणी करने का अथवा संशोधन करने का अधिकार नहीं है, उनमें जो कुछ है उसको वैसा ही मानना चाहिये। दूसरा पक्ष कहता है कि संशोधन करना सर्वथा उचित है। नीचे दोनों पक्षों के तर्क मुझे जहाँ तक मिले हैं दिये जाते हैं :—

प्रयाग निवासी पंडित इन्द्रनारायण द्विवेदी ज्योतिष भूषण, इसी श्लोक के अनुवाद के साथ साथ यह टिप्पणी देते हैं—

"यहाँ अनेक लोग "दृक्तुल्यतः" से दृश्य गणना का अर्थ लगाते हैं; किन्तु यह उनका भ्रम है। पूर्वापर के देखने से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि दृक्तुल्यतां का अर्थ यहाँ जिस गणना का वर्णन करते हैं उसके अनुसार अदृश्य दृष्टि से अपने स्पष्ट किये हुए स्थान पर दिखाई देना है अन्यथा इस गणना के अनुसार कभी भी दृश्य ग्रह सिद्ध नहीं हो सकते थे क्योंकि जितने संस्कार दृश्य ग्रहों के लिए आज निकाले गये हैं ये ही सदा होने चाहिये थे यह गोल विद्या के जानने वालों को ज्ञात ही है"[१]

इस अवतरण का भावार्थ कदाचित यह है कि ग्रहों का स्पष्ट स्थान निकालने के लिए जो नियम इस ग्रन्थ में बतलाये गये हैं उनके अनुसार ग्रहों का स्थान वही नहीं निकलता जो प्रत्यक्ष वेध से देखा जाता है। इसलिए दृक्तुल्यता का अर्थ प्रत्यक्ष वेध नहीं है वरन् वह अदृश्य वेध है जिसे ऋषियों ने अपने योगबल के द्वारा जाना था।

इस पक्ष के ज्योतिषाचार्य पं० गिरिजाप्रसाद जी द्विवेदी जो आजकल लखनऊ के नवल किशोर विद्यालय के प्रधानाध्यापक हैं अपने सिद्धान्त शिरोमणि गोलाध्याय के 'प्रभा भाषा भाष्य'[२] पृष्ठ ६, ७ में बहुत स्पष्ट शब्दों में यों लिखते हैं :—

"...दृष्टादृष्टभेदेन गणितस्य द्वैविध्यं तावच्चतुरस्रम्। तत्र 'अदृष्टफलसिद्ध्यर्थं यथार्काद्युक्तितः कुरु। गणितं यद्धि दृष्टार्थं तद्दृष्टयुद्भवतः सदा'॥ तथा अदृष्टफल सिद्ध्यर्थं निर्वीजार्कोक्तमेवहि।' इति तत्वविवेकीय कमलाकरोक्त्या महर्षि दर्शित पथानुसारिण एवं स्फुटाः खेटाः फलादेशायोपयुज्यन्ते नतु सांप्रतिकोपलब्ध संस्कार संस्कृताः। निर्वीजार्कोक्तमित्युक्त्या तन्निरासात्। फलविषयेऽनार्षगणिताङ्गीकारे बहुत्र श्रौतस्मार्तकर्मानुष्टानसमयादिषु विप्लवः संजायते। तस्माद्धर्माभिमानिभिः सुधीभिः सकलं परीक्ष्य निष्कण्टकः पन्था अनुसरणीयः। तत्तत्संस्कारोत्पन्नाः खेटास्तु केवलं ग्रहणोदयास्तादि दृष्टगणितएवोपयुज्यन्ते। दृष्टगणिताभिमानिनोऽदृष्टगणितोन्मूलनाय बहुधा विवदन्ते। परमुभयो स्वीकारेणैव निर्वाहो नत्वन्यतरस्याङ्गीकारेणेत्यन्यत्र विस्तरः।

"दृष्ट और अदृष्ट के भेद से गणित दो प्रकार का है। दृष्ट जो आँखों से देखा जाय, जैसे ग्रहण, उदयास्त, युति और शृङ्गोन्नति आदि। और अदृष्ट जो देखने में न आवे, जैसे तिथियोग आदि। ग्रहण आदि के देखने से ही उसका फल होता है। और व्रत उपवास आदि का फल बिना देखे ही होता है। फल का आदेश केवल ऋषियों

---

१. प्रयाग के हिन्दी साहित्य सम्मेलन से प्रकाशित सूर्य सिद्धान्त पृष्ठ ३५।

२. लखनऊ से नवल किशोर प्रेस में १९११ ई० में प्रकाशित।

के अनुभवसिद्ध वाक्यों से होता है। जो कुछ ग्रहों की स्थिति के अनुसार फल लिखा उपलब्ध होगा, मनुष्य वही जान सकेगा। इस फल की कल्पना ऋषियों के सिवा कोई नहीं कर और जान सकता।

"आर्ष ग्रन्थों में जो ग्रह स्पष्ट बनाने की रीति है उसी रीति से स्पष्ट किये ग्रह फलादेश में उपयुक्त हैं। क्योंकि उन्हीं स्पष्ट ग्रहों के आधार पर श्रौत और स्मार्त कर्मों के समय बंटे हैं। इसलिए उसी गणित से जो तिथि आदि सिद्ध हों उन्हीं से धर्म व्यवस्था और उसका आचरण करना उचित है।

"सांप्रत में यूरोप के विद्वानों ने सूक्ष्म यन्त्र द्वारा बहुत से नवीन संस्कार निश्चित किये हैं और उनका ग्रहों में उपयोग लाकर सूक्ष्म-स्पष्ट ग्रह सिद्ध करते हैं। इस स्पष्ट विधि को लेकर अंग्रेजी गणित विद्या विशारद आजकल कई एक पञ्चाङ्गों में ग्रह स्पष्ट सिद्ध करके उनसे तिथि आदि का साधन करते हैं और उसी के अनुसार धर्म व्यवस्था करते हैं। परन्तु यह सर्वथा अनुचित और धर्म में बाधा डालना है। क्योंकि आर्ष गणित के अनुसार जब एकादशी आदि का उपवास आदि सिद्ध होगा उस काल में इस नवीन सूक्ष्म गणित से उसका सिद्ध होना असम्भव होगा। इस प्रकार ऋषियों के वचन में बाधा डालने से धर्म का विप्लव होगा। ऋषियों के वाक्य उन्हीं की रीति पर चलने से घट सकेंगे। इससे स्पष्ट है कि धर्म व्यवस्था के लिए ऋषिप्रोक्त गणित का ही आश्रय उचित है।

"नवीन वेधसिद्ध संस्कारों को ही प्राचीन ग्रन्थों में 'बीज' नाम से लिखा है। और वेध से प्राचीनों ने इसका साधन भी किया है। परन्तु इस बीज को ग्रहणादि दृष्टगणित के ठीक समय ज्ञान के लिए उपयुक्त किया है। अदृष्ट गणित में, आजकल की तरह नहीं घुसेड़ा। इसलिए आजकल के यूरोप के नये संस्कार केवल दृष्ट गणित में उपयुक्त हैं। उसमें इसका उपयोग लेने से कोई बाधा नहीं है। क्योंकि इसकी व्यवस्था ही इसी प्रकार से आचार्यों ने की है।

जैसा —'अदृष्ट फल सिद्धयर्थं निर्बीजाकेक्तिमेवहि।
गणितं यद्धि दृष्टार्थं तद्दृष्ट्युद्भवतः सदा॥'

अर्थात् अदृष्ट गणित के लिए केवल निर्बीज, सूर्योक्ति, सूर्य सिद्धान्त के गणित का आश्रय करना चाहिये और दृष्ट गणित के लिए जिससे ठीक आकाश और गणित का संवाद हो उसी से सदा गणित करना चाहिये।

"इस प्रकार निष्पक्षपात और धर्मबुद्धि से यह सिद्ध होता है कि प्रत्येक विचारशील पुरुषों को, दृष्ट और अदृष्ट गणित उक्त नियमों के अनुसार मानना

चाहिये । केवल दृष्टमात्र को ही चार्वाकों की तरह सर्वत्र मानना महा अनुचित और सत्य का अपलाप करना है ।"

इस लम्बे अवतरण में प्रमाण के लिए संस्कृत का जो श्लोक दिया हुआ है वह आचार्य कमलाकर के सिद्धान्त-तत्वविवेक का है जो शक १५८० तथा विक्रमीय १७१५ में लिखा गया था । इस ग्रन्थ में आचार्य कमलाकरजी ने सूर्य सिद्धान्त का कहीं-कहीं अनुचित पक्ष किया है जिसका प्रमाण म० म० सुधाकर द्विवेदी के शब्दों में यह है :—

"अत्र यावच्छक्यं सूर्यसिद्धान्तमत मण्डनं भास्कर मुनीश्वरादीनां खडनं च कृतं ग्रन्थ कृता । बहुत्र परदूषणाभिलाषेणान्यथैव भास्कर कृतोदयान्तर कर्म्मादि खण्डनमस्य गोले गणितेचाद्वितीय पण्डितस्यानेक कल्पनाकुशलस्य न शोभते ।"[1]

इस पक्ष में और भी कोई प्राचीन मत है या नहीं इसका मुझे ज्ञान नहीं । यदि कोई महानुभाव बतलाने की कृपा करेंगे तो मैं बड़ा अनुगृहीत हूँगा और धन्यवाद-पूर्वक स्वीकार करूँगा । इस पर यह भी जानने की अभिलाषा है कि आचार्य कमलाकरजी के इस नियमों को कि 'निर्वीजार्कोक्त' ग्रह स्पष्ट ही धर्म के कामों में व्यवहार करना चाहिये किसी ने स्वीकार भी किया है या नहीं क्योंकि इनके पहले से ही सैकड़ों वर्षों से मकरंद सारिणी और ग्रहलाघव इत्यादि ज्योतिष के करण ग्रन्थ ही पंचांगादि बनाने के लिए व्यवहार में आते हैं, जिनमें 'बीज संस्कार' किया गया है । इसके कुछ प्रमाण नीचे दिये जाते हैं :—

(१) "ज्योतिष के करण ग्रन्थ कई हैं; परन्तु पठनपाठन में जितना ग्रहलाघव का प्रचार है उतना औरों का नहीं । उसके आधार पर कई देशों में पञ्चाङ्ग बनते हैं और उनके अनुसार सब लोग बेखटके श्रौत स्मार्त कर्म करते हैं । यह सौर पक्षीय करण ग्रन्थ है । यद्यपि इसमें ग्रन्थकर्ता ने आर्य पक्ष और ब्रह्मपक्ष का भी किसी अंश में आश्रयण किया है । इस समय ही नहीं बहुत प्राचीन काल से सौरपक्ष का ही प्राधान्य चला आता है । आर्य ब्रह्मपक्ष का गणित तो आचार्य बराह मिहिर (शक ४२७) के समय में ही गड़बड़ हो चुका था । कहीं-कहीं ब्रह्मपक्षीय पंचांग भी प्रचलित हैं । जैसे जोधपुर का चंड नामक ज्योतिषी का चलाया 'चंडू' पंचांग परन्तु अनार्षमूलक होने से मान्य नहीं है ।"[2]

---

१. गणक तरंगिणी पृष्ठ ६८

२. उल्लिखित पं० गिरिजाप्रसाद द्विवेदी द्वारा १६८० वि० के कार्तिक की 'माधुरी' पृष्ठ ५०५ में लिखा गया ।

मकरंद सारिणी में बीज संस्कार के विषय में यह अवतरण प्रमाण है।

(२) "...कलिगतस्य सहस्रांशों १००० शादि ४। ४२। ४६ शनि बीज धनं ॥ एतत्र्यंशे १। ३५। १५ सहितं जातं बुधोच्च धनं ६। १७। १ शनिबीज त्र्यंशेन रहितं जातं ३। ८। ३१ ऋणंगुरोः शनिबीजं शुक्रोच्च ऋणं ४। ४२। ४६ बीज संस्कृतं बुधोच्चं..."[1]

प्रसिद्ध ज्योतिषी शंकर बालकृष्ण दीक्षित अपने मराठी भारतीय ज्योतिः शास्त्र पृष्ठ १८४ तथा २५७ में लिखते हैं :—

(३) "मकरंदग्रथांत सूर्यसिद्धान्तोक्त ग्रहादिकांस बीज संस्कार आहे"...; "मकरंदकारानें सूर्यसिद्धांतास बीजसंस्कारदिलाआहे, त्या विषयीं पूर्वी लिहिलेंच आहे"

इन अवतरणों से सिद्ध है कि सैकड़ों वर्षों से मकरंदसारिणी अथवा ग्रहलाघव के अनुसार जितने पंचांग बनते हैं सबमें बीज संस्कार के अनुसार संशोधन रहता है। इसलिए कमलाकर जी की उक्ति व्यवहार में कभी नहीं मानी गयी, ऐसा मेरा विचार है।

कमलाकर जी ने आचार्य वशिष्ट के इस श्लोक को "इत्थं माण्डव्य संक्षेपादुक्तं शास्त्रमयोदितं। विस्रस्ती रविचन्द्राद्यैर्भविष्यति युगे युगे" के 'विस्रस्ती' पद को 'विस्तृती' कहकर श्लोक का अर्थ कुछ और कर दिया है परन्तु यह सर्वथा अवैज्ञानिक, भ्रमजनक तथा प्राचीन वैज्ञानिक पद्धति के विरुद्ध है और केवल अपने पक्ष को पुष्ट करने के लिए लिखा गया है।

अब मैं दूसरे पक्ष के समर्थन में जो कुछ प्रायः डेढ़ हजार वर्षों से कहा गया है वह लिख रहा हूँ, जिससे सिद्ध होगा कि हमारे प्राचीन ज्योतिषी ज्योतिष के आर्ष ग्रन्थों को किस दृष्टि से देखते रहे हैं और इनको समय-समय पर संशोधन करने के पक्ष में कौन-कौन सी युक्तियाँ लिख गये हैं।

जिस समय सूर्यांश पुरुष मयासुर को सूर्य-सिद्धान्त का उपदेश देने लगे उस समय कहा था,

'शास्त्रमाद्यं तदेवेदं यत्पूर्वं प्राह भास्करः।
युगानां परिवर्तेन कालभेदोत्र केवलं॥"

यह मध्यमाधिकार का ९वां श्लोक है; जिसकी व्याख्या की जा चुकी है।

फिर जब ऋषियों ने मयासुर से ज्योतिष का उपदेश ग्रहण किया था तब पहले मयासुर ने जो कुछ सूर्यांश पुरुष से सीखा था वह सब कह कर अन्त में बीजोपनयनाध्याय का उपदेश २१ श्लोकों में दिया जिसका कारण यह बतलाया था,

---

१. मकरंद सारिणी पृष्ट ३६, बंबई की छपी।

"चक्रानुपातजोमध्यो मध्यवृतांशजः स्फुटः ।
कालेन दृक्समो न स्यात् ततो बीजक्रियोच्यते ।। ५ ।।
बीजं निःशेष सिद्धान्त रहस्य परमं स्फुटं ।
यात्रापाणिग्रहादीनां कार्याणां शुभसिद्धिदम् ।। २१ ।।"

अर्थात् काल पाकर दृक्तुल्यता नहीं होती है इसलिए बीज क्रिया की रीति बतलायी जाती है । बीज क्रिया से संस्कृत स्फुट ग्रहों से ही यात्रा विवाह तथा अन्य शुभ काम फलदायक होते हैं ।

परन्तु खेद है कि पहले पक्ष के पंडित इस अध्याय को क्षेपक मानते हैं । मेरी समझ में तो यह बात आती है कि सूर्यांश पुरुष ने जो कुछ कहा था उसके अनुसार यह अवश्य क्षेपक है क्योंकि यह मयासुर का बीज संस्कार है न कि सूर्यांश पुरुष का । परन्तु यदि यह मान लिया जाय कि मयासुर ने ऋषियों से जैसा कहा था वैसा ही ऋषियों का पाया हुआ सूर्य सिद्धान्त इस समय प्रचलित है तब इसको क्षेपक मानने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती । बात भी यथार्थ में यही है कि प्रचलित सूर्य सिद्धान्त वही है जिसका उपदेश मयासुर ने ऋषियों को दिया था । इसमें बीजोपनयनाध्याय अंत में इसलिए कहा जिसमें यह स्पष्ट रहे कि मयासुर को सूर्यांश पुरुष से क्या उपदेश मिला था और मयासुर ने स्वयं अपने अनुभव से क्या बढ़ाया था ।

दृक्तुल्यता के सम्बन्ध में ब्रह्मगुप्त जी शक ५५०, संवत ६८५ वि०, में लिखते हैं :—

"प्रतिदिवस विसंवादाद् ग्रह तिथि करणर्क्ष दिवसमासानाम् । ग्रहणग्रहयोगादिषु पादं पादेन कः स्पृशति ।। ५७ ।।

तन्त्रभ्रन्शे प्रतिदिनमेवं विज्ञाय धीमता यत्नः ।
कार्यस्तस्मिन् यस्मिन् दृग्गणितैक्यं सदा भवति ।।

इन दोनों श्लोकों के तिलक में म० म० सुधाकर द्विवेदी जी लिखते हैं :—

"ग्रह-तिथि-करण-ऋक्ष-दिवस मासानां तथा ग्रहण-ग्रह योगादिषु च प्रतिदिवस विसंवादात् प्रत्यहं दृग्विरोधात् पादं करणाधमं कः पादेनापि स्पृशति अर्थाद्यथाऽङ्गेषु अधोवर्त्तित्वात् पादोऽधमस्तथा दृग्गणितयोरसाम्यात् पादमधमं यत् करणं तत् पादेनापि स्पर्शनार्हं 'प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्'-इतिन्यायात्"

"तन्त्रभ्रंशे सति तदीयतन्त्रगणनया दृग्विरोधे सति एवं पूर्वोक्तं प्रतिदिनं स्पष्टीकरणाद्यं वेधादिना विज्ञाय तस्मिन् तन्त्रे बीजादिना तथा यत्नः कार्यो यथा

दृग्गणितैक्यं भवति। एवं यस्मिन् तन्त्रे सदा दृग्गणितैक्यं भवति तदेव तन्त्रमादरणीय-मिति।"[1]

ऊपर के अवतरण में ग्रह, युति इत्यादि के साथ साथ तिथि, करण, ऋक्ष (नक्षत्र) शब्द भी आये हैं; जिससे प्रकट है कि जिसको पंडित गिरिजाप्रसाद जी ने अदृष्ट कहा है उसके लिए भी दृग्गणितैक्य का विधान है और बीज संस्कार करने की आवश्यकता बतलायी गयी है। इसलिए दृक्तुल्यता के लिए संस्कार करना ब्रह्मगुप्त जी शास्त्र विरुद्ध या आर्ष वचनों के विरुद्ध नहीं समझते थे। जिसको इन्होंने शास्त्र विरुद्ध समझा था उसका बड़े जोरों से खण्डन किया है।

प्रसिद्ध भास्कराचार्य जी शक १०७२ संवत् १२०७ वि० में लिखते हैं :—

"यात्रा विवाहोत्सवजातकादौ खेटैः स्फुटैरेव फलस्फुटत्वं। स्यात् प्रोच्यते तेन नभश्चराणां स्फुटक्रिया दृग्गणितैक्य कृद्या।"[2]

जिसका अर्थ यह है कि यात्रा विवाह उत्सव जातक इत्यादि कामों के लिए ग्रह स्पष्ट करने से अधिक फल होता है और ग्रह स्पष्ट करने की रीति वही शुद्ध है जिससे दृग्गणितैक्य हो।

ऊपर इस बात का प्रमाण दिया गया है कि आजकल ग्रहलाघव कितना मान्य समझा जाता है। इसी ग्रहलाघव के कर्ता आचार्य गणेश दैवज्ञ के पिता आचार्य केशव ने प्राचीन ग्रन्थों में संशोधन करने के पक्ष में शक १४१८ संवत् १५५३ वि० में ग्रह-कौतुक नामक ग्रन्थ में यों लिखा है :—

"ब्राह्मार्यभट सौराद्येष्वपि ग्रहकरणेषु बुधशुक्रयोर्महदंतरं अंकतया दृश्यते। मंदे आकाशे नक्षत्र ग्रहयोगे उदयेऽस्ते च पंच भागा अधिकाः प्रत्यक्षमंतरं दृश्यते।.......एवं क्षेपेष्वंतरं वर्ष भोगेष्वपि अंतरमस्ति। एवं बहुकाले बह्वंतरं भविष्यति। यतो ब्राह्माद्ये-ष्वपि भगणानां सावनादीनां च बह्वंतरं दृश्यते एवं बहुकाले बह्वंतरं भवत्येव।....... एवं बह्वंतरं भविष्ये: सुगणकैः नक्षत्रयोग ग्रहयोगोदयास्तादिभि वर्तमान घटनामवलोक्य न्यूनाधिक भगणाद्यैर्ग्रहगणितानि कार्याणि। यद्वा तत्काल क्षेपक वर्ष भोगान् प्रकल्प्य लघु करणानि कार्याणि।.......एवं मया परम फल स्थाने चन्द्र ग्रहण तिथ्यंताद् विलोमविधिना मध्यश्चंद्रोज्ञातः तत्र फल ह्रास वृद्ध्यभावात्। केन्द्रगोलादि स्थाने ग्रहण तिथ्यंताद्विलोम विधिना चंद्रोच्चमाकलितं। तत्र फलस्य परम ह्रास वृद्धित्वात्।

१. तन्त्रपरीक्षाध्याय पृष्ट १६९-१७०, म० म० सुधाकर द्विवेदी द्वारा सम्पादित ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त।

२. सिद्धान्त शिरोमणि गणिताध्याय पृष्ठ ५६।

तत्र चंद्रः सूर्यपक्षात्पंचकलोनो दृष्टः । उच्चं ब्रह्मपक्षाश्रितं । सूर्यः सर्वपक्षेपीषदंनरः स सौरो गृहीतः । अन्ये ग्रहा नक्षत्र ग्रहयोगास्तोदयादिभिवर्तमानघटनामवलोक्य साधिताः । तत्रेदानीं भौमेज्यौ ब्राह्मपक्षाश्रितौ घटतः । ब्राह्मो बुधः । ब्राह्मार्यमध्य शुक्रः । शनि पक्षत्रयात्पंचभागाधिको दृष्टः । एवं वर्तमान घटनामवलोक्य लघुकर्मणा ग्रह गणितं कृतं ।"[1]

इस लम्बे अवतरण से यह अच्छी तरह स्पष्ट होता है कि वर्तमान आकाशीय घटनाओं को किस प्रकार वेध द्वारा देखकर सूर्य चन्द्रमा इत्यादि ग्रहों के भगण कालों का संशोधन करना चाहिये । भविष्य के लिए भी ऐसा करने को आदेश किया गया है । इस अवतरण में सूर्य-सिद्धान्त का भी स्पष्ट उल्लेख है । पिता के इन्हीं वेधों और बीजों के आधार पर आचार्य गणेश दैवज्ञ ने 'ग्रहलाघव' बनाया जिसके मध्यमाधिकार के १६वें श्लोक में शक १४४२, संवत् १५७७ वि० में लिखा है ।

"सौरोर्कोऽपि विधूच्चमङ्क कलिकोनाब्जो गुरुस्त्वार्यजो, ऽसृग राहु च कजं ज्ञकेन्द्रकमथार्ये सेषुभागः शनिः । शौक्रं केन्द्रमजार्यमध्यगमिती मे यान्ति दृकतुल्यतां, सिद्धैस्तैरिहपर्व धर्म नय सत्कार्यादिकं त्वादिशेत् ॥"[2]

जिससे प्रकट है कि गणेश जी पर्व धर्म, उत्सव इत्यादि सभी शुभ काम दृग्गणितैक्य से ही निश्चय करने का आदेश करते हैं न कि 'निर्बीज' सूर्य-सिद्धान्त से ।

इसकी टीका में मल्लारि जी शक १५४५ संवत् १६८० वि० में लिखते हैं, "......इति तेभ्यः पक्षेभ्यः साधिता इमे ग्रहाः दृशितुल्यतां दृग्गणितैक्यं यान्ति...... इहा स्मिन् ग्रन्थे सिद्धैस्तैर्ग्रहैः पर्व धर्मनयसत्कार्यादिकमादिशेत् । पर्व ग्रहण धर्म्मो यज्ञानुष्ठानैकादशी व्रतादिकम् । नयो नीतिः । राजनीति दण्डनीत्यादिकः । सत्कार्यं शुभं कार्यंव्रतबन्ध विवाहादि । एभ्यो ग्रन्थेभ्य एतदुत्पन्न तिथ्यादेरेवादिशेत् अयं भावः । यतो यस्मिन् यस्मिन् काले यद्यद् दृग्गणितैक्यकृत्तदेवग्राह्यं घटमानत्वात ।"[3]

फिर मल्लारि जी कहते हैं, "अहर्गणात्साधितो यो ग्रहः स मध्यमो यतो यन्त्रवेधेनाकाशे विलोक्यमाने तावान् ग्रहो न दृष्टः किञ्चिदंतरं दृष्टं प्रत्यहं गतेर्विसदृशत्वात् । एवं प्रत्यहं ग्रहान् गोलेन चक्रयन्त्रेण वा विद्ध्वा अहर्गणोत्पन्न मध्यम ग्रह वेधित स्पष्टग्रहयोरन्तराणि साधितानि ।"[4]

---

१. मराठी भारतीय ज्योतिःशास्त्र पृष्ठ २५६ में उद्धृत ।

२. म० म० सुधाकर द्विवेदी सम्पादित ग्रहलाघव पृष्ठ ७० ।

३. वही, ग्रहलाघव पृष्ठ ७० ।

४. वही, ग्रहलाघव पृष्ठ ७२ ।

मल्लारि जी एक जगह और लिखते हैं "एवं ग्रहभगणभोगपर्यन्तं ग्रहगतीरानीय तासु मध्ये या परमाधिका गतिर्याच परमाल्पा तयोर्योगार्ध मध्यगतिरेवाङ्गी कृता। सा दुःसाध्या सूक्ष्माणां विकला कोट्यंशादीनामलक्ष्यत्वात्। सा स्थूला जाता सैवाङ्गीकृता। एवं कियत्यपि काले जाते वसिष्ठादिभिर्विलोक्यमाने गतेरन्तरं दृष्टम्। एवमन्यैरपि।..............अस्मिन्काले एतेदृग्गोचराः एवमग्रेऽपि भविष्यन्महागणकैर्नलिकाबन्धादिना ग्रहवेधं कृत्वाऽन्तराणि लक्षयित्वा ग्रहकरणानि कार्याणीत्यग्रे ग्रन्थ समाप्तावाचार्येणाप्युक्तमस्ति।"[1]

इस अवतरण में जिस तर्क से मल्लारि जी ने काम लिया है उसको सिद्ध करने के लिए वराह-मिहिर, वशिष्ट, सूर्यसिद्धान्त, ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त सभी के अवतरण दिये हैं जो इस जगह छोड़ दिये गये हैं, क्योंकि इनको मैंने पहले ही दे दिया है। दृक्तुल्यता के लिए वेध करके ही परीक्षा ली जा सकती है इसलिए गणित और वेध में जब समता हो तभी नियम शुद्ध कहा जा सकता है। मल्लारि जी की यह बात १६ आने पावरत्ती ठीक है कि वेध द्वारा प्राप्त हुई संख्याओं में कुछ न कुछ स्थूलता 'विकलाकोट्यंशादीनामलक्ष्यत्वात्' रह ही जाती है, जिसके लिए समय समय पर वर्तमान घटनाओं को देखकर संशोधन करना चाहिये।

अनेक लम्बे अवतरणों से पाठक ऊब गये होंगे, इसलिए मैं आचार्य गणेश दैवज्ञ की पुस्तक वृहत्तिथिचिंतामणि से अवतरण न दूँगा। यद्यपि इसमें संक्षेप में ब्रह्माचार्य, वशिष्ठ, कश्यप, मयासुर, आर्यभट, दुर्गसिंह मिहिर, ब्रह्मगुप्त, केशव, इत्यादि सब के अवलोकनों की चर्चा करते हुए बतलाया गया है कि इनमें अंतर क्यों पड़ गया और उनको नये ग्रन्थ के बनाने की उस समय क्यों आवश्यकता पड़ी तथा जब आगे आवश्यकता पड़ेगी तब कैसे संशोधन करना चाहिये। फिर भी अन्त का एक श्लोक दिये बिना रहा नहीं जाता जो यों है :—

"कथमपि यदिदं चेद्भूरिकाले श्लथंस्यात्,
मुहुरपि परिलक्ष्येन्दु ग्रहाद्यृक्षयोगम्॥
सदमलगुरुतुल्यप्राप्तबुद्धिप्रकाशैः
कथित सदुपपत्या शुद्धिकेन्द्रे प्रचाल्ये॥"[2]

इन अवतरणों को पढ़कर कौन ऐसा होगा जो न मानेगा कि हमारे पुराने आचार्य और वैज्ञानिक युक्तियुक्त तर्कों से यह आवश्यकता दिखला गये हैं कि दृग्गणि-

---

१. म० म० सुधाकर द्विवेदी सम्पादित ग्रहलाघव पृष्ठ ५५।

२. म० म० सुधाकर द्विवेदी सम्पादित गणकतरंगणी पृष्ठ ६३।

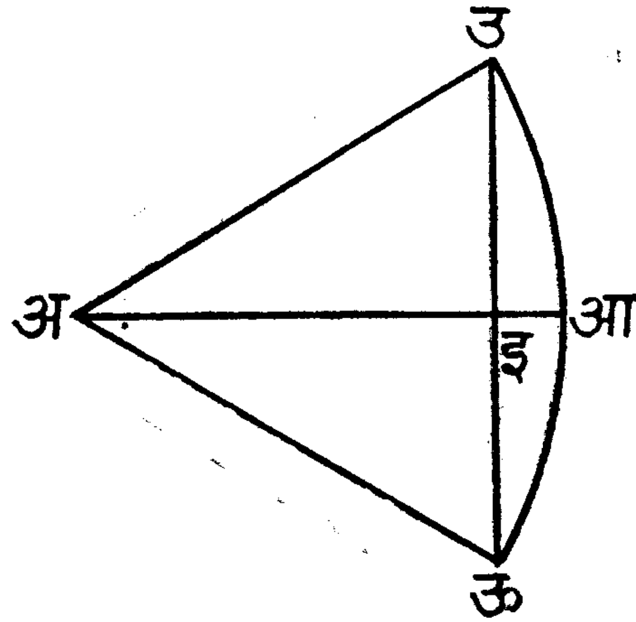
तैक्य के लिए समय-समय पर सिद्धान्त ग्रन्थों में भी संशोधन करने की आवश्यकता है और इसी संशोधन के साथ तिथि, योग, करण, नक्षत्र इत्यादि जानकर सभी लौकिक काम करने चाहिये ? आजकल का कोई "अंग्रेजी गणितविद्याविशारद" भी अपने पक्ष के समर्थन में पुराने आचार्य जो कुछ कह गये हैं उससे अधिक कहने की अवश्कता नहीं समझ सकता ।

राशिलिप्ताष्टमो भागः प्रथमं ज्यार्धमुच्यते ।
तत्तद्विभक्त लब्धोनमिश्रितं तद् द्वितीयकम् ।।१५।।
आद्येनैवं क्रमात्पिण्डान्भक्त्वा लब्धोनितैर्युतैः ।
खण्डकैस्स्युश्चतुर्विंशज्ज्यार्धपिण्डाः क्रमादमी ।।१६।।

अनुवाद—(१५) एक राशि में जितनी कलाएँ होती हैं उसके आठवें भाग को पहली 'ज्या' कहते हैं । इसको इसी से भाग देकर लब्धि को इसी में घटाकर शेष को इसी में (पहली ज्या में) जोड़ देने से दूसरी ज्या निकल आती है । (१६) इसी प्रकार आदि से लेकर सब ज्याओं को पहली ज्या से भाग देकर भाग फलों को जोड़ कर, योगफल को पहली ज्या में से घटाकर शेष को अन्तिम ज्या में जोड़ दो तो जो योगफल मिलेगा वही अगली ज्या होगी । इस प्रकार क्रम से २४ ज्याओं के पिंड होंगे ।

विज्ञान भाष्य—ज्या किसको कहते हैं और इसका मान रेखागणित से कैसे निकाला जाता है इसका विवेचन मध्यमाधिकार के ६० वें श्लोक के विज्ञान भाष्य में किया गया है । उस श्लोक के नीचे जो दूसरा चित्र दिया गया है उसको देखना चाहिये । ऊपर १५ वें श्लोक में 'ज्या' के स्थान में 'ज्यार्ध' शब्द का प्रयोग हुआ है, इससे भ्रम में न पड़ना चाहिये । दोनों के अर्थ समान माने गये हैं । 'ज्या' के लिए 'ज्यार्ध' इसलिए कहा गया है कि किसी कोण उ अ आ की 'ज्या' जानने के लिए सबसे सरल रीति यह है कि एक ऐसा वृत्तखंड (Sector) उ अ ऊ बनाओ जिसका केन्द्रीय कोण अ अभीष्ट कोण का दूना हो, फिर इस वृत्तखंड की जीवा या ज्या उ ऊ खींच लो और उसका आधा कर दो । बस इसी जीवा का आधा (ज्यार्ध) उ इ अभीष्ट कोण की ज्या है । इसीलिए ज्यार्ध और ज्या समानार्थवाची हैं (चित्र २४) ।

इस श्लोक से यह भी पता चलता है कि आचार्य ने एक राशि के ८वें भाग अर्थात् ३$\frac{3}{4}$ अंश या २२५ कला के धनु (arc) और ज्या (line) में कोई अन्तर नहीं समझा है । इसके बाद ३$\frac{3}{4}$ अंश के दूने, तिगुने, चौगुने, इत्यादि अंशों की ज्याएँ कैसे ज्ञात की जाती हैं इसकी रीति बतलायी गयी है । संक्षेप में, बीजगणित की भाषा में रीति यों लिखी जा सकती है:—



चित्र २४

यदि प $= ३\frac{३}{४}$ अंश $=$ २२५'

तो ज्या प $=$ २२५'

ज्या $७\frac{१}{२}$ अंश $=$ ज्या २ प $=$ ज्या प $+$ ज्या प $- \frac{\text{ज्या प}}{\text{ज्या प}} =$ २२५' $+$ २२५' $-$ १'

$=$ ४४९';

ज्या $११\frac{१}{४}$ अंश $=$ ज्या ३ प $=$ ज्या २ प $+$ ज्या प $- \frac{\text{ज्या प} + \text{ज्या २ प}}{\text{ज्या प}}$

$=$ ४४९' $+$ २२५' $-$ ३ $=$ ६७१';

ज्या १५° $=$ ज्या ४ प $=$ ज्या ३ प $+$ ज्या प $- \frac{\text{ज्या प} + \text{ज्या २ प} + \text{ज्या ३ प}}{\text{ज्या प}}$

$=$ ६७१' $+$ २२५' $-$ (१ $+$ २ $+$ ३) $=$ ८९०';

इसी प्रकार ज्या (स $+$ १) प

$=$ ज्या (स प) $+$ ज्या प $- \frac{\text{ज्या प} + \text{ज्या २ प} + \ldots \text{ज्या (सप)}}{\text{ज्या प}}$

इसकी उपपत्ति महामहोपाध्याय बापूदेव शास्त्रीजी के अनुसार[१] यह है :—

कल्पना करो, ज्या प $-$ ज्या० $=$ $त_१$,

ज्या२प $-$ ज्या प $=$ $त_२$,

ज्या३प $-$ ज्या २प $=$ $त_३$,

१. देखो सूर्य सिद्धान्त का बापूदेवजी शास्त्री द्वारा अंग्रेजी अनुवाद

ज्या नप − ज्या (न − १) प = $\text{त}_{\text{न}}$

और ज्या (न + १) प − ज्या न प = $\text{त}_{\text{न}+1}$

तब, $\text{त}_{१} - \text{त}_{२}$ = २ ज्या प — ज्या २ प

= २ ज्या प — २ च्या प कोज्या प*

= २ ज्या प (१ — कोज्या प)

= २ ज्या प × उज्या प×× (१)

$\text{त}_{२} - \text{त}_{3}$ = २ ज्या २ प — ज्या प — ज्या ३ प

= २ ज्या २ प — ज्याप — (३ ज्या प — ४ ज्या^{३} प)

= २ ज्या २ प — ४ ज्या प + ४ ज्या^{3} प

= २ ज्या २ प − ४ ज्या प (१ − ज्या^{२} प)

= २ ज्या २ प − ४ ज्या प × कोज्या^{२} प

= २ ज्या २ प − २ ज्या प × कोज्या प × २ कोज्या प

= २ ज्या २ प − २ ज्या २ प × कोज्या प

= २ ज्या २ प (१ − कोज्या प)

= २ ज्या २ प × उज्या प (२)

$\text{त}_{३} - \text{त}_{४}$ = २ ज्या ३ प − ज्या २ प − ज्या ४ प

= २ ज्या ३ प − (ज्या २ प + ज्या ४ प)

= २ ज्या ३ प − २ ज्या ३ प × कोज्या प×××

= २ ज्या ३ प(१ − कोज्या प)

= २ ज्या ३ प × उज्या प (३)

इसी प्रकार $\text{त}_{\text{न}} - \text{त}_{\text{न}+१}$ = २ ज्या नप − ज्या (न − १) प − ज्या (न + १) प

= २ ज्या नप − {ज्या (न − १) प + ज्या (न + १) प}

= २ ज्या नप − २ ज्या नप कोज्या प

= २ ज्या नप (१ − कोज्या प)

= २ ज्या नप × उज्या प (न)

---

* कोज्या = कोटिज्या = cosine

×× उज्या = उत्क्रमज्या = versed sine = (1 − cosine) = १ − कोज्या

××× देखो Hall and Knight's Trigonometry page 113.

अब (१), (२), (३)···(न) समीकरणों के सम पक्षों को जोड़ने से

$$त_{१} - त_{न+१} = २\ उज्या\ प\ (ज्या\ प + ज्या\ २\ प + ज्या\ ३\ प + \cdots ज्या\ नप)$$

परन्तु $त_{१} - त_{न+१} = ज्या\ प + ज्या\ नप - ज्या\ (न+१)प$

$$\therefore ज्या\ प + ज्या\ नप - ज्या\ (न+१)प = २\ उज्या\ प \times (ज्या\ प + ज्या\ २\ प + \cdots ज्या\ नप)$$

$$\therefore ज्या\ (न+१)प = ज्या\ नप + ज्या\ प - २\ उज्या\ प\ (ज्या\ प + ज्या\ २\ प + \cdots ज्या\ नप)$$

यहाँ $प = ३^{\circ}४५' = २२५'$

$$\therefore २\ उज्या\ प = २\ उज्या\ २२५' = २\ (१ - कोज्या\ २२५')$$

$$= २(१ - .९९७८) = २ \times .००२२ = \frac{४४}{१००००} = \frac{१}{२२७}$$

$$= \frac{१}{२२५}\ \text{स्वल्पान्तर से}$$

$$\therefore ज्या\ (न+१)प = ज्या\ नप + ज्या\ प - \frac{१}{२२५} \times (ज्या\ प + ज्या\ २प + \cdots ज्या\ नप)$$

तत्वाश्विनोङ्काब्धिवेदा रूपभूमिधरर्तवः ।
खाङ्काष्टौ पञ्चशून्येशा वाणभूमिगुणेन्दवः ॥१७॥
शून्यलोचनपञ्चैकाश्छिद्ररूपमुनीन्दवः ।
बियच्चन्द्रातिधृतयो गुणरन्ध्राम्बराश्विनः ॥१८॥
मुनिषड्यमनेत्राणि चन्द्राग्निकृतदस्रकाः ।
पञ्चाष्टबिषयाक्षीणि कुञ्जराश्विनगाश्विनः ॥१९॥
रन्ध्रपञ्चाष्टकयमा वस्वद्रयङ्कयमास्तथा ।
कृताष्टशून्यज्वलना नगाद्रिशशिवह्नयः ॥२०॥
षट्पञ्चलोचनगुणाश्चन्द्रनेत्राग्निवह्नयः ।
यमाद्रिवह्निज्वलना रन्ध्रशून्यार्णवाग्नयः ॥२१॥
रूपाग्निसागरगुणा वसुत्रिकृतवह्नयः ।
प्रोज्झ्योत्क्रमेण व्यासार्धादुत्क्रमज्यार्धपिण्डकाः ॥२२॥

अनुवाद—(१७) २२५, ४४९, ६७१, ८९०, ११०५, १३१५; (१८) १५२०, १७१९, १९१०, २०९३; (१९) २२६७, २४३१, २५८५, २७२८; (२०) २८५९,

२९७८, ३०८४, ३१७७; (२१) ३२५६, ३३२१, ३३७२, ३४०९; (२२) ३४३१, ३४३८ कलाएं क्रम से ३$\frac{३}{४}$ अंश, ७$\frac{१}{२}$ अंश, ११$\frac{१}{४}$ अंश, १५ अंश इत्यादि एक समकोण के २४ पिंडों की ज्याएं हैं। यदि इनको उलटे क्रम से (उत्क्रम से) एक त्रिज्या की कलाओं से अर्थात् २४३८ से घटा दो तो एक समकोण के २४ पिंडों की क्रम से उत्क्रम ज्याएं ज्ञात हो जायंगी। इनके मान भी आगे के पाँच श्लोकों में दिये हुए हैं।

विज्ञान भाष्य- इस सम्बन्ध में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती है। अगले पांच श्लोकों के बाद इन ज्याओं और उत्क्रम ज्याओं के मानों की तुलना आजकल की रीति से निकाले हुए मानों से की जायगी।

उत्क्रम ज्या के मान जानने के लिए जो नियम लिखा गया है वह बहुत ही सरल और मौलिक है। यदि ३४३८ में से अंतिम संख्या ३४३८ घटायी जाय तो शून्य बचेगा जो शून्य अंश की उत्क्रम ज्या है और यदि ३४३१ घटाया जाय तो ७ बचेगा जो २२५ कला की उत्क्रम ज्या है। इसको रेखागणित के आधार पर इस प्रकार जान सकते हैं—चित्र २४ में यदि उ अ आ २२५′ कला का कोण हो तो उ आ का मान २२५′, उ इ का २२५′ (स्वल्पान्तर से), अ इ का ३४३१′ और इ आ का ७′ है। यही इ आ का मान उ अ इ कोण की उत्क्रम ज्या है। इसी प्रकार अन्य पिण्डों की ज्याएं और उत्क्रम ज्याएं जानी जा सकती हैं।

मुनयो रन्ध्रयमला रसषट्का मुनीश्वराः।
द्व्यष्टैका रूपषड्दस्राः सागरेषुहुताशनाः ॥२३॥
खर्तुवेदा नवाद्र्यर्था दिङ्नागास्त्र्यर्थकुञ्जराः।
नगाम्बरवियच्चन्द्रा रूपभूधरशङ्कराः ॥२४॥
शरार्णवहुताशैका भुजङ्गाक्षिशरेन्दवः।
नवरूपमहीध्रैका गजैकाङ्कनिशाकराः ॥२५॥
गुणाश्विरूपनेत्राणि पावकाग्निगुणाश्विनः।
वस्वर्णवार्थयमलास्तुरगर्तुनगाश्विनः ॥२६॥
रन्ध्राष्टनवनेत्राणि पावकैकयमाग्नयः।
अष्टाग्निसागरगुणा उत्क्रमज्यार्धपिण्डकाः ॥२७॥

अनुवाद—(२३) ७, २९, ६६, ११७, १८२, २६१, ३५४; (२४) ४६०, ५७९, ७१०, ८५३, १००७, ११७१; (२५) १३४५, १५२८, १७१९, १९१८; (२६) २१२३, २३३३, २५४८, २७६७; (२७) २९८९, ३२१३, और ३४३८ कलाएँ क्रम से उत्क्रम ज्याओं के पिंड हैं।

नीचे एक सारिणी दी जाती है जिसमें ऊपर के ग्यारह श्लोकों का सार है :—

पिंडों का क्रम	धनु अथवा कोण	भारतीय रीति से ज्या के मान जब त्रिज्या =३४३८	आजकल की रीति से ज्या के मान जब त्रिज्या=३४३८	आजकल की रीति से ज्या के मान जब त्रिज्या=१	भारतीय रीति से उत्क्रम ज्या के मान जब त्रिज्या=३४३८	आजकल की रीति से उत्क्रम ज्या के मान जब त्रिज्या=१
१	२	३	४	५	६	७
१	३°४५′	२२५	२२४.८५	.०६५४	७	.००२२
२	७°३०′	४४९	४४८.६५	.१३०५	२९	.००८६
३	११°१५′	६७१	६७०.७२	.१९५१	६६	.०१९२
४	१५°	८९०	८८९.८२	.२५८८	११७	.०३४१
५	१८°४५′	११०५	११०५.०१	.३२१४	१८२	.०५३१
६	२२°३०′	१३१५	१३१५.०५	.३८२७	२६१	.०७६१
७	२६°१५′	१५२०	१५२०.५८	.४४२३	३५४	.१०३१
८	३०°१५′	१७१९	१७१९.००	.५०००	४६०	.१३४०
९	३३°४५′	१९१०	१९१०.०५	.५५५५	५७९	.१६८५
१०	३७°३०′	२०९३	२०९३.०५	.६०८८	७१०	.२०६६

* देखिये चित्र १८ पृष्ठ १६६ 'विज्ञान' भाग १८ संख्या ५

१	२	३	४	५	६	७
११	४१°१५′	२२६७	२२६७.०२	·६५६४	८५३	·२४८१
१२	४५°०	२४३१	२४३१·०१	·७०७१	१००७	·२९२९
१३	४८°४५′	२५८५	२५८४·७०८	·७५१९	११७१	·३४०६
१४	५२°३०′	२७२८	२७२७·५५	·७९३४	१३४५	·३९१२
१५	५६°१५′	२८५९	२८५८·५५	·८३१५	१५२८	·४४४५
१६	६०°०	२९७८	२९७७·३१	·८६६०	१७१९	·५०००
१७	६३°४५′	३०८४	३०८३·४५	·८९६९	१९१८	·५५७७
१८	६७°३०′	३१७७	३१७६·३७	·९२३९	२१२३	·६१७३
१९	७१°१५′	३२५६	३२५५·७५	·९४६९	२३३३	·६७८६
२०	७५°०	३३२१	३३२०·८५	·९६५९	२५४८	·७४१२
२१	७८°४५′	३३७२	३३७१·९५	·९८०८	२७६७	·८०४९
२२	८२°३०′	३४०९	३४०८·७५	·९९१४	२९८९	·८६९५
२३	८६°१५′	३४३१	३४३०·८५	·९९७८	३२१३	·९३४६
२४	९०°०′	३४३८	३४३८·००	१·००००	३४३८	१.००००

विज्ञान भाष्य—सूर्य सिद्धान्त में त्रिकोणमिति के इतने ही सम्बन्ध (ratios) दिये हुए हैं। इनसे कोटिज्या (cosine) जानने के लिए यह नियम व्यवहार में लाया गया है कि यदि किसी कोण की ज्या दी हुई हो तो उस कोण को ९०° में से घटाने पर जो कोण होता है उसकी कोटिज्या का मान भी वही होता है अर्थात् किसी कोण की ज्या उसके पूरक कोण की कोटिज्या के समान होती है। किसी कोण की स्पर्श रेखा (tangent) का मान आजकल की तरह नहीं दिया मिलता है, परन्तु इसका व्यवहार अप्रत्यक्ष रूप से कोण की ज्या को उसकी कोटिज्या से भाग देकर किया गया है।

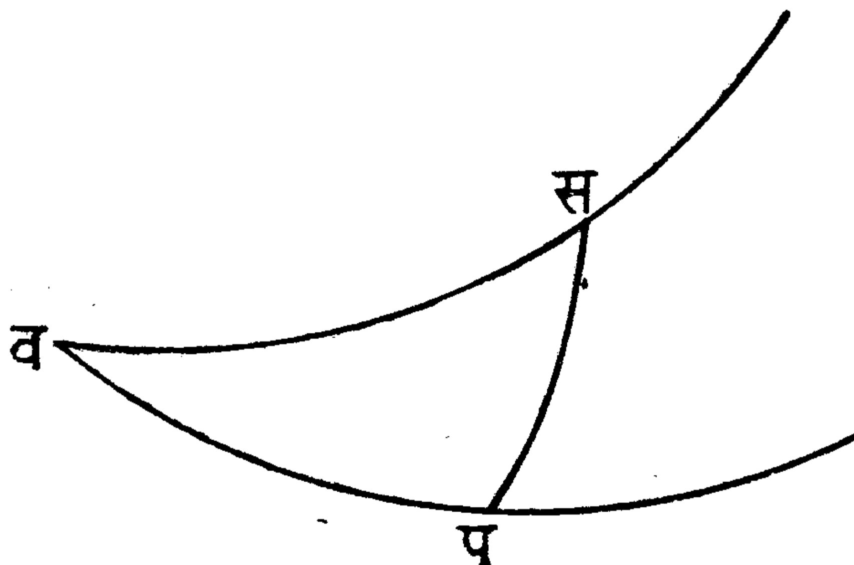
यदि कोण का मान ऐसा है कि ऊपर दिये हुए पिंडों के बीच में पड़ता है तो उसकी ज्या, कोटिज्या या उत्क्रमज्या त्रैराशिक (proportional parts) से जानने की विधि अगले ३१-३४ श्लोकों में बतलायी गयी है। इसी प्रकार यदि ज्या का मान ज्ञात हो तो उससे धनु (कोण) निकालने की रीति भी इन्हीं श्लोकों में है।

भास्कराचार्य जी ने ज्या, कोटिज्या जानने की रीति और सूक्ष्म रीति से बतलायी है।

ज्या के पर्याय क्रमज्या, भुजज्या, बाहुज्या, अर्द्धज्या इत्यादि तथा कोटिज्या के लम्बज्या भी प्रयोग किये गये हैं।

परमापक्रमज्या तु सप्तरन्ध्रगुणेन्दवः।
तद्गुणा ज्या त्रिजीवाप्ता तच्चापं क्रान्तिरिष्यते ॥२८॥

अनुवाद—(२८) परम क्रान्ति ज्या का मान १३९७ कला है। इसको (भोगांश की) ज्या से गुणा करके, फल को त्रिज्या से भाग देने पर जो आवे वह जिस धनु (कोण) की ज्या हो वही क्रान्ति का मान होता है।



चित्र २५

विज्ञान भाष्य—इस श्लोक में दिखलाया गया है कि 'ज्या' का व्यवहार किस प्रकार किया जाता है। साथ ही साथ यह नियम भी बतलाया गया है कि किसी समकोण गोलीय त्रिभुज (Right angled Spherical triangle) के भुजों और कोणों में परस्पर सम्बन्ध क्या होता है। परमक्रान्ति ज्या का मान १३९७ कला बतलाया गया है; जिससे जान पड़ता है कि परमक्रान्ति का मान २४° है; क्योंकि २४° का ज्या का मान ही उपर्युक्त रीति से १३९७ कला होता है; यद्यपि शुद्ध गणना से वह २३°५८′३१″ की ज्या है।

दिये हुए चित्र २५ में व वसंत-संपात व स क्रान्तिवृत्त का खंड और व प विषुवद्वृत्त का खंड है। स प ध्रुवप्रोत वृत्त का खंड है अर्थात् उस वृत्त का खंड है जो ध्रुव से होकर जाता है और विषुवद्वृत्त के विन्दु प पर समकोण बनाता है। स व प कोण क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्त के बीच का कोण (obliquity of the ecliptic) है जो उपर्युक्त श्लोक के अनुसार २४° है। वसंत संपात से स की दूरी व स क्रान्तिवृत्त के 'स' विन्दु का भोगांश और विषुवद् वृत्त से स की दूरी जबकि स प व कोण समकोण हो, अर्थात् स प, स विन्दु की क्रान्ति कहलाती है। इसी को अपक्रम भी कहते हैं। दिये हुए नियम के अनुसार,

$$\frac{\text{ज्या (व स)} \times १३९७}{३४३८} = \text{ज्या(सप)}$$

$$\text{अथवा ज्या (व स)} \times \frac{\text{ज्या (स व प)}}{\text{त्रिज्या}} = \text{ज्या (सप)}$$

यदि त्रिज्या को ३४३८ की जगह १ मान लिया जाय, जैसी कि आजकल की प्रथा है तो १३९७ कला की जगह ·४०६७ रखना होगा। इससे गुणा भाग में कुछ सरलता हो जायगी और तब इस सूत्र का रूप केवल यह होगा।

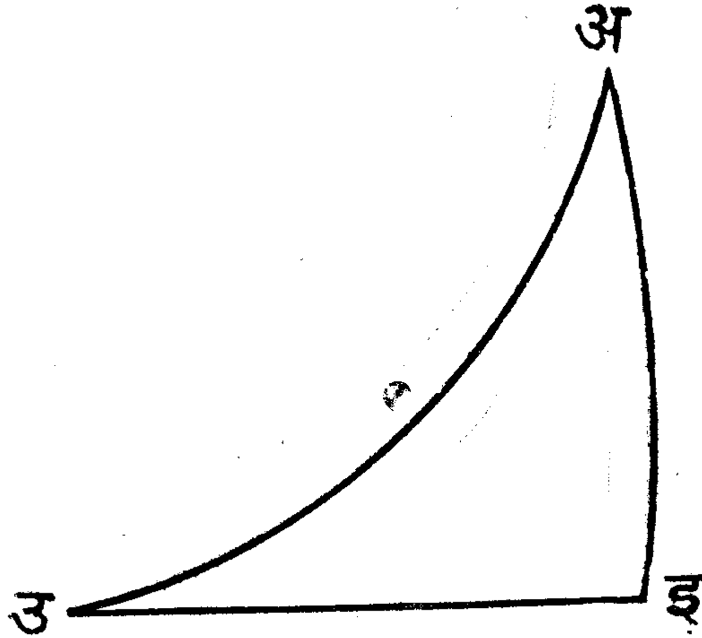
$$\text{ज्या (व स)} \times \text{ज्या (स व प)} = \text{ज्या (सप)}$$

यही कुछ भेद के साथ आजकल नेपियर के एक नियम से प्रसिद्ध है, जिसे नेपियर* नामक गणितज्ञ ने एडिनबरा से १६१४ ई० अथवा १६७१ वि० में अपने ग्रन्थ 'मिरिफिसी लागेरिथमोरम कैनोनिस डेसक्रिपशिओ' (Mirifici Logarithmorum Canonis Descriptio) में प्रकाशित किया था। नेपियर के नियम याद रखने के लिए यह युक्ति है:—

---

*देखो टाडहंटर और लेथेम की गोलीय त्रिभुज (Spherical Trigonometry) १९११ की छपी पृष्ठ ५०

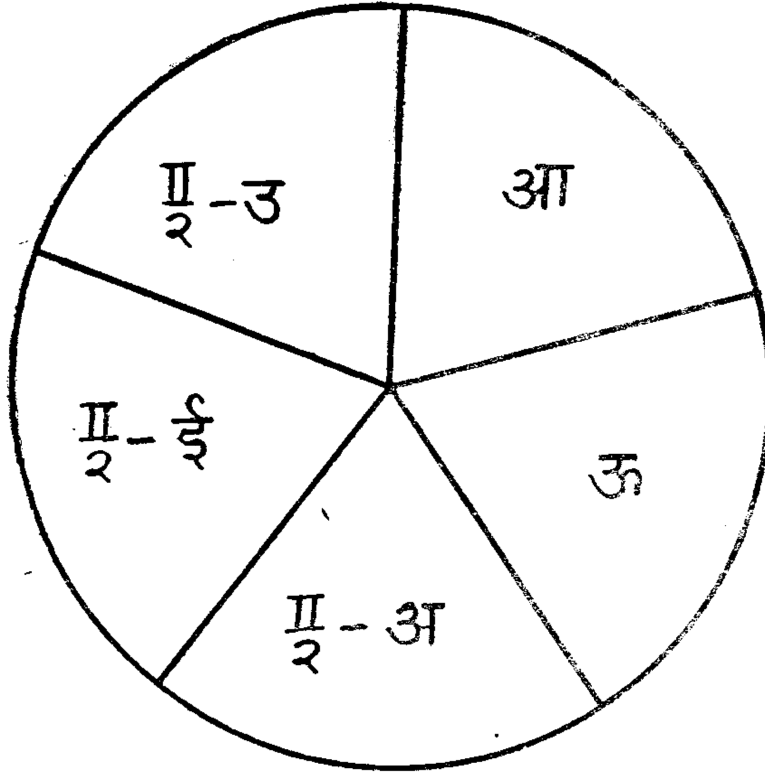
किसी समकोण गोलीय त्रिभुज के समकोण को छोड़कर, समकोण बनाने वाली दो भुजों, कर्ण के पूरक, तथा अन्य दो कोणों के पूरकों को त्रिभुज के गोल खंड (circular parts) कहते हैं। इस प्रकार किसी समकोण गोलीय त्रिभुज के ५ गोल खंड होते हैं। यह पाँचों खंड एक वृत्त के चारों ओर उसी क्रम से रखे जाते हैं जिस क्रम से रखे जाते हैं। जिस क्रम से यह त्रिभुज में रहते हैं। मान लो अ इ उ एक



चित्र २६

गोलीय त्रिभुज है। अ, इ, उ, वह विन्दु हैं जिन पर त्रिभुज की भुजें इ अ, उ अ; अ इ, उ इ; और अ उ, इ उ मिलती हैं। उ अ इ, अ इ उ और अ उ इ कोणों को संक्षेप में अ, इ, उ अक्षरों से प्रकट करते हैं। इसी तरह अ कोण के सामने वाले भुज इ उ को 'आ' से, इ कोण के सामने वाले भुज अ उ को ई से और उ कोण के सामने वाले भुज अ इ को ऊ से प्रकट करते हैं। साधारण नियम यह है कि त्रिभुज के कोणों को ह्रस्व स्वरों से और उनके सामने के भुजों का उसी प्रकार के दीर्घ स्वरों से प्रकट किया जाता है। गोलीय त्रिभुज के भुजों को भी कोणात्मक मानों से ही नापते हैं। यदि इ समकोण हो तो यह त्रिभुज समकोण गोलीय त्रिभुज कहा जाता है। तब इसके सामने के भुज ई को कर्ण कहते हैं। [देखिये चित्र २६]

नेपियर के नियम में समकोण गोलीय त्रिभुज के समकोण को छोड़कर इसके पास वाले दो भुज आ, ऊ, अ कोण का पूरक $\frac{\pi}{२}$ — अ, ई कर्ण का पूरक $\frac{\pi}{२}$ — ई, उ कोण का पूरक $\frac{\pi}{२}$ — उ, गोलीय खंडों को चित्र द्वारा इस प्रकार लिखते हैं [देखिये चित्र २७]



चित्र २७

इन पाँचों में से किसी एक को चुन लो और उसका नाम मध्य खंड रख लो। जिसको मध्य खंड माना उसके बगल के दो खंडों को आसन्न खंड कहो; शेष जो दो खंड रह जाते हैं उनको सन्मुख खंड कहो। अब नेपियर के नियमों को इस प्रकार लिख सकते हैं :—

(१) मध्य खंड की ज्या=आसन्न खंडों की स्पर्श रेखाओं का गुणनफल।

(२) मध्य खंड की ज्या=संमुख खंडों की कोटिज्याओं का गुणनफल।

यही दूसरा नियम उपर्युक्त श्लोक में नेपियर से कम से कम एक हजार वर्ष पहले प्रयोग किया गया है।

ग्रहं संशोध्य मन्दोच्चात् तथा शीघ्राद्विशोध्य च।
शेषं केन्द्रं पदैस्तस्माद् भुज ज्या कोटिरेव च ॥२९॥
गताद्भुजज्या विषमे गम्यात्कोटिः पदे भवेत्।
समे तु गम्याद्बाहुज्या कोटिज्या तु गताद् भवेत् ॥३०॥

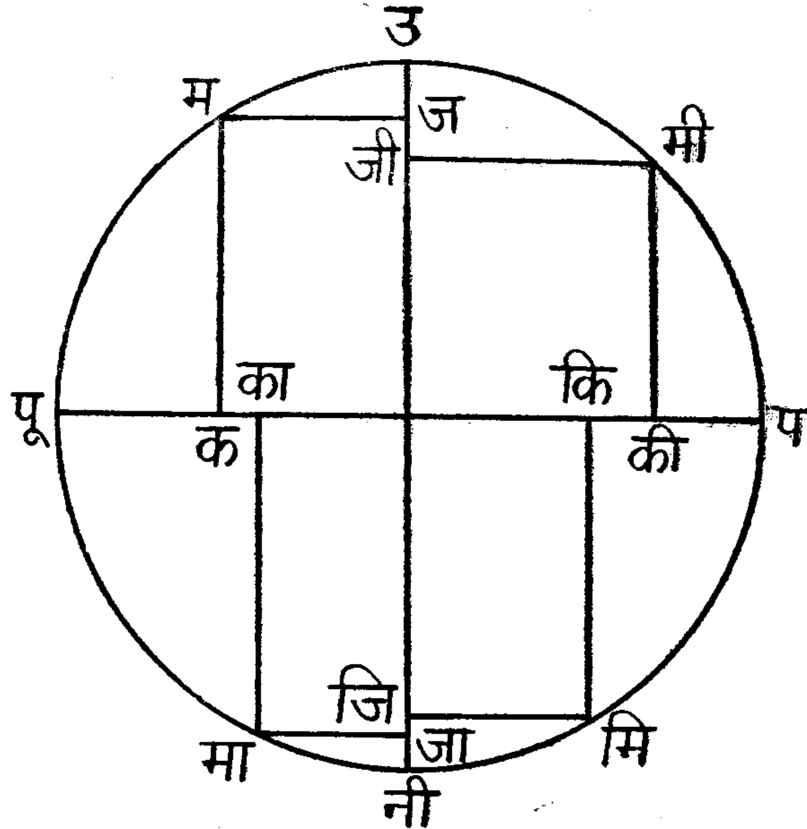
अनुवाद—(२९) किसी ग्रह के मन्दोच्च और शीघ्रोच्च के स्थानों में से उसके मध्यम स्थान को घटा देने से जो शेष होते हैं उन्हें क्रम से मन्द केन्द्र और शीघ्र केन्द्र कहते हैं। इनसे पद बनावे और पद जानकर भुज ज्या और

कोटिज्या बनावे । (३०) विषम पद में जो भाग गत रहता है उसकी ज्या को भुज ज्या और जो भाग गम्य होता है उसकी ज्या को कोटिज्या कहते हैं, परन्तु समपद में गम्य भाग की ज्या को भुजज्या और गत भाग की ज्या को कोटि ज्या कहते हैं ।

विज्ञान भाष्य—इसी अध्याय के चौथे और पाँचवें श्लोकों में बतलाया गया है कि १८०° तक पूर्व में स्थित मन्दोच्च या शीघ्रोच्च अपने ग्रह का मध्यम स्थान से अपनी ओर अर्थात् पूर्व की ओर आसन्नता के अनुसार खींच लेता है, जिससे मध्यम ग्रह में धन संस्कार करने से स्पष्ट ग्रह का स्थान जाना जा सकता है, इत्यादि । ऊपर के २९वें श्लोक में यह बतलाया गया है कि मन्दोच्च या शीघ्रोच्च से मध्यम ग्रह की दूरी कैसे निकालनी चाहिये । किसी परिधि के दो बिन्दुओं का अन्तर दो प्रकार से प्रकट किया जा सकता है । यदि चित्र १५ में उ से तीर की दिशा में चलते हुए म, मा, मि और मी विन्दुओं के अन्तर नापे जायँ तो यह क्रम से उम; उमा, उमि, और उमी होंगे । परन्तु यदि उ से उलटी दिशा में चलकर इन विन्दुओं के अन्तर नापे जायँ तो उ से म का अन्तर ३६०°—उम, मा का अन्तर ३६०°—उमा, मि का अन्तर ३६०°—उमि और मी का अन्तर ३६०°—उमी होंगे । चित्र में जो दिशा तीर के अग्र से सूचित होती है उसे संस्कृत ग्रन्थों में अनुलोम या अपसव्य दिशा कहते हैं, आजकल इसको 'धनात्मक' या 'घड़ी की विरुद्ध दिशा' कहते हैं । विषुवत् रेखा से उत्तर में रहने वाले मनुष्यों को सूर्य, चन्द्रमा और ग्रह इत्यादि अपनी कक्षा में इसी दिशा में चलते हुए देख पड़ते हैं । इसके प्रतिकूल दिशा को संस्कृत में विलोम, प्रतिलोम, सव्य तथा आजकल 'ऋणात्मक' या 'घड़ी की दिशा' कहते हैं । पृथ्वी की दैनिक गति के कारण सूर्य, चन्द्रमा, तारे, इत्यादि उत्तर गोल में रहने वाले मनुष्यों को इसी दिशा में चलते हुए जान पड़ते हैं । सूर्य सिद्धान्त में शीघ्रोच्च या मन्दोच्च से ग्रहों का अन्तर जिसे क्रम से शीघ्र केन्द्र या मन्द केन्द्र कहते हैं विलोम या ऋणात्मक दिशा में ही नाप कर जानने की रीति बतलायी गयी है । इसीलिए कहा गया है कि शीघ्रोच्च या मन्दोच्च में से मध्यम ग्रह को घटाना चाहिये । परन्तु ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य इत्यादि कई अन्य आचार्यों ने मन्दोच्च से मध्यम ग्रह का अन्तर अनुलोम दिशा में और शीघ्रोच्च से मध्यम ग्रह का अन्तर विलोम दिशा में नापने को लिखा है । इसका कारण यह है कि मध्यम ग्रह मन्दोच्च से तीव्रगामी होने के कारण अनुलोम दिशा में ही आगे बढ़ता है और शीघ्रोच्च मध्यम ग्रह से तीव्रगामी होने के कारण अनुलोम दिशा में बढ़ता है; इसलिए मध्यम ग्रह शीघ्रोच्च से विलोम दिशा में जाता है । चाहे जिस तरह मन्द केन्द्र या शीघ्र केन्द्र नापा जाय दोनों का अर्थ एक ही होता है । भास्कराचार्य की रीति स्वाभाविक है और सूर्य सिद्धान्त की कुछ भ्रमजनक ।

जब ग्रह का मन्द केन्द्र और शीघ्र केन्द्र मालूम हो गया तब यह जानने की आवश्यकता पड़ती है कि इनकी ज्या और कोटिज्या क्या हैं, क्योंकि इनकी आगे आवश्यकता पड़ती है। जो लोग आजकल की त्रिकोणमिति से परिचित हैं वह सीधे ही जान सकते हैं क्योंकि उनको मालूम है कि शून्य से ३६०° तक कोज्या, कोटि ज्या इत्यादि कैसे जानी जा सकती हैं। परन्तु प्राचीन काल में शून्य से ३६०° तक के किसी कोण की ज्या निकालने के लिए पहले यह देखते थे कि वह किस पद (quadrant) में है। यदि मन्द केन्द्र या शीघ्र केन्द्र शून्य और ९०° के भीतर हो तो विषम पद में, ९०° के ऊपर परन्तु १८०° से कम हो तो समपद में, १८०° से ऊपर और २७०° से कम हो तो विषम पद में और २७०° से अधिक हो तो समपद में होता है। संक्षेप में पहले और तीसरे पदों को विषम पद तथा दूसरे और चौथे पदों को समपद कहते हैं।

यह जानने के लिए कि ग्रह किस पद में है, मन्द केन्द्र या शीघ्र केन्द्र को ९०° से भाग देना चाहिये। यदि लब्धि शून्य या २ आवे तो विषम पद और यदि १ या ३ आवे तो समपद समझना चाहिये। जो शेष बचे वही गत भाग कहलाता है। इस शेष को ९०° में घटा देने से जो आता है उसे गम्य भाग कहते हैं। विषम पद हो



चित्र २८

तो गत भाग की और सम पद तो तो गम्य भाग की ज्या निकाले। इसी को भुजज्या कहते हैं। परन्तु विषम पद हो तो गम्य भाग की और सम पद हो तो गत भाग की ज्या को कोटि ज्या कहते हैं।

यह बात चित्र २८ से सुगमतापूर्वक समझ में आ सकती है। दिया हुआ वृत्त किसी ग्रह का कक्षा वृत्त है। 'उ' शीघ्रोच्च या मन्दोच्च का स्थान है। मी, मि, मा, म किसी ग्रह के मध्यम स्थान हैं। इसलिए विलोम दिशा मे चलते हुए उमी, उमि, उमा और उम ग्रह के मन्द केन्द्र हुए जो क्रम से पहले, दूसरे, तीसरे और चौथे पदों में अथवा विषम, सम, विषम और सम पदों में है। पहले पद में उ मी गत है और मी प गम्य है; इसलिए उ मी की ज्या अर्थात् मी जी को भुज ज्या और मी प की ज्या अर्थात् मी की को कोटि ज्या कहते हैं। दूसरे पद में प मि गत है और मि नी गम्य, इसलिए प मि की ज्या अर्थात् मि कि को कोटि ज्या और मि नी की ज्या अर्थात् मि जि को भुज ज्या कहेंगे। तीसरे पद में 'नी मा' गत और 'मा पू' गम्य है इसलिए नी मा की ज्या अर्थात् मा जा को भुज ज्या और मा पू की ज्या अर्थात् माका को कोटि ज्या कहेंगे। इसी प्रकार चौथे पद में पू म गत है और म उ गम्य, इसलिए पू म की ज्या 'म क' को कोटि ज्या और म उ की ज्या 'म ज' को भुज ज्या कहते हैं।

इसको संक्षेप में यों कहना चाहिये कि उच्च से जो रेखा मध्य विन्दु पर होती हुई खींची जाती है उस रेखा से अर्थात् नीचोच्च रेखा से मध्यम ग्रह के अन्तर को भुज ज्या कहते हैं। इस रेखा से समकोण बनाती हुई जो रेखा मध्य विन्दु पर होती हुई जाती है उससे मध्यम ग्रह का जो अन्तर होता है उसे कोटि ज्या कहते हैं। यदि त्रिज्या ३४३८ इकाइयों के समान हो तो इन्हीं इकाइयों में मी जी, मा जा और म ज की जो नाप होंगी उन्हें भुज ज्या और मी की मि कि, मा का, और म क की जो नाप होंगी उन्हें कोटि ज्या कहेंगे।

आगे के दो श्लोकों में यह बतलाया गया है कि किसी अंश की ज्या कैसे निकालनी चाहिये।

लिप्तास्तत्त्वयमैर्भक्ता लब्धा ज्यापिण्डकं गताः।
गतगम्यान्तराभ्यस्तं विभजेत्तत्वलोचनैः ॥३१॥
तदवाप्तफलं योज्यं ज्यापिण्डे गतसंज्ञिते।
स्यात्क्रमज्याविधिरयं उत्क्रमज्यास्वपि स्मृतः ॥३२॥

अनुवाद—(३१) जिस अंश की ज्या जानना हो उसकी कला बना कर २२५ से भाग दे दे, जो लब्धि आवे वही गत ज्या पिण्ड है; जो शेष बचे उसे गत ज्यापिण्ड

और गम्य (अगले) ज्यापिण्ड की ज्याओं के अंतर से गुणा कर दे और गुणनफल को २२५ से भाग दे दे। (३२) जो लब्धि आवे उसे गत ज्यापिंड की ज्या में जोड़ देने से जो आवेगा वही इष्ट अंश की ज्या होगी। इसी प्रकार उत्क्रम ज्या भी निकालनी चाहिये।

विज्ञान भाष्य—इस अध्याय के १७-२२ श्लोकों में २४ ज्यापिंडों की ज्याएं बतला दी गयी हैं। इनके अतिरिक्त यदि किसी बीच वाले कोण की ज्या जानना हो तो ३१-३२ श्लोकों से जानना चाहिये। मान लो ६६° की ज्या जानना है। पहले यह देखना चाहिये कि ६६° किस पिंड में है। २२५′ कला या ३°४५′ या ३$\frac{३}{४}$ अंश के अन्तर पर पिंड बाँधे गये हैं, इसलिए ६६° की कला बनाकर २२५ से भाग देना चाहिये अथवा ६६° को ३$\frac{३}{४}$ से भाग देना चाहिये। श्लोक में कला बनाने की ही रीति बतलायी गयी है, इसलिये

६६° = ६६ × ६०′ = ३९६०′

३९६०′ ÷ २२५ = १७$\frac{१३५}{२२५}$

इसलिए गत पिंड १७ और गम्य पिंड १८ है।

१८ वें पिंड की ज्या = ३१७७′

१७ वें पिंड की ज्या = ३०८४′

∴ गत गम्यान्तर = ९३′

अब त्रैराशिक से यह जानना चाहिये कि जब गत और गम्य पिंडों का अंतर २२५ होता है तब इनकी ज्याओं में ९३′ का अंतर होता है, इसलिए जब गत पिंड से इष्ट अंश १३५′ अधिक है तो गत पिंड की ज्या से इष्ट अंश की ज्या में क्या अंतर होगा। अर्थात्

२२५ : १३५ : : ९३ : अभीष्ट अंतर

$$\therefore \text{अभीष्ट अंतर} = \frac{१३५ \times ९३}{२२५} = \frac{३ \times ९३}{५}$$

$$= \frac{२७९}{५}$$

= ५६′ स्वल्पान्तर से।

इसी को गतपिंड की ज्या में अर्थात् ३०८४′ में जोड़ देने से ३१४०′ हुई। यही ६६° की ज्या है।

यदि कोण का मान पूर्ण अंशों में हो तो बिना कला बनाये ही ज्या बनाने में सुभीता होगा, जैसे उपर्युक्त उदाहरण में ६६° की ज्या यों निकाली जा सकती है :—

$६६° \div ३\frac{३}{४} = २२ \times \frac{४}{५} = \frac{८८}{५} = १७\frac{३}{५}$

१७ वें और १८ वें पिंडों की ज्याओं का अन्तर

$= ६३'$

$\therefore ६३ \times \frac{३}{५} = \frac{२७६}{५} = ५६'$

१७ वें पिंड की ज्या $= ३०८४$

$\therefore ६६°$ की ज्या $= ३१४०$

अगले श्लोक में यह बतलाया गया है कि यदि ज्या दी हुई हो तो कोण कैसे जाना जा सकता है।

ज्यां प्रोज्झ्यान्यत्तत्वयमैर्हत्वा तद्विवरोद्धृतम् ।
सङ्ख्यातत्वाश्विसंवर्गे संयोज्य धनुरुच्यते ।।३३।।

अनुवाद—(३३) यदि यह जानना हो कि दी हुई ज्या किस अंश (धनु) की है तो पहले देखो कि २४ पिंडों की ज्याओं में से सबसे बड़ी कौन है जो दी हुई ज्या में से घटाई जा सकती है। इसी को घटाकर जो शेष आवे उसको २२५ से गुणा करो और गुणनफल को गत और गम्य ज्याओं के अंतर से भाग दे दो, जो लब्धि आवे उसे उस गुणनफल में जोड़ दो जो उस पिंड को २२५ से गुणा करने पर आता है जिस पिंड की ज्या घटायी गयी है।

विज्ञान-भाष्य—इस श्लोक में ज्या ज्ञात हो तो कोण जानने की रीति बतलायी गयी है। यह एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगी। मान लो किसी कोण की ज्या ३१४०' है, अब यह जानना है कि कोण क्या है।

१७—२२ श्लोकों के अनुसार १७वें पिंड की ज्या ३०८४' और १८वें पिंड की ज्या ३१७७' है। इसलिए ३१४०' में से ३०८४' घटाया तो शेष बचा ५६'। गत, गम्य पिंडों की ज्याओं का अंतर ९३' है,

$९३' : ५६' :: २२५' :$ इष्ट कला

$\therefore$ इष्टकला $= \frac{५६ \times २२५}{९३} = \frac{४२००}{३१} = १३५'$ स्वल्पान्तर से

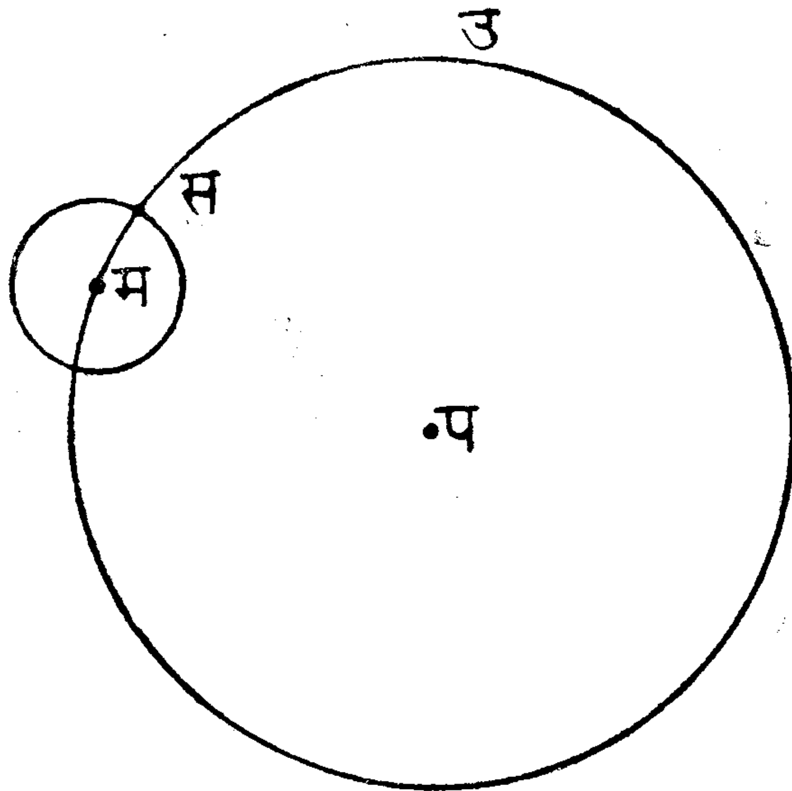
१७वें पिंड की कला $= १७ \times २२५ = ३८२५'$

$\therefore$ दोनों का योगफल $= ३९६०'$

$\therefore$ जिस कोण की ज्या ३१४०' है वह ३९६०' अथवा ६६° है।

रवेर्मन्दपरिध्यंशा मानवश्शीतगो रवाः ।
युग्मान्ते विषमान्ते च नखलिप्तोनितास्तयोः ॥३४॥
युग्मान्तेऽर्थाद्रयः खाग्निः सुरास्सूर्या नवार्णवाः ।
ओजे द्व्यगा वसुयमा रदा रुद्रा गजाब्धयः ॥३५॥
कुजादीनां ततश्शीघ्रा युग्मान्तेऽर्थाग्निदस्रकाः ।
गुणाग्निचन्द्राः खागाश्च द्विरसाक्षीणि गोऽग्नयः ॥३६॥
ओजान्ते द्वित्रिकयमाः द्विविश्वे यमपर्वताः ।
खर्तुदस्रा वियद्वेदाश्शीघ्रकर्मणि कीर्तिताः ॥३७॥

अनुवाद—(३४) सम पदों के अंत में सूर्य की मंद परिधि १४° और चन्द्रमा की ३२° होती है। विषम पदों के अंत में प्रत्येक की मंद परिधि २० कला कम होती है। (३५) मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि की मन्द परिधियाँ समपदों के अन्त में क्रम से ७५°, ३०°, ३३°, १२° और ४९° तथा विषम पदों के अंत में क्रम से ७२°, २८°, ३२°, ११°, और ४८° होती हैं। (३६) इन पाँच ग्रहों की शीघ्र परिधियाँ समपादों के अन्त में क्रम से २३५°, १३३°, ७०°, २६२°, और ३९° तथा (३७) विषमपदों के अंत में २३२°, १३२°, ७२°, २६०° और ४०° होती हैं जो शीघ्र कर्म के लिए कही गयी हैं।



चित्र २९

विज्ञान भाष्य—मन्दोच्च के कारण ग्रह के मध्यम और स्पष्ट स्थानों में जो अंतर होता है वह मन्द फल और मन्द फल और शीघ्रोच्च के कारण मध्यम और स्पष्ट स्थानों में जो अन्तर होता है वह शीघ्र फल कहलाता है। यह मन्दोच्च या शीघ्रोच्च की दूरी के अनुसार घटता बढ़ता है। मध्यम और स्पष्ट ग्रहों में जो सबसे अधिक अंतर होता है वह मन्दोच्च के कारण हुआ तो परम मन्द फल और शीघ्रोच्च के कारण हुआ तो परम शीघ्र फल कहलाता है। यह वेध से अर्थात् नलिका यंत्र द्वारा देखने से जाना जाता है। परम मन्द फल की ज्या को अर्द्धव्यास मानकर जो परिधि खींची जाती है उसे मन्दपरिधि कहते हैं। इसी तरह परम शीघ्र फल की ज्या को अर्द्धव्यास मानकर जो परिधि खींची जाती है उसे शीघ्र परिधि या चला परिधि भी कहते हैं। यदि एक वृत्त खींचकर उसके मध्य में पृथ्वी मान ली जाय और परिधि पर मध्यम ग्रह भ्रमण करता हुआ माना जाय तो परिधि को ग्रह का कक्षावृत्त या कक्षामण्डल कहते हैं। यदि इस कक्षावृत्त के ३६० समान भाग किये जायँ तो ऐसे १४ भागों के समान सूर्य की मंद परिधि का विस्तार, समपदों के अंत में होगा। ऐसे ही अन्य ग्रहों की मन्द और शीघ्र परिधियों के परिमाण के बारे में समझना चाहिये। इसे यों भी लिख सकते हैं कि सूर्य की मन्द परिधि कक्षावृत्त का $\frac{१४}{३६०}$ होती है। चित्र २९ में यदि प पृथ्वी का स्थान, उ म स किसी ग्रह का कक्षावृत्त तथा म और स उसके मध्यम और स्पष्ट स्थान हों जबकि मस का मान परम हो तो मस धनु को ग्रह का परम मन्द फल तथा इसकी ज्या को जो मस के बीच की रेखात्मक दूरी है परम मन्द फल ज्या कहते हैं। मस को अर्द्धव्यास और म को मध्य मानकर जो छोटी परिधि खींची गयी है वह मन्द परिधि है। यदि कक्षा वृत्त का विस्तार ३६० भाग माना जाय तो ऐसे जितने भाग के समान मंदपरिधि का विस्तार होता है उतने ही अंश की वह परिधि कहलाती है। इसी प्रकार शीघ्र परिधि की लम्बाई के बारे में समझना चाहिये। यह परिमाण भी भिन्न भिन्न आचार्यों के मत से भिन्न-भिन्न हैं। इसका कारण यह है कि परम मंद फल का मान सर्वदा एकसा नहीं रहता, शनैः शनैः बदलता जा रहा है। सूर्य का परम मन्द फल एक हजार वर्ष में ३ कला घटता जा रहा है। इस समय सूर्य का परम मंद फल १°५५′ है। सूर्य सिद्धान्त में सूर्य का परम मंद फल २°१३′४१″ है। इसमें वेध की स्थूलता के कारण भी अशुद्धि है।

ओजयुग्मान्तरगुणा भुजज्या त्रिज्ययोद्धृता।
युग्मे वृत्ते धनर्णं स्यादोजादूनाधिके स्फुटम् ॥३८॥

अनुवाद—(३८) विषम और समपदों के अंत की मन्द या शीघ्रपरिधियों के अंतर को मंद केन्द्र या शीघ्रकेन्द्र की भुज ज्या से गुणा करके त्रिज्या से भाग दे दो।

यदि मन्दकेन्द्र या शीघ्र केन्द्र समपद में हो और विषम पद के अंत की मन्द या शीघ्र परिधि से समपद के अंत की मंद या शीघ्र परिधि कम हो तो उस लब्धि को समपदान्त परिधि में जोड़ दो तो इष्ट केन्द्र की स्फुट मंद या शीघ्र परिधि होगी। परन्तु यदि विषमपद के अंत की परिधि से अधिक हो तो उस लब्धि को सम पदान्त परिधि में घटा देने से स्फुट परिधि निकल आवेगी।

विज्ञान-भाष्य—सूर्य सिद्धान्त का मत है कि मन्द परिधि या शीघ्र परिधि का मान मन्दकेन्द्र या शीघ्रकेन्द्र की भुज ज्या के अनुसार बदलता रहता है। किस जगह इसका परिमाण क्या है यह त्रैराशिक से निकालना चाहिए क्योंकि यह दिया हुआ कि सम और विषम पदों के अंत में इसके मान क्या हैं। बीच के किसी स्थान के मान को जानने के लिए यह तर्क करना चाहिए कि जब त्रिज्या (भुज ज्या का परम मान) के अंतर पर परिधियों का अंतर दिया हुआ है तो इष्ट केन्द्र की भुज ज्या के अंतर पर कितना होगा। इस नियम को संक्षेप में यों लिख सकते हैं—

स्फुट मंद परिधि

$$= \text{मंद परिधि} \pm \text{विषम और सम पदों के अंत की परिधियों का अंतर} \times \frac{\text{इष्ट केन्द्र की भुज ज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

जैसे सूर्य की समपदान्त मन्द परिधि ८४०′, विषम और समपदान्तों के मंद परिधियों का अन्तर २०′ है, इसलिए यदि अभीष्ट मन्द केन्द्र 'अ' हो तो स्फुट मन्द परिधि होगी

$$८४०' - २०' \times \frac{\text{अ की भुज ज्या}}{३४३८'}$$

क्योंकि समपदान्त मन्द परिधि अधिक है।

इसी तरह अन्य ग्रहों की स्फुट मन्द परिधि तथा शीघ्र परिधि निकालनी चाहिए।

तद्गुणे भुजकोटिज्ये भगणांश विभाजिते।
तद्भुजज्याफलधनुः मान्दं लिप्तादिकं फलम् ॥३९॥

अनुवाद—(३९) स्फुट मन्द परिधि को क्रम से भुज ज्या और कोटि ज्या से गुणा करके ३६० से (यदि स्फुट मन्द परिधि अंशों में हो) या २१६०० से (यदि स्फुट मन्द परिधि कलाओं में हो) भाग दे दो। लब्धि क्रम से भुजफल और कोटिफल (कलाओं में) होंगी। भुजफल जिस धनु (कोण) की ज्या होगी उसे ही मन्द फल कहते हैं।

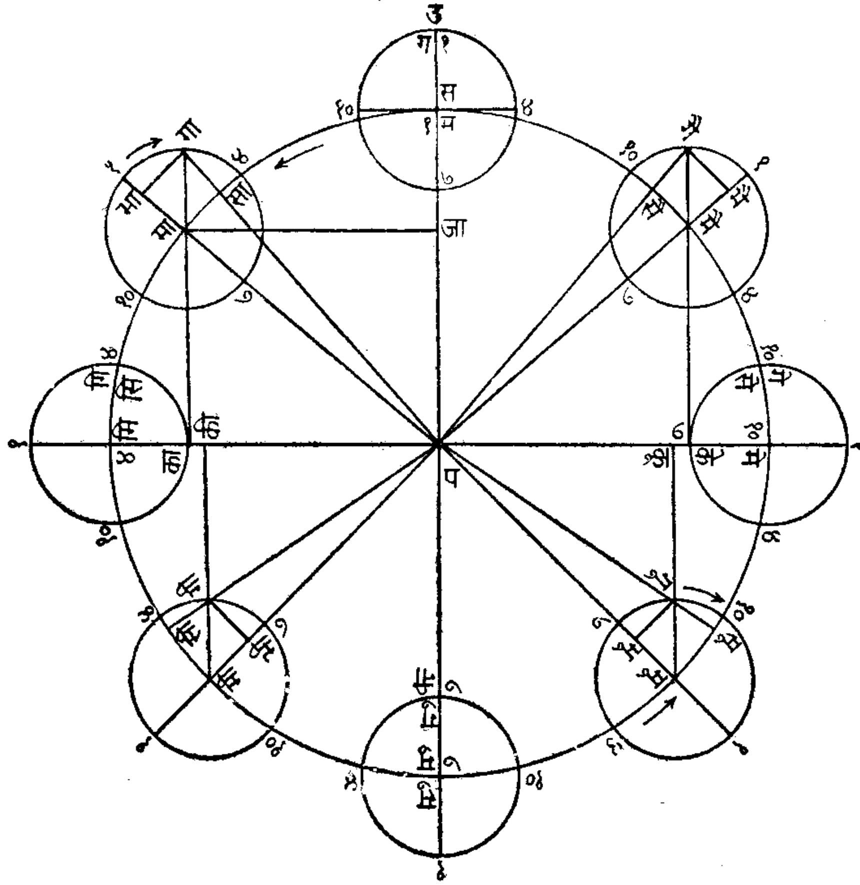
विज्ञान भाष्य—इस नियम को संक्षेप में यों लिख सकते हैं :—

$$\text{भुज फल} = \frac{\text{स्फुट मन्द परिधि} \times \text{भुज ज्या}}{३६०}$$

$$\text{कोटि फल} = \frac{\text{स्फुट मन्द परिधि} \times \text{कोटि ज्या}}{३६०}$$

भुज फल जिस अंश (धनु) की ज्या हो वही मन्द फल कहलाता है। उपर्युक्त समीकरणों में ३६० उसी समय होगा जब कि मन्द परिधि अंशों में हो। यदि मन्द परिधि कलाओं में हो तो ३६० की जगह २१६०० रखना होगा।

इसकी उपपत्ति यों है :—ग्रह के मध्य और स्पष्ट स्थानों का अंतर क्या होता है यह जानने के लिए हमारे आचार्यों ने यह कल्पना की थी कि मध्यम ग्रह तो सदैव समान गति से अनुलोम दिशा में पृथ्वी की परिक्रमा करता रहता है और स्पष्ट ग्रह मन्द परिधि पर जिसके मध्य में मध्यम ग्रह रहता है, विलोम दिशा में इस प्रकार चल रहा है कि जितने समय में मध्यम ग्रह अपनी कक्षा में (कक्षावृत्त में) पूरा चक्कर कर लेता है, उतने ही समय में स्पष्ट ग्रह मन्द परिधि पर अपना चक्कर कर लेता है। मन्द परिधि पर चक्कर लगाते हुए स्पष्ट ग्रह कक्षावृत्त में जहाँ देख पड़ता है उसी विन्दु को स्पष्ट ग्रह का स्थान कहते हैं। यह बात चित्र ३० से भली भाँति समझ में आ जायगी। इसमें प पृथ्वी का केन्द्र है। प को केन्द्र मान कर पम त्रिज्या से जो बड़ा वृत्त खींचा गया है वह कक्षावृत्त कहलाता है। इसी कक्षावृत्त पर मध्यम ग्रह अनुलोम दिशा में मध्यम गति से भ्रमण करता हुआ माना गया है। म, मा, मि, मी, मु, मू, मे, मै, मध्यम ग्रह के आठ स्थान हैं म वह स्थान है जहाँ मध्यम और स्पष्ट ग्रहों का अंतर शून्य होता है। अर्थात् इसी दिशा में ग्रह का मन्दोच्च होता है। कक्षा वृत्त में इसी जगह १ लिखा हुआ है और स भी लिखा हुआ है जिससे प्रकट होता है कि यहीं मध्यम और स्पष्ट ग्रह एकसाथ होते हैं और इसी जगह से आरम्भ करके कक्षावृत्त अनुलोम दिशा में तीन-तीन राशि के अंतर पर चार पदों में बाँटा गया है। इसीलिए पहले पद के अंत में ४, दूसरे पद के अंत में ७ और तीसरे पद के अंत में १० के अंक लिखे गये हैं। म, मा, मि, इत्यादि मध्यम ग्रह के स्थानों को मध्यम मानकर ग्रह की मन्द परिधि के मानानुसार जो छोटे-छोटे वृत्त खींचे गये हैं वही स्फुट मन्द परिधि है। चित्र को स्पष्ट करने के लिए स्फुट मन्द परिधि और कक्षा वृत्त के विस्तार उसी अनुपात में नहीं दिखाये गये हैं, जिस अनुपात में यह प्रत्यक्ष देखे जाते हैं अथवा ग्रन्थों में दिये है। मंद परिधि कुछ बढ़ाकर खींची गयी है। सूर्य सिद्धान्त के अनुसार इस स्फुट मन्द परिधियों के मान भी सर्वत्र समान नहीं होते। प म, प मा, प मि इत्यादि रेखाएँ मंद परिधि के दूर वाले विन्दु पर जहाँ पहुँचती है वहाँ भी मंद परिधि पर १ के अंक लिखे हुए हैं। यहाँ से आरंभ करके मंद परिधि

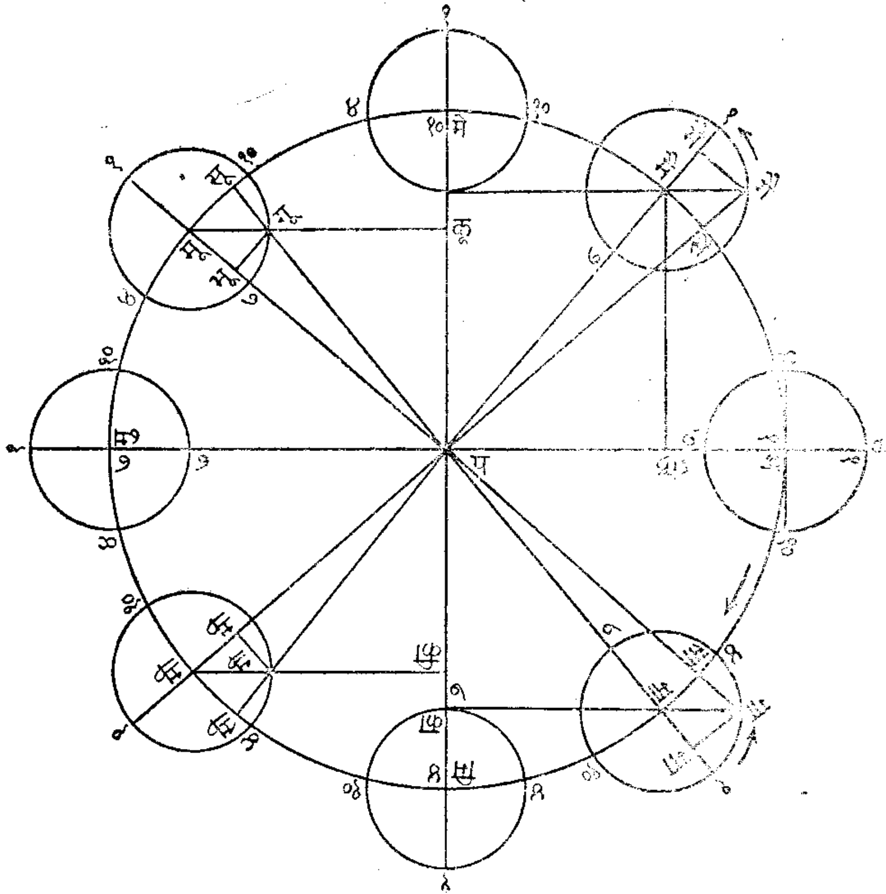


चित्र ३०

पर तीन तीन राशि या नब्बे नब्बे अंश के अंतर पर विलोम दिशा में ४, ७, १० के अंक लिखे गये हैं। जिस समय मध्यम ग्रह म पर होता है उस समय स्पष्ट ग्रह मंद परिधि के उस विन्दु पर रहता है जहाँ १ लिखा हुआ है। यही ग्रह के मन्दोच्च का स्थान है; इसलिए वहाँ उ भी लिखा हुआ है। जितने समय में मध्यम ग्रह कक्षावृत्त पर म से मा तक जाता है उतने समय में स्पष्ट ग्रह मंद परिधि पर १ से गा तक जाता है; क्योंकि मध्यम ग्रह का कक्षावृत्त पर और स्पष्ट ग्रह का मंद वृत्त (मंद परिधि को मंद वृत्त भी कहते हैं) पर कोणीय वेग समान होता है, इसलिए मागा रेखा पम रेखा के जिसको नीचोच्च रेखा कहते हैं समानान्तर होती है। गा और प को मिलाने वाली रेखा को मंदकर्ण कहते हैं। यही पृथ्वी के मध्य से स्पष्ट ग्रह की दूरी होती है। यह मंदकर्ण कक्षा वृत्त को सा विन्दु पर काटता है, इसलिए स्पष्ट ग्रह कक्षावृत्त में सा विन्दु पर ही देख पड़ता है। इसी विन्दु को स्पष्ट ग्रह का स्थान कहते हैं। सामा धनु अथवा सा प मा कोण को मंद फल कहते हैं। म मा धनु अथवा म प मा कोण को मन्द केन्द्र, म सा धनु अथवा म प सा को स्पष्ट केन्द्र कहते हैं; इसलिए स्पष्ट केन्द्र और मन्द केन्द्र का अंतर मंद फल कहलाता है। मा से नीचोच्च

रेखा प म पर मा जा लम्ब है यही म मा मन्द केन्द्र की भुज ज्या है। मा से मा का लम्ब को ममा की कोटि ज्या कहते हैं। यह उस रेखा पर लम्ब है जो प म से समकोण बनाती हुई प बिन्दु पर खींची गयी है। गा से प मा पर जो लम्ब गा भा डाला गया है उसे भुजफल और मा भा को कोटिफल कहते हैं।

इसी प्रकार जब मध्यम ग्रह मि, मी, मु, मू, इत्यादि कक्षावृत्त के विन्दुओं पर रहता है तब स्पष्ट ग्रह क्रम से गि, गी, गु, गू, इत्यादि मन्द वृत्त के विन्दुओं पर रहता है। ऐसी दशा में स्पष्ट ग्रह कक्षा वृत्त के सि, सी, सु, सू, विन्दुओं पर देख



चित्र ३१

पड़ता है। इन विन्दुओं पर भी भुज ज्या, कोटि ज्या, भुजफल, कोटि फल, इत्यादि के लिए वैसा ही समझना चाहिये जैसा पहले कहा गया है।

जब मन्द केन्द्र तीन राशि या ९०° के समान होता है तब मध्यम ग्रह मि पर होता है। ऐसी दशा में स्पष्ट ग्रह मध्यम ग्रह से परम अंतर मि सि पर होता है। यही परम मंद फल कहलाता है। जब मन्द केन्द्र ६ राशि या १८०° के समान होता है तब मध्यम ग्रह मु पर और स्पष्ट ग्रह गु पर होता है; इसलिए स्पष्ट ग्रह कक्षावृत्त के सु विन्दु पर देख पड़ता है। इस जगह मन्द फल शून्य तथा मन्द कर्ण पर गु सब

छोटा होता है। जब ग्रह गु पर होता है, तब पृथ्वी से अत्यन्त निकट होता है। इसी स्थान को ग्रह का नीच कहते हैं।

जब मंद केन्द्र ९ राशि या २७०° के समान होता है तब मध्यम ग्रह मे पर और स्पष्ट ग्रह गे पर होते हैं। इस जगह भी मध्यम और स्पष्ट ग्रहों का अंतर परम होता है। चित्र में, मे से परम मन्द फल है।

सूर्य सिद्धान्त के अनुसार मन्द केन्द्र विलोम दिशा में नापा जाता है; इसलिए इस पद्धति के अनुसार कक्षावृत्त और मंद वृत्त पर १,४,७,१० के अंक इस प्रकार लिखे जाने चाहिये जैसे ३१ चित्र हैं। इससे शीघ्र केन्द्र के सम्बन्ध की सब बातें भी जानी जा सकती हैं। इसीलिए सूर्य सिद्धान्त में दोनों को एक ही चित्र द्वारा समझाया गया है। परन्तु इससे समझने में कुछ कठिनता पड़ती है। भास्कराचार्य ने इस चित्र को केवल शीघ्र-केन्द्र और इसी के सम्बन्ध की सब बातें जैसे शीघ्रफल शीघ्रकर्ण इत्यादि को जानने के लिए प्रयोग किया है। दो चित्रों से भ्रम नहीं होता। इन दो चित्रों की सहायता से ३९, ४०, ४१, ४२ और ४५वें श्लोकों की उपपत्ति सहज ही समझ में आ सकती है।

३९वें श्लोक में बतलाया गया है कि

$$\text{भुजफल} = \frac{\text{स्फुट मन्द परिधि} \times \text{भुज ज्या}}{३६०}$$

$$\text{और कोटि फल} = \frac{\text{स्फुट मन्द परिधि} \times \text{कोटि ज्या}}{३६०}$$

क्योंकि जब मध्यम ग्रह मा पर रहता है तब माजा भुज ज्या, मा का कोटि ज्या, गाभा भुजफल और भामा कोटिफल कहलाते हैं। ऊपर यह समझाया गया है कि $\angle$गामाभा $=$ $\angle$मापजा

और $\angle$गाभामा $=$ $\angle$माजाप, क्योंकि दोनों समकोण हैं।

इसलिए $\triangle$ गा भा मा और $\triangle$ मा जा प सजातीय (Similar) हैं।

$\therefore$ गाभा : गामा :: माजा : माप

$$\therefore \frac{\text{गाभा}}{\text{गामा}} = \frac{\text{माजा}}{\text{माप}}$$

$$\text{अथवा} \frac{\text{गाभा}}{\text{माजा}} = \frac{\text{गामा}}{\text{माप}}$$

परन्तु गा मा स्फुट मंद परिधि की त्रिज्या है और माप कक्षावृत्त की त्रिज्या है, और दो वृत्तों की त्रिज्याओं में परस्पर वही सम्बन्ध होता है जो उनकी परिधियों में होता है, इसलिए

$$\frac{\text{गामा}}{\text{माप}} = \frac{\text{मन्द परिधि (स्फुट)}}{\text{कक्षावृत्त}}$$

$$\therefore \frac{\text{गाभा}}{\text{माजा}} = \frac{\text{स्फुट मन्द परिधि}}{\text{कक्षावृत्त}}$$

अथवा $$\frac{\text{भुजफल}}{\text{भुज ज्या}} = \frac{\text{स्फुट मन्द परिधि}}{\text{कक्षावृत्त}}$$

या $$\text{भुजफल} = \frac{\text{भुज ज्या} \times \text{स्फुट मन्द परिधि}}{\text{कक्षावृत्त}} \quad (१)$$

यदि स्फुट परिधि अंशों में हो तो कक्षावृत्त का मान ३६० होगा और यदि कलाओं में हो तो कक्षावृत्त का मान २१६०० होगा।

इसी तरह भामा : गामा :: पजा : माप

$$\therefore \frac{\text{भामा}}{\text{गामा}} = \frac{\text{पजा}}{\text{माप}}$$

अथवा $$\frac{\text{भामा}}{\text{पजा}} = \frac{\text{गामा}}{\text{माप}} = \frac{\text{स्फुट मन्द परिधि}}{\text{कक्षावृत्त}}$$

वा $$\frac{\text{कोटि फल}}{\text{कोटि ज्या}} = \frac{\text{स्फुट मन्द परिधि}}{\text{कक्षावृत्त}}$$

या $$\text{कोटि फल} = \frac{\text{कोटि ज्या} \times \text{स्फुट मन्द परिधि}}{\text{कक्षावृत्त}} \quad (२)$$

इस प्रकार ३९वें श्लोक के नियम की उपपत्ति सिद्ध हो गयी। इस प्रकार जो भुजफल निकलता है वह जिस कोण की ज्या होता है उस कोण को मन्दफल कहते हैं। चित्र ३० में गाभा भुजफल का कोण गापभा है, इसलिए गापभा कोण ही मंद फल है। इस कोण का मान भारतीय रीति से जानने के लिए त्रैराशिक से पहले यह जानना चाहिये कि सामा जीवा का मान क्या है। △ पभागा और △पमासा सजातीय हैं।

इसलिए $$\frac{\text{सामा}}{\text{साप}} = \frac{\text{गाभा}}{\text{गाप}}$$

अथवा $$\text{सामा} = \frac{\text{साप} \times \text{गाभा}}{\text{गाप}}$$

$$= \frac{\text{त्रिज्या} \times \text{भुजफल}}{\text{मंद कर्ण}} \quad (३)$$

इस समीकरण से जो कुछ आवे वह सामा मन्द फल की ज्या है, जिससे ज्याओं की सारिणी से मन्द फल जाना जा सकता है। परन्तु श्लोक में गाभा के धनु

को मन्द फल मान लिया गया है और समीकरण (३) की आवश्यकता नहीं बतलायी गयी है, इसका कारण यह है कि किसी ग्रह की मन्द परिधि का मान इतना कम होता है कि मन्द कर्ण गाप और त्रिज्या सा प में बहुत कम अन्तर होता है जिसके कारण स्थूल रूप से भुजफल के धनु को ही मन्द फल मान लिया गया है। यदि सूक्ष्म गणना करना चाहें तो समीकरण (३) में जो कुछ बतलाया गया है वह संस्कार भी करना होगा; जैसा कि अगले ४०-४२ श्लोकों में शीघ्रफल के लिए नियम है; क्योंकि शीघ्र परिधि के बड़े होने से शीघ्र कर्ण और त्रिज्या का अन्तर बहुत अधिक होता है; जिससे शीघ्र भुजफल और शीघ्रफल के मानों में बहुत अन्तर होता है। इसलिए ३९वें श्लोक के अनुसार शीघ्र भुजफल को ही शीघ्रफल मान लेने में बहुत अशुद्धि रह जाती है।

शैघ्रं कोटिफलं केन्द्रे मकरादौ धनं स्मृतम्।
संशोध्यं तु त्रिजीवातः कर्क्यादौ कोटिजं फलम् ॥४०॥
तद्बाहुफलवर्गैक्यान्मूलं कर्णश्चलाभिधः।
त्रिज्याऽभ्यस्तं भुजफलं चलकर्णविभाजितम् ॥४१॥
लब्धस्य चापं लिप्तादिफलं शैघ्रमिदं स्मृतम्।
एतदादौ कुजादीनां चतुर्थे चैव कर्मणि ॥४२॥

अनुवाद—(४०) यदि शीघ्र केन्द्र ९ राशि (२७०°) के ऊपर और ३ राशि (९०°) के भीतर हो तो कोटि फल को त्रिज्या में जोड़े, परन्तु यदि शीघ्र केन्द्र ३ राशि के ऊपर और ९ राशि के भीतर हो तो कोटिफल को त्रिज्या में से घटावे; (४१) जो कुछ आवे उसका वर्ग करके भुजफल के वर्ग में जोड़ दे और योगफल का वर्गमूल निकाले, जो आवे वही शीघ्रकर्ण या चलकर्ण होता है। त्रिज्या को भुजफल से गुणा करके चलकर्ण से भाग दे दे, (४२) लब्धि जिस धनु (कोण) की ज्या होगी वही शीघ्रफल कहलाता है। यह शीघ्रफल मंगल आदि पांच ग्रहों के पहले और चौथे संस्कार के लिए काम में आता है।

विज्ञान भाष्य—३९वें श्लोक के विज्ञान भाष्य के अन्त में जिस समीकरण (३) की चर्चा है वह शीघ्रफल जानने के लिए बड़ा आवश्यक है। शीघ्रफल के लिए इस समीकरण का रूप यह होगा :—

$$\text{सामा} = \frac{\text{त्रिज्या} \times \text{भुजफल}}{\text{शीघ्रकर्ण}}$$

इसमें जो भुजफल आया है वह तो ३९वें श्लोक से ही जाना जा सकता है, त्रिज्या का मान पहले से नियत है, केवल शीघ्रकर्ण का मान जानना रह गया जिसका नियम ४०वें और ४१वें श्लोक के पूर्वार्द्ध में बतलाया गया है। चित्र ३१ से प्रकट है कि गाप, गीप, गूप और गैप चलकर्ण है। इनमें से

गाप $= \sqrt{(\text{भाप})^2 + (\text{गाभा})^2}$

$= \sqrt{(\text{भामा} + \text{माप})^2 + (\text{गा भा})^2}$

$= \sqrt{(\text{कोटिफल} + \text{त्रिज्या})^2 + (\text{भुजफल})^2}$

इसी तरह गैप $= \sqrt{(\text{भैमै} + \text{मैप})^2 + (\text{गैभै})^2}$

$= \sqrt{(\text{कोटिफल} + \text{त्रिज्या})^2 + (\text{भुजफल})^2}$

परन्तु गीप $= \sqrt{(\text{भीप})^2 + (\text{गी भी})^2}$

$= \sqrt{(\text{मीप} - \text{मी भी})^2 + (\text{गी भी})^2}$

$= \sqrt{(\text{त्रिज्या} - \text{कोटिफल})^2 + (\text{भुजफल})^2}$

और गूप $= \sqrt{(\text{मूप} - \text{मू भू})^2 + (\text{गू भू})^2}$

$= \sqrt{(\text{त्रिज्या} - \text{कोटिफल})^2 + (\text{भुजफल})^2}$

इस प्रकार यह प्रकट है कि यदि शीघ्र केन्द्र पहले और चौथे पदों में अर्थात् ३ राशि के भीतर और ९ राशि के ऊपर हो तो त्रिज्या में कोटिफल को जोड़ना चाहिये परन्तु यदि शीघ्र केन्द्र दूसरे और तीसरे पदों में अर्थात् ३ राशि से ऊपर और ९ राशि के भीतर हो तो त्रिज्या में कोटिफल को घटाना चाहिये, फिर जो कुछ आवे उसके वर्ग को भुजफल के वर्ग में जोड़कर वर्गमूल निकालना चाहिये तो चलकर्ण ज्ञात हो जायगा। इन चारों समीकरणों को एक समीकरण में यों लिखा जा सकता है :—

चलकर्ण $= \sqrt{(\text{त्रिज्या} \pm \text{कोटिफल})^2 + (\text{भुजफल})^2}$

इसमें धनात्मक चिह्न तब प्रयोग करना चाहिये जब शीघ्र केन्द्र पहले और चौथे पदों में हो और ऋणात्मक चिह्न उस समय प्रयोग करना चाहिये जब शीघ्र केन्द्र दूसरे और तीसरे पदों में हो।

कर्क चौथी राशि है और मकर १०वीं, इसलिए 'कर्कादौ' का अर्थ है चौथी राशि से ९वीं राशि और 'मकरादौ' का अर्थ है १०वीं राशि से ३री राशि तक। मकरादि और कर्कादि शब्दों से यह भ्रम हो सकता है कि जब ग्रह इन राशियों में हो तो उपर्युक्त धन या ऋण चिह्न प्रयोग करना चाहिये। इसलिए मैंने अनुवाद में राशि की जगह पदों का व्यवहार किया है जो मेरी समझ में अधिक स्पष्ट है।

जब चलकर्ण ज्ञात हो गया तब शीघ्रफल जानने के लिए ३९वें श्लोक के समीकरण (३) का रूप यह होगा :—

सामा $= \dfrac{\text{त्रिज्या} \times \text{शीघ्र भुजफल}}{\text{चलकर्ण}}$

सामा जिस धनु (कोण) की ज्या है वही शीघ्रफल कहलाता है।

४२वें श्लोक के उत्तरार्द्ध में यह बतलाया गया है कि शीघ्रफल की आवश्यकता केवल मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि पांच ग्रहों के स्पष्ट स्थान जानने के लिए पड़ती है, सूर्य और चन्द्रमा के लिए नहीं। सूर्य और चन्द्रमा के स्पष्ट स्थान तो केवल मंद फल के संस्कार से आ जाते हैं जैसा कि अगले (४३वें) श्लोक में बतलाया गया है।

यदि ३९-४१ श्लोकों को बीजगणित के अनुसार एक ही समीकरण से प्रकट करना चाहें तो उसका रूप यह होगा :—

$$\text{चलकर्ण} = \left\{ \left(३४३८ \pm \frac{\text{शीघ्र स्फुट परिधि} \times \text{कोटि ज्या}}{२१६००} \right)^{२} + \left(\frac{\text{शीघ्र स्फुट परिधि} \times \text{भुजज्या}}{२१६००} \right)^{२} \right\}^{\frac{१}{२}}$$

इसमें शीघ्र केन्द्र की ज्या और कोटि ज्या भारतीय रीति से निकाल कर उपर्युक्त ग्रह के 'भुज ज्या' और 'कोटि ज्या' के लिए लिखना चाहिये। शीघ्र स्फुट परिधि ३८वें श्लोक के अनुसार जानना चाहिये और इसे कलाओं में लिखना चाहिये।

मान्दं कर्मैकमर्केन्दोर्भौमादीनामथोच्यते।
शैघ्रं मान्दं पुनर्मान्दं शैघ्रं चत्वार्यनुक्रमात् ॥४३॥

अनुवाद—(४३) सूर्य और चन्द्रमा मन्द फल के केवल एक संस्कार से स्पष्ट होते हैं; परन्तु मंगल आदि पाँच ग्रहों में शीघ्र फल का एक संस्कार करने के पीछे मंद फल के दो बार संस्कार करने पड़ते हैं जिसके पीछे चौथी बार फिर शीघ्र फल का संस्कार करना होता है।

विज्ञान भाष्य—हमारे प्राचीन आचार्यों ने चंद्रमा का स्पष्ट स्थान जानने के लिए केवल मंद फल का संस्कार करने की रीति बतायी है। परन्तु इससे वास्तव में चन्द्रमा का स्पष्ट स्थान नहीं निकलता। चन्द्रमा इतना छोटा पिंड है कि इस पर सभी ग्रहों का प्रभाव पड़ता है, जिसके कारण इसकी गति में बहुत सी भिन्नताएँ उत्पन्न हो जाती हैं। इसलिए आजकल छोटे-छोटे कोई ४० संस्कार करने से चन्द्रमा का स्पष्ट स्थान शुद्धतापूर्वक जाना जा सकता है। इन चालीस संस्कारों में पाँच संस्कार बहुत बड़े हैं जो अवश्य करने चाहियें। इनकी चर्चा संक्षेप में आगे उस स्थान पर की जायगी जहाँ आजकल की पद्धति से ग्रहों के स्पष्ट स्थान जानने की रीति बतलायी जायगी।

मंगल आदि पाँच ग्रहों के स्पष्ट स्थान जानने के लिए जिन चार संस्कारों की चर्चा इस श्लोक में है उनकी रीति अगले ४४वें श्लोक में बतलायी गयी है।

मध्ये शीघ्रफलस्यार्धं मान्दमर्धफलं तथा ।
मध्यग्रहे मन्दफलं सकलं शैघ्रमेव च ॥४४॥

अनुवाद—(४४) मध्यम ग्रह को शीघ्रोच्च में से घटा कर शीघ्र केन्द्र और इससे शीघ्रफल निकाले । इस शीघ्रफल का आधा मध्यम ग्रह में जोड़े(यदि शीघ्र केन्द्र ६ राशि से कम हो) और घटावे (यदि शीघ्र केन्द्र ६ राशि से अधिक हो); जोड़ने या घटाने से जो आता है वही प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह कहलाता है । इस प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह को मन्दोच्च में से घटावे, शेष को मन्द केन्द्र समझ कर, मंद फल बनावे । इस मंद फल का आधा, प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह में जोड़ने या घटाने से जो आता है वही द्वितीय संस्कार युक्त मध्यम ग्रह है । दूसरे संस्कार युक्त मध्यम ग्रह को मन्दोच्च में से फिर घटावे और शेष को दूसरा मन्द केन्द्र मान कर दूसरा मंद फल बनावे । इस मंद फल को मध्यम ग्रह में जोड़ने या घटाने से जो आता है वही मन्द स्पष्ट ग्रह कहलाता है । मन्द स्पष्ट ग्रह को शीघ्रोच्च में से घटाकर शीघ्र केन्द्र और शीघ्रफल बनावे और इस शीघ्रफल को मन्द स्पष्ट ग्रह में जोड़ने या घटाने से जो कुछ आवे वही स्पष्ट ग्रह कहलाता है ।

विज्ञान भाष्य—इस नियम को बीज-गणित की रीति से यों लिख सकते हैं :—

शीघ्रोच्च—मध्यम-ग्रह=शीघ्र केन्द्र, जिसका शीघ्रफल पहला शीघ्रफल कहलाता है ।

पहला संस्कार युक्त मध्यम ग्रह

$$= \text{मध्यम ग्रह} \pm \frac{\text{शीघ्रफल (पहला)}}{२}$$

मन्दोच्च—पहला संस्कार युक्त मध्यम ग्रह=संस्कृत मन्द केन्द्र जिसका मन्दफल प्रथम संस्कृत मन्दफल है ।

दूसरा संस्कार युक्त मध्यम ग्रह

$$= \text{पहला संस्कार युक्त मध्यम ग्रह} \pm \frac{\text{मन्दफल (प्रथम संस्कृत)}}{२}$$

$$= \text{मध्यम ग्रह} \pm \frac{\text{(पहला) शीघ्रफल}}{२} \pm \frac{\text{(पहला) मन्दफल}}{२}$$

मन्दोच्च—दूसरा संस्कारयुक्त मध्यम ग्रह=दूसरा संस्कृत मन्द केन्द्र जिसका मन्दफल दूसरा संस्कृत मन्दफल है ।

मन्द स्पष्ट ग्रह=मध्यम ग्रह±दूसरा (संस्कृत) मन्द फल ।

शीघ्रोच्च – मन्द स्पष्ट ग्रह=दूसरा शीघ्र केन्द्र जिसका शीघ्रफल दूसरा शीघ्रफल है ।

स्पष्ट ग्रह=मन्द स्पष्ट ग्रह±दूसरा शीघ्र फल

=मध्यम ग्रह ±दूसरा मन्द फल

±दूसरा शीघ्र फल

यह तो सूर्य सिद्धान्त के शब्दों में स्पष्ट ग्रह जानने की रीति हुई । परन्तु व्यवहार में इससे बहुत झंझट करना पड़ता है, इसलिए इसी के सहारे सरल नियम इस प्रकार बनाया जा सकता है ।

नीचे लिखी परिभाषाएं याद रखनी चाहिये :–

१ ली परिभाषा मन्दोच्च – मध्यम ग्रह=मन्द केन्द्र

२ री ,, शीघ्रोच्च – मध्यम ग्रह=शीघ्र केन्द्र

शीघ्र केन्द्र से जो शीघ्र फल निकलता है वह पहला शीघ्र फल है । (१)

$$\text{प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह} = \text{मध्यम ग्रह} \pm \frac{\text{पहला शीघ्रफल}}{२} \quad (२)$$

प्रथम संस्कृत मन्द केन्द्र

$$= \text{मन्दोच्च} - \text{प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह}$$

$$= \text{मन्दोच्च} - \left(\text{मध्यम ग्रह}) \pm \frac{\text{पहला शीघ्रफल}}{२}\right)$$

$$= \left(\text{मन्दोच्च} - \text{मध्यम ग्रह}) \pm \frac{\text{पहला शीघ्रफल}}{२}\right)$$

$$= \text{मन्द केन्द्र} \pm \frac{\text{पहला शीघ्रफल}}{२} \quad (३)$$

इससे प्रकट है कि प्रथम संस्कृत मन्द केन्द्र जानने के लिए समीकरण (२) की आवश्यकता नहीं, वरन् मन्द केन्द्र में पहले शीघ्रफल का आधा चिह्न उलट कर (बीजगणित के अनुसार*) जोड़ देने से ही काम चल जायगा । इससे जो मन्दफल बनाया जायगा वही पहला मन्दफल या प्रथम संस्कृत मन्दफल होगा ।

---

*बीजगणित के अनुसार जोड़ने का अर्थ यह है कि यदि एक संख्या धनात्मक हो और दूसरी ऋणात्मक तो ऋणात्मक संख्या को धनात्मक संख्या से घटाने पर जो कुछ आता है वह भी ऋणात्मक और धनात्मक संख्याओं का योगफल ही कहलाता है, यद्यपि अंकगणित में इस योगफल को दोनों का अन्तर ही कहेंगे ।

दूसरा संस्कार युक्त मध्यम ग्रह

$$= \text{पहला संस्कार युक्त मध्यम ग्रह} \pm \frac{\text{पहला मन्द फल}}{२}$$

$$= \text{मध्यम ग्रह}$$

$$\pm \frac{\text{पहला शीघ्र फल}}{२} \pm \frac{\text{पहला मन्द फल}}{२} \qquad (४)$$

दूसरा संस्कृत मन्द केन्द्र

$$= \text{मन्दोच्च} — \text{दूसरा संस्कार युक्त मध्यम ग्रह}$$

$$= \text{मन्दोच्च} \Big(\text{मध्यम ग्रह} \pm \frac{\text{पहला शीघ्र फल}}{२} \pm \frac{\text{पहला मन्द फल}}{२} \Big)$$

$$= (\text{मन्दोच्च} - \text{मध्यम ग्रह}) \mp \frac{\text{पहला शीघ्र फल}}{२} \mp \frac{\text{पहला मन्द फल}}{२}$$

$$= \Big(\text{मन्द केन्द्र} \pm \frac{\text{पहला शीघ्र फल}}{२} \Big) \pm \frac{\text{पहला मन्द फल}}{२}$$

$$= \text{प्रथम संस्कृत मन्द केन्द्र} \mp \frac{\text{पहला मन्द फल}}{२} \qquad (५)$$

जिससे सिद्ध हुआ कि दूसरा संस्कृत मन्द केन्द्र जानने के लिए प्रथम संस्कृत मन्द केन्द्र में पहले मन्द फल का आधा चिह्न उलट कर जोड़ दो। इसलिए समीकरण (४) की भी आवश्यकता नहीं है। दूसरे संस्कृत मन्द केन्द्र से जो मन्द फल बनाया जायगा वही दूसरा मन्द फल है।

$$\text{मन्द स्पष्ट ग्रह} = \text{मध्यम ग्रह} \pm \text{दूसरा मन्द फल} \qquad (६)$$

$$\text{दूसरा शीघ्र केन्द्र} = \text{शीघ्रोच्च} - \text{मन्द स्पष्ट ग्रह}$$

$$= \text{शीघ्रोच्च} - (\text{मध्यम ग्रह} \pm \text{दूसरा मन्द फल})$$

$$= (\text{शीघ्रोच्च} - \text{मध्यम ग्रह}) \pm \text{दूसरा मन्द फल}$$

$$= \text{शीघ्र केन्द्र} \pm \text{दूसरा मन्द फल} \qquad (७)$$

इससे सिद्ध हुआ कि दूसरा शीघ्र केन्द्र जानने के लिए, शीघ्र केन्द्र में दूसरा मन्द फल चिह्न उलट कर जोड़ दो। इसलिए समीकरण (६) की भी आवश्यकता नहीं है। दूसरे शीघ्र केन्द्र से जो शीघ्र फल बनेगा वही दूसरा शीघ्र फल है।

स्पष्ट ग्रह=मन्द स्पष्ट ग्रह±दूसरा शीघ्रफल

=मध्यम ग्रह±दूसरा मन्द फल

±दूसरा शीघ्रफल (८)

जिससे सिद्ध होता है कि मध्यम ग्रह में दूसरे मन्द फल को और दूसरे शीघ्र फल को बीज गणित के अनुसार जोड़ दो अर्थात् जो धनात्मक हो उसको जोड़ो और जो ऋणात्मक हो उसको घटाओ। दूसरा मन्द फल और दूसरा शीघ्र फल समीकरण (५) और (७) से जानना चाहिए।

संक्षेप में नियम यह हुआ :—

(१) शीघ्रफल का आधा चिह्न उलट कर मन्द केन्द्रों में (बीजगणित के अनुसार) जोड़ दो तो प्रथम संस्कृत मन्द केन्द्र आ जावेगा। इसी का मन्द फल प्रथम संस्कृत मन्द फल या पहला मन्द फल है।

(२) प्रथम संस्कृत मन्द केन्द्रों में पहले मन्द फल का आधा चिह्न उलट कर जोड़ दो तो दूसरा संस्कृत मन्द केन्द्र आ जावेगा। इसी का मन्द फल दूसरा संस्कृत मन्द फल या दूसरा मन्द फल है।

(३) शीघ्र केन्द्र में दूसरा मंद फल चिह्न उलट कर जोड़ दो तो संस्कृत शीघ्र केन्द्र आवेगा, जिसका शीघ्रफल दूसरा शीघ्रफल है।

(४) मध्यम ग्रह में दूसरा मंद फल और दूसरा शीघ्रफल बिना चिह्न उलटे जोड़ दो तो स्पष्ट ग्रह आ जावेगा।

सूर्य-सिद्धान्त में स्पष्ट ग्रह जानने का यही नियम है। अन्य आचार्यों ने इससे कुछ भिन्न रीति से काम लिया है, जिनकी तुलना करने की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। ऐसे पेंचदार नियम केवल इसलिए बनाए गये थे कि स्पष्ट ग्रह का स्थान ठीक-ठीक ज्ञात हो जाय। इसलिए जिस-जिस नवीन संस्कार से स्पष्ट ग्रह का स्थान प्रायः ठीक-ठीक जाना जा सकता था वह सब काम में लाये जाते थे। इसी लिए आचार्यों के मतों में भिन्नता है। केवल इतने ही नियमों से यथार्थ स्थान नहीं जाना जा सकता है; इसकी परीक्षा आजकल कोई भी कर सकता है; इसलिए मेरा विचार है कि जिन-जिन संस्कारों से यह बात ठीक हो सकती है उनका प्रयोग करना अत्यन्त आवश्यक है। इसी दृष्टि से मैं उन नवीन रीतियों को भी विज्ञान भाष्य में लिखूंगा जिनसे वेध और गणित में समानता आ सकती है। परन्तु पहले कुछ उदाहरण दे देना चाहिये, जिनसे यह सहज ही जाना जा सके कि इन नियमों से स्पष्ट ग्रह कैसे जाना जा सकता है। इसके लिए मैं सूर्य, बुध और गुरु तीन ग्रहों के उदाहरण दूंगा।

उदाहरण १—१९७९ वि० की वसंत पंचमी की अर्द्ध रात्रि को उज्जैन में सूर्य, बुध और गुरु के स्पष्ट स्थान क्या थे ?

पहले इनके मन्दोच्च के स्थान जानना है—

सृष्टि के आरंभ से १९७९ वि० की मेष संक्रान्ति तक १,९५,५८,८५,०२३ सौर वर्ष बीते (देखो मध्यमाधिकार) एक कल्प में सूर्य के मन्दोच्च के ३८७ भगण होते हैं; इसलिए १९७९ वि० की मेष संक्राति तक

$$\frac{\text{१,९५,५८,८५,०२३} \times \text{३८७}}{\text{४,३२००,००,०००}} = \frac{\text{१,९५,५८,८५,०२३} \times \text{४३}}{\text{४८,००,००,०००}}$$

$$= \frac{\text{८४१०.३०५५९८९}}{\text{४८}}$$

= १७५ भगण २ राशि १७ अंश १७′३१″.१७०३

अर्थात् १९७९ वि० की मेष संक्रान्ति के दिन सूर्य के मन्दोच्च का स्थान था २^रा^१७°१७′३१″.१७०३। मन्दोच्च की गति इतनी कम (सूर्य सिद्धान्त के अनुसार) होती है कि मन्दोच्च का यह स्थान कई वर्ष तक सही माना जा सकता है।

एक कल्प में बुध के मन्दोच्च के ३६८ भगण होते हैं; १९७९

मेष संक्रान्ति तक बुध मन्दोच्च के भगण

$$= \frac{\text{१,९५,५८,८५,०२३} \times \text{३६८}}{\text{४३२} \times \text{१०}^{\text{७}}} \text{ भगण}$$

$$= \frac{\text{४४९८.५३५५५२९}}{\text{२७}} \text{ भगण}$$

= १६६^भ^ ७^रा^ १०°२८′२६.″५४

∴ १९७९ वि० में बुध के मन्दोच्च का स्थान ७^रा^१०°२८′२६.″५४ है।

इस समय गुरु के मन्दोच्च का स्थान

$$= \frac{\text{१,९५,५८,८५,०२३} \times \text{९००}}{\text{४३२} \times \text{१०}^{\text{७}}} \text{ भगण}$$

$$= \frac{\text{१९५५८.८५०२३}}{\text{४८}} \text{ भगण}$$

= ४०७^भ^ ५^रा^ २१°२२′३६.″२१

∴ १९७९ वि० में गुरु के मन्दोच्च का स्थान ५^रा^२१°२२′३६.″२१ है।

इन ग्रहों के मध्यम स्थान जानने के लिए कलियुग के आदि से अहर्गण निकाल कर गणना करनी चाहिये, जैसा कि मध्यमाधिकार के ५६वें श्लोक में बतलाया गया है।

कलियुग के आदि से १६७६ वि० की वसंत पंचमी की अर्द्ध रात्रि तक के अहर्गण (मध्यमाधिकार के अनुसार निकाला तो) १८,३४,६७७ हुए।

जब एक महायुगीय सावन दिन में अर्थात् १५७,७६,१७,८२८ सावन दिन में सूर्य के ४३,२०,००० भगण होते हैं तब १८,३४,६७७ सावन दिन में भगण

$$= \frac{१८,३४,६७७ \times ४३२ \times १०^{४}}{१५७७६१७८२८}$$

$$= ५०२३ \ ^{भ} ९^{रा} ८^{\circ} १२' ९''$$

∴ सूर्य का मध्यम स्थान $= ९^{रा} ८^{\circ} १२' ९''$

इसी तरह गुरु का मध्यम स्थान

$$= \frac{१८३४६७७ \times ३६४२२०}{१५७७६१७८२८}$$

$$= ४२३^{भ} ६^{रा} १९^{\circ} ५२' ३७''$$

$$= ६^{रा} १९^{\circ} ५२' ३७''$$

और बुध के शीघ्रोच्च का स्थान

$$= \frac{१८,३४,६७७ \times १,७९,३७,०६०}{१,५७,७९,१७,८२८}$$

$$= २०८५९^{भ} २^{रा} ९^{\circ} २९' १७''$$

$$= २^{रा} ९^{\circ} २९' १७''$$

अब पहले सूर्य का स्पष्ट स्थान जानना चाहिये :—इस अध्याय के श्लोक २९ के अनुसार, सूर्य का मन्द केन्द्र

= सूर्य के मन्दोच्च का स्थान — सूर्य का मध्यम स्थान

$$= २^{रा} १७^{\circ} १७' ३१'' - ९^{रा} ८^{\circ} १२' ९''$$

$$= ५^{रा} ९^{\circ} ५' २२''$$

$$= १५९^{\circ} ५' २२''$$

यहाँ २ राशि ९ राशि से कम है इसलिए २ में १२ राशि (१ भगण) जोड़कर योगफल में से ९ राशि घटायी गयी है। ऐसी ही क्रिया जहाँ कहीं आवश्यकता पड़े करनी चाहिये।

मन्द केन्द्र ३ राशि से अधिक और ६ राशि से कम है इसलिए दूसरे पद में है और गत भाग ६९°५′२२″ तथा गम्य भाग (९०° में से गत भाग घटाने पर) २०°५४′३८″ है। इसलिए ३० वें श्लोक के अनुसार गम्य की ज्या अर्थात् २०°५४′३८″ की ज्या भुजज्या होगी और ६९°५′२२″ की ज्या कोटिज्या होगी।

२०°५४′३८″ = २०°५५′ स्वल्पान्तर से
= २० × ६० + ५५ कला
= १२५५′

३१वें श्लोक के अनुसार १२५५′ को २२५ से भाग देने पर गत पिंड ५ और ६ठें पिंड में १३०′ आया।

५वें पिंड की ज्या = ११०५′
६ठें " " = १३१५′
दोनों ज्याओं का अन्तर २१०′

अब २२५ : १३०′ : : २१० : अभीष्ट

∴ अभीष्ट ज्या का अन्तर = $\frac{१३० \times २१०}{२२५}$

= $\frac{३६४}{३}$

= १२१′

इसलिए ३२वें श्लोक के अनुसार जब १२१′ को ५वें पिंड की ज्या अर्थात् ११०५′ में जोड़ा तो आया १२२६′; यही इष्ट भुजज्या है।

३४वें श्लोक के अनुसार सूर्य की मन्द परिधि समपद के अन्त में १४° और विषम पद के अन्त में २०′ कम होती है, इसलिए जब भुजज्या १२२६′ होगी तब ३८वें श्लोक के अनुसार मंद परिधि $\frac{२०′ \times १२२६′}{३४३८′}$ अर्थात् स्वल्पान्तर से ७′ कम होगी,

∴ स्फुट मन्द परिधि = १४° − ७
= १४ × ६० − ७ कला
= ८३३′

इसलिए ३९वें श्लोक के अनुसार,

भुजफल = $\frac{८३३ \times १२२६}{२१६००}$ कला

= $\frac{१०२१२५८}{२१६००}$

= ४७′ स्वल्पान्तर से

इसी भुजफल को मन्दफल मान लिया जाता है। यदि और सूक्ष्म गणना करनी हो तो ४०—४२ श्लोकों की क्रिया भी करनी चाहिये जैसा कि ३९वें श्लोक के विज्ञान भाष्य के समीकरण (३) में दिखलाया गया है। परन्तु ऐसा करने में गणित बहुत करना पड़ता है और अन्तर बहुत कम होता है, इसलिए मन्द फल के लिए ४०—४२ श्लोकों की क्रिया करने की आवश्यकता नहीं है।

यही मन्द फल सूर्य के मध्यम स्थान में जोड़ना चाहिये क्योंकि मंद केन्द्र पहले दो पदों में है, जैसा कि ५वें और आगे आने वाले ४५वें श्लोकों में बतलाया गया है। इसलिए सूर्य का स्पष्ट स्थान उज्जैन में वसंत पंचमी की मध्यम अर्द्धरात्रि को ९$^{\text{रा}}$ ८° १२′ ९″+४७′ अर्थात् ९$^{\text{रा}}$ ८° ५९′ ९″ होगा।

गुरु का स्पष्ट स्थान जानने के लिए—

गुरु का मन्द केन्द्र = गुरु का मन्दोच्च — गुरु का मध्यम स्थान

= ५$^{\text{रा}}$ २१° २२′ ३६″ — ६$^{\text{रा}}$ १९° ५२′ ३७′

= ११$^{\text{रा}}$ १° ३०′ स्वल्पान्तर से

गुरु का शीघ्र केन्द्र = गुरु का शीघ्रोच्च — गुरु का मध्यम स्थान

= सूर्य का मध्यम स्थान — गुरु का मध्यम स्थान

= ९$^{\text{रा}}$ ८° १२′ ९″ — ६$^{\text{रा}}$ १९° ५२′ ३७″

= २$^{\text{रा}}$ १८° १९′ ३२″

= २$^{\text{रा}}$ १८° २०′ स्वल्पान्तर से

= ७८° २०′

शीघ्र केन्द्र ३ राशि से कम है इसलिए विषम पद में है; इसलिए ७८° २०′ की ज्या शीघ्र भुजज्या और ११° ४०′ की ज्या शीघ्र कोटिज्या हुई।

७८° २८′ = ७८ × ६० + २० कला

= ४७०० कला

$\frac{४७००}{२२५}$ = २० पिंड + २०० कला

२० वें पिंड की ज्या	= ३३२१′
२१ वें पिंड की ज्या	= ३३७२′
दोनों की ज्याओं का अन्तर =	५१′

२२५ : २०० : : ५१ : अभीष्ट अन्तर

$\therefore$ अभीष्ट अन्तर $= \frac{२०० \times ५१}{२२५} = \frac{१३६}{३} = ४५'$

$\therefore$ शीघ्र भुजज्या $= ३३२१' + ४५' = ३३६६'$

$११^\circ ४०' = ११ \times ६० + ४० = ७००'$

$\frac{७००}{२२५} = ३$ पिंड $+ २५'$

३रे पिंड की ज्या $= ६७१'$

४थे पिंड की ज्या $= ८९०'$

दोनों का अन्तर $= \overline{२१९}$

२२५ : २५ : : २१९ : अभीष्ट अंतर

$\therefore$ अभीष्ट अन्तर $= \frac{२५ \times २१९}{२२५} = २४'$

$\therefore$ शीघ्र कोटिज्या $= ६७१' + २४' = ६९५'$। गुरु की शीघ्र परिधि विषम पदान्त में ७२° और सम पदान्त में ७०° है, इसलिए दोनों का अंतर २° है और ३८वें श्लोक के अनुसार

स्फुट शीघ्र परिधि $= ७०^\circ + \frac{२^\circ \times ३३६६}{३४३८}$

$= ७०^\circ + २^\circ$ स्वल्पान्तर से

$= ७२^\circ$

$\therefore$ शीघ्र भुजफल $= \frac{७२ \times ३३६६}{३६०}$ [श्लोक ३९]

$= ६७३'$

और शीघ्र कोटिफल $= \frac{७२ \times ६९५}{३६०}$

$= १३९'$

शीघ्र केन्द्र पहले पद में है इसलिए शीघ्र कोटिफल ४०वें श्लोक के अनुसार त्रिज्या में जोड़ना चाहिये, इसलिए शीघ्रकर्ण

$= \sqrt{(३४३८ + १३९)^२ + ६७३^२}$ [श्लोक ४१ उत्तरार्ध]

$= \sqrt{३५७७^२ + ६७३^२}$

$= \sqrt{१,२७,९४,९२९ + ४,५२,९२९}$

$= \sqrt{१,३२,४७,८५८}$

$= ३६४०'$ स्वल्पान्तर से

शीघ्रफल $= \frac{३४३८ \times ६७३}{३६४०}$ कला [श्लोक ४१ का उत्तरार्द्ध, ४२ का पूर्वार्द्ध]

$=$ ६३६ कला

यह पहला शीघ्रफल हुआ। यह धनात्मक है, क्योंकि शीघ्र केन्द्र पहले पद में हैं। यदि सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार आगे की क्रियाएं करनी हों तो ४४वें श्लोक के अनुवाद में जो कुछ लिखा गया है उसके अनुसार करना चाहिये। परन्तु यह बहुत लम्बी रीति है इसलिए इस श्लोक के विज्ञान भाष्य के अंत में जो संक्षिप्त नियम लिखे गये हैं उन्हीं के अनुसार क्रिया करता हूँ :—

नियम (१) के अनुसार $+$ ६३६$'$ का आधा, चिह्न उलटने से $-$ ३१८$'$ अर्थात् $-$ ५$^\circ$१८$'$ हुआ। इसको गुरु के मंद केन्द्र ११$^{रा}$१$^\circ$३०$'$ में बीजगणित के अनुसार जोड़ा तो आया १०$^{रा}$२६$^\circ$१२$'$। यही प्रथम संस्कृत मंद केन्द्र हुआ। इसका मन्द फल प्रथम संस्कृत मंद फल हुआ।

१०$^{रा}$२६$^\circ$१२$'$ नव राशि से अधिक है इसलिए चौथे पद में है, जिसका १$^{रा}$२६$^\circ$१२$'$ अर्थात् ५६$^\circ$१२$'$ गत और ३३$^\circ$४८$'$ गम्य है।

३३$^\circ$४८$'$ $=$ ३३ $\times$ ६० $+$ ४८ कला

$=$ २०२८ कला

$=$ ९ पिंड $+$ ३$'$

९ वें पिंड की ज्या $=$ १९१०$'$

१० वें " " $=$ २०९३$'$

$\therefore$ दोनों ज्याओं का अंतर $=$ १८३$'$

२२५ ; ३$'$: : १८३$'$: अभीष्ट अंतर

$\therefore$ अभीष्ट अंतर $= \frac{३ \times १८३}{२२५} =$ २$'$

$\therefore$ मंद भुजज्या $=$ १९१०$'$ $+$ २$'$ $=$ १९१२$'$

वृहस्पति की मन्द परिधियों का अंतर १$^\circ$ है इसलिये ३८ वें श्लोक के अनुसार,

मन्द स्फुट परिधि $=$ ३३$^\circ$ $- \frac{१^\circ \times १९१२}{३४३८}$

$=$ ३३$^\circ$ $-$ ३३$'$

$=$ १९४७$'$

$\therefore$ प्रथम संस्कृत मंद फल $= \frac{१६४७ \times १६१२}{२१६००}$ [श्लोक ३६]

$= १७२'$

यह ऋणात्मक है, क्योंकि मंद केन्द्र चौथे पद में है; इसका आधा, चिह्न उलटने से $+ ८६'$ होगा। नियम (२) के अनुसार,

दूसरा संस्कृत मंदकेन्द्र $= १०^{रा} २६° १२' + ८६'$

$= १०^{रा} २७° ३८'$

इसका मंदफल दूसरा संस्कृत मंदफल होगा।

अब $१०^{रा} २७° ३८'$ चौथे पद में हैं, जिसका $१^{रा} २७° ३८'$ गत और $१^{रा} २° २२'$ गम्य है।

$१^{रा} २° २२' = ३२° २२' = ३२ \times ६० + २२$ कला

$= १६४२' = ८$ पिंड $+ १४२'$

८ वें पिंड की ज्या $= १७१६$

६ वें पिंड की ज्या $= १६१०$

अंतर $= १६१'$

$२२५' : १४२' :: १६१ :$ अभीष्ट अंतर

$\therefore$ अभीष्ट अंतर $= \frac{१४२ \times १६१}{२२५} = १२१'$

$\therefore$ मन्द भुजज्या $= १७१६ + १२१ = १८४०'$

$\therefore$ मन्द स्फुट परिधि $= ३३° - \frac{१° \times १८४०}{३४३८}$

$= ३३° - ३२'$

$= १६४८'$

$\therefore$ दूसरा संस्कृत मन्द फल $= \frac{१६४८ \times १८४०}{२१६००}$

$= १६६' = २° ४६'$ (१)

यह भी ऋणात्मक है। इसलिए इसका चिह्न उलट कर, नियम (३) के अनुसार शीघ्रकेन्द्र में जोड़ देने से संस्कृत शीघ्रकेन्द्र आवेगा।

इसलिए संस्कृत शीघ्रकेन्द्र $= ७८° २०' + २° ४६'$

$= ८१° ६'$

यह प्रथम पद में है, इसलिए इसकी ज्या शीघ्र-भुजज्या और ८°५४′ की ज्या शीघ्र-कोटिज्या होगी

८१°६′=८१×६०+६ कला

=४८६६ कला

=२१ पिंड १४१′

२१ वें पिंड की ज्या=३३७२′

२२ वें पिंड की ज्या=३४०९′

दोनों का अंतर = ३७′

२२५ : १४१ : : ३७ : अभीष्ट अंतर

∴ अभीष्ट अंतर= $\frac{\text{१४१} \times \text{३७}}{\text{२२५}}$ =२३′

∴शीघ्र भुजज्या=३३७२′+२३′

=३३९५′

८°५४′=८×६०+५४ कला

=५३४ कला=२ पिंड ८४′

२रे पिंड की ज्या=४४९

३रे पिंड की ज्या=६७१

अंतर=२२२′

∴२२५ : ८४ : : २२२ : अभीष्ट अन्तर

∴अभीष्ट अन्तर= $\frac{\text{८४} \times \text{२२२}}{\text{२२५}}$ =८३′

∴शीघ्र कोटिज्या=४४९+८३′

=५३२′

गुरु की शीघ्र परिधि विषम पदान्त में ७२° है, इसलिए पहले की तरह इस बार भी स्फुट शीघ्र परिधि ७२° ही होगी।

∴शीघ्र भुज फल= $\frac{\text{७२} \times \text{३३९५}}{\text{३६०}}$ कला

=६७९′

और शीघ्र कोटिफल= $\frac{\text{७२} \times \text{५३२}}{\text{३६०}}$

=१०६′

यह शीघ्र कोटिफल त्रिज्या में जोड़ा जायगा।

इसलिए, शीघ्र कर्ण $= \sqrt{(३४३८+१०६)^{२}+६७६^{२}}$

$= \sqrt{३५४४^{२}+६७६^{२}}$

$= ३६०८'$

$\therefore$ दूसरा शीघ्रफल $= \dfrac{३४३८ \times ६७६}{३६०८}$ [श्लोक ४१, ४२]

$= ६४७$ कला

$= +१०^{\circ}४७'$ (२)

$\therefore$ नियम (४) के अनुसार,

स्पष्ट गुरु = मध्यम गुरु + दूसरा मंद फल + दूसरा शीघ्रफल।

$= ६^{\text{रा}}१९^{\circ}५२'३७'' - २^{\circ}४६' + १०^{\circ}४७'$

$= ६^{\text{रा}}२७^{\circ}५३'३७''$

इस उदाहरण से यह स्पष्ट हो गया होगा कि प्रत्येक ग्रह को स्पष्ट करने के लिए दो बार शीघ्रफल और दो बार मन्द फल निकालना पड़ता है और प्रत्येक के लिए भुजज्या, कोटिज्या, स्फुट-परिधि भुजफल, कोटिफल शीघ्रकर्ण तथा शीघ्रफल निकालना होता है। यदि शून्य से ९०° तक के एक एक अंश या आधे-आधे अंश को ज्या और कोटिज्या की सारिणी दी हुई हो तो भुजज्या और कोटिज्या सारिणी देखकर जानी जा सकती है। यह सारिणी सब ग्रहों के लिए काम में आ सकती है। इसी प्रकार प्रत्येक ग्रह के मन्द फल और शीघ्रफल की भी सारिणी बनायी जा सकती है जिससे स्पष्ट करने की लम्बी क्रिया बहुत संक्षिप्त हो जायगी और गुणा भाग करने का भी झंझट मिट जायगा। व्यवहार में ऐसा होता भी है। आजकल मकरंद सारिणी अधिक काम में आती है।

इसी प्रकार बुध का भी स्पष्ट स्थान जाना जा सकता है। मध्यम बुध का स्थान वही होता है, जो सूर्य का। शीघ्रोच्च का स्थान जानना होता है। और बातें सब उसी प्रकार करनी पड़ती हैं जैसी गुरु के लिए की गयी हैं। उदाहरण देकर पुस्तक का आकार बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

अजादिकेन्द्रे सर्वेषां मान्दे शैघ्रे च कर्मणि।

धनं ग्रहाणां लिप्तादि तुलादावृणमेव च ।।४५।।

अनुवाद—(४५) जब शीघ्र केन्द्र या मन्द केन्द्र ६ राशि से कम हो तो शीघ्रफल या मन्दफल धनात्मक होता है, इसलिए सब कामों में जोड़ा जाता है और जब शीघ्र केन्द्र या मन्द केन्द्र ६ राशि से अधिक होता है तब घटाया जाता है।

विज्ञान भाष्य—अज या मेष पहली राशि का नाम है इसलिए अजादि केन्द्र का अर्थ है पहली राशि से ६ राशि तक का केन्द्र और तुलादि केन्द्र का अर्थ है सातवीं राशि से १२वीं राशि तक का केन्द्र जैसा कि ४०वें श्लोक में कर्कादि और मकरादि के लिए समझाया गया है। जोड़ने और घटाने का कारण ५वें श्लोक के विज्ञान भाष्य में तथा और कई स्थानों में बतलाया गया है (देखो चित्र १५)।

अर्कबाहुफलाभ्यस्ता ग्रहभुक्तिर्विभाजिता।
भचक्रकलिकाभिस्तु लिप्ताः कार्या ग्रहेऽर्कवत् ॥४६॥

अनुवाद—(४६) सूर्य के भुजफल (मंदफल) को ग्रह की दैनिक स्पष्टगति से गुणा करके गुणनफल को १२ राशि की कलाओं से अर्थात् २१६०० कलाओं से भाग देने पर जो आवे उसको ग्रह के स्पष्ट में जोड़ो (यदि सूर्य का मन्दफल धनात्मक हो) और घटाओ (यदि सूर्य का मन्दफल ऋणात्मक हो) ऐसा करने से स्पष्ट अर्द्धरात्रि काल का ग्रह स्पष्ट होगा।

विज्ञान भाष्य—जिस समय मध्यम सूर्य यामोत्तर वृत्त पर आता है उस समय मध्यम मध्यान्ह और जिस समय स्पष्ट सूर्य यामोत्तर वृत्त पर आता है उस समय स्पष्ट मध्यान्ह होता है। इसी प्रकार जिस समय मध्यम सूर्य पाताल में (यामोत्तर वृत्त के उस भाग में जो क्षितिज के नीचे होता है) होता है उस समय मध्यम अर्द्धरात्रि और जिस समय स्पष्ट सूर्य पाताल में होता है उस समय स्पष्ट अर्द्धरात्रि होती है। इससे यह प्रकट है कि स्पष्ट सूर्य मध्यम सूर्य से जितना पहले या पीछे पाताल में आवेगा उतना ही पहले या पीछे स्पष्ट अर्द्धरात्रि होगी। परन्तु स्पष्ट और मध्यम सूर्य के अन्तर को मन्दफल कहते हैं; इसलिए जितने समय में मन्दफल के समान क्रान्तिवृत्त का खंड यामोत्तर उल्लंघन करेगा उतने ही समय आगे या पीछे स्पष्ट अर्द्धरात्रि होगी।

इतने समय में ग्रह जितना चलेगा उतना जान कर मध्यम अर्द्धरात्रि कालिक स्पष्ट ग्रह में जोड़ने या घटाने से स्पष्ट अर्द्धरात्रि कालिक स्पष्ट ग्रह होगा। सूक्ष्म गणना करने के लिए पहले यह जानना चाहिये कि मन्दफल के समान क्रान्तिवृत्त का खंड यामोत्तरवृत्त का उल्लंघन कितनी देर में करेगा परन्तु ऐसा न करने से भी अशुद्धि बहुत कम होती है। इसलिए संक्षेप में इतना ही करना बस है कि जितने समय में पूरा भूचक्र यामोत्तर वृत्त का उल्लंघन करता है उतने समय में ग्रह अपनी दैनिक गति के समान आगे बढ़ता है इसलिए जितने समय में मन्द फल के समान क्रान्तिवृत्त यामोत्तर वृत्त का उल्लंघन करता है उतने समय में ग्रह की गति क्या होगी।

इस सम्बन्ध में कुछ विशेष चर्चा आगे की जायगी जब 'काल समीकरण' पर लिखा जायगा।

मध्ये शीघ्रफलस्यार्धं मान्दमर्धफलं तथा।
मध्यग्रहे पुनर्मान्दं सकलं शैघ्रमेव च ॥४७॥
ग्रहभुक्तेः फलं कार्यं ग्रहवन्मन्दकर्मणि।
कर्क्यादौ तद्धनं तत्र मकरादावृणं स्मृतम् ॥४८॥
दोर्ज्यान्तरगुणा भुक्तिस्तत्वनेत्रोद्धृता पुनः।
स्वमन्दपरिधिक्षुण्णा भगणांशोद्धृता कलाः ॥४९॥

अनुवाद—(४७) चन्द्रमा की मध्यम दैनिक गति से इसके मंदोच्च की दैनिक गति घटा कर आगे (४८ ४९ श्लोकों में) बतलायी जाने वाली क्रिया से चन्द्रमा का मंदगति फल निकाल कर दैनिक मध्यम गति में घटाने या जोड़ने से चन्द्रमा की स्पष्ट दैनिक गति निकलती है। (४८) अन्य ग्रहों की मध्यम दैनिक गति से ही मंदगति फल ग्रह के मंदफल जानने की क्रिया की तरह जानना चाहिए जिसकी रीति यह है—मध्यम दैनिक गति को गत और गम्य भुजज्याओं के अन्तर से गुणा करके गुणनफल को २२५ से भाग दे दो; (४९) लब्धि को मन्द परिधि से गुणा करके भगणांश से (यदि मन्द परिधि अंशों में हो तो ३६० से और यदि कलाओं में हो तो २१६०० से) भाग दे दो, लब्धि कलाओं में होगी। यदि मन्द केन्द्र दूसरे और तीसरे पदों में (कर्कादि पदों में) हो तो जोड़ो और पहले या चौथे पदों में (मकरादि पदों में) हो तो घटाओ। ऐसा करने से सूर्य और चंद्रमा की स्पष्ट दैनिक गति तथा अन्य ग्रहों की मन्द दैनिक गति ज्ञात होती है।

विज्ञान भाष्य—किसी ग्रह की मध्यम दैनिक गति में से उसके मन्दोच्च की दैनिक गति घटा देने से उसके मन्द केन्द्र की दैनिक गति ज्ञात होती है। इसे ही ग्रह की केन्द्र गति कहते हैं। परन्तु चन्द्रमा के सिवा अन्य ग्रहों के मन्दोच्च की गति इतनी कम होती है कि उसके छोड़ देने से कोई अशुद्धि नहीं हो सकती इसलिए अन्य ग्रहों की मध्यम दैनिक गति ही केन्द्र गति समझ ली गयी है, केवल चन्द्रमा के लिए केन्द्र गति जानने का विधान है। जैसे मध्यम ग्रह में मन्द फल का संस्कार देने से मन्द स्पष्ट ग्रह निकलता है वैसे ही मध्यम दैनिक गति में गति के मन्द फल अथवा मन्द गति फल का संस्कार देने से मन्द स्पष्ट गति ज्ञात होती है। सूर्य चन्द्रमा के लिए यही स्पष्ट दैनिक गति हो जाती है। अन्य ग्रहों के लिए अगले ५०—५२ श्लोकों में बतलायी जाने वाली क्रिया भी करनी चाहिए। इस नियम की उत्पत्ति यों है :—

एक दिन में स्पष्ट ग्रह जितना चलता है वही ग्रह की स्पष्ट दैनिक गति है। इसलिए स्पष्ट दैनिक गति जानने के लिए केवल यह जान लेना पर्याप्त है कि किसी

दिन के आरम्भ और अन्त में स्पष्ट ग्रह के स्थान क्या थे; इन्हीं का अन्तर स्पष्ट दैनिक गति है। परन्तु दिन के आरम्भ और अन्त में स्पष्ट ग्रहों के स्थान जानने में बहुत गुणा भाग करना पड़ेगा इसलिए उपर्युक्त सरल क्रिया भी हो सकती है जिसकी उपपत्ति यह है :—

दैनिक स्पष्ट गति

=(दिन के) अन्त का स्पष्ट ग्रह—(दिन के) आरम्भ का स्पष्ट ग्रह

=(अन्त का मध्यम ग्रह±अन्त का मन्द फल)—(आरम्भ का मध्यम ग्रह±आरम्भ का मन्द फल)

=(अन्त का मध्यम ग्रह—आरम्भ का मध्यम ग्रह)±(अन्त का मन्द फल —आरम्भ का मन्द फल)

=मध्यम दैनिक गति±(अन्त का मन्द फल—आरम्भ का मन्द फल) (१)

परन्तु (दिन के) अन्त का मन्द फल

$$=\frac{\text{मन्द परिधि}\times\text{अन्त के केन्द्र की भुजज्या}}{३६०}\text{का धनु [श्लोक ३९]}$$

और (दिन के) आरम्भ का मन्द फल

$$=\frac{\text{मन्द परिधि}\times\text{आरम्भ के केन्द्र की भुजज्या}}{३६०}\text{ का धनु}$$

इसलिए इन दोनों का अन्तर (स्थूल रीति से)

$$=\frac{\text{मन्द परिधि}}{३६०}\left\{\text{अन्त के केन्द्र की भुजज्या} - \text{आरम्भ के केन्द्र की भुजज्या}\right\} \quad (२)$$

परन्तु (दिन के) अन्त के केन्द्र की भुजज्या=(दिन के आरम्भ का केन्द्र+केन्द्र की दैनिक गति) की भुजज्या

$$=\text{दिन के आरम्भ के केन्द्र की भुजज्या} + \frac{\text{गत और गम्य पिंडों की ज्याओं का अन्तर}\times\text{दैनिक केन्द्र गति}}{२२५}$$

[श्लोक ३१-३२]

इसको समीकरण (२) में उत्थापन करने से तथा समान धन और ऋण पदों को छोड़ देने से,

अन्त का मन्द फल — आरम्भ का मन्द फल

$$=\frac{\text{मन्द परिधि}}{३६०}\times\frac{\text{गत और गम्य पिंडों का ज्याओं का अन्तर}\times\text{दैनिक गति}}{२२५} \quad (३)$$

यही समीकरण (३), ४८वें श्लोक के उत्तरार्द्ध और ४९वें श्लोक के पूर्वार्द्ध का रूप है, जिसमें 'गत और गम्य पिंडों की ज्याओं के अन्तर' की जगह संक्षेप में 'दोर्ज्यान्तर' कहा गया है।

समीकरण (३) को समीकरण (१) में उत्थापन करने से

$$\text{दैनिक स्पष्ट गति} = \text{मध्यम दैनिक गति} \pm \frac{\text{मन्द परिधि}}{३६०}$$

$$\times \frac{\text{गत तथा गम्य ज्या पिण्डों का अन्तर} \times \text{मध्यम दैनिक गति}}{२२५} \quad (४)$$

कर्कादि केन्द्र में धन और मकरादि में ऋण करने का कारण यह है कि जब मंद केन्द्र ३ राशि से अधिक और ९ राशि से कम होता है तब स्पष्ट दैनिक गति मध्यम दैनिक गति से अधिक अन्यथा कम होती है। (देखो चित्र २९ और ३०)। मध्यम ग्रह जितने समय में मि से मु अथवा मु से मे तक पहुँचता है उतने समय में स्पष्ट ग्रह सि से सु अथवा सु से 'से' तक पहुँचता है अर्थात् समान काल में स्पष्ट ग्रह मध्यम ग्रह से अधिक जाता है; इसलिए स्पष्ट ग्रह की दैनिक गति भी मध्यम ग्रह की दैनिक गति से अधिक होगी। इत्यादि।

मन्दस्फुटीकृतां भुक्तिं प्रोज्झ्य शीघ्रोच्चभुक्तितः।
तच्छेषं विवरेणाऽथ हन्यात्त्रिज्यान्त्यकर्णयोः ॥५०॥
चलकर्णहृतं भुक्तौ कर्णे त्रिज्याऽधिके धनम्।
ऋणमूनेऽधिकात्प्रोज्झ्यं भुक्तिं वक्रगतिर्भवेत् ॥५१॥

अनुवाद—(५०-५१) मन्द स्पष्ट दैनिक गति को शीघ्रोच्च की दैनिक गति से घटाकर शेष को त्रिज्या और शीघ्र कर्ण के अन्तर से गुणा कर दो, गुणनफल को शीघ्र कर्ण से भाग दे दो, लब्धि को मन्द स्पष्ट गति में जोड़ दो यदि त्रिज्या से कर्ण अधिक हो और यदि कम हो तो घटा दो। यदि लब्धि ऋणात्मक हो और मन्द स्पष्ट गति से अधिक हो तो शेष भी ऋणात्मक होगा। यह दैनिक वक्रगति होगी।

विज्ञान भाष्य—इस नियम को बीजगणित के अनुसार यों लिख सकते हैं :—

$$\text{स्पष्ट दैनिक गति} = \text{मन्द स्पष्ट गति}$$

$$\pm \frac{(\text{शीघ्रोच्च} - \text{मन्द स्पष्ट गति})\ (\text{शीघ्र कर्ण} \backsim \text{त्रिज्या})^{*}}{\text{शीघ्र कर्ण}} \quad (५)$$

*यह चिह्न ∽ अन्तर प्रकट करने का चिह्न है। जिन दो संख्याओं के बीच में यह चिह्न हो उनमें से जो बड़ी हो उसमें से छोटी संख्या को घटाना चाहिये।

उदाहरण—सूर्य और गुरु की स्पष्ट दैनिक गति (१९७९ वि० की वसंत पंचमी की अर्द्धरात्रि को) निकालना।

सूर्य की मध्यम दैनिक गति ५९′८″ है। इसलिए समीकरण (४) के अनुसार [देखो उदा० १] सूर्य की स्पष्ट दैनिक गति

$$=५९'८'' \pm \frac{८३३}{११६००} \times \frac{२१०}{२२५} \times ५९'८''$$

(यहाँ मन्द केन्द्र दूसरे पद में है इसलिए धन चिह्न लेने से)

$$=५९'८'' + \frac{८३३}{२१६००} \times \frac{२१०}{२२५} \times ५९'८''$$

$$=५९'८'' + २'७''.७$$

$$=६१'\ १६''$$ स्वल्पान्तर से

गुरु की मध्यम दैनिक गति

$$=४'५९''$$

गुरु की मन्द स्पष्ट गति

$$=४'\ ५९'' \pm \frac{१९४८}{२१६००} \times \frac{१९१}{२२५} \times ४'\ ५९''$$

यहाँ मंद केन्द्र चौथे पद में है इसलिए ऋण चिह्न लेना चाहिए।

∴ गुरु की मंद स्पष्ट गति

$$=४'५९'' - \frac{१९४८}{२१६००} \times \frac{१९१}{२२५} \times ५'$$

$$=४'५९'' - २५''$$

$$=४'३४''$$

गुरु के शीघ्रोच्च की गति = सूर्य की मध्यम गति = ५९′८″। शीघ्र कर्ण = ३६०८

इसलिए इन सब मानों को समीकरण (५) में उत्थापन करने से और धनात्मक चिह्न लेने से क्योंकि शीघ्रकर्ण त्रिज्या से अधिक है,

गुरु की स्पष्ट गति

$$=४'३४'' + \frac{(५९'८'' - ४'३४'')(३६०८ - ३४३८)}{३६०८}$$

$$=४'३४'' + \frac{५४'३४'' \times १७०}{३६०८}$$

$$=४'३४'' + २'३४''$$

$$=७'८''$$

दूरस्थिताच्च शीघ्रोच्चाद् ग्रहशिथिलरश्मिभिः ।
सव्येतराकृष्टतनुर्भवेद्वक्रगतिस्तदा ।।५२।।
कृतर्त्तुचन्द्रैर्वेदेन्द्रैः शून्यत्र्येकैर्गुणाष्टिभिः ।
शररुद्रैश्चतुर्थांश केन्द्रांशैर्भूसुतादयः ।।५३।।
भवन्ति वक्रिणस्तैस्तैः स्वैस्वैश्चक्राद्विशोधितैः ।
अवशिष्टांशतुल्यैः स्वैः केन्द्रैरुज्झन्ति वक्रताम् ।।५४।।
महत्वाच्छीघ्रपरिधेः सप्तमे भृगुभूसुतौ ।
अष्टमे जीवशशिजौ नवमे तु शनैश्चरः ।।५५।।

अनुवाद—(५२) जब ग्रह अपने शीघ्रोच्च से दूर (तीन राशि से अधिक अंतर पर) हो जाता है तब शीघ्रोच्च जिन रस्सियों से उसको खींचता है वह ढीली पड़ जाती हैं। इस कारण ग्रह विलोम दिशा में खिंच जाता है और गति वक्र हो जाती है अर्थात् उलट जाती है। (५३) जब मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि के अंतिम शीघ्रकेन्द्र (जिससे दूसरा शीघ्रफल निकाला जाता है) क्रम से १६४, १४४, १३०, १६३, और ११५ अंश होते हैं (५४) तब इनकी वक्रगति का आरम्भ होता है और जब शीघ्र केन्द्र क्रम से वह होते हैं जो उपर्युक्त शीघ्र केन्द्रों को ३६०^{0} से घटाने पर आते हैं (अर्थात् १९६ २१६, २३०, १९७ और २४५ अंश) तब वक्र गति का अंत होता है अर्थात् तब ग्रह फिर मार्गी होते हैं। (५५) शीघ्र परिधि के बड़ी होने से शुक्र और मङ्गल की वक्र गति उसी समय रुक जाती है जब शीघ्र केन्द्र सातवीं राशि में होता है, बुध और गुरु की उस समय जब शीघ्र केन्द्र आठवीं राशि में होता है और शनि की उस समय जब शीघ्र केन्द्र ९ वीं राशि में होता है।

विज्ञान भाष्य—ग्रहों की वक्र गति का यथार्थ कारण १२-१३ श्लोकों के विज्ञान भाष्य में विस्तार के साथ बतलाया गया है। यहाँ इतना और बतलाया गया है कि वक्र गति का आरम्भ और अन्त कब होता है और गणित से कैसे जाना जा सकता है। शीघ्र केन्द्र के जो अङ्क ऊपर दिये गये हैं वह मध्यम मान के अनुसार हैं इसलिए यथार्थ में कुछ भिन्नता देख पड़ती है। ५५वें श्लोक में यह बतलाया गया है कि शीघ्र परिधि के विस्तार के अनुसार जब शीघ्र केन्द्र सातवीं, आठवीं या नवीं राशि में होता है तब वक्र गति का अन्त होता है। यह बात चित्र ३० के देखने से स्पष्ट हो जाती है। स्पष्ट ग्रह शीघ्र परिधि पर भ्रमण करते हुए ऐसे दो स्थानों पर पहुँचता है जहाँ शीघ्र कर्ण शीघ्र परिधि को स्पर्श करता है। ऐसी दशा में शीघ्र कर्ण, शीघ्र वृत्त की त्रिज्या और कक्षा वृत्त की त्रिज्या, इन तीन रेखाओं से समकोण त्रिभुज बन जाता है। इस त्रिभुज का वह कोण जो शीघ्र वृत्त के मध्य विन्दु पर बनता है शीघ्र

परिधि की त्रिज्या के अनुसार छोटा बड़ा होता है। इसी तरह वक्र गति के आरम्भ और अन्त के लिए भी शीघ्र केन्द्र का मान घटता बढ़ता है।

यहाँ तक तो भारतीय रीति से ग्रहों के स्पष्ट स्थान जानने की रीति बतलायी गयी। भास्कराचार्य तथा अन्य कई आचार्यों ने एक और रीति भी बतलायी है जिससे ग्रहों का स्पष्ट स्थान ठीक इसी प्रकार निकलता है परन्तु वह विस्तार के भय से नहीं लिखी गयी है। अब संक्षेप में यह बतलाया जायगा कि नवीन पद्धति के अनुसार पाश्चात्य देशों के ज्योतिषी ग्रहों के स्पष्ट स्थान कैसे निकालते हैं।

केपलर के नियम के अनुसार किसी ग्रह का स्पष्ट स्थान जानने के लिए पहले यह देखना पड़ता है कि ग्रह अपने कक्षा-वृत्त में जो दीर्घवृत्त के आकार का होता है और जिसकी नाभि पर सूर्य स्वयम् होता है, कहाँ है। फिर यह जानना पड़ता है कि उस समय वह ग्रह पृथ्वी से कहाँ देख पड़ेगा।

चित्र ३२

मान लो अ ग आ किसी ग्रह का दीर्घवृत्तकार कक्षावृत्त है और र, ग्रह के आकर्षक रवि का स्थान है जो दीर्घवृत्त की नाभि पर है। जिस समय ग्रह सूर्य से निकटतम अंतर पर अर्थात् अ पर हो उसी समय से ग्रह के भगण काल का आरम्भ माना जाय और उस समय से 'द' दिन के अन्तर पर ग्रह ग स्थान पर देख पड़े तो अ र ग कोण ग्रह का मंद केन्द्र कहलाता है जिसे आगे स अक्षर से सूचित किया जायगा।

क को केन्द्र मानकर क अ या क आ त्रिज्या से जो वृत्त खींचा जाता है वह दीर्घवृत्त को अ, आ विन्दुओं पर स्पर्श करता है। ऐसे वृत्त को दीर्घवृत्त का सहायक वृत्त (Auxiliary circle) कहते हैं। यदि ग से दीर्घअक्ष पर ग ब लम्ब गिराया जाय तो यह बढ़ाने पर सहायक वृत्त को गा विन्दु पर काटेगा। यदि गा को सामान्य केन्द्र क से मिलाया जाय तो अ क गा कोण को ग का उत्केन्द्र (eccentric anomaly) कहते हैं। उत्केन्द्र को उ अक्षर से सूचित किया जायगा। स और उ चापीय मानों में नापे जाते हैं। यदि ग्रह की दैनिक मध्यम गति 'भ' चापीय मान में हो तो $\frac{२\pi}{भ}$ दिन ग्रह का भगण काल होगा क्योंकि एक भ चक्र कोणात्मक मान में ३६०° और चापीय मान में २π होता है। यदि ग्रह की दैनिक गति सदैव 'भ' के समान होती तो द दिन पीछे अ से ग्रह का अंतर द$\times$भ होता। द$\times$भ को मध्यम मन्द केन्द्र कहते हैं जिसे आगे 'म' से सूचित किया जायगा। यदि ग्रह का कोणीय वेग स्थिर होता तो मध्यम मन्द केन्द्र ही स्पष्ट केन्द्र भी होता।

दीर्घवृत्त के गुणों के आधार पर मध्यम मन्द केन्द्र और उत्केन्द्र तथा स्पष्ट मन्द केन्द्र और उत्केन्द्र के सम्बन्ध इस प्रकार जाने जा सकते हैं :—

केपलर के दूसरे नियम के अनुसार,

$$\frac{\text{क्षेत्रफल अ र ग}}{\text{दीर्घवृत्त का क्षेत्रफल}} = \frac{\text{द}}{\text{भगण काल}}$$

$$= \frac{\text{द}}{\frac{२\pi}{\text{भ}}}$$

$$= \frac{\text{द} \times \text{भ}}{२\pi}$$

$$\text{परन्तु } \frac{\text{*क्षेत्रफल अ र ग}}{\text{क्षेत्रफल अ र गा}} = \frac{\text{थ}}{\text{त}}$$

$$= \frac{\pi \text{त. थ}}{\pi \text{त. त}}$$

$$= \frac{\text{दीर्घवृत्त का क्षेत्रफल}}{\text{सहायक वृत्त का क्षेत्रफल}}$$

यहाँ त, थ क्रमानुसार दीर्घवृत्त के दीर्घ और लघु अक्ष हैं।

$$\therefore \frac{\text{क्षेत्रफल अ र ग}}{\text{दीर्घवृत्त का क्षेत्रफल}} = \frac{\text{क्षेत्रफल अ र गा*}}{\text{सहायक वृत्त का क्षेत्रफल}}$$

*देखो Askwith's Pure Geometry, pp. 205.; 206.

$$=\frac{\text{क्षेत्रफल अ र गा}}{\pi त^2}$$

परन्तु अ र गा का क्षेत्रफल = क्षेत्रफल अ क गा − क्षेत्रफल र क गा

$$=\frac{त^2}{2}उ-\frac{बगा\times कर}{2}$$

$$=\frac{त.^2 उ}{2}-\frac{त.ज्याउ\times त.च}{2}$$

$$=\frac{त^2}{2}(उ-च\ ज्या\ उ)$$

यहाँ च दीर्घ वृत्त की केन्द्र-च्युति (eccentricity) है।

पहले सिद्ध किया गया है कि

$$\frac{\text{क्षेत्रफल अ र ग}}{\text{दीर्घवृत्त का क्षेत्रफल}}=\frac{द.\ भ}{2\pi}$$

$$\therefore \frac{द.\ भ}{2\pi}=\frac{\frac{त^2}{2}(उ-च\ ज्या\ उ)}{\pi त^2}$$

या $भ.\ द = उ - च\ ज्या\ उ$ (१)

यह समीकरण मध्यम मन्द केन्द्र और उत्केन्द्र का सम्बन्ध प्रकट करता है।

स्पष्ट केन्द्र और उत्केन्द्र का सम्बन्ध स्थापित करना :—

दीर्घवृत्त का ध्रुवीय समीकरण (Polar equation) है,

$रग=\frac{त\ (1-च^2)}{1+च\ कोज्या\ स}$ जहाँ रग, र नाभि से ग ग्रह का अन्तर है। परन्तु दीर्घवृत्त की परिभाषा के अनुसार,

रग = च × नियामक रेखा (directrix) से ग का अन्तर

= च × ब से नियामक रेखा का अन्तर

= च × (केन्द्र से नियामक रेखा का अन्तर − केन्द्र से ब का अन्तर)

$$=च\times\left(\frac{त}{च}-बक\right)$$

$$=च\times\left(\frac{त}{च}-त\ कोज्या\ उ\right)$$

$$=त-च\times त\ कोज्या\ उ$$

$\therefore$ कर्ण $=$ त (१ − च कोज्या उ) (२)

$$\therefore \frac{त\,(१ - च^{२})}{१ + च\ कोज्या\ स} = त\,(१ - च\ कोज्या\ उ)$$

अर्थात् $$\frac{१ - च^{२}}{१ + च\ कोज्या\ स} = १ - च\ कोज्या\ उ$$

वा $$१ + च\ कोज्या\ स = \frac{१ - च^{२}}{१ - च\ कोज्या\ उ}$$

वा $$च\ कोज्या\ स = \frac{१ - च^{२}}{१ - च\ कोज्या\ उ} - १$$

$$= \frac{च\,(कोज्या\ उ - च)}{१ - च\ कोज्या\ उ}$$

$$\therefore कोज्या\ स = \frac{कोज्या\ उ - च}{१ - च\ कोज्या\ उ}$$

$$\therefore १ - कोज्या\ स = १ - \frac{कोज्या\ उ - च}{१ - च\ कोज्या\ उ}$$

$$= \frac{१ - च\ कोज्या\ उ + कोज्या\ उ + च}{१ - च\ कोज्या\ उ}$$

और $$१ + कोज्या\ स = \frac{१ - च\ कोज्या\ उ + कोज्या\ उ - च}{१ - च\ कोज्या\ उ}$$

$$\therefore \frac{१ - कोज्या\ स}{१ + कोज्या\ स} = \frac{१ - च\ कोज्या\ उ - कोज्या\ उ + च}{१ - च\ कोज्या\ उ + कोज्या\ उ - च}$$

$$= \frac{(१ - कोज्या\ उ)\,(१ + च)}{(१ + कोज्या\ उ)\,(१ - च)}$$

$$= \frac{१ + च}{१ - च} \times \frac{१ - कोज्या\ उ}{१ + कोज्या\ उ}$$

$$\therefore {}^{*}स्परे^{२}\frac{स}{२} = \frac{१ + च}{१ - च} \times स्परे^{२}\,\frac{उ}{२}$$

अथवा $$स्परे\ \frac{स}{२} = \sqrt{\frac{१ + च}{१ - च}} \times स्परे\ \frac{उ}{२} \qquad (३)$$

यह समीकरण स्पष्ट मंद केन्द्र और उत्केन्द्र के सम्बन्ध प्रकट करता है।

---

* किसी कोण की ज्या को उसकी कोटिज्या से भाग देने पर जो कुछ आता है वह उस कोण की स्पर्श रेखा कहलाता है। संक्षेप में किसी कोण म की स्पर्श रेखा को स्परे म लिखते हैं।

समीकरण (१), (२) और (३) से उ के किसी मान को जान कर स्पष्ट मन्द केन्द्र, मन्द कर्ण और द के मान जान सकते हैं। परन्तु व्यवहार में इससे सरलता नहीं होती। यदि मध्यम मन्द केन्द्र का मान जान कर स्पष्ट मन्द केन्द्र और कर्ण का मान जाना जा सके तो अधिक उपयोगी होता है। इसके लिए समीकरण (३) को त्रिकोणमिति की रीति से फैलाना पड़ता है जो यों किया जाता है :—

लोनी की त्रिकोणमिति भाग २ अथवा टाडहंटर की त्रिकोणमिति या म. म. सुधाकर द्विवेदी के चलन कलन पृष्ट ४२ से यह स्पष्ट है कि

$$\text{स्परे}\frac{\text{स}}{\text{२}} = \frac{\text{इ}^{\frac{\text{स}}{\text{२}}\sqrt{-\text{१}}} - \text{इ}^{-\frac{\text{स}}{\text{२}}\sqrt{-\text{१}}}}{\text{इ}^{\frac{\text{स}}{\text{२}}\sqrt{-\text{१}}} + \text{इ}^{-\frac{\text{स}}{\text{२}}\sqrt{-\text{१}}}} \times \frac{\text{१}}{\sqrt{-\text{१}}},$$

यहाँ इ नेपिएरियन लघुरिक्त का आधार है, जिसका मान बीजगणित के अनुसार है

$\text{१}+\text{१}+\frac{\text{१}}{|\underline{\text{२}}}+\frac{\text{१}}{|\underline{\text{३}}}+\frac{\text{१}}{|\underline{\text{४}}}+\cdots$इत्यादि जब कि $|\underline{\text{४}}$ का अर्थ है $\text{४}\times\text{३}\times\text{२}\times\text{१}$, $|\underline{\text{३}}$ का अर्थ है $\text{३}\times\text{२}\times\text{१}$, $|\underline{\text{११}}$ का अर्थ है $\text{११}\times\text{१०}\times\text{९}\times\ldots\text{२}\times\text{१}$।

$$\text{इसी प्रकार स्परे}\frac{\text{उ}}{\text{२}} = \frac{\text{इ}^{\frac{\text{उ}}{\text{२}}\sqrt{-\text{१}}} - \text{इ}^{-\frac{\text{उ}}{\text{२}}\sqrt{-\text{१}}}}{\text{इ}^{\frac{\text{उ}}{\text{२}}\sqrt{-\text{१}}} + \text{इ}^{-\frac{\text{उ}}{\text{२}}\sqrt{-\text{१}}}} \times \frac{\text{१}}{\sqrt{-\text{१}}}$$

∴ समीकरण (३) का रूप होगा,

$$\frac{\text{इ}^{\frac{\text{स}}{\text{२}}\sqrt{-\text{१}}} - \text{इ}^{\frac{-\text{स}}{\text{२}}\sqrt{-\text{१}}}}{\text{इ}^{\frac{\text{स}}{\text{२}}\sqrt{-\text{१}}} + \text{इ}^{\frac{-\text{स}}{\text{२}}\sqrt{-\text{१}}}} = \sqrt{\frac{\text{१}+\text{च}}{\text{१}-\text{च}}} \times \frac{\text{इ}^{\frac{\text{उ}}{\text{२}}\sqrt{-\text{१}}} - \text{इ}^{-\frac{\text{उ}}{\text{२}}\sqrt{-\text{१}}}}{\text{इ}^{\frac{\text{उ}}{\text{२}}\sqrt{-\text{१}}} + \text{इ}^{-\frac{\text{उ}}{\text{२}}\sqrt{-\text{१}}}}$$

अथवा

$$\frac{इ^{स\sqrt{-१}} - १}{इ^{स\sqrt{-१}} + १} = \sqrt{\frac{१+च}{१-च}} \times \frac{इ^{उ\sqrt{-१}} - १}{इ^{उ\sqrt{-१}} + १} \qquad (क)$$

समीकरण (क) के प्रत्येक पक्ष में १ जोड़ा जाय तो

$$\frac{२इ^{स\sqrt{-१}}}{इ^{स\sqrt{-१}}+१} = \frac{\sqrt{१+च}\left(इ^{उ\sqrt{-१}}-१\right)+\sqrt{१-च}\left(इ^{उ\sqrt{-१}}+१\right)}{\sqrt{१-च}\left(इ^{उ\sqrt{-१}}+१\right)} \qquad (ख)$$

और यदि समीकरण (क) का प्रत्येक पक्ष १ में से घटाया जाय तो

$$\frac{२}{इ^{स\sqrt{-१}}+१} = \frac{\sqrt{१-च}(इ^{उ\sqrt{-१}}+१)-\sqrt{१+च}(इ^{उ\sqrt{-१}}-१)}{\sqrt{१-च}(इ^{उ\sqrt{-१}}+१)} \qquad (ग)$$

समीकरण (ख) के बायें पक्ष को समीकरण (ग) के बायें पक्ष से तथा (ख) के दाहने पक्ष को (ग) के दाहिने पक्ष से भाग देने से

$$इ^{स\sqrt{-१}} = \frac{\sqrt{१+च}(इ^{उ\sqrt{-१}}-१)+\sqrt{१-च}(इ^{उ\sqrt{-१}}+१)}{\sqrt{१-च}(इ^{उ\sqrt{-१}}+१)-\sqrt{१+च}(इ^{उ\sqrt{-१}}-१)}$$

$$= \frac{इ^{उ\sqrt{-१}}(\sqrt{१-च}+\sqrt{१+च})+\sqrt{१-च}-\sqrt{१+च}}{-इ^{उ\sqrt{-१}}(\sqrt{१+च}-\sqrt{१-च})+\sqrt{१-च}+\sqrt{१+च}}$$

$$= \frac{इ^{उ\sqrt{-१}} - \dfrac{\sqrt{१+च}-\sqrt{१-च}}{\sqrt{१+च}+\sqrt{१-च}}}{१ - इ^{उ\sqrt{-१}} \times \dfrac{\sqrt{१+च}-\sqrt{१-च}}{\sqrt{१+च}+\sqrt{१-च}}}$$

यदि $\frac{\sqrt{१+च}-\sqrt{१-च}}{\sqrt{१+च}+\sqrt{१-च}}$ के स्थान पर प रखा जाय

तो इस समीकरण का रूप होगा

$$इ^{स\sqrt{-१}}=\frac{इ^{उ\sqrt{-१}}-प}{१-इ^{उ\sqrt{-१}}\times प}$$

$$१-\frac{प}{\quad}$$

$$=\frac{इ^{उ\sqrt{-१}}}{१-प\times इ^{उ\sqrt{-१}}}\times इ^{उ\sqrt{-१}}$$

$$=इ^{उ\sqrt{-१}}\times\frac{१-पइ^{-उ\sqrt{-१}}}{१-पइ^{उ\sqrt{-१}}}$$

प्रत्येक पक्ष का लघुरिक्थ (logarithm) लेने से,

$$लरि\ इ^{स\sqrt{-१}}=लरि\ इ^{उ\sqrt{-१}}+ लरि\left(१-प\,इ^{-उ\sqrt{-१}}\right)-लरि\left(१-प\,इ^{उ\sqrt{-१}}\right) \qquad (घ)$$

परन्तु $लरि\left(१-प\,इ^{उ\sqrt{-१}}\right)=-प\,इ^{उ\sqrt{-१}}-\frac{\left(प\,इ^{उ\sqrt{-१}}\right)^{२}}{२}-\frac{\left(प\,इ^{उ\sqrt{-१}}\right)^{३}}{३}-\frac{\left(प\,इ^{उ\sqrt{-१}}\right)^{४}}{४}-\cdots\cdots$

और $लरि\left(१-प\,इ^{-उ\sqrt{-१}}\right)=-प\,इ^{-उ\sqrt{-१}}-\frac{\left(प\,इ^{-उ\sqrt{-१}}\right)^{२}}{२}-\frac{\left(प\,इ^{-उ\sqrt{-१}}\right)^{३}}{३}-\cdots\cdots\cdots$

पहले को दूसरे में से घटाने पर,

$$प\left(इ^{उ\sqrt{-१}}-इ^{-उ\sqrt{-१}}\right)+\frac{प^{२}}{२}\times\left(इ^{२\sqrt{-१}\,उ}-इ^{-२\sqrt{-१}\,उ}\right)+\frac{प^{३}}{३}$$

$$\left(\text{इ}^{\text{३}\sqrt{-\text{१}}\,\text{उ}} - \text{इ}^{-\text{३}\sqrt{-\text{१}}\,\text{उ}}\right) + \cdots\cdots$$

∴ समीकरण (घ) का रूप होगा,

$$\text{स}\sqrt{-\text{१}} = \text{उ}\sqrt{-\text{१}} + \text{प}\left(\text{इ}^{\text{उ}\sqrt{-\text{१}}} - \text{इ}^{-\text{उ}\sqrt{-\text{१}}}\right)$$

$$+ \frac{\text{प}^{\text{२}}}{\text{२}}\left(\text{इ}^{\text{२}\sqrt{-\text{१}}\,\text{उ}} - \text{इ}^{-\text{२}\sqrt{-\text{१}}\,\text{उ}}\right)$$

$$+ \frac{\text{प}^{\text{३}}}{\text{३}}\left(\text{इ}^{\text{३}\sqrt{-\text{१}}\,\text{उ}} - \text{इ}^{-\text{३}\sqrt{-\text{१}}\,\text{उ}}\right) + \cdots\cdots$$

$$\text{अथवा स} = \text{उ} + \text{प} \times \frac{\text{इ}^{\text{उ}\sqrt{-\text{१}}} - \text{इ}^{-\text{उ}\sqrt{-\text{१}}}}{\sqrt{-\text{१}}}$$

$$+ \frac{\text{प}^{\text{२}}}{\text{२}} \times \frac{\text{इ}^{\text{२उ}\sqrt{-\text{१}}} - \text{इ}^{-\text{२उ}\sqrt{-\text{१}}}}{\sqrt{-\text{१}}}$$

$$+ \frac{\text{प}^{\text{३}}}{\text{३}} \times \frac{\text{इ}^{\text{३उ}\sqrt{\text{१}}} - \text{इ}^{-\text{३उ}\sqrt{-\text{१}}}}{\sqrt{-\text{१}}} + \cdots\cdots$$

$$\text{परन्तु} \quad \frac{\text{इ}^{\text{३}\sqrt{-\text{१}}} - \text{इ}^{-\text{उ}\sqrt{-\text{१}}}}{\text{२}\sqrt{-\text{१}}} = \text{ज्या उ},$$

$$\frac{\text{इ}^{\text{२उ}\sqrt{-\text{१}}} - \text{इ}^{-\text{२ उ}\sqrt{-\text{१}}}}{\text{२}\sqrt{-\text{१}}} = \text{ज्या २ उ, इत्यादि}$$

$$\text{इसलिये स} = \text{उ} + \text{प} \times \text{२ज्याउ} + \frac{\text{प}^{\text{२}}}{\text{२}} \times \text{२ ज्या उ २ उ}$$

$$+ \frac{\text{प}^{\text{३}}}{\text{३}} \times \text{२ज्या३उ} + \cdots\cdots$$

$$\text{अथवा स} = \text{उ} + \text{२}\left(\text{पज्याउ} + \frac{\text{प}^{\text{२}}}{\text{२}}\text{ज्या २उ} + \frac{\text{प}^{\text{३}}}{\text{६}}\text{ज्या३उ}\right.$$

$$\left. + \frac{\text{प}^{\text{४}}}{\text{४}}\text{ज्या४उ} + \cdots\cdots \right) \quad \text{(च)}$$

यदि समीकरण (च) में उ, ज्या उ, ज्या २ उ, इत्यादि के स्थान पर इनके मान ऐसे रखे जायँ जिनमें उ न रहे वरन भ, द रहे जो समीकरण (१) से सम्भव है तो ऐसा समीकरण मिल जायगा जिसमें केवल स, भ और द रहेंगे और जो व्यवहार के लिए बहुत ही उपयोगी होगा। परन्तु उ, ज्या उ, ज्या २ उ इत्यादि के मान भ और द में रूप में तभी ज्ञात हो सकते हैं जब लैग्रेंज के सिद्धान्त (Lagrange's Theorem) के अनुसार उ, ज्या उ, ज्या २ उ इत्यादि का विस्तार किया जाय। इसलिए संक्षेप में पहले यह बतलाना चाहिये कि लैग्रेंज का सिद्धान्त क्या है। यह सिद्धान्त म० म० सुधाकर द्विवेदी के चलन कलन पृष्ठ १०७, ११० में तथा विलियमसन के 'डिफ़रेंशल कैलकुलस' पृष्ठ १५१—१५३ में दिया हुआ है। इस सिद्धान्त का रूप यह है :—

यदि र=ह+य. फ (र) ऐसा समीकरण हो जिसमें ह और य स्वतंत्र राशि हों और फ (र) ऐसा फलन (function) हों जो र के मान पर आश्रित हो तो र का कोई अन्य फलन

$$\begin{aligned}\text{फि}(\text{र}) = {} & \text{फि}(\text{ह}) + \text{य}.\,\text{फ}(\text{ह}).\,\text{फि}'(\text{ह}) \\ & + \frac{\text{य}^{2}}{\underline{|2}}\cdot\frac{\text{ता}}{\text{ताह}}\left\{[\text{फ}(\text{ह})]^{2}\,\text{फि}'(\text{ह})\right\} \\ & + \frac{\text{य}^{3}}{\underline{|3}}\cdot\frac{\text{ता}^{2}}{\text{ता ह}^{2}}\left\{[\text{फ}(\text{ह})]^{3}\,\text{फि}'(\text{ह})\right\} + \cdots\cdots \\ & + \frac{\text{य}^{\text{न}}}{\underline{|\text{न}}}\cdot\frac{\text{ता}^{\text{न}-1}}{\text{ता}(\text{ह})^{\text{न}-1}}\left\{[\text{फ}(\text{ह})]^{\text{न}}\,\text{फि}'(\text{ह})\right\} + \cdots\end{aligned}$$

यहाँ फि′ (ह), फि (ह) का पहला तात्कालिक सम्बन्ध $\frac{dy}{dx}$ है, तथा $\frac{\text{ता}}{\text{ताह}}$, $\frac{\text{ता}^2}{\text{ताह}^2}$, $\frac{\text{ता}^3}{\text{ताह}^3}$ इत्यादि आगे कोष्ठों में लिखे हुए पदों के पहले, दूसरे, तीसरे तात्कालिक सम्बन्ध हैं।

समीकरण (१) का रूप है,

भ.द=उ−च ज्या उ

वा उ=भ.द+च ज्या उ

=म+च ज्या उ, जहाँ म=भद।

जो उसी रूप में है जिस रूप में

र=ह+य. फ (र)

जहाँ र, ह और य क्रमानुसार उ, म और च के समान हैं।

यदि फि (उ)=उ तो फि (म)=म और फि′ (म)=१

$$\therefore उ = म + च.\, ज्याम.\, १ + \frac{च^{२}}{|\underline{२}} \frac{ता}{ताम}\left\{ [ज्याम]^{२}.१ \right\}$$

$$+ \frac{च^{३}}{|\underline{३}} \cdot \frac{ता^{२}}{ताम^{२}}\left\{ (ज्याम)^{३} \right\} + \frac{च^{४}}{|\underline{४}} \cdot \frac{ता^{३}}{ताम^{३}}\left\{ [ज्याम]^{४}.\, १ \right\}$$

$$+ \frac{च^{५}}{|\underline{५}} \cdot \frac{ता^{४}}{ताप^{४}}\left\{ [ज्याम]^{५}.१ \right\} + \frac{च^{६}}{|\underline{६}} \cdot \frac{ता^{५}}{ताम^{५}}\left\{ [ज्याम]^{६}.१ \right\} + \ldots \text{ इत्यादि}$$

लोनी की त्रिकोणमिति भाग २ के अनुसार ज्या म के किसी घात $(ज्या\, म)^{न}$ का विस्तार यदि न सम है तो यह होगा :—

$$ज्या^{न} म = \frac{१}{२^{न-१} \times (-१)^{\frac{न}{२}}} \left\{ कोज्या\, नम - नकोज्या\, (न-२)म \right.$$

$$+ \frac{न(न-१)}{|\underline{२}} कोज्या\, (न-४)\, म - \frac{न(न-१)\,(न-२)}{|\underline{३}} कोज्या\, (न-६)म$$

$$\left. + \ldots\ldots \text{इत्यादि} \right\}$$

यदि न विषम हो तो,

$$ज्या^{न} म = \frac{१}{२^{न-१}\, (-१)^{\frac{न-१}{२}}} \left\{ ज्यानम - नज्या\, (न-२)म \right.$$

$$+ \frac{न\,(न-१)}{|\underline{२}}\, ज्या\,(न-४)\, म - \frac{न\,(न-१)\,(न-२)}{|\underline{३}}$$

$$\left. ज्या\, (न-६)\, म + \ldots\ldots\ldots \text{इत्यादि} \right\}$$

$$\therefore \frac{ता}{ताम}\left\{ [ज्या\, म]^{२} \right\} = \frac{ता}{ताम}\left(\frac{१ - कोज्या२म}{२} \right) = ज्या२म,$$

$$\frac{ता^{२}}{ताम^{२}}\left(ज्या^{३}म \right) = \frac{ता^{२}}{ताम^{२}}\left(\frac{३ज्याम - ज्या३म}{४} \right)$$

$$= \frac{९ज्या३म - ३ज्याम}{४}$$

$$= \frac{३}{४}(३ज्या३म - ज्याम)$$

$$\frac{ता^3}{ताम^3}(ज्या^4 म) =$$

$$\frac{ता^3}{ताम^3}\left\{\frac{१}{२^3(-१)^२}\right.$$

$$\left.\times\ (कोज्या४म - ४कोज्या२म + \frac{२\times ३}{\lfloor २} \times १\right\}$$

$$= \frac{१}{८}(४^३ज्या४म - ४\times २^३ज्या२म)$$

$$= ४(२ज्या४म - ज्या२म)$$

$$\frac{ता^४}{ताम^४}(ज्या^५ ५) = \frac{ता^४}{ताम^४}\left\{\frac{१}{२^४(-१)^२}\right.$$

$$\left.\times (ज्या५म - ५ज्या३म + \frac{५\times ४}{\lfloor २}ज्याम)\right\}$$

$$= \frac{१}{२^४}(५^४ज्याम५म - ५\times ३^४ज्या३म + १०ज्याम)$$

$$\frac{ता^५}{ताम^५}(ज्या^६ ५) = \frac{ता^५}{ताम^५}\left\{\frac{१}{२^५(-१)^३}(कोज्या\ ६\ म\right.$$

$$\left. - ६\ कोज्या\ ४म + \frac{६\times ५}{\lfloor २}कोज्या\ २\ म\ - \frac{६\times ५\times ४}{\lfloor ३}\times \frac{१}{२})\right\}$$

$$= \frac{१}{२^५}(६^५\ ज्या\ ६म - ६\times ४^५\ ज्या\ ४\ म + १५\times २^५\ ज्या\ २\ म)$$

$$\therefore उ = म + चज्याम\ +\ \frac{च^२}{२}ज्या\ २\ म + \frac{च^३}{\lfloor ३}\times \frac{३}{४}(३\ ज्या३म - ज्याम$$

$$+ \frac{च^४}{\lfloor ४}\times ४(२\ ज्या\ ४\ म - ज्या\ २\ म)\ + \frac{च^५}{\lfloor ५}\times \frac{१}{२^४}$$

$$\times (५^४\ ज्या\ ५\ म - ५\times ३^४\ ज्या\ ३\ म + १०\ ज्या\ म)$$

$$+ \frac{च^६}{\lfloor ६}\times \frac{१}{२^५}(६^५\ ज्या\ ६\ म - ६\times ४^५\ ज्या\ ४\ म +$$

$$१५\times २^५\ ज्या\ २\ म) + \dots\dots\dots$$

यदि ज्या म, ज्या २ म इत्यादि अलग करके एकत्र कर दिये जायँ तो

$$उ = म + (च - \frac{१}{८}च^३ + \frac{१}{१९२}च^५)ज्या\ म\ + \left(\frac{च^२}{२} - \frac{च^४}{६} + \frac{च^६}{४८}\right)$$

$$ज्या\ २म + \left(\frac{३च^३}{८} - \frac{२७च^५}{१२८}\right)ज्या\ ३\ म$$

$$+\left(\frac{\text{च}^{४}}{३}-\frac{४\text{च}^{६}}{१५}\right)\text{ज्या ४ म}+\frac{१२५\text{च}^{५}}{३८४}\text{ज्या ५ म}+\ldots\ldots$$

इस समीकरण में ज्या ६ म तथा इसके आगे की ज्याओं के गुणक और वे पद जिनमें च के छठें घात के आगे की संख्या वर्तमान है छोड़ दिये गये क्योंकि इनके मान नहीं के समान हैं।

समीकरण (१) को इस प्रकार भी लिख सकते हैं :—

$$\text{च ज्या उ} = \text{उ} - \text{म}$$

$$\text{तब}\quad \text{ज्या उ} = \frac{\text{उ}-\text{म}}{\text{च}}$$

जिसका यह अर्थ हुआ कि यदि उ के विस्तार में से म घटाया जाय और शेष को च से भाग दे दिया जाय तो ज्या उ का विस्तार हो जायगा। इसलिए

$$\text{ज्या उ}=\left(१-\frac{१}{८}\text{च}^{२}+\frac{१}{१९२}\text{च}^{४}\right)\text{ज्या म}$$
$$+\left(\frac{\text{च}}{२}-\frac{\text{च}^{३}}{६}+\frac{\text{च}^{५}}{४८}\right)\text{ज्या २ म}$$
$$+\left(\frac{३}{८}\text{च}^{२}-\frac{२७}{१२८}\text{च}^{४}\right)\text{ज्या ३ म}$$
$$+\left(\frac{\text{च}^{3}}{३}-\frac{४}{१५}\text{च}^{५}\right)\text{ज्या ४ म}+\frac{१२५}{३८४}\text{च}^{४}\text{ ज्या ५ म}+\ldots$$

यदि फि (उ)=ज्या २ उ तो फि (म)=ज्या२म और फि′(म)= २ कोज्या २ म,

इसलिए लैग्रेंज के सिद्धान्त के अनुसार

$$\text{ज्या २ उ}=\text{ज्या २ म}+\text{च ज्या म}\times\text{२ कोज्या २ म}$$
$$+\frac{\text{च}^{२}}{|\underline{२}}\,\frac{\text{ता}}{\text{ताम}}\left(\text{ज्या}^{२}\text{ म}\times\text{२ कोज्या२म}\right)$$
$$+\frac{\text{च}^{3}}{|\underline{३}}\,\frac{\text{ता}^{२}}{\text{ताम}^{२}}\left(\text{ज्या}^{3}\text{ म}\times\text{२ कोज्या २ म}\right)$$
$$+\frac{\text{च}^{४}}{|\underline{४}}\,\frac{\text{ता}^{3}}{\text{ताम}^{3}}\left(\text{ज्या}^{४}\text{ म}\times\text{२ कोज्या २ म}\right)$$
$$+\frac{\text{च}^{५}}{|\underline{५}}\,\frac{\text{ता}^{४}}{\text{ताम}^{४}}\left(\text{ज्या}^{५}\text{ म}\times\text{२ कोज्या २ म}\right)+\ldots$$

जिसमें ज्या म × २ कोज्या २ म = ज्या ३ म — ज्या म,

$$\frac{\text{ता}}{\text{ताम}}\left(\text{ज्या}^{२}\ \text{म} \times २\ \text{कोज्या}\ २\ \text{म}\right)$$

$$=\frac{\text{ता}}{\text{ताम}}\left(\frac{१-\text{कोज्या}\ २\ \text{म}}{२} \times २\ \text{कोज्या}\ २\ \text{म}\right)$$

$$=\frac{\text{ता}}{\text{ताम}}\left(\text{कोज्या}\ २\ \text{म} - \text{कोज्या}^{२}\ २\ \text{म}\right)$$

$$=\frac{\text{ता}}{\text{ताम}}\left(\text{कोज्या}\ २\ \text{म} - \frac{१+\text{कोज्या}\ ४\ \text{म}}{२}\right)$$

$$=२\ \text{ज्या}\ ४\ \text{म} - २\ \text{ज्या}\ २\ \text{म},$$

$$\frac{\text{ता}^{२}}{\text{ताम}^{२}}\left(\text{ज्या}^{३}\ \text{म} \times २\ \text{कोज्या}\ २\ \text{म}\right)$$

$$=\frac{\text{ता}^{२}}{\text{ताम}^{२}}\left(\frac{३\ \text{ज्या}\ \text{म} - \text{ज्या}\ ३\ \text{म}}{४} \times २\ \text{कोज्या}\ २\text{म}\right)$$

$$=\frac{\text{ता}^{२}}{\text{ताम}^{२}}\left(\frac{३\ \text{ज्या}\ \text{म}\ \ \text{कोज्या}\ २\ \text{म} - \text{ज्या}\ ३\text{म}\ \ \text{कोज्या}\ \ २\text{म}}{२}\right)$$

$$=\frac{\text{ता}^{२}}{\text{ताम}^{२}}\left\{\tfrac{३}{४}\left(\text{ज्या}\ ३\ \text{म} - \text{ज्या}\ \text{म}\right) - \tfrac{१}{४}\left(\text{ज्या}\ ५\ \text{म} + \text{ज्या}\ \text{म}\right)\right\}$$

$$=\frac{\text{ता}^{२}}{\text{ताम}^{२}}\left\{\tfrac{१}{४}\left(३\ \text{ज्या}\ ३\ \text{म} - ४\ \text{ज्या}\ \text{म} - \text{ज्या}\ ५\ \text{म}\right)\right\}$$

$$=\tfrac{१}{४}\left(-३^{२}\ \text{ज्या}\ ३\ \text{म} + ४\ \text{ज्या}\ \text{म} + ५^{२}\ \text{ज्या}\ ५\ \text{म}\right),$$

$$\frac{\text{ता}^{3}}{\text{ताम}^{3}}\left(\text{ज्या}^{४}\ \text{म} \times २\ \text{कोज्या}\ २\ \text{म}\right)$$

$$=\frac{\text{ता}^{3}}{\text{ताम}^{3}}\left\{\tfrac{१}{८}\left(\text{कोज्या}\ ४\ \text{म} - ४\ \text{कोज्या}\ २\ \text{म} + ३\right)२\ \text{कोज्या}\ २\ \text{म}\right\}$$

$$=\frac{\text{ता}^{3}}{\text{ताम}^{3}}\left\{\tfrac{१}{८}\left(२\ \text{कोज्या}\ ४\ \text{म}\ \text{कोज्या}\ २\ \text{म} - ४.२\ \text{कोज्या}^{२}\ २\ \text{म} + ६\ \text{कोज्या}\ २\ \text{म}\right)\right\}$$

$$=\frac{\text{ता}^{3}}{\text{ताम}^{3}}\left\{\tfrac{१}{८}\left(\text{कोज्या}\ ६\ \text{म} + \text{कोज्या}\ २\ \text{म}\right) - \tfrac{४}{८}\left(१+\text{कोज्या}\ ४\ \text{म}\right) + \tfrac{६}{८}\ \text{कोज्या}\ २\ \text{म}\right\}$$

$$=\frac{\text{ता}^{3}}{\text{ताम}^{3}}\left\{\tfrac{१}{८}\left(\text{कोज्या}\ ६\ \text{म} - ४\ \text{कोज्या}\ ४\ \text{म} + ७\ \text{कोज्या}\ २\ \text{म} - ४\right)\right\}$$

$$=\frac{१}{८}\left(६^{3}\ ज्या\ ६\ म-४^{४}\ ज्या\ ४\ म+७\times २^{3}\ ज्या\ २म\right)$$

$$\therefore\ ज्या\ २\ उ=ज्या\ २म+च(ज्या३म-ज्याम)$$

$$+\frac{च^{२}}{२}\left(२\ ज्या\ ४\ म-२\ ज्या\ २\ म\right)$$

$$+\frac{च^{३}}{\lfloor३}\times\frac{१}{४}\left(२५\ ज्या\ ५\ म-२७\ ज्या\ ३म+४\ ज्याम\right)$$

$$+\frac{च^{४}}{\lfloor४}\times\frac{१}{८}(२१६\ ज्या\ ६\ म-२५६\ ज्या\ ४\ म$$

$$+५६\ ज्या\ २\ म)+\ldots\ldots\ldots$$

$$=\left(-च+\frac{च^{3}}{६}\right)ज्या\ म+\left(१-च^{२}+\frac{७च^{४}}{२४}\right)ज्या\ २\ म$$

$$+\left(च-\frac{९च^{3}}{८}\right)ज्या\ ३\ म+\left(च^{२}-\frac{४च^{४}}{३}\right)ज्या\ ४\ म$$

$$+\frac{२५\ च^{3}}{२४}ज्या\ ५\ म+\ldots\ldots$$

यदि फि (उ)=ज्या३ उ तो फि (म)=ज्या ३ म और फि′(म)=३ कोज्या ३ म, इसलिए लैग्रेंज के सिद्धान्त के अनुसार,

$$ज्या\ ३\ उ=ज्या\ ३\ म+च\ ज्या\ म\times ३\ कोज्या\ ३\ म$$

$$+\frac{च^{२}}{\lfloor२}\ \frac{ता}{ताम}\left\{ज्या^{२}\ म\times ३\ कोज्या\ ३\ म\right\}$$

$$+\frac{च^{3}}{\lfloor३}\ \frac{ता^{२}}{ताम^{२}}\left\{ज्या^{3}\ म\times ३\ कोज्या\ ३\ म\right\}+\ldots\ldots$$

$$=ज्या\ ३\ म+\frac{३}{२}च\left(ज्या\ ४\ म-ज्या\ २\ म\right)+\frac{च^{२}}{२}\times\frac{३}{४}$$

$$\left(५\ ज्या\ ५\ म-६\ ज्या\ ३\ म+ज्या\ म\right)$$

$$+\frac{च^{3}}{६}\times\frac{३}{८}\left(३६\ ज्या\ ६\ म-४८\ ज्या\ ४\ म+१२\ ज्या\ २\ म\right)+\ldots$$

$$=\frac{३च^{२}}{८}ज्या\ म-\left(\frac{३च}{२}-\frac{३च^{3}}{४}\right)ज्या\ २\ म$$

$$+\left(१-\frac{९च^{२}}{४}\right)ज्या\ ३\ म$$

$$+\left(\frac{३च}{२} - ३च^{३}\right) ज्या\ ४\ म + \frac{१५च^{२}}{८} ज्या\ ५\ म$$
$$+\frac{६च^{३}}{४} ज्या\ ६\ म + \ldots\ldots$$

इसी तरह, $ज्या\ ४\ उ = ज्या\ ४\ म + च\ ज्या\ म \times ४\ कोज्या\ ४\ म$

$$+\frac{च^{२}}{२}\frac{ता}{ताम}\{ज्या^{२}\ म \times ४\ कोज्या\ ४\ म\}$$

$$= ज्या\ ४\ म + २\ च\ (ज्या\ ५\ म - ज्या\ ३\ म)$$

$$+\frac{च^{२}}{२}\ (६\ ज्या\ म\ ६\ म - ८\ ज्या\ ४\ म + २\ ज्या\ २\ म)$$

$$= च^{२}\ ज्या\ २\ म - २\ च\ ज्या\ ३\ म$$

$$+(१ - ४च^{२})\ ज्या\ ४\ म + २\ च\ ज्या\ ५\ म + \ldots\ldots$$

और $ज्या\ ५\ उ = ज्या\ ५\ म + \frac{५}{२}\ च\ (ज्या\ ६\ म - ज्या\ ४\ म) + \ldots\ldots$

$$= -\frac{५च}{२}\ ज्या\ ४\ म + ज्या\ ५म + \frac{५च}{२}\ ज्या\ ६\ म + \ldots$$

इस प्रकार समीकरण (च) के उ, ज्या उ, ज्या २ उ इत्यादि के मान तो आ गये परन्तु इसके प, $प^{२}$, $प^{३}$ इत्यादि के मान जानना रह गये। यहाँ प

$\frac{\sqrt{१+च} - \sqrt{१-च}}{\sqrt{१+च} + \sqrt{१-च}}$ के लिए रखा गया है।

इसके किसी घात का विस्तार लैग्रेंज के सिद्धान्त के अनुसार जाना जा सकता है। परन्तु पांच छः घात तक के विस्तार जिनमें $च^{७}$ से अधिक अंक लाने की आवश्यकता नहीं है द्वियुक्पद सिद्धान्त (Binomial Theorem) से भी जाने जा सकते हैं जो यहाँ दिखलाये जाते हैं :—

$$प = \frac{\sqrt{१+च} - \sqrt{१-च}}{\sqrt{१+च} + \sqrt{१-च}}$$

$$= \frac{१ - \sqrt{१ - च^{२}}}{च}$$

$$= \frac{१}{च}(१ - \sqrt{१ - च^{२}})$$

$$= \frac{१}{च}\left\{१ - (१ - च^{२})^{\frac{१}{२}}\right\}$$

$$=\frac{१}{च}\left(\frac{च^२}{२}+\frac{च^४}{८}+\frac{च^३}{१६}+\ldots\ldots\right)$$

$$=\frac{च}{२}+\frac{च^३}{८}+\frac{च^५}{१६}+\ldots\ldots$$

$$प^२=\left(\frac{च}{२}+\frac{च^३}{८}+\frac{च^५}{१६}\right)^२$$

$$=\frac{च^२}{४}+\frac{च^४}{८}+\frac{५च^६}{६४}+\ldots\ldots$$

$$प^३=\left(\frac{च}{२}+\frac{च^३}{८}+\frac{च^५}{१६}\right)\left(\frac{च^२}{४}+\frac{च^४}{८}+\frac{५च^६}{६४}\right)$$

$$=\frac{च^३}{८}+\frac{३च^५}{३२}+\frac{९च^७}{१२८}+\ldots\ldots$$

$$प^४=\left(\frac{च^२}{४}+\frac{च^४}{८}+\frac{५}{६४}च^६\right)^२$$

$$=\frac{च^४}{१६}+\frac{च^६}{१६}+\ldots\ldots$$

$$=प^५\left(\frac{च^४}{१६}+\frac{च^६}{१६}\right)\left(\frac{च}{२}+\frac{च^३}{८}+\frac{च^५}{१६}\right)$$

$$=\frac{च^५}{३२}+\ldots\ldots\ldots$$

अब समीकरण (च) में प, प^२, प^३ इत्यादि तथा उ, ज्या उ, ज्या २ उ इत्यादि के विस्तृत मान उत्थापन किये जायं तो इसका रूप यह होगा :—

$$स=म+\left(च-\frac{च^३}{८}+\frac{च^५}{१९२}\right)ज्या म+\left(\frac{च^२}{२}-\frac{च^५}{६}+\frac{च^६}{४८}\right)ज्या २ म$$

$$+\left(\frac{३च^३}{८}-\frac{२७च^५}{१२८}\right)ज्या ३ म$$

$$+\left(\frac{च^४}{३}-\frac{४च^६}{१५}\right)ज्या ४ म+\frac{१२५च^५}{३८४}ज्या ५ म+$$

$$+२\left\{\left(\frac{च}{२}+\frac{च^५}{१६}\right)\left[\left(१-\frac{च^२}{८}+\frac{च^४}{१९२}\right)ज्या म\right.\right.$$

$$+\left(\frac{च}{२}-\frac{च^२}{६}+\frac{च^५}{४८}\right)ज्या २ म$$

$$+\left(\frac{३च^२}{८}-\frac{२७च^४}{११८}\right) \text{ ज्या ३ म} +\left(\frac{च^३}{३}-\frac{४च^५}{१५}\right)\times \text{ ज्या ४ म}$$

$$+\frac{१२५च^५}{३८४} \text{ ज्या ५ म} +\cdots\cdots\Big]$$

$$+\frac{१}{२}\left(\frac{च^२}{४}+\frac{च^४}{८}+\frac{५च^६}{६४}\right)\Big[\left(-च+\frac{च^३}{६}\right) \text{ ज्या म}$$

$$+\left(१-च^२+\frac{७च^४}{२४}\right) \text{ ज्या २ म}$$

$$+\left(च-\frac{९च^३}{८}\right) \text{ ज्या ३ म} +\left(च^२-\frac{४च^४}{३}\right)\times \text{ ज्या ४ म}$$

$$+\frac{२५च^३}{२४} \text{ ज्या ५ म} +\cdots\cdots\Big]$$

$$+\frac{१}{३}\left(\frac{च^३}{८}+\frac{३च^५}{३२}\right)\Big[\frac{३च^२}{८} \text{ ज्या म} -\left(\frac{३च}{२}-\frac{३च^३}{४}\right)\times \text{ ज्या २ म}$$

$$+\left(१-\frac{९च^२}{४}\right) \text{ ज्या ३ म} +\left(\frac{३च}{२}-३च^३\right)\times \text{ ज्या ४ म}$$

$$+\frac{१५च^२}{८} \text{ ज्या ५ म} +\frac{९च^३}{४} \text{ ज्या ६ म} +\cdots\cdots\Big]$$

$$+\frac{१}{४}\left(\frac{च^४}{१६}+\frac{च^६}{१६}\right)\Big[च^२ \text{ ज्या २ म} - २च \text{ ज्या ३ म}$$

$$+(१-४च^२) \text{ ज्या ४ म} + २च \text{ ज्या ५ म}\Big]$$

$$+\frac{१}{५}\times\frac{च^५}{३२}\Big[-\frac{५च}{२} \text{ ज्या ४ म} + \text{ज्या ५ म} + \frac{५च}{२} \text{ ज्या ६ म}\Big]\Big\}$$

स के इस मान में ज्या ६ म के आगे के पद तथा वह सब पद जिनके गुणक $च^६$ या उससे अधिक हैं छोड़ दिये गये हैं क्योंकि इससे कोई विशेष अशुद्धि नहीं हो सकती। इस मान को सरल करने पर ऐसे पद भी मिलेंगे जिनके गुणक $च^६$ से अधिक हैं। इनको भी छोड़ देने तथा ज्या म, ज्या २ म इत्यादि के गुणक एकत्र करने पर

$$स = म + \left(२च - \frac{१}{४}च^३ + \frac{५}{९६}च^५\right) \text{ ज्या म}$$

$$+\left(\frac{५}{४}च^२ - \frac{११}{२४}च^४ + \frac{१७}{१९२}च^६\right) \text{ ज्या २ म}$$

$$+\left(\frac{१३}{१२}\text{च}^{३}-\frac{४३}{६४}\text{च}^{५}\right)\text{ ज्या ३ म}$$

$$+\left(\frac{१०३}{९६}\text{च}^{४}-\frac{४५१}{४८०}\text{च}^{६}\right)\text{ज्या ४ म}+\frac{१०९७}{९६०}\text{च}^{५}\text{ज्या ५म} \qquad \text{(छ)}$$

मध्यम और स्पष्ट ग्रह का सम्बन्ध प्रकट करने के लिए यही प्रधान समीकरण है। इससे यह जाना जाता है कि यदि द्रष्टा सूर्य के मध्यम में हो तो किसी ग्रह के मध्यम और स्पष्ट स्थान अपने अपने कक्षावृत्त में किस समय क्या होते हैं। जिस ग्रह की केन्द्र च्युति च के स्थान में रखी जायगी उसी ग्रह के मध्यम और स्पष्ट स्थानों का सम्बन्ध समीकरण (छ) से जाना जा सकता है। व्यवहार में सुविधा के लिए ज्या म, ज्या २म इत्यादि के गुणकों को च का यथार्थ मान रखकर सरल सरके एक संख्या में प्रकट किया जा सकता है। जैसे गुरु की केन्द्र च्युति* ०.०४८२५४ है, इसलिए

$$\text{च}=०.०४८२५४$$
$$\text{च}^{२}=०.००२३२८४$$
$$\text{च}^{३}=०.०००११२४$$
$$\text{च}^{४}=०.०००००५४$$

$\text{च}^{५}$, $\text{च}^{६}$ के मान जानने की आवश्यकता नहीं क्योंकि दशमलव के छठे स्थान में यदि ५ का अंक हों और वह छोड़ दिया जाय तो १ विकला की अशुद्धि हो सकती है। इसलिए,

$$\text{स}=\text{म}+(.०९६५०८-.०००२८१)\text{ ज्या म}$$
$$+(.००२९१०६-.००००००२५)\text{ ज्या २म}$$
$$+.०००१२१८\text{ ज्या ३म}+.०००००५८\text{ ज्या४म}$$

$$\text{अथवा स}=\text{म}+.०९६४७९९\text{ ज्या म}+.००२९०८१\text{ ज्या २म}$$
$$+.०००१२१८\text{ज्या ३म}+.०००००५८\text{ज्या ४म} \qquad \text{(ज)}$$

यह समीकरण सूर्य केन्द्रगत गुरु का स्पष्ट स्थान जानने के लिए पर्याप्त है। यदि म, २ म, ३ म इत्यादि की ज्याएँ भारतीय रीति से कला या विकला में प्रयोग की जायँ तो समीकरण (ज) के दाहिने पक्ष में म के अतिरिक्त जो कुछ आवेगा वह

---

*केन्द्र च्युति कई कारणों से स्थिर नहीं रहती वरन् अत्यंत मंदगति से बदलती रहती है, इसलिए भिन्न-भिन्न काल में इसका मान कुछ भिन्न होता है। यह केन्द्र च्युति संवत् १९५६ वि० के अंत की है।

कला या विकला में होगा और सूर्य के मध्य से यही गुरु का मंदफल होगा। यदि ज्याओं को आजकल की रीति से भिन्न में प्रकट किया जाय तो सरल करने पर म के अतिरिक्त जो संख्या दशमलव भिन्न में आवेगी वह रेडियन में होगी जिसकी कला या विकला बनाने के लिए ३४३७.७५ या २०६२६५ से गुणा करना होगा। दोनों रीतियों से फल एक ही होगा।

गुरु के लिए जिस तरह समीकरण (ज) प्राप्त किया गया है उसी तरह प्रत्येक ग्रह के लिए उसकी केन्द्र च्युति को समीकरण (छ) में उत्थापन करने से एक सरल सूत्र प्राप्त हो सकता है। प्रत्येक ग्रह की केन्द्र च्युति तथा अन्य आवश्यक बातें आगे एक सारणी में दे दी जायेंगी।

सूर्य के मध्य से ग्रह की दूरी किस समय क्या होती है यह जानने के लिए एक समीकरण है जो समीकरण (२) अर्थात् कर्ण = त(१ – च कोज्या उ) से लैग्रेंज सिद्धान्त के अनुसार १ – च कोज्या उ का मान जान लेने से आ जाता है। लैग्रेंज सिद्धान्त के अनुसार,

$$१ - \text{च कोज्या उ} = (१ - \text{च कोज्या म}) + \text{च ज्या म} \frac{\text{ता}}{\text{ताम}}$$

$$(१ - \text{च कोज्या म}) + \frac{\text{च}^२}{\underline{|२}} \cdot \frac{\text{ता}}{\text{ताम}} \left\{ \text{ज्या}^२ \text{ म} \times \text{च ज्या म} \right\}$$

$$+ \frac{\text{च}^3}{\underline{|३}} \cdot \frac{\text{ता}^२}{\text{ताम}^२} \left\{ \text{ज्या}^3 \text{ म} \times \text{च ज्या म} \right\}$$

$$= १ - \text{च कोज्या म} + \frac{\text{च}^२}{२} - \frac{\text{च}^२}{२}\text{कोज्या २ म}$$

$$+ \frac{३}{८}\text{च}^3 \text{ कोज्या म} - \frac{३}{८}\text{च}^3 \text{ कोज्या ३ म} - \frac{\text{च}^४}{३} \times \text{कोज्या ४ म}$$

$$+ \frac{\text{च}^४}{३}\text{कोज्या २ म} + \ldots\ldots\ldots\ldots$$

$$= \left(१ + \frac{\text{च}^२}{२}\right) - \text{च}\left(१ - \frac{३}{८}\text{च}^२\right)\text{कोज्या म} - \frac{\text{च}^२}{२}$$

$$\left(१ - \frac{२}{३}\text{च}^२\right)\text{कोज्या २ म}$$

$$- \frac{३}{८}\text{च}^3 \text{ कोज्या ३ म} + \ldots\ldots\ldots$$

$$\therefore \text{ कर्ण} = \text{त}\left\{\left(१+\frac{\text{च}^२}{२}\right) - \text{च}\left(१-\frac{३}{८}\text{च}^२\right)\text{कोज्या म} - \frac{\text{च}^२}{२}\left(१-\frac{२}{३}\text{च}^२\right)\text{कोज्या २ म} - \frac{३}{८}\text{च}^३ \text{ कोज्या ३ म}\right\} \qquad (\text{ज्ञ})$$

गुरु के कर्ण के लिए समीकरण (ज्ञ) का रूप होगा,

५२०२.८{(१+.००११६४२)−(.०४८२५४−.०००४२१) कोज्या म−(.००११६४२−.००००१८) कोज्या २ म −.०००४२१ कोज्या ३ म}

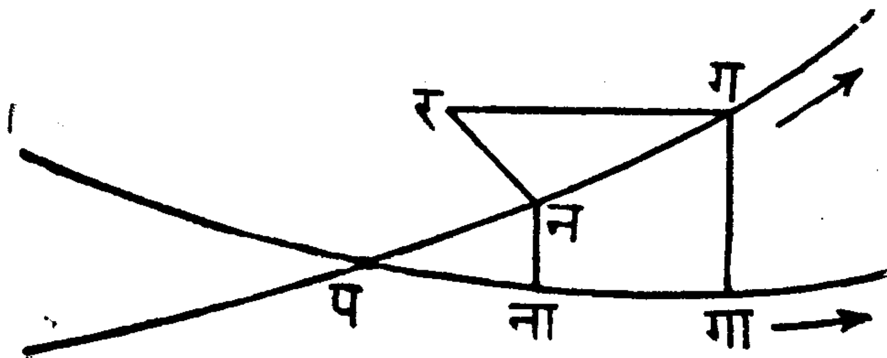
अथवा ५२०२.८(१.००११६४२−.०४८२११६ कोज्या म −.००११६२४ कोज्या २ म−.०००४२१ कोज्या ३ म)

अथवा ५२०८.८६−२५१.०६ कोज्या म−६.०५ कोज्या २ म−.२२ कोज्या ३ म

५२०२.८ सूर्य से गुरु का मध्यम कर्ण है जब कि पृथ्वी का मध्यम कर्ण १००० समझा जाय। इसी तरह अन्य ग्रहों के कर्ण जानने का सूत्र सरल हो सकता है।

समीकरण (छ) से ग्रह का जो स्पष्ट केन्द्र आता है वह उसके नीच (Perihelion) से कक्षावृत्त में ग्रह की दूरी होता है। यदि ग्रह का कक्षावृत्त पृथ्वी के कक्षावृत्त अर्थात् क्रान्तिवृत्त के ही धरातल में होता तो यही क्रान्तिवृत्त में भी ग्रह की दूरी होता। परन्तु प्रत्येक ग्रह के कक्षावृत्त का धरातल क्रान्तिवृत्त के धरातल से कुछ कोण बनाता है जिसे ग्रह का परम शर कहते हैं और जिसकी चर्चा पहले अध्याय में अंतिम तीन चार श्लोकों में की गयी है इसलिए कक्षावृत्तीय स्पष्ट केन्द्र में कुछ संस्कार करने से क्रान्तिवृत्तीय स्पष्ट केन्द्र आता है।

मान लो प ग ग्रह का कक्षावृत्त और प गा क्रान्तिवृत्त है, प ग्रह का उत्तरपात है, र सूर्य का मध्य है तथा न ग्रह का नीच (Perihelion) है। ग ग्रह का स्पष्ट



चित्र ३३

स्थान और ग गा क्रान्तिवृत्त पर लम्ब है अर्थात् गा ग वृत्त क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव पर जाता है। तब <न र ग कक्षावृत्तीय स्पष्ट केन्द्र तथा र ग की दूरी ग्रह का स्पष्ट कर्ण हैं जो (छ) और (झ) समीकरणों के अनुसार जाने जाते हैं। न से न ना लम्ब भी क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव पर जाता है। क्रान्तिवृत्त में ना और गा विन्दुओं के बीच की जो दूरी है वही ग का क्रान्तिवृत्तीय स्पष्ट केन्द्र कहलाती है। नेपियर के नियमों के अनुसार प ना और प गा दूरियों को सहज ही जान सकते हैं। फिर दोनों का अन्तर जान लेने से ना गा दूरी (क्रातिवृत्तीय स्पष्ट केन्द्र) जानी जा सकती है। परन्तु व्यवहार में सरलता उस समय होती है जिस समय केवल यह जानना रहता है कि प न या प ग में क्या घटाया बढ़ाया जाय कि प ना और प गा का मान निकल आवे। जितना घटाने या बढ़ाने से, पात से ग्रह की क्रान्तिवृत्तीय दूरी निकलती है उसको परिणति सकते हैं। इसलिए यह जानना चाहिये कि परिणति कैसे निकालते हैं। परिभाषा के अनुसार

नीच परिणति = प न − प ना

ग्रह परिणति = प ग − प गा

ग गा को ग्रह का इष्टकालिक शर, <ग प गा को ग्रहका परम शर, प ग को पात से ग्रह की दूरी या विपात ग्रह कहते हैं। <ग गा प समकोण है इसलिए ग प गा गोलीय समकोण त्रिभुज है और नेपियर के नियमों के अनुसार,

(१) ज्या (९०° − प ग) = कोज्या (ग गा) × कोज्या प गा

(२) ज्या (ग गा) = कोज्या (९०° − ग प गा) × कोज्या (९०° − पग)

(३) स्परे (ग गा) = ज्या (प गा) × स्परे (ग प गा)

(४) स्परे (प गा) = कोज्या (ग प गा) स्परे (प ग)

ज्या (प ग − प गा) = ज्या (प ग) कोज्या (प गा)

− कोज्या (प ग) ज्या (प गा) (ट)

पहले चार सूत्रों से कोज्या (प गा) और ज्या (प गा) के मान परम शर, इष्टकालिक शर और विपात ग्रह में स्थापित करना चाहिए। सूत्र (३) से

$$\text{ज्या (प गा)} = \frac{\text{स्परे (ग गा)}}{\text{स्परे (ग प गा)}}$$

सूत्र (४) से, $\frac{\text{ज्या (प गा)}}{\text{कोज्या (प गा)}} = \text{कोज्या (ग पगा) स्परे (प ग)}$

$$\therefore \text{कोज्या (प गा)} = \frac{\text{ज्या (प गा)}}{\text{कोज्या (ग प गा)} \times \text{स्परे (प ग)}}$$

$$= \frac{\text{स्परे (ग गा)}}{\text{स्परे (ग प गा)}} \times \frac{\text{१} \times \text{कोज्या (प ग)}}{\text{कोज्या (ग प गा)} \times \text{ज्या (प ग)}}$$

$$= \frac{\text{स्परे (ग गा)}}{\text{ज्या (ग प गा)}} \times \frac{\text{कोज्या (प ग)}}{\text{ज्या (प ग)}}$$

ज्या (प गा) और कोज्या (प गा) के मानों को समीकरण (ट) में उत्थापन करने से,

$$\text{ज्या (प ग — प गा)} = \text{ज्या (प ग)} \times \frac{\text{स्परे (ग गा)}}{\text{ज्या (ग प गा)}} \times \frac{\text{कोज्या (प ग)}}{\text{ज्या (प ग)}} - \text{कोज्या (प ग)} \times \frac{\text{स्परे (ग गा)}}{\text{स्परे (ग प गा)}}$$

$$= \frac{\text{स्परे (ग गा)} \times \text{कोज्या (प ग)}}{\text{ज्या (ग प गा)}} - \frac{\text{कोज्या (प ग)} \times \text{स्परे (ग गा)}}{\text{स्परे (ग प गा)}}$$

$$= \frac{\text{स्परे (ग गा) कोज्या (प ग)}}{\text{ज्या (ग प गा)}} \left\{ \text{१ — कोज्या (ग प गा)} \right\}$$

$$= \frac{\text{ज्या (ग गा)}}{\text{कोज्या (ग गा)}} \times \frac{\text{कोज्या (प ग)}}{\text{ज्या (ग प गा)}} \times \text{उत्क्रम ज्या (ग प गा)}$$

परन्तु सूत्र (२) से, $\frac{\text{ज्या (ग गा)}}{\text{ज्या (ग प गा)}} = \text{ज्या (प ग)}$

$$\therefore \text{ज्या (प ग — प गा)} = \frac{\text{ज्या (प ग) कोज्या (प ग)}}{\text{कोज्या (ग गा)}} \times \text{उत्क्रम ज्या (ग प गा)}$$

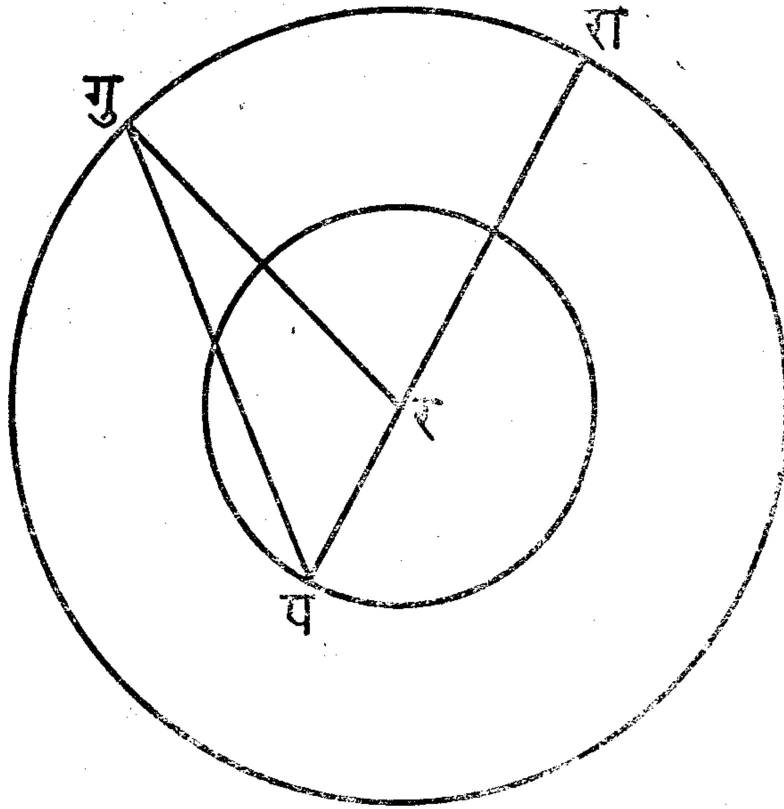
बुध को छोड़ कर सब ग्रहों का परम शर ३°.४ से अधिक नहीं है इसलिए इनका इष्टकालिक शर और भी छोटा होगा; जिससे यह मान लेने में कोई अशुद्धि नहीं है कि कोज्या (ग गा) एक के समान है। ऐसी दशा में,

$$\text{ज्या (प ग — प गा)} = \text{ज्या (प ग) कोज्या (प ग)} \times \text{उत्क्रम ज्या (ग प गा)}$$
$$= \tfrac{1}{2} \text{ ज्या २ (प ग) उत्क्रम ज्या (ग प गा)}$$

अर्थात् ज्या (परिणति) $= \tfrac{1}{2}$ परम शरोत्क्रम ज्या $\times$ ज्या २ (विपातग्रह) (ठ)

इस समीकरण से ग्रह और उसके नीच दोनों की परिणित जानकर क्रान्ति-वृत्तीय स्पष्ट केन्द्र जाना जा सकता है।

अब यह जानना रह गया कि पृथ्वी के मध्य से ग्रह किस दिशा में और कितनी दूर देख पड़ता है। यह तो स्वयंसिद्ध है कि पृथ्वी से किसी ग्रह की दिशा और दूरी जानने के लिए यह जानना आवश्यक है कि पृथ्वी स्वयं कहाँ है।



चित्र ३४

यह समीकरण (छ) से ही जाना जाता है क्योंकि इसी की कक्षा के धरातल में तो अन्य ग्रहों की परिणति करनी पड़ती है। जब पृथ्वी का स्थान निश्चित हो गया तब सूर्य का स्थान सहज ही जाना जा सकता है; क्योंकि सूर्य से पृथ्वी जिस दिशा में देख पड़ती है उससे १८०° पर पृथ्वी से सूर्य दीखेगा। इसलिए पृथ्वी के स्पष्ट केन्द्र में १८०° जोड़ने या घटाने से सूर्य का स्थान निकल आता है। ग्रह के क्रान्तिवृत्तीय स्पष्ट केन्द्र से सूर्य का स्थान घटा देने पर शीघ्र-केन्द्र जाना जा सकता है। चित्र ३४ में र प और गु क्रम से सूर्य पृथ्वी और वृहस्पति के स्थान हैं। र वह बिन्दु है जहाँ सूर्य पृथ्वी के मध्य से देख पड़ता है; इसलिए रा र गु कोण वृहस्पति का शीघ्र केन्द्र हुआ। प र गु कोण १८०°— रा र गु कोण के समान है। इसलिए प र गु त्रिभुज के दो भुज प र और गु र ज्ञात हैं, क्योंकि यह सूर्य से पृथ्वी और गुरु की दूरी अर्थात् पृथ्वी और गुरु के स्पष्ट कर्ण हैं और इनके बीच का कोण प र गु भी ज्ञात है। इसलिए प गु, $<$र प गु और $<$प गु र भी जाने जा सकते हैं, क्योंकि लोनी की त्रिकोणमिति भाग १ पृष्ठ १०४ अथवा हाल और नाइट की त्रिकोणमिति पृष्ठ १७१ से स्पष्ट है कि

$$\text{स्परे}\frac{\text{र प गु} - \text{र गु प}}{2} = \frac{\text{र गु} - \text{र प}}{\text{र गु} + \text{र प}}\ \text{स्परे}\ \frac{\text{र प गु} + \text{र गु प}}{2}$$

परन्तु $<$र प गु$+<$र गु प$=<$रा र गु$=$शीघ्र केन्द्र

$$\therefore \text{स्परे} \frac{\text{र प गु} - \text{र गु प}}{२} = \frac{\text{र गु} - \text{र प}}{\text{र गु} + \text{र प}} \text{स्परे} \frac{\text{शीघ्र केन्द्र}}{२}$$

जिससे र प गु—र गु प ज्ञात हो सकता है। और $<$र गु प$+<$र प गु ज्ञात ही है; इसलिए इन दोनों को जोड़कर आधा कर देने से र प गु कोण जाना जा सकता है। यही कोण वृहस्पति और सूर्य के बीच का कोण है जो पृथ्वी से देख पड़ता है। इसी को इनान्तर कहते हैं क्योंकि इन सूर्य का पर्याय है।

पृथ्वी से गुरु की दूरी गु प जिसे शीघ्र कर्ण कहते हैं त्रिकोणमिति के अनुसार इस प्रकार जान सकते हैं :—

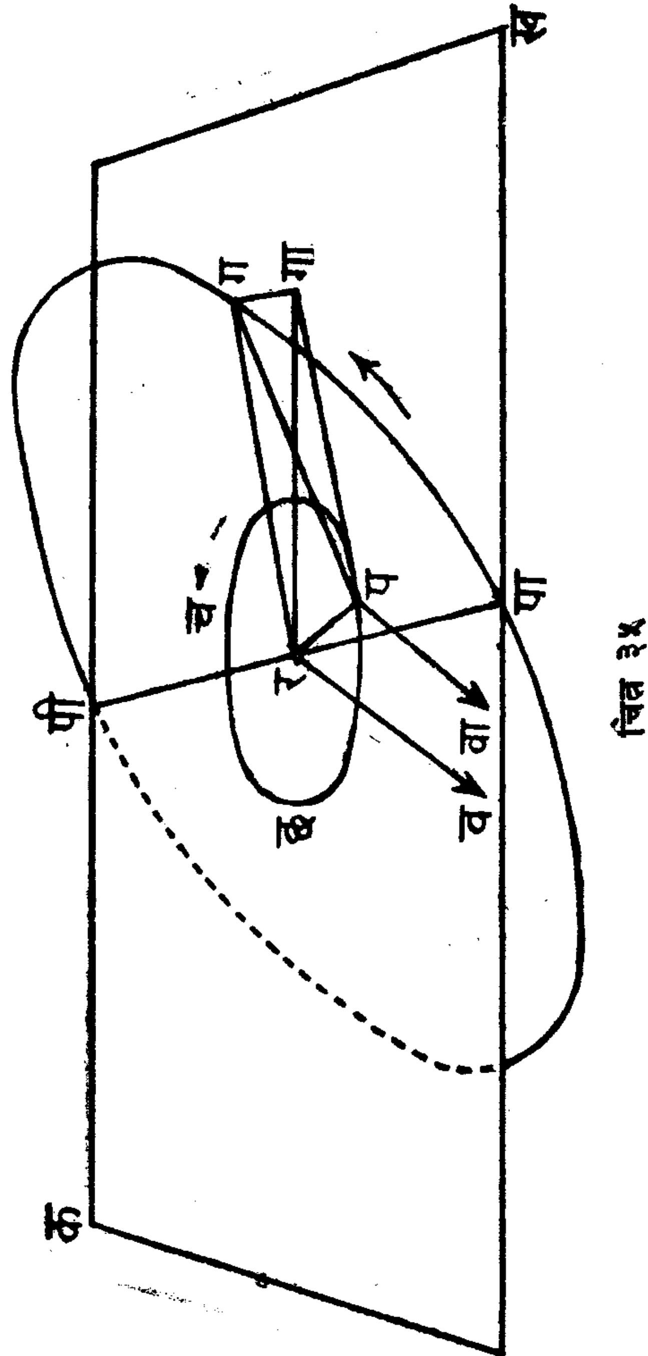
$$\frac{\text{गु प}}{\text{ज्या} < \text{प र गु}} = \frac{\text{गु र}}{\text{ज्या} < \text{र प गु}}$$

परन्तु ज्या प र गु$=$ज्या रा र गु$=$ज्या शीघ्र केन्द्र

$$\therefore \text{शीघ्र कर्ण} = \text{ज्या शीघ्र केन्द्र} \times \text{ग्रह का मंद कर्ण} \times \frac{१}{\text{ज्या इनान्तर}} \qquad (\text{ड})$$

यह इनान्तर और शीघ्र कर्ण क्रान्तिवृत्तीय धरातल के हैं अर्थात् उस दशा के हैं यदि ग्रह क्रान्तिवृत्त में देख पड़ता परन्तु यथार्थ में ग्रह कुछ उत्तर या दक्खिन रहता है। इसलिए शीघ्र कर्ण को यदि ग्रह के इष्टकालिक शर की कोटिज्या से भाग दे दिया जाय तो यथार्थ शीघ्र कर्ण ज्ञात हो जायगा। इसी प्रकार क्रान्तिवृत्तीय इनान्तर में भी संस्कार करने से यथार्थ इनान्तर जाना जाता है। चित्र ३५ से जो गाडफ्रे की 'एस्ट्रोनोमी' पृष्ठ २७४ के अनुसार है यह सब बातें एकसाथ ही स्पष्ट होती हैं—

क ख क्रान्तिवृत्तीय धरातल है, जिसमें पृथ्वी की कक्षा अर्थात् क्रान्तिवृत्त प च छ है। कक्षावृत्त पा ग पी है, जो क्रांतिवृत्तीय धरातल को पा पी बिन्दुओं पर काटता है। पा उत्तर पात और पी दक्षिण पात हैं। र, प और ग क्रम से सूर्य, पृथ्वी और ग्रह के यथार्थ स्थान हैं; ग से ग गा क्रान्तिवृत्तीय धरातल पर लम्ब गिराया गया है; व वसंत संपात विन्दु है; $<$ग र गा और व र गा ग्रह के सूर्य केन्द्रीय शर और भोगांश (Longitude) हैं। $<$ग प गा और$<$ वा प गा ग्रह के भूकेन्द्रीय शर और भोगांश हैं। प वा र व समानान्तर हैं। $<$व र प सूर्यकेन्द्रीय पृथ्वी का भोगांश है; इसलिए$<$व र प$+$१८० भूकेन्द्रीय सूर्य का भोगांश है। र प गा त्रिभुज चित्र ३४ के त्रिभुज र प गु से मिलता है। प गा ग्रह का क्रान्तिवृत्तीय शीघ्र कर्ण और $<$र प गा क्रान्तिवृत्तीय इनान्तर है; प ग यथार्थ शीघ्रकर्ण और $<$र प ग यथार्थ इनान्तर है।



चित्र ३५

$$\text{प ग} = \frac{\text{प गा}}{\text{कोज्या} \angle \text{ग प गा}}$$

आधुनिक ज्योतिर्विज्ञान के अनुसार ग्रहों के स्पष्ट स्थान जानने की जो रीति बतलायी गयी है वह दिग्दर्शन मात्र है। इस क्रिया से जो स्पष्ट स्थान जाना जाता है उसमें और प्रत्यक्ष वेध द्वारा जाने गये स्थानों में कुछ सूक्ष्म अंतर देख पड़ता है। इसका कारण यह है कि किसी ग्रह पर केवल सूर्य का ही आकर्षण नहीं होता वरन् अन्य ग्रह और उपग्रहों का भी होता है जिनके कारण वह उस स्थान से कुछ विचलित

देख पड़ता है जो उपर्युक्त रीति से जाना जाता है। इसलिए सूक्ष्मतापूर्वक शुद्ध स्थान जानना हो तो अन्य ग्रहों के आकर्षण के कारण जो परिवर्तन होता है उसका संस्कार भी करना चाहिये। परन्तु यह विषय बहुत गंभीर है। इसकी पूरी जानकारी के लिए भौतिक ज्योतिर्विज्ञान (Physical astronomy), गति विज्ञान (Dynamics), चलन कलन, चलराशिकलन इत्यादि उच्च गणित की जानकारी भी आवश्यक है। इसलिए विस्तार भय से उसका विचार यहाँ नहीं किया जायगा।

ऊपर बतलाई गयी रीति से यदि चन्द्रमा का स्पष्ट स्थान निकाला जाय तो देखा जाता है कि बेध द्वारा जाना गया स्थान उससे कभी-कभी तीन-तीन अंश आगे पीछे होता है। इसका कारण यह है कि चंद्रमा पृथ्वी के चारों ओर घूमते हुए इसके साथ सूर्य की परिक्रमा भी एक वर्ष में कर लेता है; इसलिए चंद्रमा पर पृथ्वी के आकर्षण के साथ-साथ सूर्य के आकर्षण का प्रभाव भी बहुत पड़ता है जिससे चंद्रमा का विचलन बहुत बड़ा रूप धारण कर लेता है। इसलिए चंद्रमा के सम्बन्ध में कुछ मुख्य संस्कार करने की आवश्यकता पड़ती है जिनकी चर्चा संक्षेप में की जाती है।

सबसे पहले केपलर के नियम के अनुसार जो मंद फल संस्कार करना चाहिए उसका सरल रूप बतला देना आवश्यक है। चंद्रमा की केन्द्रच्युति* १८५४ ई० के आरंभ में ०·०५४८४४२ थी।

इसलिए च = ०.०५४८४४२

च^{२} = .००३००७९

च^{३} = .०००१६४९६

च^{४} = .००००० ९०५

च^{५} या इसके आगे की संख्याओं के मान जानने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह अत्यन्त छोटे हैं। च के घातों के इन मानों का समीकरण (छ) में उत्थापन करने से चन्द्रमा के मंदफल संस्कार का रूप यह होगा :—

स = म + (·१०९६८८४ − ·००००४१२४) ज्या म

+ (·००३७५९९ − ·०००००४१५) ज्या म

+ · ०००१७८७ ज्या ३ म

+ · ००००० ९७ ज्या ४ म

= म + .१०९६४७१६ ज्या म + .००३७५५७५ ज्या २ म

+ .०००१७८७ ज्या ३ म + .००००० ९७ ज्या ४ म

यदि म, २ म, ३ म की ज्याओं को आधुनिक रीति से दशमलव भिन्न में लिखा जाय तो ज्या म, ज्या २ म के गुणकों को जो रेडियन में हैं, कलाओं या

*देखो Loomi's Practical Astronomy, पृष्ठ ४६२।

विकलाओं में लिखने के लिए ३४३७·७५ या २०६२६५ से गुणा कर देने से और भी सरलता होगी क्योंकि एक रेडियन ३४३७.७५ कला या २०६२६५ विकला के लगभग होती है। ऐसा करने से इसका रूप यह होगा :—

$$स = म + ३७६'५६''.४ \text{ ज्या } म + १२'५४''.७ \text{ ज्या } २ म + ३६''.९ \text{ ज्या } ३ म + २''.० \text{ ज्या } ४ म$$

यहाँ यह याद रखना चाहिये कि म मन्द केन्द्र आजकल की रीत्यानुसार नीच (perigee) से समझ गया है। यदि मन्द केन्द्र पुरानी परिपाटी के अनुसार उच्च से समझा जाय तो

$$स = म - ३७६'५६''.४ \text{ ज्या } म + १२'५४''.७ \text{ ज्या } २ म - ३६''.९ \text{ ज्या } ३ म + २''.० \text{ ज्या } ४ म$$

इसी प्रकार अन्य ग्रहों के प्रधान समीकरण के ज्या म, ज्या २ म, इत्यादि के गुणकों को कलाओं या विकलाओं में लिखा जा सकता है।

इस समीकरण के दाहिने पक्ष में म मन्द केन्द्र अर्थात् उच्च से मध्यम चंद्र का भोगांश है, शेष मन्द फल है जिसका संस्कार मन्द केन्द्र में करने से स्पष्ट चंद्र सिद्ध होता है। यह स्पष्ट है कि इस मन्द फल में पहला पद अर्थात् ३७६'५६''.४ ज्या म बहुत बड़ा है, इसके पीछे दूसरा पद १२'५४''.७ ज्या २ म है। परन्तु जिस समय म का मान ९०° होता है उस समय ज्या म का मान १ और ज्या २ म का मान शून्य होता है इसलिए परम मन्द फल का मान पहले ही पद पर अवलंबित रहता है और प्रायः ३७७' अर्थात् ६°१७' के समान होता है। परन्तु हमारे ज्योतिषियों ने चंद्रमा के परम मन्द फल का मान ५° के लगभग माना है इसलिए यह प्रश्न उपस्थित होता है कि इतना अन्तर क्यों है ?

जब परम मंद फल का मान ३७६'५६''.४ ज्या म समझ कर चंद्रमा का स्पष्ट स्थान निकाला जाता है तब इसको वेध करके मिलाने पर देख पड़ता है कि प्रत्यक्ष स्थान और गणित-सिद्ध स्थानों में कभी-कभी अधिक से अधिक अंतर १° २०' का होता है। कई वर्ष तक निरन्तर बेध करने पर यह बात प्रत्यक्ष हो जाती है कि अमावस या पूर्णिमा के दिन जब चंद्रमा मन्दोच्च से ९०° के लगभग दूर रहता है तब मंदफद संस्कृत स्पष्ट चन्द्र से वेध-सिद्ध चंद्रमा १°२०' आगे रहता है और जब चंद्रमा मंदोच्च २७०° अथवा नीच से ९०° आगे रहता है तब मंदफल-संस्कृत-स्पष्ट-चंद्र से बेध-सिद्ध चंद्रमा १°२०' पीछे रहता है। पहली दशा में मंदफल का संस्कार—३७६'५६''.४ अथवा —६°१६'५६''.४ होता है अर्थात् मध्यम ग्रह में ६°१६'५६''.४ घटाने से मंदफल संस्कृत स्पष्ट ग्रह आता है। परन्तु इससे बेध-सिद्ध ग्रह १°२०' आगे रहता

है इसलिए मंदफल संस्कृत स्पष्ट ग्रह में १°२०′ जोड़ना चाहिए। इसलिए यदि ६°१६′५६″.४ घटाने और १°२०′ जोड़ने की जगह इन दोनों का अंतर अर्थात् ४°५६′५६″.४ ही घटाया जाय तो भी वही फल होगा। इसलिए यदि परम मंदफल ६°१६′५६″.४ की जगह ४°५६′५६″.४ मान लिया जाय तो कोई हानि नहीं समझ पड़ती। दूसरी दशा में ६°१६′५६″.४ जोड़ना पड़ता है और १°२०′ घटाना पड़ता है जिसकी जगह यदि इन दोनों का अंतर अर्थात् वही ४°५६′५६″.४ जोड़ा जाय तो कोई फेर नहीं पड़ेगा। जब पूर्णिमा के दिन चंद्रमा उच्च पर भी रहता है तब तो मंदकेन्द्र शून्य होने से मंदफल संस्कार शून्य होता है। उस समय मध्यम और स्पष्ट चंद्रमा के स्थानों में कोई अंतर ही नहीं रहता। इससे सिद्ध होता है कि पूर्णमासी या अमावस के दिन बेध करके परम मंदफल का मान जानने में ५° के लगभग ही आवेगा जो हमारे प्राचीग ग्रन्थों में दिया हुआ है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि परम मंदफल का मान ५° ही ठीक है ६°१६ नहीं। परन्तु बेध से यह भी जाना गया है कि प्रत्येक पक्ष की अष्टमी के लगभग जब चंद्रमा मंदोच्च से ९०° पर रहता है तब ५° का मंदफल का संस्कार देने पर भी चंद्रमा कोई ३° पीछे रहता है अर्थात् बेध-सिद्ध चंद्रमा मध्यम चंद्रमा से कोई ८° पीछे रहता है। और यदि अष्टमी के दिन चंद्रमा नीच से ९०° पर रहता है तब मध्यम चंद्र से वेध-सिद्ध-चंद्रमा ५° नहीं वरन् ८° के लगभग आगे रहता है। इसलिए यह मानना पड़ेगा कि परम मंदफल ५° मान लेने से पूर्णिमा या अमावस्या के दिन तो कोई हानि नहीं होती परन्तु अष्टमी के लगभग ३° का अन्तर देख पड़ता है। हमारे प्राचीन ज्योतिषियों को इस बात का पता इसलिए नहीं लगा कि वे, मेरी समझ में, ग्रहण-काल से मध्यम और स्पष्ट चंद्रमा का अन्तर निकाल कर मंदफल निकालते थे जैसा कि केशवाचार्य के उद्धरण से प्रकट होता है जो इसी अध्याय के १४वें श्लोक के भाष्य में दिया गया है। इस उद्धरण से यह भी पता लगता है कि केशवाचार्य को सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार स्पष्ट किये हुए चन्द्रमा से वेध द्वारा देखा गया चंद्रमा ५′ कम देख पड़ा जैसा कि पहले दिखाया गया है कि पूर्णिमा या अमावस्या को मंदफल और च्युति संस्कार मिलकर ४°५७′ होते हैं। इसलिए केशवाचार्य का वेध बहुत सूक्ष्म सिद्ध होता है।

इसलिए यह आवश्यक है कि इस भेद का कारण किसी और जगह देखा जाय। यह तो स्पष्ट है कि यह भेद चंद्रमा के उच्च से विशेष सम्बन्ध रखता है और यह भी देखा गया है कि यह सदैव इतना ही नहीं रहता वरन् घटते-घटते कभी शून्य हो कर ऋणात्मक हो जाता है और कभी धनात्मक हो जाता है इसलिए यह नियत-

कालिक (periodical) भी है। इसे यूनानी ज्योतिषी टालमी ने विक्रम की दूसरी शताब्दी में ही निश्चय कर लिया था, परन्तु इसके कारण का पता न्यूटन के पहले किसी ने नहीं लगा पाया था। न्यूटन ने आकर्षण सिद्धान्त से सिद्ध किया कि चंद्रमा पर पृथ्वी का ही आकर्षण नहीं होता वरन् अन्य ग्रहों का भी पड़ रहा है और उपर्युक्त महान् अंतर का कारण सूर्य का आकर्षण है। भौतिक ज्योतिर्विज्ञान ने गणित से सिद्ध कर दिया है कि यह अंतर सूर्य के आकर्षण से पड़ता है और इस संस्कार का मुख्य रूप जब मंद केन्द्र की गणना नीच से की जाय तो यह है $+$१°२०′२९.″५ $\times$ ज्या [२ (चन्द्रमा—सूर्य)—चन्द्र मन्द केन्द्र]। इसके आगे के पद जो बहुत सूक्ष्म हैं छोड़ दिये गये हैं।

टालमी ने इस संस्कार का नाम इवेक्शन् (evection) रखा था जो अब तक प्रचलित है। स्वर्गीय वेंकटेश बापू जी केतकर ने अपने ज्योतिर्गणित में इसको च्युति संस्कार कहा है। इस पद में चंद्रमा—सूर्य का अर्थ है सूर्य से चंद्रमा का अंतर जो हमारे यहाँ तिथि के नाम से प्रकट किया जाता है। जिस समय अमावस या पूर्णिमा होती है उस समय चंद—सूर्य का मान शून्य या १८०° होता है इसलिए इस पद का रूप १° २०′ २९″.५ ज्या (—चन्द्र मंद केन्द्र) या —१° २०′ २९″.५ ज्या म होता है जो मंदफल संस्कार के रूप में है और जब मंदफल जोड़ा जाता है तब यह घटाया जाता है और जब मंदफल घटाया जाता है तब यह जोड़ा जाता है जिसका परिणाम यह होता है कि यदि मंदफल को इन दोनों के अन्तर के समान समझ लिया जाय तो कोई हानि नहीं होती।

चूंकि मंदफल च्युति के मान पर आश्रित होता है इसलिए मंदफल के घटने से यह सूचित होता है कि चंद्रकक्षा की च्युति घट गयी है और बढ़ने से च्युति के बढ़ने की सूचना मिलती है। अर्थात् इस घट बढ़ से यह अनुमान दृढ़ होता है कि चंद्रकक्षा का आकार सदैव एक सा नहीं रहता। यह बात आकर्षण सिद्धान्त से भी पूरी तरह मेल खाती है जैसा कि आगे दिखाया जायगा।

परन्तु जब चंद्र—सूर्य ९०° या २७०° होता है अर्थात अष्टमी होती है तब इसका रूप १° २०′ २९.५″ ज्या [२ $\times$ ९०°—चन्द्र मन्द केन्द्र] अथवा १° २०′ २९″.५ ज्या म होता है जो है तो मन्द फल संस्कार के ही रूप का परन्तु यदि मन्द फल धनात्मक होता है तो यह भी धनात्मक होता है और मंद फल ऋणात्मक होता है तो यह भी ऋणात्मक होता है। इसलिए मंदफल ५° मानने से कभी ३° आगे पीछे का अंतर पड़ जाता है। इसी कारण सप्तमी, अष्टमी और नवमी के जो समय भारतीय रीति से बनाये गये पंचांगों में लिखे रहते हैं वह आधुनिक

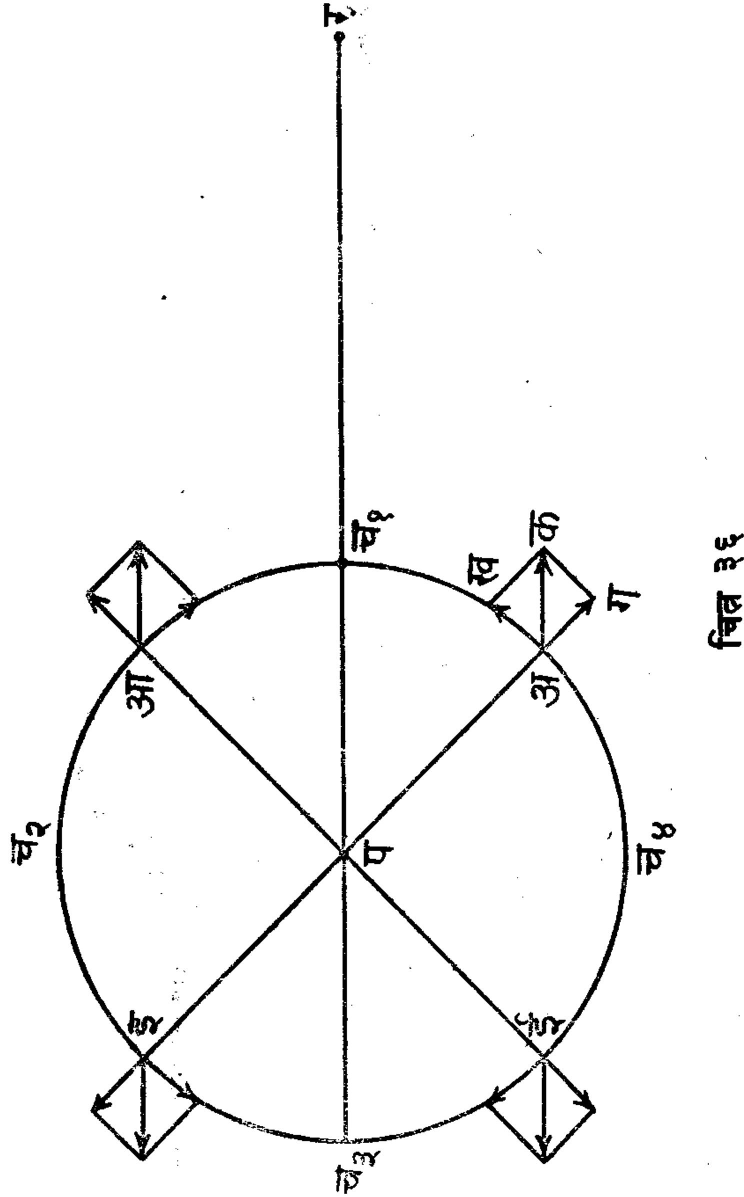
रीति से जाने गये कालों से कभी-कभी १४, १५ घड़ी आगे पीछे रहते हैं। यह बात बापूदेव शास्त्री के पंचांग और काशी के मकरंद सारिणी से बनाये गये पंचांगों से भी प्रकट हो सकती है।

न्यूटन ने इसका कारण जिस तरह समझाया है वह संक्षेप में* यह है :— चंद्रमा और पृथ्वी की कक्षाओं के बीच का कोण केवल ५° के लगभग है इसलिए दोनों को एक ही धरातल में मान लेने से विशेष हानि नहीं होगी परन्तु सरलता आ जायगी।

मान लो र सूरज, प पृथ्वी और च$_1$ च$_2$ च$_3$ च$_4$ चंद्रमा की कक्षा हैं। यहाँ यह न भूल जाना चाहिये कि प र, अर्थात् सूर्य से पृथ्वी का अंतर प च, अर्थात् पृथ्वी से चंद्रमा की दूरी का कोई ४०० गुना है। यह भी समझे रहना आवश्यक है कि चंद्रमा का विचलन इसलिए होता है कि सूर्य पृथ्वी और चंद्रमा दोनों को असमान रूप से आकर्षित कर रहा है इसलिए इन दोनों के आकर्षण के अंतर के कारण यह विचलन हो रहा है। यदि यह अंतर न होता अर्थात् सूर्य का आकर्षण चंद्रमा और पृथ्वी पर समान होता तो विचलन कदापि न होता क्योंकि तब तो दोनों साथ ही साथ आगे पीछे होते और चंद्रमा की सापेक्ष गति में भिन्नता न पड़ती।

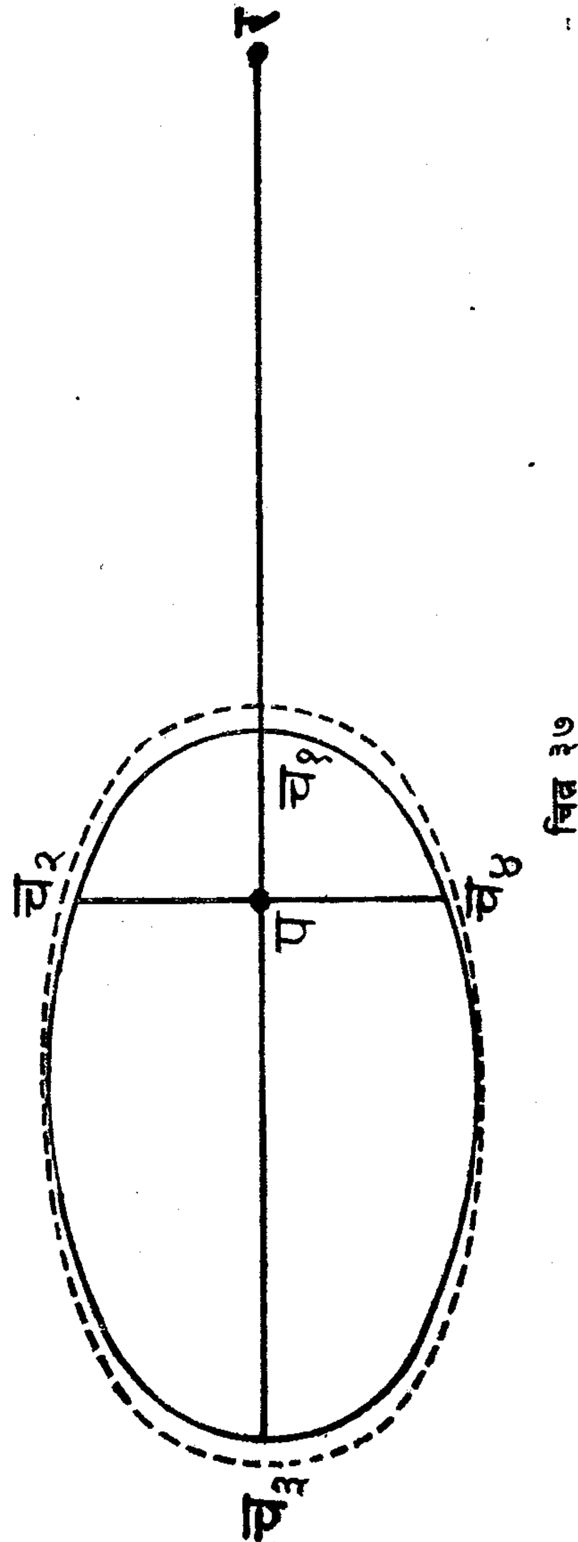
चित्र ३६ से यह स्पष्ट है कि जब तक चंद्रमा च$_4$ से च$_1$ होता हुआ च$_2$ तक चलता है तब तक यह पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य के निकट रहता है अर्थात् कृष्ण-पक्ष की अष्टमी से लेकर शुक्ल पक्ष की अष्टमी तक चंद्रमा पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य के निकट रहता है और शुक्ल पक्ष की अष्टमी से कृष्ण पक्ष की अष्टमी तक चंद्रमा पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य से दूर रहता है। इसलिए आकर्षण सिद्धान्त के अनुसार पहली दशा में सूर्य का आकर्षण चंद्रमा पर अधिक होता है अर्थात् सूर्य की ओर अधिक खिचने के कारण चंद्रमा पृथ्वी से कुछ दूर हो जाया करता है जिससे जान पड़ता है कि विचालक शक्ति (perturbing force) चंद्रमा को पृथ्वी से दूर खींचे जा रही है। चूंकि र बहुत दूर है इसलिए यह शक्ति प र के प्रायः समानान्तर दिशा में र की ओर काम कर रही है। दूसरी दशा में पृथ्वी अधिक खिचती है, इसलिए चंद्रमा पीछे रह जाता है जिससे जान पड़ता है कि विचालक शक्ति सूर्य से विरुद्ध दिशा में चंद्रमा को धक्का देकर पृथ्वी से दूर कर रही है। यह पहले ही कहा गया है कि सूर्य बहुत दूर है इसलिए विचालक शक्ति चंद्रमा को प र के समानान्तर दिशा में र से दूर ढकेले जा रही है। इसलिए यह सिद्ध है कि यह शक्ति चंद्रमा और पृथ्वी को सदैव परस्पर दूर कर रही है, प र के प्रायः समानान्तर काम कर रही है, और इसका प्रभाव उस

* Heroes of Science : Astronomers के आधार पर



समय शून्य होता है जब चंद्रमा च$_{२}$ या च$_{४}$ के पास रहता है क्योंकि उस समय चंद्रमा और पृथ्वी दोनों सूर्य से समान दूर होते हैं।

मान लो यह जानना है कि जिस समय चंद्रमा च$_{४}$ और च$_{१}$ के बीच में अ पर है और नीच पृथ्वी और सूर्य की रेखा पर है उस समय विचालक शक्ति किस प्रकार काम कर रही है। विचालक शक्ति को अ क रेखा से प्रकट किया जा सकता है और 'गति के समानान्तर चतुर्भुज नियम' के अनुसार इस शक्ति को विभक्त करके अ ख और अ ग रेखाओं में प्रकट कर सकते हैं जब कि अ ख रेखा अ पर स्पर्श-रेखा है अर्थात् चंद्रमा की गति की दिशा में है और अ ग रेखा मंदकर्ण (radius vector) की सीध में है और बाहर की ओर पृथ्वी के विरुद्ध काम कर रही है। विचालक शक्ति का जो भाग (resolved part) अ ग दिशा में काम कर रहा है वह चंद्रमा



को पृथ्वी से दूर कर रहा है और जिस समय चंद्रमा $च_1$ पर अर्थात् सूर्य की सीध में आ जाता है उस समय यह भाग ही प्रधान हो जाता है और दूसरा भाग शून्य हो जाता है। इसलिये विचालक शक्ति के इस भाग से चंद्रमा चाहे अ, आ, इ, ई पर

जहाँ हो पृथ्वी से दूर ही होता जाता है, जिसका परिणाम यह होता है कि चंद्रकक्षा अधिक लम्बी हो जाती है जैसा कि चित्र ३७ से प्रकट होता है।

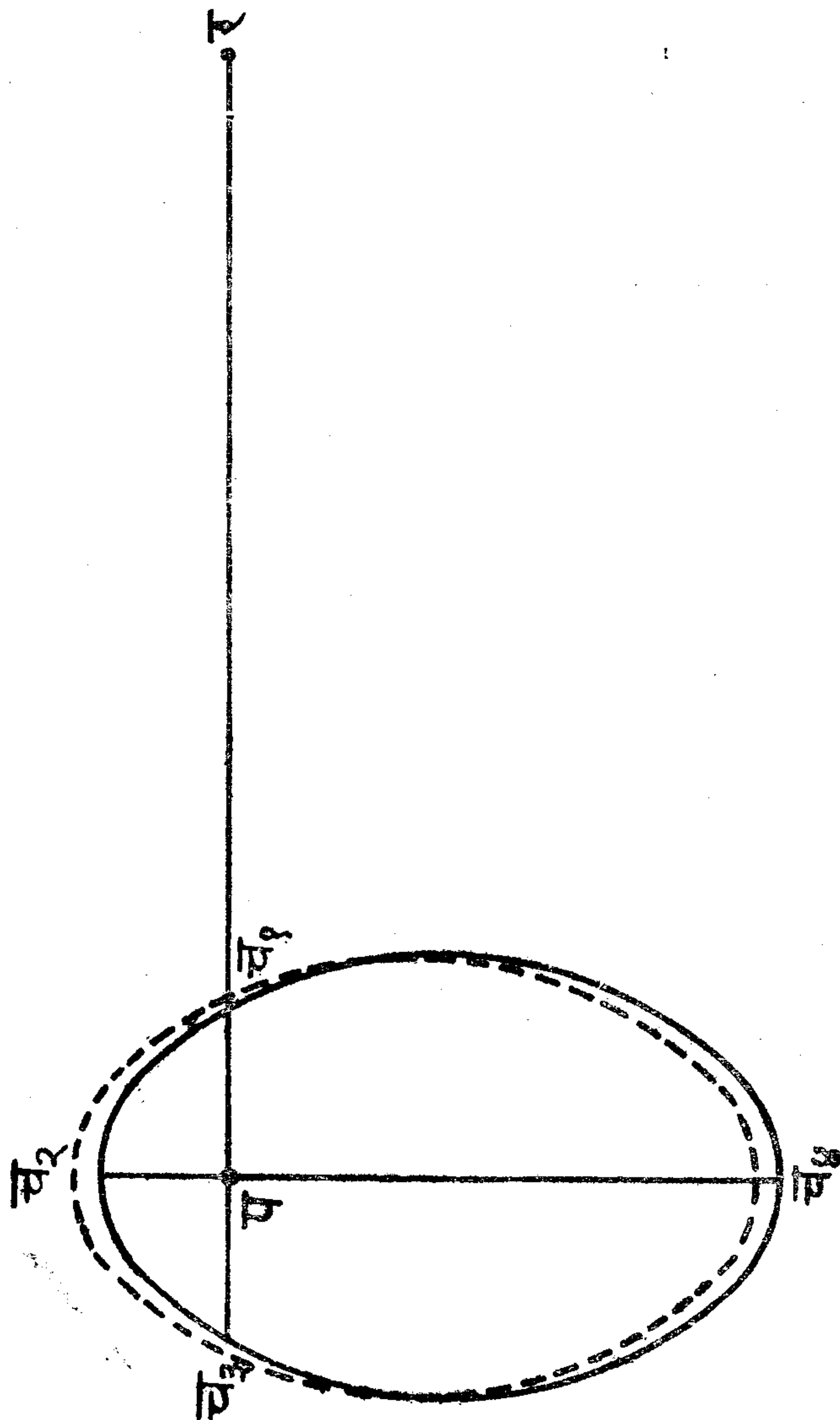
पूर्ण रेखा से वास्तविक चंद्र-कक्षा प्रकट होती है और कटी रेखा से चन्द्र कक्षा का नया रूप प्रकट होता है जो विचालक शक्ति के कारण हो गया है। इससे यह स्पष्ट हो जाती है कि चंद्रकक्षा की च्युति बढ़ गयी क्योंकि दीर्घवृत्ति की च्युति अधिक होने से इसका आकार लम्बा हो जाता है और कम होने से कुछ गोला हो जाता है। यह बात प्रत्यक्ष बेध से भी देखी जाती है जिसका संकेत पहले किया गया है।

समीकरण 'छ' से यह भी सिद्ध है कि मंदफल संस्कार का मुख्य पद च्युति के मान पर कितना अवलम्बित है। यदि च्युति अधिक हो तो मंदफल भी अधिक होता है और च्युति कम हो तो मंदफल भी कम होता है। इसलिए यह सिद्ध है कि इस विचालक शक्ति के कारण चन्द्र कक्षा की च्युति यदि नीच सूर्य की सीध में हो तो अधिक हो जायगा जिससे मन्दफल संस्कार भी बढ़ जायगा। मन्दफल संस्कार यथार्थ जितना बढ़ जाता है उसी को च्युति संस्कार (evection) कहा गया है।

इसके विरुद्ध यदि नीच सूर्य से ९०° आगे या पीछे हो तो (देखो चित्र ३८) चन्द्रकक्षा का आकार कुछ गोल हो जायगा और च्युचि कम पड़ जायगी, जिससे मन्दफल संस्कार यथार्थ से उतना ही कम हो जायगा जितना पहली स्थिति में बढ़ गया है। ऐसी दशा में च्युति संस्कार ऋणात्मक हो जायगा।

इससे यह सिद्ध होता है कि विचालक शक्ति के उस भाग से जो चन्द्रमा के मन्द-कर्ण की दिशा में चन्द्रकक्षा के बाहर की ओर काम कर रहा है चन्द्रमा में इतना विचलन (deviation) हो जाता है कि च्युति-संस्कार की आवश्यकता पड़ती है।

अब इसके उस भाग की ओर ध्यान देना चाहिये जो चन्द्रकक्षा की स्पर्श रेखा की दिशा में काम कर रहा है। इससे यह फल होता है कि जब तक चन्द्रमा (देखो चित्र ३६) $च_४$ और $च_१$ के बीच अथवा $च_२$ और $च_३$ के बीच रहता है तब तक चन्द्रमा की साधारण गति की दशा में ही विचालक शक्ति भी अपना काम करती है और उसकी साधारण गति (जो पृथ्वी के आकर्षण के कारण होती है) को कुछ तीव्र कर देती है। परन्तु जब चन्द्रमा $च_१$ और $च_२$ अथवा $च_3$ और $च_४$ के बीच में रहता है तब तब विचालक शक्ति चंद्रमा की साधारण गति के विरुद्ध काम करती हुई उसको कुछ मन्द कर देती है। यह बात चान्द्रमास के प्रत्येक पक्ष की चौथ और एकादशी को बहुत देख पड़ती है, इसलिए इन तिथियों के कालों में कुछ परिवर्तन कर देती है। इस विषमता के कारण चन्द्रमा में एक और संस्कार भी करना पड़ता है जिसे पाक्षिक-



चित्र ३८

संस्कार (variation) कहते हैं। ज्योतिर्गणित में इसे तिथि-संस्कार कहा गया है। इसके भी कई पद हैं जिनमें मुख्य पद का रूप यह है।

३५′ ४१″·६ ज्या २ (चंद्र—सूर्य)

जब यह बात निश्चित हो गयी कि पृथ्वी की परिक्रमा करने के कारण चंद्रमा की दूरी सूर्य से कभी कम हो जाती है और कभी अधिक जिससे चंद्रमा में विचलन

हो जाता है जो च्युति और पाक्षिक संस्कारों से जाना जा सकता है, तब यह समझना कुछ कठिन नहीं है कि सूर्य की दूरी पृथ्वी से जो वर्ष भर में घटती बढ़ती रहती है उससे भी चंद्रमा के स्थान में कुछ अंतर पड़ जाता है और उपर्युक्त दो संस्कारों से पूरा नहीं होता। इसलिए एक और संस्कार की भी आवश्यकता पड़ती है जिसे वार्षिक संस्कार कहते हैं इसका मुख्य रूप यह है।

११′ ४१″.६७ ज्या (सूर्य-मंद-केन्द्र)

इस प्रकार चंद्रमा के चार मुख्य-मुख्य संस्कारों की चर्चा संक्षेप में हो गयी और यह भी त रूप से बतलाया गया है कि इनके कारण क्या हैं। इनके अतिरिक्त अनेक लघु संस्कार भी हैं जो उच्च-गणित की अच्छी जानकारी बिना समझ में नहीं आ सकते और जिनका आविष्कार गत सौ वर्षों में हुआ है जब कि गणित और वैज्ञानिक यंत्रों की सूक्ष्मता हुई है।

पहले बताया गया है कि च्युति-संस्कार का आविष्कारक टालमी है जो विक्रम की दूसरी शताब्दी में यूनान में रहा है। परंतु इसका कारण न्यूटन के पहले नहीं मालूम हो पाया था। पाक्षिक-संस्कार तथा वार्षिक-संस्कार का आविष्कार टाइको ब्राही ने (Tycho Brahe जन्म १४ दि० १५४६, मृत्यु २४ अक्टूबर, १६०१ ई०) अपनी अपूर्व निरूपण-शक्ति से किया था। इसका कारण उसको भी नहीं मालूम हो सका था क्योंकि उस समय तक उच्च गणित का तथा आकर्षण सिद्धान्त का अच्छा ज्ञान नहीं था। तिथि संस्कार का कुछ संकेत अबुल वफ़ा नामक मुसलमान ज्योतिषी ने भी किया था।

प्राचीन भारतीय ज्योतिषियों ने मंदफल संस्कार के अतिरिक्त अन्य किसी संस्कार की ओर ध्यान नहीं दिया था। मुंजाल[1] ने (८५४ शक० ९८९ वि०) च्युति संस्कार की तरह एक संस्कार तथा एक पाक्षिक-संस्कार की चर्चा की है

---

१. अयं संस्कारश्च "इवेक्शन् वेरियेशन् नामक संस्कारवत् प्रतिभाति। तत्र श्लोकौच।

इन्दूच्चोनार्ककोटिघ्ना गत्यंशा विभवा विधोः।
गुणो व्यर्केन्दु दोः कोट्यो रूप पञ्चाप्तयोः क्रमात्॥
फले शशाङ्क तद गत्योर्लिप्ताद्ये स्वर्णयोर्वधे।
ऋणं चन्द्रे धनं भुक्तौ स्वर्णं साम्यवधेऽन्यथा॥

अत्र व्याख्याकारः 'अयं संस्कारस्थिति भ योग साधने न क्रियते पूर्वरुपेक्षितत्वात्' (गणक तरङ्गिणी पृष्ठ २१ पाद टिप्पणी)

और नित्यानन्द जी[१] (शक १५६१ वि० १६९६ में) ने पाक्षिक संस्कार और पात संस्कार की चर्चा की है; परन्तु इनका प्रचार नहीं हुआ। सिद्धान्त-दर्पण से प्रकट होता है कि म० म० चन्द्र शेखर सामन्त ने भी संस्कारों की चर्चा की है।

इन चारों संस्कारों के साथ चन्द्रमा सम्बन्धी प्रधान समीकरण का रूप यह होगा :—

स=म

+३७६′५६″४ ज्या म
+१२′५४″.७′ ज्या २ म
+३६″ .९ ज्या ३ म
+२.″० ज्या म
} मंदफल संस्कार

+१°२०′२९″.५ ज्या [२ चंद्र—रवि)—म] च्युति संस्कार

+३५′४१″.६ ज्या २ (चंद्र—रवि) पाक्षिक संस्कार

+११′११.९७ ज्या (सूर्य मन्द केन्द्र) वार्षिक संस्कार

यहाँ स चन्द्रमा का स्पष्ट केन्द्र और म चंद्रमा का मंद केन्द्र है, जब कि मन्द केन्द्र की गणना नीच (perigee) से की गयी है। ज्योतिर्गणित में च्युति और पाक्षिक संस्कार के और पद भी दिये गये हैं जो यहाँ नहीं दिये जाते। च्युति के मंद परिवर्तन के कारण अङ्कों में एकाध कला का अंतर पड़ता जाता है जिसका ध्यान रखना आवश्यक है।

आधुनिक ज्योतिष का इतना परिचय देना मेरी समझ में पर्याप्त है। उदाहरण देने से विस्तार बहुत हो जायगा; इसलिए उदाहरण नहीं दिये जाते।

कुजार्किगुरुपातानां ग्रहवच्छीघ्रजं फलम्।
वामं तृतीयकं मान्दं बुधभार्गवयोः फलम् ॥५६॥
स्वपातोनाद्ग्रहाज्जीवा शीघ्रास्त्र बुधशुक्रयोः।
विक्षेपघ्नाऽन्त्यकर्णाप्ता विक्षेपस्त्रिज्यया विधोः ॥५७॥

अनुवाद—(५६) मंगल, शनि और गुरु के पातों के स्थानों में प्रत्येक के दूसरे शीघ्रफल का संस्कार उसी प्रकार करो जिस प्रकार ग्रह के साथ किया जाता है अर्थात् यदि यह धनात्मक हो तो जोड़ दो और ऋणात्मक हो तो घटा दो। ऐसा

---

१. अत्र मन्दफलातिरिक्तः पाक्षिक नामक संस्कारश्च मध्यम रवि चन्द्रान्तर वशतश्चन्द्रे देयस्तथाऽनेन विधिना जातश्चन्द्रो विमण्डल स्थो भवति…(गणक तरंगिणी, पृष्ठ १०१)

करने से इन तीन ग्रहों के पातों के स्पष्ट स्थान ज्ञात हो जायँगे । परन्तु बुध और शुक्र के पातों के स्थानों में प्रत्येक के दूसरे मन्द फल का, जो ग्रह को स्पष्ट करने के लिए तीसरे संस्कार में काम आता है उलटा संस्कार करो अर्थात् यदि धनात्मक हो तो घटा दो और ऋणात्मक हो तो जोड़ दो । ऐसा करने से बुध और शुक्र के स्पष्ट पात ज्ञात हो जाँयगे । (५७) मंगल, शनि और गुरु प्रत्येक के स्पष्ट स्थान में से अपने-अपने पात के स्पष्ट स्थान को घटा दो जो शेष हो उसकी ज्या निकालो और इस ज्या को ग्रह के मध्यम विक्षेप से गुणा करके अन्तिम शीघ्रकर्ण से भाग दे दो तो स्पष्ट विक्षेप या शर ज्ञात हो जायगा । परन्तु बुध और शुक्र के शीघ्रोच्च के स्थानों में से इनके स्पष्ट पात घटाकर शेष की ज्या निकालनी चाहिये और इस ज्या को बुध और शुक्र के मध्यम विक्षेप से गुणा करके अन्तिम शीघ्रकर्ण से भाग देना चाहिये । चन्द्रमा का स्पष्ट शर (विक्षेप) जानने के लिए स्पष्ट चन्द्र के स्थान में से पात (राहु) का स्थान घटाकर शेष को चन्द्रमा के मध्यम विक्षेप से गुणा करके त्रिज्या से भाग दे देने से ही काम हो जाता है ।

विज्ञान भाष्य—उदाहरण के लिए गुरु का स्पष्ट शर जानने की रीति लिखी जाती है । १९७८ वि० की बसंत पंचमी की अर्द्धरात्रि को उज्जैन में गुरु का स्पष्ट स्थान गणना से जो कुछ आया वह ६ $^{\text{रा}}$ ७°५३′३७″ है ।

इसलिए इसी समय का गुरु का स्पष्ट शर निकालना सुगम होगा । एक कल्प में वृहस्पति का पात १७४ भगण करता है, इसलिए १९७९ वि० की वसंत पंचमी के दिन जब कि सृष्टि के आदि से १, ९५, ५८, ८५, ०२३ सौर वर्ष बीते हैं† वृहस्पति के पात का स्थान

$$= \frac{\text{१,९५,५८,८५,०२३} \times \text{१७४}}{\text{४,३२,००,००,०००}}$$

$$= \frac{\text{१,९५,५८,८५,०२३} \times \text{२९}}{\text{७ ,००,००,०००}}$$

$$= \text{७८}^{\text{भ}}\,\text{९}^{\text{रा}}\ \text{१०}^{\circ}\ \text{१९}'\ \text{५८.२}''$$

या $\text{९}^{\text{रा}}\ \text{१०}^{\circ}\ \text{१९}'\ \text{५८-२}''$ क्योंकि पूरे भगण लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है । परन्तु पातों की गति विलोम दिशा में अथवा पच्छिम दिशा में होती है ।

---

†यह १९७९ वि० की मेष संक्रान्ति के समय का है परन्तु पात की गति अत्यन्त मन्द होने से इसी को वसंत पंचमी के दिन का भी मान लेने में कोई हानि नहीं है ।

इसलिए ऊपर जो स्थान पात के लिए आया है वह ऋणात्मक है। इसको १२ राशि में से घटाने पर गुरु के पात का स्थान (भोगांश) साधारण रीति के अनुसार आ जावेगा। इसलिए गुरु के पात का स्थान $=२^{रा}$ १६° ४०′ २०″†

उपर्युक्त ५६वें श्लोक के अनुसार इसी में दूसरे शीघ्र फल का संस्कार ग्रह की तरह करना चाहिये। वसंत पंचमी के दिन बृहस्पति का दूसरा शीघ्रफल + १०° ४७′ और अंतिम शीघ्र कर्ण ३६०८ है।

इसलिये दूसरा शीघ्रफल संस्कृत पात

$$=२^{रा}\ १६°\ ४०'\ २'' + १०° ४७'$$
$$=३^{रा}\ ०° २७'\ २''$$

परंतु गुरु का स्पष्ट स्थान $=६^{रा}$ २७° ५३′ ३७″

∴ ५७ वें श्लोक के अनुसार पात से गुरु का अंतर

$$=६^{रा}\ २७°\ ५३'\ ३७'' - ३^{रा}\ ०°\ २७'\ २''$$
$$=३^{रा}\ २७°\ २६'\ ३५''$$

यही वसंत पंचमी के दिन गुरु का विक्षेप केन्द्र हुआ।

इसी विक्षेप केन्द्र की ज्या को गुरु के मध्यम विक्षेप से जो मध्यमाधिकार के ६९-७० श्लोकों के अनुसार १° या ६०′ है गुणा करके अन्तिम शीघ्रकर्ण से भाग देने पर गुरु का स्पष्ट विक्षेप या शर आ जायगा।

$३^{रा}$ २७° २६′ ३५″ दूसरे अर्थात् समपद में है इसलिए इसकी ज्या दूसरे पाद के गम्य भाग की ज्या के समान होती है।

$$\therefore ज्या\ ३^{रा}\ २७°\ २६'\ ३५'' = ज्या\ २^{रा}\ २°\ ३३'\ २५''$$
$$= ज्या\ ६२°\ ३३'\ २५''$$
$$= ३०५० \text{ कला}$$

$$\therefore \text{गुरु का स्पष्ट शर} = \frac{३०५० \times ६०}{३६०८} \text{ कला}$$
$$= ५०'\ ४३''$$

विक्षेप केन्द्र १८०° से कम है, इसलिए गुरु क्रान्ति वृत्त से उत्तर है और ५०′ ४३″ गुरु का उत्तर शर हुआ।

---

†सूर्य सिद्धान्त-मध्यमाधिकार (विज्ञान परिषद्)

इसी प्रकार मंगल और शनि के भी शर जाने जा सकते हैं। बुध और शुक्र के लिए कुछ भिन्नता करनी पड़ती है अर्थात् इनका विक्षेप केन्द्र जानने के लिए इनके पातों में दूसरे मंद फल का जो तीसरे कर्म में काम आता है उलटा संस्कार करके शीघ्रोच्चों के स्थानों में से घटाना पड़ता है। इसके बाद जो कुछ करना पड़ता है वह उपर्युक्त रीति की तरह होता है।

चंद्रमा का स्पष्ट शर जानने के लिए यह सब झंझट करने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि इसमें शीघ्र कर्म का संस्कार नहीं करना पड़ता। इसलिए इसके लिए वही नियम लागू है जो २८ वें श्लोक में सूर्य के लिए बतलाया गया है, अर्थात् चंद्रमा के विक्षेप केन्द्र (राहु से स्पष्ट चंद्र का अन्तर) की ज्या को चंद्रमा के परम विक्षेप अर्थात् ४°३०′ से गुणा करके ३४३८ कला से जो त्रिज्या का मान है भाग दें तो चंद्रमा का स्पष्ट शर ज्ञात हो जायगा। यदि विक्षेप केन्द्र १८०° से कम हो तो उत्तर शर होगा अन्यथा दक्षिण शर (देखो श्लोक ७ और उसका विज्ञान भाष्य तथा पृष्ठ २२ का चित्र ४)। पृष्ठ १२२ चित्र २५ में व को राहु का स्थान, व प को क्रान्तिवृत्त और व स को चंद्र कक्षा मान लिया जाय तो स प चंद्रमा का उत्तर शर होगा।

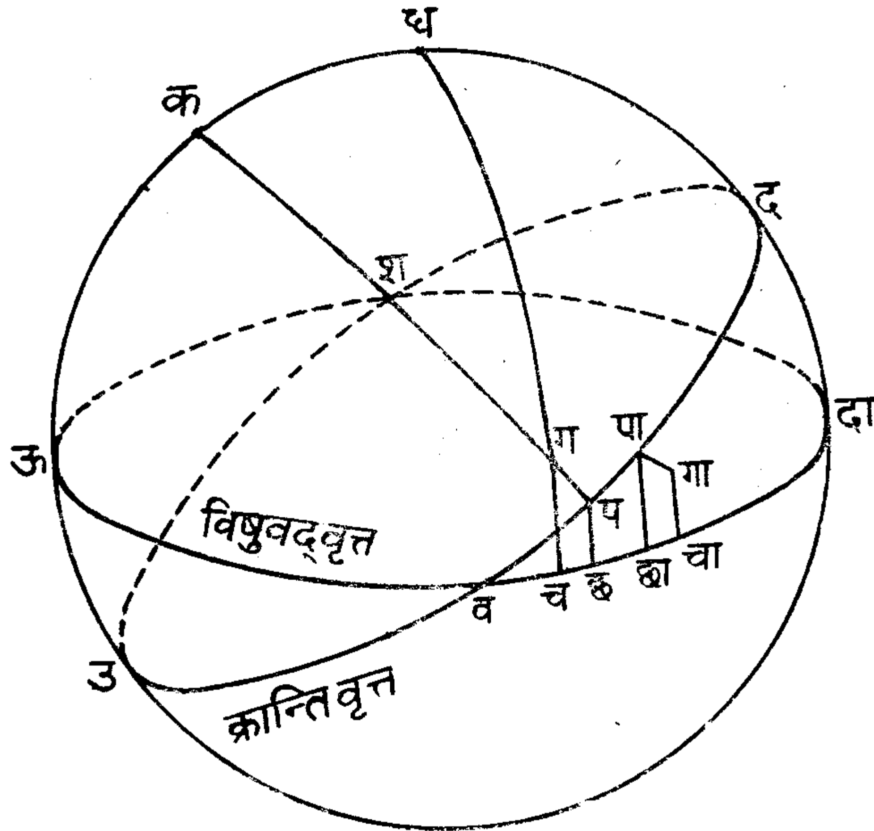
विक्षेपापक्रमैकत्वे क्रान्तिर्विक्षेप संयुता।
दिग्भेदे वियुता स्पष्टाभास्करस्य यथागता ॥५८॥

अनुवाद—(५८) किसी ग्रह की स्पष्ट क्रान्ति जानने के लिए उस ग्रह के स्पष्ट शर (विक्षेप) को उसी ग्रह की (मध्म) क्रान्ति में जोड़ दो यदि शर और क्रान्ति दोनों एक ही प्रकार हों, अर्थात् यदि शर और क्रान्ति दोनों उत्तर हों या दोनों दक्षिण हों। परन्तु यदि इनकी दिशाओं में भिन्नता हो तो इन दोनों का जो अन्तर होगा वही स्पष्ट क्रान्ति होगी। सूर्य की स्पष्ट क्रान्ति जानने के लिए जो नियम पहले (२८वें श्लोक में) बतलाया गया है वही पर्याप्त है (क्योंकि सूर्य क्रान्ति-वृत्त पर ही भ्रमण करता है)।

विज्ञान भाष्य—स्पष्ट ग्रह से क्रान्ति वृत्त का जो अन्तर कदम्ब-प्रोत-वृत्त पर होता है उसे उस ग्रह का स्पष्ट विक्षेप कहते हैं (देखो पृष्ठ २२ मध्य० तथा श्लोक ७, ८) और स्पष्ट ग्रह से विषुवद् वृत्त का जो अन्तर ध्रुव प्रोत वृत्त पर होता है उसे उस ग्रह की स्पष्ट क्रान्ति कहते हैं।

चित्र ३६ में व द श उ क्रान्तिवृत्त, व दा श ऊ विषुवद् वृत्त, क कदम्ब (क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव) और ध ध्रुव है। ग किसी ग्रह का स्थान अपने कक्षा-वृत्त में है जो चित्र में सरलता के विचार से नहीं दिखाया गया है। ग्रह इस समय

क्रान्तिवृत्त के उत्तर दिखलाया गया है। यदि ग्रह गा विन्दु पर हो तो क्रान्ति वृत्त के दक्षिण होगा। क ग प कदम्ब प्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त पर समकोण बनाता है और ध ग च ध्रुव प्रोत वृत्त विषुवद् वृत्त पर समकोण बनाता है। प छ भी ध्रुव प्रोतवृत्त का खंड है और विषुवद् वृत्त पर समकोण बनाता है। ग प, ग का उत्तर विक्षेप, प छ, ग की उत्तर मध्य क्रान्ति और ग च, ग की उत्तर स्पष्ट क्रान्ति है। इसी प्रकार गा पा, गा ग्रह का दक्षिण विक्षेप, पा छा, गा ग्रह की उत्तर मध्य क्रान्ति और गा चा, गा की उत्तर स्पष्ट क्रान्ति है। पहली दशा में मध्य क्रान्ति और विक्षेप दोनों उत्तर हैं, इसलिए इन दोनों को जोड़ने से नियमानुसार स्पष्ट उत्तर क्रान्ति आयेगी। परन्तु दूसरी स्थिति में विक्षेप दक्षिण और मध्य क्रान्ति उत्तर है, इसलिए इन दोनों के अन्तर से स्पष्ट उत्तर क्रान्ति ज्ञात होगी।

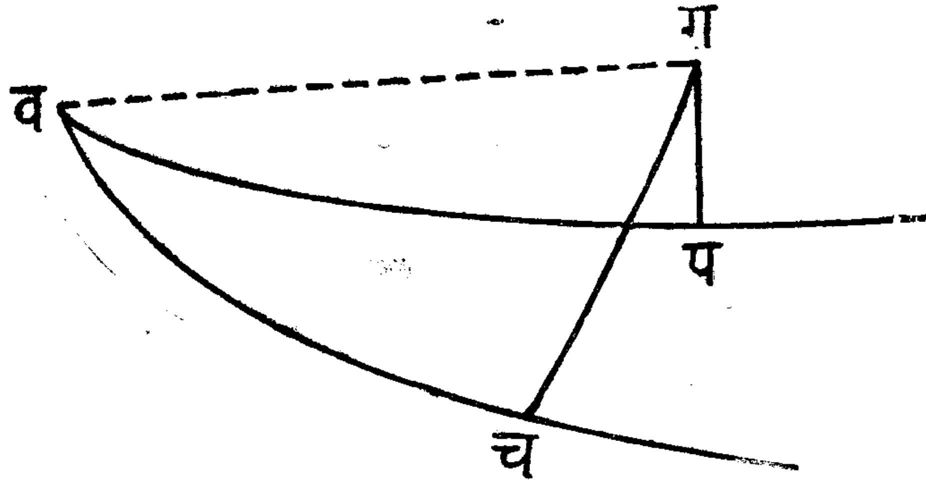


चित्र ३९

यहाँ एक बात विचारणीय है। ग प कदम्ब-प्रोतवृत्त का खण्ड है और प छ ध्रुव-प्रोत वृत्त का; इसलिए इन दोनों का योग ग च के समान नहीं होगा वरन कुछ भिन्न होगा। परन्तु आचार्य ने ऐसा ही लिखा है। इससे यह समझना चाहिये कि आचार्य के विचार में यह भिन्नता इतनी कम समझी गयी है कि इससे जो स्थूलता हो जाती है वह नहीं के समान समझ ली गयी है। भास्कराचार्य जी ने इसीलिए

इस रीति को अयुक्त[1] कह कर अयन वलन संस्कार करने का आदेश दिया है[2] जो विस्तार भय से यहाँ न लिख कर नेपियर के नियमों के आधार पर इस संस्कार की एक सरल रीति लिखी जाती है। सुविधा के लिए चित्र ३९ का सरल रूप चित्र ४० लिया जाता है।

इस चित्र में ग ग्रह का स्पष्ट स्थान, ग प ग्रह का स्पष्ट विक्षेप, ग च ग्रह की स्पष्ट क्रान्ति, व प ग्रह का सायन भोगांश, व च ग्रह का विषुवांश, और व ग



चित्र ४०

परम वृत्त का धनु है। इसलिए स्पष्ट है कि △ ग प व और △ ग च व समकोण गोलीय त्रिभुज है और प व च कोण क्रान्ति वृत्त और विषुष वृत्त के बीच का कोण है जिसे २८वें श्लोक में परम अपक्रम कहा गया है।

यदि ग्रह का सायन भोगांश व प और स्पष्ट विक्षेप ग प ज्ञात हो तो नेपियर के नियम (२) के अनुसार समकोण △ ग व प में,

$$\text{कोज्या (व ग)} = \text{कोज्या (ग प)} \times \text{कोज्या(व प)} \qquad (१)$$

नियम (१) के अनुसार

$$\text{ज्या (व प)} = \text{स्पर्श रेखा (ग प)} \times \text{कोटि स्पर्श रेखा (ग व प)}$$

$$\text{अथवा कोटिस्पर्श रेखा (ग व प)} = \text{ज्या (व प)} \times \text{कोटि स्पर्श रेखा (ग प)} \qquad (२)$$

---

[1] विक्षेपः कदम्बाभिमुखो भवति। ध्रुवाभिमुख्या क्रान्त्या सह कथं तस्य भिन्न दिक्कस्य योग वियोगावुचितौ। तयोर्यद्भिन्नदिक्त्वं तदायन वलन वशात्।......

सिद्धान्त शिरोमणि गणिताध्याय, पृष्ठ २१५

[2] गणिताध्याय, पृष्ठ २१७।

इन दोनों समीकरणों से व ग धनु और ग व प कोण जाने जा सकते हैं। फिर समकोण △ ग व च में, नियम (२) के अनुसार

ज्या (ग च)=ज्या (व ग) ×ज्या (<ग व प+<प व च) (३)

और नियम (१) के अनुसार

स्पर्श रेखा (व च)=स्पर्श रेखा (व ग)×कोज्या

(<ग व प+<प व च) (४)

समीकरण (१), (२) और (३) से किसी ग्रह या तारे का विक्षेप और सायन भोगांश ज्ञात हो तो उसकी क्रान्ति जानी जा सकती है और समीकरण (४) की सहायता से उसका विषुवांश जाना जा सकता है।

इसी प्रकार यदि विषुवांश और क्रान्ति ज्ञात हों तो सायन भोगांश और विक्षेप भी जाने जा सकते हैं।

ग्रहोदयप्राणहता खखाष्टैकोद्धृता गतिः।
चक्रासवो लब्धयुता स्वाहोरात्रासवस्स्मृताः ॥५६॥

अनुवाद—(५६) ग्रह जिस राशि में हो वह जितने प्राणों में उदय होती हो उसको ग्रह की दैनिक गति से गुणा करके १८०० से भाग देने पर जो कुछ आवे उसको पूरे चक्र के असुओं में जोड़ दिया जाय तो योगफल ग्रह के अहोरात्र का परिमाण होता है।

विज्ञान भाष्य—मध्यमाधिकार के ११-१३ श्लोकों में नाक्षत्र-अहोरात्र, घड़ी, पल, प्राण, सावन दिन इत्यदि की चर्चा विस्तार के साथ की गयी है। वहाँ यह बतलाया गया है कि एक नाक्षत्र अहोरात्र २१६०० असुओं या प्राणों का होता है और सावन दिन नाक्षत्र अहोरात्र से प्रायः ४ मिनट या १० पल या ५६ प्राण अधिक होता है क्योंकि सूर्य प्रति दिन प्रायः १ अंश पूर्व की ओर बढ़ता है जब कि नक्षत्र या तारे एक ही जगह स्थिर रहते हैं। जैसे एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक के समय को सावन दिन कहते हैं उसी प्रकार किसी ग्रह के पूर्व में उदय होने के समय से दूसरे दिन फिर उदय होने तक के समय को उस ग्रह का अहोरात्र कहते हैं। यदि ग्रह मार्गी हुआ तो उसका अहोरात्र नाक्षत्र-अहोरात्र से अधिक और वक्री हुआ तो कम होगा। नक्षत्र अहोरात्र से ग्रह का अहोरात्र कितना अधिक या कम होगा यही जानने की रीति इस श्लोक में बतलायी गयी है। ग्रह दिन भर में जितना आगे चलेगा या पीछे हटेगा उसी के अनुसार ग्रह का अहोरात्र नाक्षत्र-अहोरात्र से अधिक या कम होगा। त्रिप्रश्नाधिकार नामक तीसरे अध्याय में ४१-४३ श्लोकों में यह विस्तार के साथ

बतलाया जायगा कि कौन राशि किस जगह कितने समय में उदय होती है। जितने समय में जो राशि जहाँ क्षितिज के ऊपर आती है अर्थात् उदय होती है उसी समय को (नाक्षत्र काल के अनुसार) उस जगह उस राशि के उदय-प्राण या उदयासु कहते हैं। इसलिए यह त्रैराशिक से सहज ही जाना जा सकता है कि जब राशि का उदय उदयप्राण के समान समय में होता है तो उस राशि में ग्रह जितना दिन भर में हटता है उतने का उदय कितने प्राण में होगा। बस नाक्षत्र अहोरात्र की अपेक्षा इतने ही प्राण अधिक बीतने पर मार्गी ग्रह दूसरे दिन क्षितिज में फिर आ जायगा। एक राशि ३० अंश या ३० × ६० या १८०० कला के समान होती है। ग्रह की दैनिक गति भी कला में ही साधारणतः प्रकट की जाती है, इसलिए यह अनुपात हुआ—

१८०० कला : ग्रह की दैनिक गति : : राशि का उदय प्राण : इष्ट अन्तर

$$\therefore \text{इष्ट अंतर} = \frac{\text{राशि का उदय प्राण} \times \text{ग्रह की गति}}{\text{१८०० कला}}$$

बस यही अंतर नाक्षत्र अहोरात्र में जो २१६०० प्राणों का होता है जोड़ने से (यदि ग्रह मार्गी हुआ) और घटाने से (यदि ग्रह वक्री हुआ) ग्रह का अहोरात्र ज्ञात होता।

इस नियम में थोड़ी सी स्थूलता है। यदि ग्रह क्रान्तिवृत्त पर जिसमें कि राशियाँ होती हैं भ्रमण करता होता तो यह नियम बिल्कुल ठीक होता परन्तु वह तो अपने कक्षावृत्त में घूमता है, जिसके कारण वह या तो क्रान्तिवृत्त के उत्तर होता है या दक्षिण। यदि उत्तर हुआ तो कुछ पहले ही उदय होगा और यदि दक्षिण हुआ तो कुछ पीछे। यदि ग्रह के प्रतिदिन के उदय-काल के विषुवांश ५८ वें श्लोक के विज्ञान भाष्य के समीकरण (४) के अनुसार जान लिए जायँ और विषुवांशों के अंतर को प्राणों में बदल दिया जाय तो इसको २१६०० प्राणों में जोड़ने से ग्रह के उदय-प्राण ठीक-ठीक निकलेंगे।

आगे के कई श्लोकों में यह जानने की रीति बतलायी गयी है कि अहोरात्र-मान में से कितने समय तक ग्रह क्षितिज के ऊपर रहेगा और कितने समय तक क्षितिज के नीचे अर्थात् ग्रह का दिनमान और रात्रिमान कितने कितने समय के होते हैं। इसके लिए पहले यह जानना आवश्यक है कि ग्रह का चर प्राण कितना है जो नीचे लिखे श्लोकों के अनुसार जाना जाता है :—

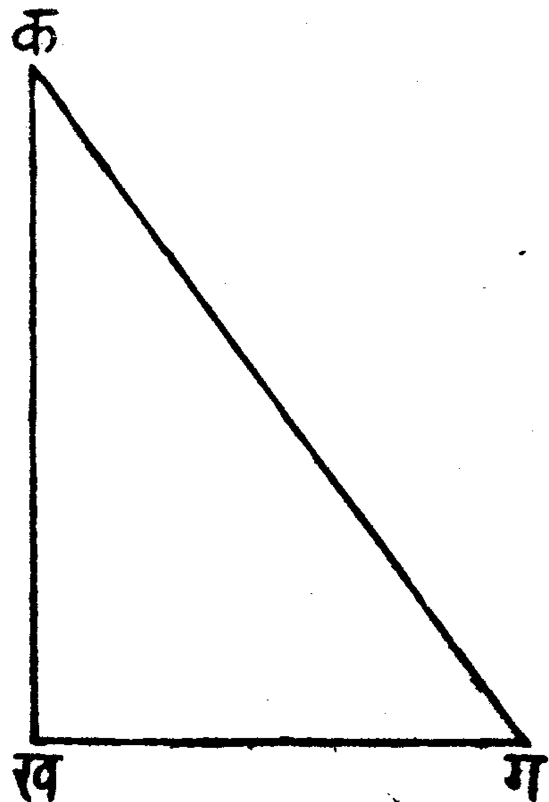
क्रान्तेः क्रमोत्क्रमज्ये द्वे कृत्वा तत्रोत्क्रमज्यया।
हीना त्रिज्या दिनव्यासदलं तद्दक्षिणोत्तरम् ॥६०॥

क्रान्तिज्या विषुवद्भाघ्ना क्षितिज्या द्वादशोद्धृता ।
त्रिज्यागुणा होरात्रार्धकर्णाप्ता चरजासवः ॥६१॥

अनुवाद—(६०) ग्रह की स्पष्ट क्रान्ति की ज्या और उत्क्रम ज्या दोनों जानकर उत्क्रम ज्या को त्रिज्या अर्थात् ३४३८ कला में से घटा दे तो अहोरात्र-वृत्त का व्यासार्द्ध निकल आता है। इसको द्युज्या भी कहते हैं। यदि क्रान्ति दक्षिण हो तो अहोरात्र वृत्त का व्यासार्ध दक्षिण होता है और यदि क्रान्ति उत्तर होती है तो उत्तर होता है। (६१) क्रान्ति ज्या को पलभा से गुणा करके १२ से भाग देने पर क्षितिज्या आती है जिसको त्रिज्या से गुणा करके अहोरात्र-वृत्त के व्यासार्ध से भाग देने पर जो लब्धि आती है उसे चरज्या कहते हैं। चरज्या के धनु की कला को चर प्राण कहते हैं।

विज्ञान भाष्य—इन दो श्लोकों में त्रिप्रश्नाधिकार नामक तीसरे अध्याय का सार भरा हुआ है इसलिए इनमें जो पारिभाषिक शब्द आये हैं उनका विस्तृत विवेचन उसी अध्याय में मिलेगा। परन्तु इन दो श्लोकों का अर्थ समझने के लिए यह आवश्यक है कि पारिभाषिक शब्दों तथा कुछ अन्य बातों की संक्षेप में चर्चा की जाय।

पलभा—जिस दिन सूर्य विषुवद् वृत्त पर होता है अर्थात् जिस दिन सूर्य सायन मेष या सायन तुला विन्दुओं पर आता है उस दिन समतल भूमि पर सीधे गड़े हुए १२ अंगुल के शंकु की छाया मध्याह्न कालिक जितनी बड़ी होती है उसी को पलभा कहते हैं।



चित्र ४१

चित्र ४१ में समतल भूमि के ख बिन्दु पर क ख शंकु सीधा गड़ा है और क ख की नाप १२ अंगुल है तो सायन मेष संक्रान्ति के दिन मध्यान्ह काल में क ख की छाया यदि ख ग हो तो ख ग की नाप को ही ख स्थान की पलभा, विषुवद्भा, अक्षभा इत्यादि कहेंगे। इस पलभा का मान सब जगह एक सा नहीं होता वरन् अक्षांश के अनुसार बढ़ता घटता है। विषुवत् रेखा पर जहां अक्षांश शून्य होता है सायन मेष संक्रान्ति के दिन ख ग का मान शून्य होता है। विषुवत् रेखा से ज्यों-

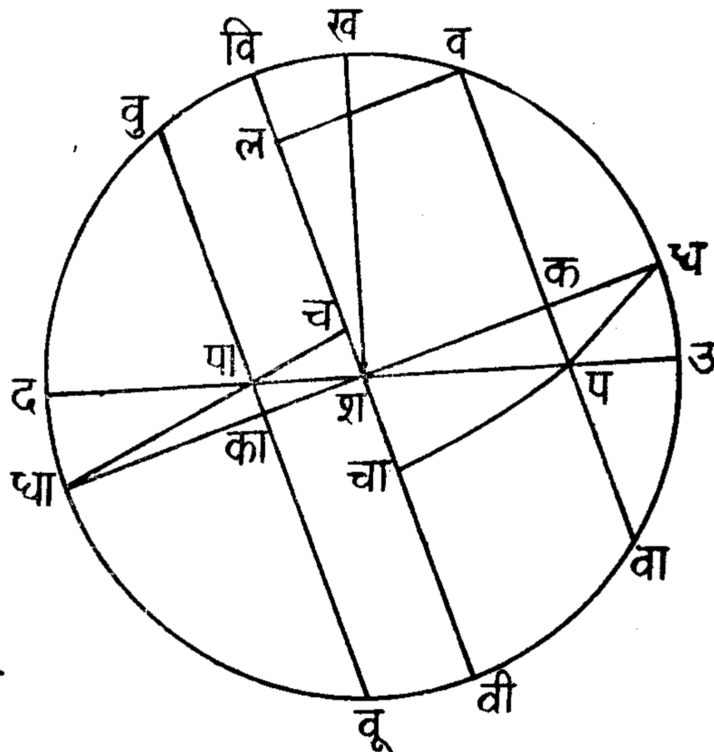
ज्यों उत्तर या दक्षिण जाइये त्यों-त्यों पलभा का मान बढ़ता जायगा। उत्तर गोल में पलभा शंकु से उत्तर दिशा में होगी और दक्षिण गोल में दक्षिण दिशा में; इसलिए पलभा से किसी स्थान का अक्षांश सहज ही जाना जा सकता है। हमारे देश में इसीलिए अक्षांश अंशों में प्रकट करने की जगह पलभा की नाप में जो अंगुलों में ली जाती है प्रकट करने की परिपाटी है। ख क ग कोण को ख स्थान का अक्षांश* कहते हैं, इसलिए,

$$\text{अक्षांश की स्पर्शरेखा} = \frac{\text{ख ग}}{\text{ख क}} = \frac{\text{पलभा}}{\text{शंकु}} = \frac{\text{पलभा}}{१२} \quad (१)$$

इससे स्पष्ट है कि पलभा के ज्ञान से अक्षांश का मान कैसे जाना जा सकता है।

हमारे ग्रन्थों में ज्या, कोज्या, और उत्क्रम ज्या के सिवा अन्य त्रिकोणमितीय अनुपातों की चर्चा नहीं है; परन्तु अन्य अनुपातों का काम और रीति से लिया जाता है; जैसे अक्षांश की स्पर्शरेखा का काम $\frac{\text{पलभा}}{\text{शंकु}}$ से लिया जाता है।

द्युज्या, कुज्या और चरज्या को समझने के लिए नीचे लिखे चित्र को देखो—



चित्र ४२

*ऐसा मान लेने से लम्बन के कारण तनिक सी अशुद्धि रह जाती है, जिसका विवेचन तीसरे अध्याय में किया जायगा। परन्तु इस अशुद्धि से कोई हर्ज नहीं हो सकता।

श वह स्थान है जहाँ के लिए देखना है कि ग्रह कितने समय तक क्षितिज के ऊपर रहता है। उ श द रेखा श स्थान की क्षितिज रेखा तथा ध श धा निरक्ष देश की क्षितिज रेखा है। ध, आकाशीय उत्तरी ध्रुव और धा आकाशीय दक्षिणी ध्रुव है। उ ध ख द धा यामोत्तर वृत्त और ख, श का ख का खास्वस्तिक है। पृथ्वी की दैनिक गति के कारण ग्रह नक्षत्र, सूर्य इत्यादि जिस जिस वृत्त पर घूमते हुए दिन में एक परिक्रमा करते देख पड़ते हैं उस-उस वृत्त को उस ग्रह, नक्षत्र, या सूर्य का अहोरात्र वृत्त (Diurnal circle) कहते हैं। यह अहोरात्र-वृत्त विषुवत्-वृत्त के समानान्तर[1] होते हैं। तीन अहोरात्र वृत्तों के व्यास चित्र ४२ में ब वा, वि वी और वु वू रेखाओं से प्रकट किये गये हैं। वि वी अहोरात्र-वृत्त का व्यास विषुवत् वृत्त से मिल जाता है। इस प्रकार वही तारे या ग्रह चलते देख पड़ते हैं जो ठीक विषुवत् वृत्त पर होते हैं। सायन विषुव संक्रान्ति के दिन सूर्य भी (यदि इसकी क्रान्ति की गति थोड़ी देर के लिए स्थिर मान ली जाय) इसी अहोरात्र वृत्त पर चलता हुआ देख पड़ता है। यदि किसी ग्रह की उत्तर क्रान्ति व वि धनु के समान हो तो उस ग्रह के अहोरात्र वृत्त का व्यास व वा होगा। इसी तरह यदि ग्रह की दक्षिण क्रान्ति वि वु के समान हो तो उसके अहोरात्र वृत्त का व्यास वु वू होगा।

चित्र से प्रकट है कि ध श धा रेखा से जो निरक्ष देश की क्षितिज रेखा है सभी अहोरात्र वृत्त के व्यास दो समान भागों में कट जाते हैं। निरक्ष देश में जब तक सूर्य, तारा या ग्रह ध श धा रेखा से ऊपर रहता है तब तक वह देख पड़ता है या उदय रहता है और जब तक वह इस रेखा से नीचे रहता है तब तक नहीं देख पड़ता अथवा अस्त रहता है। इसलिए निरक्ष देश में जहाँ यह रेखा क्षितिज बनाती है सूर्य, चन्द्रमा, तारे, सभी—क्रान्ति चाहे जो हो—१२ घंटे तक उदय और बारह घण्टे तक अस्त रहते हैं। इस बारह घण्टे के समय में ६ घण्टे तक तो यह पूर्व क्षितिज से निकल कर ऊपर चढ़ते हुए यामोत्तर-वृत्त पर पहुँचते हैं और ६ घण्टे तक यामोत्तर वृत्त से नीचे उतरते हुए पच्छिम क्षितिज में जा लगते हैं। (प्रकाश वक्री-भवन के कारण जो थोड़ा सा अन्तर पड़ जाता है उसका विचार सुविधा के लिए यहाँ नहीं किया गया है)। निरक्ष देश से उत्तर या दक्षिण के स्थानों में केवल वही ग्रह या तारा आधे दिन तक उदय और आधे दिन तक अस्त रहता है जो विषुवत् वृत्त पर रहता है अर्थात् जिसके अहोरात्र वृत्त का व्यास वि वी से मिलता जुलता है।

---

१. तारे का अहोरात्र वृत्त विषुवत् वृत्त के बिलकुल समानान्तर होता है। सूर्य, चन्द्रमा और ग्रहों के अहोरात्र वृत्तों की दिशा में तनिक सा, अन्तर इसलिये पड़ जाता है कि इनकी क्रान्ति सदैव कुछ बदलती रहती है।

परन्तु जिस ग्रह यह या तारे की क्रान्ति उत्तर होती है वह उत्तर गोल में आधे दिन से अधिक समय तक क्षितिज के ऊपर रहता है और जिसकी क्रान्ति दक्षिण होती है वह आधे दिन से कम समय तक क्षितिज के ऊपर रहता है। दक्षिण गोल में इसका ठीक उलटा होता है। आधे दिन से कितना अधिक या कम समय तक ग्रह क्षितिज के ऊपर रहता है यह उसकी क्रान्ति के मान पर आश्रित है। यदि क्रान्ति अधिक हुई तो यह अन्तर अधिक होता है और कम हुई तो कम। चित्र में जिस ग्रह की उत्तर क्रान्ति व वि है वह श स्थान पर जिसका अक्षांश ध श उ कोण के समान है उस समय तक क्षितिज के ऊपर रहेगा जितने समय तक यह प से व तक ऊपर चढ़ेगा और फिर वहाँ से उतना ही नीचे उतर कर पच्छिम क्षितिज के नीचे चला जायगा। ऊपर बतलाया गया है कि क से व तक जाने में इसको ६ घण्टे लगेंगे; इसलिए प से क तक ऊपर चढ़ने में जितना समय लगेगा ६ घण्टे से उतना ही अधिक इसको प से व तक जाने में लगेगा क्योंकि क्रान्ति उत्तर होने के कारण ग्रह क्षितिज पर उस समय आवेगा जिस समय वह प विन्दु पर पहुँचेगा। उसके प्रतिकूल यदि दक्षिण क्रान्ति होने से ग्रह के अहोरात्र वृत्त का व्यास वु वू हुआ तो जितनी देर तक वह का से पा तक जायगा ६ घण्टे से उतना ही पीछे वह क्षितिज के विन्दु पा पर पहुँचेगा। अहोरात्र वृत्त के व्यास के प क या पा का खंड को कुज्या या क्षितिज्या और इतना चढ़ने में जितना समय लगता है उसे चर-काल कहते हैं। काल प्रायः पलों या प्राणों में प्रकट किया जाता है इसलिये चर-काल को चर पल, चर प्राण अथवा चर असु कहते हैं। अहोरात्र-वृत्त के व्यासार्ध क व, श वि, या का वु को द्युज्या कहते हैं क्योंकि द्यु के अर्थ हैं दिन, अहोरात्र या प्रकाश। चा श खंड को उत्तर क्रान्ति वाले ग्रह की चरज्या और च श खंड को दक्षिण क्रान्ति वाले ग्रह की चरज्या कहते हैं। चरज्या के धनु को चर खंड और इस धनु की कला को चरप्राण कहते हैं क्योंकि एक चक्र में ३६० × ६० कलाएँ अथवा २१६०० कलाएँ और एक नाक्षत्र अहोरात्र में इतने ही प्राण होते। यहाँ यह याद रखना चाहिए कि ध प चा अथवा धा पा च वृत्तपाद विषुवत् वृत्त से समकोण बनाता हुआ खींचा गया है ?

अब देखना है कि चित्र ४२ की सहायता से ६०, ६१ श्लोकों का नियम कैसे सिद्ध होता है।

वि श त्रिज्या है, व क द्युज्या, व श वि कोण या व वि धनु ग्रह की क्रान्ति;
इसलिये क्रान्ति ज्या = व ल = क श

क्रान्ति की उत्क्रम ज्या = वि ल (देखो ११६ पृष्ठ और चित्र २४)

द्युज्या = व क = ल श = श वि − वि ल

= त्रिज्या − क्रान्ति की उत्क्रम ज्या (२)

यही ६०वें श्लोक का अर्थ है। दाहिने पक्ष का मान क्रान्ति-कोटि ज्या के समान है,

∴ द्युज्या = क्रान्ति-कोटि ज्या

त्रिभुज क श प में,

क श = व ल = क्रान्ति ज्या

<क श प = श स्थान का अक्षांश

$$\therefore \text{अक्षांश स्पर्शरेखा} = \frac{\text{क प}}{\text{क श}} = \frac{\text{क्षिति ज्या}}{\text{क्रान्ति ज्या}} \quad (३)$$

परन्तु ऊपर समीकरण (१) में बतलाया गया है कि

$$\text{अक्षांश स्पर्शरेखा} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$$

$$\therefore \frac{\text{पलभ}}{१२} = \frac{\text{क्षितिज्या}}{\text{क्रान्तिज्या}}$$

$$\text{अर्थात् क्षिति ज्या} = \frac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{पलभा}}{१२} \quad (४)$$

परन्तु ध प चा और ध क श दोनों व क और वि श पर लम्ब हैं इसलिए क प और व क का परस्पर जो सम्बन्ध है वही चा श और श वि का भी है, अर्थात्—

व क : क प : : वि श : श चा

$$\text{या श चा} = \frac{\text{क प} \times \text{वि श}}{\text{व क}}$$

$$= \frac{\text{क्षितिज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{द्युज्या}}$$

चा श को चरज्या भी कहते हैं, इसलिए

$$\text{चरज्या} = \frac{\text{क्षितिज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{द्युज्या}} \quad (५)$$

समीकरण (४) और (५) से ६१वें श्लोक का नियम सिद्ध होता है।

चरज्या का कलात्मक धनु चर प्राण कहलाता है।

यदि समीकरण (५) में क्षितिज्या और द्युज्या की जगह समीकरण (२) और (४) के आधार पर इनके मान उत्थापित किये जायँ तो समीकरण (५) का सरल रूप यह होगा :—

$$\text{चरज्या} = \frac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{पलभा}}{१२} \times \frac{१}{\text{क्रान्ति कोटिज्या}} \times \text{त्रिज्या}$$

$$= \frac{\text{क्रान्तिज्या}}{\text{क्रान्ति कोटिज्या}} \times \frac{\text{पलभा}}{१२} \times \text{त्रिज्या}$$

$$= \text{क्रान्ति स्पर्श रेखा} \times \text{अक्षांश स्पर्शरेखा} \times \text{त्रिज्या} \qquad (६)$$

अर्थात् किसी स्थान के अक्षांश की स्पर्शरेखा को ग्रह की क्रान्ति की स्पर्श-रेखा से गुणा करके त्रिज्या से गुणा कर दो तो चरज्या आ जायेगी। यदि चरज्या मान दशमलव भिन्न में आजकल की रीति के अनुसार हो तो समीकरण (६) के दाहिने पक्ष में त्रिज्या से गुणा करने की आवश्यकता न पड़ेगी और चरज्या का सरल रूप यह होगा—

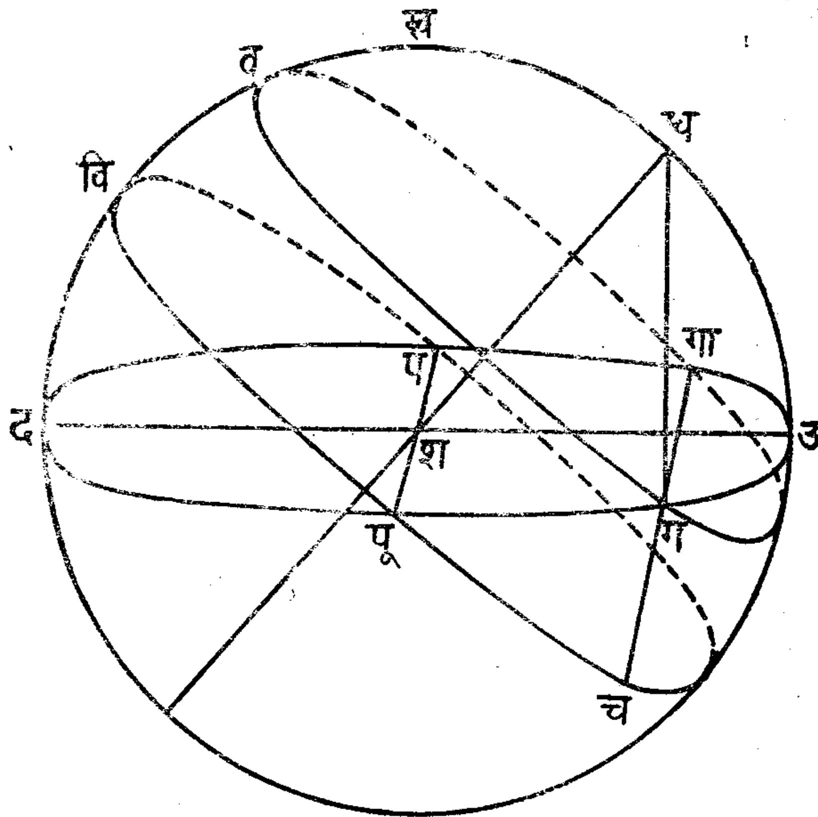
$$\text{चरज्या} = \text{क्रान्ति स्पर्शरेखा} \times \text{अक्षांश स्पर्शरेखा} \qquad (७)$$

इससे यह सिद्ध होता है कि यदि क्रान्ति और अक्षांश ज्ञात हो तो चरज्या सहज ही जानी जा सकती है और द्युज्या, कुज्या इत्यादि जानने के झंझट की आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

समीकरण (७) की उपपत्ति नेपियर के प्रथम नियम के आधार पर इस प्रकार है :—

चित्र ४३ में श उत्तर गोल में एक स्थान है जिसका अक्षांश <उ श ध या उ ध धनु है। उ पू द प, श का क्षितिज-वृत्त है जिसके उत्तर, पूर्व, दक्खिन और पच्छिम विन्दु क्रम से उ, पू, द और प विन्दु है। ख खस्वस्तिक, पू वि प विषुववृत्त और ग व गा उस ग्रह या तारे के अहोरात्र-वृत्त का वह खंड है जो क्षितिज के ऊपर रहता है जब ग्रह की क्रान्ति वि व धनु के समान होती है।

ग्रह का उदय-विन्दु ग उस वृहद् वृत्त (great circle) पर है जो आकाशीय ध्रुव ध से विषुववृत्त के च विन्दु पर लम्ब है। इसलिए जितने समय में ग्रह ग विन्दु से उदय होकर याम्योत्तर वृत्त के व विन्दु पर पहुँचेगा उतने ही समय में च विन्दु च से आगे बढ़ता वि तक पहुँचेगा। परन्तु जब तक च पूर्व-विन्दु पू पर नहीं पहुँच जायगा तब तक यह क्षितिज के नीचे रहेगा। जब वह पू विन्दु पर आवेगा तब से ६ घंटे पीछे वि पर पहुँचेगा। जितने समय में च विन्दु च से पू तक जायगा उतना ही पहले ग्रह का उदय ग पर हो चुका रहेगा। इसलिए च पू धनु की ज्या ग्रह की चर



चित्र ४३

ज्या होगी। इसका परिमाण जानने के लिए नेपियर का पहला नियम बहुत उपयुक्त है क्योंकि ग च पू एक समकोण गोलीय त्रिभुज है जिसका ग च पू कोण समकोण है, ग च ग्रह की क्रान्ति ज्ञात है और ग पू च कोण द पू वि कोण अथवा विद धनु के समान है जो विख धनु अथवा अक्षांश का पूरक कोण है। इसलिए—

ज्या (पू च) = स्पर्शरेखा (ग च) × कोटि स्पर्शरेखा ∠ ग पू च, अथवा

चर ज्या = क्रान्ति स्पर्श रेखा × अक्षांश स्पर्शरेखा।

तन्नाडिका उदक्क्रान्तौ धनं हानिः पृथक्स्थिते।
स्वाहोरात्रचतुर्भागे दिनरात्रिदले स्मृते ॥६२॥
याम्यक्रान्तौ विपर्यस्तं द्विगुणे ते दिनक्षपे।
विक्षेपयुक्तोनितया क्रान्त्या भानामपि स्वके ॥६३॥

अनुवाद—(६२) उपर्युक्त रीति से जो चर ज्या निकले उसके कलात्मक धनु को यदि क्रान्ति उत्तर हो तो ग्रह के अहोरात्र के असुओं के चौथे भाग में जोड़ने से दिन का आधा और घटाने से रात्रि का आधा होगा। (६३) यदि क्रान्ति दक्षिण हो तो इसके विपरीत होगा अर्थात् चौथे भाग में चर कला घटाने से दिन का आधा और जोड़ने से रात्रि का आधा होगा। दिन या रात्रि के आधे को दुगुना कर देने से दिन-

मान और रात्रिमान ज्ञात हो जायँगे । इसी प्रकार किसी नक्षत्र अर्थात् तारे का भी दिनमान या रात्रिमान जानने के लिए उसकी मध्य क्रान्ति में विक्षेप को जोड़ या घटा कर जैसी उसकी दिशा हो स्पष्ट क्रान्ति निकालनी चाहिए और स्पष्ट क्रान्ति से चर-काल जान कर दिनमान या रात्रिमान जानना चाहिए ।

विज्ञान भाष्य—इन श्लोकों को विशेष समझाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इनके पहले के श्लोकों की जो व्याख्या की गयी है और उसके लिए जो चित्र दिये गये हैं उनसे इस नियम की उपपत्ति सहज ही सिद्ध हो सकती है । अंतिम पंक्ति में नक्षत्रों की चरज्या और दिनमान तथा रात्रिमान जानने के लिए भी यही नियम दिया गया है जो कि विज्ञान भाष्य में पहले ही आ चुका है । हां स्पष्ट क्रान्ति जानने के लिए विक्षेप को जोड़ने घटाने की बात में वही भूल होगी जो पहले बतलायी गयी है । इसलिए किसी तारे की स्पष्ट क्रान्ति का ज्ञान भी चित्र ४० के आधार पर बतलायी हुई रीति से करना चाहिए ।

उदाहरण—मान लो किसी तारे की उत्तर क्रान्ति २२°३०′ है तो प्रयाग में उसके दिनमान तथा रात्रिमान क्या होंगे ?

(१) सूर्य सिद्धान्त की रीति से—

प्रयाग की पलभा* = ५ अंगुल ४१ व्यंगुल

= ५.७ अंगुल (स्थूल रीति से)

तारे की क्रान्ति = २२°३०′

∴ क्रान्तिज्या = १३१५

और क्रान्ति की उत्क्रमज्या = २६१′ ,,

∴ द्युज्या = ३४३८′ − २६१′ = ३१७७′

$$\text{क्षितिज्या} = \frac{१३१५ \times ५.७}{१२}$$

$$\text{चरज्या} = \frac{\text{क्षितिज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{द्युज्या}}$$

$$= \frac{१३१५ \times ५.७}{१२} \times \frac{३४३८}{३१७७}$$

$$= \frac{२५७६९५२९}{३८१२४}$$

$$= ६७६'$$

*प्रयाग की पलभा और अक्षांश ज्योतिर्गणित पृष्ठ ७९ के अनुसार लिये हैं ।

∴ चर कला = ६८१′

∴ चर काल = ६८१ प्राण = ११३ पल ३ प्राण

= १ घड़ी ५३ पल ३ प्राण

इसको १५ नाक्षत्र घड़ी में जोड़ा क्योंकि क्रान्ति उत्तर है तो

दिनमान का आधा = १६ घड़ी ५३ पल ३ प्राण

पूर्ण दिनमान = ३३ घड़ी ४७ पल

पूर्ण रात्रिमान = २६ घड़ी १३ पल

यदि सूर्य का दिनमान या रात्रिमान जानना हो तो सूर्य के अहोरात्र के असुओं के चौथे भाग में चर प्राण जोड़कर दूना करने से दिनमान के असु और घटाकर दूना करने से रात्रिमान के असु ज्ञात होंगे यदि क्रान्ति उत्तर हो। सूर्य के अहोरात्र के असु ५९वें श्लोक के अनुसार जानना चाहिये।

इसी प्रकार ग्रह के अहोरात्र के असुओं के चौथे भाग में चर प्राण जोड़कर दूना करने से दिनमान के असु, और घटाकर दूना करने से रात्रिमान के असु निकलेंगे यदि क्रान्ति उत्तर हो।

यह याद रखना चाहिये कि इस प्रकार जो दिनमान या रात्रिमान निकलेंगे वह नाक्षत्र काल की इकाइयों में होंगे। सावन दिन की इकाइयों में बदलने के लिए अलग क्रिया करनी पड़ेगी। एक नाक्षत्र-अहोरात्र २१६०० प्राणों का होता है जबकि एक मध्यम सावन दिन २१६५९.१४ प्राणों का होता है।

(२) नवीन रीति से—

प्रयाग का अक्षांश २५° २५′

तारे की क्रान्ति २२°३०′

∴ चर ज्या = अक्षांश स्पर्शरेखा × क्रान्ति स्पर्शरेखा

= स्पर्शरेखा २५° २५′ × स्पर्शरेखा २२°३०′

= .४७५२ × .४१४२

= .१९६८

∴ चर = ११°२१′

= ११३ पल ३ प्राण

पृथ्वी की १° गति ४ मिनट, १० पल या ६० प्राणों में होती है। इसलिए ११°२१′ चर, ११३ पल और ३ प्राणों के समान रखा गया है।

स्पष्ट है कि नवीन रीति के अनुसार काम लेने में द्युज्या, क्षितिज्या इत्यादि की आवश्यकता नहीं पड़ती। हाँ स्पर्शरेखा की सारिणी की आवश्यकता अवश्य पड़ती है जो ज्या और कोटिज्या की सारिणियों की तरह बनायी जा सकती है।

नक्षत्र जानने की रीति

भभोगोऽष्टशतीलिप्ताः खाश्विशैलास्तथा तिथेः ।
ग्रहलिप्ता भभोगाप्ता भानि भुक्त्या दिनानि च ॥६४॥

अनुवाद—(६४) एक नक्षत्र का भोग ८०० कलाओं का और एक तिथि का भोग ७२० कलाओं का होता है। ग्रह के भोग की कला बनाकर एक नक्षत्र भोग अर्थात् ८०० कला से भाग देने पर लब्धि गत नक्षत्रों की संख्या होती है और शेष आगे के नक्षत्र की गत कला होता है। यदि यह जानना हो कि ग्रह वर्तमान नक्षत्र में कब आया है तो गत कला को ग्रह की दैनिक गति से भाग दे देने से दिन घड़ी आदि की संख्या निकल आवेगी। ८०० कला में से गत कला को घटाकर शेष को दैनिक गति से भाग देने पर यह ज्ञात होगा कि ग्रह वर्तमान नक्षत्र में कब तक रहेगा।

विज्ञान भाष्य—यह बतलाया जा चुका है कि नक्षत्र क्रान्तिवृत्त के २७वें भाग को भी कहते हैं। क्रान्तिवृत्त चक्र ३६० अंशों या ३६०×६० अर्थात् २१६०० कलाओं के समान होता है इसलिए एक नक्षत्र २१६००÷२७=८०० कला के समान होता है। सुविधा के लिए प्रत्येक नक्षत्र का नाम रखा गया है—

१	अश्विनी	१५	स्वाती
२	भरणी	१६	विशाखा
३	कृत्तिका	१७	अनुराधा
४	रोहिणी	१८	ज्येष्ठा
५	मृगशिरा	१९	मूल
६	आर्द्रा	२०	पूर्वाषाढ़
७	पुनर्वसु	२१	उत्तराषाढ़
८	पुष्य	२२	श्रवण
९	आश्लेषा	२३	धनिष्ठा
१०	मघा	२४	शतभिषा
११	पूर्वाफाल्गुनी	२५	पूर्वाभाद्रपद
१२	उत्तराफाल्गुनी	२६	उत्तराभाद्रपद
१३	हस्त	२७	रेवती
१४	चित्रा		

इन २७ नक्षत्रों के अतिरिक्त अभिजित् नक्षत्र की भी किसी-किसी जगह आवश्यकता पड़ती है। यह उत्तराषाढ़ और श्रवण के बीच में पड़ता है। उत्तराषाढ़

का अंतिम चौथा भाग और श्रवण का पहला पन्द्रहवाँ भाग अभिजित् का भोग समझा जाता है। इस प्रकार अभिजित का भोग* २५३$\frac{३}{५}$ कला का हुआ।

प्राचीन काल में २७ नक्षत्रों की जगह अभिजित् को लेकर २८ नक्षत्रों के मान भिन्न भिन्न थे। भास्कराचार्यजी† कहते हैं कि पुलिश, वशिष्ठ, गर्ग आदि ज्योतिषी विवाह यात्रा आदि के फल की सिद्धि के लिए नक्षत्रों के सूक्ष्म मान यह बतला गये हैं :—

चन्द्रमा की मध्यम दैनिक गति ७९०′३५″ मानी गयी है। इसका ड्योढ़ा ११८५′५२.″५ और आधा ३९५′१७″.५ होते हैं।

नक्षत्र	भोग
विशाखा पुनर्वसु रोहिणी तीनों उत्तरा	प्रत्येक का भोग ११८५′५२.″५
आश्लेषा आर्द्रा स्वाती भरणी ज्येष्ठा शतभिज	प्रत्येक का भोग ३९५′१७.″५

शेष १५ नक्षत्रों में प्रत्येक का भोग ७९०′३५″ है। इन सबके भोगों को जोड़ कर २१,६०० कला में से घटाने पर जो आता है वही अभिजित् का भोग है। इस प्रकार सत्ताईस नक्षत्रों के भोग मिलकर $६ \times \frac{३}{२} + ६ \times \frac{१}{२} + १५ \times १$ अथवा २७ मध्यम दैनिक गतियों के समान है, जो $= २७ \times ७९०′३५″$

$$= २७ \times (८०० - ९′२५″)$$
$$= २१६००″ - २५४′१५″$$

इस तरह सिद्ध है कि अभिजित् का भोग २५४′ १५″ है जो मुहूर्त चिंतामणि के मान से ४५″ अधिक है।

इन सब बातों से समझ पड़ता है कि नक्षत्रों के मान प्राचीन काल में चंद्रमा की मध्यम गति के अनुसार तथा नक्षत्र सूचक चमकीले ताराओं को देख कर निश्चित किये गये थे। परन्तु पीछे से जैसे-जैसे ज्योतिष का विकास हुआ तैसे जान पड़ा होगा

---

*वैश्य प्रांत्यांघ्रिः श्रुति तिथिभागतो ऽभिजित्स्यात्।

मुहूर्त चिंतामणि विवाह प्रकरण श्लोक ५५

† सिद्धान्त शिरोमणि गणिताध्याय पृष्ठ १००-१०१

कि वह विभाग मेल नहीं खाते; इसलिए सुविधा के लिये केवल २७ नक्षत्रों में क्रान्ति वृत्त का विभाग किया गया और प्रत्येक भाग ८०० कला का माना गया।

उदाहरण—मान लो यह जानना है कि वसंत पंचमी (१९७९ वि०) के दिन गुरु किस नक्षत्र में थे।

गुरु का स्पष्ट भोग $=$ ६रा २७°५३′३७″

$=$ २०७°५४′ स्थूल रूप से

$=$ १२४७४′

इसको ८०० से भाग देने पर लब्धि १५ और शेष ४७४′ होते हैं।

इसलिए गुरु १५वें नक्षत्र को पार करके १६वें नक्षत्र विशाखा में है और विशाखा का ४७४′ भोग चुका है तथा ३२६ कला शेष है। यह जानने के लिए कि वृहस्पति विशाखा में कब तक रहेगा। नियम के अनुसार ३२६ कला को गुरु की दैनिक गति से भाग देना चाहिए। परन्तु वृहस्पति तथा अन्य मंदगामी ग्रहों के लिए यह नियम सूक्ष्म नहीं है क्योंकि ३२६ कला चलने के लिए वृहस्पति को बहुत दिन चाहिए जिसमें उसकी गति एक सी नहीं रहेगी। इसलिए अधिक सूक्ष्म विचार की आवश्यकता है।

तिथि के विषय में पहले जो कुछ लिखा गया है वही पर्याप्त है। आगे के ६६वें श्लोक में विशेष चर्चा की जायगी।

योग जानने की रीति

रवीन्दुयोगलिप्ताभ्यो योगाभ भोगभाजिता:।
गतं गम्यं च षष्टिघ्नं भुक्तियोगाप्त नाडिका ॥६५॥

अनुवाद—(६५) सूर्य और चन्द्रमा के स्पष्ट स्थानों (निरयन भोगांशों) को जोड़कर उनकी कला बनाकर ८०० से भाग देने पर गत योगों की संख्या निकल आती है। शेष से यह जाना जाता है कि वर्तमान योग की कितनी कला बीत गई है। यदि इस शेष को ८०० कला में घटा दिया जाय तो यह ज्ञात होगा कि वर्तमान योग की कितनी कला रह गयी है। इस गत वा गम्य कला को ६० से गुणा करके सूर्य और चंद्रमा की स्पष्ट दैनिक गतियों के योग से भाग दे दिया जाय तो यह ज्ञात होगा कि वर्तमान योग कितनी घड़ी पहले आरंभ हुआ और कितनी घड़ी पीछे समाप्त होगा।

विज्ञान भाष्य—अश्विनी के आरंभ से जब सूर्य और चंद्रमा दोनों मिलकर ८०० कला आगे चल चुकते हैं तब १ योग बीतता है, जब १६०० कला आगे चल चुकते हैं तब दूसरा योग बीतता है, इत्यादि। इसी तरह जब दोनों मिलकर ३६०°

या २१६०० कला अश्विनी से आगे चल चुकते हैं तब २७वां योग बीतता है। फिर पहले योग का आरंभ होता है। २७ योगों के नाम यह हैं :—

१ विष्कम्भ	१० गंड	१९ परिध
२ प्रीति	११ वृद्धि	२० शिव
३ आयुष्मान्	१२ ध्रुव	२१ सिद्ध
४ सौभाग्य	१३ व्याघात	२२ साध्य
५ शोभन	१४ हर्षण	२३ शुभ
६ अतिगंड	१५ वज्र	२४ शुक्र
७ सुकर्मा	१६ सिद्धि	२५ ब्रह्मा
८ धृति	१७ व्यतीपात	२६ इन्द्र या ऐन्द्र
९ शूल	१८ वरीयान्	२७ वैधृति

नियम समझने के लिए एक उदाहरण पर्याप्त होगा। मान लो यह जानना है है कि सम्वत् १९८१ वि० की मेष संक्रान्ति के दिन कौन योग वर्तमान था, उसका किस समय आरंभ और किस समय अंत हुआ ?

पहले मेष संक्रान्ति के दिन के सूर्य और चंद्रमा के स्थान तथा दैनिक गतियां स्पष्ट करनी पड़ेंगी।

कलियुग के आरंभ से १९८१ वि० की स्पष्ट मेष संक्रान्ति के समय तक ५०२५ सौर वर्ष तथा १८,३५,४२३.०८०६२५ मध्यम सावन दिन होते हैं। कलियुग का आरंभ उज्जैन में गुरु का मध्य रात्रि से हुआ, इसलिए उज्जैन में शनिवार की मध्य रात्रि के .०८०६२५ दिन उपरान्त १९८१ वि० की मेष संक्रान्ति हुई। सुविधा के लिए मध्य रात्रि के समय के सूर्य और चंद्रमा स्पष्ट करना अच्छा होगा।

जिस रीति से सूर्य का स्पष्ट स्थान निकाला गया है उसी तरह सूर्य और चन्द्रमा दोनों को स्पष्ट करना चाहिये। गणना का सार यह है :—

	सूर्य का स्थान	चंद्रमा का स्थान	दोनों का योगफल
शनिवार (मध्य रात्रि)	३५९°५५′१६″	९५°३८′५३″	९५°३४′९″
रविवार (मध्य रात्रि)	०°५३′५९″	१०८°१६′५६″	१०९°१०′५५″
दैनिक गति	५८′४३″	१२°३८′३″	१३°३६′४६″

पहला योगफल ३६०° से अधिक हो जाता है इसलिए ३६०° छोड़ दिया गया और ९५°३४′९″ ले लिया गया

अब ९५°३४′९″ = ५७३४′९″

इसको ८०० से भाग देने पर ७ लब्धि और १३४′ ६″ शेष होते हैं। इसलिए शेष संक्रान्ति की अर्द्ध रात्रि को आठवां योग धृति वर्तमान है और इसका १३४′ ६″ बीत चुका है और ६६५′ ५१″ शेष है।

६० घड़ी में सूर्य और चन्द्रमा की गति मिलकर १३° ३६′ ४६″ या १३°.६१२८ होती है।

१३४′ ६″ = २° १४′ ६″ = २°.२३५८

६६५′ ५१″ = ११° ५′ ५१″ = ११°.०९७५

१३.६१२८ : २.२३५८ : : ६० घड़ी : इष्ट काल

$$\therefore \text{इष्ट काल} = \frac{२.२३५८ \times ६०}{१३.६१२८} = \frac{२२३५८ \times ६०}{१३६१२८}$$

= ९ घड़ी ५१ पल

इसलिए शनीचर की मध्यरात्रि से ९ घड़ी ५१ पल पहले उज्जैन में धृति योग का आरंभ हुआ।

१३.६१२८ : ११.०९७५ : : ६० : इष्ट काल

$$\therefore \text{इष्ट काल} = \frac{११०९७५ \times ६०}{१३६१२८} = ४८ \text{ घड़ी } ५५ \text{ पल}$$

इसलिए शनिचर की मध्यरात्रि से ४८ घड़ी ५५ पल उपरान्त रविवार को धृति योग का अंत और शूल योग का आरंभ होगा।

यह गणना मध्यम काल के अनुसार किया गया है। स्पष्ट काल के अनुसार करने के लिए काल-समीकरण का संस्कार तथा अन्य स्थान के लिए उज्जैन से उस स्थान का देशान्तर संस्कार भी करना होगा। काल समीकरण संस्कार की चर्चा तीसरे अधिकार में विशेष रूप से की जायगी। सूर्योदय से काल गणना करना हो तो चर संस्कार भी करना होगा।

अर्कोनचन्द्रलिप्ताभ्यस्तिथयो भोगभाजिताः।
गतं गम्यं च षष्टिघ्नं नाड्यो भुक्त्यन्तरोद्धृताः ॥६६॥

अनुवाद—(६६) चन्द्रमा के स्पष्ट स्थान में सूर्य का स्पष्ट स्थान घटाने से जो आवे उसकी कला बना कर एक तिथि के भोग अर्थात् ७२० कला से भाग दे दो, लब्धि गत तिथि होगी, शेष जो बचेगा वह वर्तमान तिथि की गत कला होगी। इसको ७२० कला में से घटाने पर वर्तमान तिथि की गम्य कला आवेगी। वर्तमान तिथि की गत और गम्य कलाओं को ६० से गुणा करके सूर्य और चंद्रमा की दैनिक स्पष्ट गतियों के अंतर से भाग देने पर यह ज्ञात हो जायगा कि वर्तमान तिथि का आरंभ और अंत कब हुआ।

विज्ञान भाष्य—इस काम के लिए भी सूर्य और चंद्रमा को स्पष्ट करना पड़ता है। देखना है कि १९२१ की मेष संक्रान्ति के निकट शनिश्चर की मध्यरात्रि को कौन तिथि वर्तमान थी।

शनिवार की मध्यरात्रि को चंद्रमा के स्पष्ट स्थान में से सूर्य का स्पष्ट स्थान घटाने से नहीं घटता है इसलिए चंद्रमा के स्थान में ३६०° जोड़कर योगफल में से सूर्य का स्थान घटाया तो ९५° ४३′ ३७″ आया। इसी तरह इतवार की मध्यरात्रि के स्थानों का अंतर १०७° २२′ ५७″ है। दोनों की दैनिक गतियों का अंतर ११° ३९′ २०″ है।

७२० कला या १२° की एक तिथि होती है इसलिए ९५° ४३′ ३७″ को १२° से भाग दिया तो लब्धि ७ और शेष ११° ४३′ ३७″ होता है। इससे प्रकट होता है कि मध्य रात्रि के समय आठवीं तिथि अर्थात् अष्टमी वर्तमान है जिसका ११° ४३′ ३७″ बीत चुका है और १६′ २३″ शेष है। इस १६′ २३″ को ६० से गुणा करके ११° ३९′ २०″ से भाग दिया तो १ घड़ी २४ पल आया। इसलिए शनीचर की मध्य रात्रि से १ घड़ी २४ पल उपरांत अष्टमी का अंत हुआ।

किसी अन्य स्थान में सूर्योदय से तिथि का अंतकाल जानने के लिए वही संस्कार करने पड़ते हैं जो योग के सम्बन्ध में कहा गया है।

तिथि योग इत्यादि जानने के लिए जो नियम बतलाये गये हैं वह बड़े कठिन हैं इसलिए व्यवहार के लिए सारणियों का उपयोग किया जाता है जिनसे तिथि योग इत्यादि का आरंभ या अंतकाल जानना बड़ा सुगम हो जाता है। विस्तार भय से सारणी बनाने का सिद्धान्त यहाँ नहीं बतलाया जा सकता। यदि आवश्यकता समझ पड़ेगी तो अंत में परिशिष्ट में बतला दिया जायगा।

ध्रुवाणि शकुनिर्नागः तृतीयं तु चतुष्पदम्।
किंस्तुघ्नं च चतुर्दश्याः कृष्णाया अपरार्धतः ॥६७॥
बवादीनि तथा सप्त चराख्यकरणानि तु।
मासेऽष्टकृत्व एकैकं करणं परिवर्तते ॥६८॥
तिथ्यर्धभोगं सर्वेषां करणानां प्रचक्षते।
इत्थं स्पष्टगतिः प्रोक्ता सूर्यादीनां खचारिणाम् ॥६९॥

अनुवाद—(६७) शकुनि, नाग, चतुष्पद और किंस्तुघ्न चार स्थिर करण प्रत्येक कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के उत्तरार्द्ध से आरम्भ हो कर आधी-आधी तिथि तक क्रमानुसार रहते हैं। (६८) उसके बाद बवादि (बव, बालव, कौलव, तैतिल, गरज, वणिज, विष्टि) सात चर करण क्रमानुसार मास में आठ फेर करते हैं। (६९) प्रत्येक

करण का भोग आधी तिथि के समान समझना चाहिये। यहाँ तक सूर्यादि ग्रहों को स्पष्ट करने की रीति कही गयी।

विज्ञान भाष्य—स्थिर करणों का जो क्रम यहाँ बतलाया गया है प्रचलित पंचांगों में उससे कुछ विपरीत रहता है। इनमें शकुनि के बाद चतुष्पद तब नाग और किंस्तुघ्न लिखे मिलते हैं। इसका कारण क्या है और कब से इस क्रम का आरम्भ हुआ यह विचारणीय है। विष्टि का दूसरा नाम भद्रा है जो शुभ कामों में अशुभ समझी जाती है। प्रत्येक चांद्रमास में किस तिथि को कौन करण भोग करता है यह नीचे की तालिका से प्रकट होगा।

प्रत्येक चांद्र मास के करणों का क्रम (सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार)

तिथि	तिथि का शुक्ल पक्ष पूर्वार्द्ध	तिथि का शुक्ल पक्ष उत्तरार्द्ध	तिथि का कृष्ण पक्ष पूर्वार्द्ध	तिथि का कृष्ण पक्ष उत्तरार्द्ध
१	किंस्तुघ्न	बव	वालव	कौलव
२	वालव	कौलव	तैतिल	गरज
३	तैतिल	गरज	वणिज	विष्टि
४	वणिज	विष्टि	बव	वालव
५	बव	बालव	कौलव	तैतिल
६	कौलव	तैतिल	गरज	वणिज
७	गरज	वणिज	विष्टि	बव
८	विष्टि	बव	बालव	कौलव
९	वालव	कौलव	तैतिल	गरज
१०	तैतिल	गरज	वणिज	विष्टि
११	वणिन	विष्टि	बव	बालव
१२	बव	बालव	कौलव	तैतिल
१३	कौलव	तैतिल	गरज	वणिज
१४	गरज	वणिज	विष्टि	शकुनि
१५	विष्टि	बव	नाग	चतुष्पद

शुक्ल पक्ष की १५वीं तिथि की पूर्णिमा और कृष्ण पक्ष को १५वीं तिथि को अमावस्या कहते हैं। पूर्णिमा को १५ और अमावास्या को ३० से सूचित करते हैं।

●

सूर्य-सिद्धान्त के स्पष्टाधिकार नामक दूसरे अध्याय का विज्ञान भाष्य समाप्त हुआ।

तृतीय अध्याय

त्रिप्रश्नाधिकार

(संक्षिप्त वर्णन)

[१-४ श्लोक—समतल भूमि में खड़ा शंकु गाड़कर दिशा सूचित करने वाली रेखाएँ खीचना । ५ श्लोक-शंकु की छाया और उसकी नोक से पूर्व-पश्चिम रेखा का अंतर जान कर छाया की दिशा जानना । ६ श्लोक— सममंडल, उन्मंडल और विषुवन्मण्डल की परिभाषा । ७ श्लोक—अग्रा की परिभाषा । ८ श्लोक—शंकु और उसकी छाया का परिमाण जानकर छायाकर्ण जानना । ६-१० श्लोक—अयनांश जानकर ग्रहों की क्रांति, छाया, चर इत्यादि जानना । ११ श्लोक—अयनान्त या विषुवत् दिन को सूर्य का बेध करके अयनांश जांचना । १२ श्लोक—पलभा की परिभाषा । १३ श्लोक—पलभा से लम्बांश और अक्षांश जानना । १४-१५ श्लोक—मध्याह्नकालिक सूर्य का नतांश और क्रान्ति जानकर अक्षांश जानना । १६ श्लोक—अक्षांश से पलभा जानना । १७-१६ श्लोक अक्षांश और मध्याह्नकालिक सूर्य के नतांश से सूर्य की क्रान्ति जानना और सूर्य की क्रान्ति से सूर्य का स्पष्ट सायन भोग जानना और मंदफल का संस्कार देकर मध्य सायन भोग जानना । २०-२१—अक्षांश और सूर्य की क्रांति से नतांश जानकर मध्याह्नकालिक छाया और छायाकर्ण जानना । २२ श्लोक—सूर्य की उदयकालिक अग्रा जानकर इष्टकाल की अग्रा जानना । २३-२४ श्लोक -अग्रा और पलभा से छाया का भुज जानना । २५ श्लोक—जब सूर्य सममंडल में हो तब छायाकर्ण जानने की रीति । २६ श्लोक—जब सूर्य की उत्तर क्रान्ति अक्षांश से कम हो तब सममंडल सूर्य का छायाकर्ण जानना । २७ श्लोक—अग्रा जानने की दूसरी रीति । २८-३१ श्लोक—करणी और फल के ज्ञान से सूर्य का उन्नतांश जानना जब सूर्य अग्निकोण या नैर्ऋत्य कोण में हो । ३२ श्लोक—उन्नतांश जानकर नतांश जानना । ३३ श्लोक—उन्नतांश और नतांश । छाया और छायाकर्ण जानना ३४-३५ श्लोक—चरज्या और नतकाल से छेद जानकर दृग्ज्या अर्थात् नतांश ज्या जानना और उससे पहले की तरह छाया और छायाकर्ण जानना । ३६-३८ श्लोक – छाया और छायाकर्ण से नतकाल जानना । ३६ और ४० का पूर्वार्द्ध—अग्रा से क्रान्ति जानकर सूर्य का भोगांश जानने की दूसरी रीति । ४० का उत्तरार्द्ध और ४१ का पूर्वार्द्ध—भाभ्रम रेखा खींचना । ४१ का उत्तरार्द्ध और ४२ श्लोक—लंका में सायन राशियों के उदय-काल जानने की रीति । ४३-४४ श्लोक—लंका में सायन मेष, वृष और मिथुन राशियों के उदयासु और अन्य स्थानों में सायन राशियों के उदयासु जानने की रीति । ४५-४७ श्लोक—किस समय कौन राशि पूर्व क्षितिज में लग्न होती है यह जानना । ४८ श्लोक—मध्यलग्न जानना । ४६-५० श्लोक—लग्न जानकर समय जानना ।]

इस अध्याय में किसी के मत से श्लोकों की संख्या ५० और किसी के मत से ५१ है। जो लोग श्लोकों की संख्या ५० मानते हैं वह कहते हैं कि ११ वें और २० वें श्लोकों में * प्रत्येक में ४ चरणों की जगह ६ चरण हैं। जो लोग ५१ मानते हैं वह प्रत्येक श्लोक चार-चार चरणों के मानते हैं। इसलिए दोनों मत मेरी समझ में अभिन्न हैं। इस समय मेरे पास सूर्य-सिद्धान्त के चार संस्मरण हैं परन्तु खेद है कि किसी दो में श्लोकों के अंकों का क्रम एक सा नहीं है। पं० इन्द्रनारायण द्विवेदी की सम्पादित पुस्तक में भी अंकों का क्रम गड़बड़ है इसलिए मैंने सुविधा के लिए ११वें और ३५वें श्लोक को तीन-तीन पंक्तियों अथवा छ छ चरणों का माना है। २०वें श्लोक को ६ चरणों का मानने से यह गड़बड़ पड़ती है कि आगे के किसी श्लोक में नियम पूर्ण नहीं होते वरन् एक श्लोक का उत्तरार्द्ध और दूसरे श्लोक का पूर्वार्द्ध मिलाना पड़ता है। ३५ वें श्लोक को ६ चरणों का मान लेने से ३६-४२ श्लोकों में ही यह असुविधा रहती है।

इस अध्याय में सूर्य के वेध से दिशा, देश (स्थान) और काल की जानकारी करने की अनेक रीतियाँ वर्णित हैं। वेध के लिए केवल एक यंत्र काम में लाया गया है जिसे शंकु कहते हैं। किसी कठिन धातु या हाथीदांत की एक सीधी नोकदार छड़ समतल भूमि में खड़ी गाड़कर उसी की छाया से सब काम लिया गया है। इसी को शंकु कहा गया है। यंत्राध्याय में और भी यंत्रों का वर्णन है परन्तु इस जगह केवल शंकु की चर्चा है। यह स्पष्ट है कि सूर्य का बिम्ब बहुत बड़ा देख पड़ता है और शंकु की छाया की नोक बहुत सूक्ष्मतापूर्वक नहीं निश्चित की जा सकती है इसलिए शंकु से जो जो बातें जानी जा सकती हैं वह कुछ स्थूल हैं। आजकल दूरदर्शक यंत्र से वेध करने से अधिक सूक्ष्मता हो सकती है परन्तु प्राचीन काल में शंकु बड़ा उपयोगी था। इससे वेध करके जितनी सूक्ष्मता हो सकती थी उसे प्राप्त करने में हमारे ज्योतिषियों ने बहुत कुशलता दिखलायी है इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

दूरदर्शक यंत्र की सहायता से कुछ ऐसी बातों का भी आविष्कार हुआ है जिनके संस्कार के बिना दिशा, देश और काल का ज्ञान स्थूल रहता है इसलिए आवश्यकता है कि उनकी भी चर्चा की जाय। इसलिए विज्ञान भाष्य में लम्बन (parallax) किरणवक्रीभवन (refraction of light), अयन चलन का कारण, अक्ष विचलन (nutation), भूचलन संस्कार (aberration of light) और काल-समीकरण (equation of time) का विस्तारपूर्वक वर्णन किया जायगा।

---

* पं० इन्द्रनारायण द्विवेदी सम्पादित सूर्य-सिद्धान्त पृष्ठ १८०

दिशाओं के निश्चय करने की रीति

शिलातलेऽम्बुसंसिद्धे वज्रलेपेऽपि वा समे ।
तत्रशङ्क्वङ्गुलैरिष्टैः समं मण्डलमालिखेत् ॥१॥

तन्मध्ये स्थापयेच्छङ्कुं कल्पितद्वादशाङ्गुलम् ।
तच्छायाग्रं स्पृशेद्यत्र वृत्तं पूर्वापराह्णयोः ॥२॥

तत्र विन्दू विधातव्यौ वृत्ते पूर्वापराभिधौ ।
तन्मध्ये तिमिना रेखा कर्तव्या दक्षिणोत्तरा ॥३॥

याम्योत्तरदिशोर्मध्ये तिमिना पूर्वपश्चिमे ।
दिङ्मध्यमत्स्यैः संसाध्या विदिशस्तद्वदेव हि ॥४॥

अनुवाद—(१) जल के द्वारा शोधकर समतल किये हुए पत्थर के तल पर अथवा वज्रलेप (सुर्खी चूने इत्यादि) से बने हुए समतल चबूतरे पर शंकु के अनुसार इष्ट अंगुल के व्यासार्ध का एक वृत्त खींचो । (२) इस वृत्त के केन्द्र में बारह अंगुल का एक शंकु लम्ब रूप में स्थापित करो । इसकी छाया की नोक मध्याह्न के पहले और पीछे वृत्त को जहाँ स्पर्श करे, (३) वहाँ वृत्त पर दो बिन्दु बना दो । इनको पूर्वाह्न और अपराह्न विन्दु कहते हैं । इन दो विन्दुओं के बीच में तिमि द्वारा उत्तर-दक्षिण रेखा खींचो । (४) उत्तर दक्षिण दिशाओं के बीच में तिमि द्वारा पूर्व-पच्छिम-रेखा खींचो । इस प्रकार दो दिशाओं के बीच में तिमि द्वारा ईशान आदि विदिशाओं की रेखाएँ खींचो ।

विज्ञान भाष्य—यह जानने के लिए कि कोई तल सम है या नहीं सबसे सुगम रीति यह है कि तल के किनारे चारों ओर गीली मिट्टी की आड़ करके उसमें एक या डेढ़ अंगुल गहरा पानी भर दो और किसी सीधी सींक से देखो कि सब जगह पानी की गहराई एक ही है या भिन्न भिन्न । यदि सब जगह पानी की गहराई एक ही हो तो समझना चाहिए कि तल सम है । आजकल यह काम स्पिरिट लेवेल (Spirit level) से होता है ।

वज्रलेप—पहले सुर्खी चूने में कई प्रकार का मसाला मिलाकर ऐसा गारा बनाया जाता था जिसकी गच वज्र की तरह कठिन हो जाती थी । ऐसे गारे को वज्रलेप कहते हैं । बराही* संहिता में वज्रलेप बनाने की एक विधि यों है :—

*सत्तावनवां अध्याय श्लोक १-३

तेंदू के कच्चे फल, कैथा के कच्चे फल, सेमल के फूल, सल्लकी के बीज, बंधन की छाल और बच इन सबको जल में पकाकर काढ़ा बनावे, जब आठवां भाग पानी रह जाय तब उतार कर इसमें श्रीवास (सरल वृक्ष का गोंद) रस, गूगल, भिलावा, कुंदरू, राल, अलसी और बेल की गिरी पीसकर मिलावे तो वज्रलेप तैयार होता है।

तिमि—यदि दो वृत्त एक दूसरे को काटते हुए खींचे जायँ तो इनके बीच का भाग मछली के आकार का हो जाता है। इसी को तिमि कहते हैं।

चित्र ४४ में वृत्त के मध्य में श शंकु का स्थान है। मध्याह्न के पहले शंकु की छाया जब श क के समान होती है तब इसकी नोक परिधि के क बिन्दु पर पहुँचती है। मध्याह्न के पीछे जब छाया श ख के समान फिर होती है तब इसकी नोक परिधि के ख विन्दु पर पहुँचती है। बस इन्हीं क, ख विन्दुओं को केन्द्र मानकर समान व्यासार्द्ध के दो वृत्त ऐसे खींचे जिनसे ग घ क्षेत्र तिमि के आकार का बनता है। इसके सामान्य विन्दुओं को मिलाने वाली रेखा ही उत्तर दक्षिण रेखा है। यह रेखा पहले वृत्त को जिन विन्दुओं पर काटती है उन पर उत्तर दिशा सूचित करने के लिए उ और दक्षिण दिशा सूचित करने के लिए द लिख देना चाहिये। फिर उ और द को केन्द्र मानकर समान व्यासार्द्ध के दो और धनु खींचकर इनके सामान्य विन्दुओं को एक सीधी रेखा से मिला दो। इसी को पूर्व-पश्चिम रेखा कहेंगे। पच्छिम दिशा सूचित करने के लिए प और पूर्व दिशा के लिए पू लिखना चाहिये। फिर उ और प विन्दुओं को केन्द्र मान कर समान व्यासार्द्ध के दो धनु खींचकर उनके सामान्य विन्दुओं को मिलाने वाली रेखा उ और प के बीच में जिस विन्दु पर परिधि को काटेगी वह वायव्य कोण की दिशा और पू द के बीच में जिस विन्दु पर काटेगी वहँ अग्नि कोण की दिशा होगी। इसी प्रकार ईशान और नैऋत्य कोण की दिशा भी जानी जा सकती है।

उपपत्ति—उदय के समय सूर्य पूर्व क्षितिज के जिस विन्दु पर देख पड़ता है उससे दक्षिण की ओर खसकता हुआ ऊँचा उठता जाता है और किसी खड़ी लकड़ी या शंकु की छाया छोटी होती हुई उत्तर की ओर खसकती जाती है। मध्याह्न काल में सूर्य याम्योत्तर-वृत्त पर आ जाता है। उस समय छाया सबसे छोटी और ठीक उत्तर दिशा में होती है। इसके बाद सूर्य कुछ कुछ उत्तर की ओर खसकता हुआ नीचे उतरने लगता है और छाया उत्तर दिशा से पूर्व की ओर खसकती हुई बड़ी होती जाती है। मध्याह्न काल से जितना समय पहले शंकुकी छाया उत्तर दिशा से जितना बड़ा कोण बनाती हुई पच्छिम की ओर रहती है, मध्याह्न से उतना ही समय पीछे छाया उत्तर दिशा से उतना ही बड़ा कोण बनाती हुई पूर्व की ओर रहती है। मध्याह्न से समान

काल आगे और पीछे, छाया की लम्बाई भी समान* होती है। इसलिए जब छाया की लम्बाई खिंचे हुए वृत्त के व्यासार्द्ध के समान हो तब इनके बीच में जो कोण बनता है उसको दो समान भागों में विभाजित करने वाली रेखा ही उत्तर-दक्षिण-रेखा होगी। इसी समविभाजक रेखा को खींचने के लिए समान व्यासार्द्ध के धनु खींचकर तिमि बनाने का आदेश दिया गया है जो रेखागणित की विधि के अनुसार है। इसी नियम के अनुसार अन्य दिशाओं को सूचित करने वाली रेखाएँ खींची जा सकती हैं। वृत्त पर जो पूर्वाह्न और अपराह्न विन्दु छाया की नोक के द्वारा स्थिर किये जाते हैं उनको मिलाने वाली रेखा भी पूर्व-पच्छिम-रेखा है परन्तु भविष्य में गड़े हुए शंकु से काम लेने के लिए आवश्यक है कि दिशासूचक जितनी रेखाएं खींची जायँ वह सब शंकु के मध्य से होकर जायँ। इसलिए वृत्त के उत्तर दक्षिण विन्दुओं से तिमि बनाकर पूर्व-पच्छिम-रेखा खींचने का आदेश है।

क्रान्ति के सदैव बदलते रहने के कारण जो तनिक सी स्थूलता आ जाती है उसके संशोधन के लिए भास्कराचार्य † जी तथा अन्य ज्योतिर्विषियों ने नियम बनाये हैं परन्तु उनके वर्णन करने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। इन संशोधनों से उपर्युक्त रीति की सरलता जाती रहती है। यदि शुद्धता के लिए कठिन नियम की आवश्यकता हो तो दिगंश जानने की रीति से ही क्यों न काम लिया जाय जिसकी चर्चा इसी अध्याय में की जायगी।

चतुरश्रं वहिः कुर्यात्सूत्रैर्मध्याद्विनिर्गतैः।
भुजसूत्राङ्गुलैस्तत्र दत्तैरिष्टप्रभाग्रतः ॥५॥

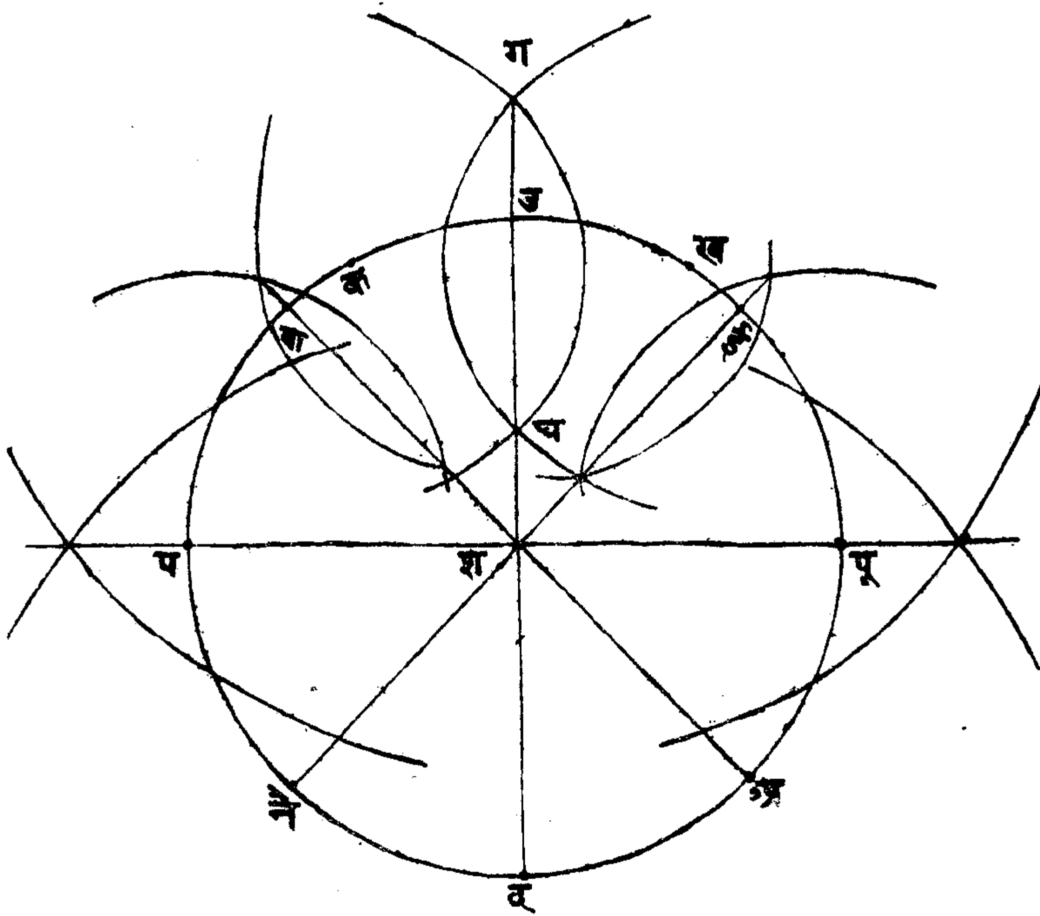
अनुवाद—(५) केन्द्र से उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पच्छिम रेखाएं छाया के समान व्यासार्द्ध से खींची गयी परिधि के जिन विन्दुओं पर पहुँचती हैं उनको स्पर्श करती हुई रेखाएँ खींच कर समचतुर्भुज क्षेत्र बनाओ। पूर्वापर रेखा से समकोण बनाती

---

* सूर्य की क्रान्ति सदैव बदलती रहती है इसलिए मध्याह्न के पहले और पीछे की क्रान्तियों में कुछ अंतर पड़ जाता है जिससे उपर्युक्त कथन में कुछ स्थूलता आ जाती है परन्तु यह नहीं के समान समझना चाहिए। जिस समय क्रान्ति की गति बहुत मन्द होती है अर्थात् जिस समय सूर्य उत्तरायन या दाक्षिणायन विन्दुओं के पास रहता है उस समय यह बात अधिक शुद्ध होगी।

† तत्कालापमजीवयोस्तु विवराद्भाकर्णमित्याहृताल्लम्बज्याप्तमिताङ्गुलैरयनदिश्यैन्द्री स्फुटा चालिता ॥८॥

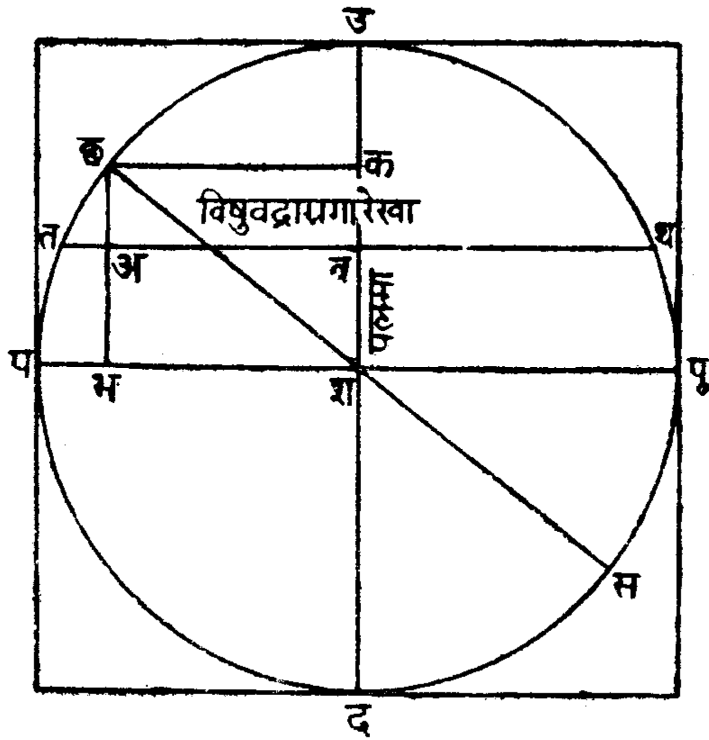
गणिताध्याय, त्रिप्रश्नाधिकार पृष्ठ १०४-१०५



चित्र ४४

हुई इष्ट भुज के समान सीधी रेखा खींचो जो परिधि तक पहुँचे। परिधि के जिस विन्दु तक भुज की नोक पहुँचे उसको शंकु के मध्य से मिला दो तो छाया की दिशा ज्ञात होगी।

विज्ञान भाष्य—चित्र ४५ में श शंकु का केन्द्र है और श छ किसी समय की छाया है। श को केन्द्र मानकर श छ के व्यासार्द्ध से परिधि खींची गयी है। प पू पूर्वापरा रेखा अथवा पूर्व-पच्छिम रेखा है और उ द उत्तर-दक्खिन रेखा है। पूर्वापरा रेखा से छाया की नोक छ का अन्तर छ भ के समान और उत्तर-दक्खिन रेखा से छ का अंतर छ क के समान है। छ भ को छाया का भुज और छ क को छाया की कोटि कहते हैं। इस श्लोक का अर्थ यह है कि यदि छाया और भुज की नाप ज्ञात हो तो छाया की दिशा कैसे जानी जा सकती है। आजकल की प्रथा के अनुसार इसको यों कह सकते हैं कि यदि छाया की नोक के भुजयुग्म (coordinates) ज्ञात हों तो छाया कैसे खींची जा सकती है। पूर्वापरा रेखा से छाया की नोक के अंतर का छाया का भुज और उत्तर-दक्खिन रेखा से छाया की नोक के अंतर का



चित्र ४५

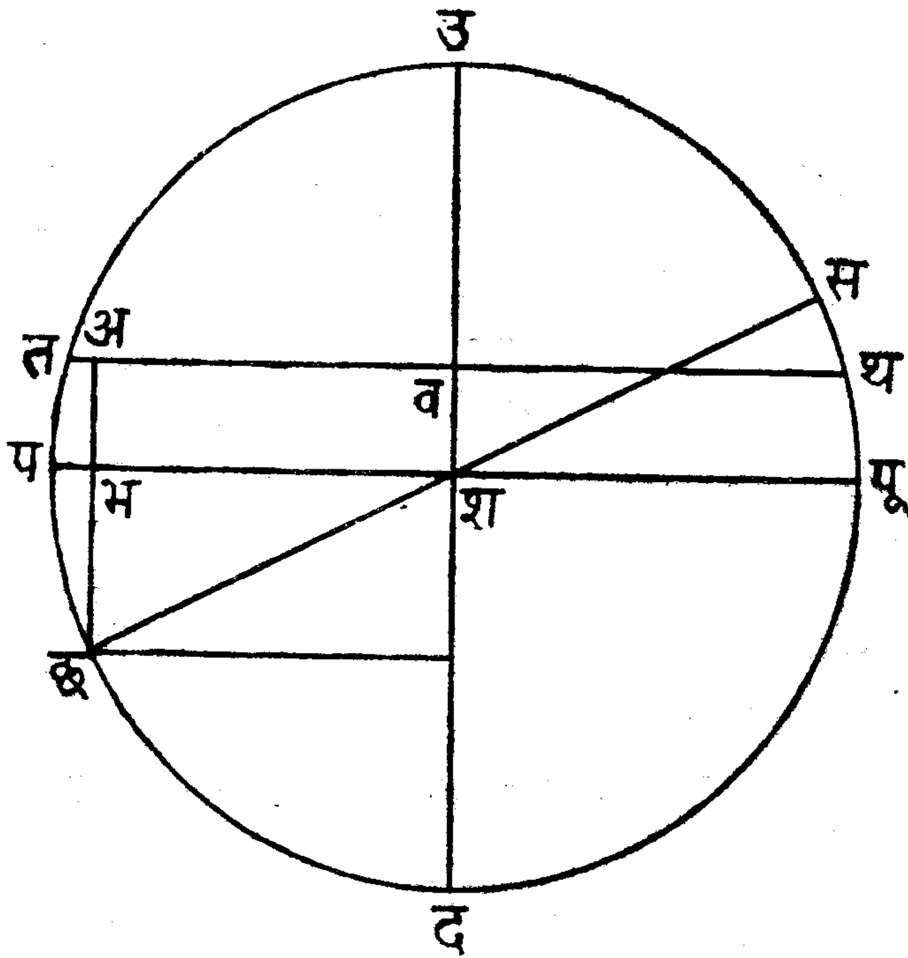
छाया की कोटि कहते हैं। किसी समय की छाया और इसके भुज में जो सम्बन्ध होता है वह २३-२४ श्लोकों में बतलाया गया है।

यदि छ श रेखा बढ़ायी जाय तो वह परिधि को स विन्दु पर काटेगी। इसी श स दिशा में सूर्य होगा जब कि शंकु की छाया श छ होगी। इस समय सूर्य पूर्व विन्दु पू से जितना दक्षिण है वह पू श स कोण से जाना जा सकता है। यही कोण इस समय सूर्य की अग्रा है। उत्तर विन्दु उ से सूर्य उ श स कोण के अंतर पर है। यही कोण इस समय सूर्य का दिगंश (azimuth) है। इस चित्र में सूर्य पूर्वापर रेखा से दक्खिन है। यदि सूर्य पूर्वापरा रेखा से उत्तर हो तो छाया, अग्रा, भुज, इत्यादि ४६ चित्र के अनुसार होंगी।

जिस दिन सूर्य विषुवद्वृत्त पर होता है उस दिन अर्थात् सायन मेष या सायन तुला संक्रान्ति के दिन मध्याह्न में शंकु की छाया जितनी बड़ी होती है उसको विषुवद्भा, पलभा या अक्षभा कहते हैं। यदि श स्थान की पलभा श व के समान हो तो व से पूर्वापरा रेखा के समानान्तर खींची गयी त थ रेखा को विषुवद्भाग्रगा रेखा कहते हैं। छाया की नोक से विषुवद्भाग्रगा रेखा का जो अन्तर होता है वही अग्राज्या कहलाता है। ४५-४६ चित्रों में छ अ अग्राज्या है।

★सममण्डल, उन्मण्डल और विषुवन्मण्डल★

प्राक्पश्चिमाश्रिता रेखा प्रोच्यते सममण्डलम्।
उन्मण्डलं च विषुवन्मण्डलं परिकीर्त्यते ॥६॥



चित्र ४६

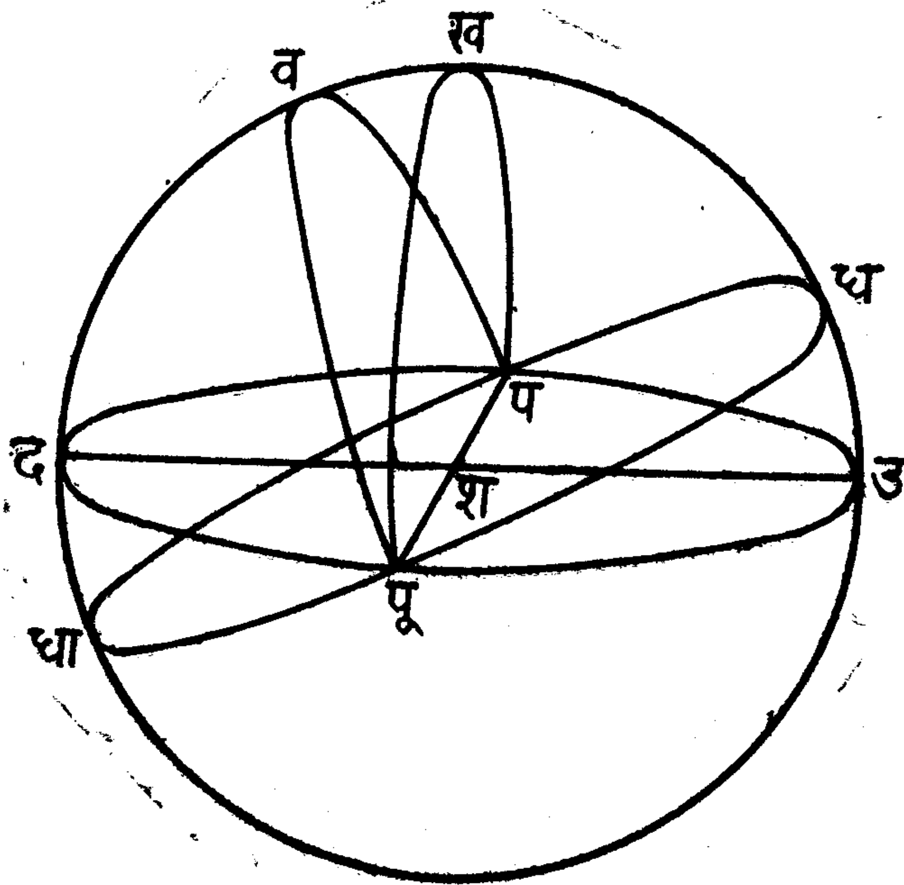
अनुवाद—(६) सममण्डल, उन्मण्डल और विषुवन्मण्डल पूर्व और पश्चिम विन्दुओं पर होते हैं।

विज्ञान भाष्य—इस श्लोक का शब्दार्थ यह है—पूर्व पश्चिम विन्दुओं से जानेवाली रेखा को सम-मण्डल कहते हैं और उसी को उन्मण्डल और विषुवन्मण्डल भी कहते हैं। परन्तु यथार्थ में यह तीनों शब्द भिन्न-भिन्न अर्थ रखते हैं इसलिये अनुवाद में मैंने अन्य कई टीकाकारों के विरुद्ध वही अर्थ लिखा है जो उचित है। जान पड़ता है कि इस श्लोक का शुद्ध रूप यह नहीं है वरन् भ्रम के कारण ऐसा कर दिया गया है। रंगनाथजी ने अपनी गूढ़ार्थ प्रकाशिका टीका में इसी को शुद्ध मान कर इन तीनों शब्दों की एकरूपता सिद्ध करने की चेष्टा की है परन्तु वह युक्तियुक्त नहीं जान पड़ती क्योंकि यह तीनों शब्द बहुत प्राचीन काल से भिन्न-भिन्न अर्थ रखते आये हैं और इनमें समानता केवल इतनी है कि यह तीनों मण्डल पूर्व पश्चिम विन्दुओं से होकर जाते हैं।

सममण्डल (prime vertical) उस ऊर्ध्वाधर (vertical) वृत्त को कहते हैं जो खस्वस्तिक और पूर्व पश्चिम विन्दुओं से होकर जाता है।

उन्मण्डल (six o'clock line) उस वृत्त को कहते हैं जो पूर्व पश्चिम विन्दुओं और उत्तरी दक्षिणी आकाशीय ध्रुवों से होकर जाता है। यही निरक्षदेश पर क्षितिज होता है।

विषुवन्मण्डल (celestial equator) उस वृत्त को कहते हैं जो पूर्व पश्चिम विन्दुओं से होकर जाता है और उत्तरी दक्षिणी आकाशीय ध्रुवों से समान अन्तर पर होता है।



चित्र ४७

चित्र ४७ का विवरण—

श...दर्शक का स्थान	धा...दक्षिणी आकाशीय ध्रुव
उ...उत्तर विन्दु	ख...खस्वस्तिक
पू...पूर्ण विन्दु	उ पू द प...क्षितिज वृत्त
द...दक्षिण विन्दु	ध पू धा प...उन्मण्डल
प...पश्चिम विन्दु	प ख पू...सममण्डल
ध...उत्तरी अकाशीय ध्रुव	प व पू...विषवन्मण्डल वा विषुवद्वृत्त

व...यामोत्तर वृत्त और विषुवद्वृत्त का सामान्य विन्दु

उ ध ख व द धा...यामोत्तर वृत्त

चित्र ४२ में एक एक वृत्त या मंडल के लिये केवल एक एक सीधी रेखा खींची गयी है। हाँ याम्योत्तर वृत्त दोनों में एक ही तरह खींचा गया है।

अग्राज्या

रेखा प्राच्यपरा साध्या विषुवद्भाग्रगा तथा।
इष्टच्छायाविषुवतोः मध्यमग्राऽभिधीयते ॥७॥

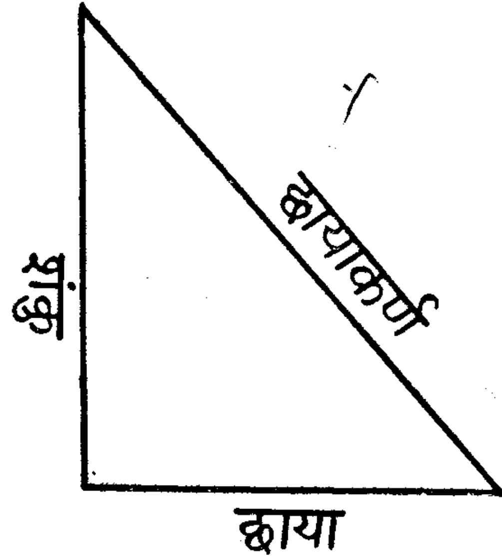
अनुवाद—(७) पलभा के अग्र से जानेवाली पूर्व पश्चिम रेखा के समानान्तर रेखा को विषुवद्भाग्रगा रेखा कहते हैं। इष्ट छाया की नोक से विषुवद्भाग्रगा रेखा का जो अन्तर होता है वह अग्रा कहलाती है।

विज्ञान भाष्य—चित्र ४५-४६ में जिसको अग्राज्या बतलाया गया है वही यहाँ अग्रा कही गयी है। आचार्य ने कोण और उसके सामने के भुज दोनों को अनेक स्थानों पर अग्रा शब्द से सूचित किया है परन्तु मैं कोण को अग्रा और अग्रा के सामने के भुज को अग्राज्या लिखूंगा जिससे भ्रम न हो।

छायाकर्ण

शङ्कुच्छायाकृतियुतेर्मूलं कर्णोऽस्य वर्गतः।
प्रोज्झ्य शङ्कुकृतिं मूलं छाया शङ्कुर्विपर्ययात् ॥८॥

अनुवाद—(८) शंकु और छाया प्रत्येक के वर्ग को जोड़कर वर्गमूल निकालने से छायाकर्ण आता है। छायाकर्ण के वर्ग में से शंकु के वर्ग को घटाकर वर्गमूल निकालने से छाया और छाया के वर्ग को घटाकर वर्गमूल निकालने से शंकु आता है।



चित्र ४८

विज्ञान भाष्य—समकोण त्रिभुज के दो भुज ज्ञात हों तो तीसरा भुज जानने की जो रीति है वही यहाँ शंकु, छाया और छायाकर्ण के सम्बन्ध में भी लागू है। इस श्लोक का सार यह है :—

$$\text{छाया कर्ण} = \sqrt{\text{शंकु}^2 + \text{छाया}^2};\ \text{छाया} = \sqrt{\text{कर्ण}^2 - \text{शंकु}^2};$$
$$\text{शंकु} = \sqrt{\text{कर्ण}^2 - \text{छाया}^2}$$

अयनांश जानने की रीति

त्रिंशत्कृत्यो युगे भानां चक्रं प्राक्परिलम्बते।
तद्गुणाद्भूदिनैर्भक्ताद् द्युगणाद्यदवाप्यते ॥९॥
तद्दोस्त्रिघ्ना दशाप्तांशा विज्ञेया अयनाभिधाः।
तत्संयुक्ताद् ग्रहात्क्रान्तिच्छायाचरदलादिकम् ॥१०॥

अनुवाद—(९) एक युग में नक्षत्र-चक्र ६०० बार पूर्व की ओर लोलक की तरह आन्दोलन (oscillation) करता है। इस ६०० को इष्ट अहर्गण से गुणा करके महायुगीय सावन दिनों की संख्या से भाग देने पर जो आवे (१०) उसका भुज बनाकर भुज को ३ से गुणा करके १० से भाग दे दो। ऐसा करने से जो कुछ आवे वही अयनांश कहलाता है। ग्रहों के स्थानों में इसका संस्कार देकर तब ग्रहों की क्रान्ति, छाया, चरदल इत्यादि जानना चाहिये।

विज्ञान भाष्य—क्रान्तिबृत्त और विषुवद्बृत्त के जिस सामान्य विन्दु पर उत्तरगामी सूर्य आता है उसको वसंत-सम्पात (vernal equinox) कहते हैं। वसंत-सम्पात से आगे ९० अंश पर जब सूर्य पहुँच जाता है तब उसकी उत्तर की ओर बढ़ने की गति रुक जाती है और दक्षिण की ओर लौटने लगता है। इसी समय दक्षिणायन का आरंभ होता है। इसलिए जिस विन्दु पर पहुँच कर सूर्य दक्षिण की ओर मुड़ता है उसे दक्षिणायन विन्दु (summer solstice) कहते हैं। दक्षिणायन के आरंभ से जब तक सूर्य दक्षिण की ओर चलता रहता है तब तक के समय को भी जो ६ मास के समान होता है दक्षिणायन कहते हैं। दक्षिणायन के आरंभ से ३ मास बाद सूर्य विषुवद्वृत्त पर फिर आता है। इस विन्दु को शरद-सम्पात कहते हैं क्योंकि इसी समय शरद ऋतु का आरंभ होता है। शरद-सम्पात से ९०° आगे तक सूर्य दक्षिण की ओर चलता रहता है फिर उत्तर की लौट पड़ता है। जिस विन्दु पर पहुँच कर सूर्य उत्तर की ओर लौटने लगता है उस विन्दु को उत्तरायन विन्दु (winter solstice) कहते हैं। इसी समय से उत्तरायन का आरंभ होता है। उत्तरायन और दक्षिणायन विन्दुओं को अयन विन्दु कहते हैं। चित्र ३९ में व, द, श और उ क्रम से वसंत सम्पात, दक्षिणायन विन्दु, शरद सम्पात और उत्तरायन विन्दु हैं। जो वृत्त अयन विन्दुओं, आकाशीय ध्रुवों और कदम्बों पर हो कर जाता है उसे अयनान्त वृत्त (Solstitial colure) कहते हैं। चित्र ३९ में दा द ध क ऊ उ वृत्त अयनान्त वृत्त है।

यह अयन विन्दु आकाश में सदा एक ही जगह नहीं रहते वरन् पश्चिम की ओर खसक रहे हैं इसलिए जिस नक्षत्र या तारा समूह के पास आजकल उत्तरायण या दक्षिणायन होता है उसी तारे के पास प्राचीन काल में नहीं होता था। वेदांग[1]

---

१. प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसावुदक्।
सार्पार्धे दक्षिणार्कस्तु माघ श्रावणयोः सदा ॥
याजुष ज्योतिष श्लोक ७ और आर्च ज्योतिष श्लोक ६

ज्योतिष में लिखा है कि जब सूर्य श्रविष्ठा या धनिष्ठा नामक नक्षत्र के आदि में होता था तब उत्तरायण का आरंभ होता था और जब सूर्य अश्लेषा नक्षत्र के आधे भाग पर पहुँचता था तब दक्षिणायन का आरंभ होता था।

बराहमिहिर बाराही[1] संहिता में इसकी चर्चा करते हुए लिखते हैं कि प्राचीन काल में आश्लेषा के आधे पर दक्षिणायन और श्रविष्ठा के आदि पर उत्तरायण होता था परन्तु अब कर्क राशि में प्रवेश करते ही सूर्य दक्षिणायन और मकर राशि में प्रवेश करते ही उत्तरायण होता है। यदि ऐसा न हो तो वेध करके निश्चय करना चाहिए।

आजकल दक्षिणायन का आरंभ आर्द्रा नक्षत्र के आरंभ में और उत्तरायण का आरंभ मूल के आधे भाग पर होता है।

इस तरह सिद्ध है कि उत्तरायण विन्दु वेदांग ज्योतिष काल में धनिष्ठा के आदि में था और अब मूल के आधे पर। इसलिए स्पष्ट है कि अयन पच्छिम की ओर खसक रहा है। इसके कारण वसंत सम्पात विन्दु या शरद सम्पात विन्दु भी पच्छिम की ओर खसक रहा है। वसंत सम्पात विन्दु के खसकने को युरोपीय ज्योतिषी precession of equinoxes कहते हैं इसलिए हमारे ज्योतिषियों ने जिस घटना को अयन-चलन के नाम से लिखा है उसी को पाश्चात्य ज्योतिषी precession of equinoxes कहते हैं। भास्कराचार्य जी[2] ने अयन चलन और विषुवत्क्रान्ति-वलय-पातचलन दोनों का समान अर्थ किया है।

अयन चलन के सम्बन्ध में हमारे प्राचीन ज्योतिषियों के मतों में बड़ी भिन्नता है। सूर्य-सिद्धान्त का मत है कि नक्षत्र चक्र का आदि विन्दु अ लोलक (pendulum) की तरह वसंत सम्पात व के दोनों ओर २७ अंश तक परिलम्बन या आंदोलन करता है (चित्र ४६)। अ को अश्विनी का आदि विन्दु भी कहते हैं। इस आंदोलन का अर्थ यह हुआ कि युग के आरंभ में वसंत सम्पात और अश्विनी का आदि विन्दु एक साथ थे। इसके पश्चात् अश्विनी का आदि विन्दु पूर्व की ओर खसकने लगा और जब वसंत सम्पात से २७ अंश तक आगे बढ़ गया तब यह फिर वसंत सम्पात की

---

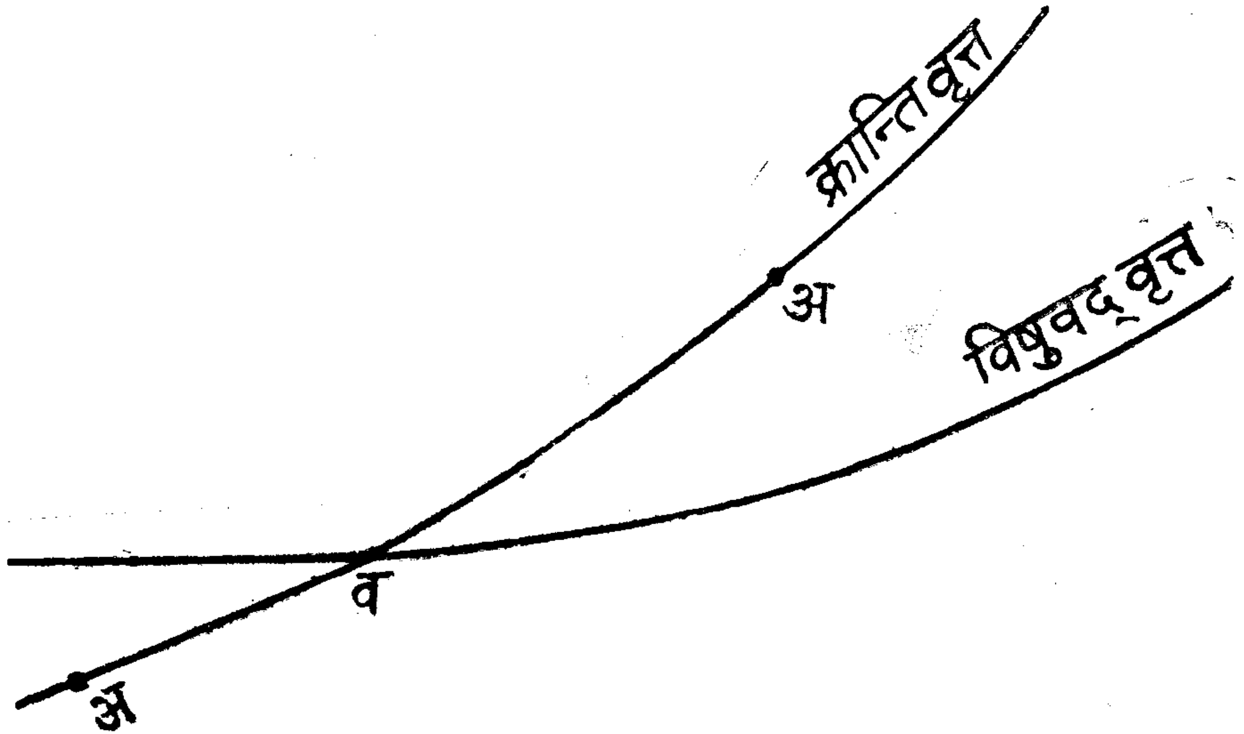
१. आश्लेषार्द्धाद्दक्षिणमुत्तरमयनं रवेर्धनिष्ठाद्यम्। नूनंकदाचिदासीद्येनोक्तं पूर्व शास्त्रेषु ॥१॥ साम्प्रतमयनं सवितुः कर्कटकाद्यं मृगादितश्चान्यत्। उक्ताभावे विकृतिः प्रत्यक्ष परीक्षणैर्व्यक्तिः ॥२॥

बाराही संहिता, आदित्यचार पृष्ठ १६, १७।

२. तस्य (विषुवत्क्रान्तिवलयपातस्य) अपि चलनमस्ति। येऽयनचलन भागाः प्रसिद्धास्तएव विलोमगस्य क्रान्ति पातस्य भागाः।

गोलाध्याय पृष्ठ ५५

ओर लौटने लगा और धीरे-धीरे वसंत सम्पात के साथ हो गया। इसके पश्चात् वसंत सम्पात से पच्छिम की ओर जाने लगा और २७ अंश जाकर फिर वसंत सम्पात की ओर लौटा और धीरे-धीरे वसंत सम्पात के पास फिर पहुँच गया। इस क्रम को एक पूर्ण आंदोलन (oscillation) कहते हैं। ऐसे ऐसे ६०० आंदोलन एक महायुग में अर्थात् ४३,२०,००० सौर वर्षों में होते हैं। इसलिए एक आंदोलन ७२०० सौर वर्षों में तथा चौथाई आंदोलन अथवा २७° की गति १८०० सौर वर्षों में होती है।



चित्र ४६

यह जानने के लिए कि अश्विनी का आदि विन्दु वसंत सम्पात से किस समय कितनी दूर है अर्थात् अयनांश क्या है, ६—१० श्लोकों में कहे गये नियम को काम में लाना चाहिए जो एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा।

मान लो १९८२ वि० का अयनांश जानना है।

सृष्टि के आरंभ से वर्तमान कलियुग के आरंभ तक १,९५,५८,८०,००० सौर वर्ष बीते* जिसमें ७२०० वर्षों में एक आंदोलन के हिसाब से २,७१,६५० आंदोलन पूरे हो गये इसलिए कलियुग के आरंभ में नये आंदोलन का आरंभ हुआ। इसलिए अयनांश जानने के लिए कलियुगादि अहर्गण से ही काम लेने में सुबिधा

* देखो मध्यमाधिकार विज्ञान भाष्य

होगी। नियम में अहर्गण से काम लेने को कहा गया है परन्तु मेष संक्रान्ति काल का अयनांश जानने के लिए सौर वर्षों से ही काम लेने में कोई अशुद्धि नहीं हो सकती। कलियुग के आरंभ से १९८२ वि० की मेष संक्रान्ति तक ५०२६ सौर वर्ष होते हैं। इसलिए,

७२०० : ५०२६ : : १ आंदोलन : इष्ट आंदोलन

अर्थात्, इष्ट आन्दोलन $=\frac{५०२६}{७२००}$

$=\frac{५०२६\times ३६०}{७२००}$ अंश

$=२५१^\circ १८'$

यह तीसरे पाद में है। इसलिए स्पष्टाधिकार के ३०वें श्लोक के अनुसार $७१^\circ १८'$ तीसरे पाद का गत भाग ही भुज हुआ। इसको ३ से गुणा करके १० से भाग देने पर $२१^\circ २३' २४''$ अयनांश होता है। मेष संक्रान्ति से जितनें दिन पीछे का अयनांश जानना हो उतने दिन की गति वर्ष में $५४''$ के हिसाब से निकाल कर मेष संक्रान्ति काल के अयनांश में जोड़ देने से इष्ट काल का अयनांश ज्ञात हो जायगा।

यह स्पष्ट है कि भुज का परम मान ९०° होता है इसलिए यदि इसको ३ से गुणा करके १० से भाग दिया जाय तो २७° आता है जो सूर्य-सिद्धान्त के मत से अयनांश का परम मान है।

यहाँ एक बात ध्यान देने की है। ९वें श्लोक में कहा गया है कि नक्षत्र-चक्र पूर्व की ओर परिलम्बन करता है अर्थात् आन्दोलन आरम्भ करने पर पहले वह पूर्व की ओर चलता है। इसलिए जब तक वह वसन्त सम्पात से २७ अंश पूर्व की ओर बढ़ता रहता है तब तक प्रथम पाद में होता है, जब वह पूर्व से वसन्त सम्पात की ओर लौटता रहता है तब तक दूसरे पाद में रहता है, जब तक वसन्त सम्पात से २७ अंश पच्छिम की ओर बढ़ता रहता है तब तक वह तीसरे पाद में रहता है और जब वह पच्छिम से वसन्त सम्पात की ओर लौटता रहता है तब तक चौथे पाद में रहता है। इसलिए ऊपर की गणना से सिद्ध है कि अश्विनी का आदि विन्दु वसन्त सम्पात से $२१^\circ २३' २४''$ पच्छिम है। परन्तु यथार्थ में अश्विनी का आदि विन्दु इस समय वसन्त सम्पात से पूर्व है जैसा कि अगले ११वें श्लोक से भी स्पष्ट होता है इसलिए यह मानना पड़ेगा कि अश्विनी का आदि विन्दु आन्दोलन आरम्भ करने पर पहले पच्छिम की ओर बढ़ता है जो श्लोक के विरुद्ध है। इसलिए जान पड़ता है कि आचार्य

ने वसन्त सम्पात को ही अश्विनी के आदि विन्दु के दोनों ओर २७° पूर्व और पच्छिम आन्दोलन करता हुआ माना है और पाठ में किसी कारण गड़बड़ हो गया है। क्योंकि अन्य आचार्यों ने अयनान्त-वृत्त या क्रान्तिपात को ही चलता हुआ माना है। जब १८०० वर्ष में अयन २७ अंश चलता है तब १ वर्ष में ५४ विकला गति होती है। इसलिए सूर्य-सिद्धान्त के मत से दो बातें सिद्ध होती हैं—(१) वसन्त सम्पात अश्विनी के आदि से २७ अंश आगे पीछे हो सकता है तथा (२) इसकी वार्षिक गति ५४ विकला है।

अयन-चलन का कारण क्या है यह भारतीय ज्योतिष में कहीं नहीं मिलता। रंगनाथजी ने अपनी गूढ़ार्थ प्रकाशिका टीका में ईश्वर की इच्छा को ही इसका कारण माना है।

जो मत सूर्य-सिद्धान्त का है वही सोम-सिद्धान्त,* रोमश-सिद्धान्त,* शाकल्य ब्रह्म-सिद्धान्त,* और लघुवशिष्ठ-सिद्धान्त* का है। द्वितीय आर्यभट* और पराशर* जी ने भी अयन का पूर्ण भगण नहीं माना है, परन्तु इनके मत से वसन्त सम्पात २४ अंश ही मूल विन्दु से पूर्व पश्चिम जाता है न कि २७°। द्वितीय आर्यभट ने अयनांश जानने की जो रीति बतलायी है उससे जान पड़ता है कि अयन चलन की वार्षिक गति सदा समान नहीं होती। हाँ मध्यम वार्षिक गति ४६.३ विकला मानी गयी है।† पराशर जी ने वार्षिक गति ४६.५ विकला मानी है।†

इसके प्रतिकूल मुंजाल[1] का मत है कि अयन या वसन्त सम्पात विलोम दिशा में भ्रमण करता हुआ पूरा चक्कर लगाता है और एक कल्प में १,९९,६६९ भगण करता है। इसी को भास्कराचार्य[2] जी ने भी माना है। इस हिसाब से अयन की वार्षिक गति ५९.९००७ विकला होती है जो प्रायः १ कला के लगभग है। इसलिए व्यवहार में मुंजाल, भास्कराचार्य, गणेश दैवज्ञ इत्यादि ने १ कला अयन की वार्षिक गति मानी है।

वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त इत्यादि ने अयनांश का संस्कार करने की बात नहीं लिखी है। जान पड़ता है कि इनके समय में अयनांश का परिमाण बहुत कम था

---

*भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ ३२८ तथा जोगेशचन्द्र राय सम्पादित सिद्धान्त दर्पण का Introduction pp. 39-40

† भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ ३३०-३३१ तथा महासिद्धान्त पृष्ठ ६,४५,५७

१. गोलाध्याय पृष्ठ ५४

२. मुंजाल का लघुमानस ८५८ वि० के लगभग बना है (देखो भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ ३१३)

तथा अयन चलन का ज्ञान भी इनको नहीं हुआ था। वराहमिहिर ने तो केवल इतना लिख दिया है कि पहले धनिष्ठा के आदि में उत्तरायण होता था और इनके समय में मकर के आदि में अर्थात् उत्तराषाढ़ के प्रथम पाद पर। इतना और भी कहा है कि यदि विकार हो तो प्रत्यक्ष बेध से काम लेना चाहिए। इसके सिवा अयन जानने का कोई नियम नहीं लिखा है। ब्रह्मगुप्त ने तो कोई संकेत भी नहीं किया है। इसका कारण भास्कराचार्य[१] जी यह लिखते हैं कि ब्रह्मगुप्त के[२] समय में अयनांश बहुत कम था इसलिए उनको इसका पता नहीं लग सका।

वसंत संपात के चलने का ज्ञान यूनानी ज्योतिषी हिपार्कस (Hipparchus) को विक्रम संबत से कोई ७० वर्ष पहले हो चुका था। तारों की सूची बनाने पर इनको ज्ञात हुआ कि इनसे कोई डेढ़ सौ वर्ष पहले जो सूची बनी थी उसकी अपेक्षा इस सूची में वसंत सम्पात से प्रत्येक तारे का अंतर कोई २ अंश अधिक हो गया था। जिससे इन्होंने यह परिणाम निकाला कि वसंत सम्पात पीछे खसक रहा है। इन्होंने वसंत सम्पात की जो वार्षिक गति निकाली थी वह कम से[3] कम ३६ विकला थी। वसंत सम्पात की यही गति टालमी[४] (Ptolemy) ने विक्रम की तीसरी शताब्दी के आरंभ में निश्चय की। इसके बाद यूनानी ज्योतिष में वसंत सम्पात के चलने के सम्बन्ध में तथा अन्य बातों में भी कोई उन्नति[५] नहीं हुई।

अलबटानी नामक अरब के एक राजकुमार ने जो एक निपुण ज्योतिषी था ९३७ वि० के लगभग वसंत सम्पात की वार्षिक गति कुछ शुद्धतापूर्वक निश्चय की। शंकर बालकृष्ण दीक्षित[६] लिखते हैं कि अलबटानी ने सम्पात चलन की वार्षिक गति ५५·५ विकला निश्चित की थी। इसके बाद नसीरउद्दीन ने[७] वर्तमान ईरान के उत्तरी पश्चिमी सीमा के पास बेधालय स्थापित करके वसंत संपात की वार्षिक गति ५१ विकला विक्रम की १४वीं शताब्दी के आरंभ में निश्चय की।

---

१. गोलाध्याय पृष्ठ ५५।

२. जन्म संवत् ६५५ वि०, ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त का रचना-काल सम्वत् ६८५ वि०। देखो ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त पृष्ठ ४०७।

३. Berry's Short History of Astronomy pp 51-52 तथा Encyclopaedia Brittanica, Eleventh edition pp. 810.

४. Berry's Short History of Astronomy pp. 68-69.

५. उपरोक्त, पृष्ठ ७३।

६. भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ ३२५।

७. Berry's History of Astronomy pp. 81-82.

आजकल बहुत सूक्ष्मयंत्रों के द्वारा वसंत संपात की वार्षिक गति का सूत्र निउकंब[1] (Newcomb) के अनुसार यह है।

५०″.२४५३+०″.०००२२२५ व

जहाँ व, १८५० ई० अथवा १९०७ वि० के बाद के बीते हुए वर्षों की संख्या है। इस हिसाब से १९८२ वि० के आरंभ में वसंत सम्पात की वार्षिक गति

५०.″२४५३+०.″०००२२२५×७५
=५०″.२६२

भारतीय, यूनानी, अरबी तथा यूरोपीय विद्वानों के अयन चलन संबंधी विचारों की चर्चा संक्षेप में इसलिए की गयी जिससे प्रकट हो जाय कि इस संबंध में हमारे ज्योतिषियों के विचार कितने स्वतंत्र हैं। अब यह प्रश्न होता है कि हमारे ज्योतिषियों ने अयन की वार्षिक गति १ कला क्यों मानी है जब कि शुद्ध गति ५०.२६२ विकला के लगभग है। इसका कारण यह है कि हमारे ज्योतिषी अयनांश उस अंतर को कहते हैं जो विषुव सम्पात से मेष के आदि विन्दु का होता है। और मेष का आदि विन्दु वह वेध से नहीं निश्चय करते वरन् गणना से करते हैं। गणना के लिए हमारे यहाँ सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार ३६५ दिन १५ घड़ी ३१ पल ३१.४ विपल का वर्ष माना जाता है जब कि आधुनिक खोज के अनुसार शुद्ध वर्ष का मान ३६५ दिन १५ घड़ी २२ पल ५६.८७ विपल होता है (देखो मध्यमाधिकार पृष्ठ २० की सारिणी)। इस तरह हमारे वर्ष का मान शुद्ध वर्ष से ८ पल ३४.५३ विपल अधिक है। इतने समय में सूर्य ५८′४२″.४६ * प्रति दिन के हिसाब से ८.३९१ विकला चलता है। इसलिए शुद्ध वर्ष के अनुसार यदि वसंत सम्पात की गति ५०″.२६२ होती है तो हमारे वर्ष के अनुसार स्पष्ट मेष संक्रान्ति के विन्दु से वसंत सम्पात ५०.″२६२+८″.३९१=५८.″६५३ विकला पच्छिम हो जाता है। अर्थात् यदि सौर वर्ष का मान वह रखा जाय जो सूर्य-सिद्धान्त का है तो प्रतिवर्ष ५८″.६५३ वसंत संपात की गति मानने से शुद्धता होती है। इससे सिद्ध होता है कि मुंजाल, भास्कराचार्य, गणेश इत्यादि ने अयन की गति जो १ कला या ६० विकला मानी है वह इस समय सत्य से केवल १.३४७ विकला अधिक है। जिस समय मुंजाल ने प्रत्यक्ष वेध से अयन गति ५९.९००७ विकला निश्चय किया था उस समय अशुद्धि तनिक सी और रही होगी क्योंकि ९८९ विक्रमीय में शुद्ध अयन गति

---

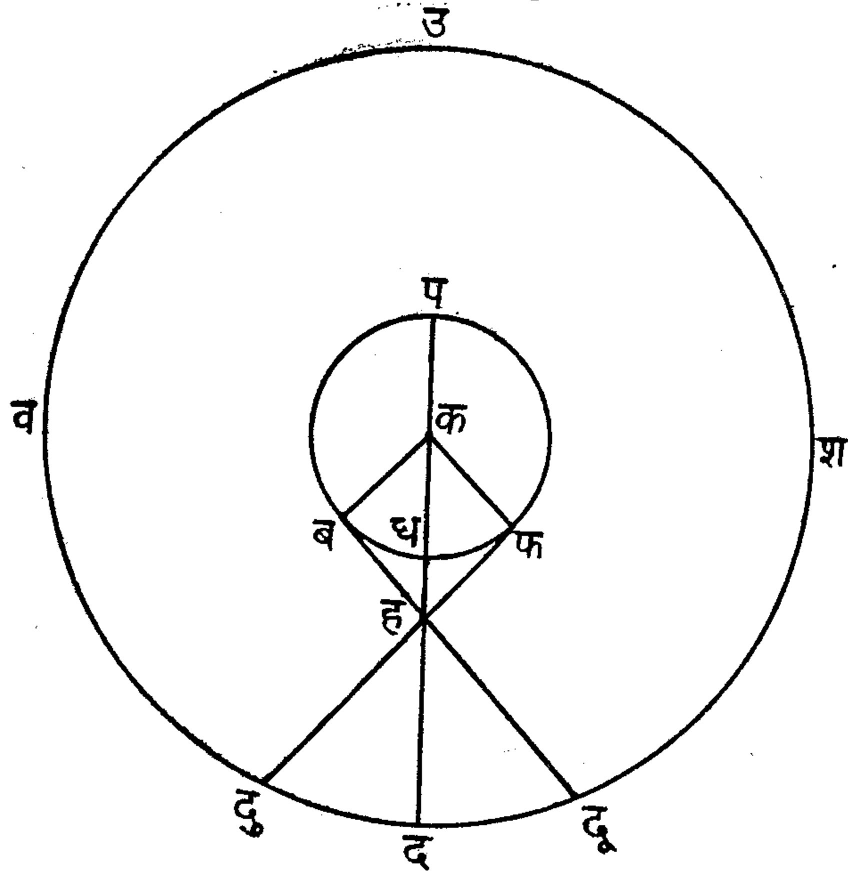
१. Ball's Spherical Astronomy pp. 187.

*यह मेष संक्रान्ति के दिन सूर्य की स्पष्ट दैनिक गति है और सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार निकाली गयी है।

५०″.२४५३—०.००० २२२५×(१६०७—६८६)
=५०″.२४५३—.२०४३
=५०″.०४१ रही होगी।

इससे प्रकट है कि हमारे आचार्यों ने अपने स्वतंत्र और निराले ढंग से अयन की गति इतनी सूक्ष्म निकाली थी कि वह सत्य से केवल १.५६८ विकला अधिक थी जो उस समय के स्थूल यंत्रों के विचार से बहुत ही सराहनीय है।

अब संक्षेप में इस बात पर विचार किया जायगा कि अयन की गति लोलक की गति की तरह होती है जैसा कि सूर्य-सिद्धान्त, सोम-सिद्धान्त, पराशर-सिद्धान्त और



चित्र ५०

महासिद्धान्त का मत है अथवा पूर्ण भ्रमण होता है जैसा कि मुंजाल या भास्कराचार्य इत्यादि का मत है।

सूर्य-सिद्धान्त आदि ग्रन्थों में यह नहीं लिखा मिलता कि अयन की गति लोलक की गति की तरह क्यों होती है। ब्रेनेंड[१] ने और शायद इन्हीं के आधार पर विज्ञानानन्द[२] स्वामी ने इसको समझाने का प्रयत्न इस प्रकार किया है:—

१. Brennand's History of Hindu Astromomy, London 1896.

२. श्री सूर्य-सिद्धान्त बङ्गानुवाद तथा टीका, कलकत्ता १६०६ ई०

मानलो उ व द श क्रान्तिवृत्त और क इसके ध्रुव अर्थात् कदम्ब का छेद्यक (projection) है। ध विषुवद्वृत्त का उत्तरी ध्रुव (pole) और क ध द अयनान्त-वृत्त (solstitial colure) का छेद्यक है। प फ ध ब उस मार्ग का छेद्यक समझो जिस मार्ग से उत्तरी ध्रुव कदम्ब की परिक्रमा अयन चलन के कारण विलोम गति से कर रहा है। दु दू क्रान्तिवृत्त के वह बिन्दु हैं जहां तक दक्षिणायन विन्दु द, अयन चलन के कारण परिलंबन करता है इसलिए द से दु या दू २७° के अंतर पर है। सिद्धान्त के मत से क ध अर्थात् उत्तरी ध्रुव से कदम्ब की दूरी २४° है। दु और दू विन्दुओं से फ और ब विन्दुओं पर स्पर्शरेखाएँ दु फ और दू ब खींचो जो एक दूसरे को ह विन्दु पर काटती हैं। जितनी देर में ध ब प फ वृत्त पर ध ३६० अंश चलता है उतनी देर में द विन्दु द से दू तक जाता है, फिर दू से द तक लौट कर दु तक पहुँचता है और दु से द तक फिर आ जाता है। इसलिए जब तक ध्रुव कदंब की परिक्रमा करता है तब तक नक्षत्रचक्र ह विन्दु के दोनों ओर लोलक की तरह आंदोलन करता हुआ देख पड़ता है।

परन्तु इससे कुछ संतोष नहीं होता क्योंकि प्राचीन लेखों से यह सिद्ध होता है कि वसंत संपात विन्दु अश्विनी के आरंभ स्थान से २७ अंश से भी आगे रहा है। शतपथ[1] ब्राह्मण में लिखा है कि कृत्तिकाएँ ठीक पूर्व दिशा में उदय होती हैं और अन्य तारे पूर्व दिशा से हटकर उदय होते हैं जिससे स्पष्ट है कि उस समय कृतिकाएँ ठीक विषुवद्वृत्त पर थीं। आजकल यह प्रयाग में कोई २७° उत्तर उदय होती हैं। इससे यह गणना की जा सकती है कि जिस समय कृत्तिकाएँ विषुवद्वृत्त पर थीं उस समय वसंत सम्पात विन्दु कहां था। कृत्तिका के योग तारा (n – Tauri) का भोग ३६°९′ और शर प्रत्यक्ष बेध[2] से ४°२′ होता है। यदि क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्त के बीच का कोण (परम अपक्रम) २४° मान लिया जाय तो यह सहज ही जाना जा सकता है कि शतपथ ब्राह्मण काल में कृत्तिका का भोग वसंत सम्पात से क्या था। चित्र ५१ में व आजकल का वसंत सम्पात बिन्दु और प व पा विषुवद् वृत्त है। और वा शतपथ-ब्राह्मण काल का वसंत सम्पात विन्दु तथा च क्र वा विषुवद्

---

१. एकं द्वे त्रीणि चत्वारीति वा अन्यानि नक्षत्राण्यथैता एव भूयिष्ठा यत्कृत्तिकास्तद्भूमानमेवैतदुपैति तस्मात्कृत्तिका स्वादधीत ॥२॥ एता ह वै प्राच्यै दिशो न च्यवंते सर्वाणि ह वा अन्यानि नक्षत्राणि प्राच्यै दिशश्च्यवंते तत्प्राच्यामेवास्यैतद्दिश्याहितौ भवतस्तस्मात् कृत्तिका स्वादधीत ॥ ३ ॥ शतपथ ब्राह्मण २. १.२. [भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ १२७ में उद्धृत]

२. भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ ४५५।

वृत्त है। कृ कृत्तिका तारापुंज है जो विषुवद्वृत्त पर दिखलाया गया है। कृद कृत्तिका का कदम्बाभिमुख शर है जो ४°२′ माना गया है। द वा कृत्तिका का शतपथ ब्राह्मण काल का ऋणात्मक भोग है, अ अश्विनी का आदि विन्दु तथा अ द कृत्तिका का भोग है जो ३६°९′ माना गया है। अ व अयनांश है जो १९८२ वि० के मेष संक्रान्ति के दिन २२°४१′ के लगभग है।

गोलीय समकोण त्रिभुज कृ वा द में नेपियर के नियम के अनुसार,

ज्या (द वा)=स्पर्शरेखा (कृ द)×स्पर्शरेखा (९०° − ∠कृ वा द)

=स्पर्शरेखा ४°२′×स्पर्शरेखा (९०° − २४°)

=.०७०५×२.२४६०

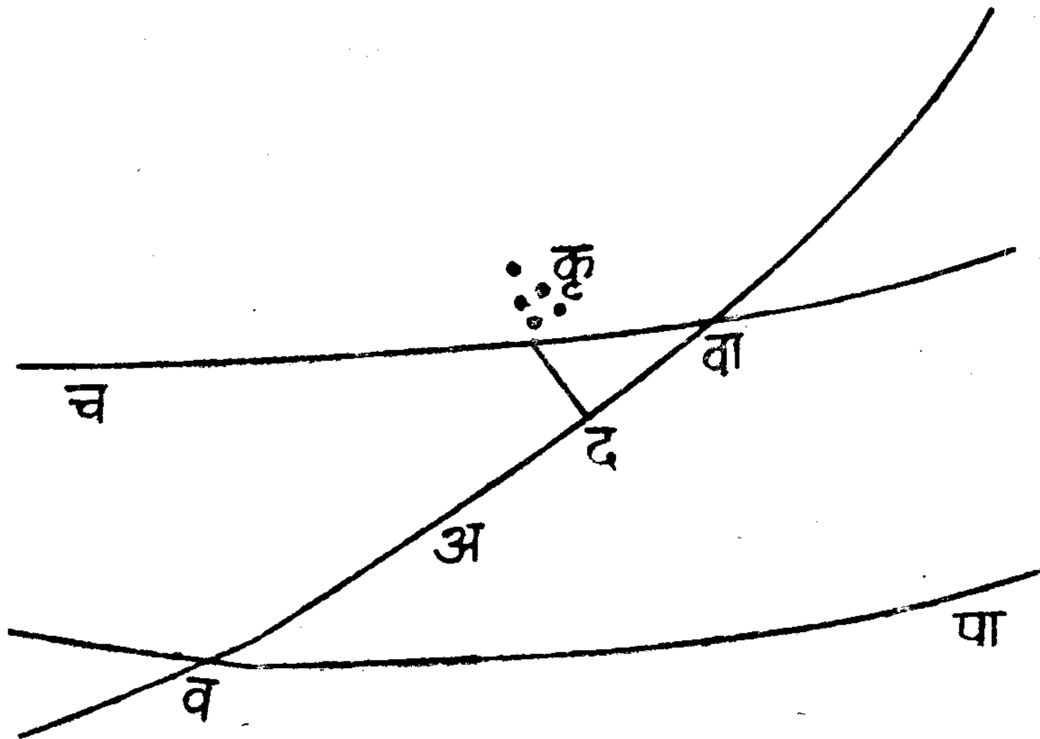
=.१५८३

∴ दवा=९°६′

∴ कृत्तिका का भोगांश शतपथ-ब्राह्मण काल में वसंत सम्पात से ९°६′ पश्चिम था।

∴ व वा=व अ+अ द+द वा=२२°४१′+३६°९′+९°६′

=६७°५६′



चित्र ५१

इसलिए यह सिद्ध है कि वसंत सम्पात विन्दु शतपथ ब्राह्मण के समय जहाँ था उससे इस समय ६७°५६′ पच्छिम है। परन्तु सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार वसंत सम्पात विन्दुओं का महत्तम अंतर ५४° से अधिक नहीं होना चाहिये। इसलिए यह सिद्ध होता है कि सूर्य-सिद्धान्त का यह मत है कि वसंत सम्पात विन्दु मध्यम स्थान से २७° पूर्व और पच्छिम जाता है ठीक नहीं है।

इस संबन्ध में केई[1] महाशय कहते हैं कि कृत्तिका से कृत्तिका तारापुंज (Pleiades) को नहीं समझना चाहिये वरन् वसंत सम्पात को समझना चाहिये जैसे आजकल युरोपीय विद्वान सायनमेष (First point of Aries) को समझते हैं। ऐसा मानने से शतपथ ब्राह्मण काल उतना प्राचीन नहीं ठहरता जितना पूर्वोक्त गणना से ठहरता है। पूर्वोक्त गणना से शतपथ ब्राह्मण का समय आज से कोई ४८६७ वर्ष पूर्व अथवा विक्रम से २८८५ वर्ष पूर्व सिद्ध होता है जो केई महाशय को असम्भव जान पड़ता है। परन्तु मेरी समझ में केई महाशय भ्रम में हैं। पूर्वोक्त अवतरण में जहाँ कृत्तिका शब्द आया है वहां इसका प्रयोग बहुवचन में है जिससे प्रकट है कि कृत्तिका का अर्थ कृत्तिका तारा पुंज है जिसमें कोरी आँख से ६ तारे देख पड़ते हैं। यदि इसका अर्थ वसंत सम्पात विंदु होता तो बहुवचन में प्रयोग कदापि न होता। इसके सिवा यह विचार करने की बात है कि जब कृत्तिका उसी नाम के तारापुंज को न समझकर वसंत सम्पात विंदु को समझा जाय तो क्या इस विंदु को देखकर पूर्व दिशा का ज्ञान हो सकता है? क्या आजकल सायनमेष को देखकर पूर्व दिशा का ज्ञान हो सकता हैं अथवा अग्रहायन पुंज के इल्वक के प्रथम तारे (δ orionis) से जो आजकल प्राय: विषुववृत्त पर है? इस विषय को बहुत न बढ़ाकर अब संक्षेप में यह बतलाया जायगा कि आजकल के भौतिक ज्योतिष शास्त्र (physical astronomy) के अनुसार अयन चलन या वसंत सम्पात के पीछे खसकने का क्या कारण है, जिससे यह भी सिद्ध हो जायगा कि इसका पूर्ण भगण होता है न कि लोलक की तरह आंदोलन।

प्रत्यक्ष वेध से क्या परिणाम निकलता है?

यदि किसी तारे के किसी समय के विषुवांश और क्रांति की तुलना उसी तारे के अन्य समय के विषुवांश और क्रान्ति से की जाय तो देख पड़ता है कि इनमें बहुत

---

१. Memoirs of Archaeological Survey of India No. 18. Hindu Astronomy by G. R. Kaye pp. 23-24.

अन्तर होता जाता है। उदाहरण के लिए ध्रुवतारे[1] (polaris) के विषुवांश[2] और क्रान्ति यही हैं :—

१८५० ई० की पहली जनवरी को { विषुवांश १ घ० ५ मि० २३ से० / क्रान्ति + ८८° ३०′ ४६″

१६०० ई० की पहली जनवरी को { विषुवांश १ घंटा २३ मिनट ० सेकंड / क्रान्ति + ८८° ४६′ ५३″

यह कहा जा सकता है कि विषुवांश और क्रांति के परिवर्तन का कारण यह है कि तारा स्वयं चलता है। दूसरा अनुमान यह हो सकता है कि विषुवांश और क्रान्ति जिन भुजयुग्मों (axes of coordinates) से निश्चय किये जाते हैं उन्हीं में परिवर्तन होता होगा।

५० वर्ष में ध्रुवतारे की क्रांति १६′ ४″ अधिक हुई जिससे स्पष्ट होता है कि ध्रुवतारे से ध्रुव का अन्तर प्रायः १६″ प्रतिवर्ष कम हो रहा है अर्थात् या तो ध्रुवतारा ध्रुव की ओर जा रहा है या ध्रुव ध्रुव-तारे की ओर जा रहा है। जब अन्य तारों से ध्रुवतारा के अन्तरों की तुलना की जाती है तो देख पड़ता है कि इनमें परस्पर इतनी भिन्नता नहीं हो रही है जितनी ध्रुव और ध्रुवतारे में हो रही है। ध्रुवतारे में जो स्वयं गति (proper motion) है वह इतनी सूक्ष्म है कि इससे १६″ प्रति वर्ष का अंतर नहीं पड़ सकता। यह भी देखा गया है कि ५० वर्षों में ध्रुव से अन्य तारों का भी अन्तर बहुत कम पड़ गया है परन्तु उनका परस्पर अंतर प्रायः जैसे का तैसा ही है। इन सब बातों से यही परिणाम निकलता है कि ध्रुव और ध्रुवतारे के बीच का अन्तर ध्रुवतारे की गति के कारण नहीं कम हो रहा है वरन् आकाशीय ध्रुव की गति के कारण कम हो रहा है।

यदि ध्रुव अपना स्थान सदैव बदलता रहता है तो यह भी आवश्यक है कि विषुवद्वृत्त भी जो ध्रुव से सदैव ६० अंश दूर रहता है अपना स्थान निरन्तर बदला करे। पर विषुवद्वृत्त के चलते रहने पर भी क्रान्तिवृत्त से उसका जो मध्यम झुकाव है वह सदैव प्रायः एक सा रहता है। यह झुकाव मध्यम मान से केवल कुछ कलाएँ इधर उधर आन्दोलन करता है। सूर्य की परम क्रान्ति १८५० ई० में जितनी थी प्रायः उतनी ही १६०० ई० में थी इसलिए विषुवद्वृत्त और क्रान्ति वृत्त के बीच

१. Balls' Spherical Astronomy pp. 171 साधारणतः लोग समझते हैं कि ध्रुवतारा एक ही जगह देख पड़ता है और इसी की परिक्रमा अन्य तारे करते हैं परन्तु यह ठीक नहीं है। ध्रुवतारा भी आकाशीय ध्रुव की जो अदृश्य है परिक्रमा करता है और उसके बहुत पास है इसलिए कुछ भेद नहीं जान पड़ता।

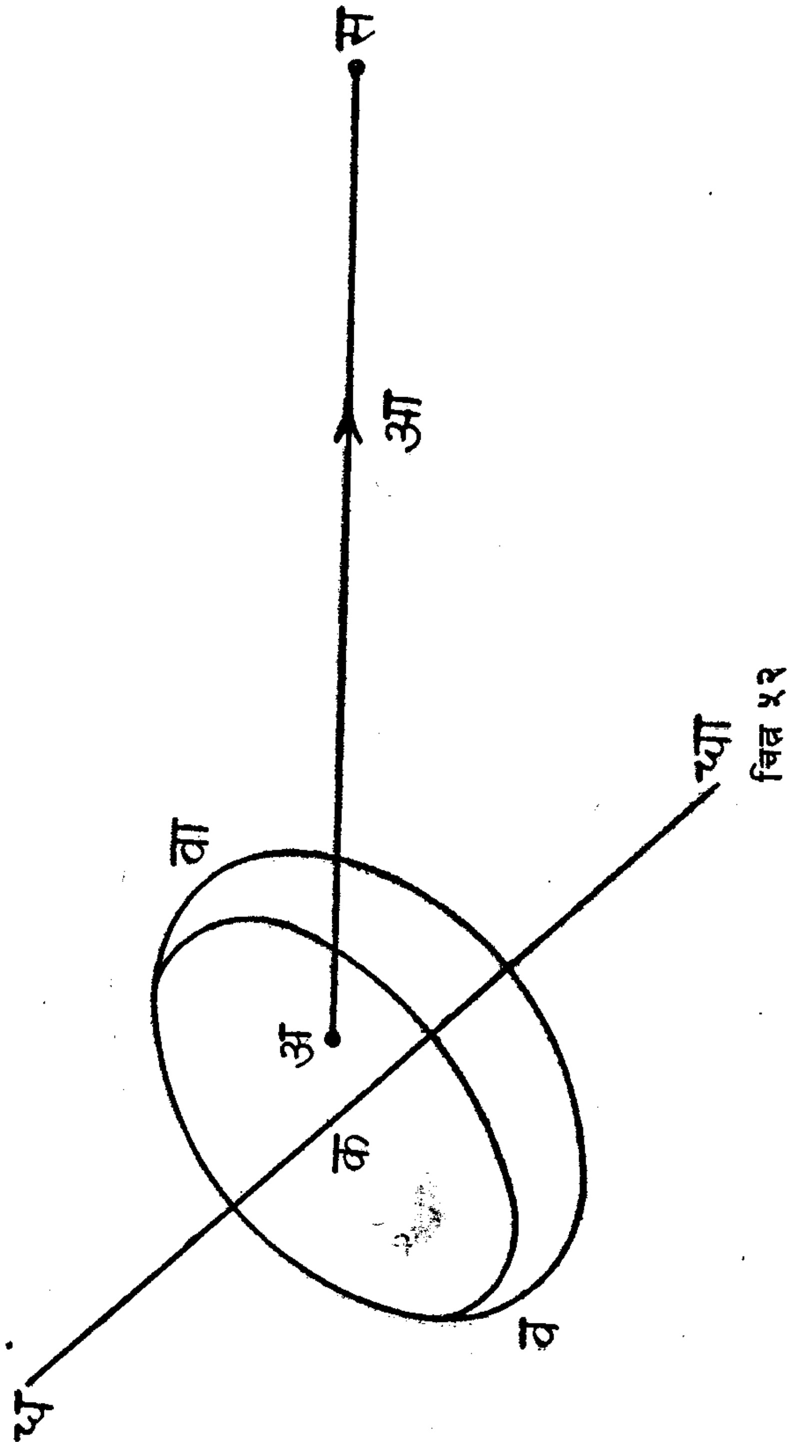
२. देखो चित्र ४० और इसका वर्णन।

का कोण प्राय: स्थिर रहता है। इससे यह सिद्ध होता है कि विषुवद्वृत्त इस प्रकार चलता है कि यह क्रान्तिवृत्त को सदैव समान कोण पर काटता है और विषुव सम्पात विन्दु (वसंत या शरद सम्पात विन्दु) पृथ्वी की गति की विलोम दिशा में भ्रमण कर रहा है। इससे यह सिद्ध होता है कि कदम्ब (क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव) स्थिर है और आकाशीय ध्रुव (विषुवद्वृत्तीय ध्रुव) उसके चारों ओर सदैव समान दूरी पर रहता हुआ परिक्रमा कर रहा है। इसी गति को विषुव सम्पात विन्दु का चलन (Precession of equinoxes) या अयन चलन कहते हैं। यह गति विशेषकर सूर्य और चन्द्रमा के आकर्षण के कारण होती है इसलिए इसको चांद्र-सौर अयन चलन (luni-solar precession) कहते हैं।

चांद्र-सौर अयन चलन का कारण

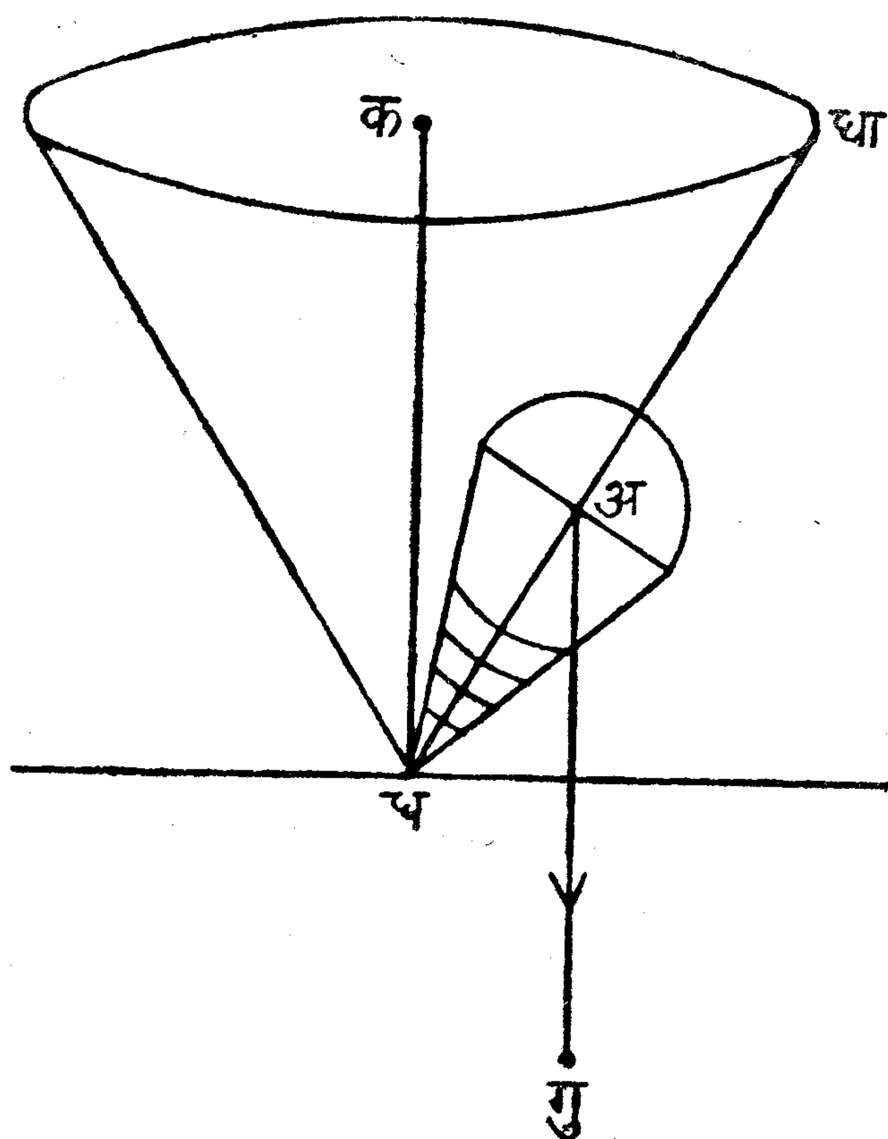
ऊपर सिद्ध हो चुका है कि जिस अक्ष पर पृथ्वी २४ घंटे में एक बार घूम जाती है उसकी दिशा में जो परिवर्तन होता है उसीसे विषुव सम्पात विन्दु चल रहा है। पृथ्वी की अक्ष की दिशा में जो विचलन हो रहा है उसका कारण यह है कि पृथ्वी पूर्ण गोल नहीं है वरन् ध्रुवों पर कुछ चपटी और विषुवत् रेखा पर कुछ उभड़ी हुई है इसलिए सूर्य और चन्द्रमा का लब्ध (resultant) आकर्षण इसके केन्द्र से होकर नहीं जाता है। चित्र ५२ में स को सूर्य, क को पृथ्वी का केन्द्र ध धा को पृथ्वी का अक्ष जो आकाश तक बढ़ा दिया गया है, व वा को विषुवत रेखा, अ को वह विन्दु जहां सूर्य का आकर्षण काम कर रहा है तथा अ आ को सूर्य के आकर्षण की दिशा समझो। यदि पृथ्वी पूर्ण गोल होती तो अ और क एक ही विन्दु पर होते जिससे व वा विषुवत् रेखा का तल सूर्य की ओर न झुकता। चित्र से यह भी प्रकट है कि निरक्षदेशीय मेखला का आधा भाग जो वा की ओर है सूर्य के निकट है और दूसरा आधा भाग जो व की ओर है सूर्य से दूर है। इसलिए सूर्य का आकर्षण व भाग की ओर कम होगा जिसका परिणाम यह होता है निरक्षदेशीय तल सूर्य की ओर कुछ झुक जाता है जिससे पृथ्वी का अक्ष ध धा कुछ डगमगा जाता है। इससे यह भी जान पड़ता है कि विषुवद्वृत्त का तल झुकते-झुकते क्रान्तिवृत्त के तल से जिस पर सूर्य रहता है अंत में मिल जायगा और पृथ्वी का अक्ष क्रान्तिवृत्त से समकोण बनाने लगेगा तथा ध्रुव और कदम्ब एक हो जायंगे। परन्तु बात ऐसी नहीं है। क्योंकि पृथ्वी बहुत तीव्र गति से अपने अक्ष पर घूम रही है जिससे विषुवद्वृत्त और क्रान्तिवृत्त के तलों के बीच का कोण सदैव प्राय: एक सा बना रहेगा और ध्रुव कदम्ब के चारों ओर एक वृत्त पर परिक्रमा करता रहेगा।

ठीक ऐसी ही बात लट्टू या फिरकी के घूमने में भी होती है। जिस समय



चित्र ५२

लट्टू तीव्र गति से घूमता रहता है उस समय उसका अक्ष उसके भार या गुरुत्व के प्रभाव से लम्ब-रेखा से कुछ झुका अवश्य रहता है परन्तु गति की तीव्रता के कारण वह पृथ्वी के धरातल से मिल नहीं जाता। हां, जिस समय गति बहुत मंद हो जाती है उसी समय लट्टू पृथ्वी पर लग जाता है। चित्र ५३ में अ लट्टू का गुरुत्व केन्द्र (Centre of gravity) है जिस पर लट्टू का गुरुत्व अथवा पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण अ गु रेखा की



चित्र ५३

सीध में काम कर रहा है, ध धा लट्टू के अक्ष की रेखा है जिसका एक सिरा ध भूतल पर लगा हुआ घूम रहा है और दूसरा सिरा धा ध क लम्ब रेखा से कुछ हटा हुआ इसी की परिक्रमा कर रहा है। जब तक लट्टू की गति तीव्र रहती है तब तक यह इसी भाँति भूतल की ओर प्रायः एक सा झुका हुआ क ध लम्ब की परिक्रमा करता रहता है। क ध रेखा के चारों ओर एक परिक्रमा जितने समय में होती है उतने समय में लट्टू ध धा अक्ष पर नहीं मालूम कितनी बार घूम जाता है। इसी प्रकार पृथ्वी अपने अक्ष पर २४ घंटे में एक बार घूमती हुई क्रान्तिवृत्तीय अक्ष की, जिसकी तुलना ध क लम्ब रेखा से हो सकती है, कोई २५००० वर्ष में एक परिक्रमा

कर लेती है जिसके कारण वसंत-सम्पात प्रति सायन* वर्ष ५०.३ विकला के लगभग विलोम दिशा में खसकता जाता है। चित्र ५२ और ५३ में समानता दिखाने के लिए कई अक्षर एक से हैं। चित्र ५२ में पृथ्वी लट्टू की तरह है, अ इसका सौराकर्षण केन्द्र है, ध धा लट्टू का अक्ष है और यदि क से स अ के समानान्तर रेखा खींची जाय तो यह ध क के समान होगी।

जो कुछ सूर्य के सम्बन्ध में कहा गया है वही चंद्रमा के लिए भी लागू होता है। चंद्रमा का प्रभाव सूर्य के प्रभाव के दूने से कुछ अधिक होता है क्योंकि चन्द्रमा पृथ्वी के बहुत पास है।

सूर्य और चंद्रमा में से प्रत्येक का प्रभाव उस समय सबसे अधिक होता है जिस समय इनकी उत्तर या दक्षिण क्रांति सबसे अधिक होती है। जिस समय यह विषुवद्वृत्त पर होते हैं उस समय इनका प्रभाव शून्य होता है। परन्तु ग्रहों का उलटा प्रभाव भी वसंत संपात की गति पर पड़ता है। ग्रह सम्बन्धी विचलन का परिमाण प्रति वर्ष ०.११ विकला पूर्व की ओर होता है। ग्रहों के कारण वसंत सम्पात में ही विचलन नहीं होता वरन् पृथ्वी की कक्षा भी विचलित होती है जिससे क्रान्तिवृत्त का तल डगमगा जाता है तथा क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्त के बीच का कोण (परम अपक्रम) प्रतिवर्ष आधा विकला के लगभग कम होता जा रहा है। परन्तु यह कभी एक सीमा के भीतर ही, अर्थात् मध्यम स्थान से १$\frac{1}{2}$ अंश कम या अधिक होती है।

अभी तक बतलाया गया है कि सौर चान्द्र अयन चलन के कारण आकाशीय ध्रुव कदम्ब की परिक्रमा एक वृत्त पर कर रहा है। परन्तु यह कुछ स्थूल है। इसका कारण यह है कि चन्द्रमा सदैव क्रान्तिवृत्त पर नहीं रहता वरन् इससे ५ अंश के लगभग उत्तर या दक्खिन हो जाता है तथा इसका पात (राहु) प्रायः १८ वर्ष में एक

---

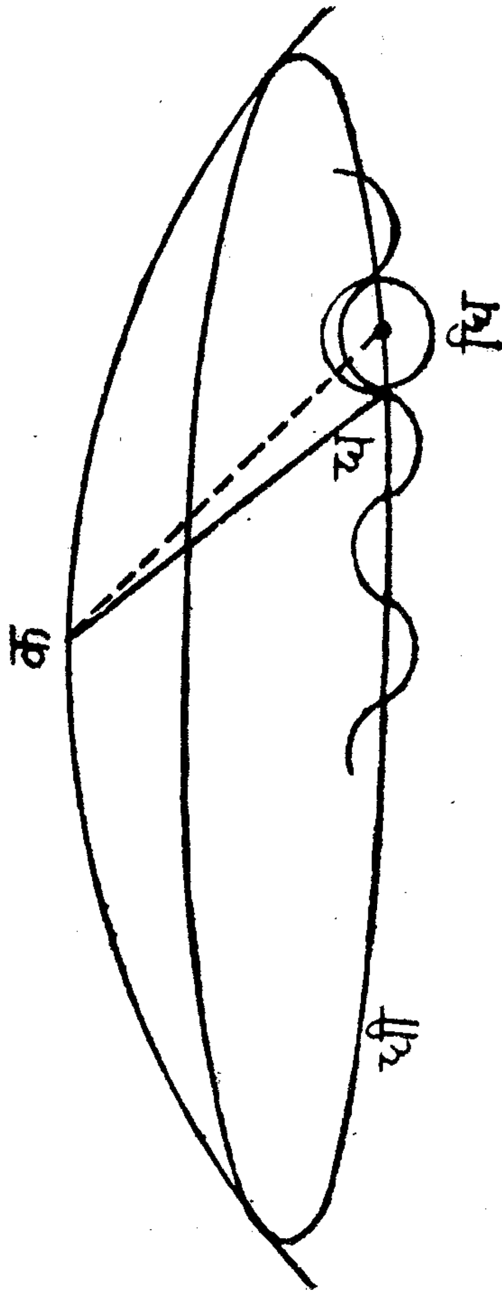
*वसंत सम्पात विन्दु से चल कर जितने समय में सूर्य फिर वसंत सम्पात विन्दु पर आ जाता है उतने समय को सायन वर्ष (tropical year) कहते हैं। यह ३६५.२४२२१६ मध्यम सावन दिन के समान होता है।

क्रान्तिवृत्त के एक बिन्दु से चल कर जितने समय में सूर्य फिर उसी विन्दु पर आ जाता है उसे नाक्षत्र सौर वर्ष (Sidereal year) कहते हैं। यह ३६५.२५६३७४ मध्यम सावन दिन के समान होता है। यही रवि या पृथ्वी का शुद्ध भगणकाल भी कहलाता है। (देखो मध्यमाधिकार पृष्ठ २०)

सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार रवि का जो भगणकाल है वही (३६५.२५८७५६ मध्यम सावन दिन)। सौर वर्ष हमारे यहाँ माना जाता है। (देखो मध्याधिकार पृष्ठ २०)

परिक्रमा कर लेता है। अयन चलन के कारण जिस प्रकार आकाशीय ध्रुव क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव की परिक्रमा २३°२७′ व्यासार्द्ध के वृत्त पर करता है उसी प्रकार राहु की विलोम गति के कारण चन्द्रकक्षा का ध्रुव भी क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव की परिक्रमा ५° व्यासार्द्ध के वृत्त पर करता है और इस चन्द्रकक्षा के ध्रुव की परिक्रमा आकाशीय ध्रुव अयन चलन के उस भाग के कारण करता है जो चन्द्रमा के प्रभाव से होता है।

इन दोनों कारणों से आकाशीय ध्रुव कभी मध्यम स्थान से कुछ आगे रहता है और कभी पीछे तथा कदम्ब से इसकी दूरी कभी कुछ कम हो जाती है और कभी कुछ अधिक। इसलिए आकाशीय ध्रुव का यथार्थ मार्ग तरंगाकार होता है। इस परिवर्तन का चक्र प्रायः १९ वर्ष का होता है जितने में राहु का एक चक्र होता है। चन्द्रमा के कारण आकाशीय ध्रुव के स्थान में जो यह तनिक सा परिवर्तन होता है उसे अक्षविचलन (nutation) कहते हैं।



चित्र ५४

अक्षविचलन का परिणाम यह होता है कि वसंत सम्पात विन्दु अपने मध्य स्थान से जो सौर चान्द्र, और ग्रह संबंधी अयन चलन से निश्चय किया जाता है कभी आगे रहता है और कभी पीछे। इसके कारण क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्त के बीच का झुकाव (परमापक्रम) भी अपने मध्यम मान से कभी कुछ कम और कभी कुछ अधिक होता है।

अक्षविचलन का आविष्कार ब्रैडली नामक ज्योतिषी ने १७८४ विक्रमीय से १७९८ विक्रमीय की (१७२७-१७४१ ईस्वी) अवधि में, अजगर के 'ग, तारे (γ.Draconis) के निरंतर वेध से किया था। अक्षविचलन का स्पष्ट ज्ञान चित्र ५४ से होता है।

मान लो धिधी एक छोटा वृत्त है जिसे मध्यम ध्रुव कदम्ब की परिक्रमा करता हुआ बना रहा है। धि को केन्द्र मानकर एक दीर्घवृत्त खींचो जिसका दीर्घ अक्ष कदम्ब की सीध में हो और १८″.५ बड़ा हो और लघु अक्ष उसी छोटे वृत्त पर १३″.७ बड़ा हो। ज्यों-ज्यों मध्यम ध्रुव धि छोटे वृत्त पर दीर्घ वृत्त को अपने साथ लेता हुआ समान गति से विलोम दिशा में चलता है त्यों-त्यों यथार्थ ध्रुव ध दीर्घ वृत्त की परिधि पर ६७९८ दिन में (राहु के भगण-काल में) एक परिक्रमा करता जाता है।

धि क कदम्ब से ध्रुव का मध्यम अंतर और ध क स्पष्ट अंतर है। जिस समय ध दीर्घ अक्ष पर रहता है उस समय वसंत सम्पात विन्दु के मध्यम और स्पष्ट स्थान एक होते हैं अन्यथा वसंत सम्पात विन्दु का स्पष्ट स्थान मध्यम स्थान से कुछ आगे या पीछे होता है। इसी प्रकार जब ध लघु अक्ष पर रहता है तब कदम्ब से ध्रुव के मध्यम और स्पष्ट अन्तर अथवा मध्यम और स्पष्ट झुकाव (क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्त के बीच का कोण) एक होता है अन्यथा कुछ कम या अधिक।

अयन चलन और परमाप क्रम की वार्षिक गति स्थिर नहीं होती वरन् इनमें कुछ सूक्ष्म परिवर्तन होता रहता है। एक सायन वर्ष में इनके जो मान होते हैं वह नीचे लिखे सूत्रों से जो भौतिक ज्योतिविज्ञान तथा उच्च गणित के आधार पर स्थापित किये गये हैं प्रकट होते :—

१९०० ईस्वी से 'व' वर्ष उपरान्त,

सायन वार्षिक मध्यम अयन चलन (वसंत संपात चलन)

$$=५०''.२५६४+०''.०००२२२५ \text{ व}^* \qquad (१)$$

तथा विषुवद्वृत्त और क्रान्तिवृत्त के बीच का कोण (यदि अन्य छोटे पदों को छोड़ दिया जाय)

$$=२३°२७'८''.२६-०''.४६८ \text{ व}^* \qquad (२)$$

अक्ष विचलन के कारण वसंत सम्पात विन्दु के मध्यम स्थान में जो संस्कार करना पड़ता है उसका सूत्र यह है—

$$-१७''.२३५ \text{ ज्या (सायन राहु)} - १''.२७ \text{ ज्या (२ सायन सूर्य)}^* \qquad (३)$$

तथा क्रान्ति वृत्त और विषुवद्वृत्त के बीच के कोण के मध्यम मान में जो संस्कार करना पड़ता है उसका सूत्र यह है—

$$+९''.२१ \text{ कोटिज्या (सायन राहु)} + ०''.५५ \text{ कोटिज्या (२ सायन सूर्य)}^* \qquad (४)$$

* R. S. Ball's Spherical Astronomy pp. 177, 186-187 ।

इष्ट काल में राहु का जो सायन भोगांश होता है अर्थात् विषुव सम्पात बिन्दु से क्रान्तिवृत्त पर राहु जितना दूर होता है वही सायन राहु तथा सूर्य का जो सायन भोगांश होता है वह सायन सूर्य कहा गया है।

इस अयन चलन के कारण वसंत संपात विंदु से प्रत्येक तारे का अंतर सदैव बढ़ रहा है जिससे तारे का सायन भोगांश बढ़ता जाता है। यदि वर्ष के आरंभ का तारे का भोगांश दिया हुआ हो तो किसी अन्य समय का भोगांश इस सूत्र† से जाना जाता है—

ता=त+५०″.२६व−१७″.२३५ ज्या (सायन राहु) −१″.२७ ज्या (२ सायन सूर्य) (५)

जहाँ

त=वर्ष के आरंभ में तारे का मध्यम सायन भोगांश,

व=वर्ष के आरंभ से इष्ट काल का अन्तर (वर्ष के दशमलव भिन्न में)

इस सूत्र के दाहिने पक्ष का दूसरा पद ५०″.२६व मुख्य है क्योंकि व जितना ही बड़ा होता जायगा उतना ही अधिक तारे का भोगांश होगा।

तीसरे पद में सायन राहु आया है जो यदि शून्य या १८०° हो तो ज्या सायन राहु शून्य होगा। इस समय तीसरा पद बिलकुल लुप्त हो जायगा, अर्थात् जब सायन राहु का भोगांश शून्य या १८०° हो तो तीसरा पद उड़ जायगा। और जब सायन राहु ९०° होगा तो तीसरे पद का मान −१७″.२३५ तथा जब सायन राहु २७०° होगा तब तीसरे पद का मान +१७″.२३५ होगा। इसके कारण राहु के एक भ्रमण काल में वसंत सम्पात विन्दु का स्पष्ट स्थान ९ वर्ष के लगभग मध्यम स्थान से पूर्व और ९ वर्ष के लगभग मध्यम स्थान से पच्छिम रहता है।

सूर्य के कारण भी जो तनिक सा अक्ष विचलन होता है वह चौथे पद से सूचित किया गया है। इसका चक्र ६ महीने में बदलता है क्योंकि जिस समय सूर्य का सायन भोगांश शून्य, ९०°, १८०°, २७०° और ३६०° होगा उस समय चौथे पद का मान शून्य होगा और जिस समय सूर्य का भोगांश ४५°, १३५°, २२५°, ३१५° होगा उस समय इसके मान क्रमानुसार—१″.२७, +१″.२७, −१″.२७ और +१″.२७ होंगे।

इसी प्रकार परमाप क्रम में भी अक्ष विचलन के कारण परिवर्तन होता रहता है। अब इन सूत्रों से अयनांश जानने की रीति का उदाहरण दिया जाता है :—

---

† इस सूत्र का निश्चय ज्योतिषियों के एक सम्मेलन में जो पेरिस में हुआ था सन् १८९६ ई० के मई मास में किया गया था (देखो R. S. Balls' Spherical Astronomy pp. 186.)।

समीकरण (१) में वसंत सम्पात की वार्षिक गति का सूत्र दिया हुआ है।

परन्तु यह वर्ष सायन है और हमारा वर्ष जो सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार माना जाता है इससे बड़ा है। इसलिये पहले त्रैराशिक से यह जानना चाहिये कि हमारे एक वर्ष में अयन की गति क्या होती है अर्थात् जब ३६५.२४२२१६ दिन में अयन गति ५०°′′.२५६४+०′′.०००२२२५ व होती है तब ३६५.२५८७५६५ दिन में क्या होगी। सरल करने पर १६०० ई० की जनवरी के आरम्भ काल में सूत्र का रूप यह होता है।

५०′′.२५८६७६+.०००२२२५१ व* (६)

और १६२२ ई० की जनवरी के आरम्भ काल में वार्षिक अयन गति का सूत्र उपर्युक्त सूत्र में 'व' की जगह २२ रखकर सरल करने से यह आता है—

५०′′.२६३५७१+.०००२२२५१ व† (७)

जनवरी के आरम्भ से मेष संक्रान्ति काल तक प्रायः १०२ दिन या .२७६३ वर्ष होते हैं इसलिए यदि सूत्र (७) में व की जगह .२७६३ रख कर सरल किया जाय तो १६७६ वि० की मेष संक्रान्ति काल में अयन की वार्षिक गति

५०.′′२६३६३३+.००० २२५१ व (८)

होगी जब कि व का मान हमारे सिद्धान्तीय वर्ष के अनुसार लिया जाय। इस सूत्र से यह बात जानी जाती है कि वसंत सम्पात बिन्दु प्रति वर्ष (हमारे सिद्धान्त के अनुसार) क्रान्तिवृत्त के किसी बिन्दु से कितना पीछे हट जाता है। परन्तु हमारा सिद्धान्तीय वर्ष शुद्ध नाक्षत्र सौर वर्ष से .००२३८२०६७ दिन बड़ा है†† इसलिये इतने समय में हमारे मेष संक्रान्ति का विन्दु प्रति वर्ष कुछ आगे बढ़ जाता है। इसका परिमाण जानने के लिए मेष संक्रान्ति काल में सूर्य की जो स्पष्ट दैनिक गति होती है उससे उपर्युक्त अन्तर को गुणा करना चाहिये।

---

* यदि शुद्ध नाक्षत्र वर्ष लिया जाय जो ३६५-२५६३७४४ दिन का होता है तो एक शुद्ध नाक्षत्र सौर वर्ष में अयन गति ५०.′′२५८३५१+.०००२२२५१ व होती है।

† शुद्ध नाक्षत्र सौर वर्ष के अनुसार १६२२ की जनवरी के आरम्भ में वार्षिक अयन गति

५०′′.२६३२४६+०′′.०००२२२५१ व और १६२२ की मेष संक्रान्ति जो १६७६ विक्रमी की मेष संक्रान्ति है इसका रूप

५०′′.२६३३०८+०′′.०००२२२५१ व होगा।

†† ३६५.२५८७५६४८४ में से ३६५.२५६३७४४१७ घटाने पर यह आता है।

१९२२ ई० के 'नाटिकल अलमनक' से मेष संक्रान्ति काल के आगे और पीछे के सूर्य के भोगांशों का अन्तर ५८′४६″.२ होता है। इसलिए इस दिन सूर्य की स्पष्ट दैनिक गति ५८′४६″.२ होती है। इसको उपर्युक्त अन्तर से गुणा करने पर ८″.३९९६ सूर्य की गति होती है। इसलिए यह समझना चाहिये कि हमारे वर्ष के कुछ बड़ा होने के कारण अयनांश में प्रति वर्ष ८″.३९९६ की वृद्धि होती है। इसको सूत्र (८) में सम्मिलित करने से संक्रान्ति काल में वार्षिक अयन गति का सूत्र यह होगा—

५०″.२६३६३३ + .०००२२२५१ व + ८″.३९९६

अथवा ५८″.६६३२३३ + .०००२२२५१ व   (९)

यदि यह जानना हो कि 'व' वर्ष में अयनांश की वृद्धि क्या होगी तो यह सूत्र काम में लाना होगा—

$$५८''.६६३२३३\ \text{व} + .०००२२२५१ \left\{ \frac{\text{व}\ (\text{व}+१)}{२} \right\}^{\dagger}$$

अथवा ५८″.६६३२३३ व + .०००१११२५५ व + .०००१११२५५ $\text{व}^२$

या ५८.६६३३४४२५५ व + .०००१११२५५ $\text{व}^२$

या संक्षेप में ५८.६६३३४४ व + .०००१११२५५ $\text{व}^२$ (१०)

इससे अयनांश की जो वृद्धि आवे उसमें अक्ष विचलन का संस्कार सूत्र (३) के अनुसार करना चाहिए।

अब यह देखना है कि १९७९ वि० कि मेष संक्रान्ति काल में अयनांश कितना था। इसके लिए केवल यह जानना पर्याप्त है कि मेष संक्रान्ति काल में सूर्य का वेध-सिद्ध सायन भोगांश क्या है जिसके जानने का आदेश अगले ११वें तथा १७-१८ श्लोकों में है।

इसी अध्याय में आगे यह बतलाया जायगा कि शंकु की छाया नापकर सूर्य का सायन भोग कैसे जाना जा सकता है और उससे अयनांश कैसे जाना जा सकता है। आजकल यह काम दूरदर्शक यंत्रों से बहुत सूक्ष्मतापूर्वक हो सकता

---

† सूत्र (९) के दूसरे पद में जो व है उसकी जगह क्रमानुसार १, २, ३,···व तक उत्थापन करके सब को जोड़ने से $.०००२२२५१ \times \left\{ \frac{\text{व}\ (\text{व}+१)}{२} \right\}$ आता है। यह श्रेढी व्यवहार (Arithmetical progression) की संख्याओं के जोड़ने की तरह है।

है। जिस समय मेष संक्रान्ति होती है उसी समय का सूर्य का सायन भोग जान लिया जाय तो यही अयनांश होता है। परन्तु दूरदर्शक यंत्रों के अभाव में यही बात नाविक पंचांग (Nautical almanac) से भी जानी जा सकती है। इसलिए इसी से १९७९ विक्रमीय अथवा १९२२ ई० की मेष संक्रान्ति काल का सूर्य का सायन भोग निकाला जाता है। १९७९ विक्रमीय की मेष संक्रान्ति सूर्य सिद्धान्त के अनुसार १३ अप्रैल गुरुवार को उज्जैन के मध्यम ६ बजे प्रातःकाल के उपरांत १८ घड़ी ४७ पल १२ विपल पर हुई। काशी उज्जैन से ७२ पल ५० विपल† पूर्व है। इसलिए काशी में मेष संक्रान्ति मध्यम ६ बजे के उपरांत २० घड़ी ० पल और २ विपल पर होगी। परन्तु काशी ग्रीनविच से ८३°३′४″ अथवा १३ घड़ी ५० पल ३१ विपल पूर्व है। इसलिए जिस समय काशी में मेष संक्रान्ति हुई उस समय ग्रीनविच में मध्यम ६ बजे के उपरांत ६ घड़ी ९ पल ३१ विपल रहा होगा।

इस वर्ष १२ अप्रैल के मध्यम मध्याह्न काल में सूर्य का भोगांश* २१°४७′३१″.५

और १३ ,, ,, ,, ,, २२°४६′१७″.७

अंतर ५८′४६″.२

इसलिए ६० घड़ी में सूर्य की स्पष्ट गति ५८′४६″.२ हुई।

१३ अप्रैल को ग्रीनविच का मध्याह्न काल मध्यम ६ बजे से ६ घंटे अथवा १५ घड़ी उपरांत हुआ और मेष संक्रान्ति मध्यम ६ बजे से ६ घड़ी ९ पल ३१ विपल पर ही हो गयी इसलिए संक्रान्ति काल से १५ घड़ी—६ घड़ी ९ पल ३१ विपल=८ घड़ी ५० पल २९ विपल पश्चात् १३ अप्रैल का मध्याह्न हुआ जिस समय सूर्य का भोगांश २२°४६′१७″.७ था। इससे प्रकट है कि संक्रान्ति काल में सूर्य का भोगांश इससे कम होगा। परन्तु सूर्य की स्पष्ट गति ५८′४६″.२ है इसलिए ८ घड़ी ५० पल २९ विपल में सूर्य

$$\frac{५८'४६''.२ \times ८ \text{ घड़ी } ५० \text{ पल } २९ \text{ विपल}}{६० \text{ घड़ी}}$$

अथवा ८′३९″.६०९ चला होगा।

---

† काशी का देशान्तर (ग्रीनविच से) ८३°३′४″ पूर्व और उज्जैन का ७५°४६′६″ पूर्व है। इन दोनों का अंतर ७°१६′५८″ हुआ जो ७२ पल ५० विपल के समान होता है। इसलिए यही उज्जैन से काशी का देशान्तर हुआ।

* Nautical almanac for 1922 pp. 40.

इसलिए १९७९ वि० की मेष संक्रान्ति काल में सूर्य का अयनांश

=२२° ६′१७″.७ — ८′३९″.६

=२२°३७′३८″.१

बस इसी में सूत्र (१०) के अनुसार जो कुछ वृद्धि आवे उसको जोड़ देने से किसी अन्य मेष संक्रान्ति काल का मध्यम अयनांश प्राप्त होगा। यदि अक्ष विचलन का संस्कार सूत्र (३) की सहायता से कर दिया जाय तो संक्रान्ति काल का स्पष्ट अयनांश प्राप्त हो जायगा। यदि संक्रान्ति काल के सिवा किसी अन्य समय का अयनांश जानना हो तो संक्रान्ति से जितने दिन बीते हों उतने दिन की अयन गति (जब कि एक वर्ष में ५८″.६६* के लगभग अयन की गति होती है) मेष संक्रान्ति के मध्यम अयनांश में जोड़कर अक्षविचलन का संस्कार कर दे तो उस समय का स्पष्ट अयनांश ज्ञात हो जायगा।

उदाहरण—काशी में १९८२ वि० की कार्तिक शुक्ल ८ रविवार का अयनांश क्या होगा ?

१९७९ से १९८२ तक तीन वर्ष होते हैं इसलिए तीन वर्ष में अयनांश की वृद्धि जानने के लिए सूत्र (१०) में 'व' की जगह ३ लिखकर सरल करो,

५८″.६६३३४४ × ३ + ·०००१११२५५ × ३²

=१७५″.९९००३२ + ०″.००१००१२९५

=१७५″.९९१

=२′५५″.९९

इसको २२°३७′३८″.१ में जोड़ा तो २२°४०′३४″.०९ मेष संक्रान्ति काल का मध्यम अयनांश हुआ।

१९८२ वि० की मेष संक्रान्ति वैशाख कृष्ण ५ सोमवार को काशी के मध्यम ६ बजे के उपरांत ६ घड़ी ३४ पल ३६ विपल पर लगी। वैशाख कृष्ण ५ से कार्तिक शुक्ल ८ तक १९५ सावन दिन होते हैं जो ·५३३९ सौर वर्ष के समान हुआ। इतने समय में ५८″.६६ प्रति वर्ष के हिसाब से मध्यम अयनांश ५८″.६६ × .५३३९= ३१″.३२ और बढ़ेगा। इसलिए कार्तिक शुक्ल ८ को मध्यम अयनांश २२°४१′ ५″.४१ होगा।

अक्ष विचलन संस्कार के लिए कार्तिक शुक्ल ८ के दिन सायन राहु और सायन सूर्य का भोगांश जानना आवश्यक है। इस दिन प्रातः काल राहु का निरयन

* अधिक शुद्ध जानना हो तो सूत्र (९) से उस वर्ष की अयन गति निश्चय करना चाहिए।

भोगांश ३$^{रा}$७°१३′८″ है। सायन भोगांश जानने के लिए २२°४१′५″ जोड़ दो तो हुआ ३$^{रा}$२६°५४′१३″ अथवा स्थूल रूप से ३$^{रा}$२६°५४′ या ११६°५४′। यही राहु का सायन भोगांश हुआ।

इसी तरह सूर्य का सायन भोगांश जानना चाहिए। कार्तिक शुक्ल ८ की मध्यरात्रि को सूर्य का निरयन भोगांश १८६°८′१०″ होगा इसलिए प्रातः काल ६ बजे इसका निरयन भोगांश १८८°२३′ स्थूल रूप से होगा। इसमें २२°४१′५″ जोड़ देने पर इसका सायन भोगांश २११°४′ स्थूल रूप से हुआ। इसलिए इस दिन सूत्र (३) के अनुसार अक्षविचलन संस्कार

= −१७″.२३५ ज्या ११६°५४′ − १′.२७ ज्या २ × २११°४′

= −१७″.२३५ ज्या ६०°६′ − १″.२७ ज्या (३६०° + ६२°८′)

= −१७″.२३५ × .८६६६ − १″.२७ × .८८४१

= −१४″.६४ − १″.१२

= −१६″.०६

इसको मध्यम अयनांश २२°४१′५″.४१ में जोड़ा तो कार्तिक शुक्ल ८ के प्रातःकाल स्पष्ट अयनांश हुआ २२°४०′४६″.३५।

केतकर जी ने अपने ज्योतिर्गणित में अयनांश जानने की जो सारिणी दी है उससे उपर्युक्त अयनांश ६′ या ७′ कम आता है। इसका पहला कारण यह है कि केतकरजी ने मेष संक्रान्ति का आरम्भ उस समय माना है जिस समय चित्रा नामक तारा सूर्य से १८०° पर रहता है जब कि आजकल सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार मेष संक्रमण कोई ७ घड़ी पहले ही हो जाता है। दूसरा कारण यह है कि केतकर जी ने शुद्ध नाक्षत्र वर्ष का प्रयोग किया है और इस भाष्य में सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार वर्ष मानकर गणना की गयी है।

वेध करके अयनांश की परीक्षा करना

स्फुटदृक्तुल्यतां गच्छेदयने विषुवद्वये।
प्राक्चक्रं चलितं हीने छायार्कात्करणागते ॥११॥
अन्तरांशैरथोद्धृत्य पश्चाच्छेषैस्तथाऽधिके।

अनुवाद—(११) उत्तरायण और दक्षिणायन के दिन अथवा विषुव संक्रान्ति के दिन यह बात सहज ही देखी जा सकती है कि नक्षत्र किधर चला है। यदि छाया-सिद्ध सूर्य के भोगांश से (जिसकी रीति आगे १७-१६ श्लोकों में बतलायी गयी है) गणित सिद्ध सूर्य का भोगांश कम हो तो समझना चाहिए कि जितना इन दोनों का अन्तर है उतना ही नक्षत्र चक्र अथवा अश्विनी का आदि बिन्दु पूर्व को चला है

अर्थात् वसंत सम्पात विन्दु से पूर्व है। परन्तु यदि अधिक हो तो उतना ही नक्षत्र-चक्र पच्छिम चला हुआ समझना चाहिए।

विज्ञान भाष्य—छाया से सूर्य का जो भोगांश आता है वह वसंत सम्पात विन्दु से सूर्य का भोगांश (सायन भोगांश) है और गणित से जो भोगांश आता है जिसकी रीति स्पष्टाधिकार में बतलायी गयी है वह अश्विनी के आदि विन्दु से होता है। इसलिए इन दोनों का अन्तर यथार्थ अयनांश हुआ। इससे सिद्ध होता है कि अयनांश की परीक्षा वेध से भी करनी चाहिए। सूर्य-सिद्धान्तकार का मत है कि अश्विनी का आदि विन्दु जो क्रान्तिवृत्त का भी आदि विन्दु समझा जाता है वसंत सम्पात विन्दु से २७° पूर्व या २७° पच्छिम तक जा सकता है। इससे अधिक नहीं। ऐसा ही मत और भी कई प्राचीन आचार्यों का है। परन्तु कुछ आचार्य इससे भिन्न मत भी रखते हैं जिसकी चर्चा पहले की गयी है। प्राचीन वाक्यों से* भी यह सिद्ध होता है कि वसंत सम्पात विन्दु आजकल के अश्विनी के आदि विन्दु से २७° से भी अधिक पूर्व रहा है। भौतिक ज्योतिर्विज्ञान से जो कुछ सिद्ध होता है वह ऊपर बतलाया ही जा चुका है। परन्तु इसकी सत्यता का प्रत्यक्ष प्रमाण तो तब मिलेगा जब वसंत संपात विन्दु वास्तव में अश्विनी के आदि विन्दु से २७° से भी अधिक पच्छिम हो जायगा। सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार कलियुग संवत ५४०० में अथवा विक्रम संवत २३५६ में आज से ३७४ वर्ष उपरांत २७° का अयनांश पूरा होगा। परन्तु वेध से इसका प्रमाण इससे पहले ही मिल जायगा क्योंकि वि० १९८२ की मेष संक्रांति काल में मध्यम अयनांश २२°४०′ ३४″.०९ होगा जो २७° से केवल ४°१९′२६″ के लगभग कम है। सूत्र (१०) को इसके समान करके समीकरण बनाकर 'व' का मान निकाल लेने से उतने वर्ष की संख्या निकल आवेगी जितने वर्ष में अयनांश की इतनी वृद्धि होगी। अब

$$\text{४}^\circ\text{१९}'\text{२६}'' = \text{५८}''.\text{६६३३४४व} \times \text{०}''.\text{०००१११२५५व}^{\text{२}}$$

या $$\text{१५५६६}'' = \text{५८}''.\text{६६३३४४व} \times \text{०}''.\text{०००१११२५५व}^{\text{२}}$$

या $$.\text{०००१११२५५व}^{\text{२}} + \text{५८.६६३३४४व} - \text{१५५६६} = \text{०}$$

$$\therefore \text{व} = \frac{-\text{५८.६६३३४४} \pm \sqrt{(\text{५८.६६३३४४})^{\text{२}} + \text{४} \times .\text{०००१११२५५} \times \text{१५५६६}}}{\text{२} \times .\text{०००१११२५५}}$$

$$= \text{२६६ वर्ष के लगभग}$$

---

*देखो पिछले श्लोक के विज्ञान भाष्य में शतपथ ब्राह्मण का उद्धरण तथा तत्संबंधी गणना।

इसलिए प्रकट है कि १९८२+२६६=२२४८ विक्रमीय के दो चार वर्ष उपरांत ही यह सिद्ध हो जायगा कि वसंत संपात का पूर्ण भगण होता है अथवा आंदोलन।

यदि यह बात प्रत्यक्ष हो गयी कि वसंत सम्पात विन्दु पूर्ण भगण के कारण पीछे खसकता ही जायगा तो भारतीय पंचांग-निर्माण की रीति तथा तिथियों और पर्वों के निश्चय करने के लिए संशोधन की अत्यन्त आवश्यकता पड़ेगी। फलित ज्योतिष के लिए योगों और मुहूर्तों के निश्चय करने के जितने नियम हैं उनमें भी महान् परिवर्तन करना होगा।

पलभा जानने की १ली रीति

एवं विषुवति छाया स्वदेशे या दिनार्धजा।
दक्षिणोत्तरयोरेव सा तत्र विषुवत्प्रभा ॥१२॥

अनुवाद—(१२) इस प्रकार सूर्य जिस दिन विषुवद् वृत्त पर हो उस दिन मध्याह्न काल में जिस स्थान की उत्तर दक्षिण रेखा पर १२ अंगुल शंकु की जितनी लम्बी छाया पड़े वही उस स्थान की विषुवत्प्रभा या पलभा होती है।

विज्ञान भाष्य—पलभा के सम्बन्ध में २०४-२०५ पृष्ठों पर तथा इसी अध्याय के सातवें श्लोक के भाष्य में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। २०५वें पृष्ठ में यह बतलाया गया है कि किसी स्थान के अक्षांश की स्पर्शरेखा उस स्थान की पलभा को शंकु से भाग देने पर आती है। इसलिए यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि इस श्लोक के अनुसार पलभा का जो मान जाना जाता है वह स्थूल है। क्योंकि सायन मेष या सायन तुला संक्रान्ति (विषुव संक्रान्ति) के दिन, जिस दिन मध्याह्न काल में शंकु की छाया नाप कर पलभा जानी जाती है मध्याह्न काल में सूर्य ठीक विषुवद् वृत्त पर नहीं होता वरन् कुछ आगे या पीछे होता है। मध्याह्न काल में ठीक विषुवद् वृत्त पर सूर्य के आने का संयोग कई वर्ष के बाद आता है। इस दिन सूर्य की क्रान्ति प्रत्येक घंटे में प्रायः एक कला के हिसाब से बदलती है। इसलिए सायन मेष या तुला संक्रान्ति शुद्ध काल गणना से जानकर सूर्य की मध्याह्न काल की क्रान्ति जान लेनी चाहिये और इसका संस्कार कर लेने के बाद शुद्ध पलभा जाननी चाहिये। संस्कार करने की रीति अगले १४-१५ श्लोकों में बतलायी जायगी।

अक्षांश जानने की १ली रीति

शंकुच्छायाहते त्रिज्ये विषुवत्कर्णभाजिते।
लम्बाक्षज्ये तयोश्चापे लम्बाक्षौ दक्षिणौ सदा ॥१३॥

अनुवाद—(१३) शंकु और उसकी छाया (यहाँ पलभा) को अलग-अलग त्रिज्या अर्थात् ३४३८ से गुणा करके प्रत्येक गुणनफल को विषुवत्कर्ण से भाग दे देने पर क्रम से लम्बज्या और अक्षज्या आ जायेंगी जिनके धनु क्रम से लम्बांश और अक्षांश होंगे। (उत्तर गोल में) ये सदा दक्षिण होते हैं।

विज्ञान भाष्य—इस श्लोक का सार यह है :—

$$\text{लम्बज्या} = \frac{\text{शंकु} \times \text{त्रिज्या}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$

$$\text{अक्षज्या} = \frac{\text{पलभा} \times \text{त्रिज्या}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$

सायन मेष या तुला संक्रान्ति के दिन मध्यान्ह काल में १२ अंगुल शंकु का जो छायाकर्ण होता है वही विषुवत्कर्ण, पलकर्ण या अक्षकर्ण कहलाता है। पृष्ठ २०४ के चित्र ४१ में क ग विषुवत्कर्ण है। इसलिए

$$\text{विषुवत्कर्ण} = \sqrt{\text{पलभा}^{२} + \text{शंकु}^{२}}$$

पृष्ठ ५५ के चित्र ७ और पृष्ठ ५६ के चित्र १० में यह बतलाया गया है कि किसी स्थान के अक्षांश और लम्बांश क्या हैं। इन चित्रों से यह भी प्रकट होता है कि किसी स्थान के अक्षांश और लम्बांश दोनों मिलकर ९०° के समान होते हैं। पृष्ठ २०४ में चित्र ४१ के सम्बन्ध में यह भी कहा गया है कि विषुवत्कर्ण और शंकु के बीच का कोण ख क ग अक्षांश है। इसलिए यह सिद्ध है कि विषुवत्कर्ण और पलभा के बीच का कोण क ग ख लम्बांश हुआ, क्योंकि $<$ख क ग और $<$क ग ख दोनों पूरक कोण हैं।

इसलिए लम्बज्या या लम्बांश की ज्या

$$= \frac{\text{क ख}}{\text{क ग}} = \frac{\text{शंकु}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$ आजकल की प्रथानुसार (दशमलव भिन्न में)

$$= \frac{\text{शंकु} \times \text{त्रिज्या}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$ हमारे सिद्धान्तों के अनुसार (कलाओं में)

लम्बांश की ज्या को अक्षांश की कोटिज्या भी कहते हैं क्योंकि लम्बांश और अक्षांश का योग ९०° होता है। इसी तरह अक्षज्या या अक्षांश की ज्या

$$= \frac{\text{ख ग}}{\text{क ग}} = \frac{\text{पलभा}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$ (दशमलव भिन्न में)

अथवा $\frac{\text{पलभा} \times \text{त्रिज्या}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$ (कलाओं में)

४२-४३ चित्रों के सम्बन्ध में भी बतलाया गया है कि क्षितिज के उत्तर-बिन्दु से ध्रुव की ऊँचाई अक्षांश के समान होती है। इससे पाठकों को शायद शंका हो कि अक्षांश की कौन परिभाषा ठीक है। इसलिए यहां इस बात का निश्चय कर देना चाहिये कि अक्षांश की यह तीनों परिभाषाएँ एक ही हैं।

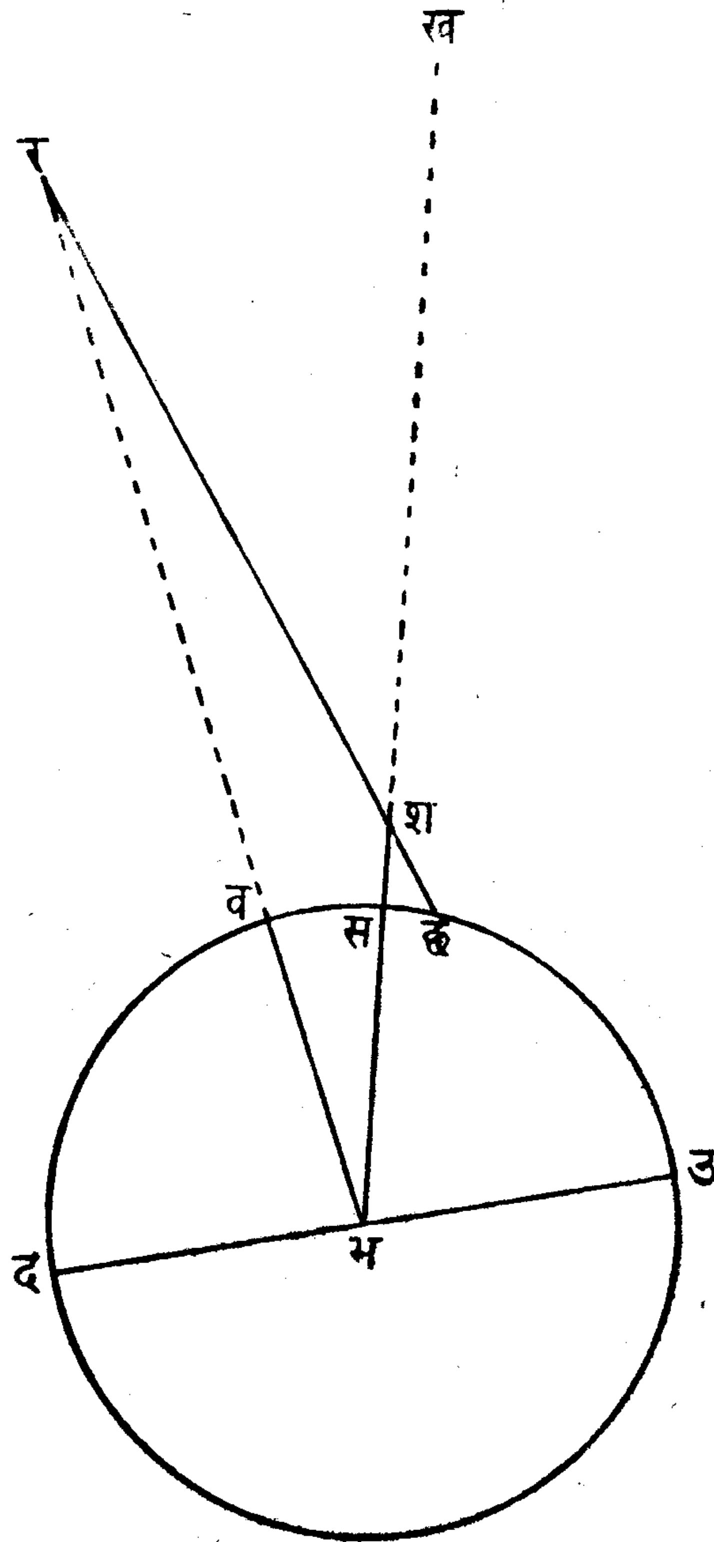
चित्र ७ और १० से स्पष्ट है कि विषुवत् रेखा से किसी स्थान का जो कोणात्मक अंतर उत्तर-दक्खिन रेखा पर होता है वही उस स्थान का अक्षांश है और ध्रुव से उत्तर-दक्खिन रेखा पर स्थान का कोणात्मक अंतर उसका लम्बांश है। विषुवत् रेखा के तल को यदि आकाश की ओर बढ़ा दिया जाय तो यही विषुवन्मण्डल कहलाता है और उत्तर-दक्खिन रेखा के तल को आकाश में बढ़ा दिया जाय तो वह यामोत्तर वृत्त कहलाता है। इसी तरह पृथ्वी के केन्द्र से किसी स्थान को मिलाने वाली रेखा (चित्र ७ की रेखा स भ) ऊपर बढ़ाने पर आकाश के जिस बिन्दु पर पहुँचती है वह उस स्थान का खस्वस्तिक कहलाता है। इसलिए यह सिद्ध है कि किसी स्थान के खस्वस्तिक से विषुवन्मण्डल का जो अंतर यामोत्तर वृत्त पर होता है वह भी अक्षांश है तथा खस्वस्ति से आकाशीय ध्रुव का जो अन्तर यामोत्तरवृत्त पर होता है वह लम्बांश है। इसलिए चित्र ४२, ४३ के ख वि धनु श स्थान के अक्षांश तथा ख ध धनु श स्थान के लम्बांश हुए। परन्तु ध वि धनु या उ ख धनु ९० अंश के समान है। इसलिए प्रत्येक से सामान्य धनु ध ख निकाल दिया जाय तो शेष ख वि और उ ध समान होंगे, अर्थात् खस्वस्तिक से विषुवन्मण्डल का जो अंतर होता है वही क्षितिज के उत्तर विन्दु से उत्तरी आकाशीय ध्रुव का अन्तर होता है। इसी तरह यह भी सिद्ध हो सकता है कि ध ख धनु द वि धनु के समान है, अर्थात् क्षितिज के दक्षिण विन्दु से विषुवन्मण्डल की जो ऊंचाई होती है वह भी लम्बांश के समान है। यह भी स्पष्ट है कि उत्तर गोल में किसी स्थान के खस्वस्तिक से विषुवन्मण्डल सदैव दक्षिण रहता है इसलिए ख वि अक्षांश और वि द लम्बांश उत्तर गोल में सदा दक्षिण ही रहेंगे।

अब यह सिद्ध करना रह गया कि शंकु और विषुवत्कर्ण के बीच का अन्तर अक्षांश के समान क्यों है।

यह ध्यान रखना चाहिए कि चित्र ५५ में पृथ्वी की तुलना में शंकु बहुत बड़ा दिखलाया गया है। रेखागणित से यह स्पष्ट है कि

$\angle$ स श छ $= \angle$ र श ख

$= \angle$ श र भ $+ \angle$ र भ श



चित्र ५५

उ स व द=भूतल की उत्तर-दक्षिण रेखा
द=दक्षिणी ध्रुव
व=विषुवत्‌रेखा का विन्दु
र=विषुवद्‌वृत्त पर रवि का स्थान
श छ=विषुवत्कर्ण

उ=उत्तरी ध्रुव
स=वह स्थान जहाँ श स शंकु गड़ा है
ख=स स्थान का खस्वस्तिक
स छ=पलभा
भ=पृथ्वी का केन्द्र

परंतु भूकेन्द्र से सूर्य का अन्तर भ र प्रायः ६ करोड़ २६ लाख मील है और पृथ्वी का अर्द्धव्यास भ स अथवा भ श (क्योंकि स श=१२ अंगुल) ४००० मील है। इसलिए ∠श र भ इतना छोटा कोण है कि यह शून्य माना जा सकता है (यथार्थ में यह कोण ६ विकला के लगभग होता है)। इसलिए

$$\angle \text{स श छ} = \angle \text{र भ श}$$
$$= \angle \text{व भ स}$$
$$= \text{अक्षांश}$$

अर्थात् शंकु और विषुवत्कर्ण के बीच का कोण अक्षांश के समान होता है। इसलिए पलभा और विषुवत्कर्ण के बीच का कोण जो पहले का पूरक कोण होता है लम्बांश के समान हुआ।

उदाहरण—प्रयाग की पलभा ५ अंगुल ४१ व्यंगुल अथवा ५.६८ अंगुल है तो प्रयाग का अक्षांश बतलाओ।

प्रयाग का विषुवत्कर्ण

$$= \sqrt{\text{शंकु}^2 + \text{पलभा}^2}$$
$$= \sqrt{१२^2 + (५.६८)^2}$$
$$= \sqrt{१४४ + ३२.२६}$$
$$= \sqrt{१७६.२६}$$
$$= १३.२८ \text{ अंगुल}$$

∴ प्रयाग की अक्षज्या

$$= \frac{\text{पलभा} \times \text{त्रिज्या}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$
$$= \frac{५.६८ \times ३४३८}{१३.२८}$$
$$= १४७०.५ \text{ कला}$$

इसलिए ज्याओं की सारिणी (पृष्ठ १२०-१२१) तथा स्पष्टाधिकार के श्लोक ३३ (पृष्ठ १३०) के अनुसार अक्षांश=२५°२१′

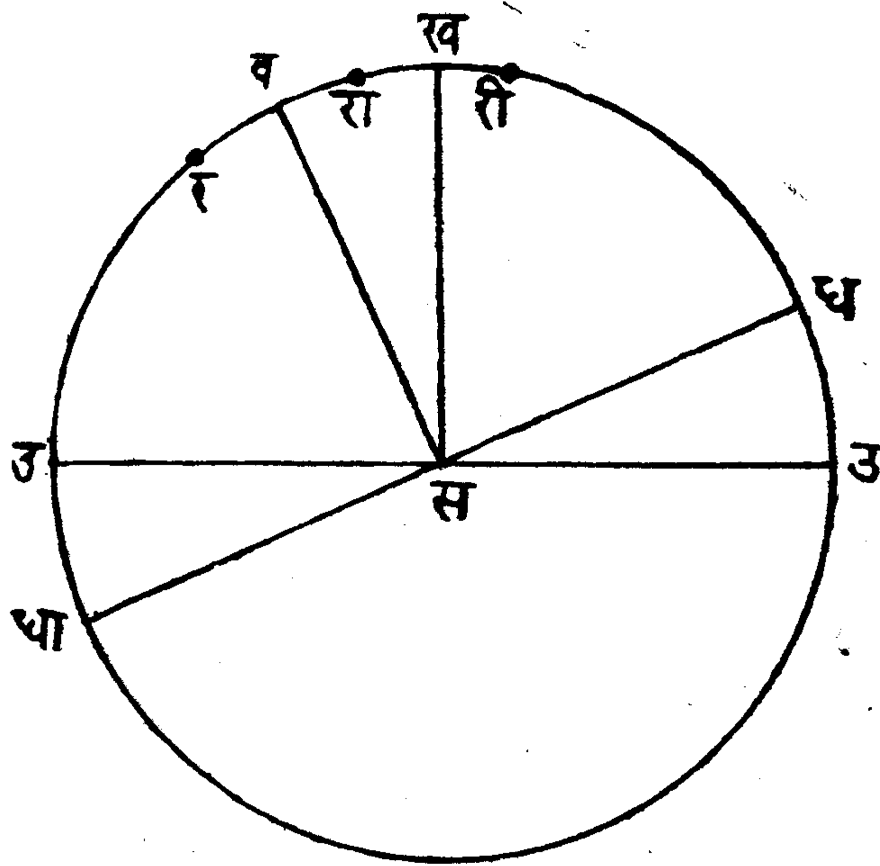
अक्षांश जानने की दूसरी रीति—

मध्यच्छाया भुजस्तेन गुणिता त्रिभमौर्विका।
तत्कर्णाप्तधनुर्लिप्ता नतास्ता दक्षिणे भुजे ॥१४॥
उत्तराश्चोत्तरे याम्यास्तत्सूर्यक्रान्तिलिप्तिका।
दिग्भेदे मिश्रितास्साम्ये विश्लिष्टाश्चाक्षलिप्तिका: ॥१५॥

अनुवाद—(१४) किसी दिन के मध्याह्न की छाया को जिसे भुज भी कहते हैं त्रिज्या से गुणा करके मध्याह्न के छाया कर्ण से भाग दे दो और भागफल का धनु बनाओ तो सूर्य का मध्याह्नकालिक नतांश ज्ञात हो जायगा। यदि छाया दक्षिण की ओर हो तो (१५) उत्तर नतांश होगा और यदि छाया उत्तर हो तो दक्षिण नतांश होगा। यदि नतांश और सूर्य की क्रान्ति की दिशाएँ भिन्न हों तो इन दोनों का योग-फल और एक ही हों तो अन्तर अक्षांश होगा।

विज्ञान भाष्य—खस्वस्तिक से आकाश के किसी विन्दु (तारा, सूर्य का केन्द्र इत्यादि) पर जाता हुआ जो वृत्त क्षितिज से समकोण पर खींचा जाता है उसे ऊर्ध्ववृत्त (Vertical Circle) कहते हैं। इस वृत्त पर उस विन्दु का खस्वस्तिक से जो अंतर होता है उसे उस विन्दु का नतांश (zenith distance) कहते हैं और क्षितिज से जो अन्तर होता है उसे उस बिन्दु का उन्नतांश (altitude) कहते हैं। सममण्डल भी एक ऊर्ध्ववृत्त है। पर इसमें विशेषता यह है कि यह क्षितिज के पूर्व पच्छिम विन्दुओं पर होता है। याम्योत्तर वृत्त भी उत्तर दक्षिण विन्दुओं पर ऊर्ध्ववृत्त है। इसलिए मध्याह्न काल में जब कि सूर्य याम्योत्तर वृत्त पर रहता है, इससे खस्वस्तिक का जो अंतर होता है वह इसका मध्याह्नकालिक नतांश हुआ। यदि सूर्य विषुवद्वृत्त पर भी हो तो यही अक्षांश के समान होगा। यदि सूर्य विषुवद्वृत्त पर न हो तो यह या तो विषुवद्वृत्त से उत्तर रहेगा या दक्षिण। मध्याह्न काल में सूर्य का विषुवद्वृत्त से जो अंतर होता है वही सूर्य की क्रान्ति है जो सूर्य के विषुवद्वृत्त से उत्तर या दक्षिण रहने के अनुसार उत्तर या दक्षिण क्रान्ति कहलाती है। इसी प्रकार सूर्य खस्वस्तिक से भी उत्तर या दक्षिण हो सकता है। यदि सूर्य खस्वस्तिक से उत्तर हो तो छाया दक्खिन की ओर होगी और खस्वस्तिक से सूर्य का अंतर उत्तर नतांश कहलायेगा। परन्तु यदि सूर्य खस्व-स्तिक से दक्खिन हो तो छाया उत्तर की ओर होगी और सूर्य का नतांश दक्षिण होगा। चित्र ५६ से यह स्पष्ट है कि सूर्य के मध्याह्नकालिक नतांश और क्रान्ति से अक्षांश कैसे जाना जा सकता है :—

उ ध ख व द याम्योत्तर वृत्त, ध उत्तरी आकाशीय ध्रुव, ख खस्वस्तिक, व विषुवद्वृत्त और याम्योत्तर वृत्त का सामान्य विन्दु, और र, रा, री सूर्य के तीन भिन्न-भिन्न स्थान हैं। र पर सूर्य विषुवद्वृत्त के दक्खिन है इसलिए इस समय सूर्य की दक्षिण क्रान्ति व र है परन्तु व रा या व री सूर्य की उत्तर क्रान्तियाँ हैं। इसी प्रकार ख र और ख रा सूर्य के दक्षिण नतांश और ख री उत्तर नतांश हैं। ख व स स्थान का अक्षांश है। चित्र से प्रकट है कि



चित्र ५६

व ख=ख र—व र (१)

=ख रा+व रा (२)

=व री—ख री (३)

समीकरण (१) में सूर्य के नतांश और क्रान्ति दोनों दक्षिण तथा समीकरण (३) में नतांश और क्रान्ति दोनों उत्तर हैं। परन्तु समीकरण (२) में नतांश दक्षिण और क्रान्ति उत्तर हैं। इससे प्रकट है कि जब नतांश और क्रान्ति दोनों की दिशाएँ एक ही हों तो इनका अंतर और भिन्न हों तो योग करने से अक्षांश जाना जा सकता है। यदि न नतांश, क क्रान्ति और अ अक्षांश माने जायँ तो इनका सम्बन्ध इस समीकरण से प्रकट होगा—

न±क=अ

यहाँ धन का चिह्न उस समय लिखा जायगा जब न और क दोनों की दिशाएँ भिन्न हैं और ऋण का चिह्न उस समय जब दोनों की दिशाएँ एक ही हों।

ऊपर के दोनों श्लोकों में यह बतलाया गया है कि शंकु की मध्याह्नकालीन छाया नापकर नतांश कैसे जानते हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि शंकु और छायाकर्ण के बीच में जो कोण होता है वह सूर्य का नतांश है। इसलिए

नतांश ज्या $=\frac{\text{छाया}\times\text{त्रिज्या}}{\text{छायाकर्ण}}$ [सिद्धान्तीय रीति के अनुसार]

नतांश की ज्या से नतांश निकाल कर इसको सूर्य की क्रान्ति में जो स्पष्टाधिकार के श्लोक २८ के अनुसार जानी जा सकती है, जोड़ने या घटाने से, जैसी आवश्यकता हो, अक्षांश निकल आता है।

उदाहरण—यदि किसी दिन सूर्य की उत्तर क्रान्ति १५.२५ और इसी दिन प्रयाग में शंकु की मध्याह्न छाया २.१२ अंगुल हो तो प्रयाग का अक्षांश बतलाओ।

प्रयाग का मध्याह्न छायाकर्ण

$$=\sqrt{\text{शंकु}^{२}+\text{छाया}^{२}}$$

$$=\sqrt{१२^{२}+(२.१२)^{२}}$$

$$=\sqrt{१४८.४६}$$

$$=१२.१९ \text{ अंगुल}$$

$$\therefore \text{नतांश ज्या}=\frac{\text{छाया}\times\text{त्रिज्या}}{\text{छायाकर्ण}}$$

$$=\frac{२.१२\times३४३८}{१२.१९}$$

$$=५९८'$$

इसलिए नतांश $=९^{\circ}५१'$

यह नतांश दक्खिन की ओर है और सूर्य की क्रान्ति उत्तर है। इसलिए दोनों का योग प्रयाग का अक्षांश होगा।

इसलिए इस रीति से प्रयाग का अक्षांश

$$=९^{\circ}५१'+१५^{\circ}२५'$$

$$=२५^{\circ}१६'$$

दोनों रीतियों से निकाले गये अक्षांशों में कुछ अन्तर है। इसका कारण प्रत्यक्ष है। छाया की नाप स्थूल होती है जिसका कारण पहले बतलाया जा चुका है। यदि छाया छोटी हो तो अशुद्धि और भी बढ़ जाती है।

पलभा जानने की दूसरी रीति यदि अक्षांश ज्ञात हो—

तज्ज्याऽक्षज्याऽथ तद्वर्गं प्रोज्झ्य त्रिज्याकृतेः पदम्।
लम्बज्याऽक्षगुणोऽर्कघ्नः पलभाप्तोऽवलम्बकः ॥१६॥

अनुवाद—(१६) ऊपर बतलायी गयी रीति से अक्षांश जानकर अक्षज्या बनाओ और अक्षज्या के वर्ग को त्रिज्या के वर्ग से घटाकर शेष का वर्गमूल निकालो

तो लम्बज्या निकल आवेगी। अक्ष ज्या को १२ से गुणा करके लम्बज्या से भाग देने पर जो आवेगा वही पलभा होगी।

विज्ञान भाष्य—पलभा जानने की पहली रीति सायन मेष या तुला संक्रान्ति के दिन ही काम में लायी जाती है। दूसरी रीति से किसी दिन के मध्याह्न काल के सूर्य की क्रान्ति और नतांश से अक्षांश जानकर पलभा की गणना की जा सकती है।

इस श्लोक का सार यह है :—

$$\sqrt{\text{त्रिज्या}^2 - \text{अक्षज्या}^2} = \text{लम्बज्या}$$

$$\text{और} \quad \frac{\text{अक्षज्या} \times १२}{\text{लम्बज्या}} = \text{पलभा}$$

उपपत्ति—चित्र १० पृष्ठ ५६ में सभा लम्बज्या, भभा अक्षज्या, सभ त्रिज्या और कोण सभाभ समकोण है, इसलिए यदि अक्ष ज्या ज्ञात हो तो,

$$\text{सभा}^2 = \text{सभ}^2 - \text{भभा}^2$$

$$\text{अथवा सभा} = \sqrt{\text{सभ}^2 - \text{भभा}^2}$$

$$\therefore \text{लम्बज्या} = \sqrt{\text{त्रिज्या}^2 - \text{अक्षज्या}^2}$$

चित्र ४१ पृष्ठ २०४ में ख ग पलभा, क ख शंकु, <ख क ग अक्षांश और <क ग ख लम्बांश है, इसलिए आजकल की रीति के अनुसार

$$\text{अक्षज्या} = \frac{\text{ख ग}}{\text{क ग}}$$

$$\text{लम्बज्या} = \frac{\text{क ख}}{\text{क ग}}$$

$$\therefore \frac{\text{अक्षज्या}}{\text{लम्बज्या}} = \frac{\text{ख ग}}{\text{क ग}} \div \frac{\text{क ख}}{\text{क ग}}$$

$$= \frac{\text{ख ग}}{\text{क ख}}$$

$$= \frac{\text{पलभा}}{\text{शंकु}}$$

$$= \frac{\text{पलभा}}{१२ \text{ अंगुल}}$$

$$\therefore \text{पलभा} = \frac{\text{अक्षज्या} \times १२}{\text{लम्बज्या}} \text{ अंगुल} \qquad (१)$$

इस रीति से पलभा का मान निकालने में बहुत गुणा भाग करना पड़ता है। इसलिए यदि स्पर्शरेखाओं की सारिणी बना ली जाय तो यह काम सहज ही हो सकता है क्योंकि अक्षांश और लम्बांश पूरक कोण हैं इसलिए

$$\frac{\text{अक्ष ज्या}}{\text{लम्ब ज्या}} = \text{अक्षांश स्पर्शरेखा},$$

$$\text{पलभा} = १२ \times \text{अक्षांश स्पर्शरेखा} \qquad (२)$$

यही बात पृष्ठ २०५ में भी दिखलायी गयी है।

उदाहरण—प्रयाग का अक्षांश २५°२५′ है तो प्रयाग की पलभा क्या होगी ?

(१) सूर्य-सिद्धान्त की रीति से

$$\text{अक्षज्या} = २५°२५' \text{ की ज्या}$$
$$= १४७४'$$
$$\therefore \text{ लम्बज्या} = \sqrt{\text{त्रिज्या}^२ - \text{अक्षज्या}^२}$$
$$= \sqrt{३४३८^२ - १४७४^२}$$
$$= \sqrt{(३४३८ + १४७४)(३४३८ - १४७४)}$$
$$= \sqrt{४९१२ \times १९६४}$$
$$= ३१०६'$$
$$\text{पलभा} = \frac{\text{अक्षज्या} \times १२}{\text{लम्बज्या}}$$
$$= \frac{१४७४ \times १२}{३१०६}$$
$$= ५.६९ \text{ अंगुल}$$

(२) नवीन रीति से—

$$\text{पलभा} = १२ \times \text{अक्षांश स्पर्शरेखा}$$
$$= १२ \times \text{स्परे}^* \; २५°२५'$$
$$= १२ \times ०.४७५२ \text{ अंगुल}$$
$$= ५.७०२४ \text{ अंगुल}$$
$$= ५.७ \text{ अंगुल}$$

---

* स्पर्शरेखा की जगह सरलता के लिए स्परे लिखा गया है जैसे कोटिज्या के लिए कोज्या लिखा जाता है।

सूर्य की क्रान्ति नाप कर सायन भोगांश जानना—

स्वाक्षार्कनतभागानां दिक्साम्येऽन्तरमन्यथा ।
दिग्भेदेऽपक्रमश्शेषः तस्य ज्या त्रिज्यया हता ।।१७।।
परमापक्रमज्याप्तचापं मेषादिगे रविः ।
कर्क्यादौ प्रोज्झय चक्रार्धात्तुलादौ भार्धसंयुतात् ।।१८।।
मृगादौ प्रोज्झ्य भगणात् मध्याह्नार्कस्फुटो भवेत् ।
तन्मान्दमसकृद्वामं फलं मध्यो दिवाकरः ।।१९।।

अनुवाद—(१७) अपने स्थान का अक्षांश और मध्यान्हकालिक सूर्य का नतांश यदि एक ही दिशा के हों तो इनका अन्तर निकाले और भिन्न-भिन्न दिशा के हों तो जोड़ दे। जो कुछ आवे वही सूर्य की मध्यान्हकालिक क्रान्ति है। इसकी ज्या को त्रिज्या से गुणा करके (१८) सूर्य की परमक्रान्ति ज्या से भाग दे दे और लब्धि का धनु बनावे। यदि सूर्य सायन मेषादि तीन राशियों में हो तो यही (धनु) मध्यान्ह-कालिक सूर्य का स्फुट सायन भोगांश होगा। यदि सूर्य सायन कर्कादि तीन राशियों में हो तो इस धनु को ६ राशि में घटाने से जो कुछ आवेगा वह मध्यान्हकालिक सूर्य का स्फुट सायन भोगांश होगा। यदि सूर्य सायन तुलादि तीन राशियों में हो तो इस धनु को ६ राशियों में जोड़ने से जो कुछ आवेगा वह मध्यान्हकालिक सूर्य का स्फुट सायन भोगांश होगा। और यदि सूर्य सायन मकर आदि तीन राशियों में हो तो इस धनु को १२ राशियों में घटाने जो पर कुछ आवेगा वह मध्यान्हकालिक सूर्य का सायन भोगांश होगा। इस स्फुट सायन भोगांश में मंद फल का उलटा संस्कार कई बार करने से मध्यम सायन भोगांश निकलेगा।

विज्ञान भाष्य—१४-१५ श्लोकों में सूर्य के मध्यान्हकालिक नतांश और क्रान्ति को जोड़ या घटाकर अक्षांश जानने की रीति बतलायी गयी है। १७वें श्लोक में अक्षांश और नतांश जान कर क्रान्ति निकालने की रीति है। इसलिए यह पहली रीति का ही दूसरा रूप है और जैसे वहाँ जोड़ना घटाना पड़ता है वैसे ही यहाँ भी। इसका कारण भी चित्र ५६ के संबंध के तीन समीकरणों से समझ में आ सकता है।

जोड़ने और घटाने का नियम इस समीकरण से सरलतापूर्वक समझ में आ जायगा —

$$\text{अ} \pm \text{न} = \text{क}$$

जिसमें अ, न और क क्रम से अक्षांश, नतांश और क्रान्ति सूचित करते हैं, धन का चिह्न उस समय लिखा जायगा जब अक्षांश और नतांश की दिशाएँ भिन्न होंगी अन्यथा ऋण का चिह्न प्रयोग होगा। यहाँ एक बात का ध्यान रखना आवश्यक है। यह बात साधारणतः लोग समझते हैं और आजकल यही प्रथा भी है कि उत्तर

गोल में अक्षांश की दिशा उत्तर समझी जाती है परन्तु इस नियम में इसकी दिशा दक्षिण समझी गयी है क्योंकि उत्तर गोल में खस्वस्तिक से विषुवद्वृत्त की दिशा दक्षिण होती है।

क्रान्ति जब मालूम हो गयी तब सूर्य का भोगांश स्पष्टाधिकार के २८वें श्लोक से ही जाना जा सकता है; क्योंकि वहाँ बतलाया गया है (देखो पृष्ठ १२२ चित्र २५) कि

$$\frac{\text{ज्या (व स)} \times १३९७}{३४३८} = \text{ज्या (स प)}$$

$$\text{इसलिए ज्या (व स)} = \frac{\text{ज्या (स प)} \times ३४३८}{१३९७} \qquad (१)$$

जहाँ व स सूर्य का सायन भोगांश, स प सूर्य की क्रान्ति, और १३९७ सूर्य की परम क्रान्ति की ज्या है। यही १७वें श्लोक के अंतिम चरण और १८वें श्लोक के पूर्वार्द्ध का रूप है।

यदि आजकल की रीति से ज्या का मान दशमलव भिन्न में व्यवहार किया जाय तो और भी सरल रूप यह होगा—

$$\text{ज्या (व स)} = \frac{\text{ज्या (स प)}}{\text{ज्या (स व प)}} \qquad (२)$$

अब यह अच्छी तरह सिद्ध हो गया कि सूर्य की परम क्रान्ति २४° नहीं है वरन् इसका मध्य मान इस समय २३°२७′ के लगभग है और प्रतिवर्ष आधा विकला के लगभग घटती जा रही है। इसलिए यदि आजकल सूर्य की क्रांति से भोगांश जानना हो तो $\angle$ स व प को २३° २७′ के समान समझ कर गणना करनी चाहिए।

उदाहरण—एक दिन मध्यान्ह काल में सूर्य की क्रान्ति १६°१७′ दक्षिण है और यह सायन मकरादि राशि में है तो इसका स्फुट सायन भोगांश बतलाओ।

$$\text{ज्या (भोगांश)} = \frac{\text{ज्या (क्रान्ति)}}{\text{ज्या (परम क्रान्ति)}}$$

$$= \frac{\text{ज्या १६° १७′}}{\text{ज्या २३° २७′}}$$

$$= \frac{.२८०४}{.३९७९}$$

$$= .७०४७$$

$$\therefore \text{भोगांश} = ४४°४८′$$

सूर्य सायन मकरादि में है इसलिए इस भोगांश को १२ राशि या ३६०° से घटाने पर जो आवेगा वह सूर्य का स्पष्ट सायन भोगांश होगा। इसलिए इस दिन सूर्य का सायन भोगांश

$$=३६०^\circ-४४^\circ४८'$$
$$=३१५^\circ १२'$$

पृष्ठ २०० के चित्र ३६ को देखने से तथा अनुभव से भी यह स्पष्ट है कि सूर्य जितने समय में वसंत संपात से दक्षिणायन विंदु तक जाता है अर्थात् सायन मेष से तीन राशि तक जाता है उतने समय में इसकी उत्तर क्रान्ति शून्य से २३°२७′ तक बढ़ती है। जब सूर्य दक्षिणायन विंदु से (सायन कर्क के आदि से) शरद सम्पात तक जाता है तब इसकी उत्तर क्रान्ति २३°२७′ से घटते-घटते शून्य हो जाती है। शरद सम्पात् अर्थात् सायन तुला से उत्तरायण विंदु (सायन मकर के आरंभ तक) सूर्य की दक्षिण क्रान्ति शून्य से २३°२७′ बढ़ती रहती है और सायन मकर के आरम्भ से वसन्त सम्पात तक घटते-घटते फिर शून्य हो जाती है।

ऊपर भोगांश निकालने का जो नियम बतलाया गया है उससे केवल यह जाना जाता है कि वसंत या शरद सम्पात से सूर्य कितनी दूर है। यदि सूर्य वसंत संपात अर्थात् सायन मेष से तीन राशियों के बीच में है तो आया हुआ भोगांश वसंत संपात से ही सूर्य की दूरी है, इसलिए यही सायन भोगांश हुआ। यदि सूर्य सायन कर्क के आरम्भ से तीन राशियों के भीतर है तो आया हुआ भोगांश शरद सम्पात से विलोम दिशा में सूर्य की दूरी है। परन्तु शरद सम्पात सायन मेष से ६ राशि दूर है इसलिए ६ राशि में से आया हुआ भोगांश घटाना पड़ता है तब वसंत सम्पात से सूर्य का सायन भोगांश निकलता है। यदि सूर्य सायन तुला से तीन राशियों के बीच में है तो आया हुआ भोगांश शरद सम्पात से अनुलोम दिशा में सूर्य की दूरी है इसलिए ६ राशि में यह जोड़ना पड़ता है तब सूर्य का वसंत सम्पात से सायन भोगांश निकलता है। और यदि सूर्य सायन मकर से तीन राशियों के बीच में है तो आया हुआ भोगांश वसंत संपात से विलोम दिशा में सूर्य की दूरी है। इसलिए १२ राशियों में से इस भोगांश को घटाने पर वसंत संपात से अनुलोम दिशा में सूर्य की दूरी (भोगांश) आती है।

ऊपर बतलाया गया है कि सूर्य की परमक्रान्ति वर्ष में आधी विकला के लगभग घटती जा रही है। यहाँ वह सूत्र दे देना अच्छा होगा जिससे किसी समय परमक्रान्ति सहज ही जानी जा सकती है।

१६८० विक्रमीय की मेष संक्रान्ति के दिन मध्यम परमक्रान्ति २३° २६′५७″.३५ है। यह प्रति वर्ष ०″.४६८ विकला की दर से घटती है इसलिए मध्यम परमक्रान्ति का सूत्र=२३°२६′५७″.३५ – ०″.४६८ (व—१६८०)

यहाँ 'व' किसी विक्रमीय संवत् की संख्या है।

अयनांश का विचार करते समय यह कहा गया था कि अक्ष विचलन (Nutation) के कारण क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्त के बीच के कोण अर्थात् परमक्रान्ति पर भी प्रभाव पड़ता है। इसके कारण परमक्रान्ति का स्पष्ट मान इस सूत्र के अनुसार होगा—

२३°२६′५७″.३५—०″.४६८ (व—१६८०)+९″.२१ कोज्या (सायन राहु)+०″.५५ कोज्या (२ सायन सूर्य)

वसंत संपात विंदु से राहु के भोगांश को सायन राहु और सूर्य के भोगांश को सायन सूर्य कहा गया है।

इस रीति से सूर्य का जो स्पष्ट सायन भोगांश निकलता है उससे अयनांश का मान घटा देने पर निरयन भोगांश अर्थात् अश्विनी के आदि से सूर्य की दूरी आ जाती है। यही सूर्य का स्पष्ट स्थान हुआ जिसको गणित से जानने की रीति स्पष्टाधिकार में बतलायी गयी है।

जैसे स्पष्टाधिकार में मंदफल का संस्कार करने पर मध्यम सूर्य से स्पष्ट सूर्य निकलता है वैसे ही इस रीति से आये हुये स्पष्ट सूर्य में मंदफल का उलटा संस्कार करने पर मध्यम सूर्य आता है। परन्तु स्पष्टाधिकार के विज्ञान भाष्य में बतलाया गया है कि मध्यम सूर्य में केवल सिद्धान्तीय रीति से मंदफल का संस्कार देने से वेध सिद्ध स्पष्ट सूर्य नहीं निकलता इसलिए यह सिद्ध है कि इस अध्याय के १७-१६ श्लोकों की रीति से जो स्पष्ट सूर्य निकलता है उसमें सिद्धान्तीय रीति के मंदफल का उलटा संस्कार करने पर मध्यम सूर्य नहीं आ सकता। इसीलिये असकृत्कर्म करने को कहा गया है अर्थात् एक बार मंदफल का उलटा संस्कार देने से जो मध्यम सूर्य आवे उसको ही स्पष्ट सूर्य समझ कर फिर मंदफल का संस्कार करे। इससे जो मध्यम सूर्य आवे उसमें फिर मंदफल का संस्कार करे। इस तरह कई बार करने पर मध्यम सूर्य आ जावेगा।

मध्यान्हकाल की छाया और छायाकर्ण जानना (सूर्य की क्रान्ति और अक्षांश से)—

स्वाक्षार्कापक्रमयुतिः दिक्साम्येऽन्तरमन्यथा।
शेषं नतांशास्सूर्यस्य तद्बाहुज्याऽथ कोटिजा ॥२०॥

शंकुमानांगुलाभ्यस्ते भुजत्रिज्ये यथाक्रमम् ।
कोटिज्यया विभज्याऽऽप्ते छायाकर्णावहर्दले ।।२१।।

अनुवाद—(२०) अपने स्थान का अक्षांश और मध्यान्हकाल के सूर्य की क्रान्ति यदि एक ही दिशा में हो तो जोड़ दो और भिन्न दिशा में हों तो घटा दो । जो कुछ आवेगा वही सूर्य का मध्यान्हकालिक नतांश होगा । इसकी भुजज्या और कोटिज्या बनाओ । (२१) शंकु के अंगुलात्मक मान को अर्थात् १२ को भुज (नतांश की भुजज्या) से गुणा करके कोटिज्या से भाग देने पर लब्धि मध्यान्ह की छाया तथा शंकु को त्रिज्या से गुणा करके कोटिज्या से भाग देने पर मध्यान्ह का छायाकर्ण ज्ञात होगा ।

विज्ञान भाष्य—यह १४वें श्लोक का विलोम है । इन दोनों श्लोकों का सरल रूप यह है—

$$\text{अ} \pm \text{क} = \text{न} \qquad (१)$$

$$\text{छाया} = \frac{\text{ज्या (न)} \times १२}{\text{कोज्या (न)}} \qquad (२)$$

$$\text{छायाकर्ण} = \frac{\text{त्रिज्या} \times १२}{\text{कोज्या (न)}} \qquad (३)$$

जहाँ अ अक्षांश, क सूर्य की मध्यान्हकालिक क्रान्ति और न सूर्य का मध्यान्हकालिक नतांश है । समीकरण (१) में धन का चिह्न उस समय लिखना चाहिए जब अक्षांश और क्रान्ति की दिशाएं एक ही हों और ऋण का चिह्न उस समय जब इनकी दिशाएँ भिन्न हों । अक्षांश की दिशा उत्तर गोल में सदैव दक्खिन समझी गयी है जिसकी व्याख्या पहले की जा चुकी है ।

१५वें श्लोक के भाष्य में बतलाया जा चुका है कि शंकु और छायाकर्ण के बीच के कोण को नतांश कहते हैं । इसलिये

$$\text{नतांश ज्या} = \frac{\text{छाया}}{\text{छायाकर्ण}} \qquad \text{वर्तमान प्रथानुसार} \qquad (क)$$

$$\text{नतांश कोटिज्या} = \frac{\text{शंकु}}{\text{छायाकर्ण}} \qquad (ख)$$

$$\therefore \text{छाया} = \text{नतांशज्या} \times \text{छायाकर्ण}$$

$$= \text{नतांश ज्या} \times \frac{\text{शंकु}}{\text{नतांश कोटिज्या}}$$

$$= \frac{\text{ज्या (न)} \times १२}{\text{कोज्या (न)}}$$

यदि स्पर्शरेखा की सारिणी से काम लिया जाय तो इसका सरल रूप यह होगा—

छाया = १२ × स्परे (न)　　(४)

ऊपर के समीकरण (ख) से सिद्ध है कि

$$\text{छायाकर्ण} = \frac{\text{शंकु}}{\text{नतांश कोटिज्या}}$$ वर्तमान प्रथानुसार

यदि नतांश कोटिज्या का मान भारतीय प्रथानुसार लिखा जाय तो

$$\text{छायाकर्ण} = \frac{\text{शंकु} \times \text{त्रिज्या}}{\text{नतांश कोटिज्या}}$$

अथवा $$\text{छायाकर्ण} = \frac{१२ \times \text{त्रिज्या}}{\text{कोज्या (न)}}$$

उदाहरण—किसी दिन सूर्य की उत्तर क्रान्ति १५°२५′ और प्रयाग का अक्षांश २५°२५′ है तो प्रयाग में इस दिन मध्याह्नकाल में छाया और छायाकर्ण क्या होंगे ? [देखो १४-१५ श्लोक का उदाहरण]

प्रयाग उत्तर गोल में है, इसलिए इसके अक्षांश की दिशा श्लोकों के नियम के अनुसार दक्खिन है और क्रान्ति की दिशा उत्तर है इसलिए इन दोनों का अंतर ही सूर्य का नतांश होगा।

∴ न = २५°२५′ − १५°२५′ = १०°

(१) सिद्धान्त की रीति से :—

$$\text{छाया} = \frac{\text{ज्या (न)} \times १२}{\text{कोज्या (न)}}$$

$$= \frac{\text{ज्या } १०° \times १२}{\text{कोज्या } १०°}$$

$$= \frac{५९७ \times १२}{३३८४}$$

= २·१२ अंगुल

$$\text{छायाकर्ण} = \frac{१२ \times \text{त्रिज्या}}{\text{नतांश कोटिज्या}}$$

$$= \frac{१२ \times ३४३८}{३३८४}$$

= १२·१९ अंगुल

(२) नवीन रीति से : —

छाया = १२ × स्परे १०°

= १२ × ·१७६३ अंगुल

= २·११५६

= २·१२ अंगुल

$$\text{छायाकर्ण} = \frac{१२}{\text{कोज्या } १०°}$$

$$= \frac{१२}{.९८४८}$$

= १२·१९ अंगुल

सूर्य की क्रान्ति और किसी इष्टकाल की छाया जानकर दिशा जानना—

क्रान्तिज्या विषुवत्कर्णहताऽऽप्ता शंकुजीवया ।
अर्काग्रा सेऽष्टकर्णघ्ना मध्यकर्णोद्धृता स्वका ॥२२॥
विषुवद्भायुताऽर्काग्रा याम्ये स्यादुत्तरो भुजः ।
विषुवद्भा विशोध्योदग्गोले स्याद्बाहुरुत्तरः ॥२३॥
विपर्ययाद् भुजो याम्यो भवेत्पूर्वापरान्तरे ।
माध्याह्निके भुजो नित्यं छाया माध्याह्निकी मता ॥२४॥

अनुवाद—(२२) सूर्य की क्रान्ति की ज्या को विषुवत्कर्ण से गुणा करके शंकु रूपी जीवा अर्थात् १२ से भाग देने पर सूर्य की उदयकालिक अग्रा आती है। इसको इष्टकाल के छायाकर्ण से गुणा करके मध्यकर्ण अर्थात् त्रिज्या से भाग देने पर इष्टकाल की कर्णाग्रा अथवा कर्णवृत्ताग्रा आती है। (२३) यदि सूर्य दक्षिण गोल में हो अर्थात् यदि सूर्य की क्रान्ति दक्षिण हो तो कर्णाग्रा में पलभा जोड़ देने से और यदि सूर्य उत्तर गोल में हो तो पलभा से कर्णाग्रा घटा देने पर उत्तर भुज आता है। (२४) यदि सूर्य उत्तर गोल में हो और पलभा कर्णाग्रा से छोटी हो तो विपरीत क्रिया करने से अर्थात् कर्णाग्रा से पलभा घटाने पर दक्षिण भुज आता है। मध्याह्न में जो छाया होती है वही सदैव मध्याह्नकालिक भुज है।

विज्ञान भाष्य—इसी अधिकार के ५वें और ७वें श्लोकों के विज्ञान भाष्य में अग्रा और अग्राज्या की चर्चा हुई है। ७वें श्लोक में अग्रा की परिभाषा यह बतलाई गई है, "इष्ट छाया की नोक से विषुवद्भाग्रगा रेखा का जो अंतर होता है वह अग्रा कहलाती है"। चित्र ८५, ८६, के वर्णन में छ अ अग्राज्या और छ भ भुज बतलाये गये हैं। परंतु छ अ को अग्रा या अग्राज्या कहने से बहुत गड़बड़ हो जाने का डर है इसलिए छ अ को जिसे ७वें श्लोक में अग्रा और विज्ञान भाष्य में मैंने

अग्राज्या लिखा है इष्टकालिक कर्णाग्रा या जैसा भास्कराचार्य लिखते हैं कर्णवृत्ताग्रा कहना अधिक उचित होगा। अग्रा से केवल वह कोण समझना चाहिए जो क्षितिज-वृत्त पर पूर्व या पच्छिम विन्दु से सूर्य, ग्रह या तारे का अंतर होता है। चित्र ४३ में उदयकालिक ग्रह का स्थान क्षितिज वृत्त के ग विन्दु पर है और पूर्व विन्दु प है इसलिए ग्रह की उदयकालिक अग्रा ग पू धनु है। इसी प्रकार ग्रह की अस्तकालिक अग्रा गा प धनु है क्योंकि प पच्छिम विन्दु और गा ग्रह का अस्तकाल के समय का स्थान है। यदि ग अथवा गा विन्दुओं से पूर्व पच्छिम रेखा पर लम्ब गिराया जाय तो इसी का मान उदयकालिक अग्राज्या के नाम से व्यवहार किया जायगा। चित्र ४२ में प श सीधी रेखा उदयकालिक ग्रह की अग्राज्या है। उदयकाल के सिवा किसी अन्यकाल में सूर्य का ऊर्ध्ववृत्त क्षितिज के जिस विन्दु पर गिरेगा उस विन्दु से पूर्व या पच्छिम विन्दु का अन्तर इष्टकालिक अग्रा कही जायगी।

२२वें श्लोक में अर्काग्रा उदयकालिक सूर्य की अग्राज्या के लिए, इष्टकर्ण इष्ट-काल के छायाकर्ण के लिए और मध्यकर्ण त्रिज्या के लिए प्रयोग किये गये हैं इसलिए इनको ध्यान में रखना चाहिए। किसी-किसी अनुवादक ने मध्यकर्ण को मध्याह्न कालिक छायाकर्ण माना है परन्तु यह भ्रम है। मध्यकर्ण को रंगनाथ जी ने त्रिज्या इस तरह सिद्ध किया है "कर्णस्य व्यासस्य मध्यमर्धमिति मध्यकर्णो व्यासार्ध-त्रिज्यातयेत्यर्थः।"* व्यास के अर्थ में कर्ण का प्रयोग मध्यमाधिकार के ५९ वें श्लोक मे भी हुआ है। इसी अधिकार के अगले २७ वें श्लोक में यही नियम दुहराया गया है जिसमें मध्यकर्ण की जगह त्रिज्या का प्रयोग किया गया है। इसलिए मध्यकर्ण का अर्थ त्रिज्या के सिवा और कुछ नहीं है। इस श्लोक का सार यह है :—

$$\text{अग्राज्या} = \frac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{विषुवत्कर्ण}}{१२} \qquad (१)$$

$$\text{कर्ण वृत्ताग्रा} = \frac{\text{अग्राज्या} \times \text{इष्ट छायाकर्ण}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{\text{क्रांतिज्या} \times \text{विषुवत्कर्ण}}{१२} \times \frac{\text{इष्ट छायाकर्ण}}{\text{त्रिज्या}} \qquad (२)$$

$$\text{परंतु } \frac{\text{विषुवत्कर्ण}}{१२} = \frac{\text{त्रिज्या}}{\text{अक्षांश कोटिज्या}}$$ [देखो १३वें श्लोक का भाष्य]

$$\text{इसलिये अग्रा ज्या} = \frac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{अक्षांश कोटिज्या}} \qquad (३)$$

*वेङ्कटेश्वर प्रेस का सूर्य सिद्धान्त, पृष्ठ ८०।

समीकरण (३) से अग्राज्या अर्थात् उदय या अस्तकालिक सूर्य की अग्रा की ज्या का मान तथा अग्रा सुगमतापूर्वक निकल सकते हैं इसलिए यह अच्छा है। इस तरह

$$\text{कर्णवृत्ताग्रा} = \frac{\text{क्रान्तिज्या}}{\text{अक्षांश कोटिज्या}} \times \text{इष्ट छायाकर्ण} \qquad (४)$$

कर्ण वृत्ताग्रा में पलभा के किस समय जोड़ने या घटाने से छाया का भुज ज्ञात होता है यह चित्र ४५, ४६ से स्पष्ट है। जब सूर्य दक्षिण गोल में होगा अर्थात् जब सूर्य की क्रान्ति दक्षिण होगी तब कर्ण वृत्ताग्रा में पलभा सदैव जोड़ी जायगी और योगफल उत्तर भुज होगा क्योंकि ऐसी दशा में छाया की नोक सदैव विषुवद्भाग्रगा रेखा से उत्तर होती है (देखो चित्र ४५), यदि सूर्य उत्तर गोल में हुआ अर्थात् क्रान्ति उत्तर हुई तो जब तक सूर्य सममंडल से उत्तर रहेगा तब तक छाया पूर्व पच्छिम रेखा से दक्खिन रहेगी इसलिए कर्ण- वृत्ताग्रा पलभा से बड़ी होगी। ऐसी दशा में कर्ण वृत्ताग्रा से पलभा घटाने पर भुज ज्ञात होगा (देखो चित्र ४६)। परन्तु यदि सूर्य सममंडल से दक्खिन हुआ तो छाया पूर्व पच्छिम रेखा और विषुवद्भाग्रगा रेखा के बीच में रहेगी। ऐसी दशा में पलभा कर्ण वृत्ताग्रा से बड़ी होगी और पहले से दूसरी को घटाना पड़ेगा। २३-२४ श्लोकों का सार यह है :—

$$\text{कर्णवृत्ताग्रा} \pm \text{पलभा} = \text{भुज} \qquad (५)$$

इसमें धनात्मक चिह्न उस समय लिया जायगा जब सूर्य की क्रान्ति दक्षिण होगी अर्थात् जब सूर्य सायन तुला आदि ६ राशियों में रहेगा और ऋणात्मक चिह्न उस समय लिया जायगा जब सूर्य की क्रान्ति उत्तर होगी अर्थात् जब सूर्य सायन मेषादि ६ राशियों में रहेगा। पिछली दशा में यदि छाया पूर्व पच्छिम रेखा से दक्खिन होगी तो भुज दक्षिण में होगा और यदि छाया पूर्व पच्छिम रेखा से उत्तर होगी तो भुज उत्तर और पलभा से कर्ण वृत्ताग्रा को घटाना पड़ेगा।

आजकल गोलीय त्रिकोणमिति के नियमों के अनुसार समीकरण (५) इस प्रकार निश्चय किया जाता है :—

त्रिभुज ध ख र एक गोलीय त्रिभुज है, इसलिए*

$$\text{कोज्या ध ख र} = \frac{\text{कोज्या (ध र)} - \text{कोज्या (ख र)} \times \text{कोज्या (ध ख)}}{\text{ज्या (ख र)} \times \text{ज्या (ध ख)}} \qquad (\text{क})$$

अथवा $$\text{कोज्या (दिगंश)} = \frac{\text{कोज्या (ध्रुवांतर)} - \text{कोज्या (नतांश)} \times \text{कोज्या लम्बांश}}{\text{ज्या (नतांश)} \times \text{ज्या (लम्बांश)}} \qquad (\text{ख})$$

*देखो टाडहंटर और लेथेम की गोलीय त्रिकोणमिति पृष्ठ २१।

चित्र ५७

चित्र का परिचय

उ पू द=क्षितिज वृत्त पू क व=विषुवद्वृत्त
उ ध ख व द=यामोत्तर वृत्त द पू उ=क्षितिज
पू=पूर्व विन्दु उ=उत्तर विन्दु, द=दक्षिण विन्दु
ख=खस्वस्तिक य=यामोत्तर वृत्त और विषुवद्वृत्त का सामान्य विन्दु
अ र प=सूर्य का अहोरात्र वृत्त जब क्रांति उत्तर हो,
र, स, रा=सूर्य के तीन स्थान,
ख र आ, ख स पू और ख रा इ=सूर्य के तीन ऊर्ध्व वृत्त,
उ आ, उ पू और उ इ=सूर्य के दिगंश,
पू आ, पू ई=सूर्य की अग्रा,
अ=सूर्य का उदय विन्दु
∠ख ध अ=सूर्य का उदयकालिक नतकाल
∠ख ध र, ∠ख ध स और ∠ख ध रा=सूर्य के नतकाल जब वह क्रम से र, स और रा बिन्दुओं पर रहता है
ध अ, ध र, ध स और ध रा=सूर्य के ध्रुवान्तर जो प्रायः समान हैं
र क, स का, रा की=सूर्य की क्रान्तियाँ जो प्रायः समान हैं
ख र, ख स और ख रा=सूर्य के नतांश
आ र, पू स और इ रा = सूर्य के उन्नतांश ।

परन्तु दिगंश अग्रा का, ध्रुवांतर क्रान्ति का और लम्बांश अक्षांश का पूरक है, इसलिए

$$\text{ज्या (अग्रा)} = \frac{\text{ज्या (क्रान्ति)} - \text{कोज्या (नतांश)} \times \text{ज्या (अक्षांश)}}{\text{ज्या नतांश} \times \text{कोज्या अक्षांश}} \qquad \text{(ग)}$$

$$= \frac{\text{ज्या (क्रान्ति)}}{\text{ज्या (नतांश)} \times \text{कोज्या (अक्षांश)}} - \text{कोटि स्पर्शरेखा (नतांश)} \times \text{स्पर्श रेखा (अक्षांश)} \qquad \text{(घ)}$$

$$\text{परन्तु स्पर्शरेखा (अक्षांश)} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$$

$$\text{कोटि स्पर्शरेखा (नतांश)} = \frac{१२}{\text{छाया}}$$

$$\text{ज्या(नतांश)} = \frac{\text{छाया}}{\text{छायाकर्ण}}$$

$$\therefore \text{ज्या (अग्रा)} = \frac{\text{ज्या (क्रान्ति)}}{\text{कोज्या (अक्षांश)}} \times \frac{\text{छायाकर्ण}}{\text{छाया}} - \frac{१२}{\text{छाया}} \times \frac{\text{पलभा}}{१२}$$

$$= \frac{१}{\text{छाया}} \left\{ \frac{\text{क्रान्ति ज्या} \times \text{छायाकर्ण}}{\text{अक्षांश कोटिज्या}} - \text{पलभा} \right\} \qquad (६)$$

$\therefore$ छाया $\times$ इष्टकालिक अग्रा ज्या $=$ कर्ण वृत्ताग्रा $-$ पलभा

[देखो समीकरण (४)]

परन्तु छाया $\times$ इष्टकालिक अग्रा ज्या $=$ इष्टकालिक छाया का भुज, क्योंकि चित्र ४६ में $\angle$ स श पू या $\angle$ छ श भ इष्टकालिक अग्रा है जिसकी ज्या $= \frac{\text{छ भ}}{\text{छ श}}$

$$\text{इसलिए छाया} \times \text{इष्टकालिक अग्राज्या} = \text{श छ} \times \frac{\text{छ भ}}{\text{छ श}}$$

$\therefore$ भुज $=$ कर्ण वृत्ताग्रा $-$ पलभा

इस चित्र में सूर्य सममंडल से उत्तर है इसलिए भुज दक्षिण होगा। यदि सूर्य सममंडल के दक्खिन जैसे रा पर हो तो गोलीय त्रिभुज ध ख रा में

$$\text{कोज्या} \angle \text{ध ख रा} = \frac{\text{कोज्या (ध रा)} - \text{कोज्या (ख रा)} \times \text{कोज्या (ध ख)}}{\text{ज्या (ख रा)} \times \text{ज्या (ध ख)}}$$

अथवा कोज्या (९०°+पू ख रा)

$$= \frac{\text{कोज्या (ध्रुवांतर)} - \text{कोज्या (नतांश)} \times \text{कोज्या (लम्बांश)}}{\text{ज्या (नतांश)} \times \text{ज्या (लम्बांश)}}$$

$$= \frac{\text{ज्या (क्रान्ति)}}{\text{ज्या (नतांश)} \times \text{कोज्या (अक्षांश)}} - \text{को स्परे (नतांश)} \times \text{स्परे (अक्षांश)}$$

परन्तु कोज्या (९०+∠पू ख रा)=−ज्या ∠पू ख रा=−ज्या (अग्रा)

∴ पहले की तरह

$$-\text{ज्या (अग्रा)} = \frac{1}{\text{छाया}} \left\{ \text{कर्ण वृत्ताग्रा} - \text{पलभा} \right\}$$

अथवा, −छाया × ज्या (अग्रा)=कर्णवृत्ताग्रा−पलभा

या, −भुज=कर्णवृत्ताग्रा−पलभा

यहाँ कर्णवृत्ताग्रा से पलभा घटाने पर ऋणात्मक होता है जिससे प्रकट है कि पलभा कर्णवृत्ताग्रा से बड़ी है। सूर्य सममंडल के दक्खिन है इसलिए कर्णवृत्ताग्रा पूर्व पच्छिम रेखा और विषुवद्भाग्रगा रेखाओं के बीच में होगी और पहला भारतवर्ष में सदैव उत्तर रहता है इसलिए भुज उत्तर होगा।

इन दोनों उदाहरणों में सूर्य उत्तर गोल में है अर्थात् इसकी क्रान्ति उत्तर है। यदि सूर्य दक्षिण गोल में हो तो चित्र ५८ की तरह स्थिति होगी। गोलीय त्रिभुज ध ख र में

$$\text{कोज्या } \angle \text{ ध ख र} = \frac{\text{कोज्या (ध र)} - \text{कोज्या (ख र)} \times \text{कोज्या (ध ख)}}{\text{ज्या (ख र)} \times \text{ज्या (ध ख)}}$$

$$\therefore \text{कोज्या } (90^\circ + \text{अग्रा}) = \frac{\text{कोज्या } (90^\circ + \text{क्रान्ति}) - \text{कोज्या (नतांश)}}{\text{ज्या (नतांश)} \times \text{ज्या (लम्बांश)}}$$

$$\therefore -\text{ज्या (अग्रा)} = \frac{-\text{ज्या (क्रान्ति)}}{\text{ज्या (नतांश)} \times \text{कोज्या (अक्षांश)}} \times \text{कोज्या (लम्बांश)}$$
$$- \text{को स्परे (नतांश)} \times \text{स्परे (अक्षांश)}$$

∴ पहले की तरह

$$-\text{ज्या (अग्रा)} = \frac{1}{\text{छाया}} \left\{ \frac{-\text{क्रान्ति ज्या} \times \text{छायाकर्ण}}{\text{अक्षांश कोटिज्या}} - \text{पलभा} \right\}$$

$$= \frac{1}{\text{छाया}} \left\{ -\text{कर्णवृत्ताग्रा} - \text{पलभा} \right\}$$

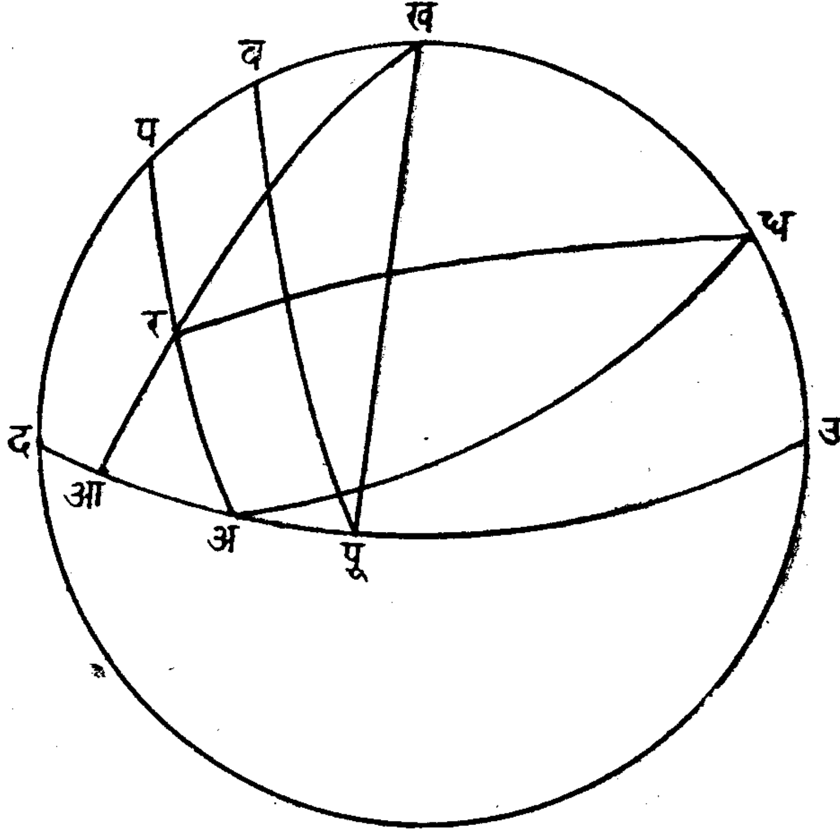
अथवा −ज्या (अग्रा) × छाया=−कर्णवृत्ताग्रा−पलभा

या, −भुज=−कर्णवृत्ताग्रा−पलभा

∴ भुज = कर्णवृत्ताग्रा + पलभा

यहाँ कर्णवृत्ताग्रा में पलभा जोड़ने से भुज आता है।

∴ जब सूर्य की क्रान्ति दक्षिण होती है तब कर्णवृत्ताग्रा में पलभा सदैव जोड़ना पड़ता है।



चित्र ५८

चित्र परिचय

उ ध ख व प द = यामोत्तर वृत्त उ = उत्तर विन्दु

ध = उत्तरी आकाशीय ध्रुव ख = खस्वस्तिक

द = दक्षिण विन्दु पू = पूर्व विन्दु

ख पू = सम मंडल व पू = विषुवद्वृत्त

अ प = सूर्य का अहोरात्र वृत्त जब क्रान्ति दक्षिण हो

अ = उदय विन्दु र = सूर्य का इष्ट स्थान

ख र आ = सूर्य का ऊर्ध्व वृत्त उ अ = सूर्य का उदयकालिक दिगंश

उ आ = सूर्य का इष्टकालिक दिगंश अ पू = उदयकालिक अग्रा

आ पू = इष्टकालिक अग्रा ख ध अ = सूर्य का उदयकालिक नत काल

∠ ख ध र = सूर्य का इष्टकालिक नत काल

ख र = सूर्य का नतांश; आ र = सूर्य का उन्नतांश

यदि सूर्य सममंडल में हो तो छायाकर्ण जानने की पहली रीति

लम्बाक्षजीवे विषुवच्छाया द्वादशसङ्गुणे ।
क्रान्तिज्याप्ते तु तौ कर्णौ सममण्डलगे रवौ ।।२५।।

अनुवाद—(२५) यदि सूर्य सममण्डल में हो तो लम्बज्या को पलभा से अथवा अक्षज्या को १२ से गुणा करके प्रत्येक को क्रान्तिज्या से भाग देने पर छाया-कर्ण आ जाता है ।

विज्ञान भाष्य—इस श्लोक का सार यह है :—

जब सूर्य सममंडल में हो तो,

$$\text{छायाकर्ण} = \frac{\text{लम्बज्या} \times \text{पलभा}}{\text{क्रान्तिज्या}}$$

$$= \frac{\text{अक्षज्या} \times 12}{\text{क्रान्तिज्या}}$$

जिस समय सूर्य सममण्डल में होता है उस समय शंकु की छाया ठीक पूर्व-पच्छिम रेखा पर रहती है, चित्र ५७ में सूर्य इस स्थिति में अहोरात्र वृत्त प अ और सममंडल ख पू के सम्पात विन्दु 'स' पर रहेगा । ऐसी दशा में कोण ध ख स ९०° के समान होगा और इष्टकालिक अग्रा शून्य होगी । इसलिए पिछले श्लोक के समीकरण (६) के बायें पक्ष का मान्य शून्य होगा; इसलिए इस समीकरण के दाहिने पक्ष का भी मान्य शून्य होगा । इसलिए

$$\frac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{छायाकर्ण}}{\text{अक्षांश कोटिज्या}} - \text{पलभा} = 0$$

$$\therefore \frac{\text{क्रान्ति ज्या} \times \text{छायाकर्ण}}{\text{अक्षांश कोटिज्या}} = \text{पलभा}$$

$$\text{या छायाकर्ण} = \frac{\text{पलभा} \times \text{अक्षांश कोटिज्या}}{\text{क्रान्तिज्या}}$$

परन्तु अक्षांश कोटिज्या = लम्बज्या,

$$\therefore \text{छाया कर्ण} = \frac{\text{पलभा} \times \text{लम्ब ज्या}}{\text{क्रान्तिज्या}} \qquad (७)$$

१३वें श्लोक के विज्ञान भाष्य में बतलाया गया है कि

$$\text{लम्बज्या} = \frac{\text{शंकु}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$

$$\text{अक्षज्या} = \frac{\text{पलभा}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$

$$\therefore \text{विषुवत्कर्ण} = \frac{\text{शंकु}}{\text{लम्बज्या}} = \frac{\text{पलभा}}{\text{अक्षज्या}}$$

$$\therefore \text{पलभा} \times \text{लम्बज्या} = \text{शंकु} \times \text{अक्षज्या}$$

समीकरण (७) में पलभा $\times$ लम्बज्या की जगह शंकु $\times$ अक्षज्या रख देने से इसका रूप यह होगा—

$$\text{छायाकर्ण} = \frac{\text{शंकु} \times \text{अक्षज्या}}{\text{क्रान्तिज्या}}$$

यह बात नेपियर के दूसरे नियम से भी सिद्ध हो सकती है क्योंकि जिस समय सूर्य सममंडल में होगा उस समय दिगंश ९०° और अग्रा शून्य होगी इसलिए चित्र ५७ का $\angle$ध ख स समकोण होगा। इसलिए त्रिभुज ध ख स समकोण गोलीय त्रिभुज होगा जिसके भुजों और कोणों का सम्बन्ध नेपियर के दूसरे नियम के अनुसार यह होगा :—

कोटिज्या (ध स) = कोटिज्या (ध ख) $\times$ कोटिज्या (ख स)

यहाँ धनु ध स, स सूर्य का ध्रुवांतर, ख स सूर्य का नतांश और ध ख लम्बांश है। इसलिए

कोटिज्या (ध्रुवांतर) = कोटिज्या (नतांश) $\times$ कोटिज्या (लम्बांश)

परन्तु ध्रुवांतर क्रांति का पूरक होता है, इसलिए

ज्या क्रांति = कोटिज्या (नतांश) $\times$ ज्या (अक्षांश)

परन्तु नतांश कोटिज्या $= \frac{१२}{\text{छाया कर्ण}} \times$ [देखोश्लोक २१ का समीकरण (ख)]

$$\therefore \text{ज्या क्रान्ति} = \frac{१२}{\text{छायाकर्ण}} \times \text{ज्या (अक्षांश)}$$

$$\text{अर्थात् छायाकर्ण} = \frac{१२ \times \text{अक्षांशज्या}}{\text{क्रान्तिज्या}}$$

इससे दूसरा रूप भी पहले की तरह जाना जा सकता है।

सममंडल में सूर्य हो तो छायाकर्ण जानने की रीति

सौम्याक्षोना यदाक्रान्तिः स्यातदाद्युदलश्रवः।
विषुवच्छाययाभ्यस्तः कर्णोमध्याग्रयोद्धृतः ॥२६॥

अनुवाद—यदि उत्तर अक्षांश से उत्तर क्रान्ति कम हो तो मध्याह्नकालिक छायाकर्ण को पलभा से गुणा करके मध्याह्नकालिक कर्णाग्रा से भाग देने पर इष्ट-कालिक छायाकर्ण निकल आता है।

विज्ञान भाष्य—इस श्लोक का सार यह है :—

जब सूर्य सममंडल में हो तब,

$$\text{छाया कर्ण} = \frac{\text{मध्याह्न छायाकर्ण} \times \text{पलभा}}{\text{मध्याह्न कर्णाग्रा}} \qquad (१)$$

उपपत्ति—२२वें श्लोक के अनुसार,

$$\text{मध्याह्न कर्णाग्रा} = \frac{\text{उदयकालिक अग्राज्या} \times \text{मध्याह्न छायाकर्ण}}{\text{त्रिज्या}}$$

∴ समीकरण (१) में मध्याह्न कर्णाग्रा का यह मान उत्थापन करने से

$$\text{छायाकर्ण} = \frac{\text{मध्याह्न छायाकर्ण} \times \text{पलभा} \times \text{त्रिज्या}}{\text{उदयकालिक अग्राज्या} \times \text{मध्यान्ह छायाकर्ण}}$$

$$= \frac{\text{पलभा} \times \text{त्रिज्या}}{\text{उदयकालिक अग्राज्या}} \qquad (२)$$

समीकरण (२) में उदयकालिक अग्राज्या का मान २२वें श्लोक के प्रथम पंक्ति या वहाँ के समीकरण (१) के अनुसार उत्थापन करने से,

$$\text{छायाकर्ण} = \frac{\text{पलभा} \times \text{त्रिज्या}}{\dfrac{\text{क्रान्ति ज्या} \times \text{विषुवत्कर्ण}}{१२}}$$

$$= \frac{\text{पलभा} \times १२ \times \text{त्रिज्या}}{\text{क्रान्ति ज्या} \times \text{विषुवत्कर्ण}}$$

परंतु १३वें श्लोक के अनुसार $\dfrac{१२ \times \text{त्रिज्या}}{\text{विषुवत्कर्ण}} = \text{लम्बज्या}$

$$\therefore \text{छायाकर्ण} = \frac{\text{पलभा} \times \text{लम्बज्या}}{\text{क्रान्तिज्या}}$$

जो २५वें श्लोक के नियम का ही एक रूप है। इसलिए यह सिद्ध हुआ कि जब सूर्य सममंडल में हो तब

$$\text{छायाकर्ण} = \frac{\text{मध्याह्न छायाकर्ण} \times \text{पलभा}}{\text{मध्याह्न कर्णाग्रा}}$$

कर्णाग्रा जानने की दूसरी रीति—

स्वक्रान्तिज्या त्रिजीवाघ्ना लम्बज्याप्ताऽग्रमौर्विका ॥

सेष्टकर्णहता भक्ता त्रिज्ययाऽग्राङ्गुलात्मिका ॥२७॥

अनुवाद—(२७) इष्टकाल के सूर्य की क्रान्तिज्या को त्रिज्या से गुणा करके लम्बज्या से भाग देने पर उदयकालिक अग्राज्या आती है जिसको इष्टकाल के छाया कर्ण से गुणा करके त्रिज्या से भाग देने पर इष्टकाल की कर्णाग्रा आती है।

विज्ञान भाष्य—२२वें श्लोक में कर्णाग्रा जानने की रीति बतलायी गयी है वही यह भी है अंतर केवल इतना है कि वहाँ क्रान्तिज्या को विषुवत्कर्ण से गुणा करके १२ से भाग दिया गया है और यहाँ क्रान्तिज्या को त्रिज्या से गुणा करके लम्बज्या से भाग दिया गया है जो एक ही है (देखो श्लोक १३ तथा २२)।

जब सूर्य ईशान, अग्नि आदि चार कोणों में हो तब उन्नतांश या नतांश जानने की रीति—

त्रिज्यावर्गार्धतोऽग्रज्यावर्गोनाद् द्वादशाहतात् ।
पुनर्द्वादशनिघ्नाच्च लभ्यते यत्फलं बुधैः ॥२८॥
शङ्कुवर्गार्धसंयुक्त विषुवद्वर्गभाजितात् ।
लब्धं तु करणी नाम तां पृथक्स्थापयेत्ततः ॥२९॥
विषुवच्छायाऽर्क वधादग्रज्यासङ्गुणात्तथा ।
भक्तात्फलाख्यं तद्वर्गसंयुक्तकरणीपदम् ॥३०॥
फलेन हीनं संयुक्तं दक्षिणोत्तरगोलयोः ।
याम्ययोर्विदिशोशशङ्कुरेवं यामोत्तरे रवौ ॥३१॥
परिभ्रमति शङ्कोश्च शङ्कुरुत्तारयोश्च सः ।
तत्त्रिज्यावर्ग विश्लेषान्मूलं दृग्ज्याऽभिधीयते ॥३२॥

अनुवाद—(२८) त्रिज्या के वर्ग का आधा करके उसमें से उदयकालिक अग्रज्या के वर्ग को घटाकर शेष को १२ से गुणा करके गुणनफल को फिर १२ से गुणा करने पर जो फल विद्वानों को मिलता है (२९) उसको शंकु के वर्गार्ध और पलभा के वर्ग के योगफल से भाग देते हैं, जो लब्धि आती है उसे करणी कहते हैं। इसको विद्वान् अलग रखते हैं। (३०) १२ को पलभा से गुणा करके गुणनफल को उदयकालिक अग्रज्या से भी गुणा करके जो आता है उसको भी शंकु के वर्गार्ध और पलभा के वर्ग के योगफल से भाग देते हैं और लब्धि को फल कहते हैं। फल के वर्ग को करणी में जोड़कर योगफल का वर्गमूल निकालते हैं, (३१) यदि सूर्य दक्षिण गोल में हो अर्थात् यदि सूर्य क्रान्ति दक्षिण हो तो वर्गमूल से फल को घटा दे और यदि सूर्य उत्तर गोल में हो तो वर्गमूल में फल को जोड़ दे। ऐसा करने से जो कुछ

आता है वही आग्नेयादि कोणों का शंकु अर्थात् कोण शंकु कहलाता है। (३२) जब सूर्य दक्षिण में होता है तब कोण शंकु मध्याह्न के पहले अग्निकोण में और मध्याह्न के पीछे नैऋत्य कोण में होता है। परन्तु जब सूर्य उत्तर में होता है तब कोण शंकु मध्याह्न के पहले ईशान कोण में और मध्याह्न के पीछे वायव्य कोण में होता है। कोणशंकु और त्रिज्या के वर्गों के अंतर का वर्गमूल निकालने से दृग्ज्या होती है।

विज्ञान भाष्य—इन ५ श्लोकों का सार यह है :—

$$\text{करणी} = \frac{\left(\frac{\text{त्रिज्या}^2}{२} - \text{अग्रज्या}^2\right) \times १४४}{\frac{१२^2}{२} + \text{पलभा}}$$

$$\text{फल} = \frac{१२ \times \text{पलभा} \times \text{अग्रज्या}}{\frac{१२^2}{२} + \text{पलभा}^2}$$

$$\text{कोण शंकु} = \sqrt{\text{करणी} + \text{फल}^2} + \text{फल}$$

$$\text{दृग्ज्या} = \sqrt{\text{त्रिज्या}^2 - \text{कोण शंकु}^2}$$

जिस समय सूर्य ईशान, अग्नि, नैऋत्य या वायव्य कोणों में रहता है उस समय इसका जो उन्नतांश (Altitude) होता है उसकी ज्या को कोण शंकु और जो नतांश होता है उसकी ज्या को दृग्ज्या कहते हैं; किसी अन्य समय के नतांश ज्या को भी दृग्ज्या तथा उन्नतांश ज्या को शंकु कहते हैं। इसलिए इस शंकु और १२ अंगुल वाले शंकु के भेद को अच्छी तरह ध्यान में रखना चाहिए। इसलिए जब सूर्य का दिगंश (Azimuth) ४५° होता है तब यह क्षितिज से जितने अंश ऊपर रहता है उस अंश की ज्या कोण शंकु हुई और खस्वस्तिक से जितना नीचे रहता है उस अंश की ज्या दृग्ज्या हुई। इसलिए चित्र ५७ के समीकरण (क), (ख), या (ग) की सहायता से कोण शंकु या दृग्ज्या का मान सहज ही निकल सकता है। समीकरण (ग) इस प्रकार है—

$$\text{ज्या (अग्रा)} = \frac{\text{ज्या (क्रान्ति)} - \text{कोज्या (नतांश)} \times \text{ज्या (अक्षांश)}}{\text{ज्या (नतांश)} \times \text{कोज्या (अक्षांश)}}$$

जब सूर्य ईशान, अग्नि, नैऋत्य या वायव्य कोण में होता है तब अग्रा ४५ अंश के समान होती है, इसलिए ऐसी दशा में

$$\text{ज्या (अग्रा)} = \text{ज्या } ४५^\circ = \frac{१}{\sqrt{२}}$$

ज्या (अक्षांश) $= \dfrac{\text{पलभा}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$ [श्लोक १३]

ज्या (क्रान्ति) $= \dfrac{\text{१२} \times \text{अग्राज्या}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$ [श्लोक २२]

कोज्या (अक्षांश)$' = \dfrac{\text{१२}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$ [श्लोक १३]

समीकरण (ग) से सिद्ध है कि

ज्या (अग्रा) × ज्या (नतांश) × कोज्या अक्षांश

= ज्या (क्रान्ति) — कोज्या (नतांश) × ज्या अक्षांश

इसमें ज्या (अग्रा), ज्या (अक्षांश) इत्यादि के मान उत्थापन करने से

$$\frac{\text{१}}{\sqrt{\text{२}}} \times \text{ज्या(नतांश)} \times \frac{\text{१२}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$

$$= \frac{\text{१२} \times \text{अग्र ज्या}}{\text{विषुवत्कर्ण}} - \text{कोज्या (नतांश)} \times \frac{\text{पलभा}}{\text{विषुवत्कर्ण}}$$

इसी समीकरण के दूसरे पक्ष में जो अग्र ज्या है वह सूर्य की उदयकालिक अग्रा की ज्या है। इस समीकरण के प्रत्येक पद के हर में विषुवत्कर्ण है इसलिए इस सामान्य संख्या को हटा देने में कोई अंतर नहीं पड़ेगा। यदि पलभा, नतांश और अग्र ज्या को क्रम से प, न और अ अक्षरों से सूचित किया जाय और विषुवत्कर्ण हटा दिया जाय तो

$$\frac{\text{१}}{\sqrt{\text{२}}} \times \text{ज्या (न)} \times \text{१२} = \text{१२} \times \text{अ} - \text{कोज्या (न)} \times \text{प}$$

दोनों पक्षों का वर्ग करने से,

$\frac{\text{१}}{\text{२}} \times$ ज्या^{२} (न) × १२^{२} = १२^{२} × अ^{२} × प^{२} × को ज्या^{२}(न)

— २ × १२ × अ × प × कोज्या (न)

परंतु १६वें श्लोक के आधार पर

ज्या^{२} (न) = त्रिज्या^{२} — कोज्या^{२} (न)

इसलिए उपर्युक्त समीकरण का रूप यह होगा

$\frac{\text{१}}{\text{२}} \times$ १२^{२} × [त्रिज्या^{२} — कोज्या^{२} (न)]

= १२^{२} अ^{२} + प^{२} × कोज्या^{२} (न) — २ × १२ × अ × प × कोज्या (न)

अथवा सरल करने पर

$$१२^२ \left[\frac{त्रिज्या^२}{२} - अ^२\right]$$

$$= कोज्या^२ (न) \left[\frac{१२^२}{२} + प^२\right] - २ \times १२ \times अ \times प \times कोज्या (न)$$

प्रत्येक पक्ष को $\frac{१२^२}{२} + प^२$ से भाग देने पर और आवश्यक पदों को एक पक्ष से दूसरे पक्ष में ले जाने पर

$$कोज्या^२ (न) - \frac{२ \times १२ \times अ \times प}{\frac{१२^२}{२} + प^२} कोज्या (न)$$

$$- \frac{१२^२ \left[\frac{त्रिज्या^२}{२} - अ^२\right]}{\frac{१२^२}{२} + प^२} = ०$$

तीसरे पद की जगह करणी और दूसरे पद के $\frac{१२ \times अ \times प}{\frac{१२^२}{२} + प^२}$ की जगह फल लिखने से इसका रूप होगा

$$कोज्या^२ (न) - २ \times फल \times कोज्या (न) - करणी = ०$$

या $$कोज्या^२ (न) - २\ फल \times कोज्या (न) = करणी$$

पहले पक्ष को पूर्ण वर्ग बनाने के लिए प्रत्येक पद में $(फल)^२$ जोड़ने से

$$कोज्या^२ (न) - २\ फल \times कोज्या (न) + फल^२$$
$$= करणी + फल^२$$

इस समीकरण का पहला पक्ष $= [कोज्या (न) - फल]^२$

$$\therefore कोज्या (न) - फल = \sqrt{करणी + फल^२}$$

अथवा $$कोज्या (न) = फल + \sqrt{करणी + फल^२}$$

परंतु कोज्या (न) = कोज्या (नतांश) = ज्या (उन्नतांश) = कोण शंकु

$$\therefore कोण\ शंकु = \sqrt{करणी + फल^२} + फल$$

इसलिए यह सिद्ध हुआ कि जब सूर्य की क्रान्ति उत्तर होती है तब फल के वर्ग को करणी में जोड़कर और योगफल का वर्गमूल निकालकर फल में जोड़ देने से कोण शंकु आ जाता है। यदि सूर्य की क्रान्ति दक्षिण हो तो चित्र ५८ के अनुसार

$-$ज्या (अग्रा) $\times$ ज्या (नतांश) $\times$ कोज्या (अक्षांश)

$=-$ ज्या (क्रान्ति) $-$ कोज्या (नतांश) $\times$ ज्या (अक्षांश)

जिसमें ज्या अग्रा, ज्या क्रान्ति इत्यादि के मान उत्थापन करने और सरल करने से

$$-\frac{१}{\sqrt{२}} \times \text{ज्या (न)} \times १२ = -१२\ \text{अ} - \text{प} \times \text{कोज्या (न)}$$

अथवा $$\frac{१}{\sqrt{२}} \times १२ \times \text{ज्या (न)} = १२\ \text{अ} + \text{प} \times \text{कोज्या (न)}$$

दोनों पक्षों का वर्ग करने से

$$\frac{१२^२}{२} \times \text{ज्या}^२\ \text{(न)} = १२^२\ \text{अ}^२ + \text{प}^२ \times \text{कोज्या}^२\ \text{(न)} + २ \times १२ \times \text{अ} \times \text{प} \times \text{कोज्या न}$$

अथवा $$\frac{१२^२}{२}\left[\text{त्रिज्या}^२ - \text{कोज्या}^२\ \text{(न)}\right]$$

$$= १२^२\ \text{अ}^२ + \text{प}^२ \times \text{कोज्या}^२\ \text{(न)} + २ \times १२ \times \text{अ} \times \text{प} \times \text{कोज्या (न)}$$

$$\therefore १२^२\left[\frac{\text{त्रिज्या}^२}{२} - \text{अ}^२\right]$$

$$= \text{कोज्या}^२\ \text{(न)}\left[\frac{१२^२}{२} + \text{प}^२\right] + २ \times १२ \times \text{अ} \times \text{प} \times \text{कोज्या न}$$

$$\therefore \text{कोज्या}^२\text{(न)} + \frac{२ \times १२ \times \text{अ} \times \text{प}}{\frac{१२^२}{२} + \text{प}^२}\text{कोज्या (न)}$$

$$= \frac{१२^२\left[\frac{\text{त्रिज्या}^२}{२} - \text{अ}^२\right]}{\frac{१२^२}{२} + \text{प}^२}$$

अथवा $\text{कोज्या}^२\ \text{(न)} + २ \times \text{फल} \times \text{कोज्या (न)} = \text{करणी}$

$$\therefore [\text{कोज्या (न)} + \text{फल}]^२ = \text{करणी} + \text{फल}^२$$

$$\therefore \text{कोज्या (न)} + \text{फल} = \sqrt{\text{करणी} + \text{फल}^२}$$

$$\therefore \text{कोज्या (न)} = \sqrt{\text{करणी} + \text{फल}^२} - \text{फल}$$

इसलिए यह सिद्ध होता है कि जब सूर्य की क्रान्ति दक्षिण होती है तब फल घटाना पड़ता है।

स्वशंकुना विभज्याप्ते दृक्त्रिज्ये द्वादशाहते।
छायाकर्णौ तु कोणेषु यथास्वं देशकालयोः ॥३३॥

अनुवाद—(३३) दृग्ज्या और त्रिज्या को १२ से गुणा करके कोण शंकु से भाग दो। भागफल क्रमानुसार इष्ट स्थान के यथासमय छाया और कर्ण होंगे।

विज्ञान भाष्य—२८-३२ श्लोकों में यह बतलाया गया है कि जब सूर्य आग्नेयादि विदिशाओं में हो तब उस समय की उन्नतांश ज्या (कोण शंकु) और नतांश ज्या (दृग्ज्या) कैसे निकालते हैं। ३३वें श्लोक में यह बतलाया गया है कि दृग्ज्या और कोण शंकु से उस समय की छाया या छायाकर्ण कैसे निकाला जाता है।

इस नियम का सार यह है :—

$$(\text{कोण})\ \text{छाया} = \frac{\text{दृग्ज्या} \times १२}{\text{कोण शंकु}}$$

$$(\text{कोण})\ \text{छायाकर्ण} = \frac{\text{त्रिज्या} \times १२}{\text{कोण शंकु}}$$

यह २१वें श्लोक से मिलता-जुलता है। इसलिए इसकी उपपत्ति भी उसी तरह है।

उदाहरण—जब सूर्य की क्रान्ति १५° उत्तर या दक्षिण हो तो प्रयाग में (अक्षांश २५° २५′) कोण शंकु और दृग्ज्या क्या होंगे ?

प्रयाग का विषुवत्कर्ण = १३·२८ अंगुल

,, की पलभा = ५·६८ अंगुल

इसलिए उस दिन की उदयकालिक अग्राज्या

$$= \frac{\text{ज्या } १५° \times १३·२८}{१२} \text{ [देखो श्लोक २२]}$$

$$= \frac{८९० \times १३·२८}{१२} = ९८५'$$

$$\text{करणी} = \frac{\left(\frac{\text{त्रिज्या}^२}{२} - \text{अग्राज्या}^२\right) \times १४४}{७२ + \text{पलभा}^२}$$

$$= \frac{(५९०९९२२ - ९७०२२५)\ १४४}{७२ + ३२·२६}$$

$$= \frac{४९३९६९७ \times १४४}{१०४·२६}$$

$$= ६८२२५२४$$

$$\text{फल} = \frac{१२ \times \text{पलभा} \times \text{अग्राज्या}}{७२ + \text{पलभा}^२}$$

$$= \frac{१२ \times ५\cdot६८ \times ६८५}{१०४\cdot२६}$$

$$= ६४४$$

$$\therefore \text{ कोण शंकु} = \sqrt{\text{करणी} + \text{फल}^२} \pm \text{फल}$$

$$= \sqrt{६८२२५२४ + ४१४७३६} \pm ६४४$$

$$= \sqrt{७२३७२६०} \pm ६४४$$

$$= २६९० \pm ६४४$$

$$= ३३३४' \text{ या } २०४६'$$

इसलिए जब क्रान्ति उत्तर होगी तब कोण शंकु ३३३४′ और जब क्रान्ति दक्षिण होगी तब कोण शंकु २०४६′ होगी।

यह बतलाया गया है कि कोण शंकु नतांश की कोटिज्या अथवा उन्नतांश की ज्या को कहते हैं इसलिए यदि नतांश या उन्नतांश जानना हो तो कोण शंकु का धनु बनाना होगा।

यहाँ, कोण शंकु = उन्नतांश की ज्या = ३३३४′

$\therefore$ उन्नतांश = ७५°५७′

$\therefore$ नतांश = ९०° − ७५°५७′ = १४°३′

जब क्रान्ति दक्षिण होगी तब

उन्नतांश की ज्या = २०४६′

$\therefore$ उन्नतांश = ३६°३२′

और नतांश = ९०° − ३६°३२′ = ५३°२८′

जब सूर्य की क्रान्ति उत्तर होगी तब,

$$\text{दृग्ज्या} = \sqrt{\text{त्रिज्या}^२ - \text{कोण शंकु}^२}$$

$$= \sqrt{३४३८^२ - ३३३४^२}$$

$$= \sqrt{(३४३८ + ३३३४)\ (३४३८ - ३३३४)}$$

$$= \sqrt{६७७२ \times १०४}$$

$$= ८३९ \text{ कला}$$

परन्तु दृग्ज्या = नतांश की ज्या

= ८३९′

$\therefore$ नतांश = १३°५९′

दोनों उत्तरों में ४ कला का अंतर है क्योंकि वर्गमूल निकालने में दशमलव के अंक छोड़ दिये गये हैं।

यदि यह जानना हो कि कोणों (विदिशाओं) पर शंकु की छाया या छाया-कर्ण क्या होंगे तो ३३वें श्लोक से काम लेना होगा। जब सूर्य की क्रान्ति उत्तर होगी तब

$$\text{छाया} = \frac{\text{दृग्ज्या} \times १२}{\text{कोण शंकु}}$$

$$= \frac{८३६ \times १२}{३३३४}$$

$$= ३\cdot०२ \text{ अंगुल}$$

$$\text{छायाकर्ण} = \frac{\text{त्रिज्या} \times १२}{\text{कोण शंकु}}$$

$$= \frac{३४३८ \times १२}{३३३४}$$

$$= १२.३७ \text{ अंगुल}$$

नवीन रीति से कोण शंकु का मान जानने में कोई विशेष सुविधा नहीं है फिर भी उदाहरण दे देना अच्छा होगा। यह पहले सिद्ध हो चुका है कि जब सूर्य ईशान या वायव्य कोण में होगा तब अग्रा की ज्या $+\frac{१}{\sqrt{२}}$ और जब अग्नि या नैऋत्य कोण में होगा तब अग्रा की ज्या $-\frac{१}{\sqrt{२}}$ होगी (देखो चित्र ५७, ५८) इसलिए २२—२४ श्लोकों के समीकरण (ग) के अनुसार,

$$\pm\frac{१}{\sqrt{२}} = \frac{\pm\text{ज्या } १५° - \text{कोज्या (न)} \times \text{ज्या } २५°२५'}{\text{ज्या (न)} \times \text{कोज्या } २५°२५'} \dagger$$

$$\text{या } \pm\cdot७०७१ = \frac{\pm\cdot२५८८ - \text{कोज्या (न)} \times \cdot४२९२}{\text{ज्या (न)} \times \cdot९०३२}$$

$$\therefore \pm\cdot७०७१ \times \cdot९०३२ \times \text{ज्या (न)}$$

$$= \pm\cdot२५८८ - \cdot४२९२ \times \text{कोज्या (न)}$$

---

†१५° क्रान्ति की ज्या धनात्मक तब होगी जब क्रान्ति उत्तर होगी अर्थात् जब सूर्य उत्तर गोल में होगा। परंतु जब क्रान्ति दक्षिण होगी तब इसकी ज्या ऋणात्मक होगी।

दोनों पक्षों का वर्ग करने पर,

$$\cdot ४०७६ \text{ ज्या}^2 (\text{न}) = \cdot ०६७० \mp \cdot २२२२ \text{ कोज्या } (\text{न}) + \cdot १८४२ \text{ कोज्या}^2 (\text{न})$$

या $\cdot ४०७६ (१ - \text{कोज्या}^2 \text{ न})$

$$= \cdot ०६७० \pm \cdot २२२२ \text{ कोज्या न} + \cdot १८४२ \text{ कोज्या}^2 \text{ न}$$

$$\therefore \cdot ५६२१ \text{ कोज्या}^2 \text{ न} \pm \cdot २२२२ \text{ कोज्या न} - \cdot ३४०६ = ०$$

$$\therefore \text{कोज्या न} = \frac{\pm \cdot २२२२ \pm \sqrt{(\cdot २२२२)^2 + ४ \times \cdot ५६२१ \times \cdot ३४०६}}{२ \times \cdot ५६२१}$$

$$= \frac{\pm \cdot २२२२ \pm \cdot ६२५६}{१\cdot १८४२}$$

$$= \frac{१\cdot १४७८}{१\cdot १८४२} \text{ या } \frac{\cdot ७०३४}{१\cdot १८४२}$$

$\therefore$ उन्नतांशकी ज्या $= \cdot ६६६३$ या $\cdot ५६४०$

$\therefore$ उन्नतांश $= ७५^\circ ४६'$ या $३६^\circ २७'$

इससे दृग्ज्या, छाया, इत्यादि भी जानी जा सकती हैं।

इष्टकाल, अक्षांश और क्रान्ति जान कर उन्नतांश, छाया इत्यादि जानने की रीति—

त्रिज्योदक्चरजायुक्ता याम्यायां तु विवर्जिता।
अन्त्या नतोत्क्रमज्योना स्वाहोरात्रार्धताडिता ॥३४॥
त्रिज्याभक्ता भवेच्छेदो लम्बज्याघ्नोऽथ भाजितः ॥
त्रिभज्यया भवेच्छङ्कुस्तद्वर्गं प्रविशोधयेत्।
त्रिज्यावर्गात्पदं दृग्ज्या छायाकर्णौ तु पूर्ववत् ॥३५॥

अनुवाद—(३४) यदि सूर्य उत्तर गोल में हो तो चरज्या को त्रिज्या में जोड़ने और यदि सूर्य दक्षिण गोल में हो तो घटाने से अन्त्या आती है। इससे नत काल की उत्क्रमज्या को घटाकर शेष को द्युज्या से गुणा कर दो (३५) और त्रिज्या से भाग दे दो तो छेद आता है। इसको लम्ब ज्या से गुणा करके त्रिज्या के भाग दे देने पर शंकु (इष्टकाल की उन्नतांश की ज्या) आता है। शंकु के वर्ग को त्रिज्या के वर्ग से घटाकर शेष का वर्गमूल निकालने पर जो आता है वह दृग्ज्या (इष्टकाल की नतांश ज्या) है जिनसे छाया और छायाकर्ण पहले की तरह जान लेना चाहिए।

विज्ञान भाष्य—इन दो श्लोकों का सार यह है :—

(१) अन्त्या = त्रिज्या ± चरज्या

(२) $\text{छेद} = \frac{(\text{अन्त्या} - \text{नतोत्क्रमज्या}) \times \text{द्युज्या}}{\text{त्रिज्या}}$

(३) $\text{शंकु} = \frac{\text{छेद} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}}$

(४) $\text{दृग्ज्या} = \sqrt{\text{त्रिज्या}^2 - \text{शंकु}^2}$

समीकरण (३) में समीकरण (२) और (१) के मान उत्थापन करने से,

$$\text{शंकु} = \frac{(\text{अन्त्या} - \text{नतोत्क्रमज्या}) \times \text{द्युज्या}}{\text{त्रिज्या}} \times \frac{\text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{(\text{त्रिज्या} \pm \text{चर ज्या} - \text{नतोत्क्रमज्या}) \times \text{द्युज्या}}{\text{त्रिज्या}} \times \frac{\text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{(\text{त्रिज्या} - \text{नतोत्क्रमज्या} \pm \text{चरज्या}) \quad \text{द्युज्या} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}^2}$$

$$= \frac{(\text{नतकोटिज्या} \pm \text{चरज्या}) \ \text{द्युज्या} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}^2} \dagger$$

$$= \frac{(\text{नतकोटिज्या} \pm \text{चरज्या}) \times \text{क्रान्तिकोटिज्या}}{\text{त्रिज्या}^2}$$

$\times$ अक्षांश कोटिज्या..........................(क)*

यह बात गोलीय त्रिकोणमिति से सहज ही सिद्ध हो सकती है। यहाँ कुछ नये शब्द आये हैं इसलिए पहले उनका समझाना आवश्यक है:—

अन्त्या—चित्र ४२ में चरज्या चा श और च श है और वि श त्रिज्या है। इसलिए चा वि और च वि क्रम से अन्त्या हुए।

नत काल—किसी समय से जितनी देर में कोई ग्रह या तारा यामोत्तर वृत्त पर आता है उसको उस ग्रह या तारे का पूर्व नत काल कहते हैं और उस तारे या ग्रह के यामोत्तर वृत्त लांघने के बाद जितना समय बीता रहता है उसको उस तारे या ग्रह का पच्छिम नत काल कहते हैं। किसी ग्रह या तारे का नत काल (hour angle) और क्रान्ति दी हुई हो तो उसका स्थान सहज ही निश्चय किया जा सकता है। नत काल का परिमाण उस कोण से जाना जाता है जो ग्रह या तारे के ध्रुवप्रोत वृत्त और यामोत्तर वृत्त के बीच में होता है। ध्रुवप्रोतवृत्त विषुवद्वृत्त से समकोण बनाता है, इसलिए नत काल विषुवद्वृत्त के उस धनु से भी जो तारे या ग्रह के ध्रुव

† देखो चित्र २४ और पृष्ठ ११६, ११८-११६

* देखो पृष्ठ २०८

प्रोत वृत्त और याम्योत्तर वृत्त के बीच में होता है, जाना जा सकता है। चित्र ५७ में ख ध र, ख ध स और ख ध रा कोण सूर्य के नत काल हैं जबकि सूर्य क्रम से र, स और रा बिन्दुओं पर रहता है। यह स्थान याम्योत्तर वृत्त के पूर्व हैं इसलिए यह सूर्य के पूर्व नत काल हैं। जब ग्रह या तारा याम्योत्तर वृत्त पर होता है तब उसका नत काल शून्य होता है। नत काल साधारणत: अंश में लिखा जाता है। यदि किसी तारे या ग्रह का पूर्व नत काल १५° हो तो समझना चाहिए कि वह १५ × ४ मिनट अथवा १ घंटे (नाक्षत्र) में याम्योत्तर वृत्त पर आवेगा।

उन्नत काल—दिनमान के आधे से नत काल घटाने पर जो आता है वह उन्नत काल कहलाता है। पूर्व उन्नत काल ग्रह या तारे के उदयकाल से इष्ट काल तक के समय को कहते हैं और पश्चिम उन्नत काल इष्ट काल से अस्त होने तक के समय को कहते हैं। पश्चिम उन्नत काल उस समय होता है जब ग्रह या तारा याम्योत्तर वृत्त के पश्चिम होता है। उन्नत काल या इसके संक्षिप्त रूप उन्नत को उन्नतांश से भिन्न समझना चाहिए जैसे नत को नतांश से।

३४-३५ श्लोकों में यह बतलाया गया है कि यदि किसी ग्रह या तारे का नत काल, अक्षांश और क्रान्ति ज्ञात हो तो उसका उन्नतांश, नतांश इत्यदि कैसे जान सकते हैं। इसकी उपपत्ति गोलीय त्रिकोण-मिति के आधार पर यह है। (देखो चित्र ५७)

मान लो सूर्य र पर है। गोलीय त्रिभुज ध ख र में कोज्या ∠ख ध र

$$= \frac{\text{कोज्या (ख र)} - \text{कोज्या (ध ख)} \times \text{कोज्या (ध र)}}{\text{ज्या (ध ख)} \times \text{ज्या (ध र)}}$$

कोज्या (नत काल)

$$= \frac{\text{कोज्या (नतांश)} - \text{कोज्या (लम्बांश)} \times \text{कोज्या (ध्रुवांतर)}}{\text{ज्या (लम्बांश)} \times \text{ज्या (ध्रुवांतर)}}$$

$$= \frac{\text{कोज्या (नतांश)} - \text{ज्या (अक्षांश)} \times \text{ज्या (क्रान्ति)}}{\text{कोज्या (अक्षांश)} \times \text{कोज्या (क्रान्ति)}} \qquad (१)$$

$$= \frac{\text{कोज्या (नतांश)}}{\text{कोज्या अक्षांश} \times \text{कोज्या क्रान्ति}}$$

$$- \frac{\text{ज्या (अक्षांश)}}{\text{कोज्या (अक्षांश)}} \times \frac{\text{ज्या (क्रान्ति)}}{\text{कोज्या क्रान्ति)}}$$

$$= \frac{\text{कोज्या (नतांश)}}{\text{कोज्या (अक्षांश)} \times \text{कोज्या (क्रान्ति)}} \text{ स्परे (अक्षांश)}$$

$$\times \text{स्परे (क्रान्ति)} \qquad (२)$$

और चरज्या*=क्रान्ति स्पर्श रेखा × अक्षांश स्पर्शरेखा (३)

समीकरण (२) और (३) के समान पक्षों को जोड़ने से,

कोज्या (नतकाल) + चरज्या

$$= \frac{\text{कोज्या (नतांश)}}{\text{कोज्या (अक्षांश)} \times \text{कोज्या (क्रान्ति)}}$$

अथवा नतकोटिज्या + चरज्या

$$= \frac{\text{कोज्या (नतांश)}}{\text{अक्षांश कोटिज्या} \times \text{क्रान्ति कोटिज्या}}$$

∴ नतांश कोटिज्या

=(नतकोटिज्या + चरज्या) × अक्ष कोटिज्या × क्रांति कोटिज्या (ख)

नतांश कोटिज्या को भी शंकु कहते हैं। इस सूत्र से शंकु का मान आजकल की रीति के अनुसार दशमलव भिन्न में होगा। यदि भारतीय रीति के अनुसार लिखना हो तो इसको त्रिज्या (३४३८) के वर्ग से भाग देना होगा।

यह सूत्र उस समय काम देगा जब कि सूर्य उत्तर गोल में हो। यदि सूर्य दक्षिण गोल में हो तो चरज्या ऋणात्मक होगी (देखो चित्र ४२ की व्याख्या)। ऐसी दशा में ध्रुवांतर ध र ९०° से अधिक होगा जिससे कोज्या (ध र) ऋणात्मक होगी। इसलिए समीकरण (२) के दाहिने पक्ष का स्परे (अक्षांश) × स्परे (क्रान्ति) भी धनात्मक होगा जिससे समीकरण (ख) में चरज्या ऋणात्मक रहेगी परन्तु और कहीं अंतर न पड़ेगा। इसलिए समीकरण (ख) का व्यापक रूप यह होगा—

नतांश कोटिज्या

=(नत कोटिज्या ± चरज्या) × अक्षकोटिज्या × क्रान्तिकोटिज्या (ग)

जिसमें धन चिह्न उस समय लिया जायगा जब सूर्य या ग्रह की क्रान्ति उत्तर होगी और ऋण चिह्न उस समय जब क्रान्ति दक्षिण होगी।

नतांश कोटिज्या अथवा शंकु का मान जान लेने पर दृग्ज्या, छाया, छायाकर्ण इत्यादि पहले की ही तरह जाने जा सकते हैं इसलिए विस्तार की आवश्यकता नहीं है।

उदाहरण—यदि सूर्य की क्रान्ति १५° उत्तर या दक्षिण हो तो प्रयाग में जिस समय सूर्य का पूर्वनतकाल ३ घंटा ३० मिनट होगा उस समय उसका नतांश क्या होगा ?

सूर्य सिद्धान्त की रीति से

$$\text{चरज्या} = \frac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{पलभा} \times \text{त्रिज्या}}{१२ \times \text{क्रान्तिकोटिज्या}}$$ [देखो पृष्ठ २०८]

*देखो पृष्ठ २०९

$$= \frac{\text{ज्या } १५^\circ \times ५\cdot७ \times ३४३८}{१२ \times \text{कोज्या } १५^\circ}$$

$$= \frac{८९० \times ५\cdot७ \times ३४३८}{१२ \times ३३२१}$$

$$= ४३८$$

परन्तु अन्त्या = त्रिज्या + चरज्या

$\therefore$ अन्त्या = ३४३८ ± ४३८

= ३८७६ या ३०००

नतकाल = ३ घंटा ३० मिनट = ५२°३०

नतोत्क्रम ज्या = उज्या ५२°३०′

= १३४५

$$\therefore \text{छेद} = \frac{(३८७६ - १३४५) \times ३३२१}{३४३८} \text{ या } \frac{(३००० - १३४५) \times ३३२१}{३४३८}$$

$$= \frac{२५३१ \times ३३२१}{३४३८} \quad \text{अथवा} \quad \frac{१६५५ \times ३३२१}{३४३८}$$

$$\therefore \text{शंकु} = \frac{\text{छेद} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{२५३१ \times ३३२१ \times ३१०६}{३४३८ \times ३४३८} \text{ अथवा } \frac{१६५५ \times ३३२१ \times ३१०६}{३४३८ \times ३४३८}$$

= २२०९ अथवा १४४४

परन्तु यहाँ शंकु उन्नतांश की ज्या के लिए प्रयुक्त है।

इसलिए जब सूर्य उत्तर गोल में होगा तब इष्टकाल में उन्नतांश की ज्या २२०९ कला और जब सूर्य दक्षिण गोल में होगा तब उन्नतांश की ज्या १४४४ कला होगी। इसलिए पहली दशा में—

उन्नतांश = ४०° और नतांश = ९०° − ४०° = ५०°

और दूसरी दशा में उन्नतांश = २४°५२′ और नतांश = १५°८′

पहली दशा में दृग्ज्या = $\sqrt{\text{त्रिज्या}^२ - \text{शंकु}^२}$

= $\sqrt{११८१९८४४ - २२०९^२}$

= $\sqrt{११८१९८४४ - ४८७९६८१}$

= $\sqrt{६९४०१६३}$

= २६३४

$\therefore$ पहली दशा में छाया $= \frac{\text{दृग्ज्या} \times १२}{\text{शंकु}}$

$= \frac{२६३४ \times १२}{२२०६}$

$= १४·३१$ अंगुल

दूसरी दशा में दृग्ज्या $= \sqrt{\text{त्रिज्या}^२ - १४४४^२}$

$= \sqrt{११८१९८४१ - २०८५१३६}$

$= ३१२०$

$\therefore$ दूसरी दशा में छाया $= \frac{३१२० \times १२}{१४४४}$

$= २५·९३$ अंगुल

नवीन रीति से—

समीकरण (ख) के आधार पर,

नतांश कोटिज्या $=$ (नतकोटिज्या $\pm$ चरज्या) $\times$ अक्षकोटिज्या $\times$ क्रान्ति-कोटिज्या

परन्तु चरज्या $=$ स्परे क्रान्ति $\times$ स्परे अक्षांश [देखो पृष्ठ २०६

$=$ स्परे १५° $\times$ स्परे २५°२५′

$= ·२६७९ \times ·४७५२$

$= ·१२७३$

$\therefore$ नतांश कोटिज्या

$=$ (कोज्या ५२°३०′ $\pm$ ·१२७३) $\times$ कोज्या २५°२५′ कोज्या १५°

$=$ (·६०८८ $\pm$ ·१२७३) $\times$ ·९०३२ $\times$ ·९६५९

$= ·७३६१ \times ·९०३२ \times ·९६५९$ या $·४८१५ \times ·९०३२ \times ·९६५९$

$= ·६४२२$ या $·४२०१$

$\therefore$ जब क्रान्ति उत्तर होगी तब नतांश ५०°३′ होगा,

और जब क्रान्ति दक्षिण होगी तब नतांश ६५°९′ होगा।

पहली दशा में १२ अंगुल शंकु की छाया $=$ १२ स्परे ५०°३′

$= १२ \times १·१९४०$

$= १४·३२८$ अंगुल

दूसरी दशा में, छाया $= १२ \times$ स्परे ६५°९′

$= १२ \times २·१५९४$

$= २५·९१३$ अंगुल

किसी समय की छाया नापकर नतकाल जानना—

अभीष्टच्छायया ऽभ्यस्ता त्रिज्या तत्कर्णभाजिता ।
दृग्ज्या तद्वर्गसंशुद्धात् त्रिज्यावर्गाच्च यत्पदम् ॥३६॥
शङ्कुस्य त्रिभजीवाघ्नः स्वलम्बज्याविभाजितः ।
फलं त्रिभज्ययाऽभ्यस्तं स्वाहोरात्रार्धभाजितम् ॥३७॥
उन्नतज्या तया हीना स्वान्त्या शेषस्य कार्मुकम् ।
उत्क्रमज्याभिरेवं स्यात्प्राक्पश्चाच्च नतासवः ॥३८॥

अनुवाद—(३६) इष्टकाल की छाया को त्रिज्या से गुणा करके छायाकर्ण से भाग देने पर दृग्ज्या आती है। त्रिज्या के वर्ग से दृग्ज्या के वर्ग को घटा कर वर्गमूल निकालने से (३७) शंकु प्राप्त होता है। शंकु को त्रिज्या से गुणा करके इष्ट स्थान की लम्बज्या से भाग देने पर छेद आता है। छेद को त्रिज्या से गुणा करके द्युज्या से भाग देने पर (३८) उन्नतज्या आती है। इसको अन्त्या से घटाने पर जो शेष बचता हो उसको उत्क्रमज्या समझ कर उत्क्रमज्या पिंड से धनु बनावे तो पूर्व या पच्छिम नतकाल ज्ञात होता है।

विज्ञान भाष्य—इन तीनों श्लोकों का सारांश यह है :—

(१) $\frac{\text{छाया} \times \text{त्रिज्या}}{\text{छाया कर्ण}} = \text{दृग्ज्या}$

(२) $\sqrt{\text{त्रिज्या}^2 - \text{दृग्ज्या}^2} = \text{शंकु}$

(३) $\frac{\text{शंकु} \times \text{त्रिज्या}}{\text{लम्बज्या}} = \text{छेद}$

(४) $\frac{\text{छेद} \times \text{त्रिज्या}}{\text{द्युज्या}} = \text{उन्नतज्या}$

(५) अन्त्या − उन्नत ज्या = नतोत्क्रमज्या

इन तीन श्लोकों के नियम ३४-३५ श्लोकों में लिखे हुए नियम के विलोम हैं इसलिए उनकी उपपत्ति भी वही है। हाँ, यहाँ छाया से दृग्ज्या अर्थात् नतांश ज्या का मान १३वें श्लोक में बतलाये गये नियम की तरह जानना चाहिए। यह पहले ही बतलाया गया है कि शंकु और छायाकर्ण के बीच का कोण नतांश होता है इसलिए छाया को छाया कर्ण से भाग देने पर दशमलव भिन्न * में तथा इस फल को त्रिज्या से गुणा करने पर कलाओं में नतांश ज्या का मान निकल आवेगा।

इस रीति के सम्बन्ध में पंडित इन्द्रनारायण जी द्विवेदी लिखते हैं, "यद्यपि ३४-३५ श्लोकों के विपरीत गणना से ही ऊपर के श्लोकों में नतकाल बनाने की

विधि कही गयी है तथापि इसी रीति से नतकाल में कुछ अंतर आ जाता है इसी से भास्कराचार्य ने इसे सुधार दिया है (देखो सिद्धान्त शिरोमणि)।"*

परन्तु मेरी समझ में यह अंतर इसलिए नहीं पड़ता कि नियम अशुद्ध है वरन् इसका कारण छाया की नाप की स्थूलता है। यदि छाया दो तीन दशमलव स्थान तक ठीक-ठीक नापी जाय और गुणा भाग में भी स्थूलता न आने पावे तो इस रीति से नतकाल जानने में कोई अशुद्धि नहीं हो सकती।

उदाहरण १—यदि प्रयाग में किसी समय छाया १४.३३ अंगुल हो और सूर्य की क्रान्ति १५° उत्तर हो तो पूर्व या पच्छिम नतकाल बताओ और यह भी बतलाओ कि घड़ी में क्या बजा है?

सिद्धान्तीय रीति—

छाया = १४·३३ अंगुल

$\therefore$ छाया कर्ण $= \sqrt{१२^२ + (१४·३३)^२} =$ १८·६६ अंगुल

$\therefore$ दृग्ज्या $= \dfrac{१४·३३ \times ३४३८}{१८.६६} =$ २६३६ कला

$\therefore$ शंकु $= \sqrt{३४६८^२ - २६·३६^२} =$ २२०७ कला

$\therefore$ छेद $= \dfrac{२२०७ \times ३४३८}{३१०६}$

और उन्नतज्या $= \dfrac{२२०७ \times ३४३८}{३१०६} \times \dfrac{३४३८}{३३२१} =$ २५२६ कला

अन्त्या = ३८७६ (पहिले की तरह)

$\therefore$ नतोत्क्रमज्या = ३८७६ — २५२६ = १३४७ कला

$\therefore$ नतकाल = १३४७ कला का (उत्क्रम ज्या के अनुसार) धनु

= ५२°३२′ [देखो पृष्ठ १२०-१२१]

= ३ घंटा ३० मिनट ८ सेकंड

यदि नतकाल पूर्व हो तो १२ घंटे में से घटाने पर और पच्छिम हो तो १२ घंटे में जोड़ने पर धूपघड़ी का समय ज्ञात होगा।

$\therefore$ यदि पूर्व नतकाल हो तो धूप-घड़ी में

१२ घंटा — ३ घंटा ३० मि० ८ सेकंड = ८ घंटा २६ मि० ५२ सेकंड होगा।

और यदि पच्छिम नतकाल हो तो धूप-घड़ी में मध्याह्न के उपरान्त ३ घंटा ३० मिनट ८ सेकंड बीता है अर्थात् ३ बजकर ३० मिनट और ८ सेकंड हुआ है।

* देखो हिन्दी साहित्य सम्मेलन से प्रकाशित सूर्य-सिद्धान्त पृष्ठ ६६।

यह ध्यान रखना चाहिए कि घड़ी का यह समय शुद्ध स्थानीय काल है। इसको रेलवे के समय से मिलाने के लिए काल-समीकरण संस्कार तथा देशान्तर संस्कार करना पड़ेगा जिसकी चर्चा इसी अध्याय के अंत में की जायगी।

नवीन रीति—

$$\text{स्परे (नतांश)} = \frac{\text{छाया}}{१२} = \frac{१४\cdot३३}{१२} = १\cdot१९४१$$

$\therefore$ नतांश $= ५२°३'$

$\therefore$ शंकु $=$ नतांश कोटि ज्या $=$ कोज्या $५०°३' = \cdot६४२१$

समीकरण (ख) में सिद्ध किया गया है कि

नतांश कोटिज्या

$=$ (नतकोटिज्या $+$ चरज्या) $\times$ अक्ष कोटिज्या $\times$ क्रान्ति कोटिज्या

$\therefore \cdot६४२१ =$ (नत कोटिज्या $+ \cdot१२७३) \times \cdot९०३२ \times \cdot९६५९$

$=$ (नत कोटिज्या $+ \cdot१२७३) \times \cdot८७२४$

$$\therefore \text{नत कोटिज्या} + \cdot१२७३ = \frac{\cdot६४२१}{\cdot८७२४} = \cdot७३६०$$

$\therefore$ नत कोटिज्या $= \cdot७३६० - \cdot१२७३ = \cdot६०८७$

$\therefore$ नत काल $= ५२°३०'$

$=$ ३ घंटा ३० मिनट

इसलिए यदि पूर्व नत है तो समय होगा ८ बज कर ३० मिनट और पच्छिम नत है तो साढ़े तीन बजा रहेगा।

नवीन रीति से नत काल निकालने में और सरलता होगी यदि समीकरण (१) से सीधे ही काम लिया जाय। इसका एक उदाहरण नीचे दिया जाता है :—

उदाहरण २—छाया $=$ १४·३३ अंगुल और क्रान्ति $= १५°$ उत्तर तो प्रयाग में नत काल क्या है?

$$\text{स्परे (नतांश)} = \frac{\text{छाया}}{१२} = \frac{१४\cdot३३}{१२} = १\cdot१९४१$$

$\therefore$ नतांश $= ५०°३'$

$\therefore$ कोज्या (नत काल)

$$= \frac{\text{कोज्या } ५०°३' - \text{ज्या } २५°२५' \times \text{ज्या } १५°}{\text{कोज्या } २५°२५' \times \text{कोज्या } १५°}$$

$$= \frac{\cdot६४२१ - \cdot४२६२ \times \cdot२५८८}{\cdot ९०३२ \times \cdot ९६५९}$$

$$= \frac{\cdot६४२१ - \cdot१११११}{\cdot८७२४}$$

$$= \frac{\cdot५३१०}{\cdot८७२४}$$

$$= \cdot६०८७$$

∴ नत काल $= ५२^\circ ३०' =$ ३ घंटा ३० मिनट

उदाहरण ३—यदि छाया २५·९१३ अंगुल और सूर्य की दक्षिण क्रान्ति १५° हो तो नत काल बतलाओ।

स्परे नतांश $= \frac{\text{छाया}}{१२} = \frac{२५\cdot९१३}{१२} = २\cdot१५९४$

∴ नतांश $= ६५^\circ ९'$

यहाँ क्रान्ति दक्षिण है इसलिए ध्रुवांतर ९०° से अधिक है और समीकरण (१) में कोज्या (ध्रुवांतर) अथवा ज्या (क्रान्ति) ऋणात्मक होगी।

इसलिए कोज्या (नत काल)

$$= \frac{\text{कोज्या नतांश} + \text{ज्या (अक्षांश)} + \text{ज्या (क्रान्ति)}}{\text{कोज्या (अक्षांश)} \times \text{कोज्या (क्रान्ति)}}$$

$$= \frac{\text{कोज्या } ६५^\circ ९' + \text{ज्या } २५^\circ २५' \times \text{ज्या } १५^\circ}{\text{कोज्या } २५^\circ २५' \times \text{कोज्या } १५^\circ}$$

$$= \frac{\cdot४२०२ + \cdot४२९२ \times \cdot२५८८}{\cdot९०३२ \times \cdot९६५९}$$

$$= \frac{\cdot४२०२ + \cdot१११११}{\cdot८७२४} = \frac{\cdot५३१३}{\cdot८७२४} = \cdot६०९०$$

∴ नत काल $= ५२^\circ २९' =$ ३ घंटा २९ मिनट ५६ सेकंड

किसी समय की कर्णाग्रा जानकर सूर्य का भोगांश निकालना—

इष्टाग्राघ्ना स्वलम्बज्या स्वकर्णाङ्गुलभाजिता।
क्रान्तिज्या सात्रिजीवाघ्नी परमापक्रमोद्धृता ॥४०॥
तच्चापं भादिकं क्षेत्रं पदै र्भाध्याह्निको रविः।

अनुवाद—(४०) इष्टकाल की अग्रा अर्थात् कर्णाग्रा को लम्बज्या से गुणा करके इष्टकाल के छाया-कर्ण से भाग दे दो तो भागफल सूर्य की क्रान्तिज्या होगी। इसको त्रिज्या से गुणा करके परमाप क्रम ज्या से भाग देकर भागफल का धनु

बनाओ। फिर सूर्य जिस राशि में हो उसका पद बनाकर सायन भोग का निश्चय (१७-१६) श्लोकों के अनुसार करो।

विज्ञान भाष्य—इसका सारांश यह है :—

$$\frac{\text{कर्णाग्रा} \times \text{लम्बज्या}}{\text{छायाकर्ण}} = \text{क्रान्ति ज्या}$$

$$\frac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{परमापक्रम ज्या}} = \text{सूर्य का सायन भोगांश ज्या}$$

पहले नियम में इष्टकाल की अग्रा (कर्णाग्रा अथवा कर्णवृत्ताग्रा) से सूर्य की क्रान्ति जानने की रीति बतलायी गया है जो २७वें और २२वें श्लोकों का विलोम रूप है [देखो २ वें श्लोक का समीकरण (४)]

दूसरा नियम जिससे क्रान्ति जानकर सूर्य का सायन भोगांश निकाला जाता है इसी अध्याय के १७-१६ श्लोकों में तथा स्पष्टाधिकार के ८वें श्लोकों में आ गया है। इसलिए यहाँ दुहराने की आवश्यकता नहीं है।

छाया की नोक जिस मार्ग पर चलता है वह खींचना—

इष्टे हि मध्ये प्राक्पश्चाद् वृत्ते बाहुत्रयान्तरे ॥४१॥
मत्स्यद्वयान्तरयुते स्त्रिस्पृक्सूत्रेण भाभ्रमः।

अनुवाद—जिस दिन शंकु की छाका की नोक का मार्ग खींचना हो उस दिन मध्याह्न के पहले और पीछे छाया की नोक के तीन विन्दु निश्चित करो। पहले और दूसरे तथा दूसरे और तीसरे विन्दुओं से तिमि बनाओ। प्रत्येक तिमि के सामान्य विदुओं पर जाती हुई रेखाओं को इतना बढ़ाओ कि वे मिल जायँ। जिस विन्दु पर मिलें उसको केन्द्र मानकर छाया की नोक के तीनों विन्दुओं पर जाती हुई एक परिधि खींचो। बस यही परिधिखंड छाया की नोक का मार्ग भाभ्रम रेखा उस दिन होगा।

विज्ञान भाष्य - यथार्थ में छाया की नोक का मार्ग वृत्ताकार नहीं होता वरन् अतिपरवलय (hyperbola) के आकार का होता है। इसलिए यह नियम अशुद्ध है जिसको भास्कराचार्य, रंगनाथ जी इत्यादि सभी ने स्वीकार किया है। इसलिए इस पर बहुत विचार करने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

लंका और इष्ट स्थान में सायन मेषादि राशियों के उदयकाल जानने की रीति—

त्रिभद्युकर्णार्धगुणाः स्वाहोरात्रार्धभाजिताः ॥४१॥
क्रमादेकद्वित्रिभज्यास्तच्चापानि पृथक् पृथक्।

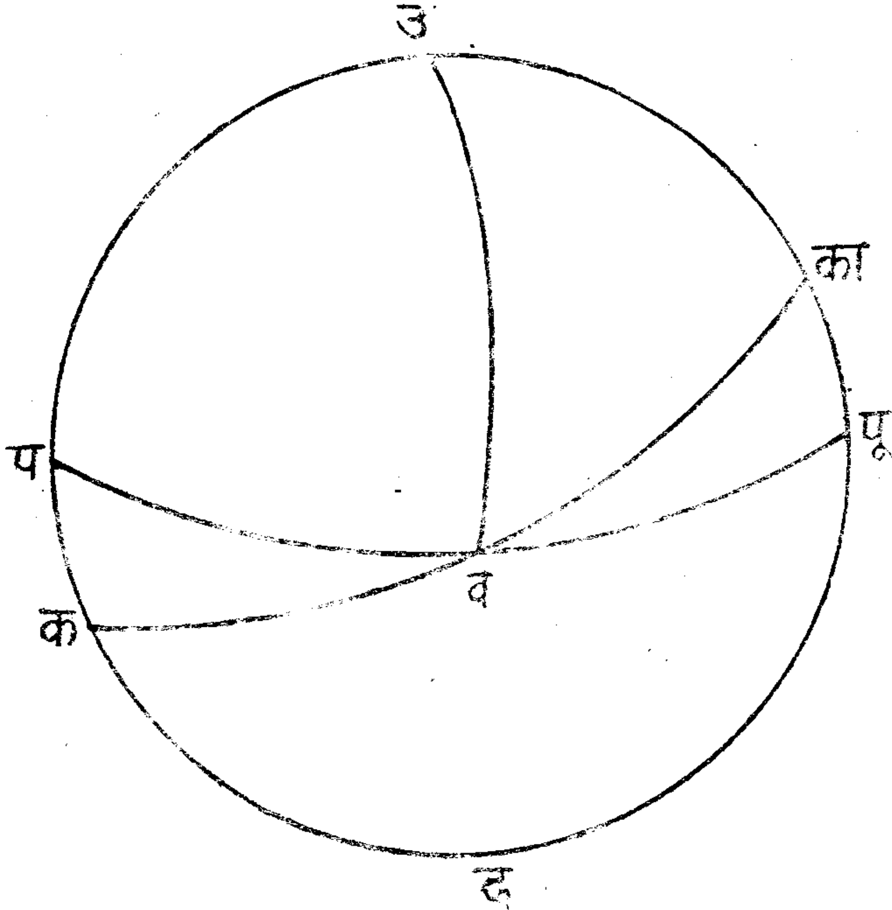
स्वाधोऽधः प्रविशोध्याथ मेषाल्लङ्कोदयासवः ॥४२॥
खागाष्टयोऽर्थगोऽगैकाश्शरत्र्यङ्कहिमांशवः ।
स्वदेशचरखण्डोना भवन्तीष्टोदयासवः ॥४३॥
व्यस्ता व्यस्तैर्युतास्तैस्तैः कर्कटाद्यसवस्स्मृताः ।
व्युत्क्रमेण षडेवैते भवन्तीष्टास्तुलादय ॥४४॥

अनुवाद— (४१, ४२) एक, दो और तीन राशियों की ज्याओं को क्रम से तीन राशियों की द्यु्ज्या से गुणा कर दो और गुणनफलों को क्रम से एक, दो और तीन राशियों के अहोरात्रार्धों (द्यु्ज्याओं) से भाग दे दो, भजनफलों के धनु बनाकर अलग अलग रखो। पहला लंका में मेष राशि का उदयासु है, पहले को दूसरे से घटाने पर जो शेष आता है वह लंका में वृष राशि का उदयासु है और दूसरे को तीसरे से घटाने पर जो शेष होता है वह लंका में मिथुन राशि का उदयासु है। (४३) इनके मान क्रमानुसार १६७०, १७९५ और १९३५ असु अथवा प्राण हैं। इनसे इष्ट स्थान के अपने अपने चरखण्ड घटाने पर इष्ट स्थान के मेष, वृष और मिथुन राशियों के उदयासु जाने जाते हैं। (४४) यही उलटे क्रम से कर्कादि तीन राशियों के लंका में उदयासु हैं। इन्हीं में उलटे क्रम से अपने अपने चरखंडों को जोड़ने से इष्ट स्थान के कर्क, सिंह और कन्या के उदयासु होंगे। यही ६ उदयासु उलटे क्रम से तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन के उदयासु हैं।

विज्ञान भाष्य—सायन मेष अर्थात् वसंत संपात विन्दु क्षितिज के पूर्व विन्दु पर जिस क्षण आता है उस समय से सायन मेष राशि का उदय होने लगता है और जिस क्षण तक वसंत सम्पात से क्रान्ति वृत्त का ३० अंश क्षितिज के ऊपर नहीं आ जाता उस समय तक सायन मेष राशि का उदय होता रहता है। जितने समय में वसंत सम्पात विन्दु से क्रान्ति वृत्त का ३० अंश उदय होता है उसको सायन मेष राशि का उदयकाल कहते हैं। यह सूक्ष्मता के लिए असुओं में प्रकट किया जाता है। इसीलिए इस समय को सायन मेषराशि का उदयासु कहते हैं। इसके पश्चात् क्रान्ति वृत्ति का अगला ३० अंश जितने समय में उदय होता है उसको सायन वृष राशि का उदय काल या उदयासु कहते हैं। इसी प्रकार अन्य सायन राशियों के उदयासुओं के बारे में समझना चाहिए।

किसी स्थान में कौन राशि कितने समय में उदय होती है यह जानने के लिए पहले यह जानना सुगम होता है कि वह राशि विषुवत् रेखा (निरक्षदेश equator) पर कितने समय में उदय होती है। जब यह ज्ञात हो गया तब अपने स्थान का उदय काल जानने के लिए निरक्षदेश के उदय काल में कुछ संस्कार करना पड़ता है।

हमारे ज्योतिष सिद्धान्त में विषुवत् रेखा और उज्जैन को जाती हुई देशान्तर रेखा के सामान्य विन्दु पर लंका स्थित मानी गयी है। इसलिए निरक्षदेश के उदयासु को लंका के उदयासु कहा गया है। लंका में मेष, वृष और मिथुन राशियों के उदयासु जानने का नियम ४१ श्लोक के उत्तरार्द्ध और ४२वें श्लोक में दिया हुआ है जिसकी उपपत्ति चित्र ५६ से समझ में आवेगी।



चित्र—५६

उ, प, द, पू—लंका के क्षितिज के क्रम से उत्तर, पच्छिम, दक्षिण और पूर्व विन्दु।

प व पू—विषुवद्वृत्त जो लंका में सममण्डल भी होता है।

क व का—क्रान्ति वृत्त।

व—वसन्त सम्पात अथवा सायन मेष राशि का आदि विन्दु।

उ—उत्तरी ध्रुव का भी स्थान है।

पृथ्वी की दैनिक गति के कारण जितने समय में विषुद्यवृत्त का व पू भाग क्षितिज के ऊपर आता है उतने ही समय में क्रान्ति वृत्तको व का भाग भी क्षितिज के ऊपर आता है। इसलिए व का के उदय होने में उतना ही समय लगता है जितना व

पू के उदय होने में लगता है। परन्तु पूरे विषुवद्वृत्त (३६०°) के उदय होने के समय को एक नाक्षत्र दिन* कहते हैं जो २१६०० असुओं के समान होता है (पृष्ठ ६); इसलिए विषुवद्वृत्त के ३६०° अथवा २१६०० कला के उदय होने में जब २१६०० असुओं का समय बीतता है तब १ कला के उदय होने में १ असु का समय लगेगा। इसलिए यदि व पू का मान कलाओं में ज्ञात हो जाय तो उतने ही असुओं में व का का उदय काल निकल आवेगा।

अब देखना है कि व का और व पू का परस्पर क्या सम्बन्ध है। व पू का एक समकोण गोलीय त्रिभुज है जिसका व पू का कोण समकोण है और पू व का कोण विषुवद्वृत्त और क्रान्ति वृत्त के बीच का कोण अर्थात् सूर्य की परम क्रान्ति है। इस गोलीय त्रिभुज का भुज पू का क्रान्ति वृत्त के का विन्दु की क्रान्ति, भुज व का, का विन्दु का सायन भोगांश और भुज व पू, का विन्दु का विषुवांश है (देखो पृष्ठ २०१) इसलिए नेपियर के पहले नियम के आधार पर व का और व पू का सम्बन्ध जाना जा सकता है क्योंकि कोटि ज्या ∠ का व पू = स्पर्शरेखा (व पू) × कोटि स्पर्शरेखा (व का)

$$\text{अथवा, विषुवांश की स्पर्शरेखा} = \frac{\text{परम क्रान्ति कोटिज्या}}{\text{सायन भोगांश की कोटि स्पर्शरेखा}}$$

$$= \frac{\text{कोज्या } २३° \; २७'}{\text{कोस्परे (सायन भोगांश)}}$$

परन्तु हमारे आचार्य स्पर्शरेखा या कोटि स्पर्शरेखा का व्यवहार नहीं करते थे इसलिए उन्होंने गोलीय त्रिभुज उ व का से इनका सम्बन्ध इस प्रकार निकाला था :—

$$\frac{\text{ज्या (उ का)}}{\text{ज्या (उ व का)}} = \frac{\text{ज्या (व का)}}{\text{ज्या (व उ का)}}$$

* पृष्ठ ७ पर बतलाया गया है कि किसी तारे के उदय होने के समय से उसके फिर उदय तक के समय को नाक्षत्र अहोरात्र या नाक्षत्र दिन कहते हैं। इसलिए वसन्त सम्पात विन्दु के उदय होने के समय से उसके फिर उदय होने तक के समय को भी नाक्षत्र दिन नहीं समझना चाहिए क्योंकि इतने समय में यह विन्दु अयन चलन के कारण लगभग ०·१४ विकला पच्छिम हो जाने के कारण ०·००१ असु पहले उदय होगा। परन्तु यह भेद इतना सूक्ष्म है कि व्यवहार में दोनों परिभाषाओं को एक ही समझ लेने में कोई हानि नहीं। आजकल पाश्चात्य ज्योतिषी नाक्षत्र दिन की परिभाषा वही करते हैं जो पीछे दी हुई है।

परन्तु कोण व उ का = धनु व पू

$$\therefore \frac{\text{ज्या (उ का)}}{\text{ज्या (उ व का)}} = \frac{\text{ज्या (व का)}}{\text{ज्या (व पू)}}$$

$$\therefore \text{ज्या (व पू)} = \frac{\text{ज्या (व का)} \times \text{ज्या (उ व का)}}{\text{ज्या (उ का)}}$$

परन्तु व का = 'का' का सायन भोगांश

$\angle$उ व का = $\angle$उ व पू − $\angle$का व पू

= ९०° − सूर्य की परम क्रान्ति

$\therefore$ ज्या (उ व का) = सूर्य की परम क्रान्ति कोटिज्या

= २४° की कोटिज्या (सिद्धान्तीय मत से)

= तीन राशि की द्युज्या (पृष्ठ २०८)

ज्या (उ का) = ज्या (उ पू − का पू)

= ज्या (९०° − 'का' की क्रान्ति)

= 'का' की क्रान्ति कोटिज्या

= 'का' की द्युज्या

इसलिए, ज्या (व पू)

$$= \frac{\text{'का' के भोगांश की ज्या} \times \text{परम क्रान्ति कोटिज्या}}{\text{'का' की क्रान्ति कोटिज्या}}$$

इससे व पू का जो मान कलाओं में आवेगा वही असुओं में 'का' के भोगांश का उदय काल होगा। इस साधारण समीकरण में 'का' के भोगांश की जगह जो धनु रखा जायगा उसी के लंका के उदयासु ज्ञात हो जायँगे। यदि इसकी जगह ३०°, ६०° और ९०° रखे जायँ तो ३०, ६० और ९० अंशों के भोगांशों के उदयासु अर्थात् सायन मेष राशि, सायन मेष और वृष राशि तथा सायन मेष, वृष और मिथुन राशियों के उदयासु क्रम से आ जायँगे। सायन मेष और वृष राशियों के उदयासुओं में से सायन मेष राशि के उदयासु घटाये जायँ तो सायन वृष राशि के उदयासु और सायन मेष वृष और मिथुन राशियों के उदयासुओं में से सायन मेष और वृष के उदयासु घटाये जायँ तो सायन मिथुन के उदयासु प्राप्त होंगे।

यदि समीकरण (१) में 'का' का भोगांश ९०° हो तो 'का' की क्रान्ति सूर्य की परम क्रान्ति होगी। ऐसी दशा में 'का' के भोगांश की ज्या का मान सिद्धान्तीय रीति से ३४३८ कला और आधुनिक रीति से १ होगा। इसलिये 'का' की क्रान्ति कोटिज्या परम-क्रान्ति-कोटिज्या के समान होने से समीकरण का दाहना पक्ष ३४३८ या १ के समान होगा जिससे व पू का मान भी ९०° के समान होगा। इसका अर्थ

यह हुआ कि जब व का ९०° होगा तब व पू भी ९०° होगा। इसलिये मेषादि तीन राशियों के उदयासु ९०×६०=५४०० होंगे, जो १५ नाक्षत्र घड़ी या ६ नाक्षत्र घंटों के समान हैं।

४२वें श्लोक के पूर्वार्ध में लंका में मेष, वृष और मिथुन राशियों के उदयासु क्रम से १६७०, १७९५ और १९३५ दिये गये हैं जो समीकरण (१) से उपर्युक्त नियम के अनुसार प्राप्त हुए हैं और नीचे लिखे उदाहरण से स्पष्ट होंगे।

उदाहरण—लंका में वृष राशि के उदयासु क्या हैं ?

पहले मेष राशि के उदयासु जानना चाहिए। इसके लिए समीकरण (१) में 'क' का भोगांश ३० रखना होगा। इस समय 'का' सायन मेष का अन्तिम विन्दु और सायन वृष का आदि विन्दु है जिसकी क्रान्ति स्पष्टाधिकार के २८वें श्लोक से जानी जा सकती है।

$$\text{'का' की क्रान्तिज्या} = \frac{\text{ज्या } ३०° \times १३९७}{३४३८}$$

$$= \frac{१७१९ \times १३९७}{३४३८}$$

$$= ६९८ \text{ कला}$$

$\therefore$ का की क्रान्ति = ७०३ कला = ११°४३′

७०३ कला की उत्क्रमज्या = ७२ कला

$\therefore$ का की क्रान्ति कोटिज्या = ३४३८ − ७२ [देखो पृष्ठ २०८]

= ३३६६ कला

परम क्रान्ति कोटिज्या का मान जानने के लिए पहले परम क्रान्ति अर्थात् २४° की उत्क्रमज्या जानना चाहिए जो २९८ कला है।

इसलिए परम क्रान्ति कोटिज्या = ३४३८ − २९८ = ३१४० कला

$\therefore$ समीकरण (१) से

$$\text{ज्या (व पू)} = \frac{\text{ज्या } ३००° \times ३१४०}{३३६६}$$

$$= \frac{१७१९ \times ३१४०}{३३६६}$$

$$= १६०४′$$

$\therefore$ व पू = २७°५०′ = १६७०′

अर्थात् मेष राशि के उदयासु १६७० हैं।

अब सायन मेष और वृष राशियों के सम्मिलित उदयासु जानना चाहिए।

इस समय 'का' का भोगांश ६०° और इसकी क्रान्ति सायन वृष के अंतिम विन्दु की क्रान्ति होगी।

सायन वृष के अन्त की क्रान्तिज्या

$$= \frac{\text{ज्या } ६०° \times १३९७}{३४३८}$$

$$= \frac{२९७८ \times १३९७}{३४३८}$$

$$= १२१० \text{ कला}$$

∴ सायन वृष के अन्त की क्रान्ति $= २०°३८'$

परन्तु $२०°३८'$ की उत्क्रमज्या $= २२२'$

∴ $२०°३८'$ की कोटिज्या $= ३४३८ - २२२ = ३२१६'$

∴ समीकरण (१) से,

$$\text{ज्या (व पू)} = \frac{\text{ज्या } ६०° \times ३१४०}{३२१६}$$

$$= \frac{२९७८ \times ३१४०}{३२१६}$$

$$= २९०८ \text{ कला}$$

∴ $\text{व पू} = ५७°४८' = ३४६८'$

∴ मेष और वृष राशियों के सम्मिलित उदयासु $= ३४६८$

परन्तु मेष राषि के उदयासु $= १६७०$

∴ वृष राशि के उदयासु $= १७९८$

श्लोक में इसकी जगह १७९५ असु लिखे हैं।

यह ऊपर बतलाया ही जा चुका है कि सायन मेष, वृष और मिथुन के सम्मिलित उदयासु ५४०० हैं और यह सिद्ध हुआ है कि सायन मेष और वृष के सम्मिलित उदयासु ३४६८ हैं, इसलिए मिथुन के उदयासु इन दोनों के अंतर अर्थात् १९३२ के समान हैं। श्लोक में १९३५ दिया है। यह अंतर गणना की स्थूलता के कारण है।

अब यह सिद्ध हो गया है कि सूर्य की परम क्रान्ति २४° नहीं है वरन् सं० १९८० वि० में २३°२६'५७''.३५ है और प्रतिवर्ष ०''.४६८ के लगभग घटती जाती है [देखो पृष्ठ २९८]। इस प्रकार परम क्रान्ति में १ कला की कमी प्रायः सवा सौ वर्षों में होती है। इसलिए विक्रम की २१वीं शताब्दी के पहले ५० वर्षों

तक परम क्रान्ति को २३°२७′ मान कर सायन मेष इत्यादि के उदयासु जानने में पर्याप्त सूक्ष्मता होगी ।

नवीन रीति से २३°२७′ की ज्या = ०.३९७९ जिसे नवीन रीति से सूर्य की परम क्रान्तिज्या समझना चाहिए ।

स्पष्टाधिकार के २८वें श्लोक के अनुसार सायन मेष के अन्तिम विन्दु की क्रान्तिज्या

$$= \frac{\text{ज्या } ३०° \times .३९७९}{१}$$ [नवीन रीति से त्रिज्या = १]

= .५ × .३९७९ = .१९९०

∴ सायन मेष के अन्तिम विन्दु की क्रान्ति = ११°२९′

इसी प्रकार सायन वृष के अन्तिम विन्दु की क्रान्तिज्या

$$= \frac{\text{ज्या } ६०° \times .३९७९}{१}$$

= .८६६ × .३९७९ = .३४४६

∴ सायन वृष के अन्तिम विन्दु की क्रान्ति = २०°९′.७

क्रान्तियों के इन मानों से उदयासु जानने के लिए समीकरण (१) में उचित संशोधन करने पर, सायन मेष के लिए

$$\text{ज्या (व पू)} = \frac{\text{ज्या } ३०° \times \text{कोज्या } २३°२७′}{\text{कोज्या } ११°२९′}$$

$$= \frac{.५ \times .९१७५}{.९७९८}$$

= .४६८२

∴ व पू = २७°५५′

∴ सायनमेष के उदयासु = १६७५

सायन मेष और वृष के सम्मिलित उदयासु के लिए

$$\text{ज्या (व पू)} = \frac{\text{ज्या } ६०° \times \text{कोज्या } २३°२७′}{\text{कोज्या } २०°९.७}$$

$$= \frac{.८६६ \times .९१७५}{.९३८७}$$

= .८४६४

∴ व पू = ५७°४९′

∴ सायन मेष और वृष के उदयासु = ३४६६

∴ सायन वृष के उदयासु = ३४६९ — १६७५
= १७९४

और मिथुन के उदयासु = ५४०० — ३४६९
= १९३१

नेपियर के पहले नियम के आधार पर सायन मेष के उदयासु इस समीकरण से भी ज्ञात हो सकते हैं।

$$\text{विषुवांश की स्पर्शरेखा} = \frac{\text{कोज्या } २३°२७'}{\text{कोस्परे } ३०°}$$

$$= \frac{.९१७५}{१.७३२१}$$

$$= .५२९७$$

∴ विषुवांश = २७°५४′.५ = १६७४.५

∴ सायन मेष के उदयासु = १६७४.५

सायनमेष और वृष के विषुवांश की स्पर्शरेखा

$$= \frac{\text{कोज्या } २३°२७'}{\text{कोस्परे } ६०°}$$

$$= \frac{.९१७५}{.५७७४} = १.५८९०$$

∴ विषुवांश = ५७°४९′

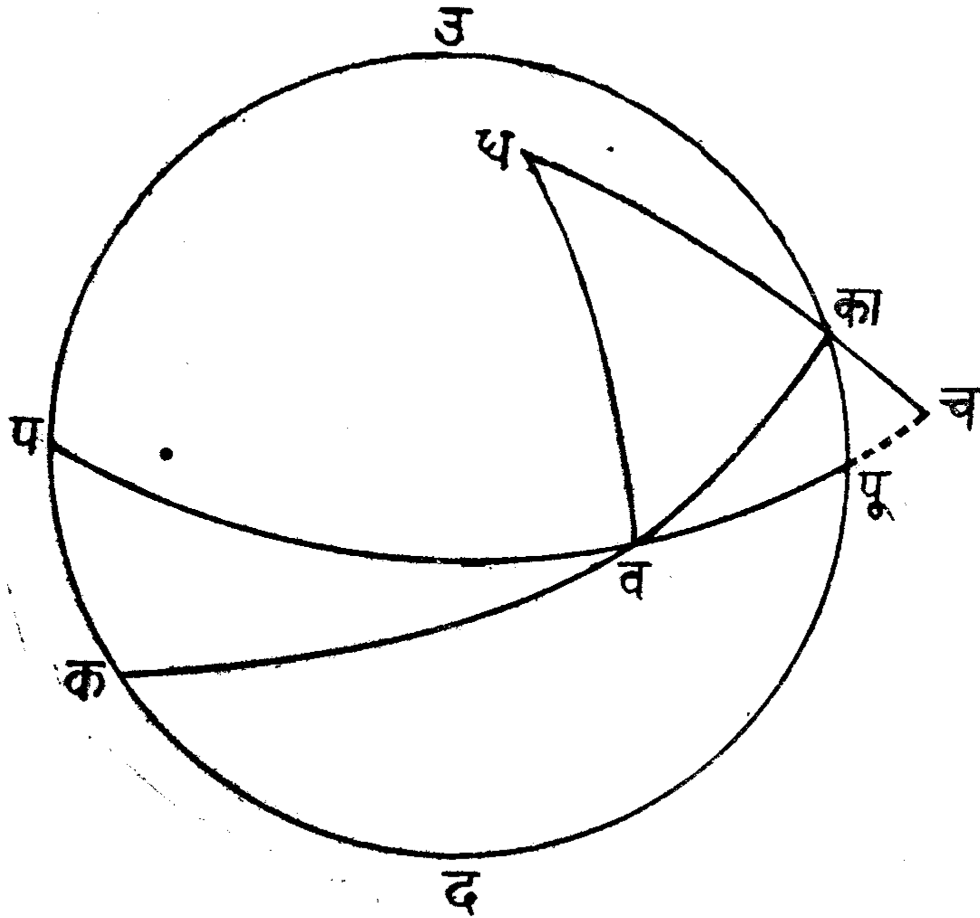
∴ सायनवृष के उदयासु = ३४६९ — १६७४.५
= १७९४.५

परन्तु उन कोणों या धनुओं की स्पर्शरेखाओं के मान सूक्ष्मतापूर्वक नहीं निकल सकते जो ६०° से अधिक हैं इसलिए यह रीति व्यापक नहीं है।

इस प्रकार लंका में मेषादि तीन सायन राशियों के उदयकाल यह हुए :—

सायन राशियाँ	प्राचीन रीति से			नवीन वेधों के अनुसार		
	असुओं में	पलों में	मिनटों में	असुओं में	पलों में	मिनटों में
मेष	१६७०	२७८	१११	१६७५	२७९	१११.७
वृष	१७९५	२९९	१२०	१७९४	२९९	११९.६
मिथुन	१९३५	३२३	१२९	१९३१	३२२	१२८.७

अब वह देखना है कि विषुवत् रेखा के सिवा किसी अन्य स्थान में जिसका उत्तरी अक्षांश अ है सायन मेषादि तीन राशियों के उदयासु क्या हैं।



चित्र ६०

उ पू द प—उस स्थान का क्षितिज वृत्त जिसका उत्तरी अक्षांश अ है

ध—उत्तरी आकाशीय ध्रुव

व—वसन्त सम्पात

प व पू—विषुवद्वृत्त

क व का—क्रान्तिवृत्त

पू च—का विन्दु का चर जो क्षितिज के नीचे है।

जिस समय वसन्त सम्पात विन्दु उदय होता रहता है उस समय वह ठीक पूर्व विन्दु पर होता है। इसलिए इस समय क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्त दोनों पूर्व विन्दु पर रहते हैं। जितने समय में क्रान्तिवृत्त का व का भाग क्षितिज के ऊपर आता है उतने ही समय में विषुवद्वृत्त का व पू भाग क्षितिज के ऊपर आता है इसलिए व का में उदयासु व पू के उदयासु के समान है। क्रान्तिवृत्त के का विन्दु से जो ठीक क्षितिज पर है ध का च ध्रुवप्रोतवृत्त खींचा गया है जो विषुवद्वृत्त से क्षितिज के नीचे च

विन्दु पर मिलता है। इसलिए विषुवद्वृत्त का व पू च भाग का विन्दु का विषुवांश है। लंका में क्रान्तिवृत्त का का विन्दु और विषुवद्वृत्त का च विन्दु एक साथ क्षितिज पर आते हैं जैसा कि अभी बतलाया गया है। परन्तु अ अक्षांश पर पू च भाग क्षितिज के नीचे ही रहता है जब का विन्दु अ अक्षांश में क्षितिज पर आ जाता है। इसलिए अ अक्षांश के स्थान में व का के उदयासु व पू के उदयासुओं के समान हैं जो व पू च से पू च घटाने पर आता है। पृष्ठ २०६—२१० में बतलाया गया है कि यही पू च का विन्दु का चर-काल है। इसलिए यह सिद्ध हुआ कि लंका के उदयासुओं में से चर-काल घटाने पर इष्ट स्थान के उदयासु निकलेंगे। पृष्ठ २१० में बतलाया गया है कि चर ज्या=क्रान्ति स्पर्शरेखा × अक्षांश स्पर्शरेखा।

(१) जब व का=३०°

तब का की क्रान्ति=११°२९′

इसलिए प्रयाग में जिसका अक्षांश २५°२५′ है, का विन्दु की चर ज्या

=स्परे ११°२९′ × स्परे २५°२५′

=·२०३२ × ·४७५२

=·०९६६

∴ चरांश=५°३३′

∴ का विन्दु के चरासु=३३३

∴ प्रयाग में व का के उदयासु=१६७५ – ३३३=१३४२

अर्थात् प्रयाग में सायन मेष के उदयासु=१३४२

(२) जब व का=६०°

तब का की क्रान्ति=२०°९′·७=२०°१०′

इसलिए तब प्रयाग में का की चरज्या

=स्परे २०°१०′ × स्परे २५°२५′

=·३६७१ × ·४७५२

=·१७४५

∴ का का चरांश=१०°३′

∴ का के चरासु =६०३

∴ प्रयाग में व का के उदयासु=३४६९ – ६०३

=२८६६

अर्थात् प्रयाग में सायन मेष और वृष राशियाँ २८६६ असुओं में उदय होंगी। परन्तु सायन मेष राशि १३४२ असुओं में उदय होती है। इसलिए सायन वृष राशि २८६६ – १३४२=१५२४ असुओं में उदय होगी।

(३) जब व का $=$ ९०°

तब का की क्रान्ति $=$ २३°२७′

∴ प्रयाग में का की चरज्या

$=$ स्परे २३°२७′ × स्परे २५°२५′

$=$ ४३३७ × ·४७५२ $=$ ·२०६१

∴ का का चरांश $=$ ११°५४′

∴ का के चरासु $=$ ७१४

∴ प्रयाग में व का के उदयासु $=$ ५४०० − ७१४

$=$ ४६८६

अर्थात् प्रयाग में सायन मेष, वृष और मिथुन राशियाँ ४६८६ असुओं में उदय होंगी। परन्तु सायन मेष और वृष राशियाँ २८६६ असुओं में उदय होती हैं, इसलिए सायन मिथुन राशि ४६८६ − २८६६ $=$ १८२० असुओं में उदय होंगी।

इस तरह यह प्रकट है कि सायन मेष के अन्तिम विन्दु के चरासु ३३३, सायन वृष के अन्तिम विन्दु के चरासु ६०३ और सायन मिथुन के अन्तिम विन्दु के चरासु ७१४ हैं। पहले और दूसरे का अन्तर २७०, तथा दूसरे और तीसरे का अन्तर १११ है। इन्हीं को वृष और मिथुन के चरखंड ४३वें श्लोक के उत्तरार्ध में कहा गया है जिसका तात्पर्य नीचे के कोष्ठक से स्पष्ट हो जायगा :—

सायन राशियाँ	लंका में उदयासु	चरखंड असुओं में	प्रयाग में उदयासु
मेष	१६७५	− ३३३	१३४२
वृष	१७९४	− २७०	१५२४
मिथुन	१९३१	− १११	१८२०

४४वें श्लोक के पूर्वार्ध में यह बतलाया गया है कि सायन कर्क, सिंह और कन्या राशियों के उदयासु किस प्रकार ज्ञात होंगे। लंका में कर्क के उदयासु वही होंगे जो मिथुन के हैं, सिंह के वह होंगे जो वृष के हैं और कन्या के वह होंगे जो मेष के हैं। इनमें अपने-अपने चरखंड जोड़ने पर इष्ट स्थान के उदयासु निकल आवेंगे जो आगे के कोष्ठक से स्पष्ट होगा :—

सायन राशियाँ	लंका में उदयासु	चरखंड असुओं में	प्रयाग में उदयासु
कर्क	१९३१	+१११	२०४२
सिंह	१७९४	+२७०	२०६४
कन्या	१६७५	+३३३	२००८

इसकी उपपत्ति यों है :—

क्रान्तिवृत्त के किसी विन्दु का का विषुवांश जानने के लिए समीकरण (१) का प्रयोग किया जाता है जो यह है

$$\text{ज्या (व पू)} = \frac{\text{का के भोगांश की ज्या} \times \text{परमक्रान्ति कोटिज्या}}{\text{का की क्रान्ति कोटिज्या}}$$

प्राचीन तथा अर्वाचीन दोनों रीतियों से यह सिद्ध है कि किसी कोण की ज्या उसके परिपूरक (Supplementary) कोण की ज्या के समान होती है [देखो पृष्ठ १२६—१२८] अर्थात् ज्या (क)=ज्या (१८०° – क) जहाँ क किसी कोण का मान है। इसलिए यह सिद्ध है कि

ज्या (व पू)=ज्या (१८०° – व पू)

और ज्या (काका भोगांश)=ज्या (१८०° – का का भोगांश)

इसलिए ज्या (१८०° – व पू)

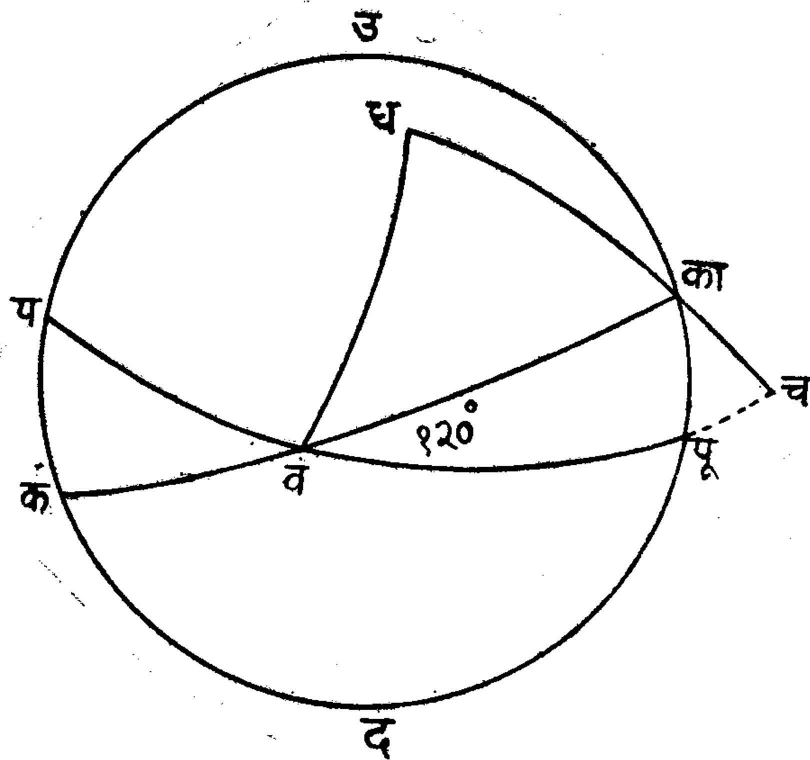
$$= \frac{\text{ज्या (१८०° – का का भोगांश) परम क्रान्ति कोटिज्या}}{\text{का की क्रान्ति कोटिज्या}} \quad (२)$$

ऊपर बतलाया गया है कि जब का का भोगांश अर्थात् व का ६०° होता है तब का का विषुवांश अर्थात् व पू ५७°४८′ होता है, इसलिए समीकरण (२) के अनुसार जब का का भोगांश १८०° – ६०° = १२०° होगा तब इसका विषुवांश १८०° – ५७°४९′=१२२°११′ होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि जितने समय में वसंत संपात से क्रान्तिवृत्त का १२० अंश लंका में उदय होता है उतने समय में विषुवद्वृत्त का १२२°११′ उदय होता है। परन्तु क्रान्तिवृत्त की पहिली तीन राशियाँ जितनी देर में उदय होती हैं उतनी देर में विषुवद्वृत्त का भी ९०° उदय होता है। इसलिए चौथी राशि जितने समय में उदय होती है उतने समय में विषुवद्वृत्त का १२२°११′ – ९०° = ३२°११′ उदय होता है। परन्तु विषुवद्वृत्त का

३२°११′ = १६३१′, इसलिए इसके ३२°११′ के उदय होने का समय = १६३१ असु। इसलिए सायन कर्क राशि के उदयासु १६३१ हैं जो सायन मिथुन के भी उदयासु हैं।

इसी प्रकार यह सिद्ध हो सकता है कि सायन सिंह राशि के उदयासु सायन वृष राशि के उदयासुओं के और सायन कन्या राशि के उदयासु सायन मेष राशि के उदयासुओं के समान हैं।

अब यह जानना है कि सायन कर्क राशि के उदयासु किसी अन्य स्थान में, मान लो प्रयाग में, क्या होंगे।



चित्र ६१

यह चित्र ६०वें चित्र के ही समान है अन्तर केवल यह है कि उसमें व का ९०° से कम है और यहाँ व का १२०° के समान है।

चित्र से यह प्रकट है कि व का जो १२०° के समान है प्रयाग में उतने ही समय में उदय होगा जितने समय में व पू उदय होता है। परन्तु व का का विषुवांश व पू च के समान है जिसमें पू च चरांश क्षितिज के नीचे है। इसलिए

व पू = व पू च — पू च

परन्तु का विन्दु की क्रान्ति सायन वृष के अन्तिम विन्दु की क्रान्ति के समान अर्थात् २०°१०′ है क्योंकि वसंत संपात विन्दु से ६०° के भोगांश तक क्रान्ति जिस क्रम से बढ़ती है उसी क्रम से ६०° से १८०° तक के भोगांश तक वह घटती भी है अर्थात् सायन वृष के अन्तिम विन्दु की क्रान्ति सायन कर्क के अन्तिम विन्दु की क्रान्ति के समान होती है और सायन मेष के अन्तिम विन्दु की क्रान्ति सायन सिंह के अन्तिम विन्दु की क्रान्ति के समान होती है, इत्यादि।

इसलिए पू च = १०°३′

परन्तु व पू च = १२२°११′

क्योंकि यह १२०°के भोगांश का विषुवांश है।

इसलिए व पू = १२२°११′ — १०°३′
= ११२°८′
= ६७२८′

∴ १२० भोगांश के उदयासु = ६७२८

परन्तु प्रथम तीन राशियों के उदयासु = ४६८६

∴ कर्क राशि के उदयासु = ६७२८ — ४६८६
= २०४२

जो लंका में कर्क के उदयासुओं में १११ जोड़ने से आता है।

इसी प्रकार यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि १५० भोगांश अर्थात् मेष से सिंह ५ राशियों तक के उदयासु प्रयाग मे क्या होंगे। फिर प्रथम चार राशियों के उदयासु घटाने पर सिंह राशि के उदयासु निकल आवेंगे जो लंका में सिंह के उदयासुओं में २७० जोड़ने से भी प्राप्त सो सकते हैं।

सायन कन्या राशि का अन्तिम विन्दु जिसका भोगांश १८० है विषुवद्वृत्त से फिर मिल जाता है अर्थात् यही शरद संपात का स्थान है इसलिए यह वसंत संपात की तरह ठीक पूर्व में उदय होता है और इसका विषुवांश भी १८०° होता है।

इसी प्रकार सायन मेष से सायन कन्या तक की प्रत्येक राशि के उदयासु लंका में तथा उत्तरी गोलार्द्ध के अन्य स्थानों में क्या होते हैं जाना जा सकता है। अब वह दिखलाना है कि सायन तुला से लेकर सायन मीन तक की प्रत्येक राशि के उदयासु क्या हैं। ४४वें श्लोक के उत्तरार्द्ध में इसके लिए बहुत ही सरल नियम यह दिया हुआ है कि मेष से कन्या तक के जो उदयासु हैं वही उलटे क्रम से तुला से मीन तक के उदयासु हैं अर्थात् कन्या के उदयासु तुला के उदयासु के समान हैं, सिंह के उदयासु वृश्चिक के समान हैं, इत्यादि।

नीचे के कोष्ठक से यह और भी स्पष्ट होगा —

सायन राशियाँ	लंका में उदयासु	चरखंड असुओं में	प्रयाग में उदयासु	सायन राशियां
१ मेष	१६७५	−३३३	१३४२	१२ मीन
२ वृष	१७९४	−२७०	१५२४	११ कुंभ
३ मिथुन	१९३१	−१११	१८२०	१० मकर
४ कर्क	१९३१	+१११	२०४२	९ धनु
५ सिंह	१७९४	+२७०	२०६४	८ वृश्चिक
६ कन्या	१६७५	+३३३	२००८	७ तुला

इसकी उपपत्ति बतलाने के लिये केवल यह बतलाना पर्याप्त होगा कि तुला के उदयासु क्या हैं।

चित्र ६२ से प्रकट है कि जितनी देर में शरद-संपात से क्रान्तिवृत्त का श का भाग प्रयाग के क्षितिज पर आवेगा उतनी ही देर में विषुवद्वृत्त का श पू भाग भी क्षितिज पर आवेगा।

परन्तु श पू = श च + च पू

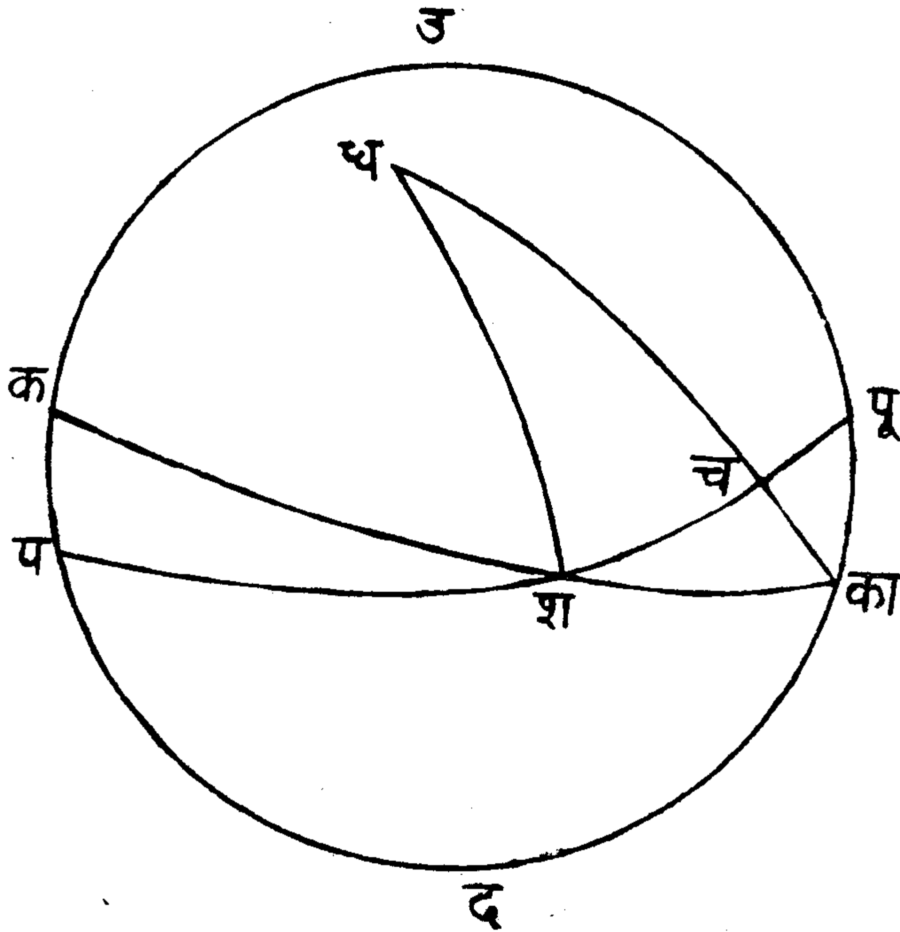
यदि का विन्दु सायन तुला का अन्तिम विन्दु माना जाय तो श का ३० अंश के समान होगा। श च का समकोण गोलीय त्रिभुज है क्योंकि का च ध, का विन्दु का ध्रुवप्रोत वृत्त है जो विषुवद्वृत्त से समकोण पर होता है। इसलिए इस समकोण गोलीय त्रिभुज में नेपियर के नियमों के अनुसार

$$\text{कोज्या (च श का)} = \text{स्पर्रे (च श)} \times \text{कोस्परे (श का)}$$

$$\text{अर्थात् स्परे (च श)} = \frac{\text{कोज्या } २३^\circ २७'}{\text{कोस्परे } ३०^\circ}$$

$$= \cdot ५२९७ \text{ [देखो पृष्ठ ३०७]}$$

$$\therefore \text{च श} = २७^\circ ५४'.५ = १६७४.५ \text{ जो लंका में कन्या के उदयासु हैं।}$$



चित्र ६२

यह चित्र ५९, ६० चित्रों के समान है अन्तर केवल इतना है कि यहाँ श शरद का सम्पात का स्थान है जहाँ से क्रान्तिवृत्त विषुवद्वृत्त के दक्खिन हो जाता है। का च ध्र क्रान्तिवृत्त के का विन्दु का ध्रुवप्रोतवृत्त।

चरांश च पू का मान जानने के लिए समकोण गोलीय त्रिभुज पू च का से काम लेना चाहिए जिसमें च का का विन्दु की दक्षिण क्रान्ति है। यह ११°२९′ के समान होती है जब शका ३०° के समान होता है। च पू का कोण विषुवद्वृत्त और क्षितिजवृत्त के बीच का कोण है जो प्रयाग के लम्बांश के समान होता है (देखो पृ० २५७)

इसलिये नेपियर के नियम के अनुसार

ज्या (च पू)=स्परे (च का)×कोस्परे (च पू का)

=स्परे ११°२९′×कोस्परे (९०°−२५°२५′)

=स्परे ११°२९×स्परे २५°२५′

=.०९६६

∴ च पू=५°३३′=३३३′ [देखो पृष्ठ ३०९]

इसलिए श पू=१६७४.५+३३३

=२००८ कला

इसलिए श का अर्थात् सायन तुला के उदयासु (प्रयाग मे) वही हैं जो सायन कन्या के उदयासु हैं।

इसी प्रकार यह भी सिद्ध हो सकता है कि सायन वृश्चिक, धनु इत्यादि के उदयासु भी क्रमानुसार सायन सिंह, कर्क इत्यादि के उदयासु हैं।

भोगांश		विषुवांश		क्रान्ति उत्तर	
अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला
०	०	०	०	०	०
३०	०	२७	५५	११	२९
६०	०	५७	४९	२०	१०
९०	०	९०	०	२३	२७
१२०	०	१२२	११	२०	१०
१५०	०	१५२	५	११	२९
१८०	०	१८०	०	०	०
				क्रान्ति दक्षिण	
२१०	०	२०७	५५	११	२९
२४०	०	२३७	४९	२०	१०
२७०	०	२७०	०	२३	२७
३००	०	३०२	११	२०	१०
३३०	०	३३२	५	११	२९
३६०	०	३६०	०	०	०

ऊपर की सारिणी से यह प्रकट होगा कि क्रान्तिवृत्त के १२ प्रधान विन्दुओं के भोगांश, विषुवांश, क्रान्ति क्या हैं ।

इससे प्रकट है कि लंका में सायन मेष, वृष इत्यादि राशियों के जो उदयासु हैं उन्हीं को कला समझ कर जोड़ लेने से विषुवांश आते हैं। परन्तु यह ध्यान रहे कि यदि क्रान्तिवृत्त के किसी ऐसे विन्दु का विषुवांश जानना है जो उपर्युक्त १२ प्रधान विन्दुओं के सिवा अन्य विन्दु हैं तो अनुपात की रीति से काम नहीं चलेगा, क्योंकि कुछ स्थूलता हो जाती है । इसके लिए सबसे अच्छी रीति यही है कि चित्र ५६ और समीकरण (१) की रीति से काम लिया जाय ।

अब तक जो कुछ लिखा गया है उससे सायन राशियों के उदयासु जाने जा सकते हैं परन्तु आजकल निरयन राशियों का भी प्रचार है जिनका आरम्भ मेष तथा अश्विनी के आदिविन्दु से होता है । यह विन्दु विक्रम की ६ठीं शताब्दी में वसंत संपात का स्थान था (देखो ६-१ श्लोकों का विज्ञान भाष्य) । इसलिये आवश्यक है कि निरयन राशियों के उदयासु भी संक्षेप में बतला दिये जायँ ।

यह बतलाया गया है कि सायन भोगांश से अयनांश घटा दिया जाय तो निरयन भोगांश आता है, परन्तु अयनांश प्रतिवर्ष ५८″.६६ के लगभग बढ़ता है (देखो पृष्ठ ५०) और १६८२ वि० की मेष संक्रान्ति के समय यह २२°४१′ के लगभग था (देखो पृष्ठ २५२) । सुविधा के लिये विकलाओं की गणना छोड़ दी गई है जिससे व्यवहार में बहुत कम अन्तर पड़ता है । अयनांश २२°४१′ मानने का अर्थ यह है कि जब सायन भोगांश २२°४१′ होता है तब निरयन भोगांश शून्य होता है अर्थात् तब निरयन मेष राशि का आरम्भ होता है, और जब सायन भोगांश ५२°४१′ होता है तब निरयन मेष राशि का अंत तथा निरयन वृष का आरम्भ होता है । इसी तरह मिथुन, कर्क इत्यादि निरयन राशियों का निश्चय कर लेना चाहिए ।

निरयन मेष राशि के उदयासु जानने के लिए यह देखना पड़ता है कि क्रान्तिवृत्त का वह भाग जो २२°४१′ और ५२°४१′ सायन भोगांशों के बीच में है कितने समय में उदय होता है । इसलिए पहले यह जानना आवश्यक है कि वसंत सम्पात और निरयन मेष के आदि विन्दु के बीच का भाग कितने समय में उदय होता है । फिर यह जानना पड़ता है कि वसंत सम्पात और निरयन मेष के अन्तिम विन्दु के बीच का भाग कितने समय में उदय होता है । दोनों का जो अंतर आता है वही निरयन मेष के उदयासु हैं । इसके लिए निरयन मेष के आदि और अन्तिम विन्दु की क्रान्तियां जो जाननी पड़ती हैं ।

निरयन मेष के आदि विन्दु की क्रान्तिज्या

$=$ज्या २२′४१° $\times$ ज्या २३° २७′ [पृष्ठ ३०५]

$=$.३८५६ $\times$.३९७९

$=$.१५३४

∴ निरयन मेष के आदि विन्दु की क्रान्ति $=$ ८° ४६′

निरयन वृष के आदि विन्दु की क्रान्ति ज्या

$=$ज्या ५२° ४१′ $\times$ ज्या २३° २७′

$=$.३१६५

∴ निरयन वृष के आदि विन्दु की क्रान्ति $=$ १८° २७′

यही निरयन मेष के अन्तिम विन्दु की क्रान्ति भी है।

निरयन मेष के आदि विन्दु के विषुवांश की ज्या

$$=\frac{\text{ज्या २२°४१′} \times \text{कोज्या २३°२७′}}{\text{कोज्या ८°४६′}}$$

$$=\frac{\text{·३८५६} \times \text{·९१७५}}{\text{·९८८२}}$$

$=$·३५८०

∴ विषुवांश $=$ २०°५९′ $=$ १२५९′

∴ लंका में अयन भाग के उदयासु $=$ १२५९

प्रयाग में निरयन मेष के आदि विन्दु की चरज्या

$=$स्परे ८°४६′ $\times$ स्परे २५°२५′

$=$·१५५१ $\times$ ·४७५२

$=$·०७३७

∴ चरांश $=$ ४°१४

∴ निरयन मेष के आदि विन्दु के चरासु $=$ २५४

∴ प्रयाग में अयन भाग के उदयासु $=$ १२५९ $-$ २५४
$=$ १००५

इसी प्रकार निरयन मेष के अन्तिम विन्दु अथवा निरयन वृष के आदि विन्दु के विषुवांश की ज्या

$$=\frac{\text{ज्या ५२°४१′} \times \text{कोज्या २३°२७′}}{\text{कोज्या १८°२७′}}$$

$$=\frac{\text{·७९५३} \times \text{·९१७५}}{\text{·९४८६}}$$

$=$·७६९२

∴ विषुवांश = ५०°१७′ = ३०१७′

इसलिए लंका में अयन भाग और निरयन मेष के उदयासु = ३०१७

परन्तु प्रयाग में निरयन मेष के अन्तिम विन्दु की चरज्या

= स्परे १८°२७′ × स्परे २५°२५′

= ·३३३७ × ·४७५२

= ·१५८६

चरांश = ९°७′ = ५४°७′

∴ प्रयाग में अयन भाग और निरयन मेष के उदयासु

= ३०१७ − ५४७ = २४७०

परन्तु प्रयाग में अयन भाग के उदयासु = १००५

∴ ,, निरयन मेष के ,, = १४६५

∴ ,, ,, ,, का उदयकाल = २४४ पल

= ४ घड़ी ४ पल

यदि प्रत्येक निरयन राशि के उदयासु जानने की रीति उपर्युक्त विवरण के साथ लिखी जायगी तो पुस्तक का आकार बढ़ने के सिवा कोई विशेष लाभ नहीं होगा। इसी रीति से आगे की सारिणी बनायी गयी है जिससे यह पता चल जायगा कि निरयन राशि के उदयासु या उदय काल किसी स्थान में कैसे निकाले जा सकते हैं :—

दूसरे स्तम्भ में क्रान्ति के पहले धन का चिह्न यह प्रकट करता है कि क्रान्ति उत्तर दिशा में है और ऋण का चिह्न यह प्रकट करता है कि क्रान्ति दक्षिण दिशा में है। सातवीं राशि तुला से क्रान्तियों का क्रम पहली ६ राशियों के क्रम की तरह है केवल दिशा में भिन्नता है।

तीसरे स्तम्भ में प्रत्येक राशि के आदि विन्दु का चरांश दिया हुआ है जिसको कलाओं में लिखने से जो संख्या मिलती है वही उस विन्दु के चरासु अथवा चर प्राण है। जब क्रान्ति उत्तर होती है तब उत्तरी गोलार्ध में चरासु घटाने पड़ते हैं और जब क्रान्ति दक्षिण होती है तब उत्तरी गोलार्ध में चरासु जोड़ने पड़ते हैं (देखो पृष्ठ २०६-२१०)। इसीलिए चरांश पहली ६ राशियों में ऋणात्मक और पिछली ६ राशियों में धनात्मक लिखा गया है। यह प्रयाग के चरांश है। अन्य स्थान के चरांश जानने के लिए चरज्या = क्रान्ति स्पर्शरेखा × अक्षांश स्पर्शरेखा वाले सूत्र में इष्ट स्थान का जो अक्षांश हो वह लिखकर गणना करना चाहिए।

निरयन राशियां	आदि विंदु की कान्ति अंश	कला	प्रयाग में आदि विंदु का चरांश अंश	कला	प्रयाग में चर खंड अंश	कला	आदि विंदु का विषुवांश अंश	कला	लंका में उदयांश अंश	कला	प्रयाग में उदयांश अंश	कला	प्रयाग में उदयकाल (नाक्षत्र) घड़ी	पल	प्रयाग में मेष के आदि से राशि के उदय का समय घड़ी	पल
मेष	+ ८	४६	— ४	१४	— ४	५३	२०	५६	२६	१८	२४	२५	४	४	४	४
वृष	+१८	२७	— ६	९	— २	४०	५०	१७	३१	४३	२६	३	४	५१	८	५५
मिथुन	+२३	१५.३	—११	४७	+ ०	५८	८९	०	३२	३०	३३	२८	५	३५	१४	३०
कर्क	+२१	३२·७	—१०	४६	+ ४	२	११४	३०	३०	३३	३४	३५	५	४६	२०	१६
सिंह	+१३	५८	— ६	४७	+ ५	२४	१४५	३	२८	१४	३३	३८	५	३६	२५	५२
कन्या	+ २	५४	— १	२३	+ ५	३७	१७३	१७	२७	४२	३१	१६	५	३३	३१	२५
तुला	— ८	४६	+ ४	१४	+ ४	५३	२००	५६	२६	१८	३४	११	५	४२	३७	७
वृश्चिक	—१८	२७	+ ६	७	+ २	४०	२३०	१७	३१	४३	३४	२३	५	४०	४२	५१
धनु	—२३	१५·३	+११	४७	— ०	५८	२६९	०	३२	३०	३१	२८	५	१५	४८	६
मकर	—२१	३२·७	+१०	४६	— ४	२	२६४	३०	३०	३३	२६	३१	४	३५	५२	३१
कुम्भ	—१३	५८	+ ६	४७	— ५	२४	३२५	३	२८	१४	२२	५०	३	४८	५६	१६
मीन	— २	५४	+ १	२३	— ५	३७	३५३	१७	२७	४२	२९	५	३	४१	६०	००
मेष	+ ८	४६	— ४	१४			३८०	५६								

४थे स्तम्भ में जो चरखंड दिया हुआ है वह पासवाली दो राशियों के आदि बिंदुओं के चरांशों का अन्तर है जिससे जाना जाता है कि पहली राशि के आदि विन्दु से अन्तिम विन्दु तक चरांश में क्या अन्तर पड़ता है। जैसे—

मेष राशि का चर खंड

=वृषराशि के आदि विंदु का चरांश

=मेषराशि के आदि विंदु का चरांश

$= -९°७' - (४°१४')$

$= -९°७' + ४°१४'$

$= -४°५३'$

सिंह राशि का चरखंड

=कन्या राशि के आदि विंदु का चरांश – सिंह राशि के आदि विंदु का चरांश

$= -१°२३' - (-६°४७')$

$= -१°२३' + ६°४७'$

$= +५°२४'$

ध्यान देने से प्रकट होता है कि पहली ६ राशियों के चरखंड दूसरी ६ राशियों के चरखंडों के परिमाण में क्रमानुसार समान हैं। केवल + या – चिह्नों में अन्तर है।

५वें स्तम्भ में प्रत्येक राशि के आदि विन्दु का विषुवांश दिया हुआ है। यदि इसको कलाओं में लिखा जाय तो इतने ही असुओं में वसन्त सम्पात से उस राशि का आदि विन्दु लंका में उदय होगा। यदि पास वाली दो राशियों के विषुवांशों का अन्तर निकाला जाय तो यही ऊपरवाली राशि के उदयांश लंका में होंगे जो ६ठें स्तम्भ में दिया हुआ है। इसको कला में लिखा जाय तो यही संख्या लंका में उस राशि के उदयासु होंगे। लंका में राशि का जो उदयांश हो उसमें उसी राशि का चरखण्ड यदि धनात्मक हो तो जोड़ने और ऋणात्मक हो तो घटाने से इष्ट स्थान में उस राशि का उदयांश आता है जिसको कला में लिखने से उस राशि के उदयासुओं की संख्या भी प्राप्त हो जायगी। ८वें स्तम्भ में प्रत्येक राशि का उदयकाल उदयासुओं में न लिखकर घड़ी, पलों में लिखा गया है जो अधिक व्यवहारात्मक है परन्तु कुछ स्थूल है क्योंकि ६ असुओं का १ पल होता है और ६ से भाग देने पर पूरे पल जब नहीं आये हैं तब आधे से अधिक को १ मान लिया गया है और आधे से जो कम आये हैं उनको छोड़ दिया गया है।

९वें स्तम्भ में यह दिखलाया गया है कि मेष के आदि से पूरी राशि के उदय होने में क्या समय लगता है। जैसे यदि जानना है कि मेष के आदि से पूरे सिंह के उदय होने तक क्या समय लगता है तो सिंह के सामने ९वें स्तम्भ में २५ घड़ी ५२ पल इसका उत्तर है अर्थात् मेष, वृष, मिथुन, कर्क और सिंह राशियाँ प्रयाग में २५ घड़ी ५२ पल में उदय होती हैं। इस स्तम्भ से लग्न जानने में बड़ी सहायता मिलेगी। इसलिए यह भी यहाँ दे दिया गया है।

यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि यह समय नाक्षत्र मान के अनुसार है जो सावन मान से कुछ भिन्न होता है। (देखो पृष्ठ ७, ८)।

इस सारिणी से यह बात सिद्ध होती है कि किसी स्थान में राशियों के उदयासु जानने के लिये केवल चरांश जान लेने से आवश्यक संशोधन सुगमतापूर्वक हो सकते हैं। परन्तु यह सारिणी सदैव काम नहीं दे सकती क्योंकि अयन चलन के कारण प्रत्येक निरयन राशि के आदि विन्दु के भोगांश और विषुवांश बढ़ते रहते हैं। इससे क्रान्ति, चरांश और चरखंडों में कुछ अन्तर होता जाता है। परन्तु यह अन्तर बहुत सूक्ष्म होता है क्योंकि अयन चलन के कारण भोगांश में प्रतिवर्ष केवल १ कला के लगभग वृद्धि होती रहती है इसलिए कम से कम २५ वर्ष से बाद सारणी में एक बार संशोधन कर देना आवश्यक है।

यह जानना कि किस समय क्रान्तिवृत्त का कौन विन्दु पूर्व क्षितिज में लग्न है

गतगम्यासवः कार्या भास्करादिष्टकालिकात्।
स्वोदयासुहता भुक्तभोग्या भक्ता खवह्निभिः ॥४५॥
अभीष्टघटिकासुभ्यो भोग्यासून् प्रविशोधयेत्।
तद्वदेष्यमलग्नासून् एवं यातांस्तथोत्क्रमात् ॥४६॥
शेषं त्रिशत्क्रमाभ्यस्तमभुक्तोदयभाजितम्।
भागादिहीनं युक्तं च तल्लग्नं क्षितिजे तथा। ४७॥

अनुवाद—(४५) जिस समय का लग्न जानना हो उस समय के स्पष्ट सूर्य से गतासु और भोग्यासु जानना चाहिये। सूर्य राशि के जितने अंश पर होता है उसको गतांश और राशि का जितना अंश सूर्य के भोगने को शेष रह जाता है उसको भोग्यांश कहते हैं। राशि के उदयासुओं को गतांश से गुणा करके ३० से भाग देने पर गतासु और भोग्यांश से गुणा करके ३० से भाग देने पर भोग्यासु जाने जाते हैं। (४६) सूर्योदय से जितनी घड़ी (समय) इष्ट काल तक बीत चुकी हो उसमें से भोग्यासुओं को घटा देना चाहिये। जो शेष हो उसमें से आगे आनेवाली राशि के उदयासुओं को घटाना

चाहिये। शेष में से इससे आगे की राशि के उदयासुओं को घटाना चाहिये। इसी प्रकार आगे आने वाली राशियों के उदयासुओं को घटाते जाने से जब शेष इतना रह जाय कि फिर आगे की राशि के उदयासु न घटे तो यही अशुद्ध राशि (न घटने वाली राशि) कही जायगी। परन्तु यदि गतासु से लग्न जानना हो तो जो राशियाँ सूर्योदय के पहले उदय हो चुकी रहती हैं उनके उदयासुओं को सूर्योदय होने में जितना समय हो उसमें से उलटे क्रम से घटना चाहिये अर्थात् पहले तो गतासु घटावे, फिर सूर्य की राशि से जो राशि पीछे हो उसके उदयासुओं को घटाना चाहिये फिर उससे पीछे की राशि के उदयासुओं को घटाना चाहिये इत्यादि, (४७) अंत में यदि कुछ शेष रह जाय तो उसको ३० से गुणा करके अशुद्ध राशि के उदयासुओं से भाग देना चाहिये। यदि क्रिया गतासु से की गयी हो तो भागफल को अशुद्ध राशि से घटाने पर और यदि यह क्रिया भोग्यासु से की गयी हो तो भागफल को जोड़ने से यह ज्ञात हो जाता है कि उस समय क्षितिज में क्रान्तिवृत्त का कौन विन्दु लग्न है।

विज्ञान भाष्य—४७वें श्लोक के उत्तरार्द्ध का अर्थ करने में कई टीकाकारों ने अयनांश के जोड़ने-घटाने की भी चर्चा की है जो मेरी समझ में व्यर्थ है क्योंकि जब स्पष्ट सूर्य की राशि से लग्न जाना जाता है और सभी ग्रहों का स्पष्ट निरयन राशियों में किया जाता है तब सायन सूर्य से लग्न जानने की क्या आवश्यकता है। इसके अर्थ में भ्रम इसलिए होता है कि इन तीन श्लोकों में लग्न निकालमे की दो रीतियाँ जो प्राय: एक ही सी हैं दी हुई हैं। यदि सूर्योदय से इष्टकाल तक का समय ३० घड़ी से कम हो तो भोग्यासुओं से काम लेना सुगम होगा और यदि इष्ट काल अगले सूर्योदय के निकट हो तो अगले सूर्योदय के गतासुओं से काम लेने में सुविधा होगी। इसीलिए अन्तिम लब्धि के जोड़ने घटाने की आवश्यकता पड़ती है। यह बात नीचे के २ उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगी।

उदाहरण १.—सूर्योदय से १६ घड़ी १५ पल और ५२ घड़ी १० पल पर कौन-कौन लग्न होंगे जब कि सूर्योदय काल में सूर्य का निरयन भोगांश ३^रा^५°१′६″ और सूर्य की स्पष्ट दैनिक गति ५७′२१″ है।

विकलाओं की गणना करने में गुणा भाग बहुत करना पड़ेगा इसलिए आगे चलकर सूर्य का निरयन भोगांश केवल कलाओं तक लिया जायगा।

१ली रीति—

पहिले यह जानना चाहिए कि सूर्योदय से १६ घड़ी १५ पल पर सूर्य का निरयन भोगांश क्या होगा।

६० घड़ी में सूर्य ५७′ २१″ आगे बढ़ता है
∴ १५ घड़ी में ,, १४′२०″१५‴ ,, *
और १ घड़ी में ,, ५७″२१‴ ,,
और १५ पल में ,, १४″२०‴ ,,

∴ १६ घड़ी १५ पल में १५′३२″ सूर्य आगे बढ़ता है। इसलिए सूर्योदय से १६ घड़ी १५ पल पर सूर्य का निरयन भोगांश

$$=३^{रा}५°१६′३८″$$
$$=३^{रा}५°१७′$$

∴ इष्ट काल में कर्क राशि में सूर्य का गतांश ५°१७′ और भोग्यांश ३०° − ५°१७′ = २४°४३′ = १४८३′

परन्तु कर्क राशि के उदयासु† (प्रयाग में) २०७५ हैं। इसलिए जब कर्क के ३०° अंश अथवा १८०० कला २०७५ असुओं में उदय होता है तब २४°४३′ या १४८३′ कितने समय में उदय होगा, अर्थात्

$$\text{भोग्यासु} = \frac{१४८३ \times २०७५}{१८००}$$
$$= १७१०$$

∴ भोग्यकाल = २८५ पल
= ४ घड़ी ४५ पल

अर्थात् सूर्योदय से ४ घड़ी ४५ पल तक कर्क राशि उदय होती रहेगी। फिर सिंह राशि का उदय आरम्भ होगा।

इष्टकाल	१६	घड़ी	१५	पल	
कर्क का भोग्यकाल	४	,,	४५	,,	
अंतर	११	,,	३०	,,	
सिंह का उदयकाल	५	,,	३६	,,	
अंतर	५	,,	५४	,,	
कन्या का उदयकाल	५	,,	३३	,,	
अंतर		२१ पल			

यही तुला का गत काल है।

---

* जैसे कला के ६०वें भाग को विकला कहते हैं वैसे ही विकला के ६०वें भाग को प्रतिविकला समझना चाहिए जिसके लिए तीन चिन्हों (‴) का प्रयोग किया गया है।

† यदि उदयासु की जगह उदयकाल पल में लिखा जाय तो गणना में सरलता होगी परन्तु कुछ स्थूलता आ जायगी।

इसलिए इष्टकाल में तुला राशि २१ पल तक उदय हो चुकी है और ५ घड़ी २१ पल तक और उदय होगी क्योंकि तुला का उदय काल प्रयाग में ५ घड़ी ४२ पल है। इसलिए इष्टकाल में तुला राशि पूर्व क्षितिज में लगी हुई है अर्थात् लग्न है। यह जानने के लिए कि तुला का कौन विन्दु लग्न है फिर अनुपात से काम लेना होगा। क्योंकि जब ५ घड़ी ४२ पल अर्थात् ३४२ पल में तुला के ३० अंश उदय होते हैं तब २१ पल में कितने उदय हो चुकेंगे।

३४२ : २१ : : ३० : तुला का गतांश

$$\therefore \text{तुला का गतांश} = \frac{२१ \times ३०}{३४२} = १^\circ ५०' ३१''$$

$$= १^\circ ५१'$$

$\therefore$ सूर्योदय से १६ घड़ी १५ पल पर $६^{रा} १^\circ ५१'$ लग्न है। यहाँ $१^\circ ५१'$ उदित राशियों में जोड़ा गया है।

२री रीति—

यदि यह जानना हो कि सूर्योदय से ५२ घड़ी १० पल पर क्या लग्न है तो अगले दिन के सूर्योदय के गतांश से काम लेने में अधिक सुविधा होगी।

इष्टकाल से अगले सूर्योदय का समय

$$= ६० \text{ घड़ी} - ५२ \text{ घड़ी } १० \text{ पल}$$

$$= ७ \text{ घड़ी } ५० \text{ पल}$$

अगले सूर्योदय काल में सूर्य का निरयन भोगांश

$$= ३^{रा} ५^\circ १' ६'' + ५७' २१''$$

$$= ३^{रा} ५^\circ ५८' २७''$$

६० घड़ी में सूर्य की गति $= ५७' २१''$

$\therefore ७\frac{१}{२}$ " " $= ७' १०'' ८'''$

२० पल में " $= १९'' ७'''$

$\therefore$ ७ घड़ी ५० पल में " $= ७' २९''$

$\therefore$ इष्टकाल में सूर्य का निरयन भोगांश

$$= ३^{रा} ५^\circ ५८' २७'' - ७' २९''$$

$$= ३^{रा} ५^\circ ५१'$$

$\therefore$ इष्टकाल में कर्क राशि में सूर्य का गतांश $५^\circ ५१' = ३५१'$

इसलिए पहले की तरह गतासु $= \frac{३५१ \times २०७५}{१८००}$

=४०५

∴ गतकाल=६७ पल

=१ घड़ी ७ पल

सूर्योदय होने में	७ घड़ी ५० पल है	
सूर्योदय से	१ घड़ी	७ पल पहले कर्क का आरंभ होगा
अंतर	६ घड़ी	४३ पल
मिथुन का उदयकाल	५ घड़ी	३५ पल
अंतर	१ घड़ी	८ पल

∴ इष्टकाल में पूरे वृष के उदय होने में १ घड़ी ८ पल शेष है। परन्तु वृष के ३०° या १८००′ का उदय २९१ पल में होता है।

∴ २९१ : ६८ : : १८०० : लग्न का भोग्यांश

∴ लग्न का भोग्यांश $= \frac{६८ \times १८००}{२९१}$

=४२१′

=७°१

और वृष का भुक्तांश (गतांश)=३०° − ७°१′

=२२°५९′

∴ इष्टकाल का लग्न =१$^{रा}$२२°५९′

यहाँ अन्तिम लब्धि घटाई गयी है।

इस संबंध में यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि राशियों के उदयासु अथवा उदयकाल नाक्षत्रकाल में प्रकट किये जाते हैं और इष्टकाल धूपघड़ी के अनुसार जाना जाता है इसलिये यह सावन काल में होता है (देखो पृ० ७, ८ तथा २१२)।

१ सावन दिन=६० सावन घड़ी

=२१६५६.१४ असु

=३६१० पल (नाक्षत्र) स्थूल रूप से

=६० घड़ी १० पल (नाक्षत्र)

∴ ६ सावन घड़ी=६ नाक्षत्र घड़ी+१ नाक्षत्र पल

जिससे सिद्ध होता है कि सावन काल को नाक्षत्र काल में बदलना हो तो प्रति ६ सावन घड़ियों के लिए १ पल और बढ़ा देने से नाक्षत्र काल आ जाता है।

परन्तु इष्टकाल का स्पष्ट सूर्य निकाल कर लग्न की गणना करने में यह अन्तर नहीं पड़ता इसलिए सूर्य-सिद्धान्त का नियम बिल्कुल शुद्ध है क्योंकि जब

इष्टकाल का स्पष्ट सूर्य निकाल लिया जाता है तब प्रश्न यह रहता है कि उस विन्दु से जिस जगह सूर्य इष्टकाल में है क्रान्तिवृत्त के उदय-विन्दु तक जो क्षितिज में लगा रहता है क्या अन्तर है। क्रान्तिवृत्त का वह भाग जो तात्कालिक या इष्ट-कालिक सूर्य और क्रान्तिवृत्त के उदय-विन्दु के बीच में है जितने नाक्षत्र काल में उदय होता है उतने ही सावन काल में सूर्य सूर्योदय काल के स्थान से इष्टकाल के स्थान तक पहुँचता है। हाँ यदि यह जानना हो कि सूर्योदय काल से इष्टकाल तक कितना नाक्षत्र काल बीता, तब यह गणना करनी पड़ेगी कि सूर्योदय काल में क्रान्तिवृत्त का जो विन्दु उदय हो रहा था उससे इष्टकालिक उदय-विन्दु तक के उदयासु क्या हैं। क्रान्तिवृत्त का सूर्योदय कालिक विन्दु इष्टकाल में सूर्य से कुछ पच्छिम हो जाता है क्योंकि इष्टकाल तक सूर्य कुछ पूरब हट जाता है। इस बात का विचार उस समय अवश्य करना पड़ेगा जब कि उदयकालिक सूर्य के निरयन भोगांश से ही इष्टकाल का लग्न निकालना हो। नीचे इस रीति से भी लग्न जानने का उदाहरण दिया जाता है :—

३री रीति—

सूर्योदय से १६ घड़ी १५ पल पर लग्न क्या है ?

उदयकालिक सूर्य का निरयन भोगांश = ३रा५°१′६″

∴ कर्क का भोग्यांश = ३०° − ५°१′ = २४°५६′ = १४६६′

१८०० : १४६६ : : २०७५ : भोग्यासु

$$\therefore \text{भोग्यासु} = \frac{१४६६ \times २०७५}{१८००} = १७२८ = २८८ \text{ पल}$$

१६ घड़ी १५ पल धूपघड़ी के अनुसार होता है इसलिए यह सावन काल की इकाई में है।

सावन   नाक्षत्र

६ घड़ी = ६ घड़ी १ पल

∴ १६ घड़ी १५ पल = १६ घड़ी १८ पल (स्थूल रूप से)

अब इसमें कर्क के भोग्यासु तथा सिंह, कन्या के उदयासु क्रमशः पूर्ववत् घटाने चाहिये।

	१६ घड़ी १८ पल
कर्क का भोग्यकाल	४ घड़ी ४८ पल
अन्तर	११ घड़ी ३० पल
सिंह का उदयकाल	५ " ३६ पल

अन्तर ५ घड़ी ५४ पल
कन्या का उदयकाल ५ ,, ३३ पल

तुला का गतकाल २१ पल

इसके बाद की गणना पहले की ही तरह है।

इससे सिद्ध होता है कि चाहे तात्कालिक सूर्य का निरयन भोगांश जानकर सावनकाल को ही नाक्षत्रकाल समझकर काम निकाला जाय अथवा उदयकालिक सूर्य के निरयन भोगांश जानकर इष्टकालिक सायनकाल को नक्षत्रकाल में बदल कर काम निकाला जाय दोनों में कोई अन्तर नहीं पड़ता। हाँ सावनकाल से नाक्षत्रकाल बनाकर काम निकालने में कुछ सुगमता होती है।

इस रीति में प्रत्येक राशि का उदयकाल इष्टकाल में घटाना पड़ता है। यदि ३२०वें पृष्ठ को सारिणी के ९वें स्तम्भ से काम लिया जाय तो और भी सुविधा हो सकती है।

सूर्योदय काल में कर्क का भोग्यकाल = ४ घड़ी ४८ पल
परन्तु कर्क का उदयकाल = ५ घड़ी ४६ पल

दोनों का अन्तर = ० घड़ी ५८ पल

∴ सूर्योदय काल में कर्क का गतकाल = ० घड़ी ५८ पल

निरयन मेष के आदि से मिथुन के अन्त तक का उदयकाल
= १४ घड़ी ३० पल

∴ सूर्योदय काल में क्रान्तिवृत्त के उदित भाग का उदयकाल
= १५ घड़ी २८ पल

इष्टकाल १६ घड़ी १८ पल

इष्टकाल में क्रान्तिवृत्त के उदित भाग का उदयकाल
= ३१ घड़ी ४६ पल

जिससे कन्या तक का उदयकाल घट सकता है क्योंकि वह
३१ घड़ी २५ पल है

∴ तुला का गतकाल = २१ पल

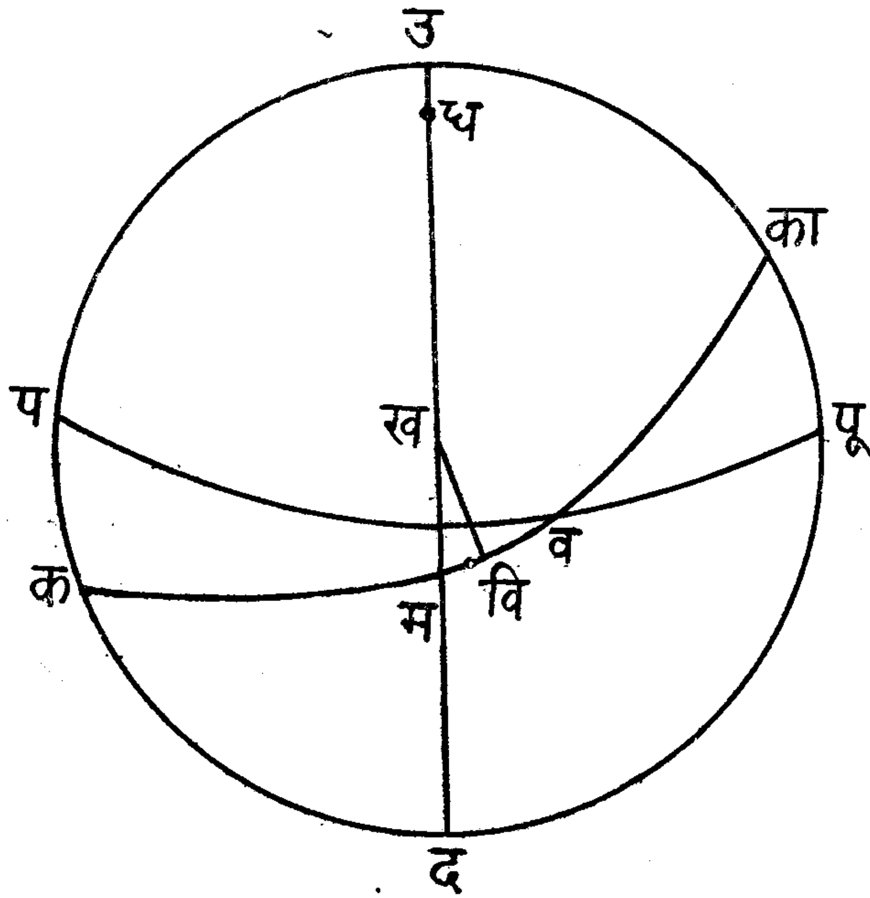
अर्थात् इष्टकाल में तुला राशि लग्न है। तुला राशि का कौन विन्दु लग्न है यह जानने के लिए पहले की तरह आगे की क्रिया भी करनी चाहिए।

भास्कराचार्य ने सायन सूर्य से लग्न साधन की रीति बतलायी है जो अधिक शुद्ध है क्योंकि यह बतलाया जा चुका है कि किसी राशि के ३० अंश के प्रत्येक अंश समानकाल में उदय नहीं होते इसलिए उचित यह है कि प्रत्येक अंश के उदयासु

अलग-अलग जाने जायँ। परन्तु यह काम कष्टप्रद है इसलिए यदि प्रत्येक अंश का उदयकाल समान समझकर अनुपात से काम लिया जाय जैसा कि सब करते हैं तो लग्न की राशि में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा हाँ राशि के उदय-विंदु के निश्चय करने में तनिक सा अन्तर पड़ जायगा। इसलिए यदि लग्न का नवांश या द्वादशांश शुद्धता-पूर्वक जानना हो तो सायन सूर्य से ही पूर्ववत् काम लेना चाहिए। ऐसी दशा में अयनांश का संस्कार करने पर निरयन लग्न का ज्ञान होगा।

मध्य लग्न जानने की रीति—

प्राक्पश्चान्नतनाडोभिः तस्माल्लंकोदयासुभिः।
भानौक्षयधने कृत्वा मध्यलग्नं तथाभवेत् ॥४८॥



चित्र ६३

उ, प, द, पू=प्रयाग के क्षितिजवृत्त के उत्तर, पच्छिम, दक्षिण और पूर्व विन्दु।

क व का=क्रान्तिवृत्त। उ ध ख म द=यामोत्तरवृत्त।

का=उदय लग्न। क=अस्त लग्न।

म=मध्य या दशमलग्न। व=वसन्त सम्पात।

वि=वित्रिभ लग्न। ख=खस्वस्तिक।

अनुवाद—(४८) पूर्व या पश्चिम नतकाल, तात्कालिक सूर्य और लंका के उदयासुओं से तात्कालिक सूर्य और यामोत्तर वृत्त के बीच के क्रान्तिवृत्त के खंड को जान लो। पूर्व नतकाल हो तो इसको तात्कालिक सूर्य से घटा दो अन्यथा जोड़ दो तो मध्य लग्न ज्ञात हो जायगा।

विज्ञान भाष्य—क्रान्तिवृत्त का जो विन्दु यामोत्तरवृत्त पर होता है वही मध्यलग्न या दशमलग्न (Culminating point) कहलाता है। क्रान्तिवृत्त का जो विन्दु खस्वस्तिक से अत्यन्त निकट रहता है उसे वित्रिभ लग्न कहते हैं। उदयलग्न में ३ राशि घटाने से अथवा अस्तलग्न में तीन राशि जोड़ने से वित्रिभ लग्न ज्ञात होता है।

लंका में राशियों के उदय होने में जितना समय लगता है उतना ही समय उनके याम्योत्तरवृत्त के उल्लंघन करने में भी लगता है। यह सब स्थानों के लिए वही होता है। जैसे निरयन मेष राशि का उदयांश लंका में २६°१८′ है। इसलिए लंका में मेष के उदयासु १७५८ हुए। इतने ही समय में मेषराशि सब स्थानों में यामोत्तरवृत्त का उल्लंघन करता है। इसी तरह अन्य राशियों के बारे में समझना चाहिए।

इसका कारण यह है कि लंका में किसी राशि का उदयांश विषुवद्वृत्त का वह खंड है जिसके उदय होने में उतना ही समय लगता है जितने समय में वह राशि क्षितिज के ऊपर आती है। विषुवद्वृत्त के इस खंड को यामोत्तर उल्लंघन करने में भी इतना ही समय लगता है। इसलिए यह राशि यामोत्तर के उल्लंघन करने में भी इतना ही समय लेगी।

उदाहरण २.—सूर्योदय से १६ घड़ी १५ पल और ५२ घड़ी १० पल उपरान्त कौन-कौन मध्यलग्न होंगे जब कि सूर्योदयकाल में सूर्य का निरयन भोगांश ३।५°१′६″ और सूर्य की स्पष्ट दैनिक गति ५७′२१″ है?

प्रथम खण्ड—

पहले यह जानना होगा कि सूर्योदयकाल से १६ घड़ी १५ पल पर नतकाल क्या है अर्थात् इस समय के कितना पीछे या पहले ठीक मध्याह्न होगा। इसलिए यह जानना आवश्यक है कि सूर्योदय से कितनी घड़ी, पल पर मध्याह्न होगा। इसके लिए चरप्राण की गणना करनी होगी। परन्तु चरज्या सूर्य की क्रान्ति और स्थान के अक्षांश पर अवलम्बित है। इसलिए पहले यही जानना चाहिए कि सूर्योदय काल के सूर्य की क्रान्ति क्या है।

सूर्य का निरयन भोगांश $= ३^{रा}५^\circ १' ६''$

अयनांश $= २२^\circ ४१'$

∴ सूर्य का सायन भोगांश $= ३^{रा}२७^\circ ४२' = ११७^\circ ४२'$

∴ क्रान्तिज्या = ज्या $११७^\circ ४२' \times$ ज्या $२३^\circ २७'$

= ज्या $(१८०^\circ - ११७^\circ ४२') \times$ ज्या $२३^\circ २७'$

= ज्या $६२^\circ १८' \times$ ज्या $२३^\circ २७'$

$= .८८५४ \times .३९७९$

$= .३५२३$

∴ क्रान्ति $= २०^\circ ३८'$ उत्तर

∴ चरज्या = स्परे $२०^\circ ३८' \times$ स्परे $२५^\circ २५'$

$= .३७६६ \times .४७५२$

$= .१७९०$

∴ चरांश $= १०^\circ १८' = ६१८'$

∴ चरकाल = ६१८ असु = १०३ पल = १ घड़ी ४३ पल

∴ दिनार्द्धमान = १५ घड़ी + १ घड़ी ४३ पल

= १६ घड़ी ४३ पल

अर्थात् सूर्योदय से १६ घड़ी ४३ पल पर ठीक मध्याह्न होगा।

परन्तु इष्टकाल १६ घड़ी १५ पल है जिस समय सूर्य का निरयन भोगांश $३^{रा}५^\circ १६' ३८''$ अथवा $३^{रा}५^\circ १७'$ है (देखो ४५-४७ श्लोकों का विज्ञान भाष्य)

इसलिए पूर्व नतकाल = २८ पल = १६८ असु

सूर्य कर्क राशि में है जिसके लंका के उदयासु १८३३ हैं (सारिणी के ६ठें स्तम्भ के मान को कलाओं में लिखने से असुओं की संख्या आ जाती है)। अब यह देखना है कि जब १८३३ असुओं में पूरी कर्कराशि अर्थात् १८०० कला यामोत्तर वृत्त को उल्लंघन करती है तब १६८ असुओं में कर्क राशि का कौन भाग उल्लंघन करेगा।

१८८३ : १६८ : : १८०० : इष्ट भाग।

$$∴ \text{इष्टभाग} = \frac{१६८ \times १८००}{१८३३}$$

$$= १६५'$$

$$= २^\circ ४५'$$

यही यामोत्तर वृत्त और सूर्य के बीच का क्रान्तिवृत्त का खंड है। परन्तु सूर्य $३^{रा}५^\circ १७'$ पर है। इसलिए $३^{रा}५^\circ १७' - २^\circ ४५' = ३^{रा}२^\circ ३२'$ यामोत्तर लग्न है।

दूसरा खण्ड—

जब इष्टकाल ५२ घड़ी १० पल होगा तब पच्छिम नतकाल

=५२ घड़ी १० पल—१६ घड़ी ४३ पल

अर्थात् मध्याह्न के उपरान्त ३५ घड़ी २७ पल भर सूर्योदय से ५२ घड़ी १० पल बीता रहेगा। इस समय सूर्य का निरयन भोगांश=३$^{रा}$५°५१′

इसलिए कर्क राशि का भोग्यांश=२४°९′

जब पूरी कर्क राशि १८३३ असुओं में यामोत्तर वृत्त का उल्लंघन करती है तब इसकी २४°९′ कितने असुओं में उल्लंघन करेगी।

१८०० : १४४९ : : १८३३ : भोग्यांश का उल्लंघन काल

$\therefore$ भोग्यांश का उल्लंघन काल $= \dfrac{१४४९ \times १८३३}{१८००}$

=१४७६ असु

=२४६ पल

=४ घड़ी ६ पल

अब पच्छिम नतकाल=३५ घड़ी २७ पल

मध्याह्न के बाद कर्क के उल्लंघन में ४ घड़ी ६ पल लगेगा

अन्तर ३१ घड़ी २१ पल

सिंह का यामोत्तर उल्लंघन ४ घड़ी ४२ पल में होता है

अन्तर २६ घड़ी ३९ पल

कन्या का यामोत्तर उल्लंघन ४ घड़ी ३७ पल में होता है

अन्तर २२ घड़ी २ पल

तुला का यामोत्तर उल्लंघन ४ घड़ी ५३ पल में होता है

अन्तर १७ घड़ी ९ पल

वृश्चिक का यामोत्तर उल्लंघन ५ घड़ी १७ पल में होता है

अन्तर ११ घड़ी ५२ पल

धनु का यामोत्तर उल्लंघन ५ घड़ी २५ पल में होता है

अन्तर ६ घड़ी २७ पल

मकर का यामोत्तर उल्लंघन ५ घड़ी ५॥ पल में होता है

अन्तर १ घड़ी २१॥ पल

$\therefore$ कुम्भ राशि यामोत्तर वृत्त पर लग्न है। क्योंकि अन्तिम अन्तर से कुम्भ राशि का यामोत्तर उल्लंघन काल नहीं घटता है इसलिए यही अशुद्ध राशि है। अब यह देखना है कि इसका कौन विन्दु यामोत्तर वृत्त पर है।

कुम्भ का याम्योत्तर उल्लंघन काल=४ घड़ी ४२ पल

=१६६४ असु

१ घड़ी २१॥ पल=८१॥ पल=४८६ असु

इसलिए जब १६६४ असुओं में १८०० कला का उल्लंघन होता है तब ४८६ असुओं में कितना होगा।

१६६४ : ४८६ : : १८०० : गतांश

$$\therefore \text{गतांश} = \frac{४८६ \times १८००}{१६६४} = ५२०' = ८°४०'$$

∴ कुम्भ राशिका ८°४०′ याम्योत्तर उल्लंघन कर चुका

∴ मध्यम या दशम लग्न=१०$^{\text{रा}}$८°४०′

स्पष्ट सूर्य और लग्न से समय जानना—

भोग्यांशेनूनकस्याथ भुक्तासूनधिकस्य च।
संपिण्ड्यान्तरलग्नासूनवं स्यात्कालसाधनम् ॥४६॥
सूर्यादूने निषाशेषे लग्नेऽर्काधिके दिवा।
भचक्रार्धयुताद्भानोः अधिकेऽस्तमयात्परम् ॥५०॥

अनुवाद—(४६) लग्न और स्पष्ट सूर्य की राशियों में जो कम हो उसके भोग्यासुओं और जो अधिक हो उसके भुक्तासुओं को जोड़कर दोनों के बीच में जो पूरी राशियां हों उनके उदयासुओं को भी जोड़ लो। इसी योगफल से इष्टकाल जाना जाता है। (५०) रात्रि कुछ शेष रहने पर अर्थात् मध्य रात्रि के पीछे और सूर्योदय के पहले सूर्य की राशि से लग्न की राशि कम होती है, सूर्योदय के पीछे दिन में सूर्य की राशि लग्न की राशि से कम होती है और सूर्यास्त के पीछे सूर्य की राशि में ६ राशि जोड़ने पर भी लग्न की राशि अधिक होती है।

इति त्रिप्रश्नाधिकार नामक तीसरे अध्याय का अनुवाद समाप्त हुआ।

विज्ञान भाष्य—इष्टकाल और उसके स्पष्ट सूर्य से लग्न जानने की जो रीति ४५-४७ श्लोकों में दी गयी है उसी की विलोम (उलटा) क्रिया ४६-५० श्लोकों में बतलायी गयी है। इसलिए इसकी उपपत्ति समझाने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। दिन में सूर्य की राशि से उदय लग्न आगे होती है इसलिए सूर्य की राशि लग्न से कम होता है। मध्य रात्रि के बाद उदय लग्न के आगे सूर्य रहता है इसलिए उस समय लग्न सूर्य से कम होती है। सूर्यास्त के समय उदय लग्न सूर्य से ठीक ६ राशि आगे रहती है इसलिए इसके उपरान्त उदय लग्न ६ राशि युक्त स्पष्ट सूर्य (सषड्भ सूर्य) से अधिक होती है।

इस नियम से मध्य रात्रि के पीछे का जो इष्टकाल आता है वह उस समय से सूर्योदय तक का समय होता है और दिन में या सूर्यास्त के बाद जो इष्टकाल होता है वह सूर्योदय से उस समय तक का काल होता है। यह नियम एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा :—

उदाहरण—सूर्योदय काल का स्पष्ट सूर्य ३रा५°१′६″, स्पष्ट दैनिक गति ५७′२१″ है। प्रयाग में किस समय उदय लग्न ६रा१°५१′ और १रा२२°५६′ होगी ?

पहला खंड—

यहाँ उदय लग्न स्पष्ट सूर्य से अधिक है इसलिए सूर्य की राशि के भोग्यासु और लग्न की राशि के भुक्तासुओं को जोड़ना चाहिए। इन भोग्यासु और भुक्तासुओं को पहले की तरह जानना चाहिए।

कर्क का भोग्यांश = २४°५८′५४″ = २४°५६′

तुला का भुक्तांश = १°५१′

∴ कर्क का भोग्यकाल = २८५ पल

और तुला का भुक्तकाल = २१ पल

दोनों का जोड़ = ३०६ पल = ५ घड़ी ६ पल

कर्क और तुला के बीच में सिंह और कन्या हैं जिनमें सिंह का उदयकाल = ५ घड़ी ३६ पल

कन्या का उदयकाल = ५ घड़ी ३३ पल

कुल का योग = १६ घड़ी १५ पल

दूसरा खंड—

यहाँ उदय लग्न सूर्य की राशि से कम है। इसलिए उदय लग्न के भोग्यासुओं को सूर्य की राशि के भुक्तासुओं में जोड़ना चाहिए। इनके मान पहले की तरह जानना होता है। जिस समय लग्न १रा२२°५६′ होगी वह मध्यरात्रि के बाद का समय है इसलिए अगले सूर्योदय के स्पष्ट सूर्य के भुक्तासुओं से काम लेना चाहिए।

उसी दिन के सूर्योदय काल का स्पष्ट सूर्य = ३रा५°१′६′

स्पष्ट दैनिक गति = ५७°२१′

∴ अगले दिन के सूर्योदय काल का स्पष्ट सूर्य = ३रा५°५८′२७″

= ३रा५°५८′ स्थूलतः

$\therefore$ सूर्य का भुक्तांश $=५°५८' = ३५८'$

लग्न का भोग्यांश $= ३०° - २२°५६' = ७°१' = ४२१'$

$$\text{सूर्य के भुक्तासु} = \frac{३५८ \times २०७५}{१८००}$$

$$= ४१३$$

$$= ६६ \text{ पल}$$

$$\text{लग्न का भोग्य काल} = \frac{४२१ \times २८१}{१८००} \text{ पल}$$

$$= ६८ \text{ पल}$$

$\therefore$ सूर्य का भुक्तकाल और लग्न का भोग्यकाल $= ६६ + ६८$ पल

$= २$ घड़ी १७ पल

सूर्य और लग्न के बीच मिथुन राशि का

उदयकाल $= ५$ घड़ी ३५ पल

दोनों का योग $= ७$ घड़ी ५२ पल

इसलिए सूर्योदय होने में ७ घड़ी ५२ पल रह गया है।

लग्न से समय जानने की रीति तभी व्यवहार में लायी जा सकती है जब राशि और नक्षत्रों की पहचान अच्छी तरह हो। इसलिए यह आवश्यक है कि राशि, नक्षत्र तथा अन्य प्रसिद्ध तारों की पूरी जानकारी हो। सूर्य-सिद्धान्त के नक्षत्र ग्रह युत्यधिकार नामक ८वें अध्याय में कुछ नक्षत्रों और तारों की चर्चा है इसलिए वहीं यह भी बतलाया जायगा कि प्रसिद्ध प्रसिद्ध तारे कौन हैं जिनसे राशि में समय का ज्ञान सहज ही हो सकता है।

यहाँ केवल यह बतला देना पर्याप्त है कि मध्य लग्न से समय जानने में अधिक सुविधा होती है। यदि यह मालूम हो कि मध्याह्न काल में सूर्य का विषुवांश क्या था और रात्रि में कौन तारा जिसका विषुवांश ज्ञात है यामोत्तर वृत्त पर है तो यह सहज ही जाना जा सकता है कि मध्याह्न से कितना समय बीता है क्योंकि तारा के विषुवांश से सूर्य के विषुवांश को घटाने पर जो अन्तर कलाओं में होता है उतने ही असुओं में वह तारा मध्याह्न के उपरान्त यामोत्तर वृत्त पर आता है।

यदि किसी तारे का विषुवांश न ज्ञात हो तो केवल क्रान्तिवृत्त के तारा-समूहों को पहचान लेने से भी समय का स्थूल ज्ञान हो सकता है। इसके लिए सूर्य किस नक्षत्र पर है यह भी जानना आवश्यक होता है। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि क्रान्तिवृत्त के २७वें भाग को नक्षत्र कहते हैं और पूरा क्रान्तिवृत्त एक

नाक्षत्र दिन में में पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ जान पड़ता है इसलिए एक नक्षत्र $\frac{६०}{२७}$ घड़ी $=$ $२\frac{२}{९}$ घड़ी या सवा दो घड़ी में यामोत्तर उल्लंघन करता है अथवा ९ नक्षत्र २० घड़ी या ८ घंटे में यामोत्तर उल्लंघन करते हैं। इस प्रकार की गणना से जो समय जाना जायगा उसमें और यथार्थ समय में आधे घंटे से अधिक अन्तर नहीं पड़ सकता।

उदाहरण—सूर्य पुनर्वसु नक्षत्र में है तो किस समय श्रवण नक्षत्र यामोत्तर वृत्त पर होगा ?

२१३ पृष्ठ की नक्षत्र सारिणी में पुनर्वसु ७वां नक्षत्र और श्रवण २२वां नक्षत्र है। इसलिए इन दोनों में १५ नक्षत्रों का अन्तर है।

९ नक्षत्रों का अन्तर २० घड़ी या ८ घंटे में पड़ता है।

६ ,, ,, $१३\frac{१}{३}$,, या $५\frac{१}{३}$,, ,,

∴ १५ ,, ,, $३३\frac{१}{३}$,, $१३\frac{१}{३}$,, ,,

∴ मध्याह्न से $१३\frac{१}{३}$ घंटे पीछे अथवा मध्यरात्रि से $१\frac{१}{३}$ घंटे पर सवा बजे रात्रि में श्रवण नक्षत्र यामोत्तर वृत्त पर होगा।

आजकल धूप-घड़ी से समय का ज्ञान नहीं होता वरन् कमानी के बल पर चलनेवाली घड़ियों से होता है जिसका समय धूप-घड़ी से कुछ भिन्न होता है इसलिए जो लोग आजकल की प्रचलित घड़ियों से लग्न की गणना करके फलित ज्योतिष के फल बतलाते हैं उनको लग्न का ठीक ठीक ज्ञान नहीं होता। काशी के महामहोपाध्याय बापूदेवजी शास्त्री के पंचांग के अतिरिक्त अन्य पंचांग ऐसे देखने में नहीं आये जिनमें इस बात का अच्छा विवेचन हो। इसलिए यहाँ यह बतलाना बहुत आवश्यक है कि धूप-घड़ी और आजकल की कमानीदार घड़ियों में परस्पर क्या सम्बन्ध है।

स्पष्टकाल, मध्यकाल और काल-समीकरण—

मध्यमाधिकार पृष्ठ ७, ८ में बतलाया गया है कि किसी तारे के उदय होने के समय से उसके फिर उदय होने तक के समय को नाक्षत्र दिन और सूर्य के एक उदय से लेकर दूसरे उदय तक के समय को सावन दिन कहते हैं। परन्तु उदय होने का समय ठीक-ठीक जानना बड़ा कठिन होता है क्योंकि इस काम के लिए ऐसा क्षितिज होना चाहिए जहाँ वृक्ष इत्यादि न हों जो सब जगह के लिए प्राय: असम्भव है क्योंकि ऐसा मैदान साधारणत: बहुत कम मिलता है जहाँ कई कोस तक पूर्व या पश्छिम दिशा में कोई वृक्ष न हों। यदि ऐसा क्षितिज भी मिल जाय तो प्रकाश की किरणों के झुक जाने से सूर्य या तारे का उदय उचित समय से कुछ पहले ही हो जाता है जिसका परिमाण वातावरण की भिन्न-भिन्न दशाओं के अनुसार घटता बढ़ता रहता

है। इसलिए बहुत सूक्ष्म गणना के लिए उदयकाल से समय की परीक्षा नहीं की जाती वरन् मध्यान्ह काल से की जाती है। इसलिए सावन या नाक्षत्र दिन की परिभाषा आजकल यों की जाती है :—

सूर्य का केन्द्र जिस क्षण याम्योत्तर वृत्त पर आता है उस क्षण से लेकर फिर उसका केन्द्र जिस क्षण याम्योत्तर वृत्त पर आता है उस क्षण तक के समय को 'स्पष्ट सावन दिन' कहते हैं।

वसंत सम्पात विन्दु जिस क्षण याम्योत्तर वृत्त पर आता है उस क्षण से लेकर फिर यह बिन्दु जिस क्षण याम्योत्तर वृत्त पर आता है उस क्षण तक के समय को 'नाक्षत्र दिन' कहते हैं।

वसंत सम्पात विन्दु की गति प्रायः समान होती है। इसलिए नाक्षत्र दिन सदा समान* होता है। परन्तु सावन दिन के परिमाण में बहुत भेद पड़ जाता है क्योंकि सूर्य की दैनिक गति निरंतर बदला करती है। इसका पता नाक्षत्र काल सूचित करने वाली घड़ियों से सहज ही लग सकता है। यदि घड़ी ऐसी बनायी जाय कि बसंत सम्पात विन्दु के याम्योत्तर वृत्त पर आने के समय उसमें ठीक १२ बजा करे तो ऐसी घड़ी को नाक्षत्र घड़ी (घटिका यंत्र) कहते हैं। इस तरह के घटिका यंत्र से सहज ही जाना जा सकता है कि सावन दिनों के परिमाणों में कितना अन्तर हो जाता है। उदाहरण के लिए १९०६ ई० के चार सावन दिनों के† परिमाण दिये जाते हैं :—

१९०६ ई०	(नाक्षत्रकाल) घंटा	मिनट	सेकंड
१ली जनवरी के स्पष्ट मध्याह्न से २री जनवरी के स्पष्ट मध्याह्न तक का समय	२४	४	२४.६
२री अप्रैल के स्पष्ट मध्याह्न से ३री अप्रैल के स्पष्ट मध्याह्न तक का समय	२४	३	३८.५
३री जुलाई के स्पष्ट मध्याह्न से ४थी जुलाई के स्पष्ट मध्याह्न तक का समय	२४	४	७.५
२री अक्टूबर के स्पष्ट मध्याह्न से ३री अक्टूबर के स्पष्ट मध्याह्न तक का समय	२४	३	३७.६

* अक्ष विचलन के कारण वसन्त सम्पात का स्पष्ट स्थान से पूर्व मध्यम स्थान या पच्छिम हो जाता है (देखो पृष्ठ २४७)। परन्तु इससे नाक्षत्र दिन के परिमाण में इतना कम अन्तर पड़ता है कि उसको नहीं के समान समझ लेने में कोई हानि नहीं होती।

†Ball's Spherical Astronomy पृष्ठ २१५

इससे प्रकट है कि स्पष्ट सावन दिन का मान समान नहीं होता। १ली जनवरी के मध्यान्ह से दूसरी जनवरी के मध्यान्ह तक के सावन दिन का मान दूसरी और तीसरी अप्रैल के सावन दिन के मान से ४६.४ सेकंड बड़ा होता है, इत्यादि। ऐसी घड़ी बनाना असम्भव है जो सूर्य की गति के अनुसार अपनी चाल घटाया-बढ़ाया करे क्योंकि यांत्रिक बल से चलनेवाली घड़ी सदा समान काल से चलेगी। इसलिए ऐसी घड़ियों से जो समय जाना जाता है वह धूपघड़ी के समय से भिन्न रहता है क्योंकि धूपघड़ी से स्पष्ट सावन दिन का मान जाना जाता है जो प्रतिदिन बदलता रहता है। यदि नाक्षत्र काल बतलाने वाली घड़ी से काम लिया जाय तो लौकिक व्यवहार में सुविधा नहीं होती क्योंकि नाक्षत्र काल के २४ घंटे सावन दिन के २४ घंटे से ४ मिनट के लगभग छोटे होते हैं। इसलिए यदि आज सूर्य का याम्योत्तरोल्लंघन नाक्षत्र घड़ी में ठीक १२ बजे होता है तो कल सूर्य का याम्योत्तरोल्लंघन नाक्षत्र घड़ी के १२ बजकर ४ मिनट पर होगा। इस तरह प्रतिदिन चार-चार मिनट पीछे होते-होते १५ दिन में सूर्य का याम्योत्तरोल्लंघन नाक्षत्र घड़ी के १ बजे होगा, १ महीने में सूर्य का याम्योत्तरोल्लंघन नाक्षत्र घड़ी के २ बजे और दो महीने में नाक्षत्र घड़ी के ४ बजे होगा, इत्यादि। इस प्रकार प्रत्यक्ष है कि सूर्य का उदय अस्त नाक्षत्र घड़ी के अनुसार दिन के किसी समय हो सकता है जो लौकिक व्यवहार के लिए उपयोगी नहीं हो सकता क्योंकि साधारणत: सूर्य के उदय अस्त और याम्योत्तरोल्लंघन से ही समय का निश्चय करना सुगम होता है।

इस दुविधा को मिटाने के लिये ज्योतिषियों ने यह निश्चय किया है कि ज्योतिष के काम के लिए तो ऐसी ही घड़ियाँ काम में लायी जायँ जिनसे नाक्षत्रकाल सूचित होता है, परन्तु लौकिक व्यवहार वाली घड़ियाँ ऐसी हों जिनसे मध्यम सावन दिन के घंटे मिनट सेकंड अथवा घड़ी, पल सूचित हो। ऐसा करने से इन घड़ियों का समय स्पष्ट सावन दिन सूचित करने वाली धूपघड़ियों से कुछ भिन्न अवश्य रहता है परन्तु यह भिन्नता १६ मिनट से अधिक नहीं बढ़ने पाती। मध्यम सावन दिन का मान कई वर्षों के स्पष्ट सावन दिनों का मध्यम मान (औसत) होता है। १९०६ ई० के ऊपर लिखे हुए चार दिनों का मध्यम मान २४ घंटा ३ मिनट ५७.१ सेकंड होता है जो एक सावन दिन के मध्यम मान के बहुत निकट है। यदि कई वर्षों के स्पष्ट सावन दिनों के मानों का मध्यम मान निकाला जाय तो एक मध्यम सावन दिन नाक्षत्र काल के २४ घंटा ३ मिनट ५६.५५५ सेकण्ड के समान होता है। नीचे के उदाहरण से स्पष्ट होगा कि मध्यम सावन दिन का मान वेध से कैसे जाना जाता है।

मध्यम सावन दिन का मान निश्चय करना

१८३६ ई० की ४थी जुलाई के दिन जिस समय स्पष्ट सूर्य का केन्द्र याम्योत्तर-

वृत्त पर था उस समय इसका स्पष्ट विषुवांश (right ascension) ६ घंटा ५४ मिनट ७·०३ सेकण्ड था।* इसी प्रकार १८९० ई० की ४थी जुलाई के दिन याम्योत्तरोल्लंघनकाल में सूर्य के केन्द्र का स्पष्ट विषुवांश ६ घंटा ५३ मिनट ५४·६१ सेकण्ड था। इससे मध्यम सावन दिन का मान निश्चय करो।

पहले यह जानना आवश्यक है कि १८९० ई० की ४थी जुलाई के ६ घंटा ५३ मिनट ५४·६१ सेकण्ड (नाक्षत्रकाल) तक कितना समय नाक्षत्रकाल में बीता।

यह स्पष्ट है कि एक सायन वर्ष में अर्थात् एक सायन मेष संक्रान्ति से दूसरी सायन मेष संक्रान्ति तक के समय में वसन्त सम्पात विन्दु जितने बार याम्योत्तरोल्लंघन करता है उससे एक बार कम सूर्य याम्योत्तरोल्लंघन करता है क्योंकि पृथ्वी की गति के कारण सूर्य प्रतिदिन एक अंश पूर्व की ओर बढ़ जाता है जिससे यह प्रदिदिन वसन्त सम्पात से ४ मिनट के लगभग पीछे याम्योत्तरोल्लंघन करता है। इस तरह पिछड़ते पिछड़ते १ वर्ष में सूर्य पूरा १ दिन पिछड़ जाता है अर्थात् १ वर्ष में सूर्य का याम्योत्तरोल्लंघन वसन्त सम्पात विन्दु के याम्योत्तरोल्लंघन से १ बार कम पड़ जाता है।

१८३६ ई० की चौथी जुलाई से १८९० ई० की ४थी जुलाई तक ५४ वर्ष होते हैं जिनमें १८४०, १८४४, १८४८ इत्यादि १३ अधिक वर्ष (लीप इयर) हैं और शेष ४१ वर्ष साधारण वर्ष हैं। इसलिए यह अवधि ४१ × ३६५ + १३ × ३६६ अर्थात् १९७२३ सावन दिन के समान हुई। ऊपर सिद्ध किया गया है कि एक वर्ष में वसन्त सम्पात विन्दु का याम्योत्तरोल्लंघन सूर्य के याम्योत्तरोल्लंघन से १ बार अधिक होता है इसलिए ५४ वर्षों में वसन्त सम्पात विन्दु का याम्योत्तरोल्लंघन ५४ बार अधिक होगा। इस प्रकार उपर्युक्त अवधि में १९७२३ + ५४ = १९७७७ नाक्षत्र दिन हुए। इसलिए १८३६ ई० की ४थी जुलाई के सूर्य के याम्योत्तरोल्लंघन काल से १८९० ई० की ४थी जुलाई के याम्योत्तरोल्लंघन काल तक १९७७७ दिन ६ घंटा ५३ मिनट ५४·६१ से० – ६ घंटा ५४ मिनट ७·०३ सेकण्ड अर्थात् १९७७६ दिन २३ घंटा ५९ मिनट ४७·५८ से० समय नाक्षत्र काल में हुआ।

इसलिए यह नाक्षत्र काल १९७२३ स्पष्ट सावन दिनों के समान हुआ। अब यदि उपर्युक्त नाक्षत्र काल को १९७२३ से भाग दे दिया जाय तो १ मध्यम सावन दिन का मान नाक्षत्र काल में २४ घंटा ३ मिनट ५६·५५५ सेकण्ड आता है। इसलिए

---

*सूर्य के केन्द्र से होता हुआ ध्रुवप्रोतवृत्त विषुवद्वृत्त के जिस विन्दु पर पहुँचता है उसका वसंत सम्पात से जो अन्तर होता है उसे सूर्य के केन्द्र का विषुवांश कहते हैं। यह अंश, कला, विकला तथा घंटा, मिनट, सेकण्ड दोनों में प्रकट किया जाता है। १ अंश ४ मिनट या १० पल के समान होता है।

१ मध्यम सावन दिन=२४ घंटा ३ मिनट ५६·५५५ सेकण्ड (नाक्षत्र)

मध्यम और स्पष्ट सावन दिनों का भेद समझाने के लिए ज्योतिषियों ने एक ऐसे सूर्य की कल्पना की है जो विषुवद्वृत्त पर सदैव समान गति से चलता हुआ माना गया है और नाक्षत्र काल के २४ घंटा ३ मिनट ५४.५५५ सेकण्ड पीछे प्रतिदिन याम्योत्तर वृत्त पर आता है। जिस क्षण यह कल्पित सूर्य याम्योत्तरोल्लंघन करता है उसी क्षण मध्यम मध्यान्ह होता है और मध्यम काल सूचित करनेवाली घड़ियों में ठीक १२ बजता है। यह ऊपर बतलाया गया है कि वर्ष भर के स्पष्ट सावन दिनों का मध्यममान ही मध्यम सावन दिन के समान होता है इसलिए यह प्रकट है कि जितने समय में उपर्युक्त कल्पित सूर्य विषुवद्वृत्त पर चलता हुआ एक चक्कर पूरा कर लेता है उतने ही समय में स्पष्ट सूर्य क्रान्तिवृत्त पर चलता हुआ एक चक्कर पूरा करता है। इसलिए क्रान्तिवृत्त पर स्पष्ट सूर्य की जो मध्यम दैनिक गति होती है वह विषुवद्वृत्त पर इस कल्पित सूर्य की गति होती है। इससे सिद्ध है कि समान काल में कल्पित सूर्य का विषुवांश उतना ही बढ़ता है जितना स्पष्ट सूर्य का भोगांश बढ़ता है।

३२० पृष्ठ की सारिणी से* प्रकट है कि जब तक स्पष्ट सूर्य का भोगांश ९० अंश से कम होता है तब तक इसका विषुवांश भोगांश से कम रहता है। परन्तु उपर्युक्त कल्पित सूर्य का विषुवांश सदैव स्पष्ट सूर्य के मध्यम भोगांश के समान होता है। इसलिए यह सिद्ध है कि जब तक कल्पित सूर्य का विषुवांश अथवा सूर्य का मध्यम भोगांश ९० अंश से कम होता है तब तक कल्पित सूर्य का ध्रुवप्रोतवृत्त स्पष्ट सूर्य के ध्रुवप्रोतवृत्त से पूर्व की ओर होता है। इसलिए स्पष्ट सूर्य का ध्रुवप्रोतवृत्त कल्पित सूर्य से पहले याम्योत्तर वृत्त पर आता है और स्पष्ट मध्याह्न मध्यम मध्याह्न से पहले होता है। इसलिए जिस समय धूप घड़ी में जो स्पष्ट सूर्य के अनुसार समय बतलाती है १२ बजता है उससे पीछे मध्यमकाल बतलाने वाली घड़ियों में १२ बजेगा। अर्थात् धूपघड़ी मध्यम घड़ी से तेज होगी। जितना तेज होगी उतना ही धूपघड़ी के समय से घटाने पर मध्यम घड़ी का समय ज्ञात होगा।

इसी प्रकार जब तक स्पष्ट सूर्य का मध्यम भोगांश ९० अंश से अधिक और १८० अंश से कम होगा अर्थात् जब सूर्य सायन कर्क से सायन कन्या राशि में रहेगा

---

* इस सारिणी में जो भोगांश दिया हुआ है उसे कल्पित सूर्य का विषुवांश और जो विषुवांश दिया हुआ है उसे स्पष्ट सूर्य का विषुवांश समझ लेने से यह स्पष्ट हो जाता है कि किस समय स्पष्ट सूर्य का ध्रुवप्रोतवृत्त कल्पित सूर्य के ध्रुवप्रोतवृत्त के आगे या पीछे है।

तब तक स्पष्ट सूर्य का ध्रुवप्रोतवृत्त कल्पित सूर्य से पूर्व की ओर रहता है। क्योंकि स्पष्ट सूर्य का विषुवांश कल्पित सूर्य के विषुवांश से जो स्पष्ट सूर्य के मध्यम भोगांश के समान होता है अधिक होगा (देखो ३२० पृष्ठ की सारिणी)। ऐसी दशा में स्पष्ट सूर्य कल्पित सूर्य से पीछे यामोत्तरोल्लंघन करेगा अर्थात् धूपघड़ी मध्यम घड़ी से पीछे (मन्द या सुस्त) रहेगी। इसलिए धूपघड़ी के समय में दोनों के विषुवांशों का अन्तर जोड़ने पर यांत्रिक घड़ी (मध्यम घड़ी) का समय ज्ञात होगा। इसी प्रकार जब स्पष्ट सूर्य सायन तुलादि तीन राशियों में होगा तब धूपघड़ी मध्यम घड़ी से आगे रहेगी और धूपघड़ी के समय से स्पष्ट सूर्य और कल्पित सूर्य के विषुवांशों का अन्तर घटाने पर मध्यम घड़ी का समय ज्ञात होगा और जब स्पष्ट सूर्य सायन मकरादि तीन राशियों में रहेगा तब धूपघड़ी के समय में दोनों के विषुवांशों का अन्तर जोड़ने पर मध्यम समय ज्ञात होगा।

परन्तु स्पष्ट सूर्य क्रान्तिवृत्त पर सदा समान गति से नहीं चलता। कभी इसकी गति तीव्र हो जाती है और कभी मन्द। इसलिए इसके कारण भी स्पष्ट सूर्य यामोत्तर वृत्त पर उस समय नहीं आवेगा जिस समय मध्यम सूर्य आता है जैसा कि ऊपर बतलाया गया है। स्पष्ट सूर्य और मध्यम सूर्य क्रान्तिवृत्त के केवल मन्दोच्च और नीच स्थानों पर साथ रहते हैं (देखो पृष्ठ ८०-८२)। जब सूर्य मन्दोच्च से आगे बढ़ता है तब स्पष्ट सूर्य की दैनिक गति मध्यम सूर्य की दैनिक गति से कम होने के कारण स्पष्ट सूर्य मध्यम सूर्य से पीछे पड़ जाता है अर्थात् मध्यम सूर्य से स्पष्ट सूर्य पूर्व की ओर बढ़ा रहता है इसलिए स्पष्ट सूर्य मध्यम सूर्य से पहले यामोत्तर वृत्त पर आता है अर्थात् स्पष्ट मध्यान्ह मध्यम मध्यान्ह से पहले होता है। इस कारण भी धूप-घड़ी का समय मध्यम काल से आगे रहता है। यह दशा तब तक रहती है जब तक सूर्य नीच पर नहीं पहुँच जाता है। यहाँ से आगे बढ़ने पर स्पष्ट सूर्य की गति मध्यम गति से अधिक होती है इसलिये स्पष्ट सूर्य मध्यम सूर्य से आगे पूर्व की ओर रहता है। इसलिए स्पष्ट मध्यान्ह मध्यम मध्यान्ह से पीछे होता है अर्थात धूपघड़ी मध्यम घड़ी से सुस्त रहती है।

इन दोनों कारणों से अर्थात् सूर्य के क्रान्तिवृत्त पर चलने तथा दैनिक गति के समान न होने से स्पष्ट काल और मध्यम काल में कुछ अन्तर होता है। स्पष्ट काल में जितना समय घटाने या जोड़ने से मध्यम काल ज्ञात होता है उसी को 'काल समीकरण' कहते हैं। इसको यों भी लिखते हैं :—

मध्यमकाल = स्पष्टकाल + काल समीकरण*

* वेंकटेश बापू केतकर ने अपने ज्योतिर्गणित में इसका नाम उदयान्तर रखा है (ज्यो० ग० पृष्ठ ७५)

जब काल समीकरण धनात्मक होता है तब जोड़ा जाता है और ऋणात्मक होता है तब घटाया जाता है।

काल समीकरण का निश्चय करना—

अब यह सिद्ध हो गया कि उपर्युक्त कल्पित सूर्य के विषुवांश और स्पष्ट सूर्य के विषुवांश के अन्तर को ही काल-समीकरण कहते हैं। इसलिए काल-समीकरण जानने का गुर नीचे लिखी रीति के अनुसार सहज ही निकल सकता है :—

पृष्ठ ३०२-३०३ में दिखाया गया है कि

$$\text{विषुवांश की स्पर्शरेखा} = \frac{\text{परम क्रान्ति कोटि ज्या}}{\text{सायन भोगांश की कोटि स्पर्शरेखा}}$$

यदि विषुवांश को सूचित करने के लिए व, परम क्रान्ति के लिए क और स्पष्ट सायन भोगांश के लिए भ मान लिये जायँ तो

$$\text{स्परे व} = \text{कोटिज्या क} \times \frac{१}{\text{कोस्परे भ}}$$

$$= \text{कोटिज्या क} \times \text{स्परे भ} \qquad (१)$$

यह समीकरण उसी रूप में है जिस रूप में स्पष्ट केन्द्र और उत्केन्द्र का सम्बन्ध सूचित करनेवाला समीकरण है [देखो पृष्ठ १६४ समीकरण (३)]। इसलिए इस समीकरण का भी विस्तार १६४-१६८ पृष्ठों में लिखी गयी रीति के अनुसार हो सकता है। इस प्रकार यह सिद्ध हो सकता है कि

$$२\text{ व} = २\text{ भ} + २\left(-\text{स्परे}^{२}\frac{\text{क}}{२}\text{ ज्या }२\text{ भ} + \frac{१}{२}\text{स्परे}^{४}\frac{\text{क}}{२}\text{ ज्या }४\text{ भ} - \frac{१}{२}\text{स्परे}^{६}\frac{\text{क}}{२}\text{ज्या }६\text{ भ} + \cdots\cdots\right)$$

अथवा

$$\text{व} - \text{भ} = -\text{स्परे}^{२}\frac{\text{क}}{२}\text{ज्या }२\text{ भ} + \frac{१}{२}\text{स्परे}^{४}\frac{\text{क}}{२}\text{ज्या }४\text{ भ} - \frac{१}{३}\text{स्परे}^{६}\frac{\text{क}}{२}\text{ ज्या }६ + \cdots \qquad (२)$$

$$\text{यहां} -\text{स्परे}^{२}\frac{\text{क}}{२} = -\frac{१ - \text{कोज्या क}}{१ + \text{कोज्या क}} = \frac{\text{कोज्या क} - १}{\text{कोज्या क} + १}$$

इसलिए जैसे पृष्ठ १६७ में प का मान निश्चित किया गया है उसी प्रकार यहाँ $-\text{स्परे}^{२}\frac{\text{क}}{२}$ का मान आया है।

समीकरण (२) के प्रत्येक पद चापीय मानों (radian) में हैं (देखो पृष्ठ १६२)। इसलिए यदि हम इसके दाहिने पक्ष को ३४३७.७५ से गुणा कर दें तो

व—भ का मान कलाओं में तथा असुओं में ज्ञात हो जायगा। इस सूत्र से हम सूर्य के किसी सायन भोगांश का विषुवांश सहज ही जान सकते हैं।

यह बतलाया गया है (देखो पृष्ठ ३०६) कि सूर्य की परम क्रान्ति विक्रम की २१वीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध तक २३°२७′ मान लेने में कुछ हानि नहीं है इसलिए

$$स्परे^{२}\frac{क}{२}=स्परे\frac{२३^{\circ}२७'}{२}=स्परे^{२}\,११^{\circ}४३'.५=(.२०७५)^{२}=.०४३०५$$

$$स्परे^{४}\frac{क}{२}=(.०४३०५)^{२}=.००१८५$$

$$स्परे^{६}\frac{क}{२}\;.००१८५\times.०४३०५=.००००८$$

इसलिए समीकरण (२) के दाहिने पक्ष को ३४३७.७५ से गुणा करने तथा $स्परे^{२}\frac{क}{२}$, $स्परे^{४}\frac{क}{२}$, इत्यादि के मान उत्थापन करने पर इसका रूप यह हो जायगा—

$$व-भ=१४७'.९९१\;ज्या\;२\,भ+३'.१८\;ज्या\;४\,भ-०'.०९\;ज्या\;६\,भ+\cdots(३)$$

इस समीकरण के दाहिने पक्ष के पद इतनी शीघ्रता से छोटे हो रहे हैं कि तीसरे पद के आगे आनेवाले पदों को छोड़ देने से कुछ भी हानि नहीं हो सकती। यदि तीसरा पद भी छोड़ दिया जाय तो भी विशेष हानि नहीं। इस प्रकार स्पष्ट भोगांश और उसके विषुवांश का अन्तर कलाओं या असुओं में सहज ही जाना जा सकता है जिससे विषुवांश और भोगांश की सारिणी ३२० पृष्ठ की सारिणी की तरह सहज ही बनायी जा सकती है।

अब इस सूत्र की सहायता से कल्पित सूर्य के मध्यम विषुवांश और स्पष्ट सूर्य के विषुवांश का सम्बन्ध भी जानना आवश्यक है क्योंकि काल समीकरण तो स्पष्ट सूर्य के विषुवांश और कल्पित सूर्य के विषुवांश का अन्तर है। परन्तु कल्पित सूर्य का विषुवांश सूर्य के मध्यम भोगांश के समान होता है। इसलिए समीकरण (२) और पृष्ठ १७८ के समीकरण (७) से यह काम सहज ही निकल सकता है।

पृष्ठ १७८ के समीकरण (७) का नीचे लिखा संक्षिप्त रूप पर्याप्त होगा—

$$स=म+२\,च\;ज्या\;म+\frac{५}{४}\,च^{२}\;ज्या\;२\,म$$

यहाँ स=स्पष्ट मन्द केन्द्र, म=मध्यम मन्द केन्द्र और च=पृथ्वी की केन्द्र च्युति जो $\frac{१}{५९.७०}$ के समान है।

नीच (Perigee) से ग्रह के अन्तर को मन्द केन्द्र कहते हैं (देखो पृष्ठ १६२)। इसलिए यदि मन्द केन्द्र में नीच का भोगांश जोड दिया जाय तो ग्रह का भोगांश आ जायगा। यदि पृथ्वी के नीच का भोगांश नी मान लिया जाय तो

स्पष्ट भोगांश = स + नी

और मध्यम भोगांश = म + नी

स्पष्ट भोगांश को भ माना गया है इसलिए मध्यम भोगांश को भा मान लेना उचित होगा। इसलिए

भ = स + नी अथवा स = भ − नी

भा = म + नी अथवा म = भा − नी

स और म के इन मानों को समीकरण (छ) के संक्षिप्त रूप में उत्थापित करने से

भ − नी = भा − नी + २ च ज्या (भा − नी) + $\frac{\text{५}}{\text{४}}$ च$^{\text{२}}$ ज्या २ (भा − नी)

अथवा

भ = भा + २ च ज्या (भा − नी) + $\frac{\text{५}}{\text{४}}$ च$^{\text{२}}$ ज्या २ (भा − नी) (४)

समीकरण (२) और (४) की सहायता से एक ऐसा समीकरण ज्ञात हो सकता है जिसमें भ न रहे। ऐसे समीकरण से स्पष्ट विषुवांश और माध्यम भोगांश अथवा कल्पित सूर्य के विषुवांश का सम्बन्ध सहज ही जाना जा सकता है। यह प्रकट है कि उपर्युक्त दोनों समीकरणों के योग से ऐसे पद भी प्राप्त होंगे जिनके गुणक बहुत छोटे हों और जिनके रखने से प्राप्त समीकरण का रूप बहुत बढ़ जायगा परन्तु उससे अधिक लाभ नहीं होगा। इसलिए जिन पदों के गुणक ·०००१ से कम होंगे उनको छोड़ दिया जायगा। समीकरण (२) के भ की जगह समीकरण (४) का दाहिना पक्ष उत्थापित करने से और ऐसे पदों को छोड़ देने से जिनके गुणक .०००१ से कम हों, हमें नीचे लिखा समीकरण प्राप्त होगा।

व = भा + २ च ज्या (भ − नी) + $\frac{\text{५}}{\text{४}}$ च$^{\text{२}}$ ज्या २ (भा − नी)

− स्परे$^{\text{२}}$ $\frac{\text{क}}{\text{२}}$ ज्या २ [भ + २ चज्या (भा − नी) + $\frac{\text{५}}{\text{४}}$ च$^{\text{२}}$ ज्या २ (भा − नी)]

+ $\frac{\text{१}}{\text{२}}$ स्परे$^{\text{४}}$ $\frac{\text{क}}{\text{२}}$ ज्या ४ [भा + २ चज्या (भा − नी) + $\frac{\text{५}}{\text{४}}$ च$^{\text{२}}$ ज्या २ (भा − नी)]

यहाँ $\frac{\text{५}}{\text{४}}$ च$^{\text{२}}$ ज्या २ (भा − नी) भी बहुत छोटा है इसलिए चौथे और पांचवें पदों में इसको भी छोड़ देने पर यह पद क्रमानुसार नीचे के रूप के हो जायेंगे।

− स्परे$^{\text{२}}$ $\frac{\text{क}}{\text{२}}$ ज्या [२ भा + ४ च ज्या (भा − नी)] और

$$+\frac{१}{२}\,\text{स्परे}^{४}\frac{\text{क}}{२}\,\text{ज्या}\;[४\;\text{भा}+८\;\text{च ज्या}\;(\text{भा}-\text{नी})]$$

इसमें से चौथा पद

$$=-\text{स्परे}^{२}\frac{\text{क}}{२}\{\text{ज्या}\,२\;\text{भा}\times\text{कोज्या}\;[४\;\text{च ज्या}\;(\text{भा}-\text{नी})]$$
$$+\text{कोज्या}\;२\;\text{भा}\times\text{ज्या}\;[४\;\text{च ज्या}\;(\text{भा}-\text{नी})]\}$$
$$=-\text{स्परे}^{२}\frac{\text{क}}{२}\{\text{ज्या}\;२\;\text{भा}+\text{कोज्या}\;२\;\text{भा}\times ४\;\text{च ज्या}\;(\text{भा}-\text{नी})\}$$

क्योंकि ४ च ज्या (भा — नी) बहुत छोटा कोण है इसलिए इसकी कोटिज्या एक के समान होगी और इसकी ज्या इसी के समान होगी। (देखो Hall and Knight's Trigonometry पृष्ठ २६२)

इसी प्रकार पाँचवाँ पद

$$=\frac{१}{२}\,\text{स्परे}^{४}\frac{\text{क}}{२}\{\text{ज्या}\;४\;\text{भा}\times\text{कोज्या}\;[८\;\text{चज्या}\;(\text{भा}-\text{नी})]$$
$$+\text{कोज्या}\;४\;\text{भा}\times\text{ज्या}\;[८\;\text{च ज्या}\;(\text{भा}-\text{नी})]\}$$
$$=\frac{१}{२}\,\text{स्परे}^{४}\frac{\text{क}}{२}\{\text{ज्या}\;४\;\text{भा}+\text{कोज्या}\;४\;\text{भा}\times ८\;\text{च ज्या}\;(\text{भा}-\text{नी})\}$$
$$=\frac{१}{२}\,\text{स्परे}^{४}\frac{\text{क}}{२}\;\text{ज्या}\;४\;\text{भा}$$

क्योंकि इसके दूसरे पद का गुणक .०००१ से भी कम है इसलिए

$$\text{व}=\text{भा}+२\;\text{चज्या}\;(\text{भा}-\text{नी})+\frac{५}{४}\text{च}^{२}\;\text{ज्या}\;२\;(\text{भा}-\text{नी})$$
$$-\text{स्परे}^{२}\frac{\text{क}}{२}\{\text{ज्या}\;२\;\text{भा}+४\;\text{चज्या}\;(\text{भा}-\text{नी})\times\text{कोज्या}\;२\;\text{भा}\}$$
$$+\frac{१}{२}\text{स्परे}^{४}\frac{\text{क}}{२}\;\text{ज्या}\;४\;\text{भा}\cdots \qquad (५)$$

परन्तु २ ज्या भा — नी) × कोज्या २ भा

$$=\text{ज्या}\;(\text{भा}-\text{नी}+२\;\text{भा})+\text{ज्या}\;(\text{भा}-\text{नी}-२\;\text{भा})$$
$$=\text{ज्या}\;(३\;\text{भा}-\text{नी})-\text{ज्या}\;(\text{भा}+\text{नी})$$

इसलिए यदि समीकरण (५) सरल किया जाय और इसके पद बड़ाई छुटाई के अनुसार क्रम से लिखे जायँ तो

$$\text{व}=\text{भा}+२\text{च ज्या}\;(\text{भा}-\text{नी})-\text{स्परे}^{२}\frac{\text{क}}{२}\;[\text{ज्या}\;२\;\text{भा}]$$

$$+ २ \text{ च स्परे}^२ \frac{\text{क}}{२} \text{ज्या} (\text{ भा} + \text{नी }) + \frac{५}{४} \text{च}^२ \text{ ज्या } २ (\text{भा} - \text{नी})$$

$$- २ \text{ च स्परे}^२ \frac{\text{क}}{२} \text{ ज्या } (३ \text{ भा} - \text{नी}) + \frac{१}{२} \text{स्परे}^४ \frac{\text{क}}{२} \text{ ज्या } ४ \text{ भा} \cdots (६)$$

बस इसी समीकरण से कल्पित सूर्य के विषुवांश अथवा सूर्य के मध्यम सायन भोगांश भा और स्पष्ट सूर्य के विषुवांश व का सम्बन्ध जाना जा सकता है। दाहिने पक्ष में भा के पश्चात् जितने पद आते हैं सब मिलकर काल-समीकरण (equation of time) कहलाते हैं। इन सब पदों में भी पहिले दो पद २च ज्या (भा — नी) — स्परे^{२} $\frac{\text{क}}{२}$ ज्या २ भा बड़े महत्व के हैं क्योंकि अन्य पदों के गुणक इतने छोटे हैं कि छोड़ दिये जा सकते हैं। इसलिए

व = भा + काल-समीकरण

जहाँ काल-समीकरण = २ च ज्या (भा — नी) — स्परे^{२} $\frac{\text{क}}{२}$ ज्या २ भा

यह रेडियन में प्रकट किया गया है। यदि असुओं में प्रकट करना है तो इसे ३४३७.७५ से गुणा कर देना चाहिए क्योंकि १ रेडियन = ३४३७′.७५ और विषुवद्-वृत्त की एक कला की गति एक असु में होती है। इसलिए असुओं में काल समीकरण का रूप यह होगा।

$$३४३७.७५ \{ २ \text{ च ज्या } (\text{भा} - \text{नी}) - \text{स्परे}^२ \frac{\text{क}}{२} \text{ ज्या } २ \text{ भा} \} \qquad (७)$$

यदि च की जगह ०·०१६७५ और नी की जगह २८१°१६′१४″ रख दिया जाय जो १९८९ वि० की मेष संक्रान्ति काल में सूर्य के नीच का सायन भोगांश* था तो

---

* सूर्य के नीचे का यह सायन भोगांश १९२५ ई० के Nautical Almanac पृष्ठ ६२९ के इस सूत्र से जाना गया है—

Mean longitude of solar perigee

$$= 281°13'15''.0 + 6189''\cdot03\tau + 1''\cdot63\tau^2 + 0''\cdot012\tau^3$$

जब कि २८१°१३′१५″ सन् १९०० ई० की जनवरी की पहली तारीख के मध्यान्ह काल का नीच का सायन भोगांश है और τ उस समय से इष्टकाल तक का जूलियन शताब्दी का भिन्न है। १९७९ वि० की मेष संक्रान्ति के लिए $\tau = \frac{८१३७}{३६५२५}$ जब कि १९०० ई० की जनवरी के पहले मध्यान्ह से १९७९ वि० की मेष संक्रान्ति के मध्यान्ह तक के दिनों की संख्या ८१३७ है और ३६५२५ जूलियन शताब्दी के दिनों की संख्या है।

२ चज्या (भा—नी)

=२ च (ज्या भा × कोज्या नी — कोज्या भा × ज्या नी)

=२ च (ज्या भा × कोज्या २८१°३६′१४″ — कोज्या भा × ज्या २८१°३६′१४″)

=२ च{ज्या भा × कोज्या (३६०° — ७८°२३′४६″) — कोज्या भा × ज्या (३६०° — ७८°२३′४६″)}

= २ च {ज्या भा × कोज्या ७८°२३′४६″ + कोज्या भा × ज्या ७८°२३′४६″}

= २ × ·०१६७५ (.२०११ ज्या भा + ·९७९६ कोज्या भा)

= ·००६७४ ज्या भा + ·०३२८२ कोज्या भा

∴ काल समीकरण (७) का रूप यह होगा

३४३७·७५ (.००६७४ ज्या भा + .०३२८२ कोज्या भा — ·०४३·५ ज्या २ भा)

= २३′·१७ ज्या भा + ११२′.८३ कोज्या भा — १४८′·० ज्या २ भा (८)

इसमें इष्टकाल के सूर्य के मध्यम भोगांश भा का मान स्थापित करके ज्या भा, कोज्या भा इत्यादि के मान जाने जा सकते हैं जिससे इष्टकाल का काल-समीकरण जाना जा सकता है। यह असुओं में होगा।

यह प्रकट है कि काल-समीकरण का यह मान सदा के लिए शुद्ध नहीं है क्योंकि इसका यह रूप उस समय आया है जब सूर्य का नीच २८१°३६′१४″ समझा गया है। सूर्य के नीच का सायन भोगांश प्रतिवर्ष १ कला के लगभग आगे बढ़ता है इसलिए १० या १५ वर्षों तक यही समझ लेने में अधिक अशुद्धि नहीं होगी। सूर्य की परम क्रान्ति के भी घटते रहने से कुछ अन्तर हो जाता है परन्तु इसकी गति बहुत मंद है इसलिए इसके कारण १०० वर्ष तक बहुत भेद नहीं हो सकता।

यह बतलाया गया है कि वसंत सम्पात विन्दु के यामोत्तरोल्लंघन के उपरान्त जितना समय नाक्षत्र घड़ी में बीता रहता है उसे नाक्षत्र काल (sidereal time) कहते हैं। यदि किसी समय का नाक्षत्रकाल ना हो और उसी समय स्पष्ट सूर्य का विषुवांश व हो तो स्पष्ट सूर्य के यामोत्तरोल्लंघन के उपरान्त ना — व समय बीता है। इसलिए उस समय के स्पष्ट सूर्य का नतकाल† (hour angle) या

---

† सूर्य या तारे के यामोत्तरोल्लंघन के समय से इष्टकाल तक जितना समय होता है उसको सूर्य या तारे का नतकाल (hour angle) कहते हैं। आजकल पूर्व नतकाल और पच्छिम नतकाल का भेद नहीं माना जाता जैसा कि पृष्ट २६० में

स्पष्ट सावन काल* = ना − व

उसी समय मध्यम सूर्य का नतकाल ना − भा है

∴ मध्यम सावन काल = ना − भा = (ना − व) + (व − भा)

= स्पष्ट सावन काल + काल समीकरण

इसलिए यह सिद्ध हो गया कि काल समीकरण वह समय है जिसे स्पष्ट सावन काल में बीजगणित की रीति से जोड़ देने पर मध्यम सावन काल आ जाता है।

उदाहरण—१६७६ वि० की बसंत पंचमी की मध्यरात्रि के समय काल समीकरण क्या है ?

पहले सूर्य का मध्यम सायन भोगांश जानना चाहिए। इस समय सूर्य का मध्यम स्थान ६ रा८°१२′६″ था (देखो पृष्ठ १४७)। १६७६ वि० की मेष संक्रान्तिकाल में अयनांश २२°३७′३८″ था (देखो पृष्ठ २५२)। मेष संक्रान्ति से २८३ दिन पीछे इस वर्ष वसंत पंचमी हुई थी (देखो पृष्ठ ३६)। इसलिए २८३ दिन में अयन की गति

$$५८''\cdot ६६ \times \frac{२८३}{३६५\cdot २५} = ४५''\cdot ५$$

इसलिए वसंत पंचमी की मध्यरात्रि में मध्यम अयनांश २२°३७′३८″·१ + ४५″·५ = २२°३८′२३″·६ हुआ। स्पष्ट अयनांश जानने के लिए अक्ष विचलन संस्कार भी करना चाहिए परन्तु विस्तार के भय से यह संस्कार छोड़ दिया जाता है। इसलिए २२°३८′२३″.६ को ही स्पष्ट अयनांश मान लिया जाता है। अब,

सूर्य का मध्यम स्थान	=	६ रा८°१२′६″
अयनांश	=	२२°३८′२४″
∴ सूर्य का सायन मध्यम भोगांश	=	१० रा०°५०′३३″
	=	३००°५०′३३″

इसलिए सूत्र (८) के अनुसार,

काल समीकरण = २३′.१७ ज्या ३००°५०′३३″
+ ११२′·८३ कोज्या ३००°५०′३३″

बतलाया गया है। यदि यामोत्तरोल्लंघन काल से २२ घंटा समय हो गया है तो कहेंगे कि नतकाल २२ घंटा है यद्यपि प्राचीन मतानुसार इस समय पूर्वनत २ घंटा होगा।

* यहाँ सावन काल का आरम्भ मध्यान्ह से माना गया है।

$-१४८'\cdot०$ ज्या $(२\times३००°५०'३३'')$
$=२३'\cdot१७$ (—ज्या $५९°९'२७''$)
$+११२'\cdot८३$ (कोज्या $५९°९'२७''$)
$-१४८'$ ज्या $६०१°४१'६''$*
$=-२३'\cdot१७\times\cdot८५८६$
$+११२'\cdot८३\times\cdot५१२६$
$-१४८'(-\cdot८८०४)$
$=-१९'\cdot८९+५७'\cdot८४+१३०'\cdot३०$
$=+१६८'\cdot२५$
$=+१६८\cdot२५$ असु
$=+२८$ पल

यदि अधिक शुद्धता की आवश्यकता हो तो समीकरण (६) की सहायता से काल समीकरण का मान जानना चाहिए। यह भी ध्यान रहे कि सूर्य का जो मध्यम स्थान ऊपर लिया गया है वह सूर्य-सिद्धान्त की रीति से जाना गया है। यदि शुद्ध वेध से सूर्य का मध्यम सायन भोगांश निकाला† जाय तो $३०१°५'२''$ होता है। इसलिए यदि समीकरण (६) तथा वेधसिद्ध मध्यम सायन भोगांश से काल समीकरण निकाला जाय तो नाटिकल अलमैनेक में दिए हुए काल समीकरण के समान होगा।

काल समीकरण प्रकट करने का वक्र (curve)

असुओं में काल समीकरण का रूप सूत्र (७) में यह है

३४३७.७५ { २ च ज्या (भा—नी)—स्परे$^२\frac{क}{२}$ ज्या २ भा}

---

* $६०१°४१'६''=३६०°+२४१°४१'६''=३६०°+१८०°+६१°४१'६''$
$\therefore$ ज्या $६०१°४१'६''=$ ज्या $(१८०°+६१°४१'६'')=-$ ज्या $६१°४१'६''$

† इसकी रीति यह है :—

१९७९ वि० की मेष संक्रान्ति काल में १९२२ के नाटिकल अलमैनेक के अनुसार सूर्य का मध्यम सायन भोगांश $२०°४४'५८''$ था। मेष सक्रान्ति से वसन्त पंचमी की अर्द्धरात्रि तक २८४.४१६७ मध्यम सावन दिन होते हैं और सूर्य के मध्यम सायन भोगांश की गति प्रतिदिन $०°.९८५६४७३३५३९$ होती है। इनको गुणा कर देने से $२८०°.३३४५६२५$ अथवा $२८०°२०'\ ४''.४$ आता है। इसको मेष संक्रान्ति काल के सायन भोगांश में जोड़ देने से $३०१°५'२''.४$ हुआ।

यदि नी को २८१°३६′ मान लिया जाय तो

भा − नी = भा − २८१°३६′ = भा − (३६०° − ७८°२४′)

= भा + ७८°२५′ − ३६०°

= भा + ७८°२४′†

इसलिए उपर्युक्त सूत्र का रूप यह होगा

३४३७.७५ {२ च ज्या (भा + ७८°२४′) − स्परे^{२} $\frac{क}{२}$ ज्या २ भा}

इसमें च और स्परे^{२} $\frac{क}{२}$ के मान उत्थापन करने और सरल करने पर यह रूप होगा।

११५.१६३.४ ज्या (भा + ७ °२४′) − १४७.६६५ ज्या २ भा (क)

इससे दो वक्र खींचे जा सकते हैं जिनके समीकरण क्रमानुसार यह हैं

र = ११५.५६५ ज्या (भा + ७८°२४′) (ख)

रा = − १४७.६६५ ज्या २ भा (खा)

यदि भा की जगह ०, ३०, ६०, ९०, इत्यादि मान उत्थापित किये जायं तो सरल करने पर र, रा और काल-समीकरण के मान पृष्ठ ३५१ की सारिणी के अनुसार होंगे।

इस सारिणी में सौर और अंग्रेजी तारीखें भी दे दी गयी हैं। इन्हीं तारीखों में काल-समीकरण के यह मान ठीक होते हैं। और तारीखों के काल-समीकरण जानने के लिए चित्र ६४ से काम लेना चाहिये। सौर मास की जो तारीखें लिखी हैं वह संक्रान्ति के हिसाब से हैं। जैसे ९ मीन का अर्थ है निरयन मीन संक्रान्ति से ९वां दिन, ६ सिंह का अर्थ है निरयन सिंह संक्रान्ति से ६ठां दिन।

पहले बतला दिया गया है कि काल-समीकरण सूर्य के नीच के मध्यम सायन भोगांश और सूर्य की परम क्रान्ति पर अवलम्बित हैं जो स्थिर नहीं है इसलिए काल-समीकरण के जो मान सारिणी या चित्र ६४ में दिए हुए हैं वह भी सदा के लिए शुद्ध नहीं हैं। इनमें सूक्ष्म अन्तर प्रति वर्ष हो रहा है। सूर्य का मध्यम सायन भोगांश प्रतिवर्ष १ कला के लगभग बढ़ रहा है। इस प्रकार ६० वर्ष में एक अंश का अन्तर

---

† किसी कोण में ३६० अंश जोड़ने या घटाने से उस कोण की ज्या, और कोटिज्या इत्यादि के मानों में कोई अन्तर नहीं पड़ता और न उस कोण के मान में ही कोई अन्तर पड़ता है।

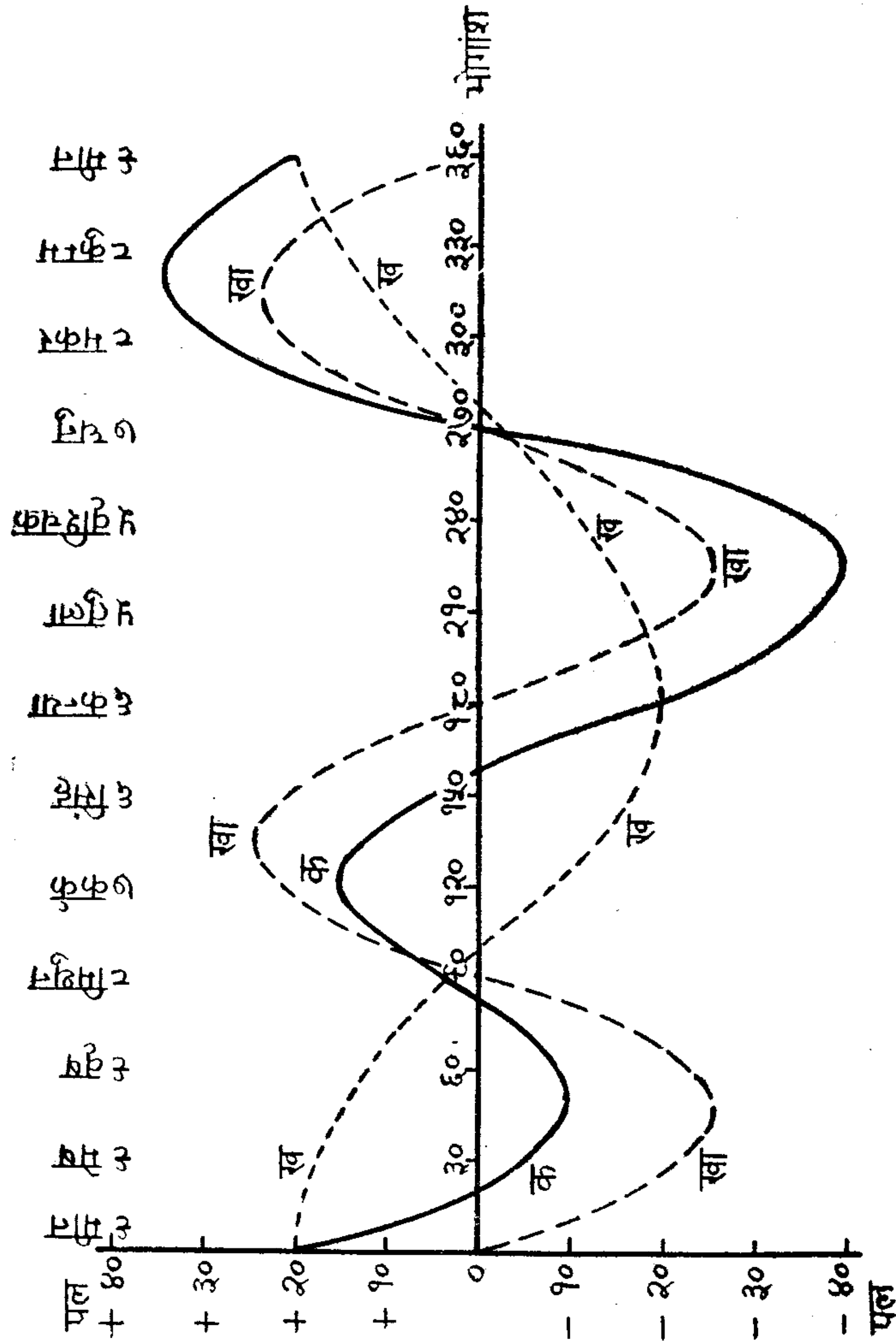
हो जाता है। इसलिए ६० वर्षों तक समीकरण के मान वही समझे जाँय जो सारिणी या चित्र ६४ से विदित होते हैं तो बहुत भूल नहीं पड़ेगी।

भा	र	रा	कालसमीकरण	निरयन सौरमास	अंग्रेजी तारीख
अंश	पल	ला पल	पल		
०	+१८.८	०	+१८.८	६ मीन	२३ मार्च
३०	+१८.२	−२१.४	−३.२	६ मेष	२२ अप्रैल
६०	+१२.४	−२१.४	−९	६ वृष	२३ मई
९०	+३.९	०	+३.९	८ मिथुन	२२ जून
१२०	−६	+२१.४	+१५.४	७ कर्क	२३ जुलाई
१५०	−१४.४	+२१.४	+७	६ सिंह	२२ अगस्त
१८०	−१८.८	०	−१८.८	६ कन्या	२२ सितम्बर
२१०	−१८.२	−२१.४	−३९.६	५ तु	२२ अक्टूबर
२४०	−१२.४	−२१.४	−३३.८	५ वृश्चिक	२१ नवम्बर
२७०	−३.९	०	−३.९	७ धनु	२२ दिसम्बर
३००	+६.१	+२१.४	+२७.५	८ मकर	२१ जनवरी
३३०	+१४.४	+२१.४	+३५.८	८ कुम्भ	२० फरवरी
३६०	+१८.८	०	+१८.८	६ मीन	२३ मार्च

अब वक्र खींचने की रीति संक्षेप में समझायी जाती है (देखो चित्र ६४)।

सूर्य के मध्यम सायन भोगांश भा को भुज (abscissa) और र, रा को कोटि (ordinate) माना गया है। भा की जगह ३०, ६०, ९० इत्यादि रखने से र, रा के जो मान आये हैं वह बिन्दुओं मे प्रकट करके सब को मिला दिया गया है।

इससे दो वक्र बन गये हैं। दो पासवाली ऊर्ध्वाधर (vertical) रेखाओं के बीच का अन्तर ३ अंश और दो पासवाली क्षैतिज (horizontal) रेखाओं के बीच का अन्तर एक पल माना है। जब भा शून्य होता है तब र+१८.६ पल होता है और रा



चित्र ६४

शून्य होता है इसलिये शून्य भोगांश के सामने धनात्मक दिशा में १६वीं क्षैतिज रेखा पर र के लिए एक विन्दु बना दिया है। जब भा ३० अंश होता है तब र+१८.२ और रा −२.१४ होते हैं। इसलिए ३० भोगांश के सामने धनात्मक दिशा में १८वीं

क्षैतिज रेखा पर एक विन्दु र के लिए और ऋणात्मक दिशा में २१वीं और २२वीं क्षैतिज रेखाओं के बीच एक विन्दु रा के लिए स्थिर किया गया है। इसी प्रकार अन्य विन्दु भी स्थिर किये गये हैं। र प्रकट करनेवाले जितने विन्दु हैं उनको मिला देने से ख ख ख ख वक्र बन गया है। इसी प्रकार रा प्रकट करने वाले विन्दुओं को मिला देने से खा खा खा खा वक्र बन गया है। इन दोनों वक्रों की सहायता से क क क क वक्र इस प्रकार खींचा गया है—

शून्य भोगांश पर र=+१८.८ और रा=०। इन दोनों का योग भी +१८.८ ही होगा इसलिए क क क क वक्र का विंदु भी +१८.८ पर होगा अर्थात् इस दशा में ख ख ख ख और क क क क वक्रों के विंदु सामान्य होंगे। ३० भोगांश पर र=+१८.२ और रा=−२१.४। इन दोनों का योग−३.२ है। इसलिए क क क क वक्र का विंदु ऋणात्मक दिशा में तीसरी क्षैतिज रेखा पर होगा। ६०° भोगांश पर र=+१२.४ और रा=−२१.४। इन दोनों का योग−६ है। इसलिए क क क क वक्र का विंदु ऋणात्मक दिशा में ६वीं क्षैतिज रेखा पर होगा। ६० भोगांश पर र=+३.६ और रा=शून्य इसलिए क क क क वक्र का विंदु धनात्मक दिशा दिशा में चौथी क्षैतिज रेखा पर होगा। यह विंदु क क क क और ख ख ख ख दोनों वक्रों पर होगा, इत्यादि।

क क क क वक्र य भुज को (Axis of x को) जहाँ चार विंदुओं पर काटता है वहाँ यह प्रकट होता है कि काल-समीकरण शून्य है। इन समयों में सूर्य का मध्यम भोगांश क्रम से २३, ८२, १६० और २७३.५ के लगभग होते हैं। यह भोगांश क्रम से मेष की २ री, मिथुन की १ ली, सिंह की १६ वीं और धनु की १०वीं तिथियों को होते हैं। इसलिए इन तिथियों में काल-समीकरण शून्य होता है। इसका अर्थ यह है कि इन तिथियों में स्पष्ट काल और मध्यम काल एक ही होते हैं। १७वीं तुला को काल समीकरण−४१ पल है। इसका अर्थ यह है कि इस तिथि को स्पष्ट सावन काल में अथवा धूप-घड़ी के समय में ४१ पल घटाने से मध्यम काल (यांत्रिक घड़ी का समय) ज्ञात होगा। इसी प्रकार मकर की २६वीं तिथि को काल समीकरण+३६ पल है, अर्थात् इस दिन धूप-घड़ी के समय में ३६ पल जोड़ने से मध्यम काल ज्ञात होगा।

---

* यह ऊर्ध्वाधर और क्षैतिज रेखाएँ चित्र में नहीं दिखलायी गई हैं। इनका अनुमान भोगांश के अंकों और बगल में दिये हुए धनात्मक यह ऋणात्मक १०, २०, ३० के अंकों से किया जा सकता है।

अब यह सिद्ध हो गया कि जो लोग रेल या तारघर से मिली हुई घड़ी के समय को ही धूप-घड़ी का भी समय समझ कर लग्न निकालते हैं उनका लग्न शुद्ध नहीं होता क्योंकि धूप और मध्यम घड़ियों में कभी-कभी ४१ पल अथवा १६ मिनट का अंतर रहता है। इसके सिवा देशान्तर के कारण भी अन्तर पड़ता है क्योंकि भारतवर्ष के रेल या तार-घर की घड़ियों का समय ग्रीनविच के*मध्यम समय से ५½ घंटा अथवा १३ घड़ी ४५ पल आगे रखा जाता है। इसलिए यह समय केवल उन स्थानों के मध्यम काल के अनुसार ठीक होता है जो ग्रीनविच से ५½ घंटा अथवा ८२°३०′ पूर्व हैं। मिरजापुर ग्रीनविच से ८२°३८′१०″ पूर्व है। इसलिए मिरजापुर का मध्यम काल भारतीय मध्यम काल से ८′१०″ अथवा ८ असु या सवा पल अधिक है। यदि सवा पल का विचार न किया जाय तो कहा जा सकता है कि भारतीय मध्यम काल जो रेलवे और तार-घरों में प्रयोग किया जाता है मिरजापुर के मध्यम काल के समान होता है। इसलिए पूर्व के स्थानों के मध्यम काल जानने के लिए देशान्तर का संस्कार जोड़ना चाहिये और पश्चिम के स्थानों का मध्यम काल जानने के लिए देशान्तर का संस्कार घटाना चाहिए। यह नीचे के उदाहरणों से स्पष्ट होगा :—

उदाहरण १—प्रयाग में जिस समय सूर्योदय के उपरान्त धूप-घड़ी के अनुसार १६ घड़ी १५ पल बीतता है उस समय रेलवे की घड़ी में क्या समय होगा जब सूर्य का निरयन भोगांश उदय काल में ३ रा ५°१′६″ हो ?

इस दिन सूर्य कर्क राशि के ६ठे अंश पर है इसलिए कर्क की ६ठीं तिथि है। सारिणी में कर्क की ७वीं तिथि को काल समीकरण + १५.४ पल है। इसलिए सारिणी से केवल यही पता लग सकता है कि इस दिन काल समीकरण + १५ पल के लगभग है। चित्र ६४ से जहाँ काल-समीकरण का वक्र दिया हुआ है यह पता चल सकता है कि कर्क की ६ठीं तिथि को काल समीकरण १५.४ पल से अधिक था या कम। देखने से स्पष्ट है कि ७ कर्क के दिन क क क क वक्र के विंदु की जो कोटि है उससे कम ७ कर्क के पहले के दिनों में है इसलिए यह निश्चय होता है कि ६ कर्क को काल समीकरण + १५.४ पल से कुछ कम है और ४ कर्क को यह ठीक + १५ पल है। इसलिए अभीष्ट काल-समीकरण + १५.३ पल के लगभग है। यह धनात्मक है इसलिए १६ घड़ी १५ पल में इसे जोड़ना चाहिए। इसलिए जब प्रयाग में धूप-घड़ी

---

* कुछ लोग समझते हैं कि तार-घर की घड़ी में मदरास का समय रहता है परन्तु यह भ्रम है। मदरास में एक वेधशाला अवश्य है और पहले वही समय सब घड़ियों में रखा जाता था परन्तु अब नियम बदल दिया गया है।

के अनुसार ६ कर्क को १६ घड़ी १५ पल होता है तब प्रयाग का मध्यम काल १६ घड़ी ३०.३ पल होगा।

परन्तु प्रयाग का मध्यम काल भारतीय मध्यम काल से कम होता है क्योंकि प्रयाग देशान्तर ग्रीनविच से ८१°५५′१५″ पूर्व है और भारतीय मध्यम काल ग्रीनविच से ८२°३०′ पूर्व होता है। इसलिए भारतीय मध्यम काल का देशान्तर प्रयाग के देशान्तर से ३४′४५″ पूर्व है। जब देशान्तर में १° का अंतर होता है तब समय में ४ मिनट या १० पल का अंतर हो जाता है और जब देशान्तर में १ कला का अंतर होता है तब समय में १ असु का अंतर पड़ता है इसलिए जब ३४′४५″ का अंतर है तब समय में ३५ असु या ६ पल के लगभग अंतर पड़ेगा। भारतीय मध्यम काल के देशान्तर से प्रयाग पच्छिम में है इसलिए भारतीय मध्यम काल प्रयाग के मध्यम काल से आगे है। इसलिए अभीष्ट काल में भारतीय मध्यम काल १६ घडी ३०.३ पल + ६ पल = १६ घड़ी ३६ पल के लगभग होगा। यह ६ घंटा ३८ मिनट २४ सेकंड के समान है।

इस दिन सूर्योदय से मध्याह्न तक का स्पष्ट सावन काल १६ घड़ी ४३ पल है (देखो पृष्ठ ३३८) जो ६ घंटा ४१ मिनट १२ सेकंड है। परन्तु मध्यान्ह ठीक १२ बजे होता है इसलिए १२ घंटा − ६ घंटा ४१ मिनट १२ सेकंड = ५ घंटा १८ मिनट ४८ सेकंड पर सूर्य का उदय हुआ होगा।

सूर्योदय का स्पष्ट काल = ५ घं० १८ मि० ४८ से०
सूर्योदय से इष्ट समय तक का मध्यमकाल = ६ घं० ३८ मि० २४ से०
∴ रेल घड़ी का समय = ११ घं० ५७ मि० १२ से०

अर्थात् इस समय रेल की घड़ी में ११ बजकर ५७ मिनट और १२ सेकंड होगा।

उदाहरण २—यदि मध्यान्ह के बाद घड़ी में जो रेल की घड़ी से मिली हुई है ५ बजकर २४ मिनट हुए हों तो काशी और प्रयाग की धूपघड़ियों में क्या समय होंगे? इस दिन सूर्योदय काल में सूर्य का भोगांश ६रा१५°२३′३४″ है।

सूर्य तुला राशि के १६वें अंश पर है इसलिए इस दिन तुला नामक सौर मास की १६वीं तिथि है। चित्र ६४ से प्रकट है कि तुला की ५वीं तिथि को काल समीकरण − ३७·५ पल और २०वीं तिथि को − ४१ पल है। इससे सिद्ध होता है कि १५ दिन में — ३·५ पल के लगभग काल समीकरण बढ़ा है। इसलिए ११ दिन में

अर्थात् तुला की १६वीं तिथि को काल समीकरण – २·७ बढ़कर – ४०·२ पल हो जायगा जो – १६ मिनट के लगभग है। यह बतलाया गया है कि

मध्यम काल = स्पष्ट सावन काल + काल समीकरण

∴ ५ घंटा २४ मिनट = स्पष्ट सावन काल + (– १६ मिनट)

∴ स्पष्ट सावन काल = ५ घंटा २४ मिनट + १६ मिनट

= ५ घंटा ४० मिनट

यह समय ग्रीनविच से ८२½ अंश पूर्व के देशान्तर-रेखा पर स्थित स्थानों की धूपघड़ियों में होगा क्योंकि भारतवर्ष भर के तारघरों और रेल के स्टेशनों की घड़ियाँ इसी देशान्तर रेखा के मध्यम काल से मिली रहती हैं।

काशी ग्रीनविच से ८३°३′४″ अथवा ८३°३′ पूर्व है जो ८२° ३०′ से ३३′ अधिक है इसलिए काशी का स्पष्ट सावन काल उपर्युक्त सावन काल से ३३ असु अथवा ५½ पल अधिक होगा जो २ मिनट १२ सेकन्ड अथवा २ मिनट के समान है। इसलिए उस समय काशी की धूप-घड़ी में ५ बजकर ४२ मिनट हुआ रहेगा।

प्रयाग का देशान्तर ८१°५५′१५″ पूर्व है इसलिए यह ८२°३०′ से ३४′ ४५″ पच्छिम है। इसलिए यहाँ की धूप-घड़ी ३४¾ असु या २ मिनट १९ सेकंड पीछे होगी। इसलिए प्रयाग की धूपघड़ी में इस समय ५ घंटा ३७ मिनट ४१ सेकंड होगा।

उदाहरण ३—दूसरे उदाहरण में जो समय दिया हुआ है उस समय प्रयाग में क्या लग्न होगा ?

पहले सूर्योदय का स्पष्ट काल जानना आवश्यक है। इसके लिए प्रयाग का चर काल जानना चाहिए।

सूर्य का निरयन भोगांश = ६रा१५°२३′३४″

१९८२ वि० की १६ तुला को अयनांश = २२°४१′६″ [दे० पृ० २५३]

∴ सूर्य का सायन भोगांग = ७रा८°४′४०″

= ७रा८°५′

= ६ राशि + ३८°५′

∴ सूर्य की क्रान्ति ज्या = ज्या ३८°५′ × ज्या २३°२७′

[दे० पृ० १२३]

= ·६१६८ × ·३९७९

= ·२४५४

∴ क्रान्ति $= 14^\circ 12'$

सूर्य का सयन भोगांश ६ राशि से अधिक है, इसलिए यह दक्षिण क्रान्ति है।

चर ज्या = स्परे अक्षांश × स्परे क्रान्ति

= स्परे २५°२५′ × स्परे १४°१२′

= ·४७५२ × ·२५३०

= ·१२०२

∴ चरांश = ६°५४′

∴ चर पल = ६९ पल

= २७ मिनट ३६ सेकंड

क्रान्ति दक्षिण है इसलिए धूपघड़ी में ६ बज कर २७ मिनट ३६* सेकंड पर प्रयाग में सूर्य का उदय होगा। परन्तु इस दिन काल समीकरण – १६ मिनट है। इसलिए सूर्योदय काल में प्रयाग का मध्यम काल = ६ बजकर २७ मिनट ३६ सेकंड – १६ मिनट = ६ बजकर ११ मिनट ३६ सेकंड

प्रयाग के सूर्योदय काल में भारतवर्ष का मध्यम काल क्या होगा यह जानने के लिए २ मिनट १९ सेकंड और जोड़ना होगा क्योंकि प्रयाग २ मिनट १९ सेकंड पश्चिम है इसलिए यहाँ का मध्यम या स्पष्टकाल भारतवर्ष के मध्यम काल से इतना ही पीछे होगा, इसलिए प्रयाग में सूर्योदय के समय रेल की घड़ी में ६ बजकर १३ मिनट ३५ सेकंड हुआ रहेगा।

सूर्योदय से मध्यम मध्यान्ह काल १२ घंटा – ६ घंटा १३ मिनट ३५ सेकंड अथवा ५ घंटा ४६ मिनट २५ सेकंड पर होता है और संध्या के ५ बजकर २४ मिनट तक ११ घंटा १० मिनट २५ सेकंड होता है। यह २७ घड़ी ५६ पल के समान है। इसलिए इष्टकाल में सूर्योदयोपरान्त २७ घड़ी ५६ पल है। यह मध्यम सावन काल है। इसको नाक्षत्र काल में बदल कर लग्न जानने में सुविधा होगी।

६ सावन घड़ी = ६ नाक्षत्र घड़ी + १ नाक्षत्र पल (पृष्ठ ३२६)

∴ २८ सावन घड़ी = २८ नाक्षत्र घड़ी + ५ नाक्षत्र पल

∴ २७ घड़ी ५६ पल (सावन)

= २७ घड़ी ५६ पल + ५ पल (नाक्षत्र)

= २८ घड़ी १ पल (नाक्षत्र)

---

* वर्तन (Refraction of light) के कारण सूर्योदय इससे भी कुछ पहले होता है जिसकी चर्चा आगे की जायगी।

उदयकाल में सूर्य का निरयन भोगांश＝६^रा^१५°२३′.३४″

＝६^रा^१५°२४′

इसलिए उदयकाल में तुला राशि का १५°२४′ लग्न है।

प्रयाग में तुला राशि का उदयकाल ५ घड़ी ४२ पल है।

जब ३०° का उदय ५ घड़ी ४२ पल में होता है

तब १५° ,, २ घड़ी ५१ पल में होगा

और ३०′ ,, ५ पल ४२ वि० में होगा

६′ ,, १ पल ८ वि० में होगा

∴ १५°२४′ का उदय २ घड़ी ५५ पल ३४ वि० में होगा

अर्थात् तुला का भुक्तकाल＝२ घड़ी ५६ पल के लगभग

∴ तुला का भोग्यकाल ＝२ घड़ी ४६ पल के लगभग

वृश्चिक का उदयकाल	＝५ ,,	४४	,,
धनु का ,,	५ ,,	१५	,,
मकर का ,,	४ ,,	२५	,,
कुंभ का ,,	३ ,,	४८	,,
मीन का ,,	३ ,,	४१	,,
कुल का योग	२५ ,,	३६	,,

अर्थात् सूर्योदय से घड़ी ३६ पल तल मीन राशि का उदय हो चुका।

इसलिए इष्टकाल में मेष राशि उदय हो रही है इसलिए यही उदय लग्न है। इसी को साधारणतः लग्न कहते हैं। यह जानने के लिए कि मेष राशि का कौन विंदु लग्न है अनुपात से काम लेना चाहिये।

इष्टकाल＝२८ घड़ी १ पल

मीन के अंत का उदयकाल २५ घड़ी ३६ पल

मेष का भुक्तकाल＝२ घड़ी २२ पल

＝१४२ पल

मेष का उदयकाल＝४ घड़ी ४ पल＝२४४ पल

२४४ पल:१४२ पल :: ३० अंश: भुक्तांश

$$\therefore \text{भुक्तांश} = \frac{१४२ \times ३०}{२४४} = १७°२७.′५$$

∴ मेष का १७°२७′.५ लग्न है।

उदाहरण ४—यदि प्रयाग में सूर्योदय काल के स्पष्ट सूर्य का निरयन भोगांश ६रा१५°२३′३४″ हो तो उस दिन उज्जैन में जिस समय सूर्य याम्योत्तरवृत्त पर आवेगा उस समय भारतीय मध्यम काल क्या होगा ?

उज्जैन ग्रीनविच से ७५°४६′ पूर्व देशान्तर और २३°९′ उत्तर अक्षांश पर है। प्रयाग का देशान्तर ८१°५५′१५″ और उत्तर अक्षांश २५°२५′ है।

उज्जैन प्रयाग से ८१°५५′१५″ − ७५°४६′ = ६°९′१५″ पच्छिम है। इसलिए उज्जैन का स्पष्ट मध्यान्ह प्रयाग के स्पष्ट मध्यान्ह से २४ मिनट ३७ सेकंड पीछे होगा। तीसरे उदाहरण में बतलाया गया है कि प्रयाग में धूपघड़ी के अनुसार ६ बजकर २७ मिनट ३६ सेकंड पर सूर्योदय होगा। इसलिए सूर्योदय के समय

नतकाल = १२ घंटा − ६ घं० २७ मि० ३६ से०.
= ५ घंटा ३२ मि० २४ से०

अर्थात् सूर्योदय के ५ घंटा ३२ मिनट २४ सेकंड उपरान्त स्पष्ट मध्यान्ह होगा। परन्तु सूर्योदय के समय भारतीय मध्यमकाल ६ घंटा १३ मिनट ३५ सेकंड होता है इसलिए प्रयाग में स्पष्ट मध्यान्ह के समय भारतीय मध्यकाल = ६ घंटा १३ मि० ३५ से० + ५ घं० ३२ मि० २४ से०

= ११ घंटा ४५ मिनट ५९ सेकंड

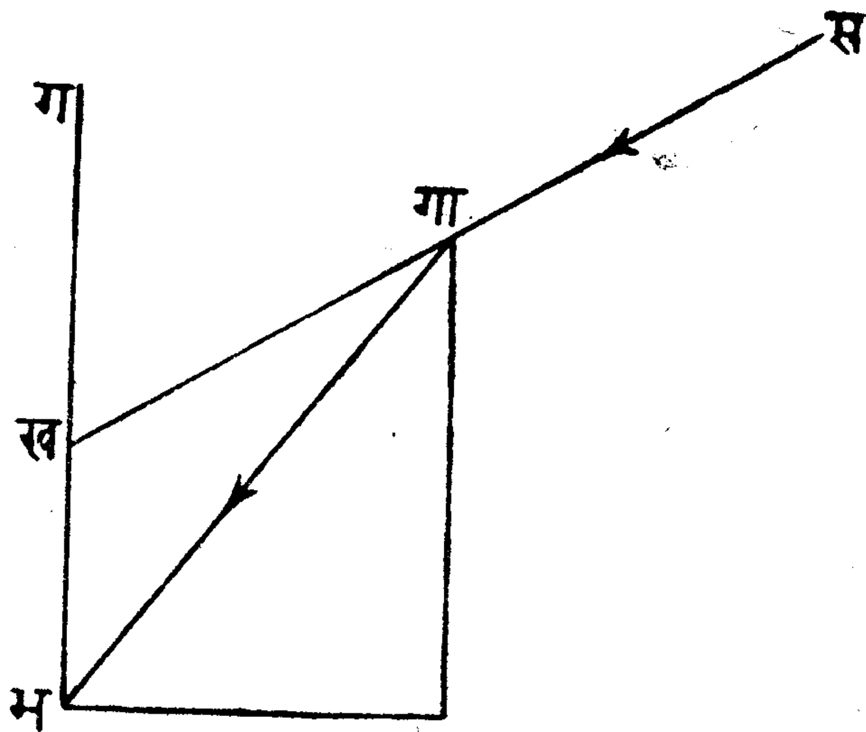
उज्जैन प्रयाग से २४ मिनट ३७ सेकंड पच्छिम है इसलिए यहाँ स्पष्ट मध्यान्ह प्रयाग के स्पष्ट मध्यान्ह से २४ मिनट ३७ सेकंड पीछे होगा। परन्तु प्रयाग के स्पष्ट मध्यान्ह के समय भारतीय मध्यम काल ११ घंटा ४५ मिनट ५९ सेकंड होता है, इसलिए उज्जैन के स्पष्ट मध्यान्ह के समय रेल की घड़ी में १२ बजकर १० मिनट ३६ सेकंड हुआ रहेगा।

पृष्ठ ८० की टिप्पणी में लिखा गया है कि किरणों के झुक जाने के कारण गणना के समय से सूर्योदय कुछ पहले हो जाता है। इसलिए यह बतलाना आवश्यक है कि किरणों का झुकना क्या है और इससे दिन के परिमाण में जो अन्तर पड़ जाता है उसका संशोधन कैसे करना चाहिये।

वर्तन (REFRACTION OF LIGHT)

हवा, जल, काँच, अबरक ऐसे पदार्थ हैं जिनमें प्रकाश घुसकर दूसरी ओर चला जाता है। इसलिए ये पारदर्शक (transparent) कहलाते हैं। जब प्रकाश एक समजातीय (homogeneous) पारदर्शक पदार्थ से दूसरे समजातीय पारदर्शक

पदार्थ में जाता है तब उसकी दिशा वही नहीं रहती जो पहले पारदर्शक पदार्थ में होती है। इस घटना को किरण का वर्तन या केवल वर्तन कहते हैं। इसको कुछ लेखकों ने किरणवक्रीभवन का नाम दिया है परन्तु कई बातों की सुविधा के विचार से इसको वर्तन कहना अच्छा जान पड़ता है। इससे किसी वस्तु के यथार्थ और स्पष्ट स्थानों में बड़ा अन्तर देख पड़ता है। कभी-कभी वस्तुएँ विचित्र रूप धारण कर लेती हैं। परन्तु इन सब घटनाओं की चर्चा करने के लिए यह स्थान उचित नहीं हैं। यहाँ केवल उतना ही बतलाया जायगा जितना ज्योतिष से सम्बन्ध रखता है। अनुभव के लिए एक छोटा सा उदाहरण देना पर्याप्त होगा :—



चित्र ६५

पानी भरा हुआ गिलास धूप में रख दो और देखो कि गिलास का कितना भाग धूप से प्रकाशित होता है। पानी गिरा कर गिलास को फिर उसी जगह रख दो। इस बार गिलास का कुछ कम भाग प्रकाशित होगा। चित्र ६५ में ग गा एक गिलास है। यदि पानी भर कर यह धूप में रखा जाय तो ग से भ तक प्रकाशित देख पड़ता है अर्थात् यह देख पड़ता है कि धूप गिलास के पेंदे के किनारे तक भी पहुँचती है। परन्तु पानी गिरा कर गिलास को फिर वहीं रख देने पर देख पड़ता है कि अब गिलास का केवल ग ख भाग प्रकाशित रहता है, पेंदे तक धूप जाती ही नहीं। इससे यह प्रकट होता है कि हवा में यदि किरण स गा ख दिशा में होती है तो पानी में घुसते ही यह गा भ दिशा में हो जाती है।

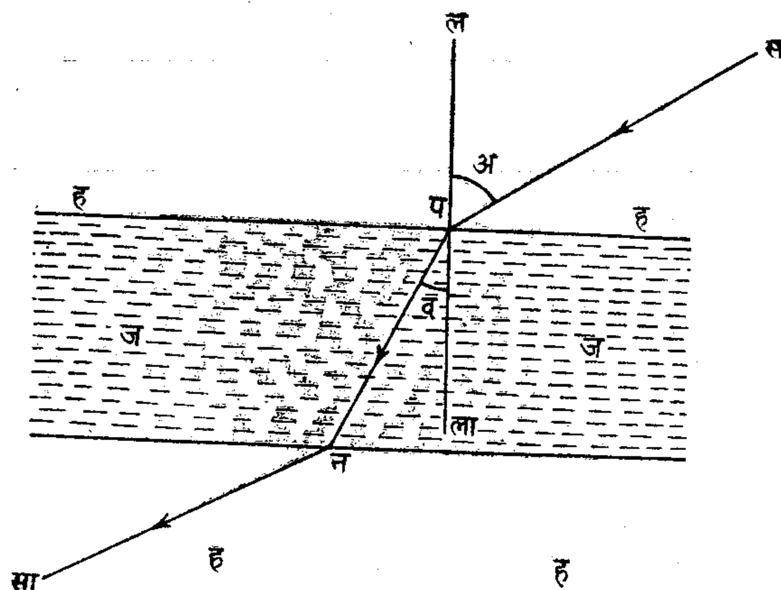
यदि प्रकाश की कोई किरण स प एक समजातीय पारदर्शक पदार्थ ह ह से दूसरे समजातीय पारदर्शक पदार्थ ज ज में प विन्दु से प्रवेश करके प न दिशा में चलती हुई न विन्दु से वह फिर ह ह पदार्थ में निकल आती है तो न सा और स प किरणें समानान्तर होती हैं। स प को आपात किरण (incident ray) प न को वर्तित किरण (refracted ray) और न सा को निर्गत किरण (emergent ray) कहते हैं। यदि प विन्दु पर ल प ला लम्ब (Normal) हो तो स प ल कोण को आपात कोण (angle of incidence) और न प ला कोण को वर्तित कोण (angle of refraction) कहते हैं। आपात और वर्तित किरणों तथा प्रवेश विन्दु का लम्ब एक ही तल में रहते हैं।

आपात और वर्तित कोणों में जो परस्पर सम्बन्ध होता है वह नीचे के सूत्र से प्रकट किया जाता है—

$$\frac{\text{आपात कोण की ज्या}}{\text{वर्तित कोण की ज्या}} = \text{स्थिर संख्या}$$

यदि आपात कोण को अ, वर्तित कोण को व और स्थिर संख्या को ध से सूचित किया जाय तो उपर्युक्त सूत्र का सरल रूप यह होगा

$$\frac{\text{ज्या अ}}{\text{ज्या व}} = \text{ध}; \text{ अथवा ज्या अ} = \text{ध} \times \text{ज्या व}$$

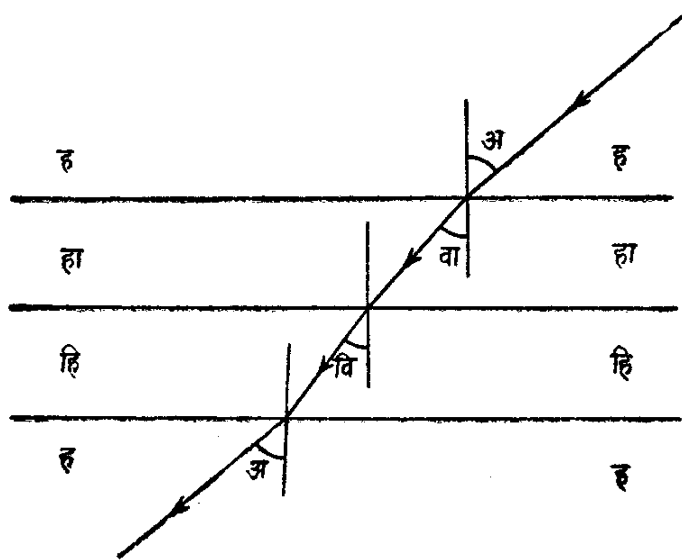


चित्र ६६

अ के बदलने से व भी इस तरह बदलेगा कि इन दोनों की ज्याओं का सम्बन्ध सदैव ध के समान होगा। ध का परिणाम दो पारदर्शक पदार्थों के गुण के

अनुसार बदलता है। इसको पहले पारदर्शक पदार्थ से दूसरे पारदर्शक पदार्थ का वर्तनाङ्क (index of refraction) कहते हैं। जब प्रकाश पतले पारदर्शक पदार्थ से घन पारदर्शक पदार्थ में जाता है तब वर्तित किरण लम्ब की ओर झुक जाती है अर्थात् वर्तित कोण आपात कोण से छोटा होता है। परन्तु जब प्रकाश घने पदार्थ से पतले पदार्थ में जाता है तब वह लम्ब से दूर हो जाता है। चित्र ६६ में ज ज पदार्थ ह ह पदार्थ से घना है इसलिए ज ज में वर्तित किरण लम्ब की ओर हो गई है और ज ज से निकल कर ह ह में आते समय वह लम्ब से दूर हो गयी है। यदि प्रकाश की दिशा उलट जाय अर्थात् ज ज में इसकी दिशा न प हो तो ह ह में इसकी दिशा प स हो जायगी। कई पारदर्शक पदार्थों में होता हुआ प्रकाश जिस जिस वक्र या टूटी हुई रेखा से जाता है यदि दिशा उलट जाय तो उसी उसी रेखा से वह लौट भी आता है।

मान लो ह ह, हि हि तीन पारदर्शक पदार्थों के स्तर हैं जो परस्पर समानान्तर हैं।



चित्र ६७

यदि ह ह से हा हा का वर्तनाङ्क धा हो और ह ह से हि हि का वर्तनांक धि है तो हा हा से हि हि के वर्तनाङ्क का ज्ञान सहज ही हो सकता है। यह परीक्षा से अनुभव किया जा सकता है कि यदि प्रकाश ह ह से हा हा और हि हि होता हुआ फिर ह ह में प्रवेश करे तो इसकी जो दिशा पहले ह ह में होती है वही अन्त में भी होती है अर्थात् ह ह और हा हा के प्रवेश विंदु पर जो अ पात कोण बनता है वही हि हि से ह ह में निकलते समय निर्गत विंदु पर भी बनता है। वर्तन के नियम के अनुसार

$$\text{ज्या अ} = \text{धा} \times \text{ज्या वा};\quad \text{ज्या अ} = \text{धि} \times \text{ज्या वि}$$

$$\therefore \text{धा} \times \text{ज्या वा} = \text{धि} \times \text{ज्या वि}$$

$$\text{अथवा}\quad \frac{\text{ज्या वा}}{\text{ज्या वि}} = \frac{\text{धि}}{\text{धा}}$$

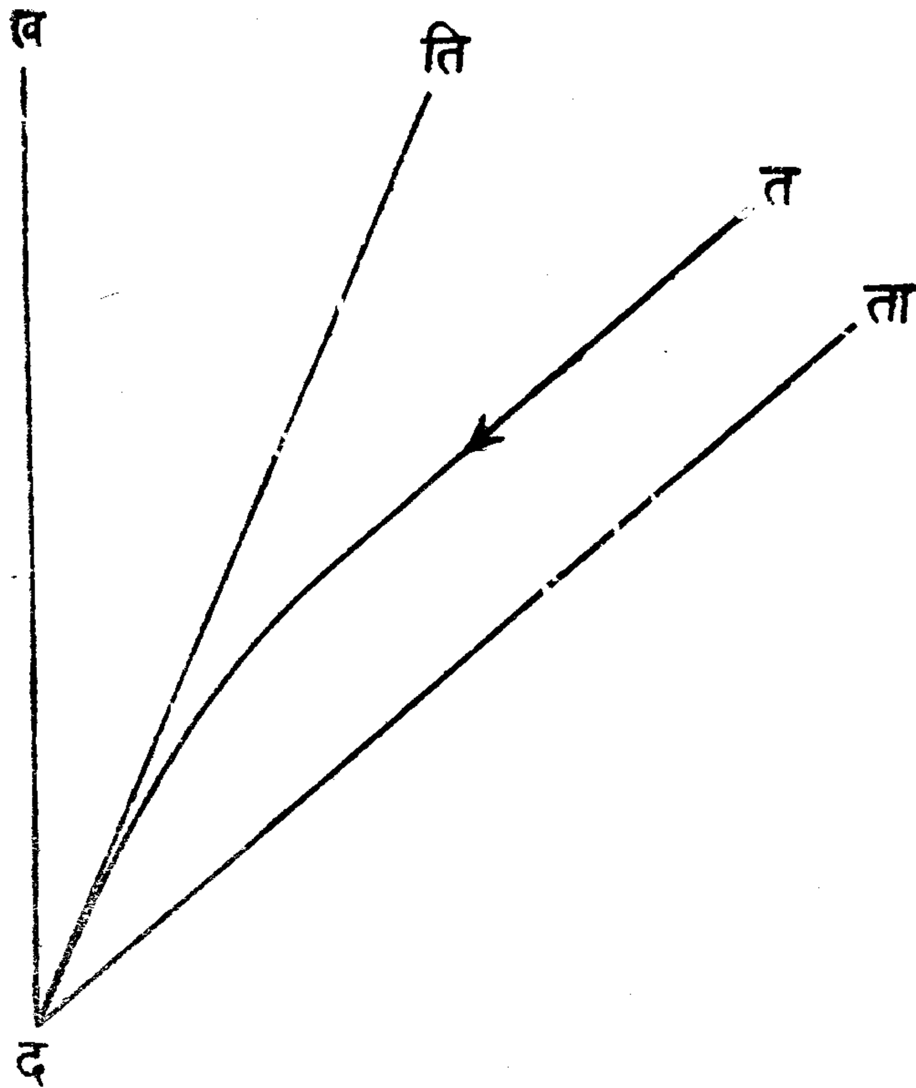
इससे यह सिद्ध होता है कि यदि एक पदार्थ ह ह से दूसरे पदार्थ हा हा का वर्तनाङ्क धा हो और पहले ही पदार्थ से तीसरे पदार्थ हि हि का वर्तनांक धि हो और यदि हा हा से हि हि में जाने वाली किरण का आपात कोण वा और वर्तित कोण वि हो तो दूसरे पदार्थ हा हा से तीसरे पदार्थ हि हि में जाने वाली किरण का वर्तनाङ्क धि ÷ धा होगा।

ज्योतिष संबंधी वर्तन—खगोल पिंडों से जो प्रकाश पृथ्वी पर आता है उसकी किरणें जब वातावरण में घुसती हैं तब इनमें वर्तन होता है। ऐसे वर्तन को ज्योतिष संबंधी वर्तन (Astronomical refraction) कहते हैं। वातावरण का घनत्व ऊपर से नीचे तक एक सा नहीं है। जैसे जैसे पृथ्वी से दूरी अधिक होती जाती है तैसे तैसे वातावरण पतला होता जाता है इसलिए कुल वातावरण सजातीय नहीं है। खगोलीय पिंड से आती हुई किरण जब वातावरण में प्रवेश करती है तब पहले बहुत पतले स्तर में जाती है और ज्यों ज्यों पृथ्वी के निकट पहुँचती आती है त्यों त्यों कम घने से अधिक घने स्तर में आने के कारण वह लम्ब की ओर कुछ कुछ झुकती हुई पृथ्वी पर पहुँचती है। इसलिए वातावरण में इसका मार्ग वक्र होता है। पृथ्वी पर पहुँचते समय किरण की जो दिशा होती है उसी में खगोलीय पिंड देख पड़ता है।

किसी तारे से कोई किरण त क की दिशा में क तक सीधी आकार क स्थान पर वातावरण में प्रवेश करती है। इस स्थान से इसकी राह सीधी नहीं रहती। क से द्रष्टा के स्थान द तक किरण को वातावरण के भिन्न-भिन्न स्तरों में घुसना पड़ता है जो क्रमशः घनी होती जाती हैं। इसलिए किरण भी क्रमशः वक्र होती जाती है और अन्त में द तक पहुँच जाती है। इस वक्र के द बिन्दु पर द ति स्पर्शरेखा है। द्रष्टा को जान पड़ता है कि तारा द ति दिशा में है। यदि द से द ता रेखा क त के समानान्तर खींची जाय तो द ता* दिशा में तारा उस समय देख पड़ता जब किरण को झुका देनेवाला वातावरण न होता। इसलिए वातावरण का प्रभाव यह हुआ कि

---

* बिलकुल शुद्ध दिशा द त है परन्तु त तारा इतनी दूर है कि त द ता कोण शून्य के समान है।



चित्र ६८

तारे का स्पष्ट स्थान ता से ति हो गया अर्थात् तारा खस्वस्तिक ख की ओर कुछ चढ़ा हुआ देख पड़ता है। इसलिए वर्तन के कारण खगोलीय पिंड का नतांश कुछ कम हो जाता है और उन्नतांश उतना ही अधिक हो जाता है। चित्र में इस वर्तन का परिमाण ता द ति कोण के समान है। त का यथार्थ नतांश ता द ख और स्पष्ट नतांश ति द ख है। जिस समय खगोलीय पिंड क्षितिज में रहता है उस समय उसका वर्तन सबसे अधिक ३५′ के लगभग होता है।

अब यह प्रकट हो गया होगा कि वातावरण के कारण किसी खगोलीय पिंड का स्पष्ट स्थान वही नहीं होता जो यथार्थ में होना चाहिए। इसलिए यदि वर्तन का संस्कार न किया जाय तो गणना में कुछ भूल रह जाती है। नीचे एक सारिणी* दी

* R. S. Ball's Spherical Astronomy page 120.

बताती है जिससे यह जान पड़ेगा कि वर्तन के कारण किसी तारे का नतांश कितना कम हो जाता है। यह सारिणी उस समय की है जिस समय वातावरण का दबाव ३० इंच ऊँचे पारे के दबाव के समान होता है और तापक्रम ५०° फारनहैट के समान होता है। इससे भिन्न अवस्था में कुछ अंतर हो जाता है।

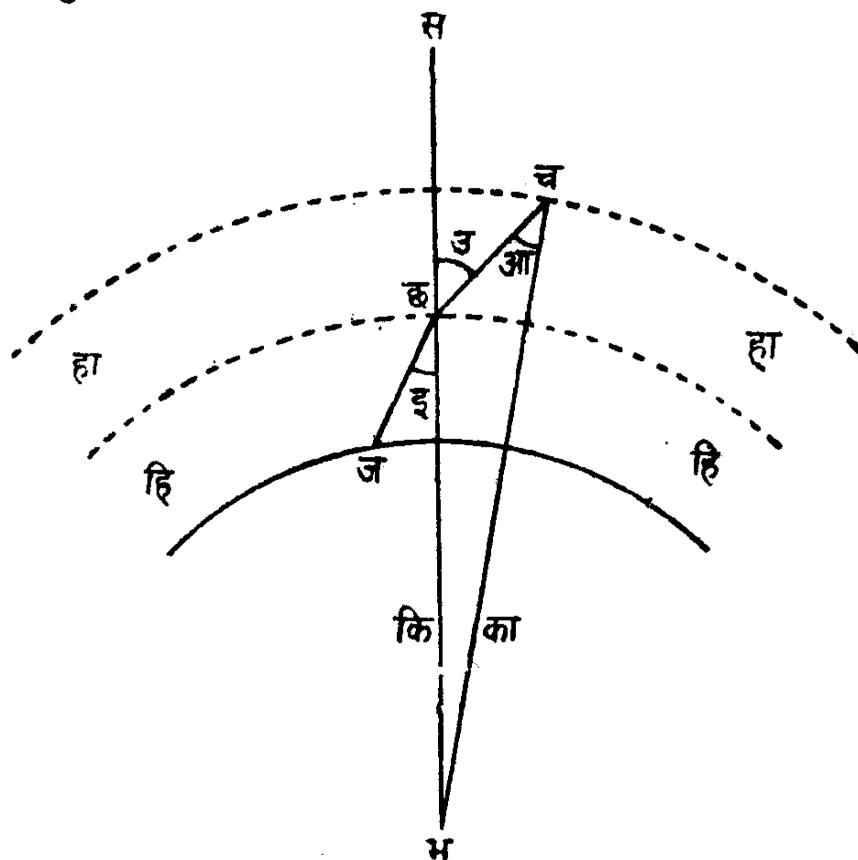
स्पष्ट नतांश	वर्तन	स्पष्ट नतांश	वर्तन	स्पष्ट नतांश	वर्तन
०°	०″	३५°	४१″	७०°	२′३६″
५°	५″	४०°	४६″	७५°	३′३४″
१०°	१०″	४५°	५८″	८०°	५′१६″
१५°	१६″	५०°	१′६″	८५°	६′५१″
२०°	२१″	५५°	१′२३″	८७°	१४′१३″
२५°	२७″	६०°	१′४१″	८८°	१८′१६″
३०°	३४″	६५°	२′४″	८८°४०′	२२′२२″
				९०°	३५′ लगभग

इस सारिणी से किसी तारे का यथार्थ नतांश सहज ही जाना जा सकता है। जैसे यदि किसी तारे का स्पष्ट नतांश ६०° हो तो इसका यथार्थ नतांश ६०°१′४१″ होगा। यह भी ध्यान देने की बात है कि जो तारा ठीक सिर के ऊपर (खस्वस्तिक पर) रहता है उसका स्पष्ट और यथार्थ स्थान एक ही होता है और यदि स्पष्ट नतांश ४५° से कम हो तो उसका वर्तन १′ से अधिक नहीं होता है। यदि स्पष्ट नतांश २०° से अधिक न हो तो प्रति १° नतांश के लिए १″ वर्तन होता है।

वातावरण सम्बन्धी वर्तन की साधारण मीमांसा—

सरलता के लिए यह समझ लेना अच्छा होगा कि पृथ्वी पूर्ण गोल है और वातावरण में नीचे से ऊपर तक पतले-पतले स्तर हैं जिनके केन्द्र भी वही हैं जो पृथ्वी

का केन्द्र है। यह भी मान लेना चाहिए कि प्रत्येक स्तर का वर्तनाङ्क उस स्तर में सब जगह स्थिर है परन्तु एक स्तर का वर्तनाङ्क दूसरे स्तर के वर्तनाङ्क से भिन्न है।



चित्र ६६

चित्र ६६ में ऐसे दो स्तरों हा हा और हि हि का सम्बन्ध दिखलाया जाता है। मान लो कि जब प्रकाश शून्य (aether) से हा हा में आता है तब इसका वर्तनाङ्क धा और जब प्रकाश शून्य से हि हि में आता है तब इसका वर्तनाङ्क धि होता है। मान लो कि हा हा में किरण की दिशा च छ है और हि हि में इसी किरण की दिशा छ ज हो जाती है।

यदि भ पृथ्वी का केन्द्र हो और भ च = का, भ छ = कि,

∠ भ च छ = आ, ∠ भ छ ज = इ और ∠ स छ च = उ हो,

तो पृष्ठ ३६३ के अनुसार

$$\frac{\text{ज्या उ}}{\text{ज्या इ}} = \frac{\text{धि}}{\text{धा}} \quad \therefore \text{ज्या उ} = \text{ज्या इ} \times \frac{\text{धि}}{\text{धा}}$$

परन्तु भ च छ त्रिभुज में

$$\frac{\text{ज्या उ}}{\text{का}} = \frac{\text{ज्या आ}}{\text{कि}} \quad \therefore \text{ज्या उ} = \text{ज्या आ} \times \frac{\text{का}}{\text{कि}}$$

$$\therefore \text{ज्या इ} \times \frac{\text{धि}}{\text{धा}} = \text{ज्या आ} \times \frac{\text{का}}{\text{कि}}$$

अथवा कि × धि × ज्या इ = का × धा × ज्या आ

यह नियम किसी दो पासवाले स्तरों के लिये ठीक है। इस प्रकार यह साधारण नियम निकल आता है—

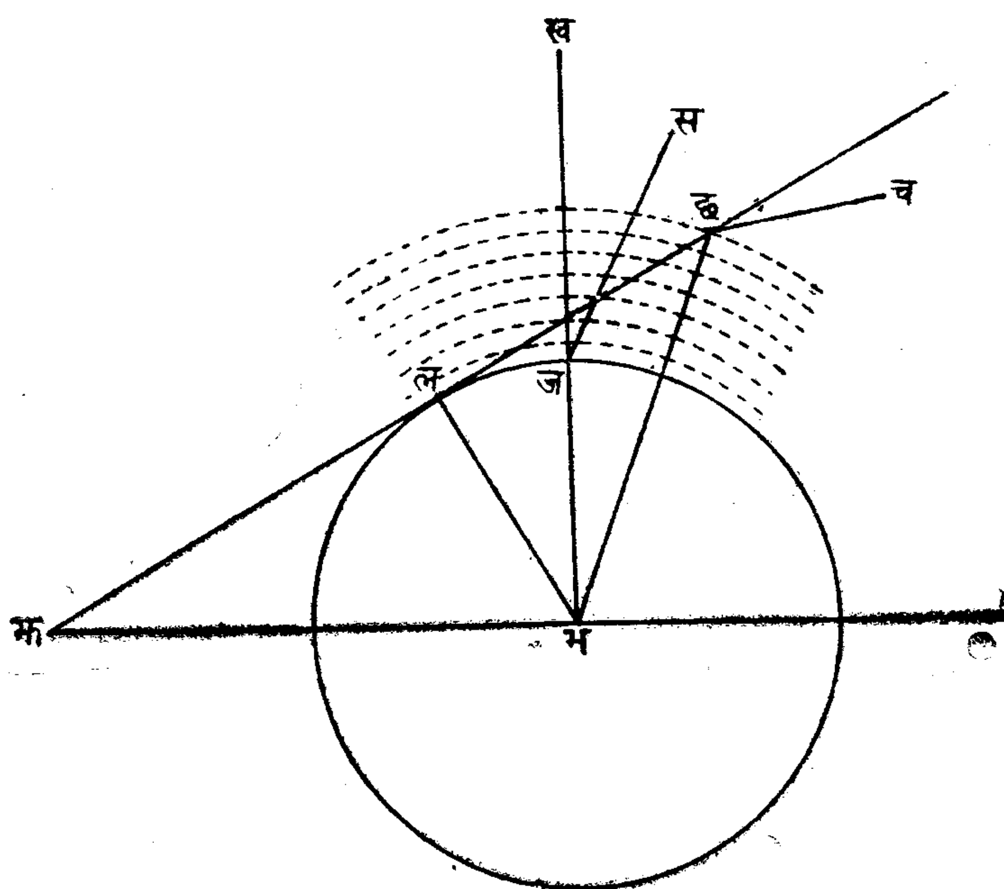
यदि वातावरण गोल सजातीय स्तरों का बना हुआ मान लिया जाय जिनका केन्द्र वही हो जो पृथ्वी का केन्द्र है परन्तु जिनका घनत्व एक दूसरे से भिन्न होता जाता है तो जब प्रकाश की किरण एक स्तर से दूसरे स्तर में घुसती हुई आगे बढ़ती है तब किसी स्तर के वर्तनाङ्क, त्रिज्या और वर्तित कोण की ज्या के गुणनफल स्थिर होते हैं।

इस नियम को नीचे के सूत्र से भी प्रकट किया जा सकता है—

का × धा × ज्या आ = क × ध × ज्या न (१)

जहाँ का, धा और आ क्रमशः किसी स्तर की त्रिज्या, वर्तनांक और वर्तित कोण और क, ध, न क्रमशः पृथ्वी की त्रिज्या, सबसे नीचे के स्तर के वर्तनांक और वर्तित कोण हैं। भूतल को छूने वाले स्तर में जो वर्तित कोण है वह प्रायः नतांश के समान होता है इसलिए न खगोलीय पिंड का स्पष्ट नतांश भी है।

यदि इन स्तरों को बहुत पतला मान लिया जाय तो किरण का मार्ग टूटी हुई रेखा के स्थान में वक्र रेखा होगी। मान लो च छ ज वह वक्र है जिस पर किरण इन पतले पतले स्तरों में क्रमशः घुसती हुई पृथ्वी तल के ज विन्दु पर पहुँचती है। इस वक्र के छ विन्दु पर छ ल भ एक स्पर्शरेखा है। किरण छ विन्दु पर जिस स्तर में घुसती है उसका वर्तनांक धा और त्रिज्या का हैं। यह स्पर्शरेखा वक्र बनानेवाली किरण से कुछ दूर तक एक हो जाती है इसलिए इस विन्दु पर जो वर्तित कोण बनता है वह छ ल भ कोण के समान होता है। मान लो यह आ के समान है, जब किरण वातावरण के सबसे ऊपरवाले स्तर में घुसती है तब इसकी दिशा वही होती है जो शून्य में उसकी यथार्थ दिशा है। जिस समय किरण पृथ्वी तल के विन्दु ज पर पहुँचती है उस समय इस विन्दु पर वक्र की जो स्पर्शरेखा ज स होती है वह उस दिशा को सूचित करती है जिसमें किरण द्रष्टा की आंख में पहुँचती है। यदि ज स्थान का खस्वस्तिक ख हो तो यही ख ज स कोण तारे का स्पष्ट नतांश होता है। सबसे ऊपर वाले स्तर में वक्र की जो स्पर्शरेखा होती है तथा पृथ्वी तल के बिन्दु पर वक्र की जो स्पर्शरेखा होती है उन दोनों के बीच में जो कोण होता है वही ज्योतिष सम्बन्धी वर्तन कहलाता है। इसी के जानने से किसी तारे के स्पष्ट और यथार्थ स्थान की जानकारी हो सकती है। इसी को साधारणतः वर्तन कहते हैं। यदि इसका



चित्र ७०

परिमाण व माना जाय तो ता (व) अर्थात् व की तत्कालिक गति पासवाले किसी दो स्तरों के वर्तनों का अन्तर और ता (धा) अर्थात वर्तनांक की तात्कालिक गति उन्हीं दो स्तरों के वर्तनांकों का अन्तर हुआ। यदि आ और इ इन दोनों स्तरों के वर्तित कोण तथा धा, धि इनके वर्तनांक हों तो

आ − इ = ता (व) और धि — धा = ता (धा)

∴ इ = आ — ता (व) और धि = धा + ता (धा)

परन्तु का × धा × ज्या आ = कि × धि × ज्या इ

यदि वातावरण के दो पतले स्तर बहुत पास हों तो उनकी त्रिज्याएँ प्रायः समान होती हैं इसलिए का = कि। ऐसी दशा में

धा × ज्या आ = धि × ज्या इ

= [धा + ता (धा)] × ज्या [आ − ता (व)]

= [धा + ता (धा)] × [ज्या आ × कोज्या ता (व) −
कोज्या आ × ज्या ता (व)]

परन्तु ता (व) बहुत छोटा और चापीय मान में है इसलिए ज्या ता (व) = ता (व) और कोज्या ता (व) = १

$\therefore$ धा $\times$ ज्या आ

$= [$धा $+$ ता (धा)$][$ज्या आ $-$ ता (व) $\times$ कोज्या आ$]$

$=$ धा $\times$ ज्या आ $-$ धा $\times$ ता (व) $\times$ कोज्या आ $+$ ता(धा) $\times$ ज्या आ

क्योंकि चौथे पद में ता (धा) और ता (व) के गुणनफल का गुणक (coefficient) बहुत छोटा है इसलिए छोड़ दिया गया है।

$\therefore 0 =$ ता (धा) $\times$ ज्या आ $-$ धा $\times$ ता (व) $\times$ कोज्या आ

$$\therefore \frac{\text{ज्या आ}}{\text{धा} \times \text{कोज्या आ}} = \frac{\text{ता (व)}}{\text{ता (धा)}}$$

अथवा
$$\frac{\text{ता (व)}}{\text{ता (धा)}} = \frac{\text{स्परे आ}}{\text{धा}} \qquad (२)$$

समीकरण (१) और (२) से ऐसा समीकरण जाना जा सकता है जिसमें आ न रहे।

समीकरण (१) से ज्या आ $= \dfrac{\text{क} \times \text{ध} \times \text{ज्या न}}{\text{क} \times \text{धा}}$

त्रिकोणमिति के यह प्रकट है कि

$$\text{स्परेआ} = \frac{\text{ज्या आ}}{\sqrt{(1 - \text{ज्या}^2 \text{ आ})}}$$

$$= \frac{\dfrac{\text{क} \times \text{ध} \times \text{ज्या न}}{\text{का} \times \text{धा}}}{\sqrt{\left(1 - \dfrac{\text{क}^2 \times \text{ध}^2 \times \text{ज्या}^2 \text{ न}}{\text{का}^2 \times \text{धा}^2}\right)}}$$

$$= \frac{\text{क} \times \text{ध} \times \text{ज्या न}}{\sqrt{(\text{का}^2 \times \text{धा}^2 - \text{क}^2 \times \text{ध}^2 \times \text{ज्या}^2 \text{ न})}}$$

$$\therefore \frac{\text{ता (व)}}{\text{ता (धा)}} = \frac{1}{\text{धा}} \times \frac{\text{क} \times \text{ध} \times \text{ज्या न}}{\sqrt{(\text{का}^2 \times \text{धा}^2 - \text{क}^2 \times \text{ध}^2 \times \text{ज्या}^2 \text{ न})}}$$

यही ज्योतिष सम्बन्धी वर्तन का साधारण चलन-समीकरण (differential equation) है। यदि सबसे ऊपरवाले स्तर का वर्तनांक १ और सबसे नीचेवाले स्तर का वर्तनांक ध मान लिये जाय और उपर्युक्त चलन समीकरण का इन्हीं सीमाओं के बीच चलराशिकलन (Integration) किया जाय तो ज्योतिष सम्बन्धी वर्तन का पूरा ज्ञान किया जा सकता है। परन्तु ऐसा करने में कठिनाई यह पड़ती है कि इस चलन समीकरण में का और धा दो चल राशियाँ (Variables) हैं जिनका परस्पर सम्बन्ध ज्ञात नहीं हो सकता क्योंकि हमें इस बात का ठीक-ठीक पता नहीं है कि

पृथ्वी की किस ऊँचाई पर वर्तनांक क्या है। परन्तु इसके बिना जाने भी उपर्युक्त समीकरण का चलराशि कलन एक युक्ति से निकाला जा सकता है जिससे यथार्थ वर्तन का प्राय: ठीक-ठीक ज्ञान हो सकता है।

इस युक्ति में $\frac{\text{क}}{\text{क}}$ को १ + छ मान लेना होता है जब कि छ का परिमाण अत्यन्त छोटा होता है क्योंकि का वातावरण के किसी स्तर की त्रिज्या है और क पृथ्वी की त्रिज्या है। यह भी ज्ञात है कि उस वातावरण की ऊँचाई जिसमें किरणों को झुका देने (वर्तन करने) का गुण होता है अधिक से अधिक ५० मील है। पृथ्वी की त्रिज्या अर्थात् क ४००० मील है, इसलिए $\frac{\text{का}}{\text{क}} = \frac{४०५०}{४०००} = १ + \frac{१}{८०}$। इससे स्पष्ट है कि छ $= \frac{१}{८०}$ और इसके वर्ग, घन इत्यादि इतने छोटे हैं कि छोड़ दिये जा सकते हैं। ऐसी कल्पना करने से

$$\text{व} = \int_{१}^{\text{ध}} \frac{\text{ध ज्या न ता (धा)}}{\text{ध (धा}^{२} - \text{ध}^{२}\text{ ज्या}^{२}\text{ न} + २\text{ छ धा}^{२})^{\frac{१}{२}}}$$

$$= \int_{१}^{\text{ध}} \frac{\text{ध ज्या न ता (धा)}}{\text{धा (धा}^{२} - \text{ध}^{२}\text{ ज्या}^{२}\text{ न})^{\frac{१}{२}}} \left(१ + \frac{२\text{ छ धा}^{२}}{\text{धा}^{२} - \text{ध}^{२}\text{ ज्या}^{२}\text{ न}}\right)^{\frac{१}{२}}$$

$$= \int_{१}^{\text{ध}} \frac{\text{ध ज्या न ता (धा)}}{\text{धा (धा}^{२} - \text{ध}^{२}\text{ ज्या}^{२}\text{ न})^{\frac{१}{२}}} - \int_{१}^{\text{ध}} \frac{\text{छ.धा.ध ज्या न ता (धा)}}{(\text{धा}^{२} - \text{ध}^{२}\text{ ज्या}^{२}\text{ न})^{\frac{१}{२}}}$$

सरल करने पर इसका रूप यह होगा—

$$\text{व} = \text{प स्परे न} + \text{फ स्परे}^{3}\text{ न} \qquad (१)$$

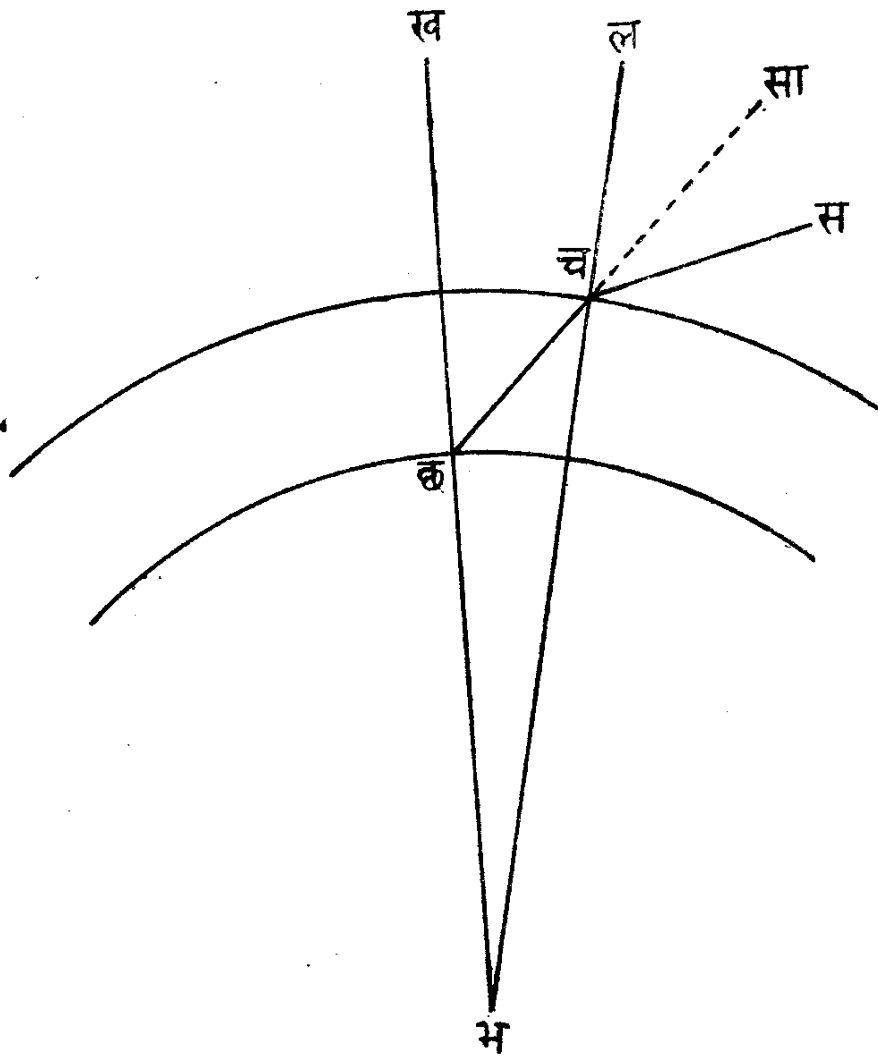
जहाँ प और फ कोई स्थिर राशियाँ हैं और न स्पष्ट नतांश है। प और फ के मान प्रत्यक्ष वेध से जाने जा सकते हैं।

कैसिनी का सूत्र—

कैसिनी नामक ज्योतिषी ने यह कल्पना किया कि वातावरण ऊपर से नीचे तक सजातीय है अर्थात् एक ही घनत्व का है। इस कल्पना से वर्तन का जो सूत्र ज्ञात हुआ वह ऊपर बतलाये गये सूत्र से मिलता जुलता है। इससे वर्तन का जो परिमाण जाना जाता है वह ८०° तक के नतांश के लिए सन्तोषप्रद है। यदि नतांश ८०° से अधिक हो तो वर्तन के परिमाण में स्थूलता रह जाती है।

इस कल्पना में यह मान लेना पड़ता है कि शून्य से आती हुई किरण वातावरण में प्रवेश करते ही एक बार झुक जाती है और फिर वही दिशा पृथ्वी तल तक बनी रहती है।

मान लो स च छ एक किरण है जो च विन्दु पर झुकी हुई है।



चित्र ७१

पृथ्वी की त्रिज्या = भ छ = क

भ च = क (१ + छ) जबकि छ बहुत छोटा है जैसा कि पहले बतलाया गया है।

अ = आपात कोण = ∠स च ल = ∠स च सा + ∠ल च सा

= वर्तन + वर्तित कोण = व + छ च भ = व + वा

∠ख छ च = स्पष्ट नतांश

वर्तन के नियम के अनुसार

ज्या अ = ध × ज्या वा   या   ज्या (व + वा) = ध × ज्या वा

जहाँ ध वातावरण का वर्तनांक है।

यह स्पष्ट है कि व बहुत छोटा होता है। इसलिए

ज्या (व + वा) = ज्या व × कोज्या वा + कोज्या य × ज्या वा

= व × कोज्या वा + ज्या वा

∴ ज्या वा + व × कोज्या वा = ध × ज्या वा

∴ व = (ध − १) स्परे वा

त्रिभुज भ छ च में,

$$\frac{\text{ज्या वा}}{\text{ज्या न}} = \frac{\text{क}}{\text{क (१+छ)}} = \frac{१}{१+\text{छ}}$$

$$\therefore \text{ज्या वा} = \frac{\text{ज्या न}}{१+\text{छ}}$$

परन्तु स्परे वा = ज्या वा ÷ कोज्या वा = ज्या वा ÷ $\sqrt{(१ - \text{ज्या}^२ \text{ वा})}$

$$= \frac{\text{ज्या न}}{१+\text{छ}} \div \sqrt{१ - \frac{\text{ज्या}^२ \text{ न}}{(१+\text{छ})^२}}$$

$$= \frac{\text{ज्या न}}{\sqrt{\{(१+\text{छ})^२ - \text{ज्या}^२ \text{ न}\}}}$$

$$\therefore \text{व} = (\text{ध}-१) \frac{\text{ज्या न}}{\sqrt{\{(१+\text{छ})^२ - \text{ज्या}^२ \text{ न}\}}}$$

$$= (\text{ध}-१) \frac{\text{ज्या न}}{\sqrt{\{१ + २\text{ छ} + \text{छ}^२ - \text{ज्या}^२ \text{ न}\}}}$$

छ² बहुत छोटा है इसलिए छोड़ दिया जा सकता है। ऐसी दशा में

$$\text{व} = (\text{ध}-१) \frac{\text{ज्या न}}{\sqrt{(\text{कोज्या}^२ \text{ न} + २\text{ छ})}}$$

$$= \frac{(\text{ध}-१) \text{ ज्या न}}{\sqrt{\left(१ + \frac{२\text{ छ}}{\text{कोज्या}^२ \text{ न}}\right)} \times \text{कोज्या न}}$$

$$= \frac{(\text{ध}-१) \text{ स्परे न}}{\sqrt{(१ + २\text{छ} \times \text{छे}^२ \text{ न})}} *$$

* Secant को छेदन रेखा कहते हैं जो Cosine अर्थात् कोटिज्या का विलोम होता है। छेदन रेखा का संक्षिप्त रूप छे माना गया है। इसी तरह Cosecant अर्थात् कोटिच्छेदन रेखा का संक्षिप्त रूप कोछे प्रयोग किया जाता है।

$$=(\text{ध}-१)\ \text{स्परे न}\ (१-\text{छ}\times\text{छे}^{२}\ \text{न})$$
$$=(\text{ध}-१)\ \text{स्परे न}\ \{१-\text{छ}\ (१+\text{स्परे}^{२}\ \text{न})\}$$
$$=(\text{ध}-१)\ \text{स्परे न}\ \{१-\text{छ}-\text{छ स्परे}^{२}\ \text{न}\}$$
$$=(\text{ध}-१)\ (१-\text{छ})\ \text{स्परे न}-\text{छ}\ (\text{ध}-१)\ \text{स्परे}^{3}\ \text{न}$$
$$=\text{प स्परे न}+\text{फ स्परे}^{3}\ \text{न} \qquad (२)$$

यह पहले ही रूप का है। यहाँ प=(ध—१) (१—छ) और फ=—छ (ध—१)

इस सूत्र का प्रयोग व्यवहार में उसी समय हो सकता है जब प और फ के मान ज्ञात हों। इनका ज्ञान प्रत्यक्ष वेध से हो सकता है जिसकी चर्चा आगे की जायगी। मान लो* यह पाया गया है कि ५०° फारनहैट के तापक्रम पर जबकि वायु का दबाव ३० इंच ऊँचे पारे के दबाव के समान है ५४° और ७४° नतांशों के वर्तन क्रमशः ८०″·०६ और २००″·४६ हैं।

उपर्युक्त सूत्र के अनुसार दो समीकरण यह हुए

८०″·०६=प (स्परे ५४°)+फ (स्परे ५४°)^{3}

२००″·४६=प (स्परे ७४°)+फ (स्परे ७४°)^{3}

इन समीकरणों से प और फ के मान क्रमशः ५८″·२९४ और ०″·०६६८२ आते हैं। इसलिए ५० फा० और ३० इंच के दबाव पर वर्तन का साधारण सूत्र यह होता है

$$\text{व}=५८''\cdot२९३\ \text{स्परे न}—०''.०६६८२\ \text{स्परे}^{3}\ \text{न} \qquad (३)$$

यह भी प्रकट है कि $\frac{\text{फ}}{\text{प}}=\frac{१}{८७३}$, इसलिए जब तक स्परे^{3}न बहुत बड़ा न हो अर्थात् यदि सूर्य, या, तारा क्षितिज के पास न हो तब तक दूसरा पद भी छोड़ देने से कोई हानि नहीं हो सकती।

यदि नतांश ७०° से अधिक न हो और तापक्रम में भी बहुत अन्तर न हो तो वर्तन का मान जानने के लिए नीचे लिखे सरल पद का प्रयोग उचित होगा।

क स्परे न

जहाँ क के लिए ५८″·२ लेना अधिक शुद्ध होगा। इस क को वर्तन का गुणक (Coefficient of refraction) कहते हैं।

वायुमंडल का वर्तनांक ०°श तापक्रम और ७६० मि०मी० दबाव पर १·०००२९४ है (देखो Ball's Spherical Astronomy page 117) और कैसिनी

---

* Ball's Spherical Astronomy पृष्ठ १२७

के सूत्र के अनुसार ५०° फा० तापक्रम और ३० इंच दबाव पर वर्तनांक १·०००२८३ होता है।

सिम्प्सन और ब्रैडली नामक ज्योतिषियों ने भी वर्तन के सूत्र बनाये हैं परन्तु उनकी मीमांसा यहाँ आवश्यक नहीं है। यहाँ केवल ब्रैडली का सूत्र दे देना पर्याप्त होगा—

व=५८″·३६१ स्परे (न—४·०६ व) (४)

इस सूत्र से ८०° नतांश तक वर्तन का परिमाण सन्तोषजनक होता है। इस सूत्र से क्षितिज के पास वाले तारों का वेध ठीक-ठीक किया जा सकता है क्योंकि नतांश ९० अंश के निकट होने पर भी स्परे (न—४·०९ व) का परिमाण बहुत बड़ा नहीं होने पावेगा।

तापक्रम तथा वायुमंडल के दबाव के घटने-बढ़ने से भी वर्तन के परिमाण में अन्तर पड़ जाता है। परन्तु इन सब की चर्चा विस्तार के भय से छोड़ दी जाती है।

वेध से वातावरण के वर्तन का परिमाण जानना

वर्तन के लिए जो सूत्र पहले स्थापित किया गया है उसके गुणकों के मान जानने के लिए कई रीतियाँ काम में लायी जाती हैं। इनमें से तीन रीतियों की चर्चा यहाँ की जायगी। पहली और दूसरी रीतियों से एक ही वेधशाला के वेधों से काम चल सकता है यदि इसका अक्षांश बहुत कम या अधिक न हो। तीसरी रीति में दो वेधशालाओं की आवश्यकता पड़ती है।

पहली रीति—ऐसा तारा चुनना चाहिए जो दोनों याम्योत्तरोल्लंघनों के समय क्षितिज के ऊपर रहे। चित्र ७२ में त, ता ऐसे ही एक तारे के स्पष्ट स्थान स्थान हैं। दोनों समय तारे का स्पष्ट नतांश जान लेना चाहिए। मान लो तारे का स्पष्ट नतांश त स्थान पर न और ता स्थान पर ना है।

सूत्र के अनुसार इसके यथार्थ नतांश हुए

न+प स्परे न+फ स्परे^{3} न

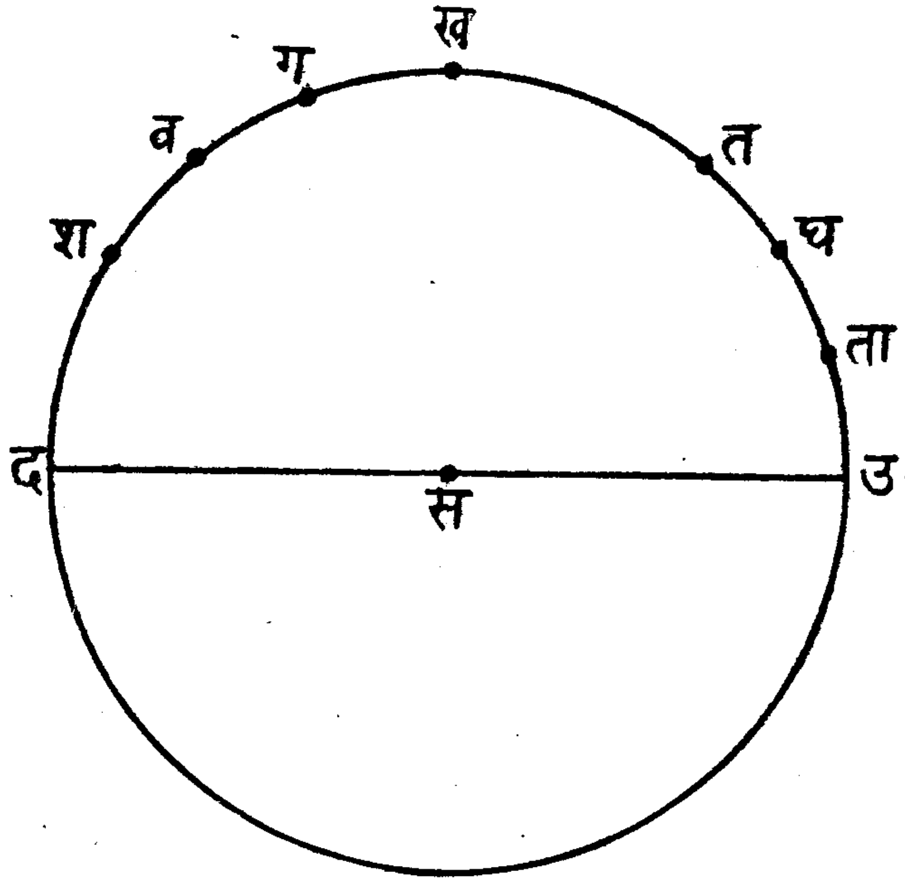
और ना+प स्परे ना+फ स्परे^{3} ना

यदि त, ता तारे के यथार्थ स्थान मान लिए जायँ तो त ध=ता ध और ख त+ख ता=२ ख ध=२ लम्बांश=२ (९०°—अ) अर्थात् दोनों यथार्थ नतांशों का योग=२ (९०°—अ), जहाँ स स्थान का अक्षांश अ है।

∴ न+प स्परे न+फ स्परे^{3} न+ना+प स्परे ना

+फ स्परे^{3} ना=१८०°—२ अ

यदि इस समीकरण में न और ना के मान जो वेध से जाने जाते हैं उत्थापित किये जायं तो तीन अज्ञात अंकों प, फ और अ का एकघात (linear) समीकरण आ जाता है। इसी प्रकार यदि तीन तारों के स्पष्ट नतांश वेध से जान लिये जायँ तो तीन समीकरण मिल जायँगे जिनसे प, फ और अ के मान सहज ही जाने जा सकते हैं।



चित्र ७२

उ स द=स स्थान की उत्तर दक्खिन रेखा

उ, द=क्षितिज के क्रमशः उत्तर दक्षिण विन्दु

उ ध ख व द=यामोत्तर वृत्त

ध=उत्तरी आकाशीय ध्रुव

ख=स स्थान का खस्वस्तिक

व=विषुवद्वृत्त और यामोत्तर वृत्त का सामान्य विन्दु

त=यामोत्तरोल्लंघन के समय तारे का उच्चतम स्थान

ता=यामोत्तरोल्लंघन के समय उसी तारे का नीचतम स्थान

ग=सूर्य का ग्रीष्मायन विन्दु

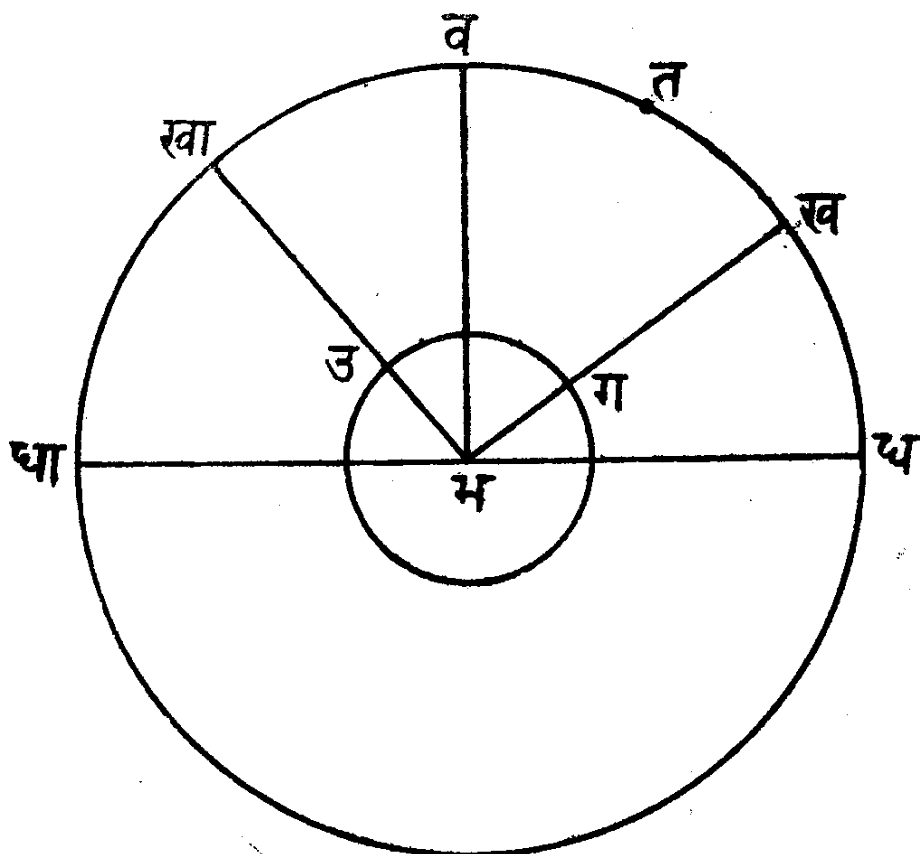
श=सूर्य का शीतायन विन्दु

दूसरी रीति—अयनान्त विन्दुओं के निकट जब सूर्य हो तब इसके नतांशों से भी वर्तन के स्थिर गुणक प, फ जाने जा सकते हैं।

चित्र ७२ में ख ग और ख श सूर्य के यथार्थ नतांश हों तो ख ग+ख श=२ ख व=२ अ

मान लो ग का स्पष्ट नतांश न और श का स्पष्ट नतांश ना है तो

$$\text{न}+\text{प स्परे न}+\text{फ स्परे}^3\text{ न}+\text{ना}+\text{प स्परे ना}+\text{फ स्परे}^3\text{ ना}=\text{२ अ}$$



चित्र ७३

भ=पृथ्वी का केन्द्र	छोटा वृत्त=पृथ्वीतल
बड़ा वृत्त=याम्योत्तर वृत्त	ध, धा=उत्तरी और दक्षिणी आकाशीय ध्रुव
ग=उत्तर गोल की एक वेधशाला	उ=दक्षिण गोल की दूसरी वेधशाला
ख=ग स्थान का खस्वस्तिक	खा=उ स्थान का खस्वस्तिक
व=विषुवद्वृत्त का एक विन्दु	त=तारा

ध भ धा=पृथ्वी का अक्ष

यदि अ ज्ञात हो और फ स्परे^{3} न या फ स्परे^{3} ना बहुत छोटे होने के कारण छोड़ दिये जायें तो प का मान सहज ही जाना जा सकता है। परन्तु इस रीति में ६ महीने लग जाते हैं।

तीसरी रीति—इस रीति में उत्तर और दक्खिन की दो वेधशालाओं से याम्योत्तर वृत्त पर स्थित उसी तारे के स्पष्ट नतांश जानकर वर्तन के गुणक स्थिर किये जाते हैं।

ग वेधशाला से त तारे का दक्षिण नतांश ख त और उ वेधशाला से त तारे का उत्तर नतांश खा त हैं।

ख त = ख व − व त = अ − क

खा त = खा व + व त = आ + क

जब कि अ, आ दोनों वेधशालाओं के अक्षांश और क तारे की क्रान्ति हैं।

यदि ग और उ से त के स्पष्ट नतांश न और ना हों तो

ख त = न + प स्परे न + फ स्परे^{3} न

और खा त = ना + प स्परे ना + फ स्परे^{3} ना

∴ न + प स्परे न + फ स्परे^{3} न + ना + प स्परे ना + फ स्परे^{3} ना

= ख त + खा त = अ + आ

यदि फ स्परे^{3} न और फ स्परे^{3} ना को अत्यन्त छोटे होने के कारण छोड़ दिया जाय तो

न + प स्परे न + ना + प स्परे ना = अ + आ

इसमें न, ना, अ और आ के मान वेध से जानकर उत्थापित करने से प का मान जाना जा सकता है। यदि फ का मान भी जानना हो तो एक और तारे के स्पष्ट नतांश जानने की आवश्यकता पड़ेगी।

उदाहरण के लिए अन्तरमदा पुञ्ज के ख तारे (β Andromeda) के नतांश ग्रीनविच और उत्तमाशा अन्तरीप (Cape of Good Hope) की वेधशालाओं से जिनके अक्षांश क्रमशः ५१°२८′३८″ उत्तर और ३३°५६′४″ दक्षिण हैं लिये जाते हैं। पहली वेधशाला से तारे का स्पष्ट दक्षिण नतांश जब वह याम्योत्तर वृत्त पर था १६°२०′३″ और दूसरी वेधशाला से उसी तारे का स्पष्ट उत्तर नतांश ६९°१′५०″ था। इसलिए

१६°२०′३″ + प स्परे १६°२०′३″ + ६९°१′५०″ + प स्परे ६९°१′५०″

= ५१°२८′३८″ + ३३°५६′४″

= ८५°२४′४२″

∴ प (स्परे १६°२०′३″ + स्परे ६९°१′५०″)

= ८५°२४′४२″ − ८५°२१′५३″

= २′४९″

या प (.२९३० + २.६०९३) = २′४९″ = १६९″

$\therefore$ प $= \frac{१६६}{२.६०२३} =$ ५८″·२३

वर्तन के कारण आकाशीय पिंडों का उदय कुछ पहले और अस्त कुछ पीछे देख पड़ता है इसलिए दिनमान बढ़ जाता है।

आकाशीय पिण्डों का उदय उस समय समझा जाता है जिस समय उनका केन्द्र पूर्व क्षितिज पर आ जाता है। उस समय उनका स्पष्ट नतांश ९०° होता है। परन्तु यह सिद्ध हो चुका है कि स्पष्ट नतांश से यथार्थ नतांश वर्तन के समान अधिक होता है। यह भी बतलाया गया है कि जिस समय स्पष्ट नतांश ९०° होता है उस समय वर्तन ३५′ के लगभग होता है। इसलिए उदय होने के समय आकाशीय पिंड का यथार्थ नतांश ९०°३५′ के लगभग होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि जिस समय आकाशीय पिंड का केन्द्र क्षितिज पर लगा हुआ देख पड़ता है उस समय क्षितिज से वह ३५′ के लगभग नीचे रहता है। इसलिये यह प्रत्यक्ष है कि जब सूर्य का केन्द्र क्षितिज से ३५′ नीचे रहता है तभी से वह उदय हुआ देख पड़ता है और अस्त होने के समय जब तक उसका केन्द्र क्षितिज से ३५′ नीचे तक नहीं पहुँच जाता तब तक देख पड़ता है। इस कारण स्पष्ट दिनमान यथार्थ दिनमान से ५ मिनट या १२, १३ पल के समान अधिक होता है। इस बढ़ती का ठीक-ठीक परिमाण जानने के लिए हमें उदय होते हुए सूर्य के नतकाल की तात्कालिक गति निकालनी चाहिए।

सूर्य का नतकाल जानने का सूत्र यह है [देखो पृष्ठ २९१ समीकरण (१)]

कोज्या (नतकाल) $\times$ कोज्या अक्षांश $\times$ कोज्या क्रान्ति

$=$ कोज्या नतांश $-$ ज्या अक्षांश $\times$ ज्या क्रान्ति

यदि नतकाल, अक्षांश, क्रान्ति और स्पष्ट नतांश के लिए न त, अ, क और न क्रमानुसार मान लिये जायँ और कुछ पद दाहिने से बायें अथवा बायें से दाहिने पक्ष में कर दिये जायँ तो

कोज्या न $=$ ज्या अ $\times$ ज्या क $+$ कोज्या अ $\times$ कोज्या (न त) $\times$ कोज्या क

अक्षांश और क्रान्ति को स्थिर मानकर न और न त के तात्कालिक सम्बन्ध ज्ञात किये जायँ तो

ज्या न $\times$ ता (न) $=$ कोज्या अ $\times$ कोज्या क $\times$ ज्या (नत) $\times$ ता (नत)

परन्तु उदय या अस्त होते हुए सूर्य का नतांश ९०° होता है इसलिए

ज्या न $=$ ज्या ९०° $=$ १; कोज्या न $=$ ० इसलिए

कोज्या (न त) $= -$ स्परे अ $\times$ स्परे क (१)

ता (न) $=$ कोज्या अ $\times$ कोज्या क $\times$ ज्या (न त) $\times$ ता (न त)

अथवा

$$\text{ता (न त)} = \frac{\text{ता (न)}}{\text{कोज्या अ} \times \text{कोज्या क} \times \text{ज्या (न त)}} \qquad (२)$$

यदि नतांश की तात्कालिक गति ता (न) की जगह ३५′ उत्थापित की जाय तो ९०° के स्पष्ट नतांश के वर्तन के लगभग होती है और समीकरण (२) का दाहिना पक्ष सरल किया जाय तो यह ज्ञात होगा कि वर्तन के कारण उदयकालिक नतकाल कितना बढ़ जाता है।

उदाहरण १—काशी में सायन कर्क और सायन मकर संक्रान्ति के दिन स्पष्ट सूर्योदय से स्पष्ट सूर्यास्त तक के समय क्या हैं ?

आजकल सायन कर्क संक्रान्ति के दिन सूर्य की उत्तर क्रान्ति २३°२७′ और सायन मकर संक्रान्ति के दिन सूर्य की दक्षिण क्रान्ति २३°२७′ होती है। काशी का अक्षांश २५°१८′ मान लिया जाता है।

∴ कर्क संक्रान्ति के दिन

कोज्या (नत) = −स्परे २५°१८′ × स्परे २३°२७′

= −.४७२७ × .४३३७

= −.२०५०

यह ऋणात्मक है। इसलिए सिद्ध होता है कि नतकाल ९०° से अधिक है। यदि नतकाल = ९०° + ना, तो

कोज्या (९०° + ना) = .२०५०

−ज्या (ना) = −.२०५०

∴ ना = ११°५०′

∴ नतकाल = ९०° + ११°५०′ = १०१°५०′

= ६ घंटा ४७ मिनट २० सेकंड

= १६ घड़ी ५८ पल

यह गणित सिद्ध नतकाल हुआ।

मकर संक्रान्ति के दिन क्रान्ति दक्षिण है इसलिए समीकरण (१) का दाहिना पक्ष धनात्मक होगा और कोज्या (न त) = +.२०५० [देखो पृष्ठ २९२]

∴ मकर संक्रान्ति के दिन

गणित सिद्ध नतकाल = ७८°१०′ = ९०° − ११°५०′

= ६ घंटा − ४७ मि० २० से०

= ५ घंटा १२ मि० ४० से०

= १३ घड़ी २ पल

यदि वर्तन न होता तो यही सूर्योदय से मध्यान्ह् तक का समय होता। परन्तु वर्तन का परिमाण ३५′ के लगभग होता है इसलिए समीकरण (२) में ता (न) की जगह ३५′ उत्थापन करने से, कर्क संक्रान्ति के दिन

$$\text{ता (नत)} = \frac{३५'}{\text{कोज्या } २५^\circ १८' \text{ कोज्या } २३^\circ २७' \text{ ज्या } १०१^\circ ५०'}$$

$$= \frac{३५'}{.९०४१ \times .९१७५ \times .९७८७}$$

$$= \frac{३५'}{.८११८४}$$

$= ४३'.१२$

$= ४३.१२$ आसु

$=$ ७ पल या २ मिनट ५२ सेकंड

मकर संक्रान्ति के दिन भी वर्तन के कारण इतनी ही वृद्धि होगी क्योंकि ज्या ७८°१०′ = ज्या १०१°५०′ और कोज्या २३°२७′ के मान में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा चाहे २३°२७′ उत्तर क्रान्ति हो या दक्षिण क्रान्ति हो क्योंकि कोज्या २३°२७′ = कोज्या(− २३°२७′)

इसलिए काशी में कर्क संक्रान्ति के दिन उदयकालिक स्पष्ट या वेधसिद्ध नतकाल = १६ घड़ी ५८ पल + ७ पल

= १७ घड़ी ५ पल

और स्पष्ट या वेधसिद्ध दिनमान = ३४ घड़ी १० पल

इसी प्रकार काशी में मकर संक्रान्ति के दिन उदयकालिक स्पष्ट या वेधसिद्ध नतकाल = १३ घड़ी २ पल + ७ पल

= १३ घड़ी ९ पल

और स्पष्ट या वेधसिद्ध दिनमान = २६ घड़ी १८ पल

उदाहरण २—सायन मेष और सायन तुला संक्रान्तियों के दिन काशी में स्पष्ट दिनमान क्या होगा ?

सायन मेष या सायन तुला संक्रान्तियों के दिन यदि सूर्य के उदयकाल में क्रान्ति शून्य हो तो गणित के नतकाल ठीक ९०° या घंटा अथवा १५ घड़ी होगा। वर्तन के कारण जो वृद्धि होगी उसका परिमाण यों निकलेगा।

$$\text{ता (नत)} = \frac{३५'}{\text{कोज्या } २५^\circ १८' \text{ कोज्या} ०^\circ \text{ ज्या } ९०^\circ}$$

$= \frac{३५'}{\text{कोज्या } २५^\circ \; १८'} = \frac{३५'}{.९०४१}$

$= ३८'.७$

$= ३८.७$ असु

$= ६$ पल के लगभग

∴ सायन मेष या तुला संक्रान्तियों के दिन वेधसिद्ध उदयकालिक नतकाल

= १५ घड़ी ६ पल

∴ इन दिनों में वेधसिद्ध या स्पष्ट दिनमान = ३० घड़ी १२ पल

इस प्रकार सिद्ध है कि सायन मेष और सायन तुला संक्रान्ति के दिन वर्तन के कारण दिनमान रात्रिमान से १२ पल अधिक होता है। यह प्रसिद्ध बात है कि इन दिनों में दिनमान और रात्रिमान सब स्थानों में समान होते हैं। इसलिए यदि कोई सूर्य के उदय से अस्त तक के समय को वेध से नापकर विलोम रीति से सायन मेष और तुला संक्रान्ति का दिन जानना चाहे तो वह निश्चय करेगा कि सायन मेष संक्रान्ति यथार्थ संक्रान्ति काल से ३ दिन पहले और सायन तुला संक्रान्ति यथार्थ संक्रान्ति से ३ दिन पीछे पड़ेगी।

मकरन्द सारिणी के पृष्ठ १३ में काशी के लिए महत्तम दिनमान का परिमाण ३४ घड़ी ५ पल और लघुतम दिनमान का २५ घड़ी ५५ पल दिया हुआ है। इससे यह सिद्ध होता है कि इस सारिणी में कर्क संक्रान्ति के दिन उदयकालिक नतकाल का परिमाण १७ घड़ी २.५ पल निश्चय किया गया था। अब यह देखना कि मकरन्द-कार ने गणित से अथवा वेध से यह दिनमान निश्चय किया था।

सूर्य-सिद्धान्त ने सूर्य की महत्तम क्रान्ति २४° माना है। इसलिए अनुमान होता है कि मकरन्दकार ने गणित से चरकाल जानने के लिए इसी क्रान्ति का उपयोग किया होगा। यह पता नहीं कि काशी का अक्षांश उन्होंने क्या माना था। आजकल यह २५°१८′ के लगभग निश्चय हुआ है। इसलिए यह मान लेने में कोई हानि नहीं जान पड़ती कि मकरन्दकार ने काशी का अक्षांश २५° माना होगा। यदि २५° अक्षांश माना गया हो तो सायन कर्क संक्रान्ति के दिन काशी में

सूर्य की चरज्या = स्परे २४° × स्परे २५°

$= .४४५२ \times .४६६३$

$= .२०७६$

∴ चरांश = ११°५९′

= ७१९ चरासु

= १२० पल

= २ घड़ी

∴ उदयकालिक नतकाल = १५ + २ = १७ घड़ी

∴ कर्क संक्रान्ति के दिन काशी में महत्तम दिनमान = ३४ घड़ी

इससे प्रकट होता है कि काशी का अक्षांश २५° से कुछ अधिक माना गया होगा क्योंकि तभी चरकाल २ घड़ी २.५ पल हो सकता है।

इससे यह भी अनुमान होता है कि ब्रह्मगुप्त के समय से लेकर गणेश दैवज्ञ के समय तक सभी आचार्य सूर्य की परमक्रान्ति २४° इसीलिए मानते आये कि महत्तम दिनमान उनके वेध से उतना ही आता रहा जितना २४° की चरम क्रान्ति मानने से आता है क्योंकि उनको यह नहीं ज्ञात था कि वातावरण के कारण स्पष्ट दिनमान यथार्थ दिनमान से १४, १५ पल के लगभग बढ़ जाता है।

वर्तन का विचार करने से महत्तम दिनमान आजकल ३४ घड़ी १० पल होता है। यह ३४ घड़ी ५ पल से केवल ५ पल अधिक है। इतनी अशुद्धि उदय और अस्तकाल के वेध के लिए अधिक नहीं कही जा सकती।

वर्तन के कारण सूर्य के आकार में भेद—उदय अस्त होते हुए सूर्य का आकार बड़ा और कुछ अंडाकार देख पड़ता है। इसका कारण यही है कि क्षितिज के पास वर्तन की वृद्धि बहुत तीव्र होती है। सूर्य का विम्ब ३२ कला के लगभग होता है। इसलिए जिस समय सूर्य के विम्ब का सबसे नीचे वाला विन्दु क्षितिज में लगा रहता है उसका स्पष्ट नतांश ९०° रहता है और बिम्ब के सबसे ऊपर वाले विन्दु का नतांश ३२ कला के लगभग कम रहता है। इस भिन्नता के कारण नीचेवाला विन्दु अधिक उठा हुआ रहता है और ऊपर वाला विन्दु उससे कम। इससे विम्ब का ऊर्ध्वव्यास कोई ५ कला कम देख पड़ने से सूर्य अंडाकार देख पड़ता है।

वर्तन की और अधिक मीमांसा करने से विस्तार बहुत बढ़ जायगा। यदि यह जानना हो कि सूर्य का ऊपरी विम्ब क्षितिज पर कब आता है तो पृष्ठ ३७९ के समीकरण (२) में ता (न) की जगह ३५′ + सूर्य के अर्द्धव्यास अथवा ३५′ + १६′ उत्थापन करने से जितना आवे उसे गणित सिद्ध नतकाल में जोड़ देना चाहिए।

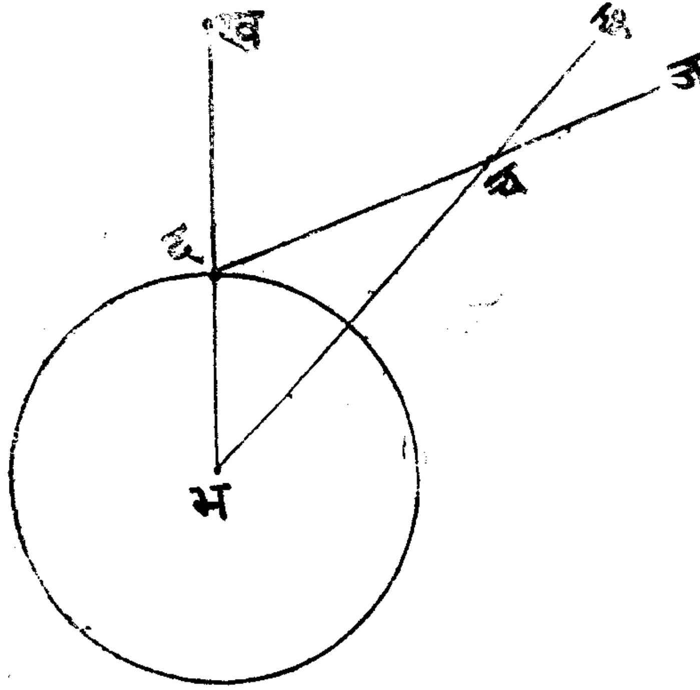
चन्द्रमा का उदयकाल जानने के लिए एक संस्कार और करना पड़ता है जिसे लम्बन संस्कार कहते हैं। इसलिए आगे लम्बन (parallax) की व्याख्या की जायगी।

लंबन *

स्पष्टाधिकार में बतलाई गयी नयी रीतियों से भी सूर्य, चन्द्रमा और ग्रहों के जो स्थान ज्ञात होते हैं वह भूकेन्द्र से ठीक वैसे ही देखे जा सकते हैं। परन्तु भूतल के

*इस खंड के लिखने में Loomis की Practical Astronomy से बहुत सहायता ली गई है।

किसी स्थान से देखने पर उन स्थानों में कुछ अन्तर देख पड़ता है। यदि भूतल के किसी दो स्थानों से दो द्रष्टा चन्द्रमा को एक ही क्षण में देखें तो वह एक ही दिशा में नहीं देख पड़ता। इसलिए यह जानना आवश्यक है कि किस स्थान से देखने पर आकाशीय पिण्ड यथार्थ स्थान से कितने अंतर पर देख पड़ता है। भूकेन्द्र और भूतल के किसी स्थान से देखने पर आकाशीय पिण्ड की दिशाओं में जो अन्तर देख पड़ता है उसे लंबन कहते हैं।



चित्र ७४

चित्र ७४ में भ पृथ्वी का केन्द्र या भूकेन्द्र है, द भूतल का एक स्थान जहाँ द्रष्टा चंद्रमा च को देख रहा है। भ द ख ऊर्ध्व रेखा है जो द स्थान के खस्वस्तिक ख तक जाती है। द स्थान से द्रष्टा को चन्द्रमा द च ज दिशा में देख पड़ेगा और भूकेन्द्र भ से चन्द्रमा भ च छ दिशा में देख पड़ेगा। इन दिशाओं में जो अंतर है वह कोण भ च द के समान है। यही द स्थान से चन्द्रमा का लंबन है।

द से चन्द्रमा का नतांश कोण ख द च के समान है जिसे चन्द्रमा का स्पष्ट नतांश कहते हैं। भ से चन्द्रमा का नतांश कोण ख भ च के समान है जिसे चन्द्रमा का यथार्थ नतांश कहा जाता है। चित्र से यह सिद्ध है कि चन्द्रमा का स्पष्ट नतांश चन्द्रमा का यथार्थ नतांश $+$लम्बन।

यह स्पष्ट है कि लम्बन के कारण चन्द्रमा का स्पष्ट नतांश यथार्थ नतांश से अधिक हो जाता है इसलिए चन्द्रमा का उन्नतांश उतना ही कम हो जाता है। इस

कारण चन्द्रमा यथार्थ स्थान से कुछ लटका हुआ देख पड़ता है। इसीलिए इस परिवर्तन का नाम लम्बन पड़ा। इस लम्बन का प्रभाव चन्द्रमा तथा अन्य ग्रहों के भोगांश, शर, विषुवांश, क्रान्ति, इत्यादि पर भी पड़ता है जिसकी व्याख्या आगे की जायगी।

मान लो कि त्र=भ द, पृथ्वी की त्रिज्या;

क=भ च, भूकेन्द्र से चन्द्रमा की दूरी;

न=∠ख भ च, चन्द्रमा का यथार्थ नतांश;

ना=∠ख द च, चन्द्रमा का स्पष्ट नतांश;

ला=∠भ च द, चन्द्रमा का नतांश सम्बन्धी लम्बन;

त्रिभुज द भ च में

$$\frac{\text{भ द}}{\text{ज्या भ च द}} = \frac{\text{भ च}}{\text{ज्या भ द च}}$$

परन्तु ∠भ द च और ∠ख द च का योग १८°होता है इसलिए ज्या भ द च =ज्या ख द च। इनकी जगह ऊपर लिखे संकेत के अक्षर उत्थापित करने से सिद्ध होता है की

$$\frac{\text{त्र}}{\text{ज्या ला}} = \frac{\text{क}}{\text{ज्या ना}}$$

$$\text{अथवा ज्या ला} = \frac{\text{त्र}}{\text{क}} \times \text{ज्या ना}$$

इसका अर्थ यह हुआ कि नतांश सम्बन्धी लम्बन की ज्या

$$= \frac{\text{पृथ्वी की त्रिज्या}}{\text{चन्द्रमा की दूरी}} \times \text{स्पष्ट नतांश की ज्या}$$

इससे यह सिद्ध होता है कि किसी दिये हुए स्थान के लिए यदि चन्द्रमा या किसी ग्रह की दूरी दी हुई हो तो इसका लम्बन इसके स्पष्ट नतांश की ज्या के अनुसार घटता बढ़ता है, अर्थात् यदि इसका स्पष्ट नतांश कम हो तो लम्बन कम होगा और अधिक हो तो लम्बन अधिक होगा। यदि स्पष्ट नतांश ९०° हो अर्थात् चन्द्रमा या ग्रह उदय या अस्त हो रहा हो तो इसकी ज्या का मान १ होगा जो महत्तम है। ऐसी दशा में नतांश सम्बन्धी लम्बन भी महत्तम अर्थात् सबसे अधिक होगा। महत्तम लम्बन को परम लम्बन या क्षितिज लम्बन कहते हैं क्योंकि इतना बड़ा लम्बन उसी समय होता है जब आकाशीय पिंड उदय या अस्त हो रहा हो और क्षितिज पर हो। यह भी स्पष्ट है कि जब पिंड ठीक खस्वस्तिक पर रहता है तब उसका नतांश शून्य होने

से स्पष्ट नतांश की ज्या भी शून्य होगी और लम्बन का मान शून्य हो जायगा। अर्थात् जब आकाशीय पिंड ठीक सिर के ऊपर खस्वस्तिक पर रहता है तब उसमें नतांश सम्बन्धी लम्बन नहीं होता।

यदि क्षितिज लम्बन को ल से प्रकट किया जाय तो

$$\text{ज्या ल} = \frac{\text{त्र}}{\text{क}}$$

यदि पहले समीकरण में $\frac{\text{त्र}}{\text{क}}$ की जगह ज्या ल रखा जाय तो

$$\text{ज्या ला} = \text{ज्या ल} \times \text{ज्या ना} \qquad (१)$$

इसका अर्थ यह हुआ कि क्षितिज लम्बन की ज्या को स्पष्ट नतांश की ज्या से गुणा कर दिया जाय तो नतांश सम्बन्धी लम्बन की ज्या आ जायगी।

इस सूत्र से लम्बन का ज्ञान तभी हो सकता है जब पिंड का स्पष्ट नतांश ज्ञात हो। यदि यथार्थ नतांश दिया हुआ हो तो दूसरे प्रकार के सूत्र से काम चलेगा जिसका रूप इस प्रकार सिद्ध होता है—

चित्र ७४ से स्पष्ट है कि

$$\text{ना} = \text{न} + \text{ला}$$

इसलिए सूत्र (१) से

$$\text{ज्या ला} = \text{ज्या ल} \times \text{ज्या (न} + \text{ला)}$$
$$= \text{ज्या ल (ज्या न कोज्या ला} + \text{कोज्या न ज्या ला)}$$
$$= \text{ज्या ल ज्या न कोज्या ला} + \text{ज्या ल कोज्या न ज्या ला}$$

दोनों पक्षों को कोज्या ला से भाग देने पर

$$\text{स्परे ला} = \text{ज्या ल ज्या न} + \text{ज्या ल कोज्या न स्परे ला}$$

स्परे ला को एक पक्ष में करने पर

$$\text{स्परेला} = \frac{\text{ज्या ल ज्या न}}{1 - \text{ज्या ल कोज्या न}}$$

इस सूत्र से लम्बन का मान उस समय जाना जा सकता है जब यथार्थ नतांश दिया हुआ हो। परन्तु इस रीति से लम्बन जानने में सुविधा नहीं होती क्योंकि इसमें गुणा भाग बहुत करना पड़ता है। इसलिए इसको सरल करने के लिए दूसरा रूप सिद्ध करना चाहिए।

यदि दाहिने पक्ष के अंश को हर से भाग दे दिया जाय तो

$$\text{स्परे ला} = \text{ज्या ल ज्या न} + \text{ज्या}^2 \text{ ल ज्या न कोज्या न} + \text{ज्या}^3 \text{ ल ज्या न कोज्या}^2 \text{ न} + \text{ज्या}^4 \text{ ल ज्या न कोज्या}^3 \text{ न} \cdots \text{इत्यादि}$$

इस श्रेणी के आगे के पद इतने छोटे होते जाते हैं कि केवल पहले तीन पद ले लेने में कोई हानि नहीं हो सकती, यदि ल का मान १° से अधिक न हो।

स्परेला की जगह ऐसे पद भी रखे जा सकते हैं जिनमें केवल ला हो क्योंकि*
ला=स्परेला $-\frac{1}{3}$ स्परे^{3} ला

जो धनु को उसकी स्पर्शरेखा में प्रकट करने का प्रायः शुद्ध सूत्र है यदि धनु का परिमाण बहुत छोटा हो। इस सूत्र के दूसरे पद के लिए यदि केवल $\frac{\text{ज्या}^3\text{ल ज्या}^3\text{न}}{३}$ ले लिया जाय तो कोई हानि नहीं हो सकती। ऐसी दशा में

$$\text{ला} = \text{ज्या ल ज्या न} + \text{ज्या}^2\text{ल ज्या न कोज्या न} + \text{ज्या}^3\text{ ल ज्या न कोज्या}^2\text{न} - \frac{\text{ज्या}^3\text{ल ज्या}^3\text{न}}{३} + \cdots\cdots$$

$$= \text{ज्या ल ज्या न} + \text{ज्या}^2\text{ल ज्या न कोज्या न} + \text{ज्या}^3\text{ल} \left(\text{ज्या न कोज्या}^2\text{न} - \frac{\text{ज्या}^3\text{न}}{३}\right) + \cdots\cdots$$

$$\text{परन्तु ज्या न कोज्या न} = \frac{\text{ज्या २ न}}{२}$$

$$\text{और ज्या न कोज्या}^2\text{न} - \frac{\text{ज्या}^3\text{न}}{३}$$

$$= \frac{३ \text{ ज्या न कोज्या}^2\text{न} - \text{ज्या}^3\text{न}}{३}$$

$$= \frac{३ \text{ ज्या न} - ३ \text{ ज्या}^3\text{न} - \text{ज्या}^3\text{न}}{३}$$

$$= \frac{३ \text{ ज्या न} - ४ \text{ ज्या}^3\text{न}}{३}$$

$$= \frac{\text{ज्या ३ न}}{३}{}^{**}$$

$$\text{इसलिए ला} = \text{ज्या ल ज्या न} + \frac{\text{ज्या}^2\text{ल ज्या२ न}}{२} + \frac{\text{ज्या}^3\text{ल ज्या३ न}}{३} + \cdots\cdots$$

---

* देखो सुधाकर द्विवेदी का चलन कलन पृष्ठ ४०

** देखो Hall and Knight की त्रिकोणमिति पृष्ठ १०५ (१९१० की छपी)

इस सूत्र से ला का जो मान आवेगा वह रेडियन में होगा। इसको विकलाओं में प्रकट करने के लिए दाहिने पक्ष के प्रत्येक पद को ज्या १″ से भाग दे देना चाहिए अथवा कोछेरे १″ से गुणाकर देना चाहिए क्योंकि

१ रेडियन=२०६२६५″

∵ १″=.०००००४८५ रेडियन

∴ ज्या १″=.०००००४८५

इससे सिद्ध है कि रेडियन से विकला बनाना हो तो रेडियन को .०००००४८५ से भाग दो। परन्तु .०००००४८५=ज्या १″, इसलिए रेडियन से विकला बनाने के लिए रेडियन को ज्या १″ से भी भाग दे देना चाहिए।

इस प्रकार

$$\text{ला}=\frac{\text{ज्या ल ज्या न}}{\text{ज्या १}''}+\frac{\text{ज्या}^{२}\text{ल ज्या२ न}}{\text{२ज्या १}''}+\frac{\text{ज्या}^{३}\text{ल ज्या३ न}}{\text{३ ज्या १}''}+\qquad (३)$$

=ज्या ल ज्या न कोछेरे १″+ज्या^{२}ल ज्या २ न कोछेरे २″+ज्या^{३} ल ज्या ३ न कोछेरे ३″ क्योंकि $\frac{१}{\text{ज्या १}''}$=कोटि छेदन रेखा १″ जिसे संक्षेप में कोछेरे १″ लिखा गया है

$$\text{२ ज्या १}''=\text{ज्या २}''\ \therefore \frac{१}{\text{२ ज्या १}''}=\frac{१}{\text{ज्या २}''}=\text{कोछेरे २}'', \text{ इत्यादि।}$$

इस सूत्र से किसी आकाशीय पिंड का लम्बन उस समय निकाला जा सकता है जब उसका यथार्थ नतांश दिया हुआ हो।

चंद्रमा का लम्बन जानने के लिए इस श्रेणी के तीनों पदों की आवश्यकता पड़ती है परन्तु सूर्य तथा ग्रहों के लिए केवल पहले पद से काम चल जाता है क्योंकि इनके लंबन बहुत कम होते हैं इसलिए दूसरे और तीसरे पदों के मान नहीं के समान होते हैं।

इसलिए सूर्य तथा ग्रहों के लंबन के लिए केवल यह सूत्र पर्याप्त होगा :—

$$\text{ला}=\frac{\text{ज्या ल ज्या न}}{\text{ज्या १}''}$$

परन्तु जब ल बहुत छोटा होगा तब $\frac{\text{ज्या ल}}{\text{ज्या १}''}$=ल

$$\therefore \text{ला}=\text{ल ज्या न}\qquad (४)$$

* उदाहरण १—यदि शुक्र का क्षितिज लंबन ३०″ हो तो जिस समय इसका यथार्थ नतांश ६०° होगा उस समय इसका लंबन क्या होगा ?

ला=ल ज्या न

=३०″×ज्या ६०°

=३०″×.८६६

=२५″.९८

उदाहरण २—यदि सूर्य का क्षितिज लम्बन ८″.६ हो तो जिस समय इसका यथार्थ उन्नतांश १६° होगा उस समय इसका लम्बन क्या होगा ?

सूर्य का यथार्थ नतांश = ८०° – १६° = ७४°

ला = ल ज्या न

=८″.६×ज्या ७४°

=८″.६×.९६१३

=८″.२७

उदाहरण ३—यदि चन्द्रमा का क्षितिज लम्बन ६०′ ४१″.५ हो तो उसका लम्बन क्या है जब कि उसका स्पष्ट नतांश ८०° १९′ १९″ हो ?

यहाँ चन्द्रमा का स्पष्ट नतांश दिया हुआ है इसलिए पहले सूत्र से काम लेना होगा। इसलिए

ज्या ला=ज्या ल × ज्या ना

=ज्या ६०′ ४१″.५×ज्या ८०°१९′१९″

गुणा भाग की क्रिया को कम करने के लिए इन कोणों की लघुरिक्थ सम्बन्धी ज्या (logarithmic sines) से काम लेना अच्छा होगा। लघुरिक्थ सम्बन्धी ज्या, कोज्या, स्पर्शरेखा को संक्षेप में लरि ज्या, लरि कोज्या और लरि स्परे लिखा जायगा।

लरि ज्या ६०′ ४१″.५=८.२४६८३३

लरि ज्या ८०°१९′१९″=<u>९.९९३७७५</u>

योग=८.२४०६०८

∴ लरि ज्या ला = ८.२४०६०८

और ला=५९′४९″.६७

उदाहरण ४—यदि चन्द्रमा का क्षितिज लम्बन ६०′ ४१″.५ हो और उसका यथार्थ नतांश ७९°१९′२९″.३३ हो तो उसका लम्बन क्या होगा ?

---

* लम्बन के सम्बन्ध में जितने उदाहरण लिखे गये हैं वे सब Loomi's Practical Astronomy से लिये गये हैं।

यहाँ यथार्थ लम्बन दिया हुआ है इसलिए सूत्र (३) से काम लेना पड़ेगा ।

लरिज्या ६०′ ४१″ .५=८ . २४६८३३

लरिज्या ७९° १९′ २९″ .३३=९ . ९९२४१८

लरि कोछेरे १″=५ . ३१४४२५

योग =३ . ५५३६७६

परन्तु लरि ३५७८′ . २९=३ . ५५३६७६

∴ सूत्र (३) का पहला पद=३५७८″ . २९

=५९′ ३८″ . २९

लरि ज्या² ६०′ ४१″ . ५=६ . ४९३७

लरिज्या २×७९° १९′ २९″ . ३३=९ . ५६१२

लरि कोछेरे २″=५ . ०१३४

योग=१ . ०६८३

परन्तु लरि ११″ . ७०=१ . ०६८३

∴ (सूत्र ३) का दूसरा पद=+११″ . ७०

लरि ज्या³ ६०′ ४१″ . ५=४ . ७४०

लरि ज्या ३×७९° १९′ २९″ . ३३=९ . ९२८ ऋणात्मक

लरि कोछेरे ३″ =४ . ८३७

योग=९ . ५०५

∴ तीसरे पद का मान=−०″ . ३२

तीनों पदों को इकट्ठा करने पर

लंबन=५९′ ३८″ . २९+११″ . ७०−०″ . ३२=५९′ ४९″.६७

यह बतलाया गया है कि क्षितिज लम्बन $=\frac{\text{त्र}}{\text{क}}$ जहां त्र द्रष्टा के स्थान से भूकेन्द्र की दूरी है और क आकाशीय पिंड से भूकेन्द्र की दूरी है । परन्तु पृथ्वी पूर्ण गोल नहीं है इसलिए त्र का मान सब जगह एक सा नहीं है । ऐसी दशा में क्षितिज लंबन का मान सब स्थानों के लिए एक नहीं हो सकता । इसलिए गणित से पहले वह क्षितिज लम्बन जाना जाता है जो निरक्ष देश (विषुवत् रेखा) के किसी स्थान पर होता है । फिर इसकी सहायता से अन्य स्थानों का क्षितिज लम्बन तथा इष्ट-कालिक स्पष्ट लम्बन जाना जाता है ।

मान लो व ध वा धा पृथ्वी की मध्यान्ह रेखा है, ध, धा पृथ्वी के उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव तथा व वा विषुवत् रेखा के दो विन्दु हैं । भूकेन्द्र से विषुवत रेखा के व

चित्र ७५

विन्दु की दूरी भ व और ध ध्रुव की दूरी भ ध है। द द्रष्टा का स्थान है और स द सा द स्थान की स्पर्शरेखा है जो द की क्षितिज रेखा के तल में है। द खा रेखा स द सा स्पर्शरेखा से समकोण पर है इसलिए यही द स्थान की ऊर्ध्वं रेखा है। इसलिए द स्थान का स्पष्ट खस्वस्तिक खा है। यदि यह ऊर्ध्वरेखा पृथ्वी के भीतर बढ़ायी जाय तो पृथ्वी के केन्द्र को न जाकर भ व रेखा के फ विन्दु पर पहुँचेगी। यदि पृथ्वी के केन्द्र से द तक रेखा खींची जाय और वह आकाश की ओर बढ़ाई जाय तो ख विन्दु पर पहुँचेगी। इसलिए यह सिद्ध है कि द स्थान का भूकेन्द्रीय खस्वस्तिक ख है। खा को द स्थान का भौगोलिक खस्वस्तिक कहते हैं। मध्यमाधिकार पृष्ठ ५५ में बतलाया गया है कि द भ व कोण द स्थान का भूकेन्द्रिक अक्षांश है इसलिए द फ व कोण द स्थान का स्पष्ट या भौगोलिक अक्षांश कहलाता है। द स्थान की ऊर्ध्वरेखा द फ और पृथ्वी की त्रिज्या भ द से जो कोण भ द फ बनता है उसे द स्थान के ऊर्ध्वरेखा कोण (angle of the vertical) कहते हैं। किसी स्थान के भौगोलिक अक्षांश को अ और भूकेन्द्रिक अक्षांश को आ अक्षरों से प्रकट* किया जाता है।

मुखोपाध्याय की Geometry of Conics पृष्ठ ६३, ६४ से सिद्ध है कि

$$\text{प फ} = \text{प भ} \times \frac{\text{थ}^2}{\text{त}^2}$$

*अंग्रेज़ी में भौगोलिक अक्षांश को ϕ और भूकेन्द्रिक अक्षांश को ϕ' से प्रकट किया जाता है।

जहाँ त, थ क्रम से दीर्घवृत्त से दीर्घ और लघु अक्ष के आधे हैं।

परन्तु प द =प भ ×स्परे∠प भ द=प फ×स्परे ∠प फ द

∴प भ ×स्परे आ=प फ×स्परे अ

$$=\text{प भ}\times\frac{\text{थ}^2}{\text{त}^2}\times\text{स्परे अ}$$

$$\therefore \text{स्परे आ} = \frac{\text{थ}^2}{\text{त}^2}\text{स्परे अ} \qquad (५)$$

इसका अर्थ यह हुआ कि किसी स्थान के भौगोलिक अक्षांश की स्पर्शरेखा को $\frac{\text{थ}^2}{\text{त}^2}$ से गुणा कर दिया जाय तो उस स्थान के भूकेन्द्रिक अक्षांश की स्पर्शरेखा आ जायगी। विलोम क्रिया के द्वारा भूकेन्द्रिक अक्षांश दिया हुआ हो तो भौगोलिक अक्षांश भी जाना जा सकता है।

यह बतलाया गया है कि त और थ पृथ्वी के दीर्घ और लघु अक्षों के आधे हैं जिनके मान कर्नल क्लार्क के मतानुसार* यह हैं :—

त=२,०९,२६,२०२ फुट

=३९६३.३ मील (स्वल्पान्तर से)

थ=२,०८,५४,८९५ फुट

=३९४९.८ मील (स्वल्पान्तर से)

$$\therefore \frac{\text{थ}^2}{\text{त}^2}=\frac{२०८५४८९५^2}{२०९२६२०२^2}=.९९३१९६५=.९९३२$$

उदाहरण १—देहरादून का भौगोलिक अक्षांश ३०°१८′५१″.८ उत्तर है तो इसका भूकेन्द्रिक अक्षांश और ऊर्ध्वरेखा का कोण क्या है?

उपर्युक्त सूत्र के अनुसार,

स्परे आ=.९९३२×स्परे ३०°१८′५१″.८

∴लरि स्परे आ=लरि.९९३२+लरि स्परे ३०°१९

=१.९९७० + ९.७६७०

=९.७६४

आ=३०°८′४०″

यही देहरादून का भूकेन्द्रिक अक्षांश हुआ। यदि इसको भौगोलिक अक्षांश से घटा दिया जाय तो ऊर्ध्वरेखा का कोण १०′ १२″ के समान होगा। ऊर्ध्वरेखा के

*Hall's Spherical Astronomy pp. 44.

कोण को नाटिकल अलमैनेक में Reduction to Geocentric latitude कहा जाता है। १९२७ ई० के नाटिकल अलमैनेक में इसका मान १०′५″.३ लिखता है। अंतर का कारण यह है कि इस गणना में लघुरिक्थों की शुद्धता केवल चार अङ्कों तक ली गयी है।

भूकेन्द्र से किसी स्थान की दूरी इस तरह जानी जा सकती है :—

चित्र ७६

चित्र ७६ में व ध वा आधे दीर्घवृत्त का छेद (section) है जो विषुवत् रेखा के व विन्दु से आरम्भ होकर उत्तरी ध्रुव ध से होता हुआ विषुवत् रेखा की दूसरी ओर वा तक गया है। यदि व वा पर एक अर्धवृत्त व दा वा खींचा जाय तो यही व थ वा का सहायकवृत्त (auxiliary circle) होगा। प भ द कोण भूकेन्द्रिक अक्षांश हुआ जो आ से सूचित किया जायगा। भूकेन्द्र से द स्थान की दूरी भ द को त्र अक्षर से सूचित किया जायगा। त्रिभुज प भ द में

$$\text{प भ} = \text{भ द कोज्या आ} = \text{त्र कोज्या आ}$$

$$\text{प द} = \text{भ द ज्या आ} = \text{त्र ज्या आ}$$

मुखोपाध्याय की Geometry of Conics पृष्ठ ६५ से सिद्ध है कि

$$\frac{\text{प द}}{\text{प दा}} = \frac{\text{भ ध}}{\text{भ व}} = \frac{\text{थ}}{\text{त}}$$

$$\therefore \text{प दा} = \frac{\text{त}}{\text{थ}} \times \text{प द} = \frac{\text{त}}{\text{थ}} \times \text{त्र ज्या आ}$$

परन्तु $\text{प भ}^2 + \text{प दा}^2 = \text{भ दा}^2 = \text{त}^2$

$$\therefore \left(\text{त्र कोज्या आ}\right)^2 + \left(\frac{\text{त}}{\text{थ}} \times \text{त्र ज्या आ}\right)^2 = \text{त}^2$$

या $$\text{त्र}^2 \text{ कोज्या}^2 \text{ आ} + \frac{\text{त}^2}{\text{थ}^2} \times \text{त्र}^2 \text{ ज्या}^2 \text{ आ} = \text{त}^2$$

परन्तु पृष्ठ ३६१ में सिद्ध हो चुका है कि $\frac{थ^2}{त^2}=\frac{स्परे\ आ}{स्परे\ अ}$

इसलिए $त्र^2\ कोज्या^2\ आ+\frac{स्परे\ अ}{स्परे\ आ}\times त्र^2\ ज्या^2\ आ=त^2$

यहाँ $\frac{ज्या^2\ आ}{स्परे\ आ}=\frac{ज्या^2\ आ\times कोज्या\ आ}{ज्या\ आ}$

$=ज्या\ आ\times कोज्या\ आ$

और $स्परे\ आ=\frac{ज्या\ अ}{कोज्या\ अ}$

$\therefore त्र^2\ कोज्या^2\ आ+\frac{ज्या\ अ}{कोज्या\ अ}\ ज्या\ आ\times कोज्या\ आ\times त्र^2=त^2$

प्रत्येक पक्ष को कोज्या अ से गुणा करके प्रत्येक पद के सामान्य खंडों को इकट्ठा करने पर

$त्र^2\ कोज्या\ आ\ (कोज्या\ अ\times कोज्या\ आ+ज्या\ अ\times ज्या\ आ)$

$=त^2\ कोज्या\ अ$

$\therefore त्र^2\ कोज्या\ आ\ कोज्या\ (आ-अ)=त^2\ कोज्या\ अ$*

$$\therefore त्र^2=\frac{त^2\ कोज्या\ अ}{कोज्या\ आ\ कोज्या\ (आ-अ)} \qquad (६)$$

$=\frac{कोज्या\ अ}{कोज्या\ आ\ कोज्या\ (आ-अ)}$ जब कि निरक्ष देशीय त्रिज्या १ मान ली जाय।

इससे यह सिद्ध होता है कि यदि किसी स्थान का भौगोलिक अक्षांश, उसके ऊर्ध्वरेखा का कोण और विषुवत् रेखा से भूकेन्द्र की दूरी ज्ञात हो तो भूकेन्द्र से उस स्थान की दूरी जानी जा सकती है।

किसी स्थान का क्षितिज लम्बन जानना

मान लो कि चन्द्रमा का क्षितिज लंबन निरक्ष देश (equator) पर ल और किसी अन्य स्थान पर लि है। यदि भूकेन्द्र से निरक्ष देश की दूरी त और उस स्थान की दूरी त्र हो तो पृष्ठ ३८५ से स्पष्ट है कि—

$$ज्या\ ल=\frac{त}{क}$$

*देखो Hall and Knight's Elementary Trigonometry pp. 95.

और $\quad \text{ज्या लि} = \frac{\text{त्र}}{\text{क}}$

इसलिए $\text{ज्या लि} = \frac{\text{त्र}}{\text{त}} \text{ ज्या ल}$

यदि त को १ मान लिया जाय तो

$$\text{ज्या लि} = \text{त्र ज्या ल} \qquad (७)$$

इसका अर्थ यह हुआ कि यदि निरक्ष देशीय पृथ्वी की त्रिज्या १ मान ली जाय तो चन्द्रमा के निरक्ष देशीय क्षितिज लम्बन की ज्या को किसी स्थान की त्रिज्या से गुणा कर देने पर उस स्थान का क्षितिज लम्बन ज्ञात हो जायगा ।

उदाहरण २—यदि चंद्रमा का निरक्ष देशीय क्षितिज लंबन ५३′ हो तो देहरादून में क्षितिज लम्बन क्या होगा ?

ऊर्ध्व रेखा का कोण उदाहरण (१) में जान लिया गया है । इसलिए पहले देहरादून की त्रिज्या सूत्र (६) से जानना चाहिए :—

$$\text{त्र}^{२} = \frac{\text{कोज्या अ}}{\text{कोज्या आ कोज्या (आ} - \text{अ)}}$$

$$= \frac{\text{कोज्या ३०°१८′५२″}}{\text{कोज्या ३०°८′४०″ कोज्या १०′१२″}}$$

$$\therefore \text{२ लरि त्र} = \text{लरि कोज्या ३०°१८′५२″} - \text{लरि कोज्या ३०°८′४०″}$$
$$- \text{लरि कोज्या १०′१२″}$$
$$= \text{९.९३६१} - \text{.९.९३६९} - \text{१०}$$
$$= \bar{\text{१}}\text{.९९९२}$$

$$\therefore \text{लरि त्र} = \bar{\text{१}}\text{.९९९६}$$

$$\therefore \quad \text{त्र} = \text{.९९९}$$

$\therefore$ देहरादून के क्षितिज लंबन की ज्या

$$= \text{.९९९} \times \text{ज्या ५२′}$$
$$= \text{.९९९} \times \text{.०१५४}$$
$$= \text{.०१५३८}$$

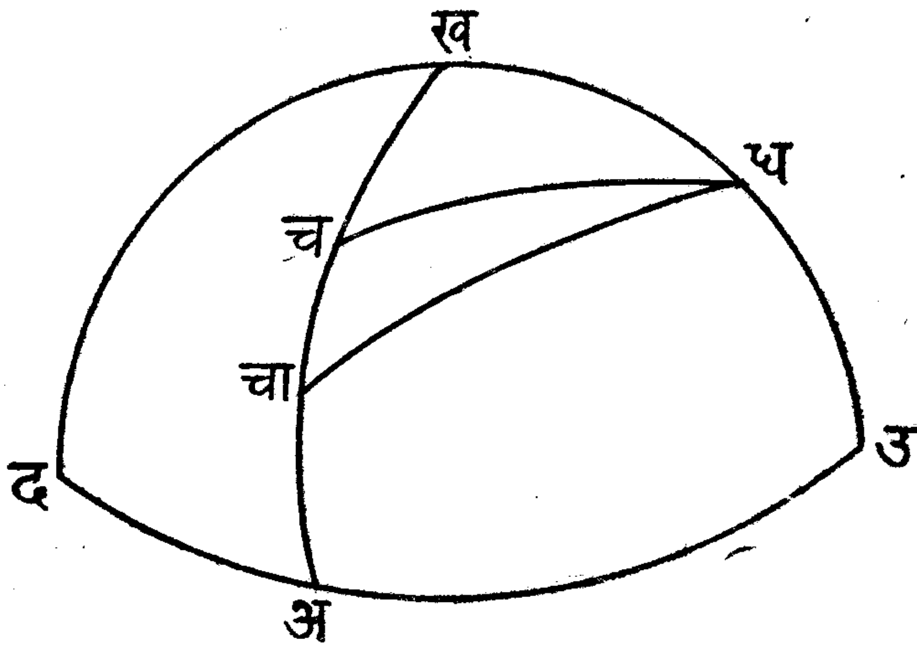
$\therefore$ देहरादून का क्षितिज लंबन = ५२′५६″*

---

* ऐसी सूक्ष्म गणना के लिए लघुरिक्थों की सारिणी कम से कम दशमलव के सात अंकों की होनी चाहिए नहीं तो बहुत स्थूलता रह जाती है ।

लम्बन के कारण आकाशीय पिण्ड के स्पष्ट और यथार्थ विषुवांशों में क्या अन्तर पड़ता है ?

लंबन के सम्बन्ध में अब तक जो कुछ कहा गया है उससे स्पष्ट है कि इसके कारण आकाशीय पिंड के नतांश में अन्तर पड़ता है जिससे पिंड के विषुवांश, क्रान्ति, भोगांश और शर सब पर कुछ न कुछ प्रभाव पड़ता है। परन्तु जिस समय पिण्ड याम्योत्तर वृत्त पर होता है उस समय लंबन के कारण नतांश में जो अन्तर पड़ता है उसका पूरा प्रभाव क्रान्ति पर ही पड़ता है न कि विषुवांश पर। परन्तु अन्य स्थानों में विषुवांश और क्रान्ति दोनों ही में अन्तर देख पड़ता है क्योंकि जिस ऊर्ध्व वृत्त पर नतांश का अन्तर होता है वह विषुवत् वृत्त से भिन्न होता है।



चित्र ७७

विषुवांश का लम्बन जानना

मान लो कि उ ख द किसी स्थान का याम्योत्तर वृत्त है, उ, द उस स्थान की क्षितिज उ अ द के उत्तर, दक्खिन विन्दु हैं, ख भूकेन्द्रिक खस्वस्तिक और ध उत्तरी आकाशीय ध्रुव है। मान लो कि चन्द्रमा का यथार्थ स्थान जो पृथ्वी के केन्द्र से देख पड़ता है च है और इसका स्पष्ट स्थान जो द्रष्टा को भूतल से देख पड़ता है चा है। च चा चन्द्रमा का नतांश लंबन है जिसके लिए पृष्ठ ३८३ में ला लिखा गया है। कोण ख ध च और ख ध चा च और चा के नतकाल (hour angle) हैं। इसलिए यह स्पष्ट है कि लंबन के कारण चन्द्रमा का यह स्पष्ट नतकाल, यथार्थ नतकाल से कोण च ध चा के समान अधिक है। यही कोण च ध चा चन्द्रमा का

विषुवांश लंबन है। यह भी स्पष्ट है कि चन्द्रमा का स्पष्ट ध्रुवान्तर ध चा उसके यथार्थ ध्रुवान्तर ध च से अधिक है। इसलिए स्पष्ट क्रान्ति यथार्थ क्रान्ति से कम हो जायगी। इसलिए चंद्रमा का क्रान्ति लंबन ध चा – ध च के समान होगा।

मान लो कि द्रष्टा के स्थान में चंद्रमा के क्षितिज लंबन लि, विषुवांश लंबन ली, यथार्थ नतकाल घ, और यथार्थ क्रान्ति क तथा द्रष्टा का भूकेन्द्रिक अक्षांश आ है। तब यह स्पष्ट है कि चन्द्रमा का स्पष्ट नतकाल ख ध चा=घ+ली=घा

गोलीय त्रिभुज च ध चा में

$$\frac{\text{ज्या (च ध)}}{\text{ज्या (च चा ध)}}=\frac{\text{ज्या (च चा)}}{\text{ज्या (च ध चा)}}$$

परन्तु $\angle$ च ध चा=ली

$$\therefore \text{ज्या ली}=\frac{\text{ज्या (च चा)}\times\text{ज्या (च चा ध)}}{\text{ज्या (च ध)}} \qquad (\text{क})$$

और गोलीय त्रिभुज ख ध चा में

$$\frac{\text{ज्या (ख चा)}}{\text{ज्या (ख ध चा)}}=\frac{\text{ज्या (ख ध)}}{\text{ज्या (ख चा ध)}}$$

$$\therefore \text{ज्या (ख चा ध)}=\frac{\text{ज्या (ख ध)}\times\text{ज्या (ख ध चा)}}{\text{ज्या (ख चा)}} \qquad (\text{ख})$$

परन्तु $\angle$ख चा ध=$\angle$च चा ध

$$\therefore \text{ज्या ली}=\frac{\text{ज्या (च चा)}}{\text{ज्या (च ध)}}\times\frac{\text{ज्या (ख ध)}\times\text{ज्या (ख ध चा)}}{\text{ज्या (ख चा)}} \qquad (\text{ग})$$

परन्तु पृष्ठ ३८५ के सूत्र (१) के अनुसार,

ज्या (च चा)=ज्या लि $\times$ ज्या (ख चा)

इसको समीकरण (ग) में उत्थापन करने से

$$\text{ज्या ली}=\frac{\text{ज्या लि}}{\text{ज्या (च ध)}}\times\text{ज्या (ख ध)}\times\text{ज्या (ख ध चा)}$$

च ध=च का ध्रुवान्तर=९०° – क

$\therefore$ ज्या (च ध)=कोज्या क

ख ध=द्रष्टा का लम्बांश = ९०° – आ

$\therefore$ ज्या (ख ध)=कोज्या आ

$\angle$ख ध चा=$\angle$ख ध च+$\angle$च ध चा=घ+ली

$$\therefore \text{ज्या ली}=\frac{\text{ज्या लि}\times\text{कोज्या आ}\times\text{ज्या (घ+ली)}}{\text{कोज्या क}} \qquad (\text{क})$$

मान लो कि $\quad प = \frac{ज्या\ लि \times कोज्या\ आ}{कोज्या\ क}$

तब $ज्या\ ली = प \times ज्या\ (घ + ली)$ (१)

$= प\ ज्या\ घ\ कोज्या\ ली + प\ कोज्या\ घ\ ज्या\ ली$

यदि प्रत्येक पक्ष को कोज्या ली से भाग दिया जाय तो

$स्परे\ ली = प\ ज्या\ घ + प\ कोज्या\ घ\ स्परे\ ली$

$\therefore स्परे\ ली = \frac{प\ ज्या\ घ}{१ - प\ कोज्या\ घ}$ (२)

इस सूत्र का विस्तार करके उसी प्रकार की श्रेणी बनायी जा सकती है जिस प्रकार पृष्ठ ३८५—३८८ में सूत्र (२) को सूत्र (३) के रूप में लाया गया है। इस तरह

$ली = \frac{प\ ज्या\ घ}{ज्या\ १''} + \frac{प^२\ ज्या\ २\ घ}{ज्या\ २''} + \frac{प^३\ ज्या\ ३\ घ}{ज्या\ ३''} +$ (३)

विषुवांश लम्बन जानने के लिए सूत्र (१) उस समय काम में लाया जा सकता है जब स्पष्ट नतकाल ज्ञात हो और जब यथार्थ नतकाल ज्ञात रहता है तब सूत्र (२) या (३) काम में लाया जाता है।

उदाहरण १—चन्द्रमा का विषुवांश लम्बन बतलाओ जब कि द्रष्टा के स्थान का उत्तर अक्षांश ३९°५७′७″, इस स्थान के लिए चन्द्रमा का क्षितिज लम्बन ५९′३६.″८, चन्द्रमा की उत्तर क्रान्ति २४°५′११″.६ और चन्द्रमा का यथार्थ नतकाल ६१°१०′४७.″४।

इस स्थान का भूकेन्द्रिक अक्षांश पृष्ठ ३९१ के सूत्र (५) के अनुसार ३९°४५′४७″.५ हुआ।

लरि ज्या लि = लरि ज्या ५९′३६″.८ = ८.२३९०४८

लरि कोज्या अ = लरि कोज्या ३९°४५′४७″.५ = ९.८८५७५४

*लरि छेरे क = लरि छेरे २४°५′११″.६ = ०.०३९५६३

$\therefore$ लरि प = ८.१६४३६५

लरि ज्या घ = लरि ज्या ६१°१०′४७″.४ = ९.९४२५७२

लरि कोछेरे १″ = ५.३१४४२५

---

* पृष्ठ ३९७ में यह माना गया है कि $प = \frac{ज्या\ लि \times कोज्या\ आ}{कोज्या\ क}$ परन्तु $\frac{१}{कोज्या\ क}$ = छेदन रेखा क = छेरे क, इसलिए प = ज्या लि × कोज्या आ × छेरे क

इसलिए सूत्र (३) के पहले पद का लघुरिक्थ = ३.४२१३६२

∴ पहला पद = २६३८″.५३

लरि प² = २ लरि प = ६.३२८७

ज्या २ घ = ज्या २ × ६१°१०′४७″.४ = ९.९२९७

लरि कोछेरे २″ = ५.०१३४

∴ दूसरे पद का लघुरिक्थ = १.२६८८

∴ दूसरा पद = + १८″.५७

लरि प³ = ३ लरि प = ४.४९३

लरि ज्या ३ घ = लरि ज्या ३ × ६१°१०′४७″.४ = ८.७९१ ऋणात्मक

लरि कोछेरे ३″ = ४.८३७

∴ तीसरे पद का लघुरिक्थ = ८·१२१ ऋणात्मक

∴ तीसरा पद = − ०″·०१

∴ ली = २६३८″·५३ + १८″·५७ − ०″·०१

= २६५०″·०९

= ४४′१७″·०९ = ४४′१७″·१

∴ चंद्रमा का स्पष्ट नतकाल

= ६१°१०′४७″·४ + ४४′१७″·१

= ६१°५५′४″·५

यदि वही स्पष्ट नतकाल दिया होता तो सूत्र (१) से विषुवांश लंबन इस प्रकार जाना जाता :—

लरि ज्या ली = लरि प + लरि ज्या ६१°५५′४″·५

= ८·१६४३६५ × ९·९४५६०४

= ८·१०९९६९

∴ ली = ४४′१७″·०९

इस प्रकार किसी स्थान के विषुवांश लंबन की सारिणी तैयार की जा सकती है।

चन्द्रमा का क्रान्ति लम्बन (Parallax in declination) जानना

इस काम के लिए भी चित्र ७७ काम देगा। मान लो कि चंद्रमा की यथार्थ क्रान्ति क, यथार्थ नतांश न और यथार्थ नतकाल घ है और लंबन के कारण चंद्रमा की स्पष्ट क्रान्ति, स्पष्ट नतांश और स्पष्ट नतकाल क्रमानुसार का, ना, और घा हैं।

मान लो कि चन्द्रमा का क्रान्ति लंबन लु है।

गोलीय त्रिभुज च ध ख और चा ध ख में,

$$\text{कोज्या च ख ध} = \frac{\text{कोज्या च ध} - \text{कोज्या च ख कोज्या ध ख}}{\text{ज्या च ख ज्या ध ख}}$$

$$\text{कोज्या चा ख ध} = \frac{\text{कोज्या चा ध} - \text{कोज्या चा ख कोज्या ध ख}}{\text{ज्या चा ख ज्या ध ख}}$$

परन्तु च ख ध और चा ख ध कोण एक ही हैं और

च ध = चंद्रमा का यथार्थ ध्रुवान्तर = ९०° − क

चा ध = ,, स्पष्ट ,, = ९०° − क

∴ कोज्या च ध = कोज्या (९०° − क) = ज्या क

और कोज्या चा ध = ज्या का

$$\therefore \frac{\text{ज्या क} - \text{कोज्या न} \times \text{ज्या आ}}{\text{ज्या न}} = \frac{\text{ज्या का} - \text{कोज्या ना} \times \text{ज्या आ}}{\text{ज्या ना}}$$

अर्थात् ज्या क ज्या ना − ज्या आ ज्या ना कोज्या न

= ज्या का ज्या न − ज्या आ ज्या न कोज्या ना

या ज्या क ज्या ना − ज्या आ (ज्या ना कोज्या न − कोज्या ना ज्या न)

= ज्या का ज्या न

∴ ज्या क ज्या ना − ज्या आ ज्या (ना − न) = ज्या का ज्या न

परन्तु ना − न चंद्रमा का नतांश लम्बन है इसलिए

ज्या (ना − न) = ज्या ला = ज्या लि ज्या ना (देखो पृष्ठ ३८५)

यहाँ लि क्षितिज लम्बन माना गया है।

∴ ज्या क ज्या ना − ज्या आ ज्या लि ज्या ना = ज्या का ज्या न

या ज्या का ज्या न = ज्या ना (ज्या क − ज्या लि ज्या आ) (क)

इस समीकरण से ज्या ना और हटाने के लिए गोलीय त्रिभुज च ध ख और चा ध ख से इस प्रकार काम लेना होगा—

$$\frac{\text{ज्या च ख ध}}{\text{ज्या च ध}} = \frac{\text{ज्या च ध ख}}{\text{ज्या च ख}}$$

$$\text{और} \quad \frac{\text{ज्या चा ख ध}}{\text{ज्या चा ध}} = \frac{\text{ज्या चा ध ख}}{\text{ज्या चा ध}}$$

परन्तु च ख ध और चा ख ध एक ही हैं, इसलिए

$$\frac{\text{ज्या च ध ज्या च ध ख}}{\text{ज्या च ख}} = \frac{\text{ज्या चा ध ज्या चा ध ख}}{\text{ज्या चा ख}}$$

$$\text{या ज्या चा ध ज्या च ख} = \frac{\text{ज्या च ध ज्या च ध ख ज्या चा ख}}{\text{ज्या चा ध ख}}$$

$$\text{या कोज्या का ज्या न} = \frac{\text{कोज्या क ज्या घ ज्या ना}}{\text{ज्या घा}} \qquad (\text{ख})$$

समीकरण (क) के बायें पक्ष का समीकरण (ख) के बायें पक्ष से और उसके दाहिने पक्ष को इसके दाहिने पक्ष से भाग देने पर

$$\text{स्परे का} = \frac{\text{ज्या क} - \text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{ज्या घ कोज्या के}} \times \text{ज्या घा}$$

$$= \frac{\text{ज्या क} + \text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{कोज्या क}} \times \frac{\text{ज्या घा}}{\text{ज्या ध}}$$

$$= \left(\frac{\text{ज्या क}}{\text{कोज्या क}} - \frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{कोज्या क}}\right) \times \frac{\text{ज्या घ}}{\text{ज्या घ}}$$

$$= \text{स्परे क}\left(१ \; \frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{ज्या क}}\right)\frac{\text{ज्या धा}}{\text{ज्या घ}} \qquad (१)$$

यदि यथार्थ क्रान्ति, नतकाल और स्पष्ट नतकाल ज्ञात हो तो इस सूत्र से स्पष्ट क्रान्ति जानी जा सकती है। फिर स्पष्ट क्रान्ति से यथार्थ क्रान्ति घटाने पर क्रान्ति लम्बन जाना जा सकता है। यदि क्रान्ति लम्बन का मान सीधे ही जानना हो तो सूत्र (१) को दूसरे रूप में लिखना होगा जो इस प्रकार सिद्ध होता है :—

सूत्र (१) से सिद्ध है कि

$$\frac{\text{स्परे का ज्या घ}}{\text{ज्या धा}} = \text{स्परे क}\left(१ - \frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{ज्या क}}\right)$$

$$= \text{स्परे क} - \frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{कोज्या क}}$$

$$\therefore \text{स्परे क} - \frac{\text{स्परे का ज्या घ}}{\text{ज्या घा}} = \frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{कोज्या क}}$$

$$\text{अथवा स्परे क} - \text{स्परे का} \times \text{स्परे का} - \frac{\text{स्परे का ज्या घ}}{\text{ज्या घा}}$$

$$= \frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{कोज्या क}}$$

$$\text{परन्तु स्परे क} - \text{स्परे का} = \frac{\text{ज्या क}}{\text{कोज्या क}} - \frac{\text{ज्या का}}{\text{कोज्या का}}$$

$$= \frac{\text{ज्या क कोज्या का} - \text{कोज्या क ज्या का}}{\text{कोज्या क कोज्या का}}$$

$$= \frac{\text{ज्या (क—का)}}{\text{कोज्या क कोज्या का}}$$

$$\therefore \frac{\text{ज्या (क—का)}}{\text{कोज्या क कोज्या का}} \times \text{स्परे का} \left(१ — \frac{\text{ज्या घ}}{\text{ज्या घा}}\right)$$

$$= \frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{कोज्या क}}$$

अथवा

$$\frac{\text{ज्या (क—का)}}{\text{कोज्या क कोज्या का}} = \frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{कोज्या क}} — \frac{\text{स्परे का}}{\text{ज्या घा}} \left(\text{ज्या घा—ज्या घ}\right)$$

परन्तु Hall and Knight की Trigonometry पृष्ठ ११३ के अनुसार

$$\text{ज्या घा—ज्या घ} = २ \text{ ज्या } \frac{\text{घा—घ}}{२} \text{ कोज्या } \frac{\text{घा} + \text{घ}}{२}$$

जहाँ घा स्पष्ट नतकाल और घ यथार्थ नतकाल है।

इसलिए घा — घ = विषुवांश लम्बन = ली

घा + घ = घा — घ + २ घ = ली + २ घ

$$\therefore \text{ज्या घा — ज्या घ} = २ \text{ ज्या } \frac{\text{ली}}{२} \text{ कोज्या } \left(\frac{\text{ली} + २ \text{ घ}}{२}\right)$$

और क — का = स्पष्ट और यथार्थ क्रान्तियों का अन्तर

= क्रान्ति लम्बन = लु (देखो पृष्ठ ३६६)

$$\therefore \frac{\text{ज्या लु}}{\text{कोज्या क कोज्या का}} = \frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{कोज्या क}} — \frac{\text{स्परे का}}{\text{ज्या घा}}$$

$$\times २ \text{ ज्या } \frac{\text{ली}}{२} \text{ कोज्या } \left(\text{घ} + \frac{\text{ली}}{२}\right)$$

$$\text{परन्तु ज्या ली} = २ \text{ ज्या } \frac{\text{ली}}{२} \text{ कोज्या } \frac{\text{ली}}{२}$$

$$\therefore २ \text{ ज्या } \frac{\text{ली}}{२} = \frac{\text{ज्या ली}}{\text{कोज्या } \frac{\text{ली}}{२}}$$

$$= \frac{\text{ज्या लि कोज्या आ ज्या (घ+ली)}}{\text{कोज्या क कोज्या } \frac{\text{ली}}{२}} \text{ (देखो पृष्ठ ३६७)}$$

$$\therefore २ \text{ ज्या } \frac{\text{ली}}{२} = \frac{\text{ज्या लि कोज्या आ ज्या घा}}{\text{कोज्या क कोज्या } \frac{\text{ली}}{२}}$$

इसलिए

$$\frac{\text{ज्या लु}}{\text{कोज्या क कोज्या का}} = \frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{कोज्या क}} - \frac{\text{स्परे का}}{\text{ज्या घा}} \times \frac{\text{ज्या लि कोज्या आ ज्या घा}}{\text{कोज्या क कोज्या }\frac{\text{ली}}{२}} \times \text{कोज्या}\left(\text{घ} + \frac{\text{ली}}{२}\right)$$

यदि दोनों पक्षों को कोज्या क कोज्या का से गुणा कर दिया जाय और सरल किया जाय तो

$$\text{ज्या लु} = \text{ज्या लि ज्या आ कोज्या का} - \frac{\text{ज्या लि कोज्या आ कोज्या}\left(\text{घ} + \frac{\text{ली}}{२}\right)\text{ज्या का}}{\text{कोज्या}\frac{\text{ली}}{२}} \quad (\text{क})$$

मान लो कि

$$\text{कोस्परे फ} = \frac{\text{कोज्या}\left(\text{घ} + \frac{\text{ली}}{२}\right)\text{कोस्परे आ}}{\text{कोज्या}\frac{\text{ली}}{२}}$$

तब ज्या लु=ज्या लि ज्या आ कोज्या का—ज्या लि ज्या आ ज्या का कोस्परे फ

इसलिए

$$\text{ज्या लु} = \text{ज्या लिज्या आ (कोज्या का—ज्या का कोस्परे फ)}$$

$$= \text{ज्या लि ज्या आ}\left(\frac{\text{कोज्या का ज्या फ—ज्या का कोज्या फ}}{\text{ज्या फ}}\right)$$

$$= \frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{ज्या फ}}\text{ ज्या (फ—का)}$$

यदि $\frac{\text{ज्या लि ज्या आ}}{\text{ज्या फ}}$ के लिए ब मान लिया जाय तो

ज्या लु=ब ज्या (फ—का)

परन्तु क—का=शु ∴ का=क—लु

$$\therefore \text{ ज्या लु} = \text{ब ज्या (फ—क+लु)} \quad (२)$$

$$= \text{ब \{ज्या (फ—क) कोज्या लु+कोज्या (फ—क) ज्या लु\}}$$

दोनों पक्षों को कोज्या लु से भाग देने पर

$$\text{स्परे लु} = \text{ब ज्या (फ} - \text{क)} + \text{ब कोज्या (फ} - \text{क) स्परे लु}$$

$$\text{या स्परे लु} = \frac{\text{ब ज्या (फ} - \text{क)}}{1 - \text{ब कोज्या (फ} - \text{क)}} \qquad (३)$$

यदि इसको पहले की तरह श्रेणी में विस्तार किया जाय तो

$$\text{लु} = \frac{\text{ब ज्या (फ} - \text{क)}}{\text{ज्या } 1''} + \frac{\text{ब}^2 \text{ ज्या२ (फ} - \text{क)}}{\text{ज्या२}''} + \frac{\text{ब}^3 \text{ ज्या३ (फ} - \text{क)}}{\text{ज्या ३}''} + \cdots\cdots \qquad (४)$$

जब स्पष्ट क्रान्ति ज्ञात हो तो सूत्र (२) से और यथार्थ क्रान्ति ज्ञात हो तो सूत्र (३) और (४) से क्रान्ति लम्बन जाना जा सकता है।

यह जानना कि विषुवांश लम्बन में प्रति घंटा क्या भेद पड़ता है :—

पृष्ठ ३९७ में विषुवांश लंबन का सूत्र यह आया है :—

$$\text{ज्या ली} = \frac{\text{ज्या लि} \times \text{कोज्या आ} \times \text{ज्या घा}}{\text{कोज्या क}}$$

ली और लि धनु बहुत छोटे होते हैं इसलिए

$$\text{ज्या ली} = \text{ली}$$

$$\text{और ज्या लि} = \text{लि}$$

लम्बन के कारण यथार्थ नतकाल और स्पष्ट नतकाल में जो भिन्नता देख पड़ती है वह भी बहुत कम होती है इसलिए व्यवहार की सुविधा के लिए ज्या घ को ज्या घा के समान समझ लेने में कोई हानि नहीं। इसलिए उपर्युक्त सूत्र का रूप यह हुआ :—

$$\text{ली} = \frac{\text{लि} \times \text{कोज्या आ} \times \text{ज्या घ}}{\text{कोज्या क}}$$

इस सूत्र में घ ही ऐसा है जिसका भेद प्रतिक्षण बहुत बढ़ता रहता है, लि, ली, आ और क में जो विकार उत्पन्न होता है वह इतना मन्द होता है कि कुछ समय के लिए यह मात्राएँ स्थिर मानी जा सकती हैं। इसलिए यदि घ को चल राशि मान कर ली की तात्कालिक गति निकाली जाय तो

$$\text{त (ली)} = \frac{\text{लि} \times \text{कोज्या आ}}{\text{कोज्या क}} \text{ कोज्या घ ता (घ)}$$

यहाँ ता (घ) को रेडियन में लिखना होगा। यदि यह जानना हो कि प्रति घंटा विषुवांश लम्बन में क्या भेद उत्पन्न होता है तो ता (घ) को १५° के रेडियन में प्रकट करना चाहिए। यह विदित है कि

१८०° = π रेडियन

= ३·१४१ ५६ रेडियन

∴ १५° = ·२६१७६६ रेडियन

और ६° = ·१०४७१६७ रेडियन

उदाहरण—चन्द्रमा के विषुवांश लम्बन में प्रति घंटा क्या भेद पड़ता है जब एक स्थान का क्षितिज लंबन ५७′, भूकेन्द्रिक अक्षांश ४२°११′२१″, चंद्रमा की क्रान्ति २५° और नतकाल ५०° हो ?

लरि लि = लरि ५७′ = लरि ३४२०″ = ३·५३ ०२६

लरि कोज्या आ = लरि कोज्या ४२°११′२१″ = ९·८६९७७८

लरि कोज्या घ = लरि कोज्या ५०° = ९·८०८०६७

लरि ता (घ) = लरि ·२६१७६६ = $\bar{1}$·४१७९६६

लरि छेरे क = लरि छेरे २५° = ०·०४२७२४

∴ लरि ता (ली) = २·६७२५६४

∴ ता (ली) = ४७०″·५ = ७′५०·५

यह जानना कि क्रान्ति लम्बन में प्रति घंटा क्या भेद पड़ता है :—

पृष्ठ ४०२ में सिद्ध हुआ है कि

ज्या लु = ज्या लि ज्या आ कोज्या का

$$-\frac{\text{ज्या लि कोज्या आ कोज्या}\left(\text{घ}+\frac{\text{ली}}{२}\right)\text{ज्या का}}{\text{कोज्या}\ \frac{\text{ली}}{२}}$$

यदि पहले की तरह ज्या लु और ज्या लि की जगह लु और ली लिये जायँ, घ + $\frac{\text{ली}}{२}$ को घ और कोज्या $\frac{\text{ली}}{२}$ को १ तथा का को क मान लिया जाय तो

लु = लि ज्या आ कोज्या क − लि कोज्या आ कोज्या घ ज्या क

अब यदि केवल घ को चल-राशि मानकर इस समीकरण की तात्कालिक गति निकाली जाय तो

ता (लु) = लि कोज्या आ ज्या क ज्या घ ता (घ)

उदाहरण—चन्द्रमा के क्रान्ति लम्बन में प्रति घंटा क्या भेद पड़ता है, जब एक स्थान का क्षितिज लम्बन ५७′, भूकेन्द्रिक अक्षांश ४२°११′२१″, चन्द्रमा की क्रान्ति २५° और नतकाल ५०° है ?

लरि लि = लरि ५७′ = लरि ३४२०″ = ३·५३४०२६

लरि कोज्या आ = लरि कोज्या ४२°११′२१″ = ९·८६९७७८

लरि ज्या क = लरि ज्या २५° = ९·६२५९४८

लरि ज्या घ = लरि ज्या ५०° = ९·८८४२५४

लरि ता (घ) = लरि·२६१७९९ = १·४१७९६९

∴ लरि ता (लु) = २·३३१९७५

∴ ता (लु) = २१४″·८ = ३′३४″·८

भोगांश और विक्षेप (शर) पर लम्बन का प्रभाव—

जिस प्रकार विषुवांश और क्रान्ति सम्बन्धी लम्बन जानने के लिए सूत्र स्थापित किये गये हैं ठीक उसी प्रकार ऐसे सूत्र भी स्थापित किये जा सकते हैं जिनसे भोगांश और शर सम्बन्धी लंबन जाने जा सकते हैं। इस काम के लिए चित्र ७७ के ध विन्दु को कदंब (क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव) समझना होगा। ऐसी दशा में कदंब और खस्वस्तिक ख से जाता हुआ ऊर्ध्ववृत्त उ ध ख द वह वृत्त होगा जिस पर त्रिभोन लग्न या वित्रिभ लग्न है (देखो चित्र ६३ और पृष्ठ ३३०), ध च और ध चा कदम्ब-प्रोतवृत्तों पर ग्रह के यथार्थ और स्पष्ट कदम्बान्तर हैं। इसलिए ९०° – ध च और ९०° – ध चा ग्रह के यथार्थ और स्पष्ट शरों के समान होंगे। ख ध खस्वस्तिक से कदम्ब का अन्तर है जिसको ९०° से घटाने पर त्रिभोन लग्न का नतांश आ जायगा। यही त्रिभोन लग्न का नतांश खस्वस्तिक से क्रान्तिवृत्त का यथार्थ अन्तर है इसलिए यह खस्वस्तिक का भूकेन्द्रिक शर हुआ।

मान लो कि खस्वस्तिक का भूकेन्द्रिक शर या त्रिभोन लग्न का नतांश त्रा है, ग्रह का यथार्थ शर श और स्पष्ट शर शा है, ग्रह के भोगांश और त्रिभोन लग्न का यथार्थ अन्तर ख ध च है जिसे संक्षेप में यथार्थ विश्लेषांश या केवल व कहा जायगा। यदि लि क्षितिज लम्बन तथा भी भोगांश लम्बन हो तो पृष्ठ ३९७ के समीकरण (क) की तरह

$$\text{ज्या भी} = \frac{\text{ज्या लि कोज्या त्रा ज्या (व + भी)}}{\text{कोज्या श}} \qquad (\text{क})$$

पृष्ठ ३९७ में दिखाई गयी रीति के अनुसार इसको यों भी लिखा जा सकता है।

$$\text{स्परे भी} = \frac{\text{त ज्या व}}{१ - \text{त कोज्या व}} \qquad (२)$$

जब $त = \frac{ज्या\ लि\ कोज्या\ त्रा}{कोज्या\ श}$

यह स्पष्ट है कि सूत्र (क) में भी और लि बहुत छोटे हैं इसलिए इनकी ज्याओं की जगह धनु लिखने में कोई हानि नहीं होगी परन्तु सरलता हो जायगी। इसलिए

$$भी = \frac{लि\ कोज्या\ त्रा\ ज्या\ व}{कोज्या\ श} \qquad (ख)$$

अथवा यदि ग्रह का शर बहुत छोटा हो जैसे सूर्य-ग्रहण के समय चन्द्रमा का शर होता है तो कोज्या श का मान १ के प्राय: समान होगा। इसलिए

$$भी = लि\ कोज्या\ त्रा\ ज्या\ व \qquad (ग)$$

यही रूप सूर्य-सिद्धान्त के सूर्य-ग्रहणाधिकार श्लोक ७-८ में बतलाया गया है।

शर लंबन या नति—यदि भु शर लंबन हो तो पृष्ठ ४०२ के समीकरण (क) की तरह

$$ज्या\ भु = ज्या\ लि\ ज्या\ त्रा\ कोज्या\ शा$$

$$- \frac{ज्या\ लि\ कोज्या\ त्रा\ कोज्या\left(व + \frac{भी}{२}\right) ज्या\ शा}{कोज्या \frac{भी}{२}} \qquad (घ)$$

यह स्पष्ट है कि $\frac{भी}{२}$ अर्थात् भोगांश लंबन बहुत छोटा है इसलिए कोज्या $\frac{भी}{२} = १$ । ऐसी दशा में यदि $व + \frac{भी}{२}$ की जगह व और शा की जगह श रखा जाय तो बहुत अन्तर नहीं पड़ेगा और सूत्र (घ) सरल होकर ऐसा हो जायगा :—

$$ज्या\ भु = ज्या\ लि\ ज्या\ त्रा\ कोज्या\ श - ज्या\ लि\ कोज्या\ त्रा\ ज्या\ श\ कोज्या\ व \qquad (ङ)$$

यदि ज्या भु और ज्य लि की जगह इनके धनु लिये जायँ क्योंकि यह बहुत छोटे हैं तो

$$भु = लि\ ज्या\ त्रा\ कोज्या\ श - लि\ कोज्या\ त्रा\ ज्या\ श\ कोज्या\ व \qquad (च)$$

भोगांश लंबन की समानता विषुवांश लंबन से तथा क्रान्ति लंबन की समानता शर लंबन से समझने के लिए यह याद रखना चाहिए कि

भोगांश लम्बन के सूत्र में	विषुवांश लम्बन के सूत्र में
लि = क्षितिज लम्बन	लि = क्षितिज लम्बन
भी = भोगांश लम्बन	लि = विषुवांश लम्बन

त्रा=त्रिभोन लग्न का नतांश	आ=भूकेन्द्रिक अक्षांश
व=विश्लेषांश	घ=यथार्थ नतकाल
श=यथार्थ शर	क=यथार्थ क्रान्ति
शा=स्पष्ट शर	का=स्पष्ट क्रान्ति
भु=शर लम्बन या नति	लु=क्रान्ति लम्बन

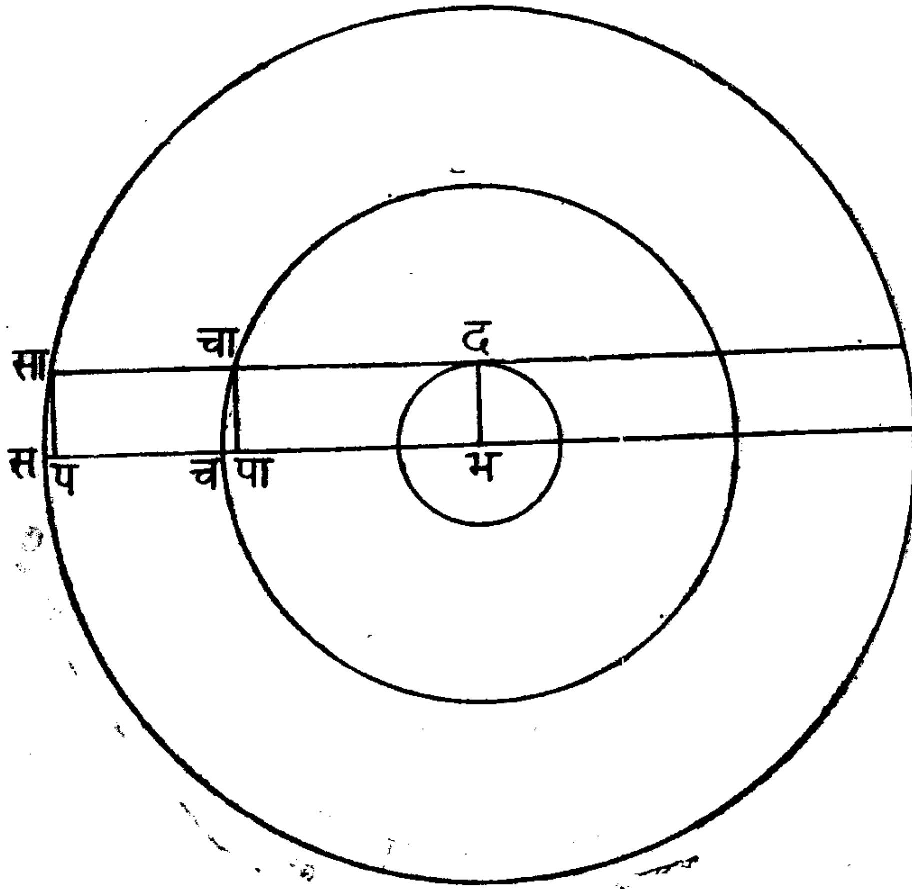
सूर्य-सिद्धान्त ने भोगांश लंबन का नाम हरिज और शर लंबन का नाम नति रखा है। अन्य सिद्धान्त ग्रन्थों में भोगांश लंबन को केवल लंबन या स्फुट लंबन और शर लंबन को नति कहा गया है।

अब संक्षेप में यह बतलाया जायगा कि हमारे आचार्यों ने लम्बन के विषय में क्या लिखा है :—

भास्कराचार्य ने लिखा* है कि किसी ग्रह की दैनिक गति को १५ से भाग देने पर उस ग्रह का परम लम्बन (क्षितिज लम्बन) आ जाता है। इसका कारण यह बतलाया गया है :—

भूतल के किसी स्थान को स्पर्श करता हुआ समतल (horizontal plane) आकाश को जिस वृत्त पर काटता हुआ देख पड़ता है उसे उस स्थान का क्षितिज वृत्त कहते हैं। यह क्षितिज वृत्त आकाश के गोल को दो भागों में बाँट देता है। इस क्षितिज वृत्त को स्पष्ट क्षितिज वृत्त (sensible horizon) कहते हैं। यदि पृथ्वी के केन्द्र से होता हुआ स्पष्ट क्षितिज वृत्त के समानान्तर दूसरा समतल आकाश की ओर बढ़ाया जाय तो यह आकाश को जिस वृत्त पर काटता है उसे उस स्थान का यथार्थ क्षितिज वृत्त (true या rational horizon) कहते हैं। चित्र ७८ में द भूतल पर द्रष्टा का स्थान और भ पृथ्वी का केन्द्र है। द से जो समतल पृथ्वी तल को छूता हुआ खींचा गया है वह चन्द्रमा की कक्षा को चा बिन्दु पर और सूर्य की कक्षा को सा बिंदु पर काटता है। इसलिए चा, सा बिंदु द स्थान की स्पष्ट क्षितिज पर है। यदि इसी के समानान्तर भ से होता हुआ एक समतल आकाश की ओर बढ़ाया जाय जो चन्द्र और सूर्य की कक्षाओं को क्रम से च और स विन्दुओं पर काटे तो भ च स तल को द स्थान का यथार्थ क्षितिज कहते हैं। यह प्रकट है कि जिस समय चंद्रमा और सूर्य अथवा अन्य कोई ग्रह द स्थान के यथार्थ क्षितिज पर रहता है उस समय वह भ च स तल में रहता है जो द स्थान के स्पष्ट क्षितिज से नीचे है इसलिए वह द्रष्टा को नहीं देख पड़ेगा। ऐसी दशा में ग्रह स्पष्ट क्षितिज से जितना नीचे रहेगा उसका परिमाण चा पा या सा प है जो भ द अर्थात् पृथ्वी के अर्द्ध-व्यास के समान

*गणिताध्याय पृष्ठ १६२।



चित्र ७८

है। इसलिए यह कहने में कुछ भी दोष नहीं है कि जब ग्रह किसी स्थान के यथार्थ क्षितिज पर रहता है तब वह उस स्थान के स्पष्ट क्षितिज से पृथ्वी के अर्द्धव्यास के समान नीचे रहता है अर्थात् उसका लंबन पृथ्वी के अर्द्धव्यास के समान होता है। यदि चा पा को चा च के समान और सा प को सा स के समान समझ लें तो बहुत अन्तर न पड़ेगा क्योंकि चा च या सा स पूरी कक्षा की तुलना में बहुत छोटा है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि जब ग्रह यथार्थ क्षितिज पर रहता है तब वह द्रष्टा की क्षितिज से अपनी कक्षा में पृथ्वी के अर्द्धव्यास के समान नीचे रहता है।

यह पहले बतलाया जा चुका है (देखो पृष्ठ १६-१७) कि हमारे आचार्यों ने मान लिया था कि प्रत्येक ग्रह की योजनात्मक गति समान होती है। आगे आनेवाले भूगोलाध्याय के श्लोक ८१-८२ के अनुसार प्रत्येक ग्रह की दैनिक गति ११८५८.७२ योजन होती है। पृथ्वी का अर्द्धव्यास सूर्य सिद्धान्त के अनुसार ८०० योजन और सिद्धान्त शिरोमणि के अनुसार ७९०.५ योजन होता है (देखो मध्यमाधिकार पृष्ठ-५३)। पिछले ग्रन्थ में लिखा हुआ पृथ्वी का अर्द्धव्यास ग्रह की दैनिक गति का ठीक पन्द्रहवाँ भाग है। पहले ग्रन्थ के अनुसार भी ग्रह की दैनिक गति पृथ्वी के अर्द्धव्यास

के प्रायः १५ गुने के समान है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि जिस समय ग्रह यथार्थ क्षितिज पर रहता है उस समय यह स्पष्ट क्षितिज से अपनी दैनिक गति के १५वें भाग के समान नीचे रहता है। अर्थात् ग्रह का परम लंबन उसकी दैनिक गति के १५वें भाग के समान होता है। एक दिन ६० घड़ी के समान होता है इसलिए ६० घड़ी में जो गति होती है उसका पन्द्रहवाँ भाग चार घड़ी की गति के समान हुआ। इसका अर्थ यह हुआ कि ग्रह चार घड़ी में जितना चलता है उतना ही उसका परम लंबन (कलाओं में) होता है। समय की इकाइयों में ग्रह का परम लंबन ४ घड़ी के समान होता है।

यदि ग ग्रह की दैनिक कोणात्मक गति, य उसकी दैनिक योजनात्मक गति, ल परम लंबन, क पृथ्वी से ग्रह कक्षा की दूरी और त्र पृथ्वी का अर्द्धव्यास हो तो ऊपर लिखी बातें इस प्रकार भी प्रकट की जा सकती हैं :—

$$\text{ल} = \frac{\text{ग}}{१५} = \frac{\text{य}}{१५\ \text{क}} = \frac{\text{त्र}}{\text{क}}$$

क्योंकि यदि ग्रह बहुत दूर हो तो उसकी दैनिक योजनात्मक गति को अर्थात् १ दिन में ग्रह अपनी कक्षा का जितना धनु (arc) चलता है उसको कक्षा के अर्द्धव्यास से भाग देने पर उसकी दैनिक कोणात्मक गति ज्ञात होती है इसलिए $\text{ग} = \frac{\text{य}}{\text{क}}$। परन्तु य को १५ से भाग देने पर जो आता है वह पृथ्वी के अर्द्धव्यास के समान होता है इसलिए $\frac{\text{य}}{१५} = \text{त्र}$।

इससे सिद्ध हुआ कि हमारे आचार्यों ने परम लंबन का परिमाण जानने के लिए जो नियम बनाये थे वह आजकल के बनाये नियम से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं (देखो पृ० ३८३)। परन्तु इसमें भूल यह थी कि ग्रह की योजनात्मक गति समान नहीं है जैसा कि आजकल के वेधों से सिद्ध होता है इसलिए हमारे आचार्यों के बताये हुए नियम से परम लंबन के जो मान आते हैं वे आजकल के वेधों द्वारा आये हुए परम लंबनों से बहुत भिन्न हैं। पृष्ठ ४१० की तुलनात्मक सारिणी से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

अब यह बतलाना आवश्यक है कि हमारे आचार्य ग्रह का परम लम्बन जानकर उसका स्पष्ट भोगांश लंबन और शर लंबन अथवा नति कैसे जानते थे। भास्कराचार्य जी लिखते हैं कि (१) जिस समय ग्रह खस्वस्तिक पर रहता है उस समय उसमें किसी प्रकार का लंबन नहीं होता क्योंकि पृथ्वी के केन्द्र से और द्रष्टा से

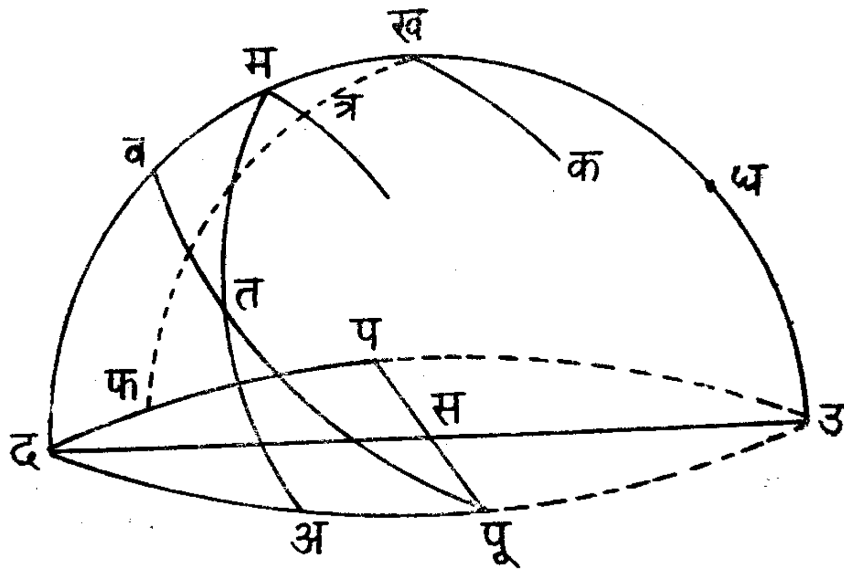
ग्रह	भास्कराचार्य के अनुसार मध्यम परम लम्बन	आजकल के वेधों से प्राप्त परम लम्बन		आजकल के वेधों से प्राप्त स्पष्ट बिम्ब	
		लघुतम	महत्तम	लघुतम	महत्तम
	विकला	विकला	विकला	विकला	विकला
सूर्य	२३६.५	८.७	९.०	१८९०	१९५६
चन्द्रमा	३१९२.३	३१८६	३७२०	१७४०	२०२८
मङ्गल	१२५.७	३.५	१६.९	४.४	२१.२
बुध	९८२.१	६.४	१४.४	४.८	१०.९
गुरु	२०.०	१.४	२.१	३१.६	४६.७
शुक्र	३८४.५	५.०	३१.४	९.६	६०.०
शनि	८.०	०.८	१.०	१५.८	१९.५

ग्रह तक खींची गयी रेखाएँ एक* ही होती हैं। (२) जिस समय ग्रह त्रिभोन लग्न पर होता है अर्थात् जिस समय ग्रह क्रान्तिवृत्त के उस बिंदु पर होता है जो उदय लग्न से तीन राशि कम होता है तब ग्रह में भोगांश लंबन नहीं होता, केवल नति होती है। (३) जिस समय क्रान्तिवृत्त खस्वस्तिक से होता हुआ ऊर्ध्ववृत्त बनाता है और ग्रह क्रान्तिवृत्त पर होता है उस समय उसमें शरलम्बन नहीं होता, केवल भोगांश लम्बन होता है। अन्य दशाओं में लम्बन और नति क्या होती है यह जानने के नियम बतलाये गये हैं।

पृष्ठ ४०६ में बतलाया गया है कि किसी समय का भोगांश लम्बन जानने के लिए पहले यह जानना आवश्यक है कि उस समय के त्रिभोन लग्न का नतांश या

* इससे जान पड़ता है कि भास्कराचार्य ने पृथ्वी को पूर्ण गोल माना था क्योंकि तभी यह बात ठीक होती है।

उन्नतांश क्या है क्योंकि त्रिभोन लग्न के उन्नतांश की ज्या सूत्र (ख) का एक अंग है। त्रिभोन लग्न के नतांश की ज्या को दृक्क्षेप और उन्नतांश की ज्या को अथवा नतांश की कोटिज्या को दृग्गति कहा गया है। चित्र ७६ में दिखलाया गया है कि जब क्रान्तिवृत्त का उदय लग्न क्षितिज के पूर्व बिन्दु के दक्खिन होता है तब त्रिभोन लग्न याम्योत्तरवृत्त से पच्छिम होता है क्योंकि त्रिभोन लग्न उदय लग्न से ३ राशि या ९० अंश कम होता है। त्रिभोन लग्न खस्वस्तिक और कदम्ब बिंदुओं से जाता हुआ ऊर्ध्ववृत्त क्रान्तिवृत्त से समकोण बनाता है और क्षितिज को फ बिन्दु पर काटता है।



चित्र ७६

उ पू द फ=स स्थान का क्षितिज वृत्त

उ ध ख म व द=स स्थान का याम्योत्तर वृत्त

ध=उत्तरी आकाशीय ध्रुव

ख=खस्वस्तिक

म=मध्य लग्न

व पू=विषुवद्वृत्त

त्र म त अ=क्रान्तिवृत

त्र=त्रिभोन लग्न

त=शरद सम्पात (सायन तुला)

क=कदम्ब

क ख त्र फ=त्रिभोन लग्न से जाता हुआ ऊर्ध्ववृत्त

अ पू=उदय लग्न की अग्रा

इसलिए धनु अ द फ$=$९०°$=$धनु पू अ द। यदि दोनों धनुओं से सामान्य खंड अ द निकाल दिया जाय तो अ पू$=$द फ

गोलीय त्रिभुज अ त पू में

$$\frac{\text{ज्या (अ पू)}}{\text{ज्या अ त पू}} = \frac{\text{ज्या (अ त)}}{\text{ज्या अ पू त}}$$

परन्तु अ त पू विषुवद्वृत्त और क्रान्तिवृत्त के बीच का कोण अर्थात् सूर्य की परम क्रान्ति है और अ पू त कोण व द धनु के समान है जो स स्थान का लम्बांश है।

$$\therefore \text{ज्या (अ पू)} = \frac{\text{परम क्रान्ति ज्या} \times \text{ज्या (त अ)}}{\text{लम्बज्या}}$$

यही सूर्यग्रहणाधिकार के तीसरे श्लोक का तात्पर्य है। इसी ज्या अ पू का नाम उदय या उदय ज्या रखा गया है। परन्तु अ पू$=$द फ, जो म ख त्र कोण के समान है।

अब यदि गोलीय समकोण त्रिभुज म ख त्र के धनु म ख का ज्ञान हो जाय तो धनु ख त्र का मान सहज ही जाना जा सकता है क्योंकि कोण ख त्र म समकोण है। यह स्पष्ट ही है कि म ख मध्य लग्न का नतांश है जो मध्य लग्न की उत्तर क्रान्ति व म और इष्ट स्थान के अक्षांश व ख का अन्तर है। क्रान्ति दक्षिण होती तो जोड़ना पड़ता। म ख की ज्या का नाम मध्य ज्या रखा गया है यह जानने की रीति उसी अधिकार के ४थे और ५वें श्लोकों में बतलाई गयी है। इसलिए समकोण गोलीय त्रिभु ख त्र म में

$$\text{ज्या (त्र ख)} = \text{ज्या (ख म त्र)} \times \text{ज्या (म ख)}$$

यदि गोलीय त्रिभुज ख त्र म को समतल त्रिभुज (plane triangle) मान लिया जाय तो ज्या (ख म त्र), $=$कोज्या (म ख त्र) क्योंकि ख म त्र और म ख त्र का योग ९०° के समान होगा।

इसलिए

$$\begin{aligned} \text{ज्या (त्र ख)} &= \text{कोज्या (म ख त्र) ज्या (म ख)} \\ &= \text{कोज्या (द फ)} \times \text{ज्या (म ख)} \\ &= \text{ज्या (म ख)} \sqrt{१ - \text{ज्या}^{२} \text{(द फ)}} \\ &= \sqrt{\text{ज्या}^{२} \text{(म ख)} - \text{ज्या}^{२} \text{(म ख) ज्या}^{२} \text{(द फ)}} \end{aligned}$$

$$\therefore \text{दृक् क्षेप} = \sqrt{\text{मध्यज्या}^{२} - \text{मध्यज्या}^{२} \times \text{उदय}^{२}}$$

$$\text{दृग्गति} = \sqrt{१ - \text{दृक्क्षेप}^{२}}$$

यही सूर्यग्रहणाधिकार के ५—६ श्लोकों का अर्थ है, यहाँ त्रिज्या १ मानी गयी है ।

$$\text{छेद} = \frac{(\text{ज्या } ३०^\circ)^२}{\text{दृग्गति}} = \frac{(\frac{१}{२})^२}{\text{दृग्गति}} = \frac{१}{४ \text{ दृग्गति}}$$

$$\text{लम्बन} = \frac{\text{ज्या विश्लेषांश*}}{\text{छेद}}$$

$$= \frac{\text{ज्या विश्लेषांश}}{\frac{१}{४ \text{ दृग्गति}}}$$

$$= ४ \times \text{दृग्गति} \times \text{ज्या विश्लेषांश}$$

इससे लम्बन का जो परिमाण ज्ञात होगा वह घड़ियों में होगा । यह सूत्र पृष्ठ ४०६ के सूत्र (ग) से मिलता है जहाँ लि=४ घड़ी=ग्रह का परम लम्बन, दृग्गति=त्रिभोन लग्न की उन्नतांश की ज्या=कोज्या त्रा और व=विश्लेषांश ।

शरलम्बन या नति के लिए केवल यह दिया हुआ है कि दृक्क्षेप को परम-लम्बन से गुणा करने पर नति आती है । यह रीति बहुत स्थूल है ।

लम्बन और नति की आवश्यकता सूर्य-ग्रहण की गणना करने में पड़ती थी । इसलिए हमारे ग्रन्थों में इसकी चर्चा सूर्यग्रहणाधिकार में की गयी है । परन्तु आजकल लम्बन से ग्रहों और ताराओं की दूरी का पता भी लगाया जाता है । यह बतलाया गया है कि क्षितिज लम्बन की ज्या$=\frac{\text{त्र}}{\text{क}}$ । इसलिए यदि क्षितिज लम्बन की ज्या और भूकेन्द्र से द्रष्टा की दूरी त्र ज्ञात हो तो क सहज ही जाना जा सकता है । अब संक्षेप में यह बतलाया जायगा कि ग्रह का लम्बन कैसे नापा जाता है ।

किसी ग्रह का लंबन नापना—मान लो कि चित्र ८० में द, दा भूतल के ऐसे दो स्थान हैं जो एक ही देशान्तर रेखा पर हैं और जिनके अक्षांश भी शुद्धता-पूर्वक जान लिये गये हैं । जिस समय ग्रह च यामोत्तर वृत्त पर आता है उस समय द से उसका स्पष्ट नतांश ख द च अथवा न है और दा से उसका स्पष्ट नतांश खा दा च अथवा ना है । इन दोनों स्थानों के अक्षांशों का योग द भ दा ज्ञात है, इसलिए

$$\angle \text{ द च दा} = ३६०^\circ - (\angle \text{ च द भ} + \text{च दा भ} + \angle \text{द भ दा})$$

$$= ३६०^\circ - (१८०^\circ - \text{न} + १८०^\circ - \text{ना} + \angle \text{द भ दा})$$

$$= \text{न} + \text{ना} - \angle \text{द भ दा}$$

---

* ग्रह के भोगांश और त्रिभोन लग्न का अन्तर विश्लेषांश है (देखो पृष्ठ ४०५)

परन्तु हमें द च दा कोण के जानने की आवश्यकता नहीं है। हमको तो द या दा से च का लम्बन जानना है अर्थात् हमको द च भ या दा च भ कोण जानना है जो द और दा से च के लम्बन हैं। मान लो द च भ=ल और दा च भ=ला और द च दा=च। अब

$$\text{ज्या ल} = \text{ज्या न} \times \frac{\text{भ द}}{\text{भ च}}$$

$$\text{ज्या ला} = \text{ज्या ना} \times \frac{\text{भ दा}}{\text{भ च}} = \text{ज्या ना} \times \frac{\text{भ द}}{\text{भ च}}$$

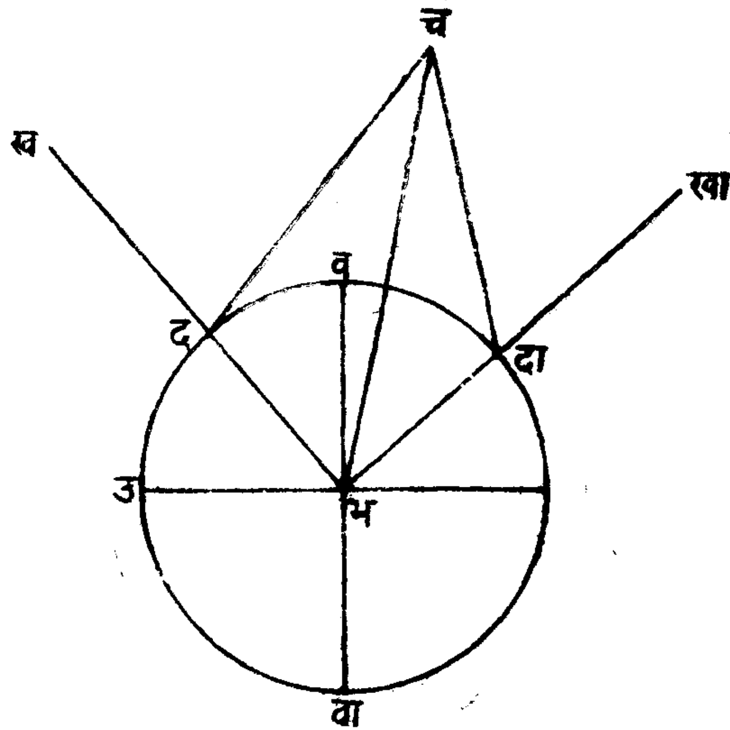
क्योंकि भ द और भ दा दोनों पृथ्वी की त्रिज्याएँ हैं इसलिए समान मानी जा सकती हैं। इसलिए

$$\frac{\text{ज्या ल}}{\text{ज्या न}} = \frac{\text{ज्या ला}}{\text{ज्या ना}}$$

अथवा $\text{ज्या ला} = \text{ज्या ला} \times \frac{\text{ज्या न}}{\text{ज्या ना}}$

परन्तु ल = च — ला

$$\therefore \text{ज्या (च — ला)} = \text{ज्या ला} \times \frac{\text{ज्या न}}{\text{ज्या ना}}$$



चित्र ८०

$$\therefore \quad \text{ज्या च कोज्या ला} - \text{कोज्या च ज्या ला} = \text{ज्या ला} \times \frac{\text{ज्या न}}{\text{ज्या ना}}$$

यदि इस समीकरण के प्रत्येक पक्ष को ज्या च ज्या ला से भाग दिया जाय तो

$$\text{कोस्परे ला} - \text{को स्परे च} = \frac{\text{ज्या न}}{\text{ज्या च ज्या ना}}$$

$$\text{अथवा कोस्परे ला} = \text{कोस्परे च} + \frac{\text{ज्या न}}{\text{ज्या च ज्या ना}}$$

इस प्रकार यह सिद्ध है कि यदि दो स्थानों से किसी ग्रह का नतांश वेध करके जान लिया जाय तो उन स्थानों के अक्षांशों के ज्ञान से द च दा कोण अर्थात् च की जानकारी हो सकती है। फिर च से ला की जानकारी उपर्युक्त समीकरण से की जा सकती है।

यह तो स्पष्ट ही है कि चन्द्रमा को छोड़कर अन्य ग्रहों के लम्बन बहुत छोटे होते हैं इसलिए यदि इनके लम्बनों की ज्याओं के स्थान में इनके धनु ही रखे जायँ तो कोई हानि नहीं हो सकती। ऐसी दशा में

$$\text{ज्या (च} - \text{ला)} = \text{ज्या ला} \times \frac{\text{ज्या न}}{\text{ज्या ना}} \text{ की जगह}$$

$$\text{च} - \text{ला} = \text{ला} \times \frac{\text{ज्या न}}{\text{ज्या ना}} \text{ लिखा जा सकता है।}$$

$$\therefore \text{च} = \text{ला} + \text{ला} \times \frac{\text{ज्या न}}{\text{ज्या ना}}$$

$$= \text{ला} \left(1 + \frac{\text{ज्या न}}{\text{ज्या ना}} \right)$$

$$= \text{ला} \times \frac{\text{ज्या ना} + \text{ज्या न}}{\text{ज्या ना}}$$

$$\therefore \text{ला} = \frac{\text{च ज्या ना}}{\text{ज्या न} + \text{ज्या ना}}$$

$$= \frac{\text{च ज्या ना}}{2 \text{ ज्या } \frac{\text{न} + \text{ना}}{2} \text{ कोज्या } \frac{\text{न} - \text{ना}}{2}} \qquad (\text{क})$$

इस सूत्र से किसी ग्रह का वेध करके उसका साधारण लम्बन या क्षितिज लम्बन जाना जा सकता है क्योंकि यदि क्षितिज लम्बन लि हो तो

$$\text{ज्या लि} = \frac{\text{ज्या ला}}{\text{ज्या ना}}$$

$$\text{अथवा लि} = \frac{\text{ला}}{\text{ज्या ना}} \qquad (\text{ख})$$

समीकरण (क) और (ख) को एकत्र करने से

$$\text{लि} = \frac{\text{च}}{२ \text{ ज्या} \frac{\text{न}+\text{ना}}{२} \text{कोज्या} \frac{\text{न}-\text{ना}}{२}} = \frac{\text{च}}{\text{ज्या न} + \text{ज्या ना}}$$

उदाहरण--यदि द स्थान का उत्तर अक्षांश ५९°२०′३०″ और दा का दक्षिण अक्षांश ३३°५५′५″ हो तथा द और दा से मंगल ग्रह के यामोत्तर नतांश ६८°१४′६″ और २५°२′ हो तो मंगल का क्षितिज लम्बन क्या है ?

द भ दा = ५९°२०′३०″ + ३३°५५′५″ = ९३°१५′३५″

न + ना = ६८°१४′६″ + २५°२′ = ९३°१६′६″

∴ च = द च दा = न + ना − द भ दा

= ९३°१६′६″ − ९३°१५′३५″

= ३१″

ज्या न = ज्या ६८°१४′६″ = .९२८७

ज्या ना = ज्या २५°२′ = .४२३१

∴ ज्या न + ज्या ना = १·३५१८

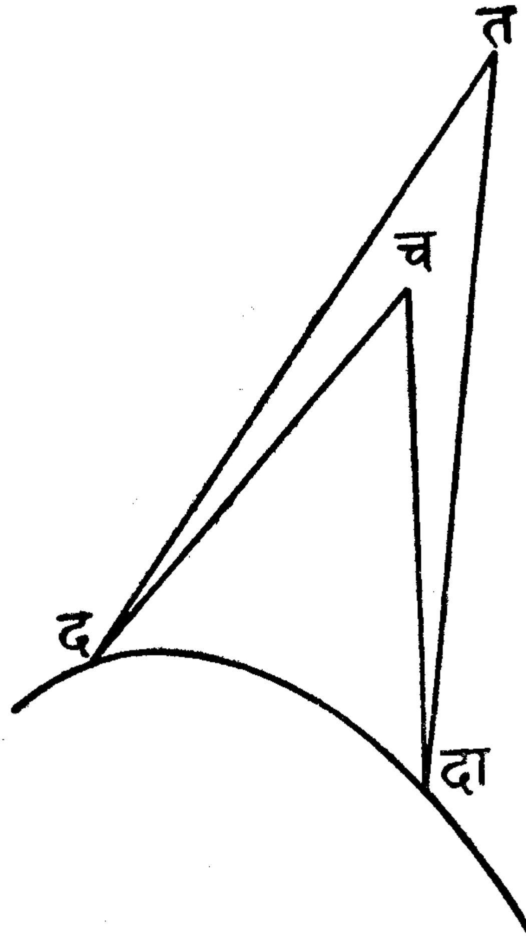
$$\therefore \text{क्षितिज लंबन लि} = \frac{३१''}{१·३५१८} = २२''·९३$$

यह प्रकट है कि इस रीति से च का मान जानने के लिए हमको दो स्थानों के अक्षांश जानना आवश्यक है। परन्तु यदि हम यह देखें कि जिस समय ग्रह यामोत्तर वृत्त पर है उस समय वह किसी पासवाले तारे से कितना ऊपर या नीचे दोनों स्थानों से देख पड़ता है तो च का मान सहज ही जाना जा सकता है। मान लो कि चित्र ८१ में च ग्रह का स्थान है और त उसी के पास वाले किसी तारे का स्थान है। द से देखने पर त से च का अन्तर त द च कोण के समान है और दा से इन दोनों का अन्तर त दा च कोण के समान है।

इसलिए द च दा = त द च + त दा च + द त दा

परन्तु तारा त इतनी दूर होता है कि द त दा कोण शून्य के समान होता है। इसलिए

द च दा = त द च + त दा च



चित्र ८१

इस चित्र में द स्थान से, त से नीचे च देख पड़ता है और दा स्थान से त से ऊपर च देख पड़ता है। इसलिए च और त के अन्तरों का योग किया गया है। यदि दोनों स्थानों से, त के एक ही ओर च देख पड़े तो त द च और त दा च कोणों का अन्तर द च दा कोण के समान होता है।

व्यवहार में ठीक एक ही देशान्तर रेखा के दो स्थानों से किसी ग्रह या तारे का वेध लेना कठिन है। परन्तु यदि दो स्थान ऐसे हों जिसके देशान्तरों के थोड़ा ही भेद हो तो भी उपर्युक्त नियम लागू हो सकता है क्योंकि इससे जो अशुद्धि होगी वह नहीं के समान होगी।

केवल चन्द्रमा और मङ्गल ग्रह का लम्बन जानने के लिए यह रीति काम में लायी जा सकती है। मङ्गल के लिए भी यह रीति तभी शुद्ध हो सकती है जब वह पृथ्वी के बहुत पास हो अर्थात् सूर्य से ६ राशि के लगभग दूर हो। अन्य दूर के ग्रहों के लिए यह रीति उपयोगी नहीं है क्योंकि जब लंबन १० या १२ विकला से

कम होता है तब इस रीति से काम लेने में वेध करने की कुछ भूलें ऐसी रह जाती हैं जिनसे फल बहुत अशुद्ध हो जाता है। चन्द्रमा इतने पास है कि यदि पृथ्वी को पूर्ण गोल मानना जाय जैसा कि उपर्युक्त नियम के लिए भ द और भ दा समान समझ लिये गये हैं तो भी कुछ स्थूलता रह जाती है। इसलिए चन्द्रमा का लंबन जानने के लिए भ द को भ दा के समान न समझ कर इनका यथार्थ परिमाण लेना पड़ेगा। यदि ज्या ल की जगह ल और ज्या ला की जगह ला रखा जाय तो ४१४ पृष्ठ के अनुसार.

$$\text{ल} = \frac{\text{भ द}}{\text{भ च}} \times \text{ज्या न}$$

$$\text{ला} = \frac{\text{भ दा}}{\text{भ च}} \times \text{ज्या न}$$

$$\therefore \text{च} = \text{ल} + \text{ला} = \frac{\text{भ द} \times \text{ज्या न} + \text{भ दा} \times \text{ज्या ना}}{\text{भ च}}$$

परन्तु क्षितिज लम्बन $\text{लि} = \frac{\text{त्र}}{\text{भ च}}$ जहाँ त्र = पृथ्वी की त्रिज्या

$$\therefore \text{भ च} = \frac{\text{त्र}}{\text{लि}}$$

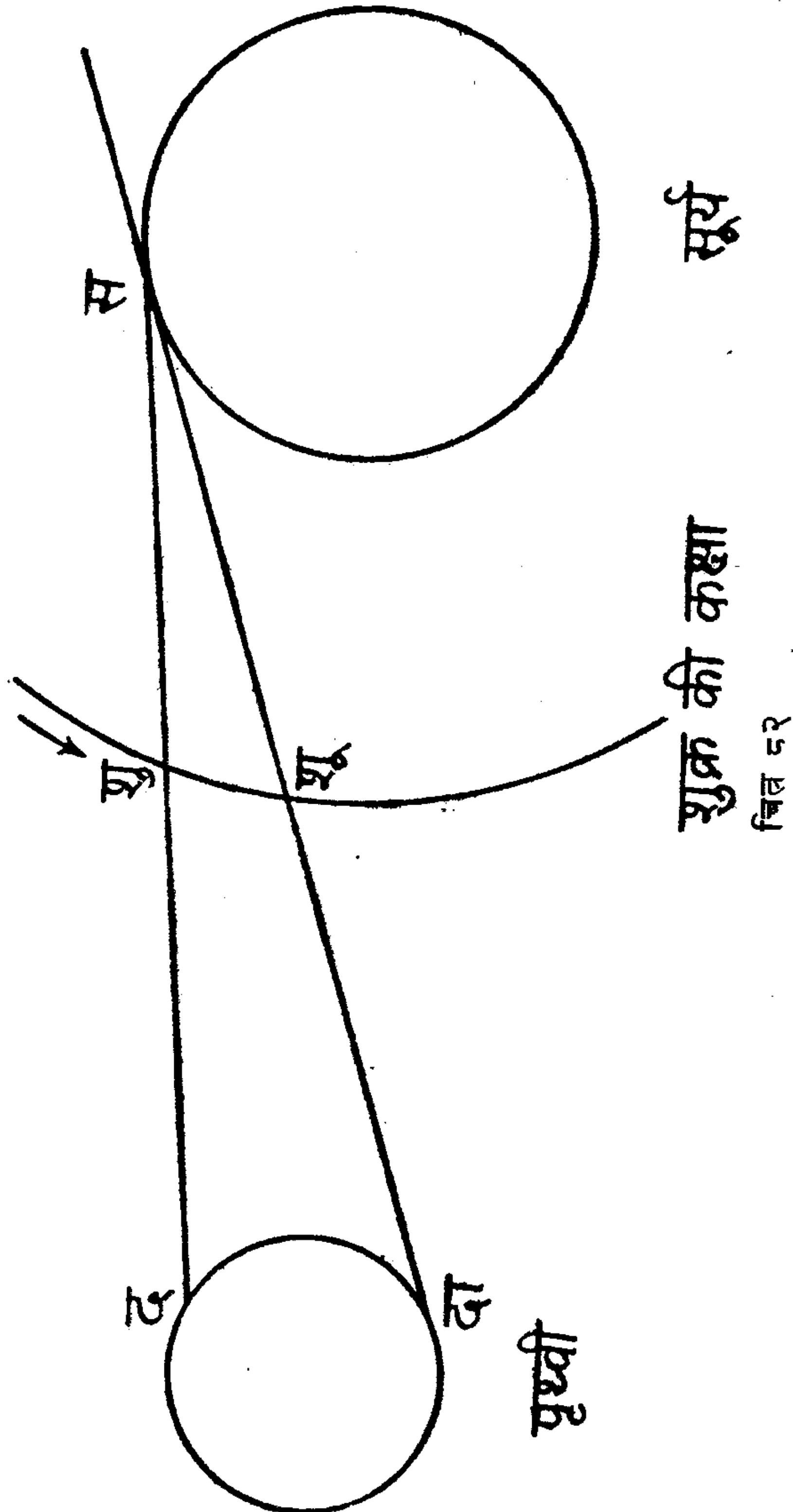
$$\therefore \text{च} \times \frac{\text{त्र}}{\text{लि}} = \text{भ द} \times \text{ज्या न} + \text{भ दा} \times \text{ज्या ना}$$

$$\therefore \text{लि} = \frac{\text{च} \times \text{त्र}}{\text{भ द} \times \text{ज्या न} + \text{भ दा} \times \text{ज्या न}}$$

यहाँ न और ना चन्द्रमा के यथार्थ नतांश हैं। यदि भौगोलिक या स्पष्ट नतांश के अनुसार लि का मान जानना हो तो पृष्ठ ३८३ में बतलायी गयी रीति से भौगोलिक नतांश से यथार्थ नतांश जान लेना चाहिए। उपर्युक्त सूत्र से यह सिद्ध होता है कि द्रष्टा के स्थान में भिन्नता होने से क्षितिज लंबन में भिन्नता होती है क्योंकि भ द और भ दा बदलते रहेंगे। यह बात वेध से भी देखी गयी है कि भिन्न-भिन्न स्थानों में चन्द्रमा का क्षितिज लम्बन भिन्न-भिन्न देख पड़ता है। यह इस बात का प्रमाण है कि पृथ्वी पूर्ण गोल नहीं है वरन् अंडाकार है।

सूर्य का लम्बन उपर्युक्त रीति से नहीं जाना जा सकता। इसके लिए कई रीतियाँ काम में लायी जाती हैं जिनमें से दो नीचे लिखी जाती हैं :—

पहली रीति —भूतल पर दो स्थान द और दा ऐसे चुने जाते हैं जो विषवत् रेखा के निकट हैं और परस्पर बहुत दूर हैं। सरलता के लिए यह भी मान लो कि शुक्र की कक्षा शु शू और सूर्य भी विषुवत् रेखा के तल पर है जिस तल पर द, दा



चित्र ८२

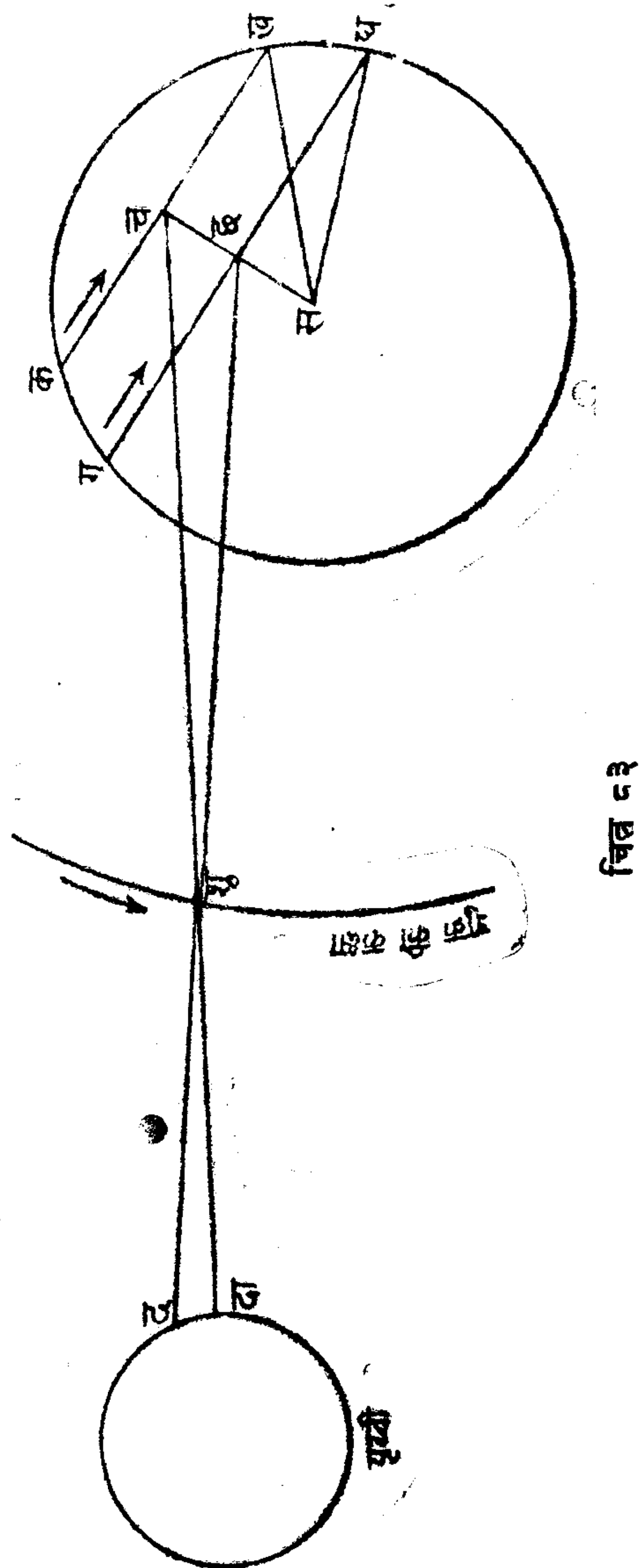
स्थान हैं। द, दा स्थानों से सूर्य के स बिन्दु तक दो स्पर्शरेखाएँ द स और दा स खींचो। द स्थान का द्रष्टा यह ध्यान से देखता है कि शुक्र शु किस समय सूर्य बिम्ब के सामने पहुँच कर उसको भीतर से स्पर्श करता है। इसी प्रकार दा स्थान का द्रष्टा शुक्र और सूर्यबिम्ब के भीतरी स्पर्श का समय ध्यान से देख लेता है। इन दोनों

वेधों के समय में जो अन्तर होता है उतने ही समय में शुक्र शु बिन्दु से शू बिन्दु पर अपनी कक्षा में जाता है अर्थात् उतने ही समय में शुक्र सूर्य की परिक्रमा शु स शू कोण के समान करता हुआ देख पड़ता है। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि सूर्य के चारों ओर जाने वाली शुक्र की यह गति शुक्र और पृथ्वी की गतियों के अन्तर के समान है। परंतु हमको मालूम है कि शुक्र और पृथ्वी दोनों कितने समय में सूर्य की परिक्रमा करती हुई एक रेखा में आ जाती है, इसलिए शु स शू या द स दा कोण का परिमाण जाना जा सकता है। जब यह मालूम हो गया कि सूर्यविम्ब के एक बिन्दु पर भूतल के दो स्थानों से कितना कोण बनता है तब चित्र ८० और ८१ में बतलायी गयी रीति से यह सहज ही जाना जा सकता है कि सूर्य का क्षितिज लम्बन क्या है।

व्यवहार में यह रीति इतनी सुविधाजनक नहीं है जितनी देख पड़ती है क्योंकि शुक्र और पृथ्वी की कक्षाएँ एक ही तल में नहीं हैं, दूसरे द, दा स्थानों के देशान्तरों को बहुत ही शुद्धतापूर्वक जानने की आवश्यकता है। यह रीति डीलिस्ले (Delisle) ने चलायी थी।

दूसरी रीति—इस रीति में द्रष्टा के स्थानों के देशान्तरों के जानने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। यहाँ तो केवल यह देखा जाता है कि दो भिन्न-भिन्न स्थानों से शुक्र कितनी देर तक सूर्यबिम्ब के सन्मुख एक किनारे से दूसरे किनारे तक जाता हुआ देख पड़ता है। इस काम के लिए दो द्रष्टाओं के स्थान परस्पर बहुत दूर परन्तु उत्तर दक्खिन होने चाहिए।

मान लो कि शु शुक्र और द दा भूतल पर द्रष्टा के दो स्थान एक ही तल पर अर्थात् कागज के तल पर हैं और सूर्य का बिम्ब प्रकट करने वाला वृत्त जिसका केन्द्र स है इस तल के समकोण पर है। दा स्थान के द्रष्टा को देख पड़ेगा कि शुक्र अपनी कक्षा में तीर की दिशा में चलता हुआ सूर्य बिम्ब को क ख रेखा में काटता हुआ जाता है। परन्तु द स्थान के द्रष्टा को देख पड़ेगा कि सूर्य के बिम्ब को शुक्र ग घ रेखा में काटता हुआ जाता है। जितनी देर में शुक्र सूर्य के सामने एक किनारे से दूसरे किनारे तक जाता हुआ देख पड़ता है वह समय प्रत्येक स्थान से ध्यानपूर्वक देख कर लिख लेना चाहिए। शुक्र जिस गति से सूर्य के बिम्ब को काटता हुआ निकल जाता है उसकी गणना सहज ही की जा सकती है। यह १ मिनट में ४ विकला के लगभग होती है। इसलिए जब यह मालूम है कि शुक्र क ख या ग घ रेखाओं को कितने समय में पार करता है तब इन रेखाओं के विकलात्मक मान सहज ही और बहुत शुद्धतापूर्वक जाने जा सकते हैं। इसलिए क ख और ग घ चापों के



चित्र ८३

आधे भागों के भी परिमाण जाने जा सकते हैं। परन्तु सूर्य बिम्ब का कोणात्मक मान विकलाओं में मालूम ही रहता है। इसलिए स च और स छ के विकलात्मक मान भी जाने जा सकते हैं क्योंकि रेखागणित के अनुसार—

$$स\ छ^2 = स\ घ^2 - घ\ छ^2$$

और $$स\ च^2 = स\ ख^2 - ख\ च^2$$

स च और स छ की जानकारी हो जाने पर इन दोनों का अन्तर निकाल लेने से हमको च छ का ज्ञान हो जाता है। इससे च छ की दूरी मीलों में भी मालूम हो सकती है क्योंकि यदि दोनों त्रिभुज द शु दा और च शु छ सजातीय (Similar) समझ लिये जायँ तो

$$\frac{च\ छ}{द\ दा} = \frac{शु\ छ}{शु\ द}$$

परन्तु शु छ और शु द का सम्बन्ध हमें केपलर के नियमों से मालूम है क्योंकि शु छ शुक्र से सूर्य की दूरी है और शु द शुक्र से पृथ्वी की दूरी है। इसलिए यदि शु छ ७२३ और शु द २७७ हो तो

$$\frac{च\ छ}{द\ दा} = \frac{७२३}{२७७}$$

द दा पृथ्वी तल के दो स्थान हैं इसलिए इनकी परस्पर दूरी सहज ही जानी जा सकती है। इस प्रकार च छ का परिमाण मीलों में भी जाना जा सकता है। परन्तु उपर्युक्त रीति से च छ का परिमाण विकलाओं में भी जाना जा सकता है। इसलिए जब इसका परिमाण विकलाओं और मीलों दोनों में मालूम है तब यह सहज ही जाना जा सकता है कि सूर्य पृथ्वी से कितनी दूर है क्योंकि

$$\frac{\text{च छ का विकलात्मक मान}}{२०६२६५} = \frac{\text{च छ का मान मीलों में}}{\text{पृथ्वी से सूर्य की दूरी}}$$

$$\therefore \text{पृथ्वी से सूर्य की दूरी} = \frac{२०६२६५ \times \text{च छ का मान मीलों में}}{\text{च छ का मान विकलाओं में}}$$

इससे सूर्य का लंबन सहज ही जाना जा सकता है। हैली (Hally) ने १७७३ वि० में इस रीति का आविष्कार किया था। इन दोनों रीतियों में यह दोष है कि शुक्र और सूर्य के बिम्बों के भीतरी स्पर्श का समय ठीक-ठीक वेध करना बड़ा कठिन होता है। शुक्र की गति इतनी मन्द होती है और सूर्य के बिम्ब का किनारा इतना अस्पष्ट होता है कि स्पर्शकाल के समय में कई असुओं का अन्तर पड़ सकता है।

क्षितिज लम्बन जानकर सूर्य और चन्द्रमा की दूरी जानना—यह बतलाया गया है कि क्षितिज लंबन की ज्या = त ÷ क, जहाँ त पृथ्वी की त्रिज्या और क भूकेन्द्र से ग्रह की दूरी है।

$$\therefore \text{क} = \frac{\text{पृथ्वी की त्रि ज्या}}{\text{क्षितिज लंबन की ज्या}}$$

क्षितिज लम्बन की ज्या को कलाओं और विकलाओं में प्रकट करने से सुविधा होती है इसलिए पृथ्वी की त्रिज्या को भी कलाओं और विकलाओं में लिखना चाहिए। यह बतलाया गया है कि

$$\text{त्रिज्या} \times २ \times ३.१४१५९ = \text{परिधि} = ३६०^\circ$$

$$\therefore \text{त्रिज्या} = \frac{३६०^\circ}{२ \times ३.१४१५९} = ५७^\circ.२९५७७९५$$

$$= ३४३७'.७४६७७$$

$$= २०६२६४''.८०६२$$

$$= २०६२६५''$$

सूर्य का मध्यम क्षितिज लम्बन $= ८''.८०$

$$\therefore \text{सूर्य की मध्यम दूरी} = \frac{२०६२६५}{८.८}$$

$$= २३४३९ \text{ पृथ्वी की त्रिज्याओं में}$$

यह दूरी पृथ्वी की त्रिज्याओं में है जिसका विषुवद्वृत्तीय मान ३९६३.३ मील है। इसलिए सूर्य की दूरी $= २३४३९ \times ३९६३.३$ मील $= ९२८९५७८९$ मील।

चंद्रमा का मध्यम क्षितिज लम्बन $= ५७'१''.८ = ३४२२''$

$$\therefore \text{चंद्रमा की मध्यम दूरी} = \frac{२०६२६५}{३४२२}$$

$$= ६०.३ \text{ पृथ्वी की त्रिज्याओं में}$$

$$= ६०.३ \times ३९६३.३ = २३८९८७ \text{ मील}$$

सूर्य और चन्द्रमा के विस्तार—यदि किसी आकाशीय पिंड का कोणात्मक अर्द्धव्यास वेध से जान लिया जाय और उसका लम्बन भी ज्ञात हो तो उसका विस्तार भी जाना जा सकता है क्योंकि

$$\text{कोणात्मक अर्द्धव्यास की ज्या} = \frac{\text{पिंड की त्रिज्या}}{\text{पिंड की दूरी}}$$

$$\text{लम्बन की ज्या} = \frac{\text{पृथ्वी की त्रिज्या}}{\text{पिंड की दूरी}}$$

$$\therefore \frac{\text{पिण्ड की त्रिज्या}}{\text{पृथ्वी की त्रिज्या}} = \frac{\text{पिण्ड की कोणात्मक अर्द्धव्यास की ज्या}}{\text{पिण्ड की लंबन की ज्या}}$$

सूर्य का अर्द्धव्यास १६′ और लम्बन ८″.८ है, इसलिए

$$\frac{\text{सूर्य की त्रिज्या}}{\text{पृथ्वी की त्रिज्या}} = \frac{१६'}{८''.८} = \frac{९६०}{८.८} = १०९$$

∴ सूर्य की त्रिज्या = १०९ × पृथ्वी की त्रिज्या

= १०९ × ३९६३.३ मील

= ४३१९९९.७ मील

= ४३२००० मील

चन्द्रमा का अर्द्धव्यास १५′३९″.९ और लम्बन ५७′१″.८ है

$$\text{इसलिए चंद्रमा की त्रिज्या} = \text{पृथ्वी की त्रिज्या} \times \frac{\text{ज्या } १५'३९''.९}{\text{ज्या } ५७'१''.८}$$

$$= \text{पृथ्वी की त्रिज्या} \times \frac{१५'३९''.९}{५७'१''.८}$$

= ३९६३.३ × .२७५

= १०८९.९

= १०९० मील

चित्र ८४ में ∠प भ च = चंद्रमा का कोणात्मक अर्द्धव्यास

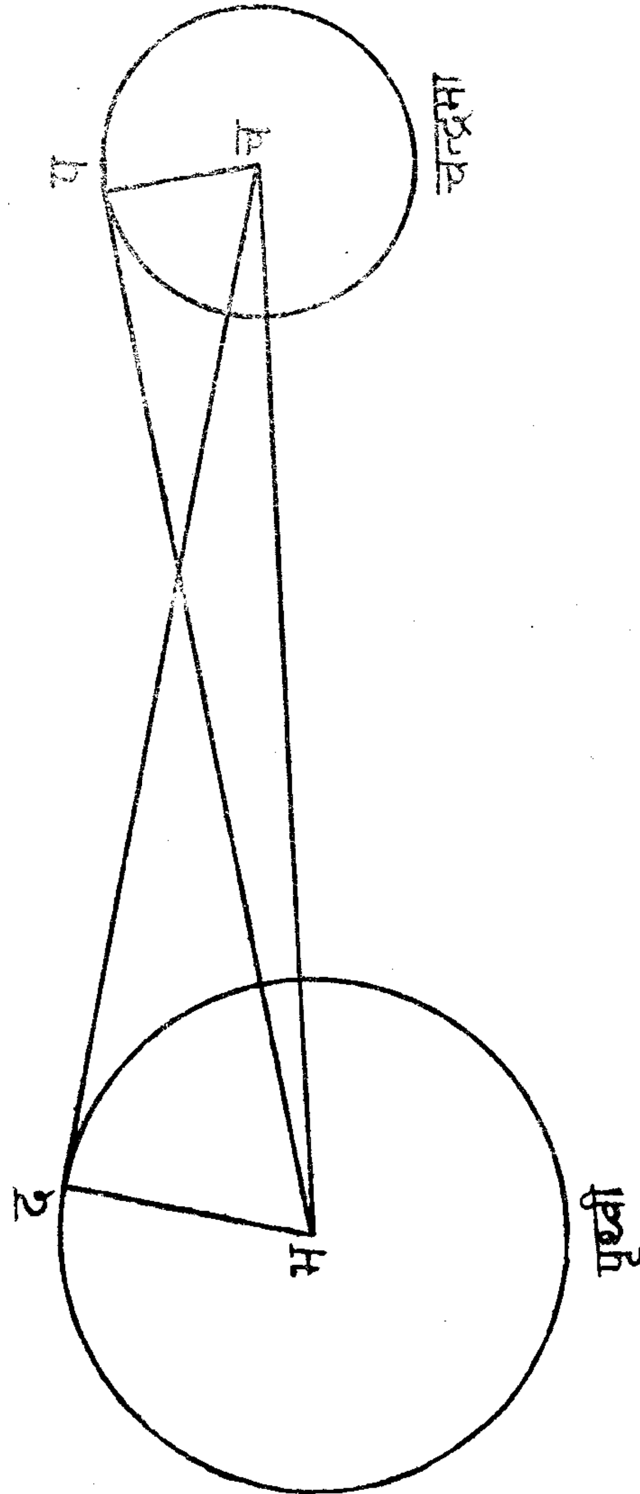
∠भ च द = चंद्रमा का लम्बन

प च = चंद्रमा की त्रिज्या

भ द = पृथ्वी की त्रिज्या

वार्षिक लम्बन

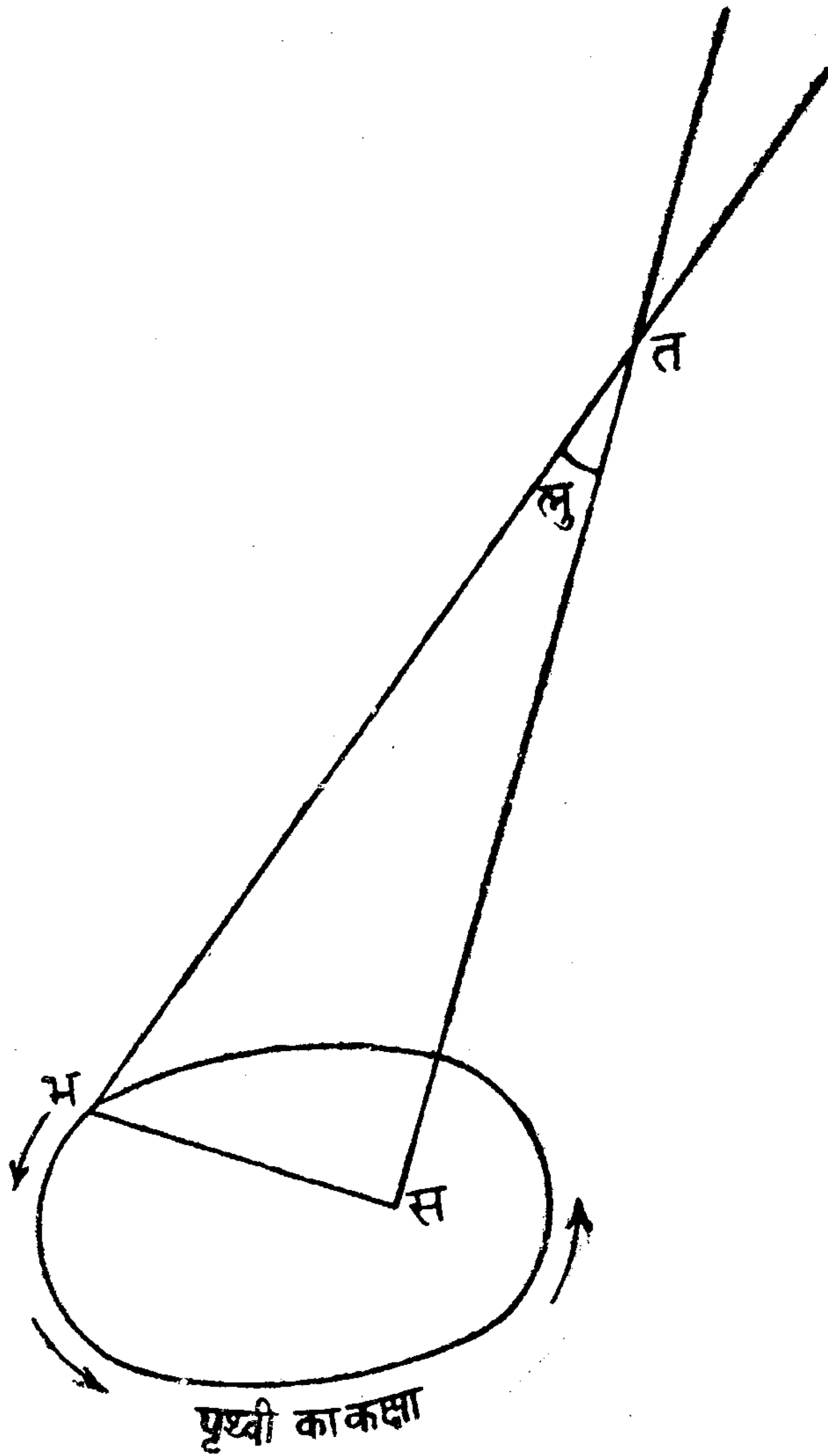
वार्षिक लम्बन—यह बतलाया गया है कि तारे हमसे इतनी दूर हैं कि भूतल के किसी दो स्थानों से देखने पर इनके लम्बन का पता नहीं लग सकता। परन्तु यदि पूरे वर्ष भर तक किसी तारे का वेध किया जाय तो पृथ्वी की वार्षिक-गति के कारण एक ही द्रष्टा से स्थानों में बहुत अंतर पड़ता जाता है जिससे देख पड़ता है कि तारे में भी कुछ लम्बन होता है। यह अभी सिद्ध हुआ है कि पृथ्वी से सूर्य की दूरी ९,३०,००००० मील के लगभग है। यह विदित ही है कि पृथ्वी एक वर्ष में सूर्य की परिक्रमा करती है। इस लिए ६ मास में पृथ्वी आधा परिक्रमा करती है। अब यदि किसी तारे का वेध किसी दिन किया जाय और फिर ६ महीने के बाद उसी तारे का वेध किया जाय तो द्रष्टा के स्थानों का अन्तर १८,६०,००,००० मील हो जाता है जिससे तारे की दिशा में कुछ परिवर्तन देख पड़ता है। यह परिवर्तन लम्बन के कारण होता है। जब द्रष्टा के



चित्र ८४

दो स्थानों का अंतर अठारह करोड़ साठ लाख मील दूर होता है तब भी सब तारों का लम्बन नहीं देख पड़ता है क्योंकि बहुत से तारे हमसे इतनी दूर हैं कि पृथ्वी की कक्षा का व्यास भी उनके सामने शून्य के समान है। इसलिए बहुत सूक्ष्म यंत्रों से भी थोड़े ही तारों का लंबन नापा जा सका है।

वार्षिक लम्बन—किसी तारे का वार्षिक लंबन वह कोण है जो पृथ्वी की



चित्र ८५

कक्षा के अर्द्धव्यास के सम्मुख तारे पर बनता है। चित्र ८५ में यदि भ पृथ्वी, स सूर्य और त किसी तारे के स्थान हों तो त का वार्षिक लम्बन कोण स त भ अथवा लु के समान है।

जिस प्रकार चन्द्रमा या ग्रह का लम्बन जानने के लिए सूत्र स्थापित किये गये हैं उसी तरह तारे का लम्बन जानने का सूत्र भी स्थापित हो सकता है।

$$\frac{\text{ज्या लु}}{\text{ज्या स भ त}} = \frac{\text{स भ}}{\text{स त}}$$

$$\therefore \text{ज्या लु} = \text{लु} = \frac{\text{स भ}}{\text{स त}} \times \text{ज्या स भ त}$$

अर्थात् किसी तारे का वार्षिक लम्बन उस कोण की ज्या के अनुपात में होता है जो उस तारे और सूर्य के बीच भूकेन्द्र पर बनता है। यह स्पष्ट है कि जब कोण स भ त ९०° के समान होता है अर्थात् जब तारे का भोगांश सूर्य के भोगांश से ९०° आगे या पीछे होता है तब लम्बन का परिमाण महत्तम होता है। इसलिये किसी तारे का महत्तम लंबन वर्ष में दो बार देख पड़ता है। इसका सूत्र यह है :—

$$\text{तारे का महत्तम लंबन} = \frac{\text{स भ}}{\text{स त}}$$

यदि महत्तम लंबन को लू मान लिया जाय तो तारे का किसी समय का लम्बन

$$\text{लु} = \text{लू} \times \text{ज्या स भ त}$$

साधारणतः तारे के महत्तम लम्बन को ही तारे का लम्बन कहते हैं।

ऊपर के सूत्रों में लु और लू रेडियन के दशमलव भिन्न में है। यदि इनको विकलाओं में लिखा जाय तो

$$\frac{\text{लू विकला}}{२०६२६५} = \frac{\text{स भ}}{\text{स त}}$$

इससे सिद्ध होता है कि यदि लू मालूम हो तो स त अर्थात् तारे की दूरी मालूम हो सकती है क्योंकि स भ तो मालूम ही है।

उदाहरण—यदि किसी तारे का वार्षिक लंबन ०″.८ हो तो सूर्य से उस तारे की दूरी बतलाओ ?

$$\frac{०.८}{२०६२६५} = \frac{\text{स भ}}{\text{स त}}$$

$$\therefore \text{स त} = \frac{२०६२६५}{.८} \times \text{स भ} = २,५७,८३१ \text{ स भ}$$

अर्थात् सूर्य पृथ्वी से जितनी दूर है उसकी २,५७,८३१ गुनी दूर सूर्य से वह तारा है।

मीलों में यह दूरी $= २,५७,८३१ \times ९,३०,००,०००$
$= २,३९,७८,२८,३०,००,०००$

इससे यह सिद्ध है कि यदि तारों के दूरी मीलों में लिखी जाय तो बहुत बड़ी संख्या का व्यवहार करना आवश्यक होगा जिसमें सुभीता नहीं है। इसलिए

ज्योतिषियों ने इतनी बड़ी दूरी को प्रकट करने के लिए एक और इकाई स्थिर की है जिसे प्रकाश वर्ष कहते हैं। एक वर्ष में प्रकाश जितनी दूर चलता है उसे प्रकाश वर्ष कहते हैं। यह कई प्रयोगों से सिद्ध हो गया है कि सूर्य का प्रकाश पृथ्वी तक ८ मिनट १८ सेकेन्ड में पहुँचता है अर्थात् प्रकाश की गति प्रति सेकेन्ड १,८६,०० मील है। इसलिए एक सायन वर्ष में प्रकाश ३६५.२४२२ × २४ × ६० × ६० × १८६००० मील अथवा ५८,६६,५८,८२,५०,८८० मील चलता है। इसलिए इसी दूरी को एक प्रकाश वर्ष कहते हैं।

यह भी याद रखना चाहिए कि जहां इतनी बड़ी दूरियों का हिसाब लगाया जाता है वहां लाखों मील की दूरी की भूल रह जाना साधारण बात है क्योंकि यदि

नाम अंग्रेजी में	नाम हिन्दी में	वार्षिक लम्बन	पृथ्वी से सूर्य की दूरी का कितने गुनी दूरी	प्रकाश वर्ष में दूरी
α Centauri	...	०″.७५०±०″.०१	२,८०,०.००	४.४
61 Cygni	...	०.३७±०.०२	५,६०,०००	८.८
Sirius	लुब्धक	०.३७±०.०१	५,६०,०००	८.८
Procyon	प्रश्वा	०.३१	६,६०,०००	११
Altair	श्रवण	०.२८±०.०२	७,४०,०००	१२
Aldebaran	रोहिणी	०.१७±०.०२	१४,००,०००	२२
Capella	ब्रह्म हृदय	०.१२±०.०२	१७,००,०००	२७
Vega	अभिजित्	०.१२±०.०२	१७,००,०००	२७
Polaris	ध्रुव तारा	०.०७±०.०२	३०,००,०००	४७
Arcturus	स्वाती	०.०२४	८७,००,०००	१४०
α Gruis	...	०.०१५	१,४०,००,०००	२२०

किसी तारे के लंबन के बेध करने में .००१ विकला की भूल रह जाय, जो असम्भव नहीं है, तो उसकी दूरी में बहुत अन्तर पड़ सकता है।

पीछे एक सारिणी दी गई है जिससे जान पड़ेगा कि कुछ तारों के लम्बन और उनकी दूरियां क्या हैं। यह सारिणी R. S. Ball की Spherical Astronomy पृष्ठ ३२८ से ली गई है।

प्रकाश वर्ष की दूरी की कल्पना इस प्रकार की जा सकती है। जब यह कहा जाता है कि आकाश मण्डल का सबसे चमकीला तारा लुब्धक हमसे ८.८ प्रकाश वर्ष दूर है तब इसका अर्थ यह भी होता है कि लुब्धक की जो किरण इस समय हमारी आँखों में पहुँच कर लुब्धक का परिचय करा रही है वह वहाँ से ८.८ वर्ष पहले चली थी अर्थात् यह आज की किरण लुब्धक की ८.८ वर्ष पहले की दशा बतला रही है। अब लुब्धक की क्या दशा है इसका ज्ञान आज से ८.८ वर्ष बाद हो सकता है, इसके पहले नहीं जैसे पत्र के द्वारा किसी दूर के मित्र का जो कुछ समाचार मिलता है वह उस समय का समाचार होता है जिस समय पत्र लिखा जाता है न कि इसके पहुँचने के समय का।

आजकल दूरदर्शक यंत्रों से ऐसे तारों का भी परिचय मिला है जो यहाँ से लाखों प्रकाश वर्ष दूर हैं।

चित्र ८६

वार्षिक लम्बन के कारण तारा वर्ष भर में एक नन्हे से दीर्घवृत्त पर चलता हुआ जान पड़ता है ।

चित्र ८६ में स सूर्य है, प, पि, पु, पे चार विन्दुओं पर पृथ्वी अपनी वार्षिक परिक्रमा करती हुई दिखलाई गई है । न तारे का स्थान है । यदि प और स से दो रेखाएँ त तक खींच कर और आगे, त से भी बहुत दूर स्थित तारों के पास पहुँचायी जाय तो स सूर्य से देखने पर तारा ता स्थान पर पृथ्वी से देखने पर पा स्थान पर देख पड़ेगा । इसी तरह जब पृथ्वी पि पु और पे विंदुओं पर रहेगी तब तारा क्रमानुसार पी, पू और पै विन्दुओं पर देख पड़ेगा । इसका परिणाम यह होगा कि तारा पा पी पू पै विंदुओं से बनी हुई कक्षा पर घूमता हुआ देख पड़ेगा । यह छोटी कक्षा क्रान्तिवृत्त प पि पू पे के समानान्तर तल पर होगी और इसका आकार दीर्घवृत्त की तरह का देख पड़ेगा ।

जो तारा क्रान्तिवृत्तीय ध्रुवों अर्थात् कदम्बों पर होता है उसकी कक्षा केवल वृत्त के आकार की देख पड़ती है क्योंकि ऐसी दशा में इस छोटी कक्षा का तल हमारे दृष्टिसूत्र से समकोण पर रहेगा । परन्तु जो तारा क्रान्तिवृत्त पर होता है वह मध्य स्थान से छः महीने तक पूरब और छः महीने तक पच्छिम देख पड़ेगा जैसे किसी वृत्त पर घूमता हुआ पिंड उस समय केवल आगे बढ़ता हुआ या पीछे हटता हुआ जान पड़ता है जब वृत्त का तल देखनेवाले के दृष्टिसूत्र की ही सीध में हो । तारे के वार्षिक लम्बन जानने की विधि भी प्रायः उसी तरह है जैसा चित्र ८१ में बतलाया गया है । परन्तु इस काम के लिए बहुत सूक्ष्म वेध रखना पड़ता है जिसकी चर्चा करने की आवश्यकता यहाँ नहीं जान पड़ती ।

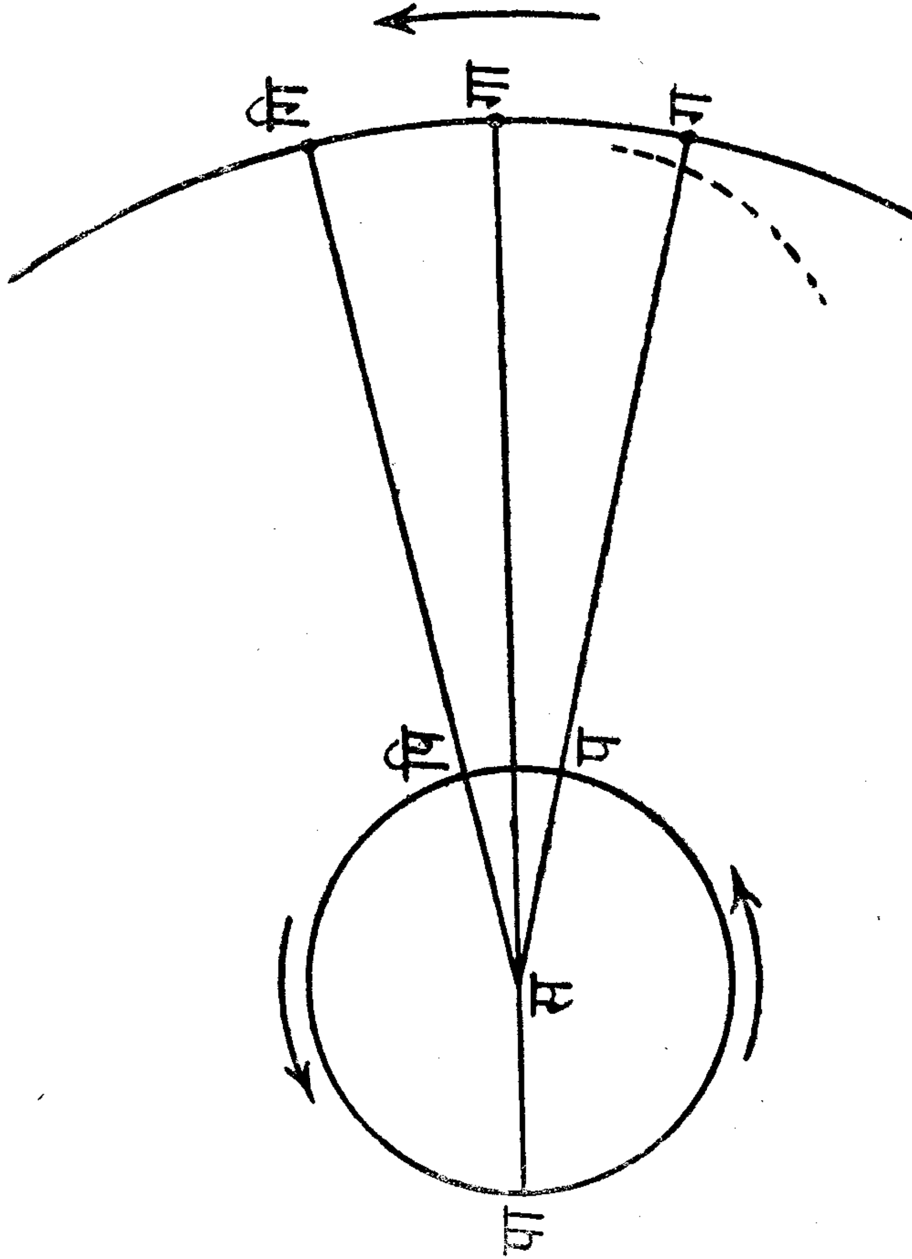
भूचलन संस्कार (Aberration)

यह ऊपर बतलाया गया है कि प्रकाश एक सेकंड में १,८६,००० मील चलता है । पृथ्वी भी वर्ष भर में सूर्य की परिक्रमा करती है जिससे यह अपनी कक्षा में प्रति सेकंड १८½ मील चलती है क्योंकि पृथ्वी की कक्षा का परिमाण २ π × ९,३०,००,००० मील है और एक वर्ष में ३६५.२४२२ × २४ × ६० × ६० सेकंड होते हैं, इसलिए पृथ्वी की कक्षा को एक वर्ष के सेकंडों से भाग देने पर १८½ मील के लगभग आता है । इन दोनों गतियों के कारण दूरदर्शक यंत्र में आकाशीय पिंडों का जो स्थान देख पड़ता है वह यथार्थ स्थान से कुछ आगे या पीछे होता है । किसी पिंड के यथार्थ और स्पष्ट स्थानों में इन दोनों गतियों के कारण जो अंतर देख पड़ता है उसे भूचलन संस्कार (Aberration) कहते हैं । इसकी मीमांसा करने के पहले संक्षेप में यह बतलाना आवश्यक है कि प्रकाश की गति कैसे नापी गयी और दो गतियों के संयोग से पदार्थों के यथार्थ और स्पष्ट स्थानों में कैसा अंतर देख पड़ता है ।

प्रकाश की गति—प्रकाश की गति नापने की कई रीतियाँ हैं। इनमें से पहली रीति की चर्चा यहाँ की जायगी :—

प्रकाश की चाल का पता रोमर नामक ज्योतिषी ने संवत् १७३२ विक्रमीय में लगाया। इसके पहले किसी की कल्पना में भी यह बात नहीं आयी थी कि एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने में प्रकाश को भी कुछ समय की आवश्यकता पड़ती है। रोमर ने कैसे इस बात का पता लगाया यह भी आश्चर्यजनक है। आप लोगों ने चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण कई बार देखा होगा। चंद्रग्रहण के समय पृथ्वी सूर्य और चन्द्रमा के बीच आ जाती है इसलिए चन्द्रमा पृथ्वी की छाया में पड़ जाता है। जब पूरा चन्द्रमा छाया में आ जाता है तब पूर्ण ग्रहण लगता है और जब कुछ ही भाग छाया में पड़ता है तब खंड ग्रहण लगता है। जैसे चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर घूमता है और कभी आधा, कभी चौथाई, कभी तीन चौथाई देख पड़ता है वैसे ही वृहस्पति के चारों ओर चार पांच चंद्रमा चक्कर लगाते हैं। वृहस्पति के चंद्रमा इतने छोटे हैं कि बिना दूरबीन के देखे नहीं जा सकते। ये चंद्रमा घूमते-घूमते बहुत जल्दी-जल्दी वृहस्पति की छाया में चले जाते हैं इसलिए कुछ देर तक दिखाई नहीं पड़ते। इसलिए यह कहा जा सकता है कि जब बृहस्पति के चन्द्रमा उसकी छाया में पड़ जाते हैं तब उनका ग्रहण लगता है। इन ग्रहणों के समय भी गणना करके कई वर्ष पहले उसी प्रकार जान लिये जाते हैं जिस प्रकार सूर्य ग्रहण और चन्द्र ग्रहण के समय। जहाज वाले तो इन ग्रहणों को देख कर घड़ी का काम लेते हैं। बस इसी के सम्बन्ध में सोचते-सोचते रोमर को प्रकाश की गति का पता मिला।

कल्पना कीजिए कि चित्र ८७ में स सूर्य है, प पा पि पृथ्वी के तीन स्थान अपनी कक्षा पर हैं और ग गा गि गुरु अथवा वृहस्पति के तीन स्थान वृहस्पति की कक्षा पर हैं। पृथ्वी और गुरु दोनों एक ही दिशा में सूर्य की परिक्रमा क्रमानुसार १ और १२ वर्ष में करते हैं। जिस समय सूर्य पृथ्वी और गुरु क्रम से स प और ग स्थानों में होते हैं उस समय पृथ्वी गुरु के बहुत पास होती है और जिस समय पृथ्वी पा पर, गुरु गा पर और सूर्य मध्य में होते हैं उस समय पृथ्वी गुरु से अत्यन्त दूर हो जाती है। प से पा पर पहुँचने में पृथ्वी को ६॥ महीने लग जाते हैं। १३ महीने में पृथ्वी प से पा पर होती हुई फिर पि पर पहुँच कर सूर्य और गुरु के बीच आ जाती है। जैसे-जैसे पृथ्वी प से चल कर पा के पास होती जाती है तैसे-तैसे वृहस्पति के चन्द्रमा के ग्रहण का प्रत्यक्ष समय गणित से जाने हुए समय से पीछे पड़ता जाता है और जब पृथ्वी पा पर पहुँच जाती है और बृहस्पति गा पर अर्थात् पृथ्वी बृहस्पति से बहुत दूर हो जाती है तब गणित-सिद्ध काल से प्रत्यक्ष काल सबसे



चित्र ८७

अधिक पिछड़ जाता है। रोमर ने ग्रहण काल जानने की रीति अनेक वेधों से निश्चित की थी, जब पृथ्वी गुरु से दूर और निकट प्रत्येक दशा में रही थी। इसलिए इस रीति से ग्रहण काल का जो समय आता था वह मध्यम मान के अनुसार ठीक होता था। इस काल से प्रत्यक्ष ग्रहण जितने परिमाण में पिछड़ता था उसका आरम्भ वह उस समय से करता था जिस समय पृथ्वी गुरु से अत्यन्त निकट रहती थी अर्थात् जब वह प विन्दु की दशा में रहती थी। इसी प्रकार जब पृथ्वी पा से आगे बढ़ कर वृहस्पति के पास पहुँचती जाती थी तब गणित-सिद्ध काल से प्रत्यक्ष-ग्रहण काल का पिछड़ना कम पड़ता जाता था। जब पृथ्वी पि पर और वृहस्पति गि पर हो जाते थे तब प्रत्यक्ष और गणित-सिद्ध कालों का अन्तर शून्य हो जाता था अर्थात् प्रत्यक्ष

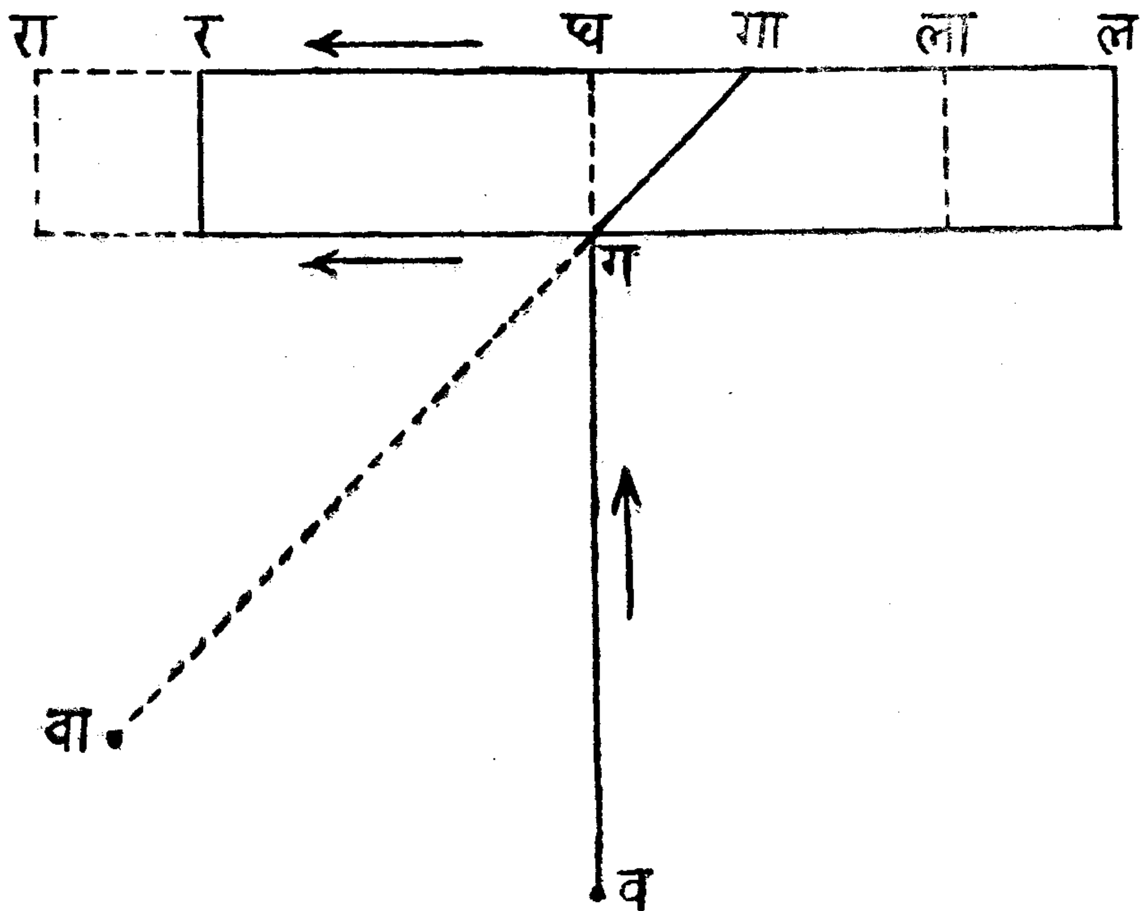
ग्रहण का समय भी वही होता था जो गणित से ठीक आता था। चित्र ८७ से जान पड़ेगा कि गणित से निकाले हुए ग्रहण के समय और प्रत्यक्ष ग्रहण के समय में जो सबसे अधिक अन्तर पड़ता है वह उन दोनों समयों के अन्तर के समान होगा जितने में गुरु के चंद्रमा का प्रकाश ग से प तक और गा से पा तक जाता है अर्थात् यह अंतर उस समय के समान होगा जितने में प्रकाश पृथ्वी की कक्षा के व्यास के समान दूरी तै करता है।

अनुभव से यह जाना गया है कि पा और प से देखने पर ग्रहण के समय में जो अन्तर पड़ता है वह सबसे अधिक होता है और १६ मिनट ३६ सेकेंड के समान होता है। पृथ्वी की कक्षा का अर्द्धव्यास ९,३०,००,००० मील के लगभग है इसलिए इसका व्यास १८,६०,००,००० मील हुआ। इसलिए जब प्रकाश इतनी दूर चलने में १६ मिनट ३६ सेकेंड का समय लेता है तब एक सेकेंड में इसकी गति १८,६०, ००,००÷९९६=१,८६,००० मील के लगभग।

इसके बाद कई अन्य वैज्ञानिकों ने प्रकाश की गति नापने के प्रयोग किये। इन सब प्रयोगों से जो फल निकले वे प्राय: एक से हैं। इन प्रयोगों से यह सिद्ध हो गया कि प्रकाश की गति १,८६,३५० मील है।

जब यह सिद्ध हो गया कि प्रकाश गतिमान है तब यह समझ लेना कठिन नहीं है कि यदि गतिमान प्रकाश किसी दूसरी गतिवाली वस्तु में प्रवेश करे तो इसकी दिशा में परिवर्तन हो जायगा। उदाहरण के लिए मान लो कि एक रेलगाड़ी ६० मील प्रति घंटे के हिसाब से दौड़ी चली जा रही है। यदि एक बन्दूक रेलगाड़ी को लक्ष्य करके इस तरह चलायी जाय कि गोली गाड़ी की दिशा से समकोण बनाती हुई एक ओर घुसे और दूसरी ओर आर-पार निकल जाय तो क्या गोली गाड़ी के डब्बे के भीतर भी उसकी दिशा से समकोण बनाती जायगी ? जितनी देर में गोली रेलगाड़ी के समान दीवाल से पीछे की दीवाल तक पहुँचेगी उतनी देर में गाड़ी कुछ आगे बढ़ जायगी और गोली पीछे की दीवाल में घुसने के छेद के ठीक सामने न लगकर कुछ पीछे पड़ जायगी। कल्पना करो कि र ल गाड़ी का एक डब्बा है जो र की ओर ६० मील प्रति घंटे या ८८ फुट प्रति सेकंड की गति से आगे बढ़ रहा है और ब स्थान से बन्दूक ऐसी दागी गई कि गोली ब ग दिशा में चलती हुई डब्बे में ग स्थान से घुसती है। जिस समय गोली ग पर आयी डब्बा र ल स्थिति में था। यदि गाड़ी स्थिर होती तो गोली घ स्थान पर छेद करती हुई बाहर निकल जाती। परन्तु बात ऐसी नहीं होने पाती क्योंकि जिस समम गोली ग छेद से घुसकर घ की ओर जाती रहती है उस समय गाड़ी भी आगे बढ़ी जा रही है। इसलिए जिस समय

गोली पीछे की दीवाल तक पहुंचे उस समय डब्बा रा ला स्थिति में हो गया और घ की जगह् गा विन्दु सामने आ गया। इसलिए गोली गा पर छेद करती हुई देख पड़ेगी। डब्बे में बैठे हुए मुसाफिर कहेंगे कि गोली ग गा दिशा से आयी, इसलिए बन्दूक चलाने वाला वा स्थान की सीध में रहा होगा।



चित्र ८८

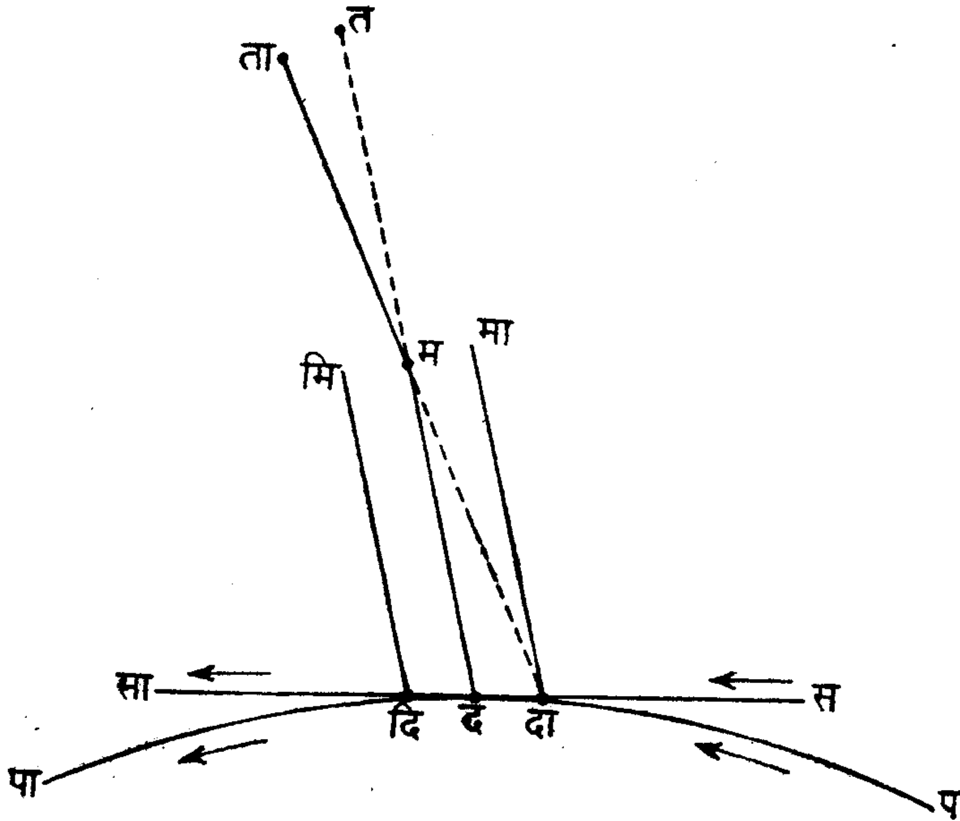
जिस समय पानी बरस रहा हो और बूँदें खड़ी गिर रही हों उस समय यदि मनुष्य छतरी ठीक ऊपर थाँमे खड़ा हो तो भीगने से बच जाता है परन्तु यदि वह छतरी ठीक उसी तरह थाँमे आगे बढ़े तो वह भीगने से बच नहीं सकता क्योंकि उसके चलने के कारण खड़ी गिरती हुई बूदें भी उसके मुँह पर तिरछी आती हुई पड़ती हैं। मनुष्य की चाल जितनी ही अधिक होगी उतनी ही तिरछी बूँदें उस पर पड़ेंगी। यह भी इसी बात का उदाहरण है।

इसी प्रकार जब प्रकाश दूरदर्शक यन्त्र के भीतर प्रवेश करता है तब उसकी दिशा में परिवर्तन हो जाता है। कल्पना करो कि किसी तारे का यथार्थ स्थान त है और द्रष्टा की आँख द पर है। यदि द्रष्टा अचल हो और वर्तन (refraction) भी

हो तो तारा द त दिशा में सदैव देख पड़ेगा, चाहे तारे से प्रकाश द्रष्टा की आँख में उसी क्षण पहुँच जाय जिस क्षण तारे से चलता है या उसके आने में कुछ देर लगे।

परन्तु यदि यह मान लिया जाय कि द्रष्टा द दि दिशा में चल रहा है तो तारा उसको द त की दिशा में तभी देख पड़ेगा जब प्रकाश उसी क्षण द्रष्टा की आँख में पहुँचे जिस क्षण तारे से चलता है परन्तु यदि प्रकाश के त से द तक आने में कुछ समय लगता है तो तार द त दिशा में कदापि नहीं देख पड़ेगा।

मान लो कि द म उस नली का अक्ष (axis) है जिसके मा दा और मि दि समानान्तर भुज हैं। जिस समय प्रकाश नली में म से अक्ष म द की ओर उतर रहा है यदि उसी समय नली अपने ही समानान्तर द दि की ओर जा रही है और जितनी देर में प्रकाश म द दूरी चलता है उतनी देर में नली द दा दूरी के समान आगे बढ़ती है तो चित्र ८ की तरह यह प्रकट है कि प्रकाश द पर न पहुँच कर दा पर



चित्र ८६

पहुँचेगा। इससे यह जान पड़ेगा कि प्रकाश म दा दिशा से आ रहा है और तारा दा म की सीध में कहीं ता पर है। इस कारण यदि नली चलायमान हो और तारा त पर हो तो यह नली की अक्ष की दिशा में नहीं देख पड़ेगा वरन् दा म ता दिशा में देख पड़ेगा। अर्थात् तारे का स्पष्ट स्थान ता होगा जो यथार्थ स्थान से उसी दिशा की

ओर बढ़ा हुआ है जिस दशा में नली जा रही है। इस प्रकार इन दोनों गतियों के कारण तारे के यथार्थ और स्पष्ट स्थानों में त म ता कोण का अन्तर पड़ता है जिसे भूचलन संस्कार (Aberration) कहते हैं।

यह जानना सहज है कि त म ता अथवा द म दा कोण का परिमाण क्या है क्योंकि म द दा त्रिभुज में

$$\frac{\text{द दा}}{\text{म दा}} = \frac{\text{ज्या द म दा}}{\text{ज्या म द दा}}$$

परन्तु द दा पृथ्वी उतने समय की चाल है जितने समय में प्रकाश म दा के समान चलता है इसलिए द दा और म दा की दूरियों में वही अनुपात है जो पृथ्वी और प्रकाश की गतियों में है। परन्तु पृथ्वी प्रति सेकेन्ड १८½ मील चलती है और प्रकाश १,८६,००० मील चलता है इसलिए

$$\frac{\text{ज्या द म दा}}{\text{ज्या म द दा}} = \frac{\text{द दा}}{\text{म दा}} = \frac{\text{पृथ्वी की गति}}{\text{प्रकाश की गति}} = \frac{१८.५}{१८६०००} \text{ के लगभग}$$

$$= \frac{१}{१००००} \text{ के लगभग}$$

यदि भूचलन संस्कार को भू माना जाय तो ज्या द म दा = ज्या भू = भू जब कि भू का मान रेडियन में हो। ऐसी दशा में

$$\text{भू} = \frac{१}{१००००} \times \text{ज्या म द दा}$$

यदि भू को विकलाओं में लिखा जाय तो

$$\frac{\text{भू}''}{२०६२६५} = \frac{१}{१००००} \text{ज्या म द दा} = \frac{१}{१००००} \text{ज्या त द ता}$$

अथवा $\text{भू}'' = २०''.६३$ ज्या त द सा

२०''.६३ को भूचलन संस्कार का स्थिराङ्क (coefficient of aberration) कहते हैं। इसका अधिक शुद्ध मान २०''.४७ है। यदि त द सा कोण ९०° के समान हो तो यह स्पष्ट है कि भूचलन संस्कार का महत्तम मान २०''.४७ होगा।

यह स्पष्ट है कि भूचलन संस्कार के स्थिराङ्क में पृथ्वी की गति एक गुणक के रूप में वर्तमान है। परंतु पृथ्वी की गति सदा समान नहीं होती जिस समय पृथ्वी अपने नीच पर रहती है उस समय इसकी गति अत्यन्त तीव्र और जिस समय यह अपने उच्च पर रहती है उस समय इसकी गति अत्यन्त मंद रहती है। इसलिए पहली दशा में भूचलन संस्कार का स्थिराङ्क २०''.८० और दूसरी दशा में २०''.१३ होता है।

भूचलन संस्कार के कारण सूर्य, तारों और दूर के ग्रहों के भोगांश, शर, विषुवांश और क्रान्ति पर क्या प्रभाव पड़ता है इसकी व्याख्या विस्तार के भय से छोड़ दी जाती है। यहाँ इसकी चर्चा साधारण रीति से कर दी जाती है:—

जिस प्रकार वार्षिक लंबन के कारण तारा अपने यथार्थ स्थान के चारों ओर एक छोटी सी कक्षा में घूमता हुआ देख पड़ता है उसी प्रकार भूचलन संस्कार के कारण भी वह अपने यथार्थ स्थान के चारों ओर एक छोटी सी कक्षा में घूमता हुआ देख पड़ता है। यह कक्षा भी क्रान्तिवृत्त के तल के समानान्तर होती है। इसकी कक्षा का आकार भी उसी प्रकार बदलता है जिस प्रकार लंबन के कारण तारे की कक्षा का आकार बदलता है। जिस समय इसका आकार दीर्घवृत्त की तरह होता है उस समय इसका दीर्घ अक्ष २०″.४७ के समान होता है और लघु अक्ष २०″.४७ × ज्या श के समान होती हैं जब कि श तारे का शर या विक्षेप हो।

यह स्पष्ट ही है कि तारे का भूचलन संस्कार उसी दिशा में होता है जिस दिशा में पृथ्वी की गति होती है परन्तु जिस दिशा में पृथ्वी की गति होती है उससे ६०° आगे सूर्य रहता है क्योंकि पृथ्वी की गति भूकक्षा की स्पर्शरेखा की दिशा में होती है जो भूकक्षा के अर्द्धव्यास से ६०° का कोण बनाता और सूर्य भूकक्षा के केन्द्र पर रहता है। इसलिए यह सिद्ध हो गया कि तारे का भूचलन संस्कार क्रान्ति-वृत्त के उस विन्दु की ओर होता है जो सूर्य से ६०° पीछे रहता है अर्थात् जिसका भोगांश सूर्य के भोगांश से ६०° कम होता है।

जो तारा क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव अर्थात् कदम्ब पर होता है वह वर्ष भर में अपने यथार्थ स्थान के चारों ओर एक वृत्त पर घूमता हुआ देख पड़ता है जिसके अर्द्धव्यास का कोणात्मक मान २०′·४६ होता है।

जो तारा क्रान्तिवृत्त पर होता है वह क्रान्तिवृत्त पर ही अपने यथार्थ स्थान से २०″·४६ आगे और पीछे लोलक की तरह आन्दोलन (Oscillation) करता हुआ देख पड़ता है। इसलिए वर्ष भर में कुल अंतर ४०″.६ के समान पड़ता है।

जो तारा किसी और स्थान में रहता है जिससे उसका शर मान लो श के समान होता है, वह वर्ष भर में एक दीर्घवृत्त पर घूमता हुआ देख पड़ता है जिसका केन्द्र तारे का यथार्थ स्थान होता है, जिसके दीर्घ अक्ष का आधा २०″·४६ और लघु अक्ष का आधा २०″·४६ ज्याश तथा जिसका तल क्रान्तिवृत्त के तल के समानान्तर होता है।

इस पर बहुत से पाठक पूछ बैठेंगे कि वार्षिक लंबन और भूचलन संस्कार में फिर अंतर क्या है। इसका उत्तर यह है कि वार्षिक लम्ब के कारण तारा जिस

कक्षा में घूमता हुआ देख पड़ता है उसका विस्तार तारे की दूरी पर अवलंबित है अर्थात् तारा जितना ही दूर होगा उसका लंबन उतना ही कम होगा जिसके कारण कक्षा का आकार भी छोटा होगा। सबसे निकट वाले तारे की जो कक्षा लंबन के कारण देख पड़ती है उसके दीर्घ अक्ष का आधा ०″·७६ से अधिक नहीं है। परन्तु भूचलन संस्कार के कारण तारे की जो कक्षा देख पड़ती है उसके दीर्घ अक्ष का आधा सदैव २०″·४७ होता है और यह सब तारों के लिए समान होता है। दूसरी बात यह है कि यदि तारा उसी दिशा में हो जिस दिशा में सूर्य है अथवा सूर्य से ठीक १८०° पर हो तो लंबन का परिमाण शून्य होता है परन्तु भूचलन संस्कार का परिमाण महत्तम अर्थात् २०″·४७ होता है। तीसरे यह कि लंबन के कारण तारा सूर्य की ही ओर कुछ हटा हुआ देख पड़ता है परन्तु भूचलन संस्कार के कारण तारा उस विन्दु की ओर हटा हुआ देख पड़ता है जो सूर्य से ९०° पीछे होता है।

ग्रहों पर भूचलन संस्कार का प्रभाव दो तरह से पड़ता है, एक तो पृथ्वी की गति के कारण; दूसरा ग्रह की गति के कारण। यदि ग्रह की गति पृथ्वी की गति के समान हुई और उसी दिशा में हुई तो भूचलन संस्कार का अभाव होगा। अन्य दशाओं में भूचलन संस्कार क्या होगा इसकी गणना अगल-अलग सहज ही की जा सकती है।

चन्द्रमा की गति प्रकाश की गति की तुलना में बहुत कम होती है इसलिए इसके कारण भूचलन संस्कार शून्य के समान समझा जा सकता है। पृथ्वी की गति के कारण भी चन्द्रमा में भूचलन संस्कार नहीं के समान होता है क्योंकि पृथ्वी के साथ-साथ चन्द्रमा भी वर्ष भर में सूर्य की परिक्रमा कर आता है। इसलिए चन्द्रमा में भूचलन संस्कार का प्रभाव शून्य के समान होता है।

दैनिक भूचलन संस्कार—पृथ्वी की दैनिक गति के कारण विषुवत् रेखा का कोई विन्दु दिन भर में २५,००० मील के लगभग चलता है क्योंकि विषुवत् रेखा पर पृथ्वी की परिधि २५,००० मील के लगभग लम्बी होती है। अन्य स्थानों की परिधि इससे छोटी होती है। इसलिए जब दिन भर में २५,००० मील की गति होती है तो एक सेकंड में $\frac{३}{१०}$ मील की गति सिद्ध हुई। परन्तु पृथ्वी की वार्षिक गति $१८\frac{१}{२}$ मील प्रति सेकंड होती है। इसलिए पृथ्वी की दैनिक गति उसकी वार्षिक गति की $\frac{३}{१०} \div \frac{३७}{२} = \frac{३}{१०} \times \frac{२}{३७} = \frac{६}{३७०} = \frac{१}{६२}$। इसलिए वार्षिक गति के कारण जितना भूचलन संस्कार होता है उसका बासठवां भाग दैनिक गति के कारण विषुवत् रेखा पर होगा। अन्य स्थान पर इससे भी कम होगा इसलिए यह भी नहीं के समान समझ लेने में अनुचित नहीं है।

भूचलन संस्कार आविष्कार—इसके आविष्कार की कथा बहुत ही रोचक है। परन्तु विस्तार के साथ लिखने की आवश्यकता नहीं है। ब्रैडली नामक

ज्योतिषी जिस समय अजगर नामक तारा पुंज के तीसरे तारे (γ Draconis) के वार्षिक लम्बन की जाँच कर रहा था उस समय उसको जान पड़ा कि इस तारे का शर स्थिर नहीं रहता वरन् वर्ष भर में क्रमानुसार कुछ बदलता रहता है जिसका कारण उस समय तक की जितनी जानी हुई बातें थीं उनसे समझ में नहीं आता था। अंत में वह इस सिद्धांत पर पहुँचा कि पृथ्वी की वार्षिक गति और प्रकाश की गति के कारण यह वार्षिक परिवर्तन सभी तारों में होता रहता है—ब्रैडली को इस घटना का अनुभव १७८६ विक्रमीय में हुआ था।

इस प्रकार काल-समीकरण, वर्तन, लंबन, भूचलन-संस्कार इत्यादि नवीन आविष्कारों की मीमांसा सहित त्रिप्रश्नाधिकार का विज्ञान भाष्य समाप्त हुआ।

इति

सूर्य-सिद्धान्त

का

विज्ञान भाष्य

द्वितीय खण्ड

[चन्द्रग्रहणाधिकार, सूर्यग्रहणाधिकार, परिलेखाधिकार,
ग्रहयुत्यधिकार, नक्षत्रग्रहयुत्यधिकार, उदयास्ताधिकार,
शृङ्गोन्नत्यधिकार, पाताधिकार, भूगोलाध्याय,
ज्योतिषोपनिषदध्याय, मानाध्याय]

भाष्यकार

स्व० महावीरप्रसाद श्रीवास्तव

डा० रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान

इलाहाबाद

प्रकाशक
डा० रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान
विज्ञान परिषद् भवन
महर्षि दयानन्द मार्ग
इलाहाबाद-२११००२
फोन नं० ५४४१३

प्रथम संस्करण, दिसम्बर १९४०
[विज्ञान परिषद् प्रयाग से]
द्वितीय संस्करण, मई १९८३
(स्वाध्याय संस्थान से)

मूल्य रु० ४०·००

मुद्रक
सरयू प्रसाद पाण्डेय
नागरी प्रेस, अलोपीबाग, इलाहाबाद

प्रस्तावना

डॉ० रत्नकुमारी स्वाध्याय संस्थान की ओर से प्राचीन वाङ्मय के कई ग्रन्थ प्रकाशित किये जा चुके हैं—स्वामी सत्यप्रकाश और डॉ० उषा ज्योतिष्मती के ग्रन्थ, जैसे बखशाली-मेनुस्क्रिप्ट, शुल्ब-सूत्र (संस्कृत और अंग्रेजी में)। इसी परम्परा में हम स्वर्गीय श्री महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव के सूर्य-सिद्धान्त का विज्ञान भाष्य प्रकाशित कर रहे हैं। यह गौरव हमें विज्ञान-परिषद्, प्रयाग की उदारता से प्राप्त हुआ है, जिसके लिए हम परिषद् के अधिकारियों के उपकृत हैं।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन का व्ययसाध्य कार्य सम्पादित करना हमारे लिए कठिन होता यदि हमें करनाल के आदरणीय रायसाहब चौधरी प्रताप सिंह जी और उनके द्वारा स्थापित न्यास से आर्थिक सहायता प्राप्त नहीं हुई होती। चौधरी साहब के हम अत्यन्त आभारी हैं। हम प्रथम खण्ड मार्च १९८२ में प्रकाशित कर चुके हैं, जिसमें मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार और त्रिप्रश्नाधिकार हैं। इस दूसरे खण्ड में ११ अध्याय हैं। इस प्रकार कुल १४ अध्यायों में पूरा सूर्य-सिद्धान्त समाप्त हुआ।

१० मई, १९८३.

एस० रंगनायकी,
एम० एस-सी०, डी० फिल, डी० एस-सी०
निदेशिका

विषय-सूची

अध्याय	पृष्ठ
चतुर्थ अध्याय—चन्द्रग्रहणाधिकार	४४१
पंचम अध्याय—सूर्यग्रहणाधिकार	५०६
षष्ठम अध्याय—परिलेखाधिकार	५४५
सप्तम अध्याय—ग्रहयुत्यधिकार	५७६
अष्टम अध्याय—नक्षत्रग्रहयुत्यधिकार	६०४
नवम अध्याय—उदयास्ताधिकार	६५२
दशम अध्याय—शृंगोन्नत्यधिकार	६८१
एकादश अध्याय—पाताधिकार	७०१
द्वादश अध्याय—भूगोलाध्याय	७१८
त्रयोदश अध्याय—ज्योतिषोपनिषदध्याय	७७३
चतुर्दश अध्याय—मानाध्याय	७६४
परिशिष्ट	८०६
ग्रन्थ सूची	८१०

चतुर्थ अध्याय

चन्द्रग्रहणाधिकार

(संक्षिप्त वर्णन)

[१ श्लोक—सूर्य और चन्द्रमा के मध्यव्यास के मान। २-३ श्लोक—प्रत्येक के स्पष्ट व्यास जानने की रीति तथा चंद्रमा की कक्षा में सूर्य का स्पष्ट व्यास (योजनों और कलाओं में) जानने की रीति। ४-५ श्लोक—चंद्रमा की कक्षा में पृथ्वी की छाया के व्यास का मान जानने की रीति। ६ श्लोक–चंद्रमा के पात के कहाँ रहने से ग्रहण हो सकता है। ७ श्लोक–किस तिथि में ग्रहण हो सकता है। ८ श्लोक–अमावस्या और पूर्णमासी के अन्तकाल के सूर्य और चंद्रमा को स्पष्ट करने की रीति। ९ श्लोक–ग्रहण क्यों पड़ता है। १० श्लोक–ग्रस्त भाग का परिमाण जानने की रीति। ११ श्लोक–सर्वग्रास ग्रहण होगा या खंड ग्रहण अथवा ग्रहण न पड़ेगा यह निश्चय करने की रीति। १२-१५ श्लोक—ग्रहण और सर्वग्रास ग्रहण कितने समय तक रहेगा यह जानने की रीति। १६ श्लोक–ग्रहण के आरंभकाल और अन्तकाल जानने की रीति। १७ श्लोक–सर्वग्रास ग्रहण के आरंभकाल और अन्तकाल जानने की रीति। १८-२१ श्लोक–किस समय कितना भाग ग्रस्त रहेगा यह जानने की रीति। २२-२३ श्लोक–ग्रास का परिमाण जानकर इष्टकाल जानने की रीति। २४-२५ श्लोक–ग्रहण का चित्र खींचने के लिये वलन जानने की आवश्यकता। २६ श्लोक–इष्टकाल में बिम्ब का अंगुलात्मक मान जानने की रीति।]

सूर्य और चंद्रमा में ग्रहण किस प्रकार लगता है यह जानने के लिए पहले प्रकाश के कुछ गुणों की जानकारी आवश्यक है। इसलिए पहले संक्षेप में इन्हीं पर विचार किया जायगा। यह सबके अनुभव की बात है कि रात को दीपक के उजेले में दीवाल पर किसी वस्तु की जो छाया पड़ती है वह कहीं हल्की और कहीं गहरी होती है। गहरी छाया बीच में होती है और हल्की छाया गहरी छाया को घेरे रहती है। यदि वस्तु दीवाल के पास हो तो गहरी छाया बड़ी होती है और हल्की छाया कम। ज्यों-ज्यों वह वस्तु दीवाल से दूर होती जाती है परंतु दीपक के निकट त्यों-त्यों छाया का विस्तार तो बढ़ता जाता है परंतु गहरी छाया कम होती जाती है और हल्की छाया अधिक। यदि वस्तु दीपक से छोटी हो तो एक स्थिति ऐसी भी आ जायगी जिसमें गहरी छाया बिल्कुल नहीं पड़ेगी, केवल हल्की छाया दीवाल पर देख पड़ेगी।

हाँ, यदि वस्तु दीपक से बड़ी हो तो गहरी छाया दीवाल पर सदैव पड़ेगी ।

दीवाल के जिस भाग पर गहरी छाया पड़ती है उस भाग पर दीपक के प्रकाश का कोई अंश नहीं पहुँचता परन्तु हल्की छाया में दीपक का प्रकाश कुछ न कुछ अवश्य पहुँचता है । यदि कोई कीड़ा दीवाल पर गहरी छाया में हो तो उसे दीपक बिल्कुल नहीं देख पड़ेगा परन्तु हल्की छाया में उसे दीपक का कोई न कोई भाग अवश्य देख पड़ेगा । इसकी परीक्षा यों की जा सकती है :—

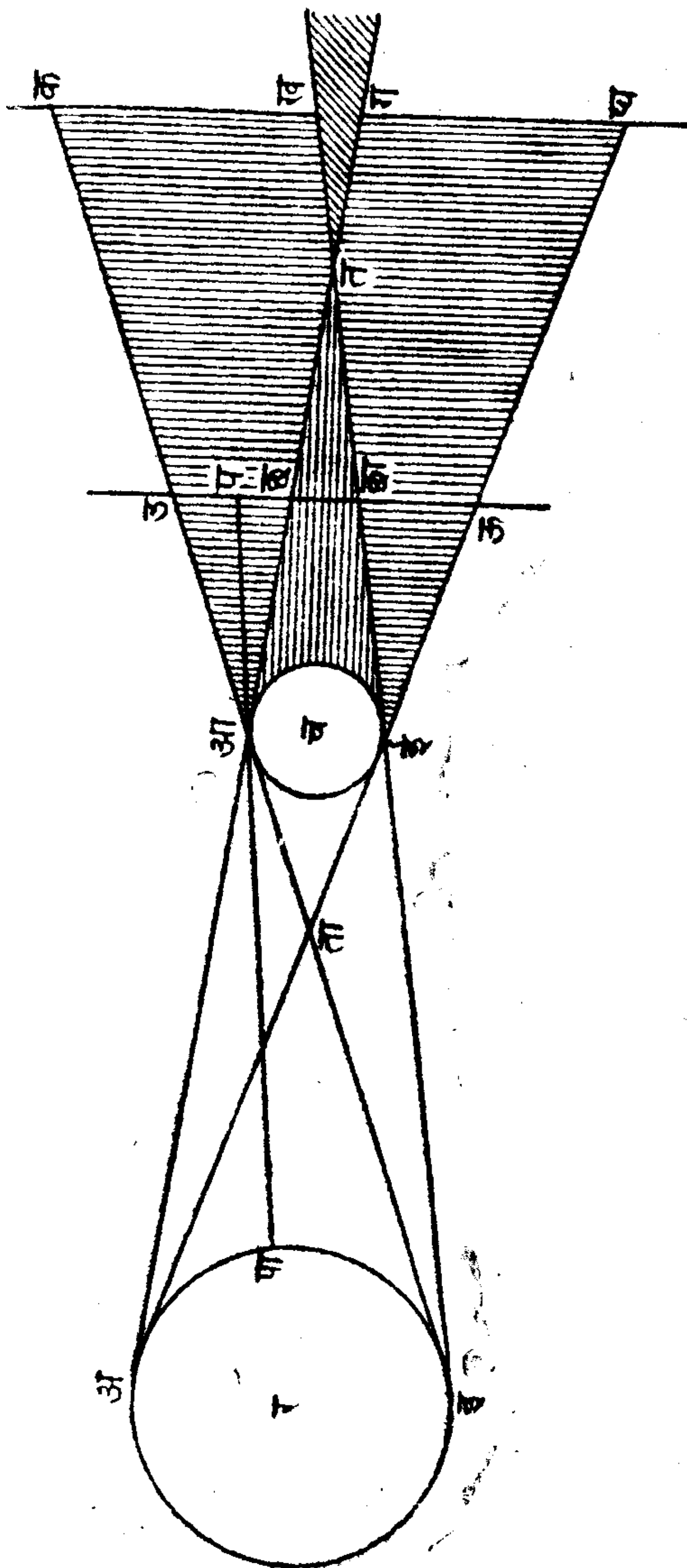
एक दीपक या लम्प जलाकर रख लो । थोड़ी दूर पर एक पेंसिल, गोली या ऐसी चीज़ जो दीपक से छोटी हो खड़ी कर दो या टाँग दो । कुछ और दूर पर एक पतला कागज़ हाथ में इस प्रकार थामो कि इस पर पेंसिल की गहरी और हल्की दोनों छाया पड़ें । गहरी छाया में सुई से एक छेद कर दो और इसीसे देखो कि दीपक देख पड़ता है या नहीं । दीपक नहीं देख पड़ेगा । हल्की छाया में सुई से छेद करके देखो । दीपक का कुछ अंश देख पड़ेगा ।

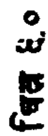
रेखागणित से यह जाना जा सकता है कि गहरी छाया कहाँ पड़ेगी और हल्की छाया कहाँ पड़ेगी । इनके विस्तार आदि का पता लगाना भी गणित से सम्भव है । सूर्य, चन्द्रमा में ग्रहण कैसे पड़ता है यह जानने के लिए गहरी और हल्की छाया का गणित करना पड़ता है इसलिए इस पर अच्छी तरह विचार करना आवश्यक है । आगे गहरी छाया को केवल छाया और हल्की छाया को परिछाया कहा जायगा ।

मान लो र एक प्रकाशमान पिंड और च एक अपारदर्शक पिंड है । दोनों पिंड गोलाकार हैं । र से प्रकाश की किरणें चारों दिशाओं में फैलती हैं परन्तु जो किरणें च पिंड पर पड़ती हैं वे इसके आगे नहीं बढ़ने पातीं । इन दोनों पिंडों को सीधी स्पर्श करती हुई रेखाएँ खींची जायँ तो वे त विन्दु पर परस्पर मिलकर एक दूसरे को काटती हुई आगे बढ़ेंगी । आ त ई सूची (cone) के आकार का होगा । यही च पिंड से बनी हुई छाया की सीमा होगी । इसके ऊपर, नीचे, इधर उधर छाया नहीं पड़ेगी । (देखो चित्र ९०) ।

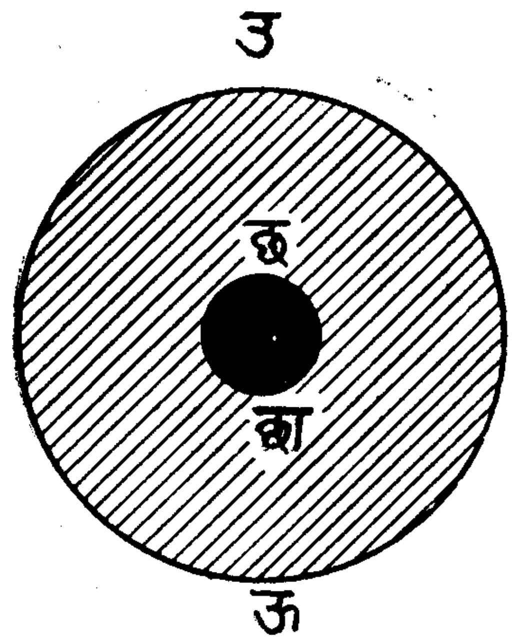
इन दोनों पिंडों को छूती हुई जो रेखाएँ ता विन्दु पर मिलती हैं इनसे परिछाया की सीमा बनती है ।

यदि एक पट (पर्दा) छाया में इस प्रकार रखा जाय कि वह र, च पिंडों के केन्द्रों को मिलानेवाली रेखा से समकोण पर रहे तो इस पट पर छाया का जो वृत्त बनेगा उसका व्यास छ छा होगा और परिछाया के वृत्त का व्यास उ ऊ होगा जिसमें छाया का व्यास भी शामिल है (देखो चित्र ९१) । यदि उ छ खंड में किसी जगह प विंदु पर एक छेद कर दिया जाय और इसी छेद से प्रकाशमान पिंड देखा जाय तो पिंड का वह ऊपरी भाग देख पड़ेगा जो पा विन्दु के ऊपर है । यह पा विन्दु प आ

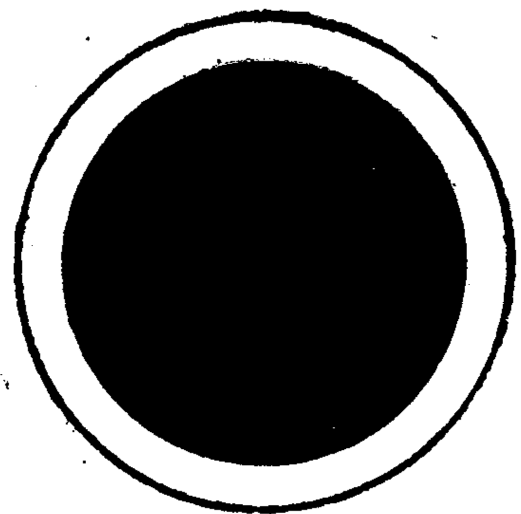




चित्र ९०



चित्र ९१



चित्र ९२

स्पर्शरेखा को बढ़ाने से प्रकाशमान पिंड पर निश्चय किया जाता है। यदि ऊ छा खंड में कहीं छेद किया जाय तो प्रकाशमान पिंड के नीचे का भाग देख पड़ेगा। परन्तु यदि छेद छ छा खंड में किया जाय तो प्रकाशमान पिंड का कोई भाग नहीं देख पड़ेगा। सारांश यह कि यदि द्रष्टा अ आ त रेखा के ऊपर परन्तु ता अ उ के नीचे कहीं रहेगा तो उसे र पिंड का ऊपरी भाग अवश्य देख पड़ेगा परन्तु नीचे वाला भाग नहीं देख पड़ेगा। इसी प्रकार इ ई त रेखा के नीचे और अ ई ऊ रेखा के ऊपर द्रष्टा के रहने से प्रकाशमान पिंड का नीचे वाला भाग अवश्य देख पड़ेगा परन्तु ऊपर वाला भाग नहीं देख पड़ेगा।

यदि पट त विन्दु पर लाया जाय तो यहाँ छाया नाममात्र को भी नहीं रहेगी। प्रकाशमान पिंड देख तो नहीं पड़ेगा परन्तु इसकी चमक चारों ओर कुछ अवश्य देख पड़ेगी। यदि पट त से और दूर किया जाय तो एक और ही दृश्य देख पड़ेगा। क ख और ग घ परिछाया के खंडों में तो पहले की ही तरह बात देख पड़ेगी परन्तु ख ग खंड में जो छाया की सीमा बनाने वाली रेखाओं के बीच में है प्रकाशमान पिंड का किनारे वाला पूरा भाग देख पड़ेगा परन्तु बीच में अन्धकार रहेगा (देखो चित्र ६२)। चित्र से यह प्रकट ही है कि ख ग के बीच किसी विन्दु से च पिंड को स्पर्श करती हुई जो रेखाएँ खींची जायेंगी वह र पिंड के ऊपर नीचे दोनों ओर पहुँचेंगी। पिंड गोल है इसलिए बीच में अन्धकारमय होने से कंकण की तरह देख पड़ेगा।

यह सब दृश्य प्रयोग द्वारा देखे जा सकते हैं। एक गोल लम्प, गेंद तथा लकड़ी के चौखटे में तने हुए पट, बस तीन चीजें इसके लिए पर्याप्त हैं। र पिंड को जगह गोल लम्प और च की जगह गेंद को समझना चाहिए। अंधेरी रात में किसी स्थान में यह प्रयोग सहज ही किया जा सकता है।

इसी प्रयोग से सूर्य ग्रहण की सारी बातें समझ में आ सकती हैं। र को रवि या सूर्य और च को चन्द्रमा समझना चाहिए। पट की जगह पृथ्वी को समझना चाहिए। जिस तरह यह पिंड के निकट रहने पर छाया और परिछाया दोनों में रहता है परन्तु दूर रहने पर केवल परिछाया या छाया की सीमा बनाने वाली रेखाओं के बीच में रहता है, इसी तरह पृथ्वी भी कभी चन्द्रमा के निकट रहने से चन्द्रमा की छाया और परिछाया दोनों में रहती है और कभी दूर रहने से केवल प र छाया में ही रहती है। पृथ्वी चन्द्रमा से बहुत बड़ी है इसलिए सारी पृथ्वी छाया या परिछाया में नहीं पड़ सकती। पृथ्वी का जो भाग छाया में पड़ जाता है वहाँ के निवासियों को सूर्य बिलकुल नहीं देख पड़ता। इसलिये सूर्य का पूर्णग्रहण या सर्वग्रहण (total eclipse of the sun) होता है। पृथ्वी का जो भाग परिछाया में पड़ता है वहाँ के

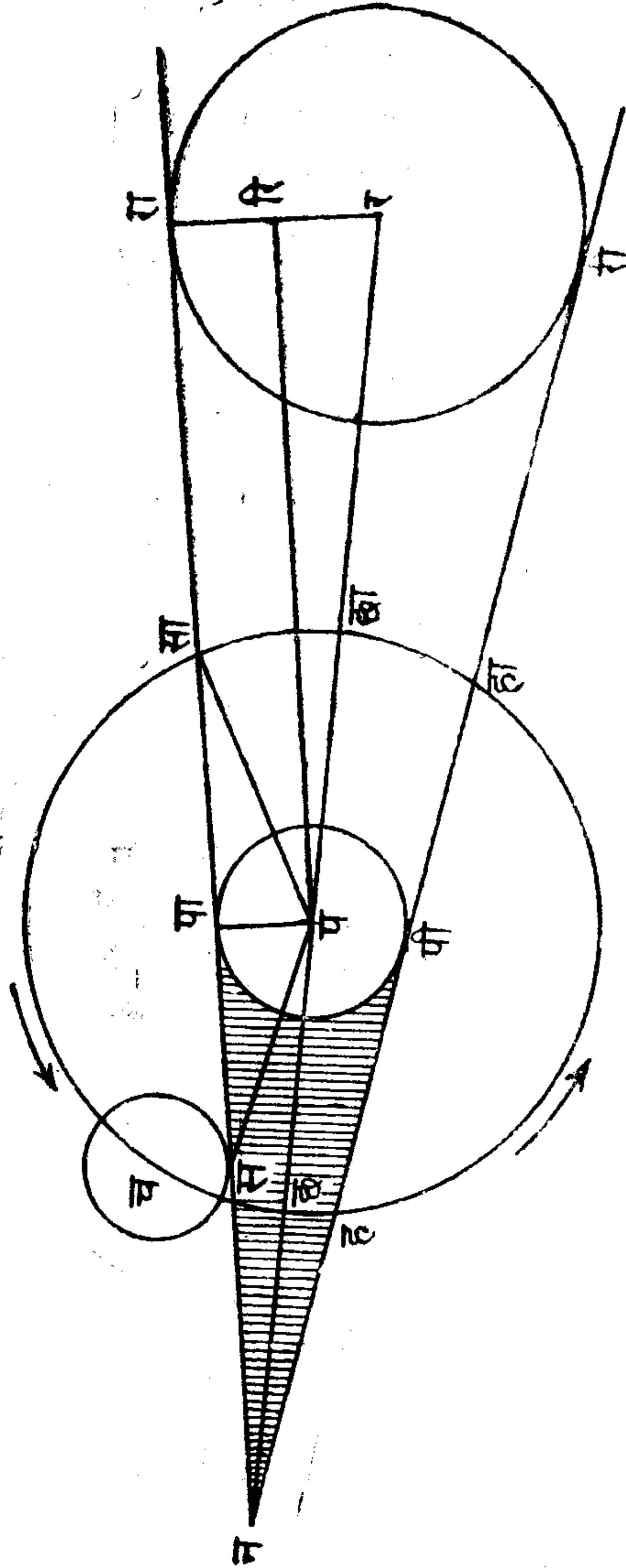
निवासियों को सूर्य का खंडग्रहण (partial eclipse) देख पड़ता है। यदि पृथ्वी पर छाया न पहुँचे तो वह उसी स्थिति में रहेगी जो क ख ग घ पट से दिखायी गयी है। ऐसी दशा में पृथ्वी का जो भाग छाया की सीमा बनाने वाली रेखा के बीच में होगा वहाँ कंकण ग्रहण (annular eclipse) देख पड़ेगा।

जिस तरह चंद्रमा की छाया या परिछाया में पृथ्वी के आ जाने से सूर्य में पूर्ण ग्रहण खंड ग्रहण, अथवा कंकण ग्रहण देख पड़ता है उसी तरह पृथ्वी की छाया में जब चंद्रमा आ जाता है तब प्रकाशहीन हो जाता है। इसी को चन्द्रग्रहण कहते हैं। यदि चंद्रमा का पूर्ण पिंड छाया में आ जाय तो पूर्ण चन्द्रग्रहण (total eclipse of the moon) और अधूरा पिंड छाया में आवे तो खंड चंद्रग्रहण (partial eclipse of the moon) पड़ता है। इस स्थिति में चंद्रमा निवासी सूर्य में ही ग्रहण लगता हुआ देखेंगे परंतु उनको कंकण ग्रहण देखने का सौभाग्य नहीं हो सकता क्योंकि चंद्रमा से पृथ्वी का आकार बड़ा होने के कारण चंद्रमा कभी छाया से बाहर नहीं जा सकता है।

चित्र से यह भी स्पष्ट है कि छाया में पहुँचने के पहले परिछाया मे घुसना आवश्यक है। यह स्मरण रखना चाहिए कि चंद्रग्रहण तभी देख पड़ता है जब चंद्रमा पृथ्वी की छाया में जाता है। यदि चंद्रमा केवल परिछाया में जाय तो ग्रहण नहीं देख पड़ेगा, हाँ कुछ मलिनता अवश्य आ जाती है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे स्पष्ट है कि सूर्य, चंद्रमा और पृथ्वी की परस्पर दूरियों के अनुसार छाया और परिछाया का परिमाण भी कम या अधिक हो सकता है। यह बात पहले ही बतलायी जा चुकी है कि सूर्य और पृथ्वी के बीच की दूरी तथा चंद्रमा और पृथ्वी के बीच की दूरी घटती बढ़ती रहती है। दूरी के घटने बढ़ने से इन पिंडों के कोणात्मक आकार घटे बढ़े देख पड़ते हैं (देखो पृष्ठ ८४-८५) इसलिए कोणात्मक आकारों का परिमाण जानने के लिए इनकी स्पष्ट दूरियों का जानना आवश्यक है। परंतु त्रिप्रश्नाधिकार में यह बतलाया गया है कि किसी पिंड के आकार, लम्बन और उसकी स्पष्ट दूरी में परस्पर क्या संबंध है। इसलिए लंबन या दूरी दोनों में से किसी के जान लेने से यह जाना जा सकता है कि छाया का परिमाण किस समय कितना होता है। चित्र ९३ से यह जाना जाता है कि चंद्रग्रहण के समय चंद्रमा की कक्षा में पृथ्वी की छाया का व्यास कितना बड़ा होता है।

मान लो कि चित्र ९३ में च चंद्रमा है जो पृथ्वी की छाया में स बिंदु पर प्रवेश कर रहा है, इसलिए यह रा पा स्पर्श रेखा को छू रहा है क्योंकि सूर्य और



चित्र ९३

पृथ्वी की सामान्य स्पर्शरेखाओं रा पा और री पी से ही पृथ्वी की छाया बनती है जिसकी नोक न है। सूर्य और पृथ्वी की त्रिज्याएँ र रा और प पा स्पर्शरेखा रा पा के समकोण पर हैं। प रि रेखा पा रा के सामानान्तर है।

पहले यह जानना आवश्यक है कि कोण स प छ किसके समान है क्योंकि यह कोण पृथ्वी के केन्द्र पर छाया की उस त्रिज्या से बनता है जो चंद्रमा की कक्षा में है इसलिए इससे चंद्रकक्षा में छाया के आकार का पता चलेगा।

$$\angle \text{रि प र} = \frac{\text{रि र}}{\text{प र}} = \frac{\text{रा र} - \text{रा रि}}{\text{प र}} = \frac{\text{रा र} - \text{पा प}}{\text{प र}} = \frac{\text{रा र}}{\text{प र}} - \frac{\text{पा प}}{\text{प र}}$$

=सूर्य की त्रिज्या – सूर्य का लंबन

=त्र – ल

त्र और ल से सूर्य की त्रिज्या और लंबन सूचित किये गये हैं।

$$\angle \text{स प छ} = \angle \text{प स पा} - \angle \text{प न पा}$$
$$= \angle \text{प स पा} - \angle \text{रि प र}$$

क्योंकि प रि और न पा रा समान्तर हैं और न प र दोनों को काटता है।

यहाँ $\angle \text{प स पा} = \frac{\text{प पा}}{\text{प स}}$ =चंद्रमा का लंबन=ला

ला को चंद्रमा का परम लंबन या क्षितिज लंबन मान लेने में बहुत अंतर नहीं पड़ेगा। इसलिए

$$\angle \text{स प छ} = \text{ला} - (\text{त्र} - \text{ल})$$
$$= \text{ल} + \text{ला} - \text{त्र}$$

इससे यह सिद्ध हुआ कि यदि सूर्य और चन्द्रमा के क्षितिज लम्बनों के योगफल से सूर्य की त्रिज्या का कोणात्मक मान घटा दिया जाय तो जो कुछ शेष रहता है उसी के समान चन्द्रकक्षा में पृथ्वी की छाया की त्रिज्या का कोणात्मक मान होता है। इसी को भूभार्द्ध भी कहते हैं।

अनुभव से जाना गया है कि पृथ्वी के वातावरण के कारण इसकी छाया उपर्युक्त गणितसिद्ध छाया से $\frac{१}{५०}$ गुना बड़ी होती है क्योंकि ऊपर के गणित में पृथ्वी के केवल ठोस पिंड का विचार किया है, इसके वातावरण का नहीं।

उदाहरण—यदि सूर्य का लंबन ९″, चन्द्रमा का लंबन ५८′१″ और सूर्य की त्रिज्या १६′१३″ हो तो चंद्रकक्षा में पृथ्वी की छाया की त्रिज्या बतलाओ?

भूभार्द्ध=ल+ला – त्र

=९″+५८′१″ – १६′१३″

$$=५८'१०'' - १६'१३''$$
$$=४१'५७''$$

यह गणितसिद्ध छाया की त्रिज्या है। वातावरण के कारण छाया का $\frac{१}{५०}$ गुना बढ़ जाता है। इसलिए कुल छाया

$$=४१'५७'' + \frac{४१'५७''}{५०} = ४१'५७'' + ५०'' = ४२'४७''$$

यह प्रकट है कि चन्द्रकक्षा में भूभार्द्ध (पृथ्वी की छाया की त्रिज्या) का परिमाण सदैव एकसा नहीं रहता क्योंकि यह सूर्य और चन्द्रमा के लंबन तथा सूर्य की कोणात्मक त्रिज्या पर अवलंबित है और यह तीनों बातें पृथ्वी से सूर्य और चन्द्रमा की दूरियों पर अवलंबित हैं जो सदैव घटा बढ़ा करती हैं।

अब यह बतलाया जायगा कि इस विषय पर सूर्य-सिद्धान्त का क्या मत है।

सूर्य और चन्द्र बिम्बों का मध्यम व्यास तथा चन्द्रकक्षा में सूर्य का स्पष्ट व्यास—

सार्धानि षट् सहस्राणि योजनानि विवस्वतः।
विष्कम्भो मण्डलस्येन्दोः साशीतिस्तु चतुश्शती ॥१॥
स्वव्यासौ त्रिज्ययाऽभ्यस्तौ स्वमन्दश्रवणोद्धृतौ।
स्पष्टौ स्वकौ स्वकौ भूमेस्तथा सूची शशाङ्कवत् ॥२॥
स्फुटस्वभुक्तिगुणितौ मध्यभुक्त्या हृतौ स्वकौ।
रवेस्स्वभगणाभ्यस्तः शशाङ्कभगणोद्धृतः ॥३॥

अनुवाद—(१) सूर्य के मण्डल का मध्यम व्यास ६५०० योजन और चंद्रमा के मण्डल का मध्यम व्यास ४८० योजन है। (२) जिस समय किसी का स्पष्ट व्यास जानना हो तो उसके मध्यम व्यास को उस समय की उसकी स्पष्टगति से गुणा कर दो और गुणनफल को उसकी मध्यमगति से भाग दे दो। सूर्य के स्पष्ट व्यास को सूर्य के महायुगीय भगण से गुणा करके गुणनफल को चन्द्रमा के महायुगीय भगण से भाग देने पर (३) अथवा सूर्य के स्पष्ट व्यास को चन्द्रकक्षा से गुणा करके और गुणनफल को सूर्य की कक्षा से भाग देने पर जो आता है वही चन्द्रकक्षा में सूर्य के स्पष्ट व्यास का परिमाण है। चन्द्रकक्षा में सूर्य और चन्द्रमा के व्यास को १५ से भाग देने पर सूर्य और चन्द्रमा के व्यास कलाओं में ज्ञात हो जाते हैं।

विज्ञान भाष्य—इन तीन श्लोकों का सार यह है—

सूर्य बिम्ब का मध्यम व्यास = ६५०० योजन
चन्द्र बिम्ब का मध्यम व्यास = ४८० योजन

$$\text{स्फुट व्यास} = \frac{\text{मध्यम व्यास} \times \text{स्फुट गति}}{\text{मध्यम गति}}$$

चन्द्रकक्षा में सूर्य का स्फुट व्यास

$$= \frac{\text{सूर्य का स्फुट व्यास} \times \text{सूर्य का महायुगीय भगण}}{\text{चन्द्रमा का महायुगीय भगण}}$$

$$\text{अथवा} = \frac{\text{सूर्य का स्फुट व्यास} \times \text{चन्द्रकक्षा}}{\text{सूर्य की कक्षा}}$$

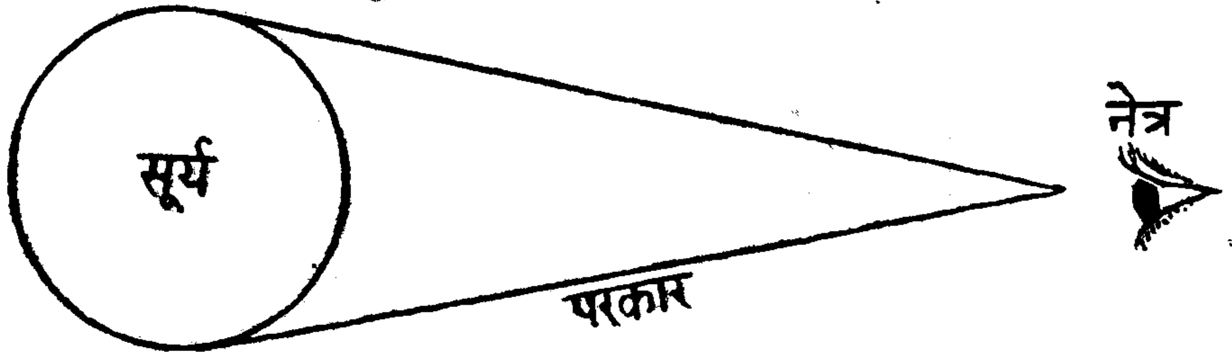
यहां यह शंका उत्पन्न हो सकती है कि क्या सूर्य का योजनात्मक आकार भी घटता बढ़ता है क्योंकि ऊपर बतलाया गया है कि सूर्य का स्फुट (स्पष्ट) व्यास उसकी स्फुट गति पर अवलंबित है जो सदा घटती बढ़ती रहती है। परन्तु बात यह नहीं है। सूर्य का योजनात्मक आकार स्फुट गति के अनुसार कदापि घटता बढ़ता नहीं है, हाँ कलात्मक या कोणात्मक आकार अवश्य बदलता है जिसकी मीमांसा स्पष्टाधिकार पृष्ठ ८४-८६ में अच्छी तरह की गयी है। यहाँ मध्यम व्यास और स्फुट व्यास का परिमाण यद्यपि योजनों में बतलाया गया है तथापि इसे कोणात्मक ही समझना चाहिए क्योंकि इस जानने की जो रीति भास्कराचार्य जी[1] ने लिखी है उससे यह अर्थ निकलता है। भास्कराचार्य जी कहते हैं कि जिस दिन सूर्य की स्पष्ट या स्फुट गति मध्यम गति के समान हो उस दिन उदयकाल में ३४३८ इकाइयों के समान दो लकड़ियां लेकर इनके दो सिरों को मिलाकर[2] मूल स्थानों में आँख रखकर सूर्य के बिंब को इस प्रकार बेधो कि इन लकड़ियों के आगेवाले सिरे बिम्ब के उत्तर और दक्खिन वाले किनारों को स्पर्श करें। इसी दशा में लकड़ियों के सिरों को इस प्रकार कस दो कि आगेवाले सिरों की दूरी में कोई भेद न पड़े। अब इन सिरों की दूरी को उसी इकाई से नापो जिससे लकड़ियों की लम्बाई नापी गयी है। यह अन्तर जितनी इकाइयों के समान होगा उतनी ही कला सूर्य के बिम्ब का व्यास होगा। भास्कराचार्य जी के अनुसार यह व्यास ३२′३१″३३‴ होता है। यदि इसको ३२′३०″ या ३२′·५ माना जाय और सूर्य की कक्षा[3] का मान ४३,३१,५०० योजन लिया जाय तो सूर्य-बिम्ब का योजनात्मक मान इस प्रकार प्राप्त होगा :—

---

१. गणिताध्याय पृष्ठ १७१-१७२

२. आजकल यह काम परकार (dividers) की नोकों से किया जा सकता है। आँख उस विन्दु पर होनी चाहिए जहां कम्पास की दोनों भुजाएं मिलती हों।

३. भूगोलाध्याय श्लोक ८६।



चित्र ६४

कोई कक्षा = ३६०°

= २१,६००′

∴ सूर्य की कक्षा भी २१,६०० कला के समान है परन्तु योजनों में यह ४३,३१,५०० के समान है इसलिए

२१६००′ = ४३,३१,५०० योजन

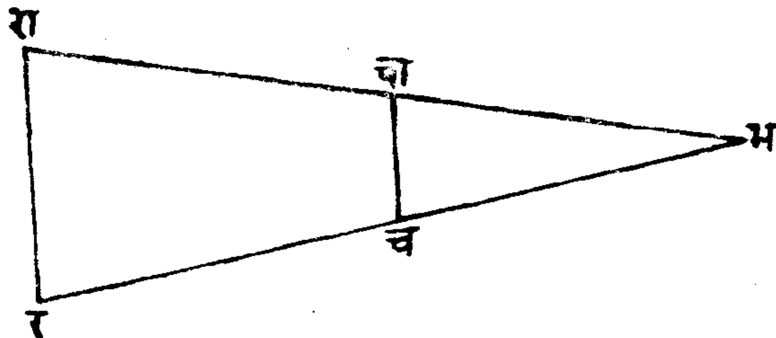
$$∴ ३२·५′ = \frac{३२·५ \times ४३३१५००}{२१६००} \text{ योजन}$$

= ६५१७ योजन

सूर्य-सिद्धान्त ने सूर्य का मध्यम व्यास ६५०० योजन माना है इससे प्रकट होता है कि इस ग्रन्थ में सूर्य का उदयकालिक बिम्ब ३२′३०″ से कम लिया गया है जो ठीक भी है क्योंकि वर्तन के कारण उदयकालिक बिम्ब यथार्थ से कुछ बड़ा देख पड़ता है।

इस तरह यह सिद्ध है कि सूर्य या चन्द्र बिम्बों का योजनात्मक मान कलात्मक मानों से ही जाना गया है।

मध्यम व्यास से स्फुट व्यास जानने का जो नियम बतलाया गया है वह कुछ स्थूल है क्योंकि सूर्य या चन्द्रमा की स्फुटगति का परिवर्तन उसी अनुपात से नहीं होता



चित्र ६५

जि अनुपात से इनके कोणात्मक बिम्बों का परिवर्तन होता है। (देखो स्पष्टाधिकार पृष्ठ ८८)।

चन्द्रकक्षा में सूर्य का स्पष्ट व्यास जानने के दो नियम बतलाये गये हैं जो वास्तव में एक ही नियम के दो रूप हैं। चित्र ९५ में यदि र रा सूर्य की कक्षा, और च चा चन्द्रमा की कक्षा के खंड मान लिये जायँ, भ पृथी का केन्द्र हो और यदि र रा सूर्य बिम्ब के समान मान लिया जाय तो चन्द्रकक्षा में यह बिम्ब च चा के समान होगा। यह स्पष्ट ही है कि

$$\frac{\text{च चा}}{\text{र रा}} = \frac{\text{भ च}}{\text{भ र}} = \frac{\text{चन्द्रकक्षा का व्यासार्ध}}{\text{सूर्यकक्षा का व्यासार्ध}}$$

$$= \frac{\text{चन्द्रकक्षा}}{\text{सूर्यकक्षा}}$$

क्योंकि दो वृत्तों की परिधियों में वही अनुपात होता है जो उनके व्यासार्धों में होता है।

इसलिए

$$\text{च चा} = \frac{\text{र रा} \times \text{चन्द्रकक्षा}}{\text{सूर्यकक्षा}}$$

$$= \frac{\text{सूर्य का स्पष्ट व्यास} \times \text{चन्द्रकक्षा}}{\text{सूर्य की कक्षा}}$$

इस प्रकार चन्द्रकक्षा में सूर्य के स्पष्ट व्यास के जानने का दूसरा नियम सिद्ध हो गया। अब यह बतलाना कठिन नहीं है कि पहला इसका रूपान्तर किस प्रकार है।

यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि हमारे आचार्यों का मत है कि प्रत्येक ग्रह की दैनिक योजनात्मक गति समान होती है। इसलिए यह सिद्ध है कि प्रत्येक ग्रह एक महायुग या कल्प में जितने योजन चलता है वह सब ग्रहों के लिए एक सा है। ग्रह एक महायुग में जितने योजन चलता है उसको यदि ग्रह के महायुगीय भगण से भाग दे दिया जाय तो ग्रह की कक्षा का मान योजनों में निकल आवेगा, इसको यों भी लिखा जा सकता है :—

$$\frac{\text{ग्रह की महायुगीय गति (योजनों में)}}{\text{ग्रह का महायुगीय भगण}} = \text{ग्रह की कक्षा (योजनों में)}$$

यदि ग्रह की महायुगीय योजनात्मक गति को म मान लिया जाय और सूय के महायुगीय भगण को र तथा चन्द्रमा के महायुगीय भगण को च मान लिया जाय तो उपर्युक्त नियम के अनुसार

$$\frac{म}{र} = \text{सूर्य की कक्षा}$$

और $$\frac{म}{च} = \text{चन्द्रकक्षा}$$

यदि दूसरे समीकरण के प्रत्येक पक्ष को पहले समीकरण के समपक्ष (corresponding sides) से भाग दे दिया जाय तो

$$\frac{म}{च} \div \frac{म}{र} = \frac{\text{चन्द्रकक्षा}}{\text{सूर्य की कक्षा}}$$

अथवा $$\frac{र}{च} = \frac{\text{चन्द्रकक्षा}}{\text{सूर्य की कक्षा}}$$

इस प्रकार सूर्य के स्फुट व्यास का पहला नियम भी सिद्ध हो गया।

यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि सूर्य का स्फुट व्यास तथा सूर्य की कक्षा का विस्तार यथार्थ में उतना नहीं है जितना हमारे सिद्धान्त ग्रन्थों में बतलाया गया है। अनेक वेधों से यह सिद्ध हो गया कि सूर्य का लम्बन ९ कला से अधिक नहीं होता इसलिए पृथ्वी से इसकी दूरी लम्बन के सूत्र के अनुसार (देखो त्रिप्रश्नाधिकार पृष्ठ ३८४) ९ करोड़ २९ लाख मील है और इसके पिंड का व्यासार्ध ४, ३२, ८९० मील है (देखो पृष्ठ ९६)। यदि योजन का परिमाण ५ मील के समान समझा जाय (देखो पृष्ठ ५४) तो

$$\text{सूर्य का व्यासार्ध} = \frac{४३२८९०}{५} = ८६५७८ \text{ योजन, और}$$

$$\text{सूर्य की मध्यम दूरी} = \frac{९,२९,००,०००}{५} = १,८५,८०,००० \text{ योजन}$$

यह परिमाण हमारे सिद्धान्त के परिमाणों से कितना भिन्न है यह नीचे की तालिका से स्पष्ट हो जायगा जहाँ सब परिमाण योजनों में दिये जाते हैं :—

	सूर्यसिद्धान्त	सिद्धान्त शिरोमणि	R.S. Ball's Spherical Astronomy
सूर्य बिंब का व्यास	६५००	६५२२	१७३१५६
सूर्य की मध्यम दूरी	६८९३७८	६८९३७७	१८५८००००
चन्द्र बिंब का व्यास	४८०	४८०	४३०
चन्द्रमा की मध्यम दूरी	५१५६६	५१५६६	४७५००

तीसरे श्लोक के उत्तरार्द्ध में यह भी बतलाया गया है कि चन्द्रमा की कक्षा में सूर्य बिम्ब का जो व्यास योजनों में हो उसको १५ से भाग देने पर इसका परिमाण कलाओं में आ जायगा। इसका कारण यह है कि चन्द्रकक्षा का विस्तार ३२४००० योजन माना गया है जो ३६० अंश या २१६०० कला के समान भी है इसलिए जब २१६०० कला $=$ ३२४००० योजना तब १ कला $= \frac{३२४०००}{२१६००} =$ १५ योजन जिसका अर्थ यह हुआ कि चन्द्रकक्षा का १५ योजन एक कला के समान होता है।

चन्द्रकक्ष में भूछाया के व्यास का परिमाण—

शशाङ्ककक्ष्यागुणितो भाजितो वाऽर्ककक्ष्यया।
विष्कम्भश्चन्द्रकक्ष्यायां तिथ्याप्तो मानलिप्तिका: ॥४॥
स्फुटेन्दुभुक्तिभूर्व्यासगुणिता मध्ययोद्धृता।
लब्धं सूची महीव्यासस्फुटार्कश्रवणान्तरम् ॥५॥
मध्येन्दुव्यासगुणितं मध्यार्कव्यासभाजितम्।
विशोध्य लब्धं सूच्यास्तु तमो लिप्ताश्च पूर्ववत् ॥६॥

अनुवाद—(४) चन्द्रमा की स्पष्ट गति को पृथ्वी के व्यास से गुणा करके गुणनफल को चन्द्रमा की मध्य गति से भाग देने पर जो लब्धि आती है उसे सूची कहते हैं। सूर्य के स्फुट व्यास से पृथ्वी के व्यास को घटाकर (५) शेष को चंद्रमा के मध्यम व्यास से गुणा करके और गुणनफल को सूर्य के मध्यम व्यास से भाग दे दो। लब्धि को सूची से घटा देने पर जो शेष आवेगा वह चन्द्रकक्षा में पृथ्वी की छाया का व्यास योजनों में आ जायगा। इसको पहले की तरह १५ से भाग दे देने पर भूछाया का व्यास कलाओं में ज्ञात हो जायगा।

विज्ञान भाष्य—यहाँ चन्द्रमा और सूर्य की स्पष्ट गतियों को चा और रा अक्षरों से सूचित किया जायगा। यदि चन्द्रमा और सूर्य के महायुगीन भगणों को महायुगीन सावन दिनों से भाग दे दिया जाय और लब्धि की कलाएँ बनायी जायँ तो चन्द्रमा और सूर्य की मध्यम दैनिक गतियाँ क्रमानुसार ७९०′·५६ और ५९′·१३६२ होती हैं। पृथ्वी का व्यास १६०० योजन माना गया है (देखो मध्यमाधिकार श्लोक ५९)। इन मानों के आधार पर उपर्युक्त दो श्लोकों को संक्षेप में इस प्रकार लिखा जा सकता है—

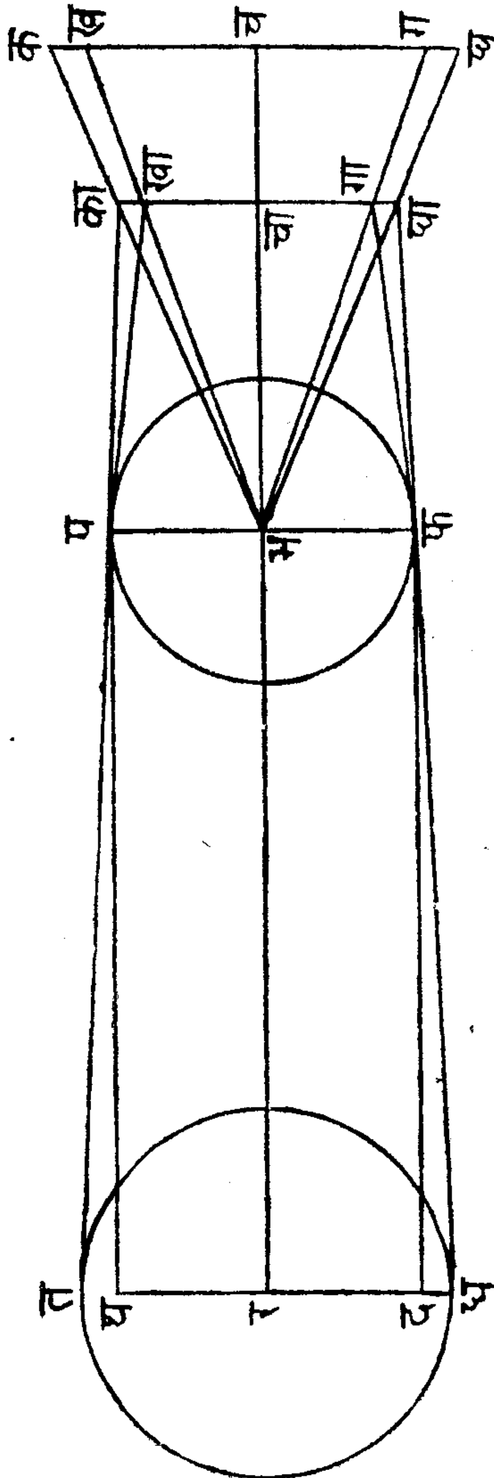
$$\text{सूची} = \frac{१६०० \times \text{चा}}{७९०\cdot५६}$$

$$\text{सूर्य का स्फुट व्यास} = \frac{६५०० \times \text{रा}}{५९\cdot१३६२}$$ (देखो श्लोक २)।

चन्द्रकक्षा में भूछाया का योजनात्मक व्यास

$$= \frac{१६०० \text{ चा}}{७९०\cdot५६} - \left(\frac{६५०० \text{ रा}}{५९\cdot१३६२} - १६०० \right) \times \frac{४८०}{६५००}$$

यदि इसको १५ से भाग दे दिया जाय तो चन्द्रकक्षा में भूछाया का कलात्मक व्यास



$$= १०६\frac{२}{३} \times \frac{\text{चा}}{७९०\cdot५६} - ३२ \times \frac{\text{रा}}{५९\cdot१३६२} + ७\cdot८८$$

जिस समय चन्द्रमा और सूर्य की स्पष्ट गतियाँ इनकी मध्यम गतियों के समान होंगी उस समय $\frac{\text{चा}}{७९०\cdot५६}$ और $\frac{\text{रा}}{५९\cdot१३६२}$ एक के समान होंगे। ऐसी दशा में भूछाया का कलात्मक व्यास १०६·६७ – ३२ + ७·८८ = ८२·५५

चित्र ९३ की सहायता से आरंभ में यह बतलाया जा चुका है कि भूभार्ध अर्थात् चन्द्रकक्षा में पृथ्वी की छाया का अर्धव्यास ४१′५७″ होता है जिससे पृथ्वी की छाया का व्यास ८४′ के लगभग आता है। इसलिए यह स्पष्ट है कि सूर्य-सिद्धान्त के नियम से पृथ्वी की छाया का व्यास जितना आता है वह नवीन रीति से निकाले हुए व्यास के प्रायः समान ही होता है यद्यपि उसके उपकरण स्थूल और अशुद्ध हैं। भारतीय रीति से भूछाया के व्यास का जो परिमाण आता है वह तीन पदों १०६·६७, ३२ और ७·८८ के योग वियोग से सिद्ध होता है।

इसी तरह नवीन रीति से भूभार्द्ध का परिमाण भी तीन पदों ५८′१″, १६′१३″ और ६″ के योग वियोग से व्यक्त किया जा सकता है (देखो ४३८ पृष्ठ का उदाहरण)। इन तीन पदों के दूने क्रम से ११६′ २″, ३२′ २६″ और १८″ है। इनमें ३२′२६″ भारतीय नियम के दूसरे पद से बिल्कुल मिलता है, पहला पद यहाँ ११६′ और वहाँ १०७ कला है और तीसरा पद यहाँ १८″ और वहाँ ८′ के लगभग है इसलिए पहले और तीसरे पदों का योग ११६′ के लगभग हो जाता है। इससे प्रकट है कि हमारे सिद्धान्त से भूभार्ध का जो रूप सिद्ध होता है वह नवीन रूप से केवल इस बात में भिन्न है कि सूर्य का आकार और उसकी दूरी हमारे यहाँ बहुत कम मानी गयी है।

उपपत्ति : कल्पना करो कि भ पृथ्वी का केन्द्र, प फ पृथ्वी का व्यास, र सूर्य का केन्द्र, त ध सूर्य का व्यास, च मध्यम चन्द्रमा का केन्द्र, चा स्पष्ठ चन्द्रमा का केन्द्र, त प खा और ध फ गा पृथ्वी और सूर्य की सामान्य स्पर्शरेखाएं, तथा थ प का और द फ धा रेखाएं र भ के समानान्तर हैं। यह स्पष्ट है कि खा गा स्पष्ट चन्द्रमा के तल में पृथ्वी की छाया का व्यास है जो भूकेन्द्र से देखने पर मध्यम चन्द्रमा की कक्षा में ख ग के समान होगा। यदि भ का और भ घा बढ़ाये जायं तो मध्यम चन्द्रमा की कक्षा में क, घ विन्दुओं पर मिलेंगे।

चित्र ६६ से स्पष्ट है कि

$$\text{भूछाया का व्यास खा गा} = \text{का घा} - (\text{का खा} + \text{गा घा})$$
$$= \text{प फ} - (\text{का खा} + \text{गा घा})$$

समजातीय त्रिभुज प का खा और प थ त में,

$$\frac{\text{प का}}{\text{प थ}} = \frac{\text{का खा}}{\text{त थ}}$$

इसी तरह $\frac{\text{फ गा}}{\text{फ ध}} = \frac{\text{गा घा}}{\text{द ध}}$

परन्तु प का = फ गा और प थ = फ ध

$$\therefore \frac{\text{का खा}}{\text{त थ}} = \frac{\text{गा घा}}{\text{द ध}} = \frac{\text{का खा} + \text{गा घा}}{\text{त थ} + \text{द ध}} = \frac{\text{का खा} + \text{गा घा}}{\text{त ध} - \text{थ द}}$$

$$\therefore \frac{\text{प का}}{\text{प थ}} = \frac{\text{का खा} + \text{गा घा}}{\text{त ध} - \text{प फ}} \quad \ldots \quad \ldots \quad \ldots(1)$$

समजातीय त्रिभुज का भ घा और क भ घ में

$$\frac{\text{भ घा}}{\text{भ च}} = \frac{\text{का घा}}{\text{क घ}}$$

परन्तु भ चा और भ च पृथ्वी से स्पष्ट और मध्यम चन्द्रमा की दूरियां हैं और यह बताया गया है कि कोणीय वेग कर्ण के वर्ग के प्रतिलोम के अनुसार बदलता है (देखो स्पष्टाधिकार पृष्ठ ८८) इसलिए स्थूल रूप से यह माना जा सकता है कि कोणीय वेग कर्ण के भी प्रतिलोम के अनुसार बदलता है जैसा कि सूर्य-सिद्धान्त के नियम से प्रकट होता है।

इसलिए

$$\frac{\text{भ चा}}{\text{भ च}} = \frac{\text{चंद्रमा की मध्यम गति}}{\text{चंद्रमा की स्पष्ट गति}} = \frac{\text{म}}{\text{स}}$$

$$\therefore \frac{\text{म}}{\text{स}} = \frac{\text{का घा}}{\text{क घ}} = \frac{\text{प फ}}{\text{क घ}}$$

$$\therefore \text{क घ} = \frac{\text{प फ} \times \text{स}}{\text{म}} = \frac{\text{भू व्यास} \times \text{स्पष्टगति}}{\text{मध्यम गति}}$$

इसी क घ का नाम श्लोक ४ में सूची रखा गया है।

समजातीय त्रिभुज भ का खा और भ क ख इत्यादि से सिद्ध हो सकता है कि

$$\frac{\text{भ चा}}{\text{भ च}} = \frac{\text{का खा}}{\text{क ख}} = \frac{\text{गा घा}}{\text{ग घ}} = \frac{\text{का खा} + \text{गा घा}}{\text{क ख} + \text{ग घ}} \quad \ldots(२)$$

समीकरण (१) और (२) में प का और भ चा समान हैं इसलिए

$$\text{प ध} \times \frac{\text{का खा} + \text{गा घा}}{\text{त ध} - \text{प फ}} = \text{भ च} \times \frac{\text{का खा} + \text{गा घ}}{\text{क ख} + \text{ग घ}}$$

या $$\frac{\text{प थ}}{\text{भ च}} = \frac{\text{त ध} - \text{प फ}}{\text{क ख} + \text{ग घ}}$$

परन्तु प थ या भ र पृथ्वी से सूर्य की मध्यम दूरी और भ च पृथ्वी से चन्द्रमा की मध्यम दूरी है जिनका अनुपात $= \frac{४३३१५००}{३२४०००} = १३\cdot३७$ क्योंकि सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार ४३३१५०० योजन सूर्य की कक्षा और ३२४००० योजन चन्द्रमा की कक्षा के विस्तार हैं, तथा $\frac{६५००}{४८०} = १३\cdot५४$, सूर्य और चन्द्रमा के मध्यम व्यासों का अनुपात है जो १३·३७ के प्रायः समान है। इसलिए यह मान लेने में कोई हर्ज नहीं कि

$$\frac{\text{प थ}}{\text{भ च}} = \frac{६५००}{४८०} = \frac{\text{सूर्य का मध्यम व्यास}}{\text{चन्द्रमा का मध्यम व्यास}}$$

$$\therefore \frac{६५००}{४८०} = \frac{\text{तध} - \text{प फ}}{\text{क ख} + \text{ग घ}}$$

$$\text{क ख} + \text{ग घ} = \left(\text{त ध} - \text{प फ}\right) \times \frac{४८०}{६५००}$$

परन्तु क ख + ग घ = क घ − ख ग

= सूची − चंद्रकक्षा में भूछाया

और त ध − प फ = सूर्य का स्पष्ट व्यास — पृथ्वी का व्यास

सूची − चंद्रकक्षा में भूछाया

$$= \left(\text{सूर्य का स्पष्ट व्यास} - \text{पृथ्वी का व्यास}\right) \times \frac{४८०}{६५००}$$

∴ चन्द्रकक्षा में भूछाया

$$= \text{सूची} - \left(\text{सूर्य का स्पष्ट व्यास} - \text{पृथ्वी का व्यास}\right) \times \frac{४८०}{६५००}$$

यही ४, ५ श्लोकों का तात्पर्य है।

ग्रहण कब सम्भव होता है—

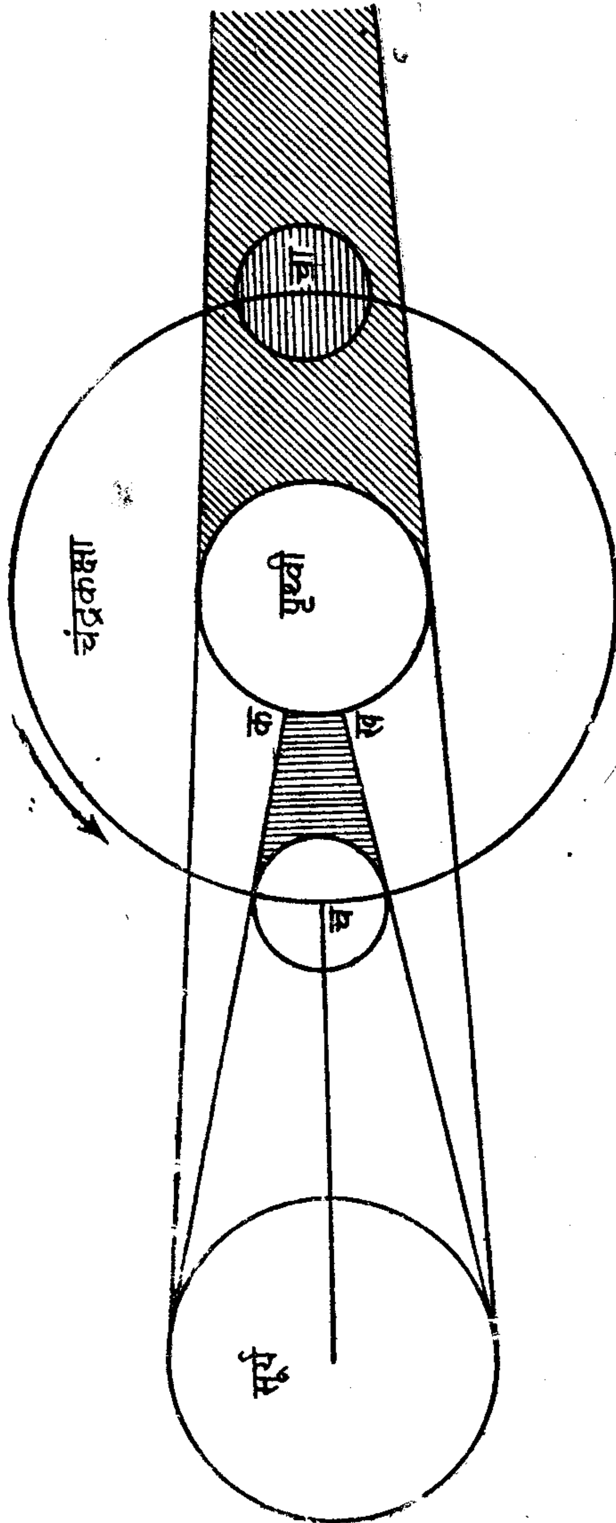
भानोभार्धे महीच्छाया तत्तुल्येऽर्कसमेऽथवा।
शशाङ्कपाते ग्रहणं कियद्भागाधिकोनके ।।६।।
तुल्यौ राश्यादिभिः स्याताममावास्यान्तकालिकौ।
सूर्येन्दू पौर्णमास्यन्ते भार्धे भागादिभिस्समौ ।।७।।

अनुवाद—(६) सूर्य से ६ राशि के अंतर पर पृथ्वी की छाया होती है। यदि सूर्य से इतनी ही दूरी पर अथवा सूर्य के ही समान राशि अंश पर अथवा इनसे कुछ ही कम या अधिक दूरी पर चन्द्रमा का पात हो तो सूर्य और चन्द्रमा में ग्रहण लगता है। (७) सूर्य और चन्द्रमा के राशि अंश कला विकला इत्यादि अमावस्या के अन्त में समान होते हैं और पूर्णमासी के अंत में ठीक ६ राशि के अंतर पर होते हैं।

विज्ञान भाष्य—चित्र ९३ से प्रकट है कि पृथ्वी की छाया का केन्द्र छ या न सूर्य और पृथ्वी के केन्द्रों को मिलाने वाली रेखा र प न पर सदैव रहता है इसलिए पृथ्वी की छाया सूर्य से सदैव १८०° या ६ राशि आगे रहती है। इसलिए जब चन्द्रमा सूर्य से १८०° के लगभग आगे रहता है तभी यह पृथ्वी के छाया में प्रवेश कर सकता है अन्यथा नहीं। परन्तु जब चन्द्रमा सूर्य से १८०° आगे रहता है तब पूर्णिमा का अंत होता है इसलिए पूर्णिमा के अंत काल के लगभग चंद्रग्रहण लग सकता है। इसी प्रकार जब चन्द्रमा सूर्य के सामने आकर उसको ढक लेता है तभी सूर्य ग्रहण लगता है परन्तु यह बात तभी संभव है जब सूर्य और चन्द्रमा के भोगांश प्रायः समान होते हैं अर्थात् जब अमावस्या होती है। इसलिए यह प्रकट है कि चन्द्र-

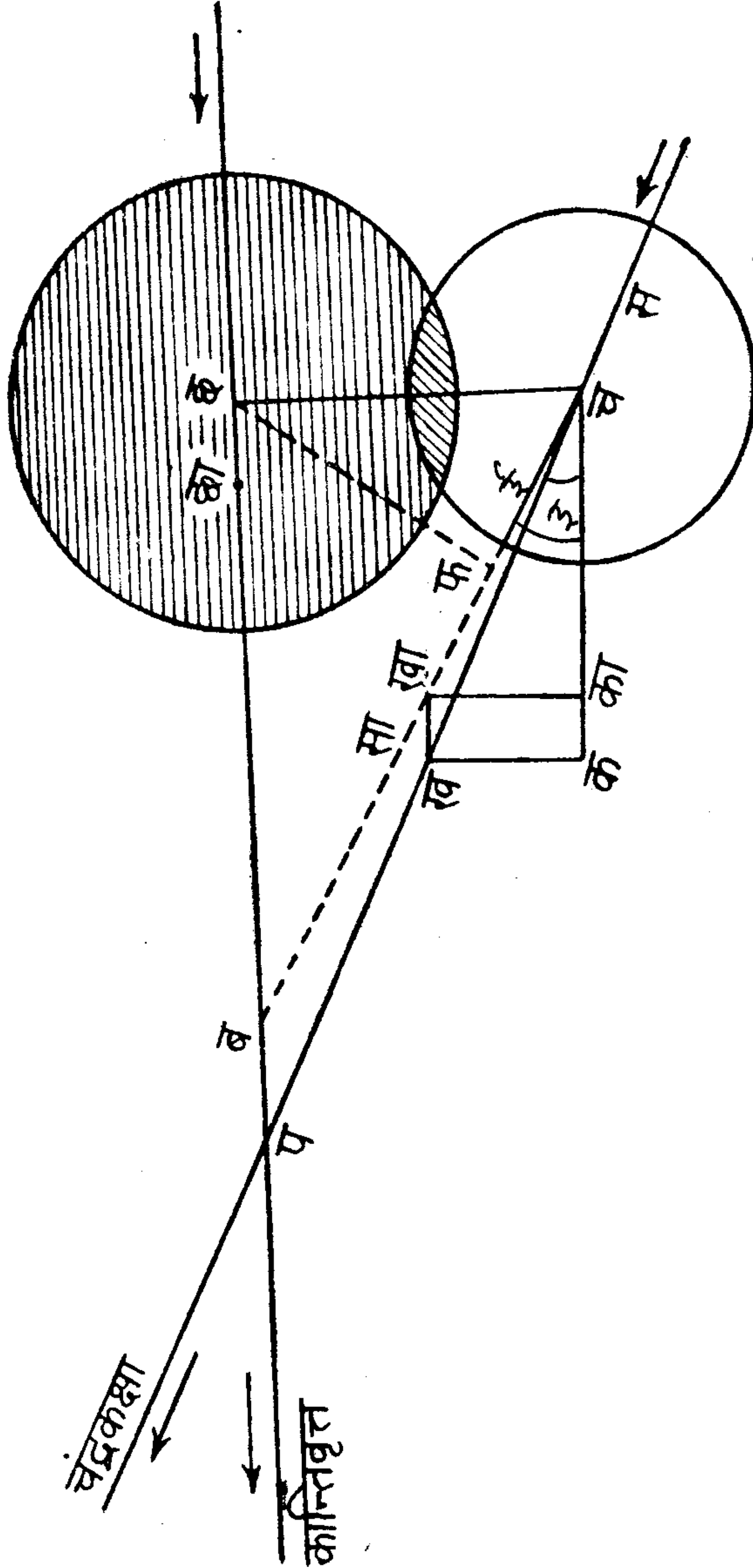
ग्रहण पूर्णिमा के अंत में और सूर्यग्रहण अमावस्या के अंत में लगते हैं। (देखो चित्र ९७)

अब यह प्रश्न हो सकता है कि प्रत्येक पूर्णिमा और अमावस्या के अंत में चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहण क्यों नहीं लगता ? इसका कारण यह है कि चन्द्रमा का कक्षातल क्रान्तिवृत्त के कक्षातल से भिन्न हैं। इन दोनों का परम अंतर ५° के लगभग है जिसे चन्द्रमा का परमविक्षेप या परम शर कहते हैं (देखो मध्यमाधिकार पृ० ७४-७५)। परंतु सूर्य और चन्द्रमा के बिम्बार्ध १६′ के लगभग तथा पृथ्वी की छाया का व्यासार्ध अथवा भूभार्ध ४२′ के लगभग होता है (देखो पहले का उदाहरण) इसलिए जब चन्द्रमा अपनी कक्षा में ऐसी जगह रहता है जो क्रान्तिवृत्त के पास हो और क्रान्तिवृत्त से जिसका अन्तर १६′ + ४२′ = ५८′ के लगभग या इससे भी कम हो तभी ग्रहण हो सकता है। यह स्थिति उसी समय सम्भव है जब अमावस्या या पूर्णमासी के लगभग चन्द्रमा अपनी कक्षा और क्रान्तिवृत्ति के मिलन बिन्दुओं अर्थात् पातों के पास हो। परन्तु चन्द्रमा के पात एक दूसरे से सदैव १८०° के अंतर पर होते हैं इसलिए यह



चित्र ९७

प्रकट है कि जब अमावस्या या पूर्णमासी के समय सूर्य के भोगांश के समान ही या इसके लगभग राहु या केतु किसी का भोगांश हो तभी ग्रहण लग सकता है अन्यथा नहीं। यह बात चित्र ६८ से अच्छी तरह स्पष्ट हो जायगी :—



चित्र ६८

पूर्णिमान्त काल में :— छ = पृथ्वी की छाया का केन्द्र च = चन्द्रमा का केन्द्र
च छ या श = चन्द्रमा का शर (विक्षेप)
म = भूछाया और चन्द्रमा के व्यासार्धों का योग प = चंद्रमा का पात
च क या चा = चन्द्रमा की प्रति घड़ी भोगांश गति
क ख या शा = ,, शर की गति
छ छा या रा = भूछाया अथवा सूर्य की प्रतिघड़ी भोगांश गति

क च रेखा पर क का, छ छा के समान काट लो और का से क ख के समान और समानान्तर का खा खींचो, च खा को मिलाकर खा की ओर क्रान्तिवृत्ति के व बिन्दु तक खींचो। यही च खा व चन्द्रमा का आपेक्षिक मार्ग होगा, यदि यह मान लिया जाय कि भूछाया छ बिन्दु पर स्थिर है।

यदि छ से च ब पर छ फ लम्ब डाला जाय तो यही चन्द्रमा और भूछाया के केन्द्रों की निकटतम दूरी होगी। यदि छ को केन्द्र मानकर म के समान त्रिज्या से वृत्त खींचा जाय जो च ब को दो बिन्दुओं स, सा पर काटे तो यही दो बिन्दु आपेक्षिक मार्ग पर चन्द्रमा के स्पर्श और मोक्षकाल के स्थान होंगे। यदि इन पर बिन्दुओं से च क के समानान्तर रेखाएँ खींची जायँ तो ये चन्द्रमा के यथार्थ मार्ग के जिन बिन्दुओं पर पहुँचेंगी वही स्पर्श और मोक्षकाल के यथार्थ स्थान होंगे।

यदि क च ख कोण को इ और का च खा कोण को ई मान लिया जाय तो

$$\text{स्परे इ} = \frac{\text{कख}}{\text{कच}} = \frac{\text{शा}}{\text{चा}}$$

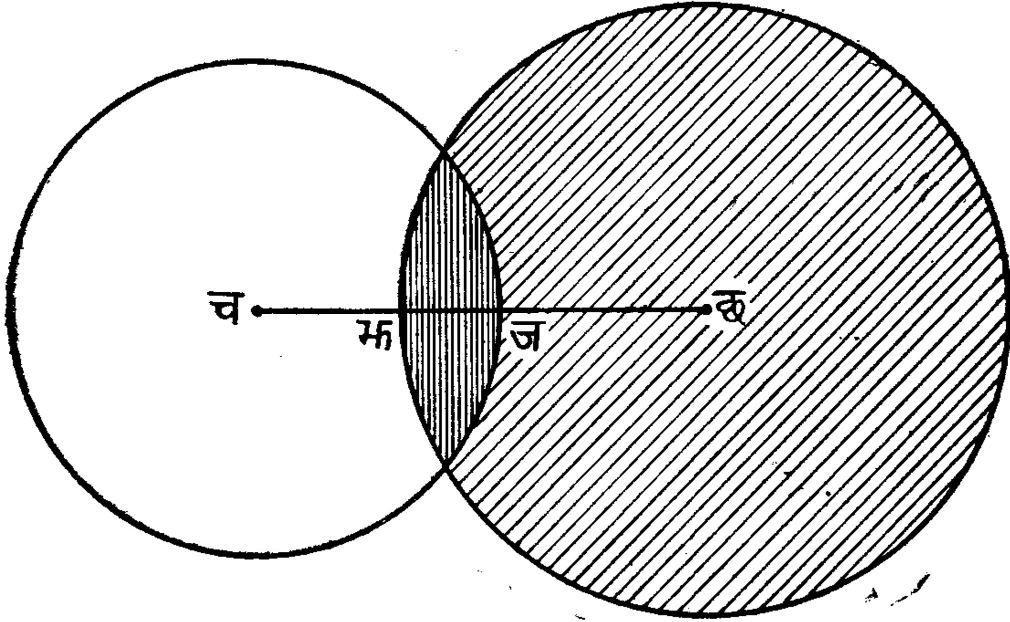
$$\text{स्परे ई} = \frac{\text{का खा}}{\text{का च}} = \frac{\text{क ख}}{\text{का च}} = \frac{\text{शा}}{\text{क च} - \text{क का}} = \frac{\text{शा}}{\text{चा} - \text{रा}}$$

कोण च छ फ और छ च फ का योग समकोण के समान हैं क्योंकि च ब पर छ फ लम्ब खींचा गया है परन्तु छ च फ और फ च क कोणों का योग भी समकोण के समान है क्योंकि चछ छप पर लम्ब है और च क, छ प के समानान्तर है। इसलिए कोण च छ फ=कोण फ च क=ई,

∴ छ फ=च छ कोज्या ई=श कोज्या ई

यदि श कोज्या ई का मान भूछाया और चंद्रमा के व्यासार्धों के योग से अधिक होगा तो ग्रहण नहीं लगेगा।

परन्तु यदि श कोज्या ई, म से छोटा होगा तो ग्रहण अवश्य लगेगा। यदि यह जानना हो कि खंड ग्रहण लगेगा या सर्वग्रास तो दोनों का अंतर निकालना चाहिये। यदि म—श कोज्या ई का मान चन्द्रमा के व्यास से छोटा हो तो समझना चाहिये कि खंड ग्रहण लगेगा और यदि इसका मान चन्द्रमा के व्यास से बड़ा हो तो सर्वग्रास ग्रहण लगेगा क्योंकि चित्र ९९ से प्रकट है कि म—श कोज्या ई=चन्द्रमा का ग्रसित भाग। इसलिए यदि ग्रसित भाग चन्द्रमा के व्यास से कम होगा तो स्पष्ट है कि सर्वग्रास ग्रहण नहीं लग सकता। परन्तु यदि ग्रसित भाग चन्द्रमा के व्यास के अधिक है जो सर्वग्रास ग्रहण अवश्य लगेगा।



चित्र ६६

चित्र ६६ चन्द्रमा और भूछाया का उस समय का चित्र है जब कि चन्द्रमा भूछाया से निकटतम अन्तर पर रहता है अर्थात् जब चन्द्रमा चित्र ६८ के फ बिन्दु पर रहता है और भूछाया छ पर। यह स्पष्ट है कि छ झ भूछाया का व्यासार्ध और च ज चन्द्रमा का व्यासार्ध है। चन्द्रमा का ग्रसित भाग ज झ के समान है। अब देखना है कि ज झ का परिमाण क्या है ?

ज झ = छ झ − छ ज

= छ झ − (च छ − च ज)

= छ झ + च ज − च छ

= म − श कोज्या ई

यदि म − श कोज्या ई शून्य के समान हो अर्थात् यदि म = श कोज्या ई तो ग्रहण नहीं लगेगा क्योंकि चन्द्रमा भूछाया को स्पर्श करता हुआ निकल जायगा। ऐसी दशा में भूछाया के केन्द्र से पात का अन्तर छ प का परिमाण यों निकलेगा—

यह प्रकट है कि कोण च प छ = इ,

$$\therefore \text{स्परे इ} = \frac{\text{च छ}}{\text{छ प}}$$

$$\therefore \text{छ प} = \frac{\text{च छ}}{\text{स्परे इ}} = \frac{\text{श}}{\text{स्परे इ}}$$

परन्तु ऊपर मान लिया गया है कि

म = श कोज्या ई

$$\therefore \text{श} = \frac{\text{म}}{\text{कोज्या ई}}$$

$$\therefore \text{छ प} = \frac{\text{म}}{\text{कोज्या ई} \times \text{स्परे इ}}$$

$$= \text{म छेरे ई कोस्परे इ}$$

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि जब पात से भूछाया का अंतर म छेरे ई कोस्परे इ के समान या अधिक होगा तब ग्रहण नहीं लगेगा और कम होगा तो ग्रहण अवश्य लगेगा। परन्तु ऊपर माना गया है कि

$$\text{स्परे इ} = \frac{\text{शा}}{\text{चा}} = \frac{\text{चन्द्रमा के शर की गति}}{\text{चन्द्रमा के भोगांश की गति}}$$

$$\text{स्परे ई} = \frac{\text{शा}}{\text{चा} - \text{रा}} = \frac{\text{चन्द्रमा के शर की गति}}{\text{सूर्य और चन्द्रमा की गतियों का अंतर}}$$

और म = भूछाया और चन्द्रमा के व्यासार्धों का योग

इसलिए यह तीनों गुणक चन्द्रमा और सूर्य की गतियों पर निर्भर हैं जो अस्थिर हैं इसलिए छ प का मान भी अस्थिर है। यहाँ इ क्रान्तिवृत्त और चन्द्रकक्षा के बीच का कोण है इसलिए वह ज्ञात है परन्तु ई अज्ञात है इसलिए पहले ई को ही जानना चाहिए। ऊपर के सम्बन्ध से स्पष्ट है कि

$$\frac{\text{स्परे ई}}{\text{स्परे इ}} = \frac{\text{शा}}{\text{चा} - \text{रा}} \div \frac{\text{शा}}{\text{चा}} = \frac{\text{चा}}{\text{चा} - \text{रा}}$$

$$\therefore \text{स्परे ई} = \frac{\text{चा}}{\text{चा} - \text{रा}} \times \text{स्परे इ}$$

$\because$ इ, चा और रा के मध्यम मान क्रमशः ५°९′, ७९०′३५″ और ५९′८″ है। इसलिए

$$\frac{\text{चा}}{\text{चा} - \text{रा}} = \frac{\text{७९०′३५″}}{\text{७९०′२५′} - \text{५९′८″}} = \frac{\text{७९०′३५″}}{\text{७३१′२७″}} = \text{१·०८०८४}$$

$$\therefore \text{स्परे ई} = \text{१·०८०८४} \times \text{स्परे ५°९′}$$

$$= \text{१·०८०८४} \times \text{·०९०१}$$

$$= \text{·०९७४}$$

$$\therefore \text{ई} = \text{५°३४′}$$

$$\therefore \text{छ प} = \text{म छेरे ई को स्परे इ}$$

$$= \frac{\text{म}}{\text{कोज्या ई स्परे इ}}$$

$$= \frac{\text{म}}{\text{कोज्या } ५^\circ ३४' \text{ स्परे } ५^\circ ९'}$$

परन्तु म = भूछाया और चन्द्रमा के व्यासार्धों का योग

∴ म का मध्यम मान

= भूछाया का मध्यम व्यासार्ध + चन्द्रमा का मध्यम व्यासार्ध

भूछाया का मध्यम व्यासार्ध = चन्द्रमा का मध्यम लंबन + सूर्य का मध्यम लंबन
— सूर्य का मध्यम व्यासार्ध

$= ५७'११'' + ८''·५ - १६'१''$

$= ४१'१८''·५$

इसका $\frac{१}{५०}$ और बढ़ाने पर भूछाया का मध्यम व्यासार्ध

$= ४१'१८''·५ + ४९''·६$

$= ४२'८'' = ४२'·१३५$

और चन्द्रमा का मध्यम व्यासार्ध $= १५'३५'' = १५'·५८३$

∴ $\text{म} = ४२'·१३५ + १५'·५८३ = ५७'·७२$

$$\therefore \text{छ प} = \frac{५७'·७२}{\text{कोज्या } ५^\circ ३४' \text{ स्परे } ५^\circ ९'}$$

∴ लरि (छ प) = लरि ५७'·७२ — लरि कोज्या ५°३४' — लरि स्परे ५°९'

$= १·७६१४ - ९·९९७९ - ८·९५४६$

$= २·८०८९$

∴ छ प $= ६४४' = १०^\circ ४४'$

यह चन्द्रग्रहण की मध्यम सीमा है। इसी प्रकार यह जाना जा सकता है कि छ प का महत्तम मान १२°३६' और लघुतम मान ९° है। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि छ प १२°३६' से अधिक हो तो चन्द्र ग्रहण असम्भव है और ९° से कम हो तो ग्रहण अवश्य पड़ेगा परन्तु यदि छ प ९° से अधिक और १२°३६' से कम हो तो ग्रहण सम्भव हो सकता है, जिसका निश्चय पूर्णिमान्तकालिक सूर्य और चन्द्रमा के लंबन तथा इनके स्पष्ट बिम्बार्ध से करना चाहिए।

यह पहले ही बतला दिया गया है कि छ प भूछाया के केन्द्र से पात की दूरी है परन्तु भूछाया का केन्द्र सूर्य के केन्द्र से १८०° आगे रहता है और चन्द्रमा के दोनों पातों का अन्तर भी १८०° होता है इसलिए यदि पूर्णिमान्तकालिक सूर्य से चन्द्रमा के किसी पात का अन्तर १२°३६' से अधिक हो तो ग्रहण असम्भव है, ९° से कम

हो तो ग्रहण अवश्य पड़ेगा और इन दोनों के बीच में हो तो सम्भव है ग्रहण लगे। इसलिए चन्द्रग्रहण की महत्तम सीमा १२°३६′ और लघुत्तम सीमा ६° होती है।

सूर्यग्रहण की महत्तम और लघुत्तम सीमा—जिस तरह चित्र ६३ से सिद्ध होता है कि जब चन्द्रमा पृथ्वी की छाया स ह में आ जाता है तब चन्द्र-ग्रहण पड़ता है उसी तरह उसी चित्र से यह भी सिद्ध होता है कि जब चन्द्रमा अमावस्या के अंत में पृथ्वी की छाया बनानेवाली स्पर्श-रेखाओं के सा, हा विन्दुओं के बीच में आ जाता है तब पृथ्वी पर कहीं न कहीं सूर्य-ग्रहण अवश्य देख पड़ेगा क्योंकि ऐसी स्थिति में चन्द्रमा की छाया पृथ्वी के किसी न किसी स्थान पर अवश्य पड़ेगी। जिस प्रकार स ह के व्यासार्ध के परिमाण से चन्द्र-ग्रहण की सीमा जानी जा सकती है उसी प्रकार सा हा के व्यासार्ध के परिमाण से सूर्य-ग्रहण की सीमा जानी जा सकती है।

∠सा प छा = ∠प न पा + ∠प सा पा
= ∠रि प र + ∠प सा पा
= सूर्य की त्रिज्या − सूर्य का लंबन + चन्द्रमा का लंबन

∴ ∠सा प छा का मध्यम मान
= १६′१″ − ८″·५ + ५७′११″
= ७३′३″.५
= ७३′·०५८

सूर्य-ग्रहण के संबंध में भी सूत्र छ प = म छेरे ई कोस्परे इ, काम दे सकता है।
यहां म = ∠सा प छा + चन्द्रमा का व्यासार्ध
= ७३′.०५८ + १५′.५८३ = ८८′.६४

∴ छ प = ८८′.६४ / (कोज्या ५°३४′ स्परे ५°९′)

∴ लरि छ प = लरि ८८′.६४ − लरि कोज्या ५°३४′ − लरि स्परे ५°९′
= १.९४७६ − ९.९९७९ − ८.९५४६
= २.९९५१
∴ छ प = ९८८′.६
= १६°२८′.६

यह सूर्य-ग्रहण की मध्यम सीमा है। इसी प्रकार यह जाना जा सकता है कि सूर्य-ग्रहण के संबंध में छ प का महत्तम मान १८°.५ और लघुत्तम मान १५°.३ है। अर्थात् यदि अमावस्या के अंत में सूर्य से चंद्रमा के किसी पात का अंतर १५°·३ से कम हो तो समझना चाहिए कि सूर्य-ग्रहण अवश्य पड़ेगा और यदि यह अंतर १८°·५ से अधिक है तो सूर्य-ग्रहण सम्भव नहीं है। परन्तु यदि यह अंतर इन दोनों के बीच

में हो अर्थात् १५°.३ से अधिक और १८°.५ से कम हो तो सम्भव है कि ग्रहण लगे जिसका निश्चय अमावस्या के अंतकाल के सूर्य, चंद्रमा के लंबन और उनकी स्पष्ट गतियों के द्वारा करना चाहिये।

चन्द्र-ग्रहण उन सब स्थानों में देख पड़ता है जहां ग्रसित चंद्रमा का उदय हो चुकता है। परन्तु सूर्य-ग्रहण का देखना उन सब स्थानों से सम्भव नहीं जहाँ सूर्य का उदय हुआ रहता है क्योंकि चन्द्रमा के लंबन तथा इसकी छाया के बहुत पतली होने के कारण यह थोड़े ही स्थानों से देखा जा सकता है जिसका निश्चय करना सहज नहीं है।

पर्वान्त काल में सूर्य, चन्द्रमा और पात को स्पष्ट करने की रीति—

गतैष्यपर्वनाडीनां स्वफलेनोन संयुतौ।
समलिप्तौ भवेतां तौ पातस्तात्कालिकोऽन्यथा ॥८॥

अनुवाद—(८) जिस समय के सूर्य और चन्द्रमा स्पष्ट किये गये हों उस समय से पर्वान्त काल अर्थात् पूर्णमासी या अमावस्या के अंत काल का जो अंतर हो उतने समय की सूर्य और चन्द्रमा की स्पष्ट गतियां जानकर उनको सूर्य और चंद्रमा के स्पष्ट भोगांशों से क्रमशः घटाने या जोड़ने से जो आवें उन्हीं को पर्वान्तकालिक स्पष्ट सूर्य और स्पष्ट चन्द्रमा समझना चाहिये। यदि उपर्युक्त समय पर्वान्त काल से पीछे हो तो घटाना चाहिये और पहले हो तो जोड़ना चाहिये। परन्तु पात का स्पष्ट स्थान जानने के लिए इसकी विलोम क्रिया करनी चाहिये अर्थात् यदि उपर्युक्त समय पर्वान्त काल से पीछे हो तो उतने समय की पात की गति बढ़ानी चाहिये और पहले हो तो घटानी चाहिये क्योंकि पात की गति उलटी होती है।

विज्ञान भाष्य—जैसे मध्यमाधिकार ६७वें श्लोक में यह बतलाया गया है कि किसी समय का मध्यम ग्रह दिया हुआ हो तो किसी अन्य समय का मध्यम ग्रह कैसे जानना चाहिये उसी प्रकार यहाँ बतलाया जाता है कि किसी समय के सूर्य चन्द्रमा और राहु के स्पष्ट भोगांश ज्ञात हों तो पर्वान्त काल के सूर्य और चन्द्रमा और राहु के स्पष्ट भोगांश कैसे जानने चाहिए। इसकी आवश्यकता इसलिए पड़ती है कि ग्रहण की गणना करने के लिए पूर्णमासी और अमावस्या के अन्तकालों के सूर्य, चन्द्रमा और राहु के स्पष्ट स्थानों तथा उनकी गतियों से ही काम लिया जाता है जैसा कि ऊपर की बतलायी गयी रीतियों से स्वयम् प्रकट होता है।

ग्रहण का कारण—

छादको भास्करस्येन्दुरधस्ताद् घनवद् भवेत्।
भूच्छायां प्राङ्मुखश्चन्द्रो विशत्यस्य भवेदसौ ॥९॥

अनुवाद—(९) सूर्य से नीचे रहने के कारण चन्द्रमा उसको बादल की तरह ढक लेता है। पूर्व की ओर भ्रमण करता हुआ चन्द्रमा भू-छाया में प्रवेश कर जाता है इसलिए चन्द्रमा को भू-छाया ढक लेती है। इसलिये सूर्य-ग्रहण में चंद्रमा का छादक होती है।

विज्ञान भाष्य—यह बात पहले ही बतलायी जा चुकी है इसलिए यहाँ दुहराने की आवश्यकता नहीं है।

ग्रास का परिमाण—

तात्कालिकेन्दुविक्षेपं छाद्यच्छादकमानयोः।
योगार्धात्प्रोज्झ्य यच्छेश तमश्छन्नं तदुच्यते ॥१०॥

अनुवाद—(१०) पर्वान्तकालिक चन्द्रमा के विक्षेप अथवा शर को छाद्य और छादक के व्यासार्धों के योग से घटा दो, जितना शेष रहे वही ग्रास का परिमाण होगा।

विज्ञान भाष्य—यह चित्र ६६ की व्याख्या से स्पष्ट है। यह चित्र सूर्य और चन्द्रमा दोनों के लिए समान लागू है। चंद्र-ग्रहण में छ छादक और च छाद्य है और सूर्य-ग्रहण में यदि छ सूर्य बिम्ब मान लिया जाय तो छ छाद्य और च छादक हो जायगा।

सर्वग्रास ग्रहण और खंड ग्रहण की अवस्था—

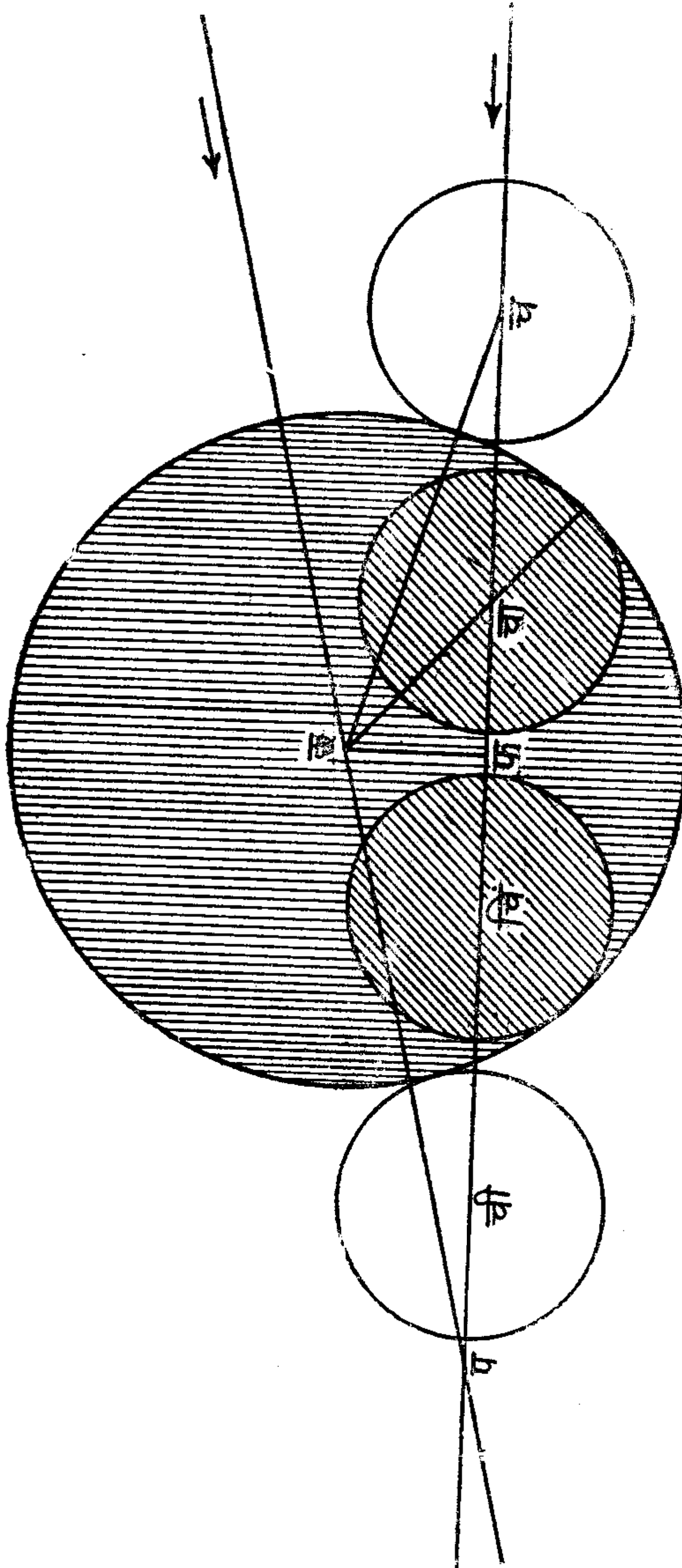
ग्राह्यमानाधिके तस्मिन्सकलं न्यूनमन्यथा।
योगार्धादधिके न स्याद्विक्षेपे ग्रास संभवः ॥११॥

अनुवाद—(११) यदि छाद्य के बिम्बमान से ग्रास का परिमाण अधिक हो तो सम्पूर्ण ग्रहण अर्थात् सर्वग्रास ग्रहण और कम हो तो खंड ग्रहण लगता है। परन्तु यदि चन्द्रमा का विक्षेप छाद्य और छादक के व्यासार्धों के योग से अधिक हो तो ग्रहण नहीं हो सकता।

विज्ञान भाष्य—यह भी चित्र ६६ की व्याख्या में समझा दिया गया है। वहाँ जो कुछ चन्द्रमा के विषय में कहा गया है वही सूर्य के सम्बन्ध में भी लागू हो सकता है।

स्थित्यर्ध और विमर्दार्ध जानने की रीति

ग्राह्यग्राहकसंयोगवियोगौ दलितौ पृथक्।
विक्षेपवर्गहीनाभ्यां तद्वर्गाभ्यामुभे पदे ॥१२॥
षष्ठ्या संगुण्य सूर्येन्द्वोः भुक्त्यन्तरविभाजिते।
स्यातां स्थितिविमर्दार्धे नाडिकादिफले तयोः ॥१३॥



चित्र २००

अनुवाद—(१२) छाद्य और छादक के बिम्बों को जोड़कर और घटाकर प्रत्येक का आधा करके अलग-अलग रखो; प्रत्येक के वर्ग से चंद्रमा के विक्षेप के वर्ग को घटाकर शेष का वर्गमूल निकालो। (१३) प्रत्येक के वर्गमूल को ६० से गुणा करके गुणनफल को सूर्य और चन्द्रमा की स्पष्ट गतियों के अन्तर से भाग दे दो। भाग देने से जो लब्धि आवेगी वह स्थित्यर्ध और विमर्दार्ध होंगे।

विज्ञान भाष्य—ग्रहण जितने समय तक रहता है उसके आधे समय को स्थित्यर्ध और सर्वग्रास ग्रहण जितने समय तक रहता है उसके आधे को विमर्दार्ध कहते हैं। अथवा स्पर्श काल से ग्रहण के मध्यकाल तक के समय को स्थित्यर्ध और सम्मीलन काल से मध्यकाल तक के समय को विमर्दार्ध कहते हैं। स्थित्यर्ध का दूना करने से जो आता है वह कुल ग्रहण काल है और विमर्दार्ध का दूना कर देने से जो आता है वह सर्वग्रास ग्रहण का समय है।

चित्र १०० में छ प क्रान्तिवृत्त, च प चंद्र कक्षा, प चन्द्रमा का पात, छ भूछाया का केन्द्र, च स्पर्श काल के समय चन्द्रमा का केन्द्र, चा सम्मीलन-काल के समय चन्द्रमा का केन्द्र, चि उन्मीलन के समय चन्द्रमा का केन्द्र, ची मोक्षकाल के समय चन्द्रमा का केन्द्र और फ ग्रहण के मध्यकाल के समय चन्द्रमा का केन्द्र है। यहाँ सुविधा के लिए भूछाया को स्थिर मान लिया गया है इसलिए चन्द्रमा की गति अपनी कक्षा में सापेक्ष है जैसा कि चित्र ९८ में च ब रेखा से दिखलाया गया है। इसलिए यह सिद्ध है कि चन्द्रमा जिस गति से च रेखा पर जाता हुआ दिखलाया गया है वह चन्द्रमा और सूर्य की स्पष्ट गतियों का अन्तर है। यदि यह मान लिया जाय कि छ प च एक समतल त्रिभुज (plane triangle) है तो कोई हर्ज न होगा। ऐसी दशा में जब कि च फ छ कोण समकोण हो और छ फ पर्वान्तकालिक चन्द्रमा का शर हो तब

$$\text{च फ} = \sqrt{\text{च छ}^2 - \text{छ फ}^2}$$

$$= \sqrt{\left(\frac{\text{चंद्रबिम्ब} + \text{भूभाबिम्ब}}{2}\right)^2 - (\text{चंद्रशर})^2}$$

यदि चन्द्रमा और सूर्य की स्पष्ट दैनिक गतियों का अंतर चा—रा हो तो जितनी देर में चन्द्रमा इसी गति से च फ मार्ग चलेगा वह इस प्रकार ज्ञात होगा—

जब चन्द्रमा चा—रा भाग ६० घड़ियों में चलता है तब च फ भाग

$\frac{60 \times \text{च फ}}{\text{चा-रा}}$ घड़ियों में चलेगा।

यदि च फ की जगह इसका ऊपर बतलायी गयी रीति से जाना हुआ मान रखा जाय तो स्थित्यर्ध काल यह होगा—

$$\frac{६०}{\text{चा} - \text{रा}} \times \sqrt{\left[\left(\frac{\text{चंद्रबिम्ब} + \text{भूभाबिम्ब}}{२}\right)^२ - (\text{चन्द्रशर})^२\right]}$$

यदि $\frac{\text{चन्द्रबिम्ब} + \text{भूभाबिम्ब}}{२}$ को मानैक्यखंड लिखा जाय और

इस सूत्र को सरल किया जाय तो यह रूप होगा—

$$\text{स्थित्यर्ध} = \frac{६० \text{ घड़ी} \times \sqrt{(\text{मानैक्यखंड} + \text{शर})(\text{मानैक्यखंड} - \text{शर})}}{\text{चन्द्र और सूर्य की स्पष्ट दैनिक गतियों का अन्तर}}$$

इसी प्रकार

$$\text{चा फ} = \sqrt{\text{चा छ}^२ - \text{छ फ}^२}$$

$$= \sqrt{\left[\left(\frac{\text{भूभाबिम्ब} - \text{चंद्रबिम्ब}}{२}\right)^२ - (\text{चन्द्रशर})^२\right]}$$

इसलिए विमर्दार्ध काल

$$= \frac{६०}{\text{चा} - \text{रा}} \times \sqrt{\left[\left(\frac{\text{भूभाबिम्ब} - \text{चंद्रबिम्ब}}{२}\right)^२ - \left(\text{चंद्रशर}\right)^२\right]}$$

यदि $\frac{\text{भूभाबिम्ब} - \text{चंद्रबिम्ब}}{२}$ को मानान्तरखंड लिखा जाय और इस सूत्र को

सरल किया जाय तो

$$\text{विमर्दार्ध} = \frac{६० \text{ घड़ी} \times \sqrt{(\text{मानान्तर खंड} + \text{शर})(\text{मानान्तर खंड} - \text{शर})}}{\text{चंद्र और सूर्य की स्पष्ट दैनिक गतियों का अन्तर}}$$

इनके सरल करने पर जो समय आवेगा वह घड़ियों में होगा। परन्तु यह स्थूल होगा क्योंकि इसकी गणना में सूर्य और चन्द्रमा को स्पष्ट दैनिक गतियों का अन्तर तथा पर्वान्तिकालीन चन्द्रशर लिये गये हैं जो स्पर्श या सम्मीलनकाल की स्पष्ट गतियों और शर से बहुत भिन्न होंगे। इसलिए आवश्यक यह है कि पर्वान्तिकाल के कुछ पहले और पीछे की प्रत्येक घड़ी या घंटे की स्पष्ट गतियों का अन्तर और चन्द्र-शर निकाल कर गणना की जाय। यदि ऊपर के नियम से ही स्थित्यर्ध और विमर्दार्ध काल जाना जावें तो चाहिए कि पर्वान्त काल से इतना पहले के सूर्य, चन्द्रमा, राहु और चन्द्र शर के स्पष्ट स्थान निकाल कर इनसे फिर स्थित्यर्ध काल और निमर्दार्ध काल जाना जावे। ये पहले की अपेक्षा अधिक शुद्ध होंगे। इसी प्रकार कई बार स्थित्यर्ध काल और विमर्दार्ध काल निकाले जायँ तो अंत में ऐसा फल मिलेगा जो फिर भिन्न न हो सकेगा। यही शुद्ध स्थित्यर्धकाल और विमर्दार्ध काल होंगे ऐसी क्रिया को असकृतकर्म कहते हैं। इसी की रीति अगले दो श्लोकों में बतलायी गयी है।

असकृत्कर्म से स्थित्यर्ध और विमर्दार्ध काल जानना—

स्थित्यर्धनाडिकाभ्यस्ता गतयष्षष्टिभाजिताः ।
लिप्तादि प्रग्रहे शोध्यं मोक्षे देयं पुनः पुनः ।।१४।।
तद्विक्षेपैः स्थितिदलं विमर्दार्धं तथाऽसकृत् ।
संसाध्यमन्यथा पाते तल्लिप्तादिफलं स्वकम् ।।१५।।

अनुवाद—(१४) सूर्य, चन्द्रमा और पातकी दैनिक गतियों को स्थित्यर्ध काल से (जो घड़ियों में होता है) गुणा करके साठ से भाग देने पर यह ज्ञात होता है कि सूर्य-चन्द्रमा और पात स्थित्यर्ध काल में कितना चलते हैं। इन परिमाणों को क्रमशः पर्वान्तकालीन सूर्य और चन्द्रमा के भोगांशों से घटा देने पर सूर्य और चन्द्रमा के स्पर्शकालीन भोगांश आ जाते हैं और जोड़ देने पर इनके मोक्षकालीन भोगांश आ जाते हैं। (१५) परन्तु स्पर्शकालीन पात का भोगांश जानने के लिए स्थित्यर्ध काल में पात जितना चलता है उसको पर्वान्तकालीन पात के भोगांश में जोड़ना चाहिए और मोक्षकालीन पात का भोगांश जानने के लिए उसको पर्वान्तकालीन पात के भोगांश से घटाना चाहिए क्योंकि पात की गति उलटी होती है। इस प्रकार स्पर्श-कालीन सूर्य चन्द्रमा और पात के भोगांश से चन्द्रमा का शर और सूर्य चन्द्रमा की स्पष्ट गतियों को जान कर स्थित्यर्ध और विमर्दार्ध काल फिर निकाले। इसी प्रकार कई बार के असकृत् कर्म से स्पर्श और मोक्ष काल का ज्ञान सूक्ष्मतापूर्वक हो सकता है। इसी प्रकार सम्मीलन और उन्मीलन काल की शुद्धता भी जाननी चाहिए।

विज्ञान भाष्य—इसकी उपपत्ति पिछले पृष्ट में बतलायी जा चुकी है इसलिए अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है।

स्पर्श और मोक्षकाल तथा सम्मीलन और उन्मीलन जानने की रीति—

स्फुटतिथ्यवसाने तु मध्यग्रहणमादिशेत् ।
स्थित्यर्धनाडिकाहीने ग्रासो मोक्षस्तुसंयुते ।।१६।।
तद्वदेव विमर्दार्ध नाडिकाहीन संयुते ।
निमीलनोन्मीलनाख्ये भवेतां सकल ग्रहे ।।१७।।

अनुवाद—(१६) स्पष्ट तिथि के अंत में अर्थात् पूर्णिमा और अमावस्या के अन्त में ग्रहण का मध्यकाल होता है। इस समय से स्थित्यर्धकाल घटा देने पर स्पर्शकाल का समय आता है और जोड़ देने पर मोक्षकाल का समय आता है। (१७) इसी प्रकार ग्रहण के मध्यकाल मे विमर्दार्ध काल घटा देने पर सर्वग्रास ग्रहण के आरम्भ काल अर्थात् सम्मीलन काल का पता लग जाता है और जोड़ देने पर उन्मीलन काल अर्थात् सर्वग्रास ग्रहण के अंतकाल का पता लग जाता है।

विज्ञान भाष्य—यह स्वयम् इतना स्पष्ट है कि अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है।

अब यह भी बतला देना आवश्यक है कि अन्य प्रथा के अनुसार ग्रहण का मध्यकाल, स्पर्शकाल, मोक्षकाल, सम्मीलनकाल और उन्मीलनकाल कैसे जाने जाते हैं ?

चित्र ९८ में दिखलाया गया है कि पूर्णमासी के अन्त में चन्द्रमा और भूछाया के भोगांश समान होते हैं। इसलिए घ घड़ी उपरान्त चन्द्रमा और भूछाया के भोगांशों का अन्तर घ × (चा − रा) के समान होगा जब कि चा और रा चन्द्रमा और सूर्य अथवा भूछाया की प्रतिघड़ी की भोगांश गति हो। यदि चन्द्रमा के शर की गति प्रतिघड़ी शा हो तो घ घड़ी के उपरान्त इसके शर में घ × शा के समान परिवर्तन हो जायगा। यदि पूर्णिमान्तकाल में चन्द्रमा का शर श हो तो घ घड़ी के उपरान्त इसका शर श − घ × शा होगा। इसलिए घ घड़ी के उपरान्त चन्द्रमा और भूछाया के केन्द्रों का अन्तर मा यह होगा :—

$$\text{मा} = \sqrt{[\text{घ}\ (\text{चा} - \text{रा})\ ]^2 + (\text{श} - \text{घ} \times \text{शा})^2}$$

क्योंकि चन्द्रमा और भूछाया के भोगांशों का अन्तर भुज, चन्द्रमा का शर कोटि और दोनों के केन्द्रों का अन्तर कर्ण के समान होगा जैसा कि स्पर्शकाल और सम्मीलनकाल के समय की दशा चित्र १०० में दिखलायी गयी है। इस समीकरण के दोनों पक्षों का वर्ग कर देने से

$$\text{मा}^2 = [\text{घ}\ (\text{चा} - \text{रा})\ ]^2 + (\text{श} - \text{घ. शा})^2$$
$$= (\text{चा} - \text{रा})^2\ \text{घ}^2 + \text{श}^2 - 2\ \text{श. शा. घ} + \text{घ}^2\ \text{शा}^2$$
$$= [\ (\text{चा} - \text{रा})^2 + \text{शा}^2\ ]\ \text{घ}^2 - 2\ \text{श. शा. घ} + \text{श}^2$$
$$\text{या}\ [\ (\text{चा} - \text{रा})^2 + \text{शा}^2\ ]\ \text{घ}^2 - 2\ \text{श. शा. घ} + \text{श}^2 - \text{मा}^2 = 0$$

यह घ का वर्ग समीकरण है जिससे घ के दो मान ज्ञात होते हैं। इससे सिद्ध होता है कि पूर्णिमान्त के पहले और पीछे २ बार चन्द्रमा भूछाया से समान अन्तर पर आता है। यदि मा के स्थान में मानैक्य खंड का मान रखकर घ के दो मान निकाले जायँ तो यह स्पर्शकाल और मोक्षकाल के समय होंगे। यदि यह दो मान काल्पनिक हों तो समझना चाहिए कि ग्रहण नहीं लगेगा, यदि समान हों तो समझना चाहिए कि ग्रहण का आरम्भ और अन्त एकसाथ होगा अर्थात् चन्द्रमा भू भा को केवल स्पर्श करता हुआ निकल जायगा परन्तु ग्रहण नहीं लगेगा।

यदि मा के स्थान में मानान्तर खंड का मान रखकर घ के दो मान निकाले जायँ तो सर्वग्रास ग्रहण के आरम्भ काल और अन्त काल अथवा सम्मीलन और

उन्मीलन काल के समय ज्ञात होंगे। यदि यह दो मान काल्पनिक हों तो समझना चाहिए कि सर्वग्रास ग्रहण नहीं लगेगा और यदि दोनों मान समान हों तो समझना चाहिए कि सर्वग्रास ग्रहण का आरम्भ और अन्त एकसाथ ही होगा अर्थात् जैसे ही चन्द्रमा का पूरा बिम्ब छाया में आवेगा वैसे ही छाया के बाहर भी होने लगेगा।

इस समीकरण से घ के दोनों मान नीचे लिखे सूत्र के अनुसार होंगे :—

$$\text{घ} = \frac{२\ \text{श. शा.} \pm \sqrt{४\text{श}^२.\ \text{शा}^२ - ४\left[(\text{चा} - \text{रा})^२ + \text{शा}^२\right]\left[\text{श}^२ - \text{मा}^२\right]}}{२\left[(\text{चा} - \text{रा})^२ + \text{शा}^२\right]}$$

$$= \frac{\text{श. शा.} \pm \sqrt{\text{श}^२.\ \text{शा}^२ \left[(\text{चा} - \text{रा})^२ + \text{शा}^२\right]\left[\text{श}^२ - \text{मा}^२\right]}}{(\text{चा} - \text{रा})^२ + \text{शा}^२}$$

घ के इन दोनों मानों के योग का आधा

$$= \frac{\text{श. शा}}{(\text{चा} - \text{रा})^२ + \text{शा}^२}$$

यही ग्रहण का मध्यकाल है, अर्थात् पूर्णिमान्त के इतने ही समय उपरान्त ग्रहण का मध्य होता है।

सूर्य, चन्द्रमा के विषुवांश और क्रान्ति से भी ग्रहण का स्पर्श काल, सम्मीलन-काल इत्यादि जानने की रीति है जो उपर्युक्त रीति से बहुत कुछ मिलती-जुलती है परन्तु वह विस्तार भय से यहां नहीं लिखी जायगी।

यहां यह बतला देना आवश्यक समझ पड़ता है कि सूर्य-सिद्धान्त में स्पर्श काल और मोक्ष काल इत्यादि के जानने का जो नियम दिया गया है उससे सिद्ध होता है कि ग्रहण का मध्य काल पूर्णिमा के अन्त में होता है परन्तु ऊपर बतलायी गयी दूसरी रीति में ग्रहण का मध्य काल पूर्णिमान्त के कुछ उपरान्त आता है। दूसरी रीति बिलकुल शुद्ध है और पहली कुछ स्थूल। इसका कारण चित्र ६८ से स्पष्ट हो जाता है। ग्रहण का मध्यकाल उस समय होता है जिस समय चन्द्रमा भूभा से निकटतम अन्तर अर्थात् फ पर होता है जब कि छ फ चन्द्रमा की कक्षा पर लम्ब होता है। ऐसी दशा में चन्द्रमा का शर पूर्णिमान्त काल के शर से कुछ छोटा होता है और चन्द्रमा भी पूर्णिमान्त काल के स्थान च से कुछ आगे बढ़ा रहता है।

यह जानना कि ग्रास का परिमाण स्पर्शकाल से किस समय पर कितना होता है—

इष्टनाडीविहीनेन स्थित्यर्धेनार्कचन्द्रयोः।
भुक्त्यन्तरं समाहन्यात् षष्ठ्याप्ताः कोटिलिप्तिकाः ॥१८॥
भानोर्ग्रहे कोटिलिप्ता मध्यस्थित्यर्ध सङ्गुणाः।
स्फुटस्थित्यर्धसम्भक्ताः स्फुटाः कोटिकलाः स्मृताः ॥१९॥

क्षेपो भुजस्तयोर्वर्गयुतेर्मूलं श्रव: स्मृत: ।
मानक्योगार्धत: प्रोज्झ्य ग्रासस्तात्कालिको भवेत् ।।२०।।

अनुवाद—(१८) ग्रहण के आरम्भ काल से कुछ घड़ी पीछे परन्तु मध्य ग्रहण के पहले ग्रास का परिमाण कितना होता है यह जानने के लिए इष्ट घड़ी को स्थित्यर्धकाल से घटाकर शेष को चन्द्रमा और सूर्य की दैनिक स्पष्ट गतियों के अन्तर से गुणा करके गुणनफल को ६० से भाग दे दो। इस भागफल को कोटिकला कहते हैं जब कि दैनिक गतियां कलाओं में प्रकट की गयी हों। (१६) सूर्य ग्रहण का ग्रास-मान जानने के लिए ऊपर की रीति से निकाली गयी कोटिकला को मध्य स्थित्यर्ध से गुणा करके गुणनफल को स्पष्ट स्थित्यर्ध से भाग देने पर जो आता है उसे स्पष्ट कोटिकला कहते हैं। (२०) उस समय के चन्द्रमा के शर को भुज मानकर इसके वर्ग को कोटिकला के वर्ग में जोड़कर योगफल का वर्गमूल निकालने से जो कर्ण आये उसे मानैक्य खंड से घटाने पर जो आवे वही तात्कालिक ग्रास होता है।

विज्ञान भाष्य—इस नियम की उपपत्ति चित्र ६८, ६६ और १०० के संबंध में अच्छी तरह समझायी गयी है। १६-१७ श्लोकों के विज्ञान भाष्य में जो सूत्र $\text{मा} = \sqrt{[\text{घ}(\text{चा} - \text{रा})]^{2} + (\text{श} - \text{घ} \times \text{शा})^{2}}$ स्थापित किया गया है वह इसी नियम का दूसरा रूप है। इस सूत्र में घ पर्वान्तिकाल से पहले या पीछे का समय है परन्तु नियम में स्पर्शकाल के उपरान्त का इष्टकाल माना गया है इसलिए स्थित्यर्ध से इष्टकाल घटाने का आदेश है। ऐसा करने से जो आवे उसको घ की जगह रखकर सूत्र को सरल करने पर मा का जो परिमाण आवेगा उसी को मानैक्य खंड से घटाने पर तात्कालिक ग्रास का परिमाण जाना जा सकता है। यहां घ (चा − रा) ही कोटिलिप्ता है क्योंकि चा − रा सूर्य और चन्द्रमा की प्रति घड़ी की गतियों का अन्तर है। यदि दैनिक स्पष्ट गतियों का अन्तर दिया हुआ हो तो इसको ६० से भाग देना पड़ता है जैसा कि नियम में बतलाया गया है। श − घ × शा तात्कालिक शर है और मा भूभा तथा चन्द्रमा के केन्द्रों का तात्कालिक अन्तर है। यह अन्तर मानैक्यखंड से जितना कम होता है वही ग्रास का परिमाण है जिसकी व्याख्या चित्र ६६ के सम्बन्ध में अच्छी तरह की गयी है। उस चित्र से भिन्नता केवल इतनी है कि उसमें चन्द्रमा और भूभा के केन्द्रों की निकटतम दूरी ली गयी है जो श × कोज्या ई के समान होती है और वहाँ वह दूरी ली गई है जो स्पर्शकाल से इष्ट घड़ी उपरान्त होती है।

यदि मानैक्य खंड अर्थात् भूभा और चन्द्रमा के व्यासार्धों के योग को पहले की तरह म अक्षर से सूचित किया जाय तो स्पर्शकाल से घ घड़ी उपरान्त ग्रास का परिमाण यह होगा :—

$$\text{ग्रास} = \text{म} - \sqrt{\left[\left\{ (\text{स्थि} - \text{घ}) \times \frac{\text{चा} - \text{रा}}{६०} \right]^{२} + \text{श}^{२} \right\}}$$

जहाँ स्थि स्थित्यर्ध के लिए, श चन्द्रमा के तात्कालिक शर के लिए और चा – रा सूर्य चन्द्रमा के दैनिक गतियों के अन्तर लिए लिखा गया है। यदि चा – रा प्रति घटी का अन्तर हो तो ६० से भाग देने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

सूर्य ग्रहण के सम्बन्ध की बात आगे आनेवाले सूर्य ग्रहणाधिकार में बतलाई जायगी।

मध्य ग्रहण के उपरान्त परन्तु मोक्षकाल से कुछ घड़ी पहले ग्रास का परिमाण—

मध्यग्रहणतश्चोर्ध्वम् इष्टनाडीर्विशोधयेत्।
स्थित्यर्धान्मौक्तिकाच्छेषात् प्राग्वच्छेषस्तु मौक्षिके ॥२१॥

अनुवाद—(२१) जब यह जानना हो कि मध्य ग्रहण के उपरान्त मोक्षकाल से कुछ घड़ी पहले ग्रास का परिमाण क्या है तब मोक्षकाल सम्बन्धी स्थित्यर्ध से इष्ट घड़ी घटाकर जो शेष बचे उससे ऊपर के १८-२० श्लोकों में बतलायी गयी रीति के अनुसार ग्रासमान निकाले। इससे यह जाना जायगा कि मोक्षकाल से इष्ट घड़ी पहले चन्द्रमा का कितना ग्रस्त भाग शेष है।

विज्ञान भाष्य—यह नियम १८-२० श्लोकों में बतलाये गये नियम के समान है। उससे यह जाना जाता है कि इष्टकाल में कितना भाग ग्रस्त हो जाता है और इससे यह जाना जाता है कि इष्टकाल में कितना ग्रस्त भाग शेष रहता है क्योंकि मध्य ग्रहण के पहले जिस क्रम से ग्रस्त भाग की वृद्धि होती है, मध्यग्रहण के उपरान्त ठीक उसके विलोम क्रम से ग्रस्त भाग की क्षीणता होती है।

ग्रास का परिमाण ज्ञात हो तो इष्टकाल जानना—

ग्राह्यग्राहकयोगार्धात् प्रोज्झ्य संछन्नलिप्तिकाः।
तद्वर्गात्प्रोज्झ्य तत्कालविक्षेपस्य कृतिं पदम् ॥२२॥
कोटिलिप्ता रवेः स्पष्टस्थित्यर्धेनाहता हृताः।
मध्येन कोटिलिप्ताभिस्स्थितिवद्ग्रासनाडिकाः ॥२३॥

अनुवाद—(२२) मानैक्य खंड से ग्रस्त भाग की कला को घटाकर शेष का वर्ग करो और इसके वर्ग से चन्द्रमा के तात्कालिक शर के वर्ग को घटा दो और शेष का वर्गमूल निकालो तो (२३) कोटिलिप्ता का मान ज्ञात होगा। सूर्यग्रहण में इस कोटिलिप्ता को स्पष्ट स्थित्यर्ध से गुणा करके गुणनफल को मध्यम स्थित्यर्ध से भाग देने पर जो आता है वह कोटिकला है। इसी कोटिकला से स्थित्यर्धकाल जानने की रीति

से घड़ी बनावे अर्थात् कोटिकला को ६० से गुणा करके सूर्य और चन्द्रमा की दैनिक गतियों के अन्तर से भाग दे। जो भागफल आवे उसको स्थित्यर्धकाल से घटा दे तो यह ज्ञात होगा कि स्पर्शकाल के उपरान्त कितनी घड़ी बीती है। इसी का नाम ग्रासनाड़िका है।

विज्ञान भाष्य—यह नियम १८-२० श्लोकों में बतलाये गये नियम का विलोम है। वहां यह बतलाया गया है कि आरम्भ काल से इष्ट घड़ी उपरान्त ग्रास का परिमाण क्या होता है और यहां यह बतलाया गया है कि यदि ग्रास का परिमाण ज्ञात हो तो इष्टकाल कैसे जाना जाता है। इसलिए इसकी उपपत्ति भी वही है। इसका रूप यह है :—

$$\text{कोटिकला} = \sqrt{(\text{म}-\text{ग्रास})^2 - \text{श}^2}$$

$$\text{ग्रासनाडिका} = \text{घ} = \text{स्थि} - \frac{६०}{\text{चा} - \text{रा}} \sqrt{(\text{म} - \text{ग्रास})^2 - \text{श}^2}$$

वलन जानना—

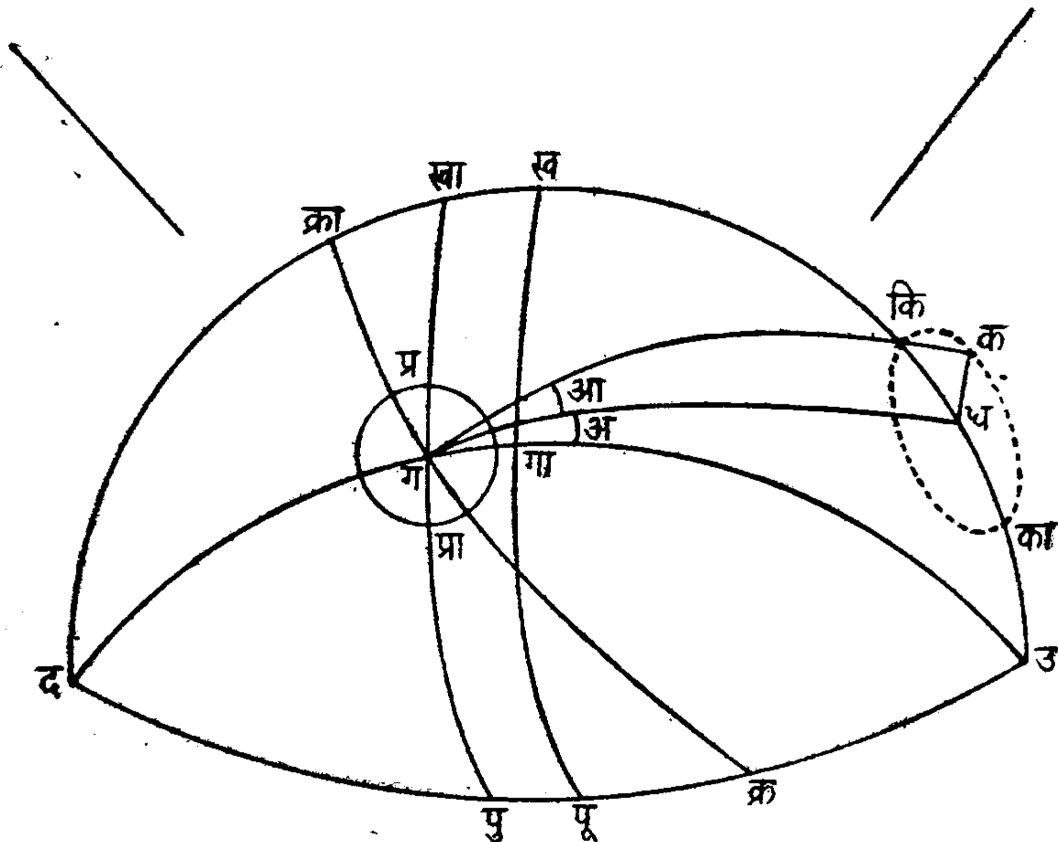
नतज्याक्षज्योर्घात: त्रिज्याप्तस्तस्य कार्मुकम् ।
तदंशास्सौम्ययाम्यास्ते पूर्वापरकलापयो: ॥२४॥
राशित्रययुताद्ग्राह्यात्क्रान्त्यंशै र्दिक्समे युतात् ।
भेदेऽन्तराज्ज्यावलनसप्तत्यंशोऽङ्गुलात्मिका ॥२५॥

अनुवाद—(२४) छाद्य ग्रह के समप्रोतवृत्त के नतांश की ज्या को इष्ट स्थान के अक्षांश की ज्या से गुणा करके गुणनफल को ग्रह के अहोरात्रवृत्त की त्रिज्या से भाग दे दे, और भागफल का धनु बनावे। यही धनुग्रह का आक्षवलन कहलाता है। यदि ग्रह पूर्वक पाल में हो अर्थात् यामोत्तरवृत्त से पूर्व हो तो आक्षवलन उत्तर की ओर होता है और यदि ग्रह पच्छिम कपाल में हो अर्थात् यामोत्तरवृत्त से पच्छिम हो तो आक्षवलन दक्षिण की ओर होता है। (२५) ग्रह के सायन भोगांश में ९० अंश जोड़ने से जो भोगांश आवे उसकी क्रान्ति (स्पष्टाधिकार श्लोक २८ के अनुसार) निकाले अर्थात् उसको परमक्रान्ति ज्या से गुणा करके (अहोरात्रवृत्त की) त्रिज्या से भाग दे दे। भागफल आयनवलन कहलाता है। यह (क्रान्ति) उत्तर या दक्षिण की ओर होगी। यदि आक्षवलन और आयनवलन दोनों की दिशा एक ही हो तो जोड़ दे और भिन्न हो तो घटा दे। ऐसा करने से जो कुछ आवे वह स्फुटवलन कहलाता है। इसकी ज्या को ७० से भाग देने पर वलन का अंगुलादि मान ज्ञात होता है।

विज्ञान भाष्य—यह जानने के लिये कि ग्रहण का स्पर्श, मोक्ष इत्यादि छाद्य ग्रह के किस विन्दु से आरम्भ या अन्त होता है, स्फुटवलन की आवश्यकता पड़ती है।

छाद्य ग्रह के पूर्व या पच्छिम विन्दु से जितने कोण पर क्रान्तिवृत्त उत्तर या दक्षिण होता है उसी को स्फुटवलन कहते हैं। ग्रह बिम्ब का पूर्व और पच्छिम विन्दु इस प्रकार जाना जाता है—ग्रह के केन्द्र से क्षितिज के उत्तर-दक्षिण विन्दुओं को जाता हुआ एक महावृत्त खींचते हैं जिसे उस ग्रह का समप्रोतवृत्त (circle of position) कहते हैं। यह समप्रोतवृत्त सममण्डल से[1] समकोण बनाता है। सममण्डल के समानान्तर ग्रह बिम्ब के केन्द्र से जो ऊर्ध्व वृत्त खींचा जाता है वह भी समप्रोतवृत्त से समकोण पर होता है। यह ऊर्ध्ववृत्त ग्रह-बिम्ब के किनारे के जिन विन्दुओं पर काटता है उनमें से जो पूर्व की ओर होता है उसे ग्रह का पूर्व विन्दु और जो पच्छिम की ओर होता है उसे ग्रह का पच्छिम विन्दु कहते हैं। चित्र १०१ से यह सब बातें स्पष्ट होती हैं।

चित्र १०१ से सिद्ध है कि क्रान्तिवृत्त क ग क्रा ग्रह बिम्ब के प्राच्य विन्दु से पु ग क्र कोण के अन्तर पर है। इसी अन्तर को स्फुटवलन कहते हैं। यह जानने के



चित्र १०१

उ ध ख द=इष्ट स्थान का यामोत्तर वृत्त

उ पू द=इष्ट स्थान का क्षितिजवृत्त (पूर्वार्ध)

१. देखो त्रिप्रश्नाधिकार पृष्ठ २२८

उ, द, पू=क्षितिज के उत्तर, दक्षिण और पूर्व विन्दु
ख=खस्वस्तिक
ख पू=सममण्डल
क्र क्रा=क्रान्तिवृत्त
ग=छाद्य ग्रह के बिम्ब का केन्द्र
उ ग द=ग विन्दु का समप्रोतवृत्त (circle of position)
ध=उत्तरीय आकाशीय ध्रुव
क=कदम्ब (क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव)
क का कि=कदम्ब वृत्त (वह वृत्त जिस पर कदम्ब अहोरात्र में ध्रुव की परिक्रमा करता है)
ख गा=समप्रोत वृत्त का नतांश
का=कदम्ब का स्थान जब सायन कर्क यामोत्तर वृत्त पर होता है
कि=कदम्ब का स्थान जब सायन मकर यामोत्तरवृत्त पर होता है
ग ध=ग्रह का ध्रुवान्तर
ग क=ग्रह का कदम्बान्तर
कोण उ ग ध=ग्रह का आक्षवलन
कोण ध ग क=ग्रह का आयनवलन
कोण उ ग क = ग्रह का स्फुटवलन
कोण क्र ग पु=ग्रह का स्फुटवलन
खा प्र ग प्रा पु=ग्रह के केन्द्र से जाता हुआ सममण्डल का समानान्तर वृत्त
प्रा=ग्रह बिम्ब का प्राच्य (पूर्वी) विन्दु
प्र=ग्रह बिम्ब प्रतीच्य (पच्छिमी) विन्दु

लिए समप्रोत वृत्त उ ग और कदम्बप्रोत वृत्त क ग के बीच का कोण उ ग क जानने की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि उ ग और क ग क्रमानुसार खा ग पु और क्र ग क्रा से समकोण पर हैं इसलिए पहले दो के बीच का कोण पिछले दो के बीच के कोण के समान होगा। इसलिए स्फुटवलन उ ग क कोण के समान हुआ जो उ ग ध और ध ग क नामक दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। कोण उ ग ध को आक्षवलन और कोण ध ग क को आयनवलन कहते हैं। चित्र से स्पष्ट है कि कोण उ ग क का परिमाण जानने के लिए आक्षवलन और आयनवलन को जोड़ना पड़ेगा। परन्तु यदि क ग कदम्बप्रोतवृत्त उ ग और ध ग के बीच में हो तो आक्षवलन से आयनवलन घटाने पर स्फुटवलन आता है। चित्र में ग्रह पूर्व कपाल में अर्थात् यामोत्तर वृत्त के

पूर्व दिखलाया गया है। ऐसी दशा में स्फुटवलन प्राच्य विन्दु से उत्तर की ओर होता है। यदि इसी तरह दूसरा चित्र बनाकर ग्रह पच्छिम कपाल में दिखलाया जाय तो उससे स्पष्ट होगा कि स्फुटवलन ग्रह के प्राच्य विन्दु से दक्खिन की ओर होता है। इस प्रकार श्लोक २४ के उत्तरार्ध की उत्पत्ति सिद्ध होती है। आक्षवलन का परिमाण गोलीय त्रिभुज ग ग ध से इस प्रकार जाना जाता है :—

गोलीय त्रिभुज उ ग ध में,

$$\frac{\text{ज्या (उ ग ध)}}{\text{ज्या (ध उ)}} = \frac{\text{ज्या (ग उ ध)}}{\text{ज्या (ग ध)}} = \frac{\text{ज्या (ख गा)}}{\text{ज्या (ध्रुवान्तर)}}$$

क्योंकि उ ख और उ गा ९०° के समान हैं इसलिए इनके बीच का कोण गा उ ख अथवा ग उ ध ख गा के समान हुआ जो समप्रोतवृत्त का नतांश है। ज्या (ध्रुवान्तर) = ग्रह की क्रान्ति कोटि ज्या = ग्रह की द्युज्या[1] = ग्रह के अहोरात्रवृत्त की त्रिज्या; ज्या (ध उ) = अक्षांश की ज्या = अक्ष ज्या

इसलिए

$$\text{ज्या (उ ग ध)} = \frac{\text{अक्ष ज्या} \times \text{ज्या (ख गा)}}{\text{ग्रह के अहोरात्रवृत्त की त्रिज्या}}$$

$$= \frac{\text{अक्ष ज्या} \times \text{ज्या (ख गा)}}{\text{क्रान्ति कोटि ज्या}} \quad \cdots \quad \cdots (१)$$

इस तरह श्लोक २४ का पूर्वार्ध भी सिद्ध हो गया। यहाँ त्रिज्या का अर्थ ३४३८ नहीं है वरन् अहोरात्रवृत्त की त्रिज्या है जो ग्रह की क्रान्ति कोटि ज्या के समान होती है और नत ज्या का अर्थ ग्रह के नतांश ख ग अथवा नतकाल ख ध ग की ज्या नहीं है वरन् समप्रोतवृत्त का नतांश ख गा है। भास्कराचार्यजी ने इसका परिमाण जानने के लिए यह नियम[2] बतलाया है कि स्पर्शकाल में छाद्य ग्रह का जो नतकाल हो उसको ९० से गुणा करके यदि सूर्यग्रहण हो तो दिनार्धमान और चन्द्रग्रहण हो तो रात्र्यर्धमान से भाग दे दो। इसका कारण यह जान पड़ता है कि जब दिनार्धमान या रात्र्यर्धमान में छाद्य ग्रह ९०° ऊपर चढ़ता है तो नतकाल में जितना चढ़ेगा वही उसका नतांश है परन्तु यह नियम स्थूल है। जान पड़ता है कि सूर्य-सिद्धान्त ने भी छाद्य ग्रह के नतांश ख ग की ज्या के लिए ही नत ज्या लिखा है न कि ख गा के लिए क्योंकि ख गा का परिमाण जानने के लिए कोई नियम नहीं बतलाया गया है। यह भी सम्भव है कि नतकाल ख ध ग की ज्या के लिए भी नत ज्या लिखा गया हो। परन्तु यह दोनों अर्थ शुद्ध नहीं हैं। इसलिए मैंने अनुवाद में इसका अर्थ समप्रोतवृत्त के नतांश की ज्या किया है।

---

१. देखो स्पष्टाधिकार पृष्ठ २०७। २. गणिताध्याय पृष्ठ १२२

समप्रोतवृत्त का नतांश ख गा अथवा कोण ख उ ग गोलीय त्रिकोणमिति के आधार पर इस प्रकार शुद्धतापूर्वक जाना जा सकता है :—

पहले ग्रह के नतकाल से उसका नतांश ख ग पृष्ठ २९२ में सिद्ध किये गये सूत्र (ख) से जान लेना चाहिए। फिर नतांश की सहायता से कोण ध ख ग पृष्ठ २७६ में सिद्ध किये गये सूत्र से जानना चाहिए। जब नतांश ख ग और कोण ध ख ग अथवा उ ख ग ज्ञात हो गये तब गोलीय त्रिभुज ख ख ग के तीन अङ्ग अर्थात् दो भुज उ ख और ख ग तथा इनके बीच का कोण जानकर कोण ख उ ग सहज ही जाना जा सकता है क्योंकि

कोस्परे (ख ग) × ज्या (ख उ)

= कोज्या (ख उ) कोज्या (उ ख ग) + कोस्परे (ख उ ग)[1] ज्या (उ ख ग)

परन्तु यहाँ ख उ = ९०°, इसलिए ज्या (ख उ) = १ और कोज्या (ख उ) = ०

∴ को स्परे (ख ग) = कोस्परे (ख उ ग) ज्या (उ ख ग)

$$\text{कोस्परे (ख उ ग)} = \frac{\text{कोस्परे (ख ग)}}{\text{ज्या (उ ख ग)}}$$

$$\text{अथवा स्परे (ख उ ग)} = \frac{\text{ज्या (उ ख ग)}}{\text{कोस्परे (ख ग)}}$$

= ज्या (उ ख ग) स्परे (ख ग)

परन्तु कोण उ ख ग = ९०° + ∠पू ख ग

= ९०° + अ ग्रा[2]

∴ ज्या (उ ख ग) = ज्या (९०° + अग्रा) = कोज्या (अ ग्रा)

∴ स्परे (ख उ ग) = अग्रा कोटिज्या × नतांश स्पर्शरेखा

इसलिए सिद्ध हो गया है कि ग्रह के समप्रोतवृत्त की नतांश-ज्या को जानने के लिए ग्रह की अग्रा की कोटिज्या को ग्रह के नतांश स्पर्शरेखा से गुणा कर देना चाहिये।

इस प्रकार ख उ ग कोण अथवा ख गा धनु का मान जान कर इसकी ज्या को पृष्ठ ४७८ के सूत्र (१) में उत्थापित करने से आक्षवलन का मान ज्ञात होगा।

---

१. देखो Todhunter and Leathem's Spherical Trigonometry, PP. 26.

२. देखो पृष्ठ २७६'

आयनवलन का मान इस प्रकार जाना जा सकता है :—

गोलीय त्रिभुज क ग ध में

$$\frac{\text{ज्या} \angle \text{क ग ध}}{\text{ज्या (क ध)}} = \frac{\text{ज्या} \angle \text{ग क ध}}{\text{ज्या (ग ध)}}$$

$$\therefore \text{ज्या} \angle \text{क ग ध} = \frac{\text{ज्या (क ध)} \times \text{ज्या} \angle \text{ग क ध}}{\text{ज्या (ग ध)}}$$

यहाँ क ध कदम्ब से ध्रुव का अन्तर है जो सूर्य की परम क्रान्ति के समान होता है। ग ध ध्रुव से ग्रह का अन्तर है जिसकी ज्या ग्रह की क्रान्ति कोटिज्या के समान है और कोण ग क ध, ग के कदम्ब प्रोतवृत्त ग क और अयनवृत्त क ध के बीच में है। पृष्ठ २०० के चित्र ३६ से स्पष्ट है कि दक्षिणायन विन्दु द वसंत संपात से ९०° आगे और उत्तरायण विन्दु व वसंत संपात से २७०° आगे है अर्थात् दक्षिणायन और उत्तरायण विन्दुओं से जाता हुआ अयनवृत्त वसंत संपात से ९०° और २७०° के अन्तर पर क्रान्तिवृत्त को समकोण पर काटता है। उसी चित्र से यह भी प्रकट है कि ग के कदम्ब प्रोतवृत्त प क और अयनवृत्त द ध क के बीच का कोण द क ग या द क प के समान है जो प द धनु के भी समान हुआ। ग्रह का भोगांश व प धनु है। इसलिए व प और प द का योग ९०° के समान हुआ अर्थात् प द की ज्या व प की कोटिज्या के समान है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि ग्रह के कदम्बप्रोत वृत्त और अयन वृत्त के बीच के कोण की ज्या ग्रह के भोगांश की कोटिज्या के समान होती है। इसलिए

$$\text{ज्या} \angle \text{क ग ध} = \frac{\text{परम क्रान्ति ज्या} \times \text{ग्रह की भोगांश कोटिज्या}}{\text{ग्रह की क्रान्ति कोटिज्या}} \quad \cdots\cdots (२)$$

इस प्रकार क ग ध कोण का मान अथवा आयनवलन सिद्ध होता है। २५वें श्लोक के पूर्वार्ध में संक्षेप में केवल इतना बतलाया गया है कि ग्रह के भोगांश में ९०° जोड़ने से जो कुछ आवे उसकी क्रान्ति निलाले अर्थात् इसकी ज्या को परम क्रान्ति ज्या से गुणा करके ग्रह के अहोरात्रवृत्त की त्रिज्या से भाग दे दो। परन्तु अहोरात्रवृत्त की त्रिज्या = क्रान्तिकोटि ज्या (देखो पृष्ठ २०७) और ग्रह के भोगांश में ९०° जोड़कर जो आता है उसकी ज्या ग्रह के भोगांश की कोटि ज्या के समान होती है क्योंकि यदि भ भोगांश हो तो

ज्या (भ + ९०°) = को ज्या भ (देखो पृष्ठ १२६—१२८)

जब भोगांश ६ राशि से कम होता है तो क्रान्ति उत्तर होती है और ६ राशि से अधिक होता है तो क्रान्ति दक्खिन होती है। इसी तरह जब भ + ९०° ६ राशि से अधिक हो तो ∠क ग ध को दक्खिन समझना चाहिए और ६ राशि से कम हो तो उत्तर समझना चाहिए।

आक्षवलन और आयनवलन दोनों की दिशाएँ एक ही हों तो जोड़ने से और भिन्न हों तो इनके अन्तर से स्पष्ट वलन का परिमाण ज्ञात होता। यह चित्र १०१ से ही स्पष्ट है।

आक्षवलन और आयनवलन के सूत्रों से यह भी निश्चय किया जा सकता है कि इनके मान किस समय सबसे अधिक और किस समय शून्य हो सकते हैं। उदाहरण के लिए आयनवलन के सूत्रों को लीजिए। इस समीकरण के दाहिनी ओर ३ गुणक हैं जिनमें परमक्रान्ति ज्या अचल है परन्तु ग्रह की भोगांश कोटि ज्या और क्रान्ति कोटि ज्या चल हैं। जिस समय भोगांश शून्य होगा उस समय ग्रह वसंत संपात पर होगा इसलिए इसकी क्रान्ति भी शून्य होगी। ऐसी दशा में इनकी कोटि ज्याओं का मान २ होगा। इसलिए आयनवलन परम क्रान्ति के समान अर्थात् २३°२७′ होगा। यही बात शरद् सम्पात पर भी होगी। यही बात भास्कराचार्य जी ने गोलाध्याय के ग्रहण वासना के ३०वें श्लोक में लिखी है। इसी प्रकार जब भोगांश ९०° या २७०° होगा तब भोगांश कोटि ज्या शून्य होगी परन्तु क्रान्ति कोटि ज्या शून्य नहीं होगी क्योंकि क्रान्ति २४° के लगभग होगी इसलिए आयन वलन भी शून्य होगा इत्यादि।

यहाँ तक तो यह बतलाया गया कि स्फुट वलन का परिमाण अंशों या कलाओं में कैसे जाना जाता है। यदि यह जानना हो कि चित्र खींचते समय अंगुल से नाप कर कैसे काम लिया जाय तो स्फुट वलन की ज्या को ७० से भाग देने पर अंगुलों में वलन का परिमाण आ जाता है। ऐसा २५ वें श्लोक में बतलाया गया है। इसकी उपपत्ति यह है कि छाद्य ग्रह के बिम्ब का चित्र खींचने के लिए ४९ अंगुल का व्यासार्ध मानकर वृत्त खींचने की परिपाटी थी। यह १२ अंगुल के शंकु के चौगुने के लगभग होता है और इस प्रकार एक अंगुल ७० कला के लगभग होता है क्योंकि त्रिज्या का मान साधारणतः ३४३८ कलाओं का समझा जाता है और ४९ × ७० = ३४३०, जो ३४३८ के बहुत निकट है।

अंगुलों में बिम्ब का मान जानना—

सोन्नतं दिनमानार्धं दिनार्धाप्तफलेन तु।
छिन्द्याद्विक्षेपमानानि तान्येषामङ्गुलानि तु ॥२६॥

अनुवाद— (२६) इष्ट समय में छाद्य ग्रह का जो उन्नत काल हो उसको दिनमान और दिनार्धमान के योग में जोड़ कर योगफल को दिनार्धमान से भाग दे दो। इस भागफल से विक्षेप, छाद्य और छादक ग्रहों के कलात्मक बिम्बों को भाग दे देने से इनके बिम्बों के अंगुलात्मक मान ज्ञात हो जायँगे।

विज्ञान भाष्य—पृष्ठ ३८२ में बतलाया गया है कि वर्तन के कारण उदय अस्त होते हुए सूर्य का आकार बड़ा देख पड़ता है। यही दशा चन्द्रमा की भी होती है। यह बात हमारे आचार्यों को भी ज्ञात थी[१]। यह तो निश्चय ही था कि उदय या अस्त होते हुए सूर्य और चन्द्रमा के यथार्थ पिंड में कोई अन्तर नहीं पड़ता इसलिये हमारे आचार्यों ने यह कल्पना की थी कि उदय या अस्त काल के सूर्य या चन्द्रमा के बिम्ब मान को अंगुलों में प्रकट करने के लिए ३ कला का अंगुल माना जाय और जब यह पिंड ख-स्वस्तिक में हों तब ४ कला का अंगुल माना जाय[२]। ऐसा करने से आकारों में जिस प्रकार की भिन्नता देख पड़ती है वैसी ही भिन्नता उनके अंगुलात्मक मानों में भी हो जायगी। यह तो हुई उदय या अस्त होते हुए बिम्ब-मानों और ख-स्वस्तिक में स्थित बिम्बमानों की बात। यदि ग्रह ख-स्वस्तिक और क्षितिज दोनों के बीच में हो तो उसके बिम्ब का अंगुलात्मक मान जानने के लिए अनुपात से इस प्रकार काम लेते थे। क्षितिज से खमध्य अथवा याम्योत्तर वृत्त तक जाने में अंगुल का मान ३ कला से ४ कला हो जाता है तो उदय काल या अस्त काल से इष्ट काल तक जो उन्नत काल है उसमें अंगुल का मान क्या होगा। परन्तु उदय काल से याम्योत्तर वृत्त तक जाने में जितना समय लगता है उसे दिनार्धमान कहते हैं। इसलिए जब दिनार्धमान में अंगुल के मान में एक कला का अन्तर पड़ जाता है तब उन्नत काल में कितना अन्तर पड़ेगा। यह अन्तर $= \frac{\text{उन्नत काल} \times \text{१ कला}}{\text{दिनार्ध मान}}$। इसलिए यह प्रकट है कि इष्ट काल में बिम्ब का अंगुलात्मक मान जानने के लिए १ अंगुल का मान $३ + \frac{\text{उन्नत काल} \times \text{१ कला}}{\text{दिनार्ध मान}}$ लेना चाहिए। इसलिए इष्ट काल में

$$\text{१ अंगुल} = ३ + \frac{\text{उन्नत काल} \times \text{१ कला}}{\text{दिनार्ध मान}}$$

$$= \frac{३ \times \text{दिनार्ध मान} + \text{उन्नत काल} \times १}{\text{दिनार्ध मान}} \text{ कला}$$

$$= \frac{\text{३ दिनार्ध मान} + \text{उन्नत काल}}{\text{दिनार्ध मान}} \text{ कला}$$

---

१. देखो गणिताध्याय पृष्ठ १२४

२. भास्कराचार्य ने २॥ कला और ३॥ कला का अंगुल माना है। देखो **गणिताध्याय पृष्ठ १२४।**

$$= \frac{(२+१) \text{ दिनार्ध मान} + \text{उन्नत काल}}{\text{दिनार्ध मान}} \text{ कला}$$

$$= \frac{\text{दिनमान} + \text{दिनार्ध मान} + \text{उन्नत काल}}{\text{दिनार्ध मान}} \text{ कला}$$

इस प्रकार २६वें श्लोक की उपपत्ति सिद्ध हुई। परन्तु यहां यह बतला देना आवश्यक है कि आकाशीय पिंड का आकार उदय से लेकर यामोत्तर वृत्त तक एक क्रम से नहीं घटता इसलिए अनुपात से ग्रह का आकार जानना शुद्ध नहीं है जैसा ३६५ पृष्ठ में दी हुई वर्तन की सारणी से स्वयं प्रकट होता है।

उदाहरण—संवत् १६८१ वि० की श्रावणी पूर्णिमा के चन्द्रग्रहण की गणना—

सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार—

पहले इस दिन के सूर्य, चन्द्रमा, और राहु को स्पष्ट करना चाहिए। इसलिए यह जानना आवश्यक है कि कलियुग से इस दिन तक का अहर्गण क्या है।

कलियुग के आरंभ से विक्रमी संवत् के आरंभ तक ३०४४ वर्ष
विक्रम के आरंभ से १६८१ वि० की मेष संक्रान्ति तक १६८१ ,,
कलियुगादि से ,, ,, ,, ५०२५ ,,
१ सौर वर्ष = ३६५·२५८७५६ सावन दिन
∴ ५०२५ सौर वर्ष = ५०२५ × ३६५·२५८७५६ सावन दिन
= १८३५४२५·२४८६ ,,

यह कलियुग के आरम्भ से १६८१ वि० की मध्यम मेष संक्रान्ति तक का समय है। स्पष्ट मेष संक्रान्ति २·१७०७ दिन पहले ही हो जाती है। इसलिए इसको घटा देने पर १६८१ वि० के मेष संक्रान्ति काल तक का समय १८३५४२३·०७८२ सावन दिन हुआ।

अब यह देखना है कि मेष संक्रान्ति के दिन कौन तिथि थी।

१ चान्द्र मास = २६·५३०५८८ सावन दिन

इससे उपर्युक्त सावन दिनों को भाग देने पर लब्धि बीते हुए चान्द्रमासों की संख्या होगी और शेष ८·४४२२३६ सावन दिन चैत्र की मध्यम अमावस्या से मेष संक्रान्ति तक का समय होगा। इसलिए चैत्र की मध्यम अमावस्या से ८·४४२२३६ दिन उपरान्त मेष की संक्रान्ति लगी। इससे यह सिद्ध होता है कि इस वर्ष मलमास नहीं लगेगा, क्योंकि जब वैशाख कृष्ण ४ के उपरांत मेष संक्रान्ति होती है तब वर्ष

में कोई महीना मलमास का पड़ता है। इस प्रकार चैत्र की अमावस्या श्रावणी पूर्णिमा तक ४।। चान्द्रमास होते हैं।

१ चान्द्रमास=२९·५३०५८८ दिन
४ ,, =११८·१२२३५२ दिन
आधा ,, =१४·७६५२९४ ,,
∴ ४।। ,,=१३२·८८७६४६ ,,

इसलिए १९८१ वि० के चैत्र की मध्यम अमावास्या से १३२·८८७६४६ दिन उपरान्त श्रावण की मध्यम पूर्णिमा का अन्त होगा। परन्तु चैत्र की अमावास्या से ८·४४२२३६ सावन दिन पर स्पष्ट मेष-संक्रान्ति होती है इसलिए स्पष्ट मेष-संक्रान्ति काल से १३२·८८७६४६—८·४४२२३६=१२४·४४५४१० दिन उपरान्त श्रावण की मध्यम पूर्णिमा का अंत होगा।

कलियुगादि से १९८१ की मेष संक्रान्ति तक	१८३५४२३·०७८२ दिन
मेष-संक्रान्ति से श्रावणी पूर्णिमा तक	१२४·४४५४,,
कलियुगादि से श्रावणी पूर्णिमा तक	१८३५५४७·५२३६ दिन

इसलिए १९८१ वि० की श्रावणी पूर्णिमा की मध्य रात्रि का अहर्गण १८३५५४७ हुआ। इसकी शुद्धता की परीक्षा करने के लिए यह जानना चाहिए कि इस अहर्गण से श्रावणी पूर्णिमा का बार ठीक आता है कि नहीं। इसलिए इसको ७ से भाग देना चाहिए। सात से भाग देने पर २६२२२१ सप्ताह आते हैं और शेष कुछ नहीं बचता। इसलिए सिद्ध होता है कि श्रावणी पूर्णिमा गुरुवार को थी क्योंकि कलियुग का आरम्भ सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार गुरुवार की मध्यरात्रि को हुआ था। इस प्रकार संवत् १९८१ वि० की श्रावणी पूर्णिमा गुरुवार की मध्यरात्रि का अहर्गण १८३५५४७ हुआ।

इसी अहर्गण से श्रावणी पूर्णिमा की अर्ध्य रात्रि काल के सूर्य, चन्द्रमा, चन्द्रोच्च, राहु इत्यादि के स्थान त्रैराशिक से जानने चाहिए। मध्यमाधिकार में बतलाया गया है कि एक महायुग में १५७७९१७८२८ सावन दिन होते हैं जिनमें सूर्य के ४३२०००० भगण, चंद्रमा के ५७७५३३३६ भगण, चन्द्रोच्च के ४८८२०३ भगण और राहु के २३२२३८ भगण होते हैं, इसलिए १८३५५४७ दिनों में

	भगण	राशि	अंश	कला	
सूर्य के	५०२५	३	२९	५९·७५	हुए
चंद्रमा के	६७१८२	९	२३	३९·२१	,,
चंद्रोच्च के	५६७	१०	२८	३४·०२	,,
राहु के	२७०	१	२६	६·८	,,

सूर्य और चंद्रमा के पूरे भगणों के छोड़ देने पर जो शेष रह जाते हैं वही श्रावणी पूर्णिमा की मध्यरात्रि काल में इनके मध्यम स्थान हैं। परन्तु चन्द्रोच्च और राहु के पूरे भगणों को छोड़ देने से जो शेष बचते हैं उनमें कुछ संस्कार करना पड़ता है क्योंकि कलियुग के[1] आदि में चन्द्रोच्च कर्क के आदि विन्दु पर और राहु तुला के आदि विन्दु पर थे और राहु की गति उलटी होती है इसलिए श्रावणी पूर्णिमा की मध्य रात्रि के समय

चन्द्रोच्च का स्थान ३ रा + १० रा २८°३४′·०२ = १ रा २८°३४′·०२

राहु का स्थान ६ रा − १ रा २६°६′·८ = ४ रा ३°५३′·२

सूर्य के मन्दोच्च की गति इतनी मन्द है कि इसका स्थान २ रा १७°१७′·५२ ही मान लेना चाहिए[2]।

सूर्य का मन्द केन्द्र = २ रा १७°१७′·५२ — ३ रा २९°५९′·७५

= १० रा १७°१७′·७७

= ३ पाद + १ रा १७°१७′·८

∴ चौथे पाद का गम्य भाग = १ रा १२°४२′·२

= ४२°४२′·२

सूर्य की स्फुट मन्द परिधि

८४० − २० × भुजज्या ४२°४२′ / ३४३८

= ८४० − २०′ × २३३० / ३४३८

= ८४०′ − १४′

= ८२६′

भुजबल = (८२६ × २३३०) / २१६०० = ८९′·१ = १°२९′·१

यही सूर्य का मन्दफल है क्योंकि इसका धनु इसी के समान होगा। यह ऋणात्मक है क्योंकि मन्द केन्द्र तुलादि है।

इसलिए मध्य रात्रि का स्पष्ट सूर्य

= ३ रा २९५९′·७५ − १°२९′·१

---

१. मध्यमाधिकार श्लोक ५७,५८ और पृष्ठ ५०

२. स्पष्टाधिकार पृष्ठ १४६

=३ रा २८°३०′·६५

=११८°३०′·६५

चन्द्रमा का मन्द केन्द्र=१ रा२८° ३४′·०२−६ रा२३°३६′·२१

=४ रा४°५४′·८१

=१ पाद+३४°५४′·८१

∴ दूसरे पाद का गम्य भाग=५५°५′·२

चन्द्रमा की स्फुट मन्द परिधि

$$=३२° - २०′ \times \frac{\text{भुजज्या } ५५°५′·२}{३४३८}$$

$$=३२° - २०′ \times \frac{२८१८}{३४३८}$$

=३२°−१६′=३१°४४′=१६०४′

$$\therefore \text{चन्द्रमा का भुजफल} = \frac{१६०४ \times २८१८}{२१६००}$$

=२४८′·४=४°८′·४

इसका धनु भी इतना ही होगा।

इसलिए चन्द्रमा का मन्दफल=४°८′·४

यह धनात्मक है क्योंकि चन्द्रमा का मन्द केन्द्र अजादि ६ राशियों में है। इसलिए मध्यरात्रि का स्पष्ट चन्द्रमा

=६रा२३°३६′·२+४°८′·४

=६रा२७°४७′·७=६रा२७°४८′

सूर्य और चन्द्रमा के स्पष्ट स्थानों से ज्ञात होता है कि चन्द्रमा सूर्य से १८०° आगे नहीं है वरन् कुछ कम है इसलिए पूर्णिमान्त काल मध्यरात्रि से कुछ पीछे होगा जब चन्द्रमा और सूर्य का अन्तर ठीक १८०° होता है। यह जानने के लिए कि पूर्णिमान्त काल कब होगा हमें सूर्य और चन्द्रमा की स्पष्ट गतियां जाननी चाहिये। हमें यह मालूम है कि

सूर्य की मध्यम दैनिक गति ५६′८″,

चन्द्रमा की ,, ७९०′३५″,

चन्द्रोच्च की ,, ६′४१″,=६′·७,

और चन्द्रमा की दैनिक केन्द्र गति ७८३′५४″ होती है।

इसलिए सूर्य की स्पष्ट दैनिक गति (देखो स्पष्टाधिकार पृ० १५८)

$$= ५९'८'' - \frac{८२६}{२१६००} \times \frac{१६४ \times ५९'८''}{२२५}$$

$$= ५९'८'' - १'३९''$$

$$= ५७'२९'' = ५७'.५$$

चन्द्रमा की दैनिक गति उपर्युक्त रीति से नहीं निकल सकती क्योंकि चन्द्रमा की गति बहुत तीव्र होती है। इसलिए चन्द्रमा की दैनिक गति जानने के लिए पूर्णमासी के उपरान्त शुक्रवार की मध्यरात्रि का चन्द्रमा स्पष्ट करना अच्छा है।

पूर्णमासी की अर्धरात्रि का मध्यम चन्द्र $= ९^{रा}२३°३९'\cdot२१$

चन्द्रमा की दैनिक मध्यम गति $= १३°१०'\cdot५८$

∴ प्रतिपदा की मध्यम रात्रि का चन्द्रमा $= १०^{रा}६°४९'\cdot७९$

$$= १०^{रा}६°४९'\cdot८ = १०^{रा}६°५०'$$

" " का चन्द्रोच्च $= १^{रा}२८°३४' + ६'\cdot७$

$$= १^{रा}२८°४०'\cdot७$$

∴ प्रतिपदा की मध्यरात्रि का चन्द्र मन्द केन्द्र

$$= १^{रा}२८°४०'\cdot७ - १०^{रा}६°४९'\cdot८$$

$$= ३^{रा}२१°५०'\cdot९$$

$= १$ पाद $+ २१°५१'$ स्वल्पान्तर से

∴ दूसरे पाद का गम्य भाग $= ६८°९'$

चन्द्रमा की स्फुट परिधि $= ३२° - २०' \times \frac{\text{भुज ज्या } ६८°९'}{३४३८}$

$$= ३२° - २०' \times \frac{३१९१}{३४३८}$$

$$= ३२° - १९'$$

$$= १९०१'$$

∴ भुजफल $= \frac{१९०१ \times ३११९}{२१६००} = २८१'$

इसका धनु भी इतना ही होगा।

इसलिए मन्दफल $= २८१' = ४°४१'$

∴ प्रतिपदा की मध्यम रात्रि का स्पष्ट चन्द्र $= १०$ रा $६°५०' + ४°४१'$

$$= १० \text{ रा } ११°३१'$$

और पूर्णिमा की ,, ,, =६ रा २७°४८′

दोनों का अन्तर = १३°४३′

इस प्रकार चन्द्रमा की स्पष्ट दैनिक गति १३°४३′=८२३′

सूर्य की ,, ,, ५७′·५

इसलिए १ सावन दिन में चन्द्रमा सूर्य की अपेक्षा ७६५′·५ अधिक चलता है।

पूर्णिमा की मध्य रात्रि का चन्द्रमा ६ रा २७°४७′·६

,, ,, सूर्य ३ रा २८°३०′·७

दोनों का अन्तर=५ रा २९°१६′·९

यह अन्तर ६ राशि से ४३′.१ कम है। इसलिए जब चन्द्रमा सूर्य से इतना और आगे बढ़ेगा तब पूर्णिमान्त काल होगा। परन्तु ६० घड़ी में चन्द्रमा सूर्य से ७६५′·५ आगे बढ़ता है। इसलिए ४३′·१ वह $\frac{४३·१ \times ६०}{७६५·५}$ घड़ी में पूरा करेगा जो ३ घड़ी २३ पल होता है। इसलिए गुरुवार की मध्य रात्रि से ३ घड़ी २३ पल उपरान्त पूर्णिमान्त का अन्त हुआ।

अब पूर्णिमान्त काल के सूर्य और चन्द्रमा को स्पष्ट करना चाहिए।

सूर्य की स्पष्ट दैनिक गति=५७′·५

∴ ३ घड़ी २३ पल की गति=३′१४″·५=३′·२४

मध्य रात्रि कालिक सूर्य=३ रा २८°३०′·७

∴ पूर्णिमान्तकालिक सूर्य=३ रा २८°३३′·९=११८°३४′

चन्द्रमा की स्पष्ट दैनिक गति=८२३′

∴ ३ घड़ी २३ पल की गति=४६′२४″

=४६′·४

मध्य रात्रिकालिक चन्द्रमा=६ रा २७°४७′.६

∴ पूर्णिमान्तकालिक चन्द्रमा=६ रा २८°३४′=२९८°३४′

राहु की दैनिक गति=३′११″

∴ ३ घड़ी ३ पल की गति=११″=·२′

मध्य रात्रिकालिक राहु=४ रा ३°५३′·२

राहु की गति उलटी होती है इसलिए इसमें से ३ घड़ी ३ पल की गति

घटाने से पूर्णिमान्तकालिक राहु $=$ ४ रा ३°५३′ $=$ १२३°५३′

राहु से चन्द्रमा $=$ २६८°३४′ $-$ १२३°५३′ $=$ १७४°४१′ आगे है।

$$\therefore \text{चन्द्र शर की ज्या} = \frac{\text{ज्या } १७४°४१' \times \text{ज्या } ४°३०'}{३४३८} *$$

$$= \frac{\text{ज्या } ५°१९' \times \text{ज्या } ४°३०'}{३४३८}$$

$$= \frac{३१९ \times २७०}{३४३८} = २५'$$

∴ पूर्णिमान्तकालिक चन्द्रशर $=$ २५′

यह शर क्रान्तिवृत्ति से उत्तर है क्योंकि राहु से चंद्रमा ६ राशि से कम है। (स्पष्टा० श्लोक ७,)

पूर्णिमान्तकालिक राहु $=$ १२३°५३′

,, ,, सूर्य $=$ ११८°३४′

दोनों का अंतर $=$ ५°१९′

जो चन्द्रग्रहण की लघुतम सीमा ९° से कम है। इसलिए चन्द्रग्रहण अवश्य लगेगा। (चन्द्रग्रहणाधिकार पृष्ठ ४६३)

चन्द्रग्रहणाधिकार श्लोक १,३ के अनुसार

$$\text{सूर्यबिम्ब का स्फुट व्यास} = \frac{६५०० \times ५७'२९''}{५९'८''} \text{ योजन}$$

$$\text{चंद्र ,, ,, ,,} = \frac{४८० \times ८२३'}{७९०'३५''} \text{ योजन}$$

$$= \frac{४८० \times ८२३}{७९०·५८३} \times \frac{१}{१५} \text{ कला}$$

$$= \frac{३२ \times ८२३}{७९०·५८३} \text{ कला}$$

$$= ३३·३१ \text{ कला}$$

श्लोक ४, ५ के अनुसार चन्द्रकक्षा में भूछाया का योजनात्मक व्यास

$$= \frac{१६०० \times ८२३}{७९०·५८३} - \left(\frac{६५०० \times ५७'२९''}{५९'८''} - १६०० \right) \times \frac{४८०}{६५००} \text{ योजन}$$

---

*चन्द्रमा का शर उसी प्रकार निकाला जाता है जिस प्रकार सूर्य की क्रान्ति स्पष्टाधिकार के २८वें श्लोक के अनुसार निकाली जाती है। ४°३०′ सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार चन्द्रमा का परम शर है।

इसको १५ से भाग देकर सरल करने पर चंद्रकक्षा में भूछाया का कलात्मक व्यास अथवा भूभाबिम्ब = १०६ २/३ × ८२३/७९०·५८३ − ३२ × ५७′२९″/५९′८″ + ७·८७७

= १११·१७ − ३१·११ + ७·८८

= ८७·९४

चंद्रग्रहण में भूछाया ही छादक होती है। इसलिए छादक का व्यासार्ध = ८७′·९४ ÷ २ = ४३′·९७

चन्द्रमा का स्फुट व्यास = ३३′·३१

∴ छाद्य का व्यासार्ध = ३३′.३१ ÷ २ = १६′·६६

∴ मानैक्य खंड = ४३′.९७ + १६′.६६ = ६०′.६३

और मानान्तर खंड = ४३′.९७ − १६.६६ = २७′.३१

ग्रास का परिमाण = ६०′.६३ − २५′ (श्लोक १०)

= ३५ ६३

यह चन्द्रबिम्ब के व्यास से बड़ा है। इसलिए सर्वग्रास ग्रहण लगेगा (देखो पृ० ४६० और श्लोक ११)।

पृष्ठ ४६९ के अनुसार,

स्थित्यर्ध = ६० घड़ी × √{(६०·६३ + २५) (६०·६३ − २५)} / ७६५·५

= ६० × √{८५·६३ × ३५·६३} / ७६५·५ घड़ी

= ६० × ५५·२३६ / ७६५·५ घड़ी

= ४ घड़ी २० पल

विमर्दार्ध = ६० घड़ी × √{(२७·३१ + २५) (२७·३१ − २५)} / ७६५·५

= ६० × √{५२·३१ × २·३१} / ७६५·५ घड़ी

= ६० × १०·९९२ / ७६५·५ घड़ी

= ५१·७ पल = ५२ पल

यह पहले बतलाया जा चुका है कि गुरुवार की मध्य रात्रि से ३ घड़ी २३ पल उपरान्त पूर्णिमा का अन्त हुआ। इस समय से स्थित्यर्ध काल घटाने पर ग्रहण का स्पर्श काल होगा और विमर्दार्ध काल घटाने से सम्मीलन काल आ जायगा।

∴ स्पर्श काल = ३ घड़ी २३ पल − ४ घड़ी २० पल

= − ५७ पल

अर्थात् मध्य रात्रि से ५७ पल पहले ग्रहण का स्पर्श होगा।

सम्मीलन काल = ३ घड़ी २३ पल — ५२ पल

= २ घड़ी ३१ पल

अर्थात् मध्य रात्रि के २ घड़ी ३१ पल उपरान्त सर्वग्रास ग्रहण का आरंभ होगा अथवा पूरा चन्द्रबिम्ब छाया में प्रवेश हो जायगा।

इसी प्रकार उन्मीलन काल = ३ घड़ी २३ पल + ५२ पल

= ४ घड़ी १५ पल, मध्यरात्रि के उपरान्त

और मोक्ष काल = ३ घड़ी २३ पल + ४ घड़ी २० पल

= ७ घड़ी ४३ पल, मध्य रात्रि के उपरान्त

यह समय उज्जैन का मध्य काल है अर्थात् उज्जैन में मध्यम मध्य रात्रि से ५७ पल पहले ग्रहण का स्पर्श, २ घड़ी ३१ पल उपरान्त सम्मीलन, ४ घड़ी १५ पल उपरान्त उन्मीलन और ७ घड़ी ४३ पल उपरान्त मोक्ष होंगे। किसी अन्य स्थान में किस समय स्पर्श सम्मीलन इत्यादि होगा, यह जानने के लिए उस स्थान का देशान्तर काल मध्यमाधिकार श्लोक ६३, ६४ के आधार पर जोड़ना चाहिए यदि स्थान उज्जैन से पूर्व हो और घटाना चाहिए यदि स्थान उज्जैन से पच्छिम हो। ऐसा करने से उस स्थान के मध्यम काल के अनुसार स्पर्श काल, सम्मीलन काल इत्यादि ज्ञात होंगे। यदि यह जानना हो कि उस स्थान में सूर्योदय से कितनी घड़ी पल उपरान्त स्पर्श, सम्मीलन इत्यादि होगा तो मध्यम काल में काल समीकरण का संस्कार करके स्पष्ट काल निकालना होगा और उस दिन की सूर्य की क्रान्ति निकाल कर चर काल का भी संस्कार करना होगा।

इस दिन का काल-समीकरण—

सूर्य का मध्यम भोगांश = प्रायः ४ राशि = १२०°

अयनांश = लगभग २२°४०′

∴ सूर्य का सायन भोगांश = १४२°४०′

इसलिए त्रिप्रश्नाधिकार पृष्ठ ३४७ के सूत्र (८) अथवा पृ० ३५० के सूत्र (क) के अनुसार काल समीकरण सहज ही निकाला जा सकता है। सूत्र (क) के अनुसार,

काल-समीकरण = ११५·१६५ ज्या (१४२°४०′ + ७८°२४′)

− १४७·६६५ ज्या (२ × १४२°४०′)

= ११५·२ ज्या (१८०° + ४१°४′) − १४८ ज्या १८५°२०′

$= -$ ११५·२ ज्या ४१°४′ — १४८ ज्या (३६०° − ७४°४०′)

$= -$ ११५·२ × ·६५७ + १४८ × ज्या ७४°४०′

$= -$ ११५·२ × ·६५७ + १४८ × ·९६४४

$= -$ ७५·७ + १४२·७ = ६७ असु

$= +$ ११ पल

धन का चिह्न यह प्रकट करता है कि इस दिन के किसी स्पष्ट काल में ११ पल जोड़ने से जो आता है वही उस समय का मध्यक काल है। इसलिए इस दिन जब धूप घड़ी के अनुसार रात के १२ बजेंगे तब मध्यम घड़ी में १२ बजकर ११ पल हुआ रहेगा।

प्रातःकाल की सूर्य की क्रान्ति —

मध्य रात्रि के सूर्य का स्पष्ट भोगांश ३ रा २८°३०′·७ अथवा ३ रा २८°३१′ है। परन्तु मध्यम प्रातः काल ६ बजे माना जाता है इसलिए मध्यम प्रातः काल के ४५ घड़ी उपरान्त मध्य रात्रि होती है। सूर्य की स्पष्ट दैनिक गति ५७′·५ है। इसलिए ४५ घड़ी में इसकी गति ४३′ के लगभग होती है। इस प्रकार उदयकाल में सूर्य का भोगांश ३ रा २८°३१ − ४३′ = ३ रा २७°४८′ इसमें अयनांश २२°४०′ जोड़ा तो आया ४ रा २०°२८′। यही सूर्य का उदयकालिक सायन भोगांश है। इसलिए पृष्ठ ३०६ के अनुसार

सूर्य की उदयकालिक क्रान्ति ज्या = ज्या ४ रा २०°२८′ × ·३९७९

= ज्या ३९°३२′ × ·३९७९

= ·६३३६ × ·३९७९

= ·२५२१

∴ सूर्य की उदयकालिक क्रान्ति = १४°३६′

काशी का अक्षांश २५°२०′ है। इसलिए इस दिन काशी में उदयकालिक सूर्य की चरज्या = स्परे १४°३६′ × स्परे २५°२०′

= ·२६०५ × ·४७३४

= ·१२३३

∴ चरांश = ७°५′

∴ चरकाल = ७१ पल

यह धनात्मक है क्योंकि क्रान्ति उत्तर है।

उज्जैन से काशी का पूर्व देशान्तर १ घड़ी १२ पल ५० वि० (देखो पृष्ठ ६६) अथवा १ घड़ी १३ पल है।

उज्जैन के स्पर्श काल में काशी का देशान्तर १ घड़ी १३ पल जोड़ने पर काशी के मध्य रात्रि से —५७ पल + १घड़ी १३ पल पर अर्थात् १६ पल पर काशी में ग्रहण का स्पर्श देख पड़ेगा।

परन्तु मध्यम मध्य रात्रि से ११ पल ऊपर स्पष्ट मध्य रात्रि होती है। इसलिए स्पष्ट मध्य रात्रि से १६ पल — ११ पल = ५ पल उपरान्त काशी में ग्रहण का स्पर्श देख पड़ेगा।

इस दिन का चर काल + ७१ पल = + १ घड़ी ११ पल है। इसलिए सूर्योदय से १ घड़ी ११ पल पर धूप घड़ी में ६ बजेगा।

इसलिए सूर्योदय से प्रातः काल के ६ बजे तक	= १ घड़ी ११ पल
प्रातः काल के ६ बजे से मध्य रात्रि तक	= ४५ घड़ी ० पल
मध्य रात्रि से स्पर्श काल तक	= ० घड़ी ५ पल
योग	४६ १६

इस प्रकार यह सिद्ध हो गया कि सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार काशी में चन्द्रग्रहण का स्पर्श सूर्योदय से ४६ घड़ी १६ पल के उपरान्त होगा।

काशी में सर्वग्रास ग्रहण का आरम्भ काल इस प्रकार जाना जाता है :—

	घड़ी	पल
उज्जैन की मध्यम मध्य रात्रि से सम्मीलन-काल तक का समय	२	३१
काल-समीकरण घटाया *		—११
उज्जैन की स्पष्ट मध्यरात्रि से सम्मीलन काल तक का समय	२	२०
काशी का पूर्व देशान्तर	= + १	१३
६ बजे प्रातःकाल से मध्यरात्रि तक	= ४५	०
चरकाल	+ १	११
योग	४९	४४

* काल-समीकरण यद्यपि धनात्मक है तथापि यहाँ घटाया गया है इसका कारण यह है कि जब स्पष्ट काल ज्ञात रहता है तब उसमें धनात्मक काल-समीकरण जोड़ने से जो आता है वह मध्यम काल होता है परन्तु जब मध्यम काल ज्ञात हो और स्पष्ट काल जानना होता है तब धनात्मक काल समीकरण मध्यम काल से घटाना पड़ता है क्योंकि स्पष्ट काल मध्यम काल से कम होता है।

अर्थात् काशी में सूर्योदय से ४६ घड़ी ४४ पल पर सर्वग्रास ग्रहण का आरम्भ होगा और पूरा चन्द्रबिम्ब अन्धकारमय हो जायगा।

स्पर्श काल में स्थित्यर्ध काल का दूना जोड़ देने से मोक्षकाल और सम्मीलन-काल में विमर्दार्ध का दूना जोड़ देने से उन्मीलन काल ज्ञात हो जायँगे।

स्थित्यर्ध = ४ घड़ी २० पल

∴ ग्रहण की स्थिति = ८ घड़ी ४० पल

स्पर्शकाल ४६ घड़ी १६ पल, सूर्योदय से

∴ मोक्षकाल ५४ घड़ी ५६ पल "

विमर्दार्ध = ५४ पल

∴ विमर्द अथवा सर्वग्रास ग्रहण की स्थिति = १ घड़ी ४४ पल

सम्मीलन-काल सूर्योदय से ४६ ४४ पर

∴ उन्मीलनकाल सूर्योदय से ५१ २८ पर

सब का सार

	उपर्युक्त गणना के अनुसार		बापूदेव शास्त्री के पत्रा के अनुसार	
	घ०	पल	घ०	पल
स्पर्श	४६	१६	४६	८
सम्मीलन	४६	४४	४८	३६
मध्य	५०	३६	५०	४०
उन्मीलन	५१	२८	५२	४३
मोक्ष	५४	५६	५५	११

म० म० बापूदेव शास्त्री के पत्रे में ग्रहण काल के सम्बन्ध में जो समय दिये हैं वे नाविक पञ्चाङ्ग (Nautical almanac) से बिलकुल मिलते-जुलते हैं। इसलिए ये समय बिल्कुल शुद्ध हैं। सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार निकाले हुए समय इनसे बहुत भिन्न हैं। इसलिए अब यह देखना है कि इस भिन्नता का कारण क्या है?

सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार ग्रहण के जो मूलाङ्क आये हैं उनकी तुलना ज्योतिर्गणित से निकाले हुए मूलाङ्कों से करने पर देख पड़ता है कि सूर्य और चंद्रमा के भोगांश दोनों रीतियों के अनुसार प्रायः एकसे हैं परन्तु राहु के भोगांशों में बड़ा अन्तर है जिसके कारण चंद्रमा के शर में महान् अन्तर पड़ जाता है। इसलिए यह जानना आवश्यक है कि यदि राहु का यथार्थ भोगांश नवीन रीति से जानकर चंद्रमा का शर जाना जाय और इसी शर से चंद्र-ग्रहण की गणना की जाय तो क्या आता है।

ज्योतिर्गणित के अनुसार राहु का भोगांश १२०°४′·५ होता है। इस ग्रंथ के अनुसार इस वर्ष का अयनांश २२°४७′ होता है परन्तु सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार १६७६ वि० की मेष संक्रान्ति जिस ममय हुई थी उस समय अयनांश २२°३७′ ३८″·१ था (देखो पृ० २५२)। दो वर्ष में अयनांश की वृद्धि

=५८″·६६३३४४×२+·०००१११×३²

=११७″ ३२६७+·००१

= ११७″·३२७७

=१′ ५७″·३३

१६८१ वि० की मेष संक्रान्ति से १२४ दिन बाद श्रावण को पूर्णिमा हुई इसलिए १२४ दिन में अयनांश की वृद्धि १६″·६३ होगी। इसलिए श्रावणी पूर्णिमा के दिन अयनांश=२२°३७′ ३८″·१+१′ ५७″·३+१६″·६

=२२° ३६′ ५५″

=२२°४०′ स्वल्पान्तर से

इससे प्रकट है कि ज्योतिर्गणित का मेष विन्दु सूर्य सिद्धान्त के मेष विन्दु से इस वर्ष ७′ आगे था। इसलिए जब ज्योतिर्गणित के अनुसार राहु का भोगांश १२०°४′.५ है तब सूर्य-सिद्धान्त के मेष-विन्दु से स्पष्ट राहु का भोगांश १२०° ११′·५ होगा। राहु के इसी भोगांश से चन्द्रमा का शर जानकर ग्रहण काल जानने से यह पता चलेगा कि केवल राहु की गति में संशोधन कर देने से सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार निकाला हुआ ग्रहण काल यथार्थता से कितना भिन्न है।

पूर्णिमान्त काल का स्पष्ट चंद्रमा सूर्य-सिद्धान्तानुसार २६८°३४′

,, राहु दृग्गणितानुसार १२०°११′·५

,, राहु से चंद्रमा का अन्तर १७८°२२′.५

दृग्गणित अथवा ज्योतिर्गणित के अनुसार चन्द्रमा का परमशर ५°६′ होता है न कि ४°३०′ जैसा कि सूर्य-सिद्धान्त में लिखा है। इसलिए चन्द्रमा की पूर्णिमान्त-कालिक शरज्या

$$=\frac{\text{ज्या } ५^\circ ६' \times \text{ज्या } १७८^\circ २२'·५}{३४३८}$$

$$=\frac{\text{ज्या } ५^\circ ६' \times \text{ज्या } १^\circ ३७'.५}{३४३८}$$

$$=\frac{३०६ \times ९७·५}{३४३८}$$

$=८'.७६$

इसलिए पूर्णिमान्तकालिक चन्द्र शर भी ८′.७६ ही हुआ। चन्द्र शर के इसी मान को मानैक्य खंड और मानान्तर खंड के साथ रख कर गणना करने से पहले की तरह

ग्रास का परिमाण $= ६०'.६३ - ८'.७६ = ५१'.८७$

$$\text{स्थित्यर्ध} = \frac{६० \text{ घड़ी} \times \sqrt{\left\{(६०.६३ + ८.७६)(६०.६३ - ८.७६)\right\}}}{७६५.५}$$

$$= \frac{६० \times \sqrt{\left\{६९.३९ \times ५१.८७\right\}}}{७६५.५} \text{ घड़ी}$$

$$= \frac{६० \times ५९.९९}{७६५.५} \text{ घड़ी}$$

$= ४$ घड़ी ४२ पल

इसलिए ग्रहण स्थिति काल $= ९$ घड़ी २४ पल

$$\text{विमर्दार्ध} = \frac{६० \text{ घड़ी} \times \sqrt{\left\{(२७.३१ + ८.७६)(२७.३१ - ८.७६)\right\}}}{७६५.५}$$

$$= \frac{६० \times \sqrt{\left\{३६.०७ \times १८.५५\right\}}}{७६५.५} \text{ घड़ी}$$

$$= \frac{६० \times २५.८६७}{७६५.५} \text{ घड़ी}$$

$= २$ घड़ी १.६५ पल

इसलिए विमर्द अथवा सर्वग्रास स्थिति काल $= ४$ घड़ी ३ पल के लगभग

	घ.	पल	
पूर्णिमान्त काल	$=$ ३	२३	मध्यरात्रि के उपरान्त
स्थित्यर्ध घटाया	$-$ ४	४२	
स्पर्श काल	$-$ १	१९	

ऋण चिह्न प्रकट करता है कि १ घड़ी १९ पल मध्यरात्रि से पहले का समय है।

पहले लिखे हुए सब संस्कार संक्षेप में यों लिखे जाते हैं :—

	घड़ी	पल
स्पर्श काल	$-$ १	१९
काशी का देशान्तर	$+$ १	१३

काल समीकरण	−०	११
चरकाल	+१	११
मध्यम प्रातःकाल से मध्यम मध्यरात्रि तक	+४५	०
काशी के सूर्योदय से स्पर्शकाल का आरम्भ	४५	५४ पर होगा ।
पूर्णिमान्त काल	३	२३ मध्यरात्रि के उपरान्त
विमर्दार्ध	−२	१·७
सम्मीलन काल	१	२१·३ मध्यरात्रि के उपरान्त
काशी का देशान्तर	+१	१३
काल समीकरण	−०	११
चरकाल	+१	११
प्रातःकाल से मध्य रात्रि तक	४५	०
काशी के सूर्योदय के सर्वग्रास का आरम्भ	४८	३४·३ पर होगा ।
विमर्द काल	४	३·४
∴ काशी के सूर्योदय से उन्मीलन	५२	३३·७ पर होगा

इसी प्रकार स्पर्शकाल में ग्रहण स्थिति काल जोड़ने से काशी के सूर्योदय से ५५ घड़ी १८ पल पर ग्रहण का मोक्ष होगा ।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि सूर्य-सिद्धान्त के राहु के भोगांश की जगह राहु का यथार्थ भोगांश प्रयोग करने से सर्वग्रास ग्रहण का आरम्भ और अन्त यथार्थता के बहुत निकट हो जाता है । इन सब बातों से जान पड़ता है कि सूर्य-सिद्धान्त में राहु का भगण काल बहुत अशुद्ध है । इसकी अपेक्षा ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य के अनुसार राहु की गणना बहुत शुद्ध है और यथार्थता के बहुत निकट है ।

यह पहले बतलाया गया है कि ग्रहण की गणना करने के लिए सूर्य और चन्द्रमा के लंबन, बिम्ब, दूरी, इत्यादि की जानकारी जितनी सूक्ष्म हो ग्रहण-काल उतना ही शुद्ध आते हैं । यह भी दिखलाया गया है कि सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार सूर्य और चन्द्रमा की जो गति बिम्बमान इत्यादि निकलते हैं वह स्थूल हैं । यदि इन सबका विचार दृग्गणित के अनुसार किया जाय तो ग्रहण के प्रत्यक्षकाल और गणित सिद्ध काल में कुछ भी अन्तर न पड़ेगा । इसलिए कम से कम ग्रहण काल का शुद्ध समय

जानने के लिए अपने सिद्धान्त ग्रन्थों में ऐसे संशोधनों का समावेश करना चाहिए जो दृग्गणित से सिद्ध होते हैं। ऐसे संशोधनों की पूरी जानकारी कराने के लिए यह आवश्यक है कि हमारे यहां एक वेधशाला ऐसी हो जिससे अर्वाचीन ज्योतिष का पठन-पाठन सुगमतापूर्वक हो सके। मेरी समझ में यह अधर्म है कि हम अपने पंचागों में ग्रहण, शृङ्गोन्नति, ग्रहोदय, ग्रहास्त, इत्यादि की गणना करने के लिए पाश्चात्य देशों में बने हुए नाविक पंचांगों के आश्रित हों परन्तु इनके सिद्धान्तों के पठन-पाठन का स्वतन्त्र प्रबन्ध न करें।

अब संक्षेप में यह दिखलाया जायगा कि ज्योतिर्गणित के अनुसार इस ग्रहण के मूलाङ्क क्या हैं।

पूर्णमान्तकालिक मूलाङ्क

स्पष्ट रवि	११८°५६′·२३
स्पष्ट चन्द्र	२६८°५६′·२३
रविदिन गति	५७′·६
चन्द्र दिन गति	१४°८′·१
राहु	१२०°४′·५
रवि लम्बन	०′·१५
चन्द्र परम लम्बन	५६′·३
चन्द्र बिम्ब	३२′·४
भूभा बिम्ब	८७′·०
मानैक्य खंड	५६′·६
मानान्तर खंड	२७′·२
अयनांश	२२°४७′
चन्द्र शर उत्तर	६′·६
प्रातःकाल की सूर्य क्रान्ति	१४°३१′·३

यह पहले बतलाया गया है कि अयनांशों में भिन्नता क्यों है। इस भिन्नता के कारण रवि राहु और चन्द्रमा के भोगांशों में भी ७′ का अन्तर हो जायगा। इन मूलाङ्कों से यदि ग्रहण की गणना की जाय तो नाविक पञ्चांग में दिये हुए समय से २ या ३ पल का अन्तर रह जाता है। इसका कारण यह है कि ऊपर सूर्य और चन्द्रमा की दैनिक गतियां ही ली गयी हैं जबकि सूक्ष्म गणना के लिये इनका प्रत्येक घड़ी की गति स्पर्श, सम्मीलन, उन्मीलन कालों को जान कर काम लेना चाहिए।

इसी प्रकार चन्द्रमा के शर की भी गणना करनी चाहिए जैसा कि चित्र ९८ के सम्बन्ध में बतलाया गया है। ऐसा करने से गणना का विस्तार बहुत हो जायगा इसलिए वह नहीं दिखलाया जाता।

स्पर्श काल और मोक्ष काल के स्फुट वलनों की गणना—

स्फुट वलन के लिए आक्षवलन और अयन वलन का जानना आवश्यक है। आक्षवलन के लिए चन्द्रमा की तात्कालिक क्रान्ति और नतकाल जानना चाहिए।

क्रान्ति की गणना—

ऊपर बतलाया गया है कि स्थित्यर्थ ४ घड़ी ४२ पल है जिसमें चन्द्रमा १°४′२८″ अथवा १°४′·५ चलता है क्योंकि चन्द्रमा की दैनिक गति ८२३′ है।

	पूर्णिमान्त कालिक चन्द्र भोगांश	२९८°३४′
	स्थित्यर्ध में चन्द्रमा की गति	१°४′·५
	∴ स्पर्शकालिक चन्द्र भोगांश	२९७°२९′·५
और	मोक्षकालिक चन्द्र भोगांश	२९९°३८′·५
	राहु का भोगांश दोनों कालों में	१२०°११′·५
	∴ स्पर्श काल में राहु से चन्द्रमा का अन्तर	१७७°१८′
	मोक्ष काल में राहु से चन्द्रमा का अन्तर	१७९°२७′

$$\text{स्पर्शकालिक चन्द्र शर ज्या} = \frac{\text{ज्या } ५°९′ \text{ ज्या } १७७°१८′}{३४३८}$$

$$= \frac{\text{ज्या } ५°९′ \text{ ज्या } २°४२′}{३४३८}$$

$$= \frac{३०९ \times १६२}{३४}$$

$$= १४′·६$$

∴ स्पर्शकालिक चन्द्र शर $= १४′·६$

$$\text{मोक्षकालिक चन्द्र शर ज्या} = \frac{\text{ज्या } ५°९′ \text{ ज्या } १७९°२७′}{३४३८}$$

$$= \frac{३०९ \times ३३}{३४३८} = ३′$$

∴ मोक्षकालिक चन्द्र शर $= ३′$

स्पर्शकालिक चन्द्र भोगांश = २९७°२९′·५
अयनांश = २२°४०′
स्पर्शकालिक चन्द्र सायन भोगांश = ३२०°९′·५
इसी प्रकार मोक्षकालिक चन्द्र सायन भोगांश = ३२२°१८′·५
स्पर्शकालिक चन्द्र मध्यम क्रान्ति ज्या = ज्या २३°२७′ ज्या ३२०°९′·५
= ·३९७९ × ·६४०५
= ·२५४६
∴ मध्यम क्रान्ति = १४°४६′ दक्षिण
चन्द्र शर = ०°१४′·६ उत्तर
∴ स्पर्शकाल के चन्द्रमा की स्पष्ट क्रान्ति = १४°३१′·४ दक्षिण

यह स्पष्टाधिकार श्लोक ५८ के अनुसार है। यदि शुद्ध गणना करनी हो तो पृ० २०२ में बतलायी गयी रीति से काम लेना चाहिए जो विस्तार भय से यहां छोड़ दी जाती है।

इसी प्रकार मोक्षकालिक चन्द्र मध्यम क्रान्ति = १४°५′ दक्षिण
शर = ३′ उत्तर
∴ ,, चन्द्र स्पष्ट क्रान्ति = १४°२′ दक्षिण

नतकाल की गणना—

चन्द्रमा का नतकाल जानने के लिए पहले सूर्य का नतकाल जानना पड़ता है। मध्याह्न काल में सूर्य यामोत्तर वृत्त पर रहता है और मध्य रात्रि काल में भी वह क्षितिज के नीचे यामोत्तर वृत्त पर रहता है इसलिए पृथ्वी की छाया का केन्द्र मध्य रात्रि काल में ठीक यामोत्तर वृत्त पर रहता है क्योंकि पृथ्वी की छाया का केन्द्र सूर्य से ठीक १८०° पर रहता है। इसलिए मध्यरात्रि काल में पृथ्वी की छाया के केन्द्र का नतकाल शून्य होता है। यदि यह जान लिया जाय कि स्पर्शकाल मध्य रात्रि से कितना पहले या पीछे है तो यह सहज ही जाना जा सकता है कि स्पर्शकाल में पृथ्वी की छाया के केन्द्र का नतकाल कितना पूर्व या पच्छिम है। चन्द्रग्रहण के समय चन्द्रमा पृथ्वी की छाया के बहुत पास रहता है और यह मालूम ही रहता है कि चन्द्रमा पृथ्वी की छाया से कितने अंतर पर है इसलिए चन्द्रमा का नतकाल सहज ही जाना जा सकता है।

		घड़ी	पल
उदयकालिक सूर्य का चरकाल	=	१	११
मध्यम प्रातः काल से मध्य रात्रि तक	=	४५	०

सूर्योदय से मध्यरात्रि तक	=	४६	११
सूर्योदय से स्पर्शकाल का समय	=	४५	५४
मध्य रात्रि से पहले स्पर्शकाल का समय	=	०	१७

इसलिए जो कुछ ऊपर कहा गया है उसके अनुसार स्पर्शकाल के समय पृथ्वी की छाया के केन्द्र का नतकाल १७ पल=१०२ असु है अर्थात् स्पर्श के आरंभ के उपरान्त १७ पल पर पृथ्वी की छाया का केन्द्र ठीक यामोत्तर वृत्त पर आ जावेगा।

		घड़ी	पल
सूर्योदय से मोक्ष का समय	=	५५	१८
,, मध्य रात्रि का समय	=	४६	११
मध्य रात्रि के उपरान्त मोक्ष का समय		९	७

इसलिए मोक्षकालिक पृथ्वी की छाया के केन्द्र का नत काल ९ घड़ी ७ पल या ५४७ पल या ३२८२ असु है।

अब यह देखना है कि स्पर्श काल के समय भूमाकेन्द्र का भोगांश क्या है ?

पूर्णिमान्त कालिक सूर्य का भोगांश	=११८°३४′
स्थित्यर्ध ४ घड़ी ४२ पल में सूर्य की गति	= ४′·५
∴ स्पर्शकालिक सूर्य का भोगांश	=११८°२९′·५
सूर्य से भूभाकेन्द्र का अन्तर	=१८०°०
∴ स्पर्शकालिक भूभाकेन्द्र का भोगांश	=२९८°२९′·५
चंद्रमा का भोगांश	=२९७°२९′·५
∴ स्पर्श के समय भूमा केन्द्र से चंद्रमा का अंतर	=१°

इसको विषुवकाल में बदलने के लिए स्पष्टाधिकार के श्लोक ५९ से काम लेना चाहिए। चंद्रमा सायन कुम्भ राशि में है जिससे लंका के उदयासु १७९४ [१] हैं (देखो पृष्ठ ३१४) इसलिये १° के उदयासु १७९४÷३०=५९·८=६०

स्पर्शकालिक भूभाकेन्द्र का पूर्व नतकाल	=	१०२ असु
भूभाकेन्द्र से चन्द्रमा का अन्तर पच्छिम की ओर	=	६० असु
स्पर्श कालिक चंद्रमा का नतकाल		४२ असु
	=	४२′
पूर्णिमान्तकालिक सूर्य का भोगांश	=	११८°३४′

१. नतकाल जानने के लिये लंका के उदयासुओं से काम लेना चाहिये क्योंकि मध्य लग्न का विचार लंका के उदयासुओं से ही किया जाता है, देखो पृष्ठ ३२९-३३०।

स्थित्यर्ध ४ घड़ी ४२ पल में सूर्य की गति = ४′·५

∴ मोक्षकालिक सूर्य का भोगांश =११८°३८′·५

सूर्य से भूभाकेन्द्र का अंतर =१८०°

∴ मोक्षकालिक भूभाकेन्द्र का भोगांश =२९८°३८′·५

" चंद्रमा का भोगांश =२९९°३८′·५

" भूभाकेन्द्र से चन्द्रमा का अंतर पूर्व की ओर } १°

इसके उदयासु भी पूर्ववत् ६० असु होंगे।

मोक्षकालिक भूभाकेन्द्र का पच्छिम नतकाल =३२८२ असु

भूभाकेन्द्र से चंद्रमा का अंतर पूर्व की ओर = ६० असु

∴ मोक्षकालिक चंद्रमा का नतकाल ३२२२ असु

=३२२२′

=५३°४२′

चंद्रमा की स्पर्शकालीन चर ज्या =स्परे २५°२०′ × स्परे १४°३१′·४

=·४७३४ × ·२५९०

=·१२२६

∴ स्पर्शकालीन चरांश =७°२′

पृष्ठ २९२ के समीकरण (ग) के अनुसार,

नतांश कोटिज्या =(कोज्या ४२′ − ज्या ७°२′) कोज्या २५°२०′ कोज्या १४°३१′·४

= (·९९९९ − ·१२२६) × ·९०३८ × ·९८०६

= ·८७७३ × ·९०३८ × ·९६८

= ·७६७५

∴ स्पर्शकालीन नतांश = ३९°५३′

पृष्ठ २७६ के अनुसार,

$$\text{ज्या अग्रा} = \frac{\text{ज्या } १४°३१′४}{\text{ज्या } ३९°५३′ \times \text{कोज्या } २५°२०′} + \text{को स्परे } ३९°५३′ \times \text{स्परे } २५°२०′$$

$$= \frac{·२५०८}{·६४१२ \times ·९०३८} + १·१९६७ \times ·४७३४$$

= ·४३२८ + ·५६६५

$= \cdot ९९९३$

$\therefore$ अग्रा $= ८७°५४'$

$\therefore$ पूर्व विन्दु से चन्द्रमा का दिगंश $= ८७°५४'$ दक्षिण

और उत्तर विन्दु से ,, $= ९०° + ८७°५४'$

$= १७७°५४'$ दक्षिण

$\therefore$ स्परे (ख उ ग) $=$ अग्रा कोटि ज्या $\times$ नतांश स्पर्शरेखा

$=$ कोज्या $८७°५४' \times$ स्परे $३९°५३'$

$= \cdot ०३६६ \times \cdot ८३५६$

$= \cdot ०३०६$

समप्रोत वृत्त का नतांश $= १°४५'$

$$\text{ज्या (आक्षवलन)} = \frac{\text{ज्या } २५°२०' \text{ ज्या } १°४५'}{\text{कोज्या } १४°३१'}$$

$$= \frac{\cdot ०१३१}{\cdot ९६८} = \cdot ०१३५$$

$\therefore$ आक्षवलन $= ०°४६'$ उत्तर

स्पर्शकालीन चन्द्रमा का भोगांश $२९७°२९'\cdot ५$

अयनांश $२२°४०'$

स्पर्शकालीन चन्द्रमा का सायन

भोगांश $३२०°९'\cdot ५$

इसमें $९०°$ जोड़ने से चंद्रमा का सायन भोगांश $५०°९'\cdot ५$ होता है जिसकी क्रान्ति उत्तर होगी। इसलिए आयनवलन भी उत्तर होगा।

$\therefore$ पृष्ठ ४८० के सूत्र (२) के अनुसार

$$\text{ज्या (आयनवलन)} = \frac{\text{ज्या } २३°२७' \times \text{कोज्या } ३२०°९'\cdot ५}{\text{कोज्या } १४°३१'\cdot ५}$$

$$= \frac{\cdot ३९७९ \times \cdot ७६७९}{\text{कोज्या } १४°३१'\cdot ५}$$

$= \cdot ३१५७$

$\therefore$ आयनवलन $= १८°२४'$ **उत्तर**

$\therefore$ स्पर्शकालीन स्फुटवलन $= १८°२४' + ०°४६'$

$= १९°१०'$ **उत्तर**

चंद्रमा की मोक्षकालीन चरज्या = स्परे २५°२०′ स्परे १४°२′

= ·४७३४ × ·२४६६

= ·११८३

∴ मोक्षकालीन चरांश = ६°४८′

∴ मोक्षकालीन नतांश कोटिज्या

= (कोज्या ५३°४२′ − ज्या ६°४८′) कोज्या २५°२०′ कोज्या १४२′

= (·५९२० − ·११८३) × ·९०३८ × ·९७०२

= ·४७३७ × ·९०३८ × ·९७०२

= ·४१५४

∴ मोक्षकालीन नतांश = ६५°२७′

$$\text{ज्या अग्रा} = \frac{\text{ज्या } १४°२′}{\text{ज्या } ६५°२७′ \text{ कोज्या } २५°२०′} + \text{कोस्परे } ६५°२७′ \times \text{स्परे } २५°२२′$$

$$= \frac{·२४२५}{·९०९६ \times ·९०३८} + ·४५६८ \times ·४७३४$$

= ·२९५० + ·२१६३

= ·५११३

∴ अग्र = ३०°४५′

∴ पच्छिम विन्दु से चंद्रमा का मोक्षकालीन दिगंश = ३०°४५′ दक्षिण

∴ स्परे (खउग) = अग्रा कोटिज्या × नतांश स्पर्शरेखा

= कोज्या ३०°४५′ स्परे ६५°२७′

= ·८५९५ × २·१८९३

= १·८८१७

∴ समप्रोतवृत्त का नतांश = ६२°१′

$$∴ \text{ज्या (आक्षवलन)} = \frac{\text{ज्या } २५°२०′ \text{ ज्या } ६२°१′}{\text{कोज्या } १४·२′}$$

$$= \frac{·४२७९ \times ·८८३०}{·९७०२}$$

$$= \frac{·३७७८}{·९७०२} = ·३८९४$$

∴ आक्षवलन = २२°५५′ दक्षिण

मोक्षकालीन चंद्रमा का भोगांश $=$ २९९°३८′·५

अयनांश $=$ २२°४०′

चंद्रमा का सायन भोगांश $=$ ३२२°१८′·५

इसमें ९०° जोड़ने से सायन भोगांश ५२°१८′·५ होगा जिसकी क्रान्ति उत्तर होती है।

इसलिए आयनवलन उत्तर होगा।

$$\text{ज्या (आयनवलन)} = \frac{\text{ज्या २३°२७′ कोज्या ३२२°१८′·५}}{\text{कोज्या १४°२′}}$$

$$= \frac{\text{·३९७९} \times \text{कोज्या ३७°४१′·५}}{\text{·९७०२}}$$

$$= \frac{\text{·३९७९} \times \text{·७९१३}}{\text{·९७०२}}$$

$$= \frac{\text{·३१४९}}{\text{·९७०२}}$$

$$= \text{·३२४६}$$

$\therefore$ आयनवलन $=$ १८°५६′ उत्तर

$\therefore$ स्फुटवलन $= -$ २२°५५′ $+$ १८°५६′

$=$ ३°५९′ दक्षिण

इसी प्रकार सम्मीलन, मध्य और उन्मीलन कालों के स्फुटवलन जाने जा सकते हैं।

स्फुटवलनों और ग्रह बिम्बों के अंगुलात्मक मान जानने का जो नियम २६वें श्लोक में बतलाया गया है उसकी आवश्यकता परिलेखाधिकार में पड़ेगी इसलिए वहीं इसका उदाहरण भी दिया जायगा।

इस प्रकार चन्द्रग्रहणाधिकार नामक चौथे अधिकार का विज्ञानभाष्य समाप्त हुआ।

पंचम अध्याय

सूर्यग्रहणाधिकार

(संक्षिप्त वर्णन)

[श्लोक १—किस समय सूर्य के लंबन और नति शून्य होते हैं। श्लोक २-८—लंबन जानने के नियम। श्लोक ९—लंबन का संस्कार देकर असकृत्कर्म से अमावस्यान्त काल निश्चय करना। श्लोक १०-११—नति जानने के नियम। श्लोक १२—नति और चन्द्रमा के शर के योग या अन्तर से नति-संस्कृत-शर जाना जाता है। श्लोक १३—नति-संस्कृत-शर से स्थिति, विमर्द इत्यादि जाना चाहिए। श्लोक १४-१७—स्पर्श और मोक्षकाल के लंबन को जानकर असकृत्कर्म से फिर स्पर्श और मोक्षकाल की गणना करनी चाहिए।]

लंबन और नतिका अभाव कब होता है—

मध्यलग्नसमे भानौ हरिजस्य न संभवः।
अक्षोदङ्मध्यभक्रान्तिसाम्ये नावनतेरपि ॥१॥

अनुवाद—(१) जब सूर्य त्रिभोन लग्न पर होता है तब उसमें भोगांश-लंबन का अभाव होता है। जब किसी स्थान का उत्तर अक्षांश और त्रिभोन लग्न की उत्तर क्रान्ति समान होते हैं अर्थात् जब सूर्य ख-स्वस्तिक पर रहता है तब उसमें नति अर्थात् शर-लंबन का अभाव होता है।

विज्ञानभाष्य—इस श्लोक के मध्यगत का अनुवाद त्रिभोन लग्न किया गया है यद्यपि पृष्ठ ३२९ में बतलाया गया है कि मध्यलग्न वित्रिम लग्न अथवा **त्रिभोन** लग्न से भिन्न होता है। परन्तु यहाँ आचार्य ने त्रिभोन लग्न को मध्य इसलिए **लिख दिया** कि यह उदय और अस्त लग्नों के मध्य में होता है, यद्यपि एक ही शब्द **का प्रयोग** दो अर्थों में संदिग्ध होता है। यदि मध्यलग्न का वह अर्थ लिया जाय जो त्रिप्रश्नाधिकार के श्लोक ४८ में माना गया है तो भाव अशुद्ध ठहरता है इसलिये यहाँ मध्य-लग्न का अर्थ त्रिभोन लग्न ही है। यदि सूर्य या कोई ग्रह त्रिभोन लग्न पर हो तो भोगांश-लंबन शून्य होता है। इसकी उपपत्ति त्रिप्रश्नाधिकार में विस्तारपूर्वक बतलायी गयी है (देखो पृ० ४१०)। शर-लंबन के सम्बन्ध में भी वहीं बतलाया जा चुका है।

देशकालविशेषेण यथाऽवनतिसंभवः।
लम्बनस्यापि पूर्वान्यदिग्वशाच्च तथोच्यते ॥२॥

अनुवाद—(२) पहले श्लोक में बतलायी गई स्थिति से भिन्न दशा में देश कालानुसार जैसी नति होती है और जब सूर्य विलिभ लग्न से पूर्व वा पश्चिम होता है तब उसमें जैसा भोगांश-लंबन होता है उसकी चर्चा यहाँ की जाती है।

लग्नं पर्वान्तनाडीभिः कुर्यात्स्वैदयासुभिः।
तज्ज्याऽन्त्यापक्रमज्याघ्ना लम्बज्याप्तोदयाभिधा ॥३॥
तथा लङ्कोदयैर्लग्नं मध्यसंज्ञं यथोदितम्।
तत्कान्त्यक्षांशसंयोगो दिक्साम्येऽन्तरमन्यथा ॥४॥
शेषं नतांशास्तन्मौर्वी मध्यज्या साऽभिधीयते।
मध्योदयज्याऽभ्यस्ता त्रिज्याप्ता वर्गितं फलम् ॥५॥
मध्यज्यावर्गतः प्रोज्झ्य दृक्क्षेपः शेषतः पदम्।
तत्त्रिज्यावर्गविश्लेषान्मूलं शङ्कुस्स दृग्गतिः ॥६॥

अनुवाद—(३) पर्वान्तकाल अर्थात् अमावस्या के अंतकाल का खण्ड इष्ट स्थान के (राशि के) उदयासुओं से जान कर उसकी ज्या को परमक्रान्ति ज्या से गुणा करके गुणनफल को इष्ट स्थान की लम्ब ज्या या अक्षांश-कोटिज्या से भाग देने पर जो लब्धि आती है उसे उदय या उदयज्या कहते हैं। (४) पर्वान्त काल में लङ्का के उदयासुओं से पहले कहे हुए के अनुसार मध्यलग्न अथवा दशम लग्न जानकर उसकी क्रान्ति को इष्ट स्थान के अक्षांश में जोड़ दे यदि दोनों की दिशायें एक ही हों। यदि दिशाएँ भिन्न हों तो क्रान्ति और अक्षांश का अन्तर निकाले। (५) जोड़ने या घटाने से जो कुछ आवे वही मध्य लग्न का नतांश है। इसी की ज्या को मध्य ज्या कहते हैं। मध्यज्या को उदयज्या से गुणा करके गुणनफल को त्रिज्या से भाग दे और लब्धि का वर्ग करे। (६) और वर्गफल को मध्य ज्या के वर्ष से घटा और शेष का वर्गमूल निकाले। वर्गमूल निकालने को जो आता है वही दृक्क्षेप कहलाता है। दृक्क्षेप के वर्ग को त्रिज्या के वर्ग से घटा कर वर्गमूल निकालने से जो आता है वही शंकु या दृग्गति है।

विज्ञानभाष्य—इन चार श्लोकों में जो क्रिया बतलायी गई है उसकी उपपत्ति त्रिप्रश्नाधिकार पृष्ठ ४११-४१३ में अच्छी तरह बतलायी गयी है। उसी स्थान के चित्र ७९ से प्रकट होता है कि मध्य लग्न की क्रान्ति और इष्ट स्थान के अक्षांश को कब जोड़ना चाहिये और कब घटाना चाहिये। इनकी दिशाओं के जानने की रीति वही है जो पृष्ठ २६५-२६६ में बतलायी गयी है।

यहाँ लग्न का अर्थ सायन लग्न समझना चाहिये।

नतांशबाहुकोटिज्ये स्फुटे दृक्क्षेपदृग्गति।
एकज्यावर्गतश्छेदो लब्धं दृग्गति जीवया ॥७॥

मध्यलग्नार्कविश्लेषज्या छेदेन विभाजिता ।
रवीन्द्वोर्लम्बनं ज्ञेयं प्राक्पश्चाद्घटिकादिकम् ।।८।।

अनुवाद—(७) स्थूल रूप से दशम लग्न के नतांश की ज्या को दृक्क्षेप और कोटिज्या को दृग्गति कह सकते हैं । एक राशि की ज्या के वर्ग को दृग्गति रूपी जीवों से भाग देने पर जो आता है उसे छेद कहते हैं । (८) त्रिभोन लग्न से सूर्य जितना दूर रहता है उसे विश्लेष या विश्लेषांश कहते हैं । इसकी ज्या को छेद से भाग देने पर सूर्य या चन्द्रमा का पूर्व या पश्चिम लंबन घड़ियों में आ जाता है । यदि सूर्य त्रिभोन लग्न से पूर्व है तो पूर्व लंबन और पश्चिम है तो पश्चिम लंबन होता है ।

विज्ञानभाष्य—दृक्क्षेप और दृग्गति के शुद्ध रूप तो वही हैं जो ६वें श्लोक में बतलाये गये हैं । परन्तु उनके जानने की रीति लम्बी है इसलिये ७वें श्लोक के पूर्वार्ध में छोटी रीति बतलायी गयी है जो स्थूल है । इस छोटी रीति में मध्यलग्न के नतांश को ही त्रिभोन लग्न का नतांश मान लिया गया है क्योंकि इन दोनों में बहुत कम अंतर रहता है । परन्तु इससे स्थूलता अवश्य आ जाती है ।

छेद और विश्लेषांश से सूर्य और चन्द्रमा का भोगांश लंबन आनन की जो रीति यहाँ बतलायी गयी है उसकी उपपत्ति त्रिप्रश्नाधिकार पृष्ठ ४१३ और पृष्ठ ४०५-४०६ में बतलायी गई है ।

मध्यलग्नाधिके भानौ तिथ्यन्तात्प्रविशोधयेत् ।
धनमूनेऽसकृत्कर्म यावत्सर्वं स्थिरीभवेत् ।।९।।

अनुवाद—(९) त्रिभोनलग्न के भोगांश से सूर्य का भोगांश अधिक हो तो सूर्य त्रिभोन लग्न से पूर्व रहता है इसलिए सूर्य और चन्द्रमा के भोगांश लंबनों के अंतर को अमावस्या के अंतकाल से घटाना चाहिए । परन्तु यदि त्रिभोनलग्न के भोगांश से सूर्य का भोगांश कम हो तो सूर्य और चन्द्रमा के भोगांश लंबों के अंतर को आमावस्या के अंतकाल में जोड़ना चाहिए । अमावस्या के अंतकाल में भोगांश लम्बन का इस प्रकार संस्कार करने पर जो समय आता है वह भोगांश लम्बन-संस्कृत-अमावस्या का अंतःकाल होता है । इस काल में सूर्य और चन्द्रमा के लम्बनों के अंतर को पूर्वोक्त रीति से फिर निकाले और उपर के लम्बन संस्कृत-अमावस्यान्त काल में जोड़े, घटावे । इससे जो समय आवे उसका फिर लंबन निकाले और इसका भी संस्कार करे । इस प्रकार का असकृत कर्म तब तक करे जब तक कि समय स्थिर न हो जाय अर्थात् जब लम्बन का पुनः पुनः संस्कार करने पर अमावस्यान्त काल वही आवे जो पहले आया था तब यह काम बन्द कर देना चाहिए । ऐसा करने से ग्रहण का मध्यकाल ज्ञात होता है ।

विज्ञान भाष्य—असकृत्कर्म से गणना अधिक शुद्ध हो जाती है जैसा पहले बतलाया गया है (देखो पृष्ठ २६६)। जिस समय पूर्व की ओर जाते हुए चन्द्रमा भोगांश सूर्य के भोगांश के समान हो जाता है उसी समय अमावस्या का अंत होता है। इसको गणित सिद्ध अमावस्यान्त कहते हैं। जब सूर्य त्रिभोन लग्न से पूर्व की ओर होता है तब चन्द्रमा लंबन के कारण पूर्व की ओर लटक कर अमावस्या के पहले ही सूर्य के सम्मुख हो जाता है इसलिए जितना दोनों का सापेक्ष लंबन होता है उतना ही पहले स्पष्ट अमावास्या का अंत होता है। इसी करण श्लोक के पूर्वार्ध में गणितसिद्ध अमान्त काल से लंबन घटाने को कहा गया है। इसके प्रतिकूल जब सूर्य त्रिभोन लग्न से पच्छिम होता है तब चन्द्रमा गणितसिद्ध अमावस्यान्त काल में भी सूर्य के सन्मुख नहीं देख पड़ता क्योंकि लंबन के कारण कुछ नीचे पच्छिम की ओर लटक पड़ता है। इसलिए इस समय जितना लंबन होता है उतना ही पीछे स्पष्ट अमावस्यान्त काल होता है इसीलिए यह लंबन जोड़ने से स्पष्ट अमावस्या होती है।

दृक्क्षेपशशीततिग्मांश्वोर्मध्यभुक्त्यन्तराहतः ।
तिथिघ्नत्रिज्यया भक्तो लब्धं साऽवनतिर्भवेत् ॥१०॥
दृक्क्षेपात्सप्ततिहृताद् भवेद्वाऽवनतिः फलम् ।
अथवा त्रिज्यया भक्ता सप्तसप्तकसङ्गुणा ॥११॥
मध्यज्यादिग्वशात्तस्या दिग्ज्ञेया दक्षिणोत्तरा।
दिक्साम्ये सेन्दुविक्षेपयुक्ता विश्लेषिताऽन्यथा ॥१२॥

अनुवाद—(१०) चन्द्रमा और सूर्य की मध्यम दैनिक गतियों के अतर को दृक्क्षेप से गुणा करके गुणनफल को पन्द्रह-गुणित-त्रिज्या से भाग दे दो। ऐसा करने से जो लब्धि आवेगी वही अवनति या नति या शरलम्बन है। (११) अथवा दृकक्षेप को उत्तर से भाग देने पर जो लब्धि आती है वह नति होती है अथवा दृक्क्षेप को ४६ से गुणा करके गुणनफल को त्रिज्या से भाग देने पर जो लब्धि आती है वह नति है। (१२) नति मध्यज्या की दिशा के अनुसार उत्तर या दक्षिण दिशा में होती है, अर्थात् यदि मध्यज्या की दिशा खस्वस्तिक से दक्षिण दिशा है तो नति की दिशा भी दक्षिण होगी और यदि मध्य ज्या की दिशा ख-स्वस्तिक से उत्तर है तो नतिकी दिशा उत्तर होगी। यदि चन्द्रमा के शर और नति की दिशायें एक ही हैं तो इनको जोड़ना चाहिये और भिन्न हों तो घटाना चाहिए। ऐसा करने से जो आवे वह नति संस्कृत-चन्द्र-शर या विक्षेप है।

विज्ञानभाष्य—१० और ११ श्लोकों का सार यह है।

$$\text{नति} = \frac{(\text{चन्द्रमा की दैनिक गति-सूर्य की दैनिक गति}) \times \text{दृक्क्षेप}}{१५ \times \text{त्रिज्या}}$$

$$\frac{\text{दृक्क्षे}}{७०} = \frac{\text{दृक्क्षेप} \times ४९}{\text{त्रिज्या}}$$

यहाँ यह ध्यान में रखना चहिए कि त्रिज्या ३४३८ कला के समान होती है। यदि दृक्क्षेप अर्थात् त्रिभोनलग्न के नतांश की ज्या भारतीय रोति से लिखी जायगी तभी त्रिज्या से भाग देने की आवश्यकता पड़ेगी परन्तु यदि दृक्क्षेप का मान आज-कल की प्रथानुसार दशमलव भिन्न में हो तो ३४३८ की जगह त्रिज्या का मान १ हो जायगा।

त्रिप्रश्नाधिकार के पृष्ठ ४०७ में नति का मान यह सिद्ध किया गया है—

भु = लि ज्या त्रा कोज्या श — लि कोज्या त्रा ज्या श कोज्या व

यहाँ शरलंबन के लिए भु, ग्रह के परम लम्बन के लिए लि, त्रिभोन लग्न के नतांश के लिए त्रा और ग्रह के शर के लिए श तथा विश्लेषांश के लिए व माने गये हैं।

सूर्य ग्रहण के समय चन्द्रमा का शर अथवा श बहुत कम होता है यदि इसको बहुत छोटा मान लिया जाय तो ज्या श को शून्य और कोज्या श को आजकल की प्रथा के अनुसार १ मानना पड़ेगा। ऐसी दशा में

भु = लि ज्या त्रा

होगा। अर्थात् परम लंबन को त्रिभोन लग्न के नतांश की ज्या या दृक्क्षेप से गुणा करने पर जो आता है वही नति है। श्लोक १० में यही बात बतलायी गयी है। सूर्यग्रहण के समय सूर्य और चन्द्रमा दोनों की नतियों का ज्ञान आवश्यक है क्योंकि इन नतियों के अंतर के समान ही चन्द्रमा की सापेक्ष नति होती है इसलिए सूर्य और चन्द्रमा की गतियों के अतर से दृक्क्षेप को गुणा करने को कहा गया है। पृष्ठ ४०९ में यह बतलाया गया है कि ग्रह का परम लंबन उसकी दैनिक गति का पन्द्रहवाँ भाग होता है इसलिए चन्द्रमा का सापेक्ष परम लंबन सूर्य और चन्द्रमा की गतियों का गतियों का पन्द्रहवाँ भाग माना गया है। इस प्रकार दसवें श्लोक की उपपत्ति सिद्ध होती है। अब स्पष्ट है कि इक प्रकार जो नति निकलती है वह स्थूल है। शुद्धता-पूर्वक नति का मान जानने के लिए वह सूत्र काम में लाना चाहिए जो पृष्ठ ४०७ में सिद्ध किया गया है।

११वें श्लोक में नति जानने की जो दूसरी रीतियां बतलायी गयी हैं वह पहली ही रीति के दो रूप हैं। चन्द्रमा और सूर्य की मध्यम दैनिक रीतियों का अन्तर = ७९०·६ − ५९′·१ = ७३१·५। इसलिए इसका १५वां भाग = ४८·७७ = ४९ स्थूल रूप से। यदि इस मान को पहले सूत्र में उत्थापित किया जाय तो

$$\text{नति} = \frac{४६ \times \text{दृक्क्षेप}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{४६ \times \text{दृक्क्षेप}}{३४३८}$$

$$= \frac{\text{दृक्क्षेप}}{\frac{३४३८}{४६}}$$

$$= \frac{\text{दृक्क्षेप}}{७०\frac{८}{४६}}$$

$$= \frac{\text{दृक्क्षेप}}{७०}$$

तथा स्थितिविमर्दार्धग्रासाद्यं च यथोदितम् ।
प्रमाणं वलनाभीष्टग्रासादि हिमरश्मिवत् ।।१३।।

अनुवाद—(१३) नति संस्कृत चन्द्र शर से चन्द्रग्रहणाधिकार में बतलाई गई रीति के अनुसार स्थित्यर्ध, विमर्दार्ध, ग्रास, प्रमाण वलन, अभीष्ट ग्रास इत्यादि अर्थात् सम्मीलन, उन्मीलन, मोक्षकाल इत्यादि जानना चाहिए । इससे जो स्थित्यर्ध, विमर्दार्ध आवेंगे वे मध्यम स्थित्यर्ध, विमर्दार्ध कहलाते हैं ।

विज्ञान भाष्य—लंबन और नति की क्रिया के बाद सूर्य ग्रहण की गणना उसी प्रकार की जाती है जिस प्रकार चन्द्र ग्रहण की गणना बतलाई गयी है । क्योंकि जैसे चन्द्र ग्रहण में भूछाया छादक और चन्द्रमा छाद्य होता है, वैसे ही सूर्य ग्रहण में चन्द्रमा छादक और सूर्य छाद्य होता है । छाद्य और छादक का जैसा सम्बन्ध चन्द्र ग्रहण में भी होता है ।

स्थित्यर्धोनाधिकात्प्राग्वत्तिथ्यन्ताल्लम्बनं पुनः ।
ग्रासमोक्षोद्भवं साध्यं तन्मध्यहरिजान्तरम् ।।१४।।
प्राक्कपालेऽधिकं मध्याद् भवेत् प्राग्ग्रहणं यदि ।
मौक्षिकं लम्बनं हीन पश्चार्धे तु विपर्ययात् ।।१५।।
तदा मोक्षस्थितिदले देयं प्राग्ग्रहणे तथा ।
हरिजान्तरजं शोध्यं यत्रैतत्स्याद्विपर्ययात् ।।१६।।
एतदुक्तं कपालैक्ये दिग्भेदे लम्बनैकता ।
स्वे स्वे स्थितिदले योज्या विमर्दार्धेपि चोक्तवत् ।।१७।।

अनुवाद—(१४) श्लोक ६ के अनुसार असकृत्कर्म से जो अमावस्यान्तकाल आवे उसमें १३वें श्लोक के अनुसार जो स्थित्यर्ध आवे उसको घटाकर स्पर्शकाल और जोड़कर मोक्षकाल जाने । फिर स्पर्शकाल और मोक्षकाल के भोगांश लम्बन जानकर ग्रहण के मध्यकाल के भोगांश लंबन से अन्तर निकाले ।

(१५) यदि ग्रहण पूर्व कपाल में हो अर्थात् यदि ग्रहण काल में सूर्य का भोगांश त्रिमोन लग्न के भोगांश से अधिक हो तो स्पर्शकाल का लंबन मध्यकाल के लंबन से अधिक होगा और मोक्षकाल का लंबन मध्यकाल के लंबन से कम होगा। परन्तु यदि ग्रहण पच्छिम कपाल में हो अर्थात् ग्रहण काल में सूर्य का भोगांश त्रिभोन लग्न के भोगांश से कम हो तो लंबन का परिमाण उलटे क्रम से होगा अर्थात् स्पर्श-काल का लंबन मध्यकाल के लंबन से कम होगा और मोक्षकाल का लंबन मध्यकाल के लंबन से अधिक होगा।

(१६) दोनों दशाओं में अर्थात् चाहे स्पर्श और मोक्ष पूर्व कपाल में हो चाहे पच्छिम कपाल में, १४वें श्लोक के अनुसार निकाले हुए लंबनों के अन्तर को मोक्ष-स्थित्यर्ध और स्पर्श-स्थित्यर्ध में जोड़कर स्पष्ट स्थित्यर्ध जानना चाहिये। परन्तु यदि १५वें श्लोक में कहे हुए नियम के विपरीत दशा हो अर्थात् यदि पूर्वकपाल में स्पर्श-कालिक लंबन मध्यकालिक लंबन से कम हो और मोक्षकालिक लंबन मध्यकालिक लंबन से अधिक हो अथवा पश्चिम कपाल में स्पर्शकालिक लंबन मध्यकालिक लंबन से अधिक हो और मोक्षकालिक लंबन मध्यकालिक लंबन से कम हो तो १४वें श्लोक के अनुसार प्राप्त अन्तर को स्पर्श या मोक्ष स्थित्यर्ध से घटाना चाहिये तब स्पष्ट स्थित्यर्ध आता है।

(१७) जब स्पर्श, मध्य ओर मोक्ष तीनों एक ही कपाल में हों तभी उपर्युक्त लंबनों का अन्तर निकल कर उपर्युक्त क्रिया करनी चाहिए। यदि स्पर्श एक कपाल में हो और मध्य दूसरे कपाल में अथवा मध्य एक कपाल में हो और मोक्ष दूसरे कपाल में तब स्पर्श और मध्यकाल के लंबनों को अथवा मध्य और मोक्ष काल के लंबनों को जोड़कर अपने-अपने स्थित्यर्ध से जोड़ देना चाहिए। इसी प्रकार स्पष्ट स्थित्यर्ध विमर्दार्ध भी जानना चाहिये।

विज्ञान भाष्य—यह स्पष्ट है कि ८वें श्लोक के अनुसार आए हुए अमावस्यान्तकाल में अथवा ग्रहण के मध्यकाल में सूर्य और चन्द्रमा के जो लंबन आते हैं वे स्पर्शकाल और मोक्षकाल के लंबन से भिन्न होते हैं क्योंकि स्पर्श और मोक्ष के समय सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा की सतत गति के कारण इनके गतांश भिन्न होते हैं और त्रिप्रश्नाधिकार में दिखलाया गया है कि लंबन नतांश पर निर्भर होता है अर्थात् यदि नतांश अधिक हो तो लंबन भी अधिक होता है और नतांश कम हो तो लंबन भी कम होता है (पृष्ठ ३८३)। इसलिये १४वें श्लोक में स्पर्शकाल और मोक्ष-काल के लंबन जानने की आवश्यकता बतलायी गयी है और मध्यकाल के लंबन से अन्तर जानने को बतलाया गया है। यदि स्पर्श और मोक्ष दोनों पूर्वकपाल में हों अर्थात् त्रिलोभन लग्न पर आने के पहले ही ग्रहण का स्पर्श और मोक्ष हो जाय तो

यह स्पष्ट है कि स्पर्श के समय सूर्य या चन्द्रमा का नतांश मध्यकाल के सूर्य या चन्द्रमा के नतांश से अधिक होगा और मोक्ष के शमय कम होगा क्योंकि त्रिलोभन-लग्न ही क्षितिज के ऊपर क्रान्तिवृत्त का सबसे ऊँचा विन्दु है और सूर्य चन्द्रमा उदय होने पर क्रमशः ऊपर उठते जाते हैं अर्थात् इनका नतांश कम होता जाता है इसलिये स्पर्शकाल का नतांश मध्यकाल के नतांश से अधिक और मोक्षकाल का नतांश मध्य-काल के नतांश से कम होता है। परन्तु यदि स्पर्श और मोक्ष दोनों पच्छिम कपाल में हो तो स्पर्श के समय सूर्य का नतांश मध्यमकालीन नतांश से कम होगा और मोक्ष कालीन नतांश मध्यमकालीन नतांश से अधिक होगा क्योंकि पच्छिम कपाल में सूर्य या चन्द्रमा नीचे उतरते जाते हैं इसलिये इनका नतांश बढ़ता जाता है।

स्पर्श काल और मध्यकाल लंबनों का जो अन्तर होता है उसको पूर्व कपाल के मध्यम स्थित्यर्ध में जोड़ने से स्पष्ट स्पर्श स्थित्यर्ध आता है क्योंकि पहिले जो स्थित्यर्ध निकाला जाता है वह मध्य काल के लंबन के अनुसार होता है परन्तु स्पर्श काल में लंबन कुछ अधिक होता है इसलिये इसके कारण चन्द्रमा के कुछ और नीचे अर्थात् पूर्व की ओर लटक पड़ने से स्पर्श कुछ और पहले देख पड़ता है अर्थात् स्थित्यर्ध का मान बढ़ जाता है। परन्तु मध्य काल की अपेक्षा मोक्षकाल में (पूर्व कपाल में होने के कारण) लंबन कम रहता है इसलिए इन दोनों में जो अन्तर होता है उसको भी मध्यम स्थित्यर्ध में जोड़ने से मोक्षकालीन स्पष्ट स्थित्यर्ध आता है क्योंकि जब मोक्षकालीन लंबन कम होता है तब चन्द्रमा पूर्व की ओर उतना नहीं लटकता जितना मध्य काल में लटकता है इसलिए सूर्य के सम्मुख देर तक रहता है और मोक्षकालिक स्थित्यर्थ भी बढ़ जाता है।

पच्छिम कपाल में लंबन के कारण चन्द्रमा पच्छिम की ओर लटक पड़ता है जिससे उसको सूर्य के सम्मुख आने में कुछ विलम्ब हो जाता है क्योंकि चन्द्रमा की गति सदैव पूर्व पूर्व की ओर होती है और लंबन के कारण जान पड़ता है मानों वह पच्छिम की ओर भी जा रहा है। इसी कारण ग्रहण का मध्यकाल गणितसिद्ध अमावस्यान्त काल से कुछ पीछे होता है। परन्तु चन्द्रमा का स्पर्शकालिक नतांश मध्यकालिक नतांश से कम होता है क्योंकि जिस समय ग्रहण का स्पर्श होता है उससे कुछ देर पीछे ग्रहण का मध्य होता है और इतनी देर में पृथ्वी की दैनिक गति के कारण अथवा प्राचीनो के मत से प्रवाह वायु की गति के कारण सूर्प चन्द्रमा सभी नीचे हो जाते हैं। इसलिए पच्छिम कपाल में स्पर्शकालिक लंबन मध्यकालिक लंबन से नतांश के कम होने के कारण कम होता है जिसका प्रभाव यह होता है जिसका प्रभाव यह होता है कि ग्रहण के स्पर्श करने में उतना विलम्ब नहीं लगता जितना ग्रहण के मध्यकाल में विलम्ब लगता है अर्थात् स्पर्श के समय लंबन के कम होने से

स्पष्ट स्पर्श स्थित्यर्ध बढ़ जाता है। इसी प्रकार मोक्ष के समय चन्द्रमा का नतांश मध्यकालिक नतांश से अधिक हो जाने के कारण मोक्षकालिक लंबन मध्यकालिक लंबन से अधिक होता है। इसका प्रभाव यह होता है कि चन्द्रमा देर तक सूर्य के सम्मुख रहता है क्योंकि मोक्ष के समय चन्द्रमा सूर्य से ऊपर देख पड़ता है परन्तु अधिक लंबन के कारण यह ऊपर न जाकर नीचे ही लटका रहता है जिससे मोक्षकाल में भी कुछ विलम्ब हो जाता है अर्थात् स्पष्ट मोक्ष स्थित्यर्ध भी बढ़ जाता है।

इस प्रकार यह सिद्ध है कि चाहे स्पर्श और मोक्ष दोनों पूर्व कपाल में हों चाहे स्पर्श और मोक्ष दोनों पच्छिम कपाल में हों, प्रत्येक दशा में ग्रहण का समय कुछ बढ़ जाता है अर्थात् स्पर्श कुछ पहले और मोक्ष कुछ देर में होता है। इसलिए स्पर्श और मध्यकाल तथा मध्य और मोक्षकाल के लंबनों में जो अन्तर होता है उसको मध्यम में जोड़ने से स्पष्ट स्थित्यर्ध ज्ञात होता है। स्पर्शकालिक स्पष्ट स्थित्यर्ध को ग्रहण के मध्यकाल में घटाने से प्रत्यक्ष स्पर्श काल तथा मोक्षकालिक स्पष्ट स्थित्यर्ध को ग्रहण के मध्यमकाल में जोड़ने से प्रत्यक्ष मोक्षकाल होता है।

यहाँ तक तो १६ वें श्लोक के पूर्वार्ध की व्याख्या हुई। इसके उत्तरार्ध का अर्थ समझ में नहीं आता क्योंकि इसमें जिस दशा की गई है वह प्रकृति के विरुद्ध है। पूर्व कपाल में स्पर्शकालिक लंबन मध्यकालिक लंबन से सदैव अधिक रहेगा क्योंकि स्पर्शकालिक नतांश मध्यकालिक नतांश से सदैव अधिक होता है और इसी तर्क से मोक्षकालिक लंबन मध्यकालिक लंबन से सदैव कम रहता है। इसी प्रकार पच्छिम कपाल में स्पर्शकालिक लंबन मध्यकालिक लंबन से सदैव कम रहेगा और मोक्षकालिक लंबन मध्यकालिक लंबन से सदैव अधिक रहता है। हाँ, यदि ग्रस्तोदय या ग्रस्तास्त ग्रहण हो तो और बात है। परन्तु ऐसी दशा में विशेष रीति से गणना करनी पड़ेगी और किसी स्थान के लिए केवल यह जानना आवश्यक होगा कि ग्रस्तोदय ग्रहण में मोक्ष कब होता है। पहली दशा में यही विचारना होगा कि सूर्योदय के समय सूर्य का कितना भाग ग्रस्त रहता है और यह ग्रस्त भाग कितनी देर में निकल के बाहर हो जायगा। इस क्रिया के लिए चन्द्रग्रहणाधिकार के श्लोक १८, १६, और २० की सहायता लेनी पड़ेगी। दूसरी दशा में अर्थात् ग्रस्तास्त ग्रहण में यह विचारना होगा कि सूर्यास्त के समय सूर्य का कितना भाग ग्रस्त रहता है और इसके कितने पहले ग्रहण का स्पर्श हुआ। इस क्रिया के लिए भी उन्हीं श्लोकों की सहायता लेनी पड़ेगी।

अब तक जो कुछ कहा गया है वह उस दशा के लिये है जब स्पर्श और मोक्ष एक कला में हों। यदि स्पर्श एक कपाल में हो और मध्य दूसरे कपाल में अथवा मध्य एक कपाल में हो और मोक्ष दूसरे कपाल में तब स्पर्श और मध्य काल के लग्नों को

अथवा मध्य और मोक्षकाल के लंबनों को जोड़ने से जो आवे उसे मध्य स्थित्यर्ध में जोड़ना चाहिए क्योंकि ऐसी दशा में ग्रहण काल बहुत बढ़ जायगा। मान लो कि स्पर्श पूर्व कपाल में और मध्य पच्छिम कपाल में हुआ। यह स्पष्ट है कि ऐसी दशा में ग्रहण का मध्य काल पच्छिम लंबन के कारण कुछ देर में होगा अर्थात् चन्द्रमा हट जाने के कारण सूर्य के सम्मुख कुछ देर में आवेगा। परन्तु स्पर्श के समय चन्द्रमा का लम्बन पूर्व की ओर होगा इसलिये स्पर्श कुछ पहले ही हो जायगा। पहले कारण से ग्रहण का मध्यकाल कुछ पीछे हट जायगा और दूसरे कारण से स्पर्श काल कुछ पहले हो जायगा इसलिये स्पर्श से मध्य काल तक का समय दोनों कारणों से बढ़ जायगा। ऐसी दशा में स्पर्श और मध्यकालिक लंबनों के योग को मध्यम स्थित्यर्ध में जोड़ने से ही स्पर्शकालिक स्पष्ट स्थित्यर्ध ज्ञात होगा परन्तु मोक्षकालिक स्पष्ट स्थित्यर्ध के लिये दोनों लंबनों का अन्तर ही मध्यम स्थित्यर्ध में जोड़ना होगा क्योंकि मध्य काल और मोक्ष काल दोनों पच्छिम कपाल में होंगे केवल स्पर्श ही पूर्व कपाल में होगा। परन्तु यदि स्पर्श और मध्य दोनों पूर्व कपाल में हो और मोक्ष पच्छिम कपाल में हों तो स्पर्शकालिक स्पष्ट स्थित्यर्ध के लिये लंबनों के अंतर को मध्य स्थित्यर्ध में जोड़ना होगा और मोक्षकालिक स्पष्ट स्थित्यर्ध जानने के लिये लंबनों के योग के मध्यम स्थित्यर्ध में जोड़ना होगा।

यहाँ तक जो रीति स्पर्श और मोक्ष काल जानने के लिए बतलायी गयी है उसी रीति से सम्मीलन और उन्मीलन कालों को भी जानना चाहिए।

उदाहरण—काशी के लिये संवत् १९८२ वि० के माघ कृष्णा अमावस्या के सूर्य ग्रहण की गणना—

सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार—

पहले इस दिन के सुर्य, चन्द्रमा, चन्द्रोच्च और राहु को स्पष्ट करना चाहिये। इसलिये कलियुग के आरंभ से इस दिन तक का अहर्गण जानना आवश्यक है।

कलियुग से १९८१ वि० की श्रावणी पूर्णिमा तक १८३५५४७·५२३६ दिन होते हैं। संवत् १९८१ की श्रावणी पूर्णिमान्त काल से १९८२ के माघ के अमावस्यान्त काल तक १७॥ चान्द्र मास होते हैं क्योंकि इस बीच में कोई मलमास नहीं है। एक चांद्रमास २९·५३०५८८ सावन दिनों के समान होता है। इसलिये

१९८१ की श्रावणी पूर्णिमान्त तक	१८३५५४७·५२३६	दिन
१७ चांद्र मास	= ५०२·०२	दिन
आधा चांद्र मास	= १४·७६५३	दिन

∴ कलियुग से १९८२ की माघी अमावस्या तक १८३६०६४·३०८९

∴ इस दिन की मध्यरात्रि तक का अहर्गण = १८३६०६४

इसको ७ से भाग देने पर शेष ६ बचता है। कलियुग का आरम्भ गुरुवार की मध्यरात्रि में हुआ था इसलिये जिस समय का अहर्गण ऊपर आया है वह बुधवार की मध्यरात्रि का है। परन्तु १९८२ वि० की स्पष्ट माघी अमावस्या गुरुवार को थी इसीलिये उपर्युक्त अहर्गण पूर्णिमान्त गणना से माघ की चतुर्दशी और अमान्त गणना से पौष की चतुर्दशी की मध्यरात्रि का है। इस अमावस्या का अन्त गुरुवार के मध्यान्ह के लगभग हुआ है। इसलिये चतुर्दशी और अमावस्या दोनों की मध्य-रात्रिकाल के चन्द्र, सूर्य इत्यादि को स्पष्ट करना चाहिए। जिस प्रकार पृष्ठ ४८५ में इन ग्रहों की स्थिति जानी गयी है उसी प्रकार यहाँ भी करने से माघ कृष्ण १४ की अर्द्धरात्रि काल में मध्यम स्थिति यह आती है (यदि पूरे भगण न लिखे जायँ)—

सूर्य	= ८	राशि	२९	अंश	३३·१४४	कला
चन्द्रमा	= ८	"	२५	"	४९·६५३	"
चन्द्रोच्च	= ०	"	२६	"	९·११६	"
राहु	= २	"	२३	"	३०·३८९	"

यहाँ चन्द्रोच्च की स्थिति में ३ राशि जोड़ना और राहु की स्थिति को ६ राशि से घटाना चाहिए (देखो पृष्ठ ४८६)।

इसलिये १९८२ वि० के माघ कृष्ण १४ बुधवार की मध्यरात्रि काल में उज्जैन में

सूर्य का मध्यम स्थान	=	८रा	२९°	३३′·१४४
चन्द्रमा का "	=	८	२५	४९′.६५३
चन्द्रोच्च का "	=	३	२६	९′·११६
राहु का "	=	३	६	२९′·६११

सूर्य का मन्दकेन्द्र = सूर्य का मन्दोच्च—सूर्य का मध्यम स्थान

$$= २^{रा}\ १७°१७′·५२ - ८^{रा}\ २९°३३′·१४$$

$$= ५^{रा}\ १७°४४′·३८$$

$$= १\ पाद + २^{रा}\ १७°४४′·३८$$

∴ दूसरे पाद का गम्य भाग = १२°१५′·६२ = ७३५′·३२

$$सूर्य की स्फुट मन्द\text{-}परिधि = ८४०′ - २०′ \times \frac{भुजज्या\ ७३५′·६}{३४३८}$$

$$= ८४०′ - २०′ \times \frac{७३०}{३४३८}$$

$$= ८४०′ - ४′ = ८३६′$$

$\therefore$ भुजफल $= \frac{८३६ \times ७३०}{२१६००}$

$= २८'·२५४$

यही सूर्य का मन्द फल है। यह धनात्मक है क्योंकि मन्द केन्द्र अजादि है (देखो पृष्ठ १५४)। इसलिये बुधवार को मध्यरात्रि का स्पष्ट सूर्य

$= ८^{रा}\ २९°३३'·१४४ + २८'·२५४$

$= ९^{रा}\ ०°\ १'·३९८$

सूर्य की स्पष्ट दैनिक गति * $= ५९'८'' + \frac{८३६ \times २१९ \times ५९'८}{२१६०० \times २२५}$

$= ५९'८'' + २'१३''·६$

$= ६१'२१''·६ = ६१'·३६$

चन्द्रमा का मंद केन्द्र = चन्द्र मन्दोच्च — मध्यम चन्द्र

$= ३^{रा}\ २६°९'·११६ - ८^{रा}२५°४९'·६५३$

$= ७^{रा}\ ०°१९'·४६३$

$= २$ पाद $+ १$ रा $०°\ १९'·४६३$

$= २$ पाद $+ ३०°१९'·४६३$

$\therefore$ तीसरे पाद का गत भाग $= ३०°१९'·४६$

$= १८१९'·५$

चन्द्रमा की स्फुट मन्द-परिधि $= ३२° - २०' \times \frac{\text{भुज ज्या } १८१९'·५}{३४३८}$

$= ३२° - २०' \times \frac{१७३५·५५}{३४३८}$

$= ३२° - १०'$

$३१°५०' = १९१०'$

$\therefore$ भुजफल $= १९१० \times \frac{१७३५·५५}{२१६००}$

$= १५३'·४६८$

$= २°३३'·४६८$

यही चंद्रमा का मन्दफल है। यह ऋणात्मक है क्योंकि चन्द्र-केन्द्र तुलादि है। इसलिये बुधवार की मध्यरात्रि का स्पष्ट चन्द्रमा

* देखो पृष्ठ १५७

=८रा २५° ४९′·६५३ − २°३३′·४६८

=८रा २३° १६′·१८५

स्पष्ट सूर्य और चन्द्रमा से प्रकट है कि बुधवार की मध्य रात्रि को चन्द्रमा सूर्य से ७ अंश के लगभग पच्छिम है इसलिये अमावस्या अगले दिन होगी। यह जानने के लिये कि अमावस्या कब होगी, चन्द्रमा की स्पष्ट गति जाननी चाहिये। चतुर्दशी की मध्यरात्रि का मध्यम चन्द्र=८रा २५° ४९′·६५३

दैनिक मध्यमगति = १३°१०′·५८३

अमावस्या की मध्यरात्रि का मध्यम चंद्र=९रा ९° ०′·२३६

चतुर्दशी की मध्यरात्रि का चन्द्रोच्च=३रा २६° ९′·११६

एक दिन की गति ६′·६८३

अमावस्या की मध्यरात्रि का चन्द्रोच्च=३रा २६° १५′·७९९

∴ अमावस्या की मध्यरात्रि का चन्द्र मन्द केन्द्र

=३रा २६°१५′·७९९ − ९रा९°०′·२३६

=६रा १७°१५′·५६३

=२ पाद+१७°१५′·६

∴ तीसरे पाद का गत भाग=१७°१५′·६=१०३५′·६

∴ चन्द्रमा की स्फुट मन्द परिधि=३२° − २०′ × $\frac{\text{भुज ज्या } १०३५·६}{३४३८}$

= ३२° − २०′ × $\frac{१०१९·६}{३४३८}$

=३२° − ६′

=१९१४′

∴ भुजफल=१९१४ × $\frac{१०१९·६}{२१६००}$ =९०′·३४८=१°३०′·३४८

∴ मन्दफल=१°३०′·३४८

∴ अमावस्या की मध्यरात्रि का स्पष्ट चन्द्रमा

=९रा९°०′·२३६ − १°३०′·३४८

=९रा७°२९′·८८८

∴ चन्द्रमा की स्पष्ट दैनिक गति=९रा७°२९′·८८८ − ८रा२३°१६′·१८५

=१४°१३′·७०३=८५३′·७०३

सूर्य की स्पष्ट दैनिक गति = ६१′·३६

चन्द्रमा और सूर्य की दैनिक गतियों का अन्तर = १३°१२′·३४३
= ७९२′·३४३

मध्यरात्रि का स्पष्ट सूर्य = ९रा०°१′·३९८

,, ,, चन्द्रमा = ८रा २३°१६′·१८५

दोनों का अन्तर = ६°४५′·२१३ = ४०५′·२१३

सूर्य और चन्द्रमा में ७९२′·३४३ का अन्तर ६० घड़ियों में होता है इसलिये ४०५′·२१३ का अन्तर $\frac{४०५·२१३ \times ६०}{७९२·३४३}$ घड़ियों में होगा जो ३० घड़ी ४१·१ पल के समान है। इसलिये उज्जैन में माघी अमावस्या का अन्त बुधवार की मध्य रात्रि से ३० घड़ी ४१·१ पल उपरान्त अथवा गुरुवार के मध्यम ६ बजे प्रातःकाल से १५ घड़ी ४१·१ पल पर हुआ।

काशी उज्जैन से १ घड़ी १२·८ पल पूर्व है (देखो पृष्ठ २५१) इसलिये काशी में गुरुवार के मध्यम ६ बजे प्रातःकाल से १६ घड़ी ५३.९ पल पर अमावस्या का अन्त हुआ।

अब अमावस्यान्तकालिक सूर्य, चन्द्रमा और राहु को स्पष्ट करना चाहिये।

६० घड़ी में सूर्य की स्पष्ट गति = ६१′·३६

∴ ३० ,, ,, = ३०′·६८

३० पल में सूर्य की गति = ३०″·६८ = ·५११३ कला

१० पल में सूर्य की गति = ·१७०४

१ ,, ,, = ·०१७०

·१ ,, ,, = ·००१७

∴ ३० घड़ी ४१·१ पल में सूर्य की गति = ३१′·३८०

बुधवार की मध्यरात्रि का स्पष्ट सूर्य = ९रा०° १′·३९८

∴ अमावस्यान्तकालिक स्पष्ट सूर्य = ९रा०°३२′·७७८

६० घड़ी में चन्द्रमा की स्पष्ट गति = १४°१३′·७०३

३० ,, ,, = ७°६′·८५१५

३० पल में ,, = ७′·११४२

१० ,, ,, = २·३७१४

१ ,, ,, = ·२३७१

·१ ,, ,, = ·०२३७

३० घड़ी ४१·१ पल में ,, = ७°१६′·५९८

बुधवार की मध्य रात्रि का स्पष्ट चन्द्रमा = ८^रा २३° १६′·१८५

अमावस्यान्तकालिक स्पष्ट चन्द्रमा = ९^रा ०° ३२′·७८३

६० घड़ी में राहु की गति = ३′ ११″ = ३′·१८३३

३० ,, ,, = १·५९१६

३० पल में ,, = ·०२६५

१० ,, ,, = ०·००८८

१ ,, ,, = ·०००९

∴ ३० घड़ी ४१ पल में राहु की गति = १′·६२८

बुधवार की मध्यरात्रि का राहु = ३^रा ६° २९′·६११

∴ अमावस्यान्तकालिक राहु = ३^रा ६° २८′·०

$$\text{सूर्य बिम्ब का स्फुट व्यास} = \frac{\text{६५००} \times \text{६१·३६}}{\text{५९·१३३}} \text{ योजन}$$[१]

$$\text{चन्द्र विम्ब का स्फुट व्यास} = \frac{\text{४८०} \times \text{८५३·७०३}}{\text{७९०·५८३}} \text{ योजन}$$

चन्द्र कक्षा में सूर्य बिम्ब का स्फुट व्यास

$$= \frac{\text{६५००} \times \text{६१·३६}}{\text{५९·१३३}} \times \frac{\text{४३२००००}}{\text{५७७५३३३६}} \text{ योजन}$$[१]

$$= \frac{\text{६५००} \times \text{६१·३६} \times \text{४३२००००}}{\text{५९·१३३} \times \text{५७७५३३३६} \times \text{१५}}$$

$$= \text{३३′·६३४}$$

चन्द्रमा का स्फुट व्यास कलाओं में

$$= \frac{\text{४८०} \times \text{८५३·५०३}}{\text{७९०·५८३}} \times \frac{\text{१}}{\text{१५}}$$

$$= \text{३४′·५५५}$$

काशी में सूर्योदय का समय—

पहले यह जानना आवश्यक है कि काशी में सूर्योदय काल में सूर्य की क्रान्ति क्या थी। यह तो प्रकट ही है कि सूर्योदय काल में सूर्य का निरयन भोगांश स्थूलतः ९^रा ०° १५′ के लगभग है अर्थात् सूर्य मकर राशि के आदि विन्दु से १५′ के लगभग पूर्व है इसलिए इसकी क्रान्ति पृष्ठ ४७० की सारणी के अनुसार २१° ३२′·७ से कुछ

१. देखो चन्द्रग्रहणाधिकार श्लोक २

ही कम होगी और दक्षिण होगी । काशी में इसका चरांश १०°४७′ के लगभग होगा और चरकाल १ घड़ी ४७·८ पल होगा । इसलिए काशी में स्पष्ट सूर्योदय ६ बजकर १ घड़ी ४७·८ पल पर होगा ।

काल समीकरण—इस दिन का मध्यम सायन भोगांश जानने के लिए मध्यरात्रि के मध्यम सूर्य में १२′ जोड़ देने से प्रातःकालिक मध्यम निरयन भोगांश होता है ८रा२९°४८′ के लगभग। इसमें यदि अयनांश २२°४१′ जोड़ा जाय तो मध्यम सायन भोगांश होता है ९रा२२°२९=२९२°२९′,

∴ काल-समीकरण=२३′·१७ ज्या २९२°२९′+११२′·८३ कोज्या २९२°२९′
—१४८′ ज्या २×२९२°२९′
=२३′·१७ (—ज्या ६७°३१′)
+११२′.८३ कोज्या ६७°३१′
−१४८ ज्या ५८४°५८′[1]
=−२३′१·७×·९२४०+११२′·८३×·३८२४
−१४८′ (−·७०६७)
=२१·४+४३·२+१०४·६
=१२६·४ असु
=+२१·१ पल

काशी में सूर्योदय का स्पष्ट काल=६ बजकर १ घड़ी ४७·८ पल
काल समीकरण= +२१·१ पल

∴काशी में सूर्योदय का मध्यकाल=६ बजकर २ घड़ी ८·९ पल
परन्तु अमावस्यांत का मध्यकाल=६ बजकर १६ घड़ी ५३·९ पल
∴ सूर्योदय से अमावस्यांत तक का समय=१४ घड़ी ४५ पल
अर्थात् सूर्योदय से १४ घड़ी ४५ पल पर काशी में अमावस्या का अन्त हुआ ।

अब यदि अमावस्यान्तकालिक सूर्य से १४ घड़ी ४५ पल की सूर्य की गति घटा दी जाय तो सूर्योदय काल का स्पष्ट सूर्य ज्ञात हो जायगा जिससे सूर्य की उदयकालिक क्रान्ति, चर इत्यादि शुद्धतापूर्वक जाने जा सकते हैं ।

१· ५८४° ५८′=३६०°+१८०°+४४°५८′
∴ ज्या ५८४°५८′=ज्या (१८०°+४४°५८)=−ज्या ४४°५८′=−·७०६७

सूर्य की ६० घड़ी की गति $= ६१'\cdot३६$

$\therefore$ १५ " $= १५'३४$

और १५ पल की " $= ०'\cdot२५६$

$\therefore$ १४ घड़ी ४५ पल की गति $= १५'\cdot०८४$

अमावस्यान्तकालिक स्पष्ट सूर्य $= ९रा ०° ३२'\cdot७७८$

$\therefore$ काशी के सूर्योदय काल का स्पष्ट सूर्य $= ९रा ०° १७'\cdot६९४$

$= ९रा ०° १७'\cdot७$ के लगभग

$\therefore$ काशी के सूर्योदय के सूर्य का सायन भोगांश

$= ९रा २२° ५८'\cdot७ = ९रा २२° ५९'$

$$\text{सूर्य की क्रान्तिज्या} = \frac{\text{ज्या } ९रा २२° ५९' \times \cdot३९७९}{१}$$ (देखो पृष्ठ ३०६)

$= -$ ज्या $६७° १' \times \cdot३९७९$

$= -\cdot९२०६ \times \cdot३९७९ = -\cdot३६६३$

$\therefore$ दक्षिण क्रान्ति $= २१° २९'$

काशी की उदयकालिक चरज्या $=$ स्परे $२१° २९'$ स्परे $२५° २०'$

$= \cdot३९३६ \times \cdot४७३४ = १८६३$

चरांश $= १०° ४४'$

चरकाल $= ६४४$ असु $= १०७\cdot३$ पल $= १$ घड़ी $४७\cdot३$ पल

इसलिये काशी में स्पष्ट सूर्योदय $= ६$ बजकर १ घड़ी ४७·३ पल पर हुआ।

काल समीकरण $= २१\cdot१''$

$\therefore$ काशी में सूर्योदय का मध्यकाल $= ६$ बजकर २ घड़ी ८·४ पल

परन्तु अमावस्यान्त काल $= ६$ बजकर १६ घड़ी ५३·९ पल

$\therefore$ सूर्योदय से अमावस्यान्त काल तक का समय $= १४$ घड़ी ४५·५ पल

सूर्योदय से मध्यान्ह का समय $= १५$ घड़ी—चरकाल

$= १३$ घड़ी १२·७ पल

$\therefore$ अमावस्यान्त का नतकाल (पच्छिम) $= १$ घड़ी ३२·८ पल

अमावस्यान्त काल का उदय लग्न त्रिभोन लग्न, और मध्यलग्न, सूर्य सिद्धान्तानुसार:—

सायन राशियों के काशी के उदयासु (पृष्ठ ३१४ की तरह)

मेष	१३४५	असु	मीन
वृष	१५२५	"	कुम्भ
मिथुन	१८२१	"	मकर
कर्क	२०४१	"	धनु
सिंह	२०६३	"	वृश्चिक
कन्या	२००५	"	तुला

अमावस्यान्तकालिक स्पष्ट सूर्य $=$ ९रा०° ३२′·८
$=$ २२° ४१′

∴ अमावस्यान्तकालिक सायन सूर्य $=$ ९रा२३° १३′·८
$=$ ९रा२३ १४′

मकर राशि के भोग्यांश $=$ ६°४६′ $=$ ४०६′

काशी में मकर राशि के उदयासु $=$ १८२१

१८०० : ४०६ :: १८२१ : मकर के भोग्यासु

मकर के भोग्यासु $= \frac{४०६ \times १८२१}{१८००} =$ ४११

सूर्योदय से अमावस्यान्त तक का समय $=$ १४ घड़ी ४५·५ पल
$=$ ८८५·५ पल
$=$ ५३१३ असु

मकर के भोग्यासु	$=$	४११
कुम्भ के उदयासु		१५२५
मीन	"	१३४५
मेष	"	१३४५
योग		४६२६

इस योग को ५३१३ असुओं से घटाने पर ६८७ असु शेष होते हैं। यही वृष लग्न के गतासु हैं परन्तु वृष के उदयासु १५२५ हैं।

१५२५ : ६८७ :: १८०० : वृष के गतांश

∴ सायन वृष लग्न के गतांश $\frac{६८७ \times १८००}{१५२५} =$ ८११ कला $=$ १३°३१′

∴ सायन उदय लग्न ३०° $+$ १३°३१′ $=$ ४३°३१′

∴ अमावस्यान्तकालिक सायन त्रिभोन लग्न $=$ ४३°३१′ $-$ ९०°
$=$ ३६०° $+$ ४३°३१′ $-$ ९०
$=$ ३१३°३१′

अमावस्यान्तकालिक सूर्य सायन मकर राशि में है जिसके लङ्का में उदयासु १६३१ हैं (देखो पृष्ठ ३१४)। इसलिये सायन मकर राशि १६३१ असुओं में किसी स्थान के यामोत्तरवृत्त का उल्लंघन करता है (देखो त्रि० श्लो० ४८ और पृ० ३३०)। अमावस्यान्तकाल में सूर्य का पच्छिम नत १ घड़ी ३२·८ पल = ९२·८ पल = ५५७ असु।

जब १६३१ असुओं में मकर राशि का ३० अंश या १८०० कला यामोत्तर वृत्त को उल्लंघन करता है तब ५५७ असुओं में $\frac{५५७ \times १८००}{१६३१}$ कला = ५१६ कला = ८°३६′ करेगा। इसलिये सूर्य से मध्य लग्न ८°३६′ पूर्व है जिसे सूर्य के भोगांश में जोड़ने पर मध्य लग्न का ज्ञान होगा। परन्तु इतना जोड़ने पर कुंभराशि मध्य लग्न में हो जाती है इसलिए उत्तम यह है कि पहिले देखा जाय कि मकर राशि कितने समय में उल्लंघन करती है और जितना समय शेष रह जाय उतने में कुम्भ राशि कितना चलती है।

अमावस्यान्तकालिक सायन सूर्य ९ रा २३° १४′ है इसलिये मकर का ६°४६′ भोग्यांश है जो ४०६′ के समान है।

१८०० : ४०६ :: १६३१ : मकर के भोग्यासु

$$\therefore \text{मकर के भोग्यासु} = \frac{४०६ \times १६३१}{१८००} = ४३५·५ \text{ असु}$$

परन्तु नतकाल ५५७ असु है इसलिये कुम्भ के गतासु = १२१·५ असु। कुम्भ के लंका के उदयासु १७९४ हैं, इसलिये

१७९४ : १२१·५ :: १८०० : कुम्भ के गतांश

$$\therefore \text{कुम्भ के गतांश} = \frac{१२१·५ \times १८००}{१७९४} = १२२ \text{ कला} = २°\ २'$$

∴ अमावस्यान्त काल में कुम्भ राशि का २° २′ मध्यलग्न है। अर्थात् मध्यलग्न का सायन भोगांश = १० रा २° २′

$$\text{उदयज्या} = \frac{\text{लग्नज्या} \times \text{परम क्रान्तिज्या}}{\text{लम्बज्या}}$$

$$= \frac{\text{ज्या } ४३°३१' \times \text{ज्या } २३°\ २७'}{\text{ज्या } (९० - २५°२००')}$$

$$= \frac{·६८८६ \times ·३९७९}{·९०३८} = ३०३२$$

∴ उदय लग्न की अग्रा = १७°३६′

मध्य लग्न का सायन भोगांश=१०रा २° २′=३०२°२′

∴ मध्य लग्न की क्रान्ति ज्या=ज्या ३०२°२′ × ज्या २३°२७′

= − ज्या ५७°५८′ × ज्या २३°२७′

= − ·८४७७ × ·३६७६

= − ·३३७३

∴ दक्षिण क्रान्ति =१६°४३′

काशी का उत्तर अक्षांश =२५° २०′

∴ मध्य लग्न का नतांश =४५° ३′

पृष्ठ ४१३ के प्रथम समीकरण के अनुसार,

त्रिभोन लग्न की नतांश ज्या=कोज्या १७°३६′ × ज्या ४५°३′

=·९५२९ × ७०७७

अथवा दृक्क्षेप=·६७४४

∴ त्रिभोन लग्न का नतांश=४२°२४′

दृग्गति=त्रिभोन लग्न की उन्नतज्या

=ज्या (९०° − ४२°२४′)

=ज्या ४७°३६′

=ज्या ·७३८५

यहाँ ज्या और कोटिज्या की दशमलव सारणी के अनुसार जिसमें त्रिज्या १ मानी गयी है दृग्गति की गणना की गयी है। यदि यह सारणी न हो तो पृष्ठ ४१३ में जो रीति बतलायी गई है उसी से काम लेना चाहिये। दि लघु रिक्त सारिणी से काम लिया जाय तो और भी सुविधा होगी। त्रिभोन लग्न का नतांश जानने की भी सारणी बनायी जा सकती है जिससे सुगमतापूर्वक काम लिया जा सकता है। पृष्ठ ३२८ में तथा और स्थानों में बतलाया गया है कि किसी राशि के प्रत्येक अंश समान काल में उदय नहीं होते इसलिये यदि अनुपात से काम लिया जायगा तो राशि के उदय-विन्दु का ज्ञान स्थूल रहेगा। ऐसी दशा में ऊपर बतलायी गयी रीति से जो त्रिभोन लग्न आवेगा उसमें भी स्थूलता रहेगी क्योंकि क्रान्तिवृत्त के उदय-विन्दु से ९० अंश घटाने पर त्रिभोन लग्न आता है। इसलिये आवश्यक है कि सूर्यग्रहण की गणना के लिये क्रान्तिवृत्त के उदय-विन्दु अथवा उदय लग्न का ज्ञान शुद्धतापूर्वक किया जाय। इसी विचार से नीचे की रीति लिखी जाती है।

विषुवकाल—जिस क्षण वसंत-सम्पात-विन्दु या सायन मेष किसी स्थान के पूर्वक्षितिज पर आता है उस क्षण से किसी इष्ट काल तक के समय को विषुवकाल कहते हैं। पृष्ठ ३१८ - १९ में बतलाया गया है कि प्रयाग में अयन भाग के

उदयासु कैसे जाने जाते हैं। वहाँ अयन भाग के उदयासु १००५ बतलाये गये हैं। इसको इस प्रकार भी कह सकते हैं कि प्रयाग में जिस समय निरयन मेष का आदि विन्दु क्षितिज वृत्त पर आता है उस समय विषुवकाल १००५ असु के समान होता है। इसी प्रकार जिस समय प्रयाग में निरयन वृष का आदि विन्दु पूर्व क्षितिज पर आता है उस समय विषुवकाल २४७० असु के समान होता है। इससे प्रकट है कि यदि जानना हो कि किसी स्थान में किस समय विषुवकाल क्या होता है तो पहले तो उस समय का उदयलग्न जानना चाहिये फिर उदय लग्न का विषुवांश और चरांश जानकर दोनों का अन्तर निकालना चाहिये। यही अन्तर उस समय का विषुवकाल होता है।

इसी प्रकार यदि किसी समय का विषुवकाल ज्ञात हो तो उस समय का उदय लग्न भी जाना जा सकता है। परन्तु ऊपर की विलोम रीति से यह काम उतना सुगम नहीं है। इसलिये विषुवकाल से उदय लग्न और उदय लग्न से विषुव काल सीधे ही जानने की रीतियाँ यहाँ लिखी जाती हैं:—

उदयकाल की अग्रा—नवीन रीति से :

चित्र ६१ से स्पष्ट है कि गोलीय त्रिभुज का व पू में,

$$\frac{\text{ज्या पू का}}{\text{ज्या}\angle\text{का व पू}} = \frac{\text{ज्या व का}}{\text{ज्या}\angle\text{व पू का}}$$

यहाँ पू का उदय लग्न का की अग्रा है, $\angle$ का व पू परम क्रान्ति है, व का उदय लग्न का सायन भोगांश है और $\angle$ व पू का $=$ १८०° $-$ $\angle$ व पू द $=$ १८०° $-$ इष्ट स्थान का लंबांश

$$\therefore \text{ज्या}\ \angle\text{व पू का} = \text{ज्या}\ (१८०^\circ - \text{लम्बांश})$$
$$= \text{ज्या लम्बांश}$$
$$= \text{कोटिज्या अक्षांश}$$

$$\therefore \text{ज्या पू का} = \frac{\text{परम क्रान्ति ज्या} \times \text{ज्या सायन भोगांश}}{\text{अक्षांश कोटिज्या}}$$

यह भी उदयकालिक अग्रा जानने का एक सूत्र है जो पृष्ठ २६७ के सूत्र और पृष्ठ २७२ के सूत्र (३) के मेल से भी प्राप्त हो सकता है। इसी सूत्र से सूर्य की उदयकालिक अग्रा इस प्रकार जानी जा सकती है।

माघी अमावस्या के सूर्योदय के सूर्य का सायन भोगांश

$$= ९^{रा}२२^\circ ५९'$$
$$= २९२^\circ ५९'$$

काशी का अक्षांश $=$ २५°२०′

$$ज्या\ पूका = \frac{ज्या\ २३^\circ\ २७' \times ज्या\ २९२^\circ ५९'}{कोज्या\ २५^\circ २०'}$$

परन्तु $ज्या\ २९२^\circ ५९' = -ज्या\ (३६०^\circ - २९२^\circ ५९')$

$= -ज्या\ ६७^\circ १'$

ऋणात्मक चिन्ह यह प्रकट करता है कि उदयकालिक अग्रा पूका पूर्व बिन्दु से दक्षिण है। इसलिए

$$ज्या\ पू\ का = \frac{ज्या\ २३^\circ २७' \times ज्या\ ६७^\circ १'}{कोज्या\ २५^\circ २०^\circ}$$

लरिज्या पूका = लरिज्या २३°२७' + लरिज्या ६७°१' − लरिकोज्या २५°२०'

= ९.५९९९९ + ९.९६४१ − ९.९५६१

= ९.६०७९

∴ पूका = २३°५५'

इसी की ज्या सूर्योदय काल की उदय ज्या या अग्रा ज्या भी कहलाती है। इसी की सहायता से सूर्योदय का विषुवकाल जानना चाहिये।

सूर्योदय का विषुवकाल—यदि गोलीय त्रिभुजक कोणों आ, इ, उ, अक्षरों से और इनके सामने के भुजों को क्रमशः अ, ई, ऊ, अक्षरों से प्रकट किया जाय तो गोलीय त्रिकोणमिति से प्रकट है कि

$$स्परे\ \frac{ऊ}{२} = \frac{ज्या\ \frac{1}{2}\ (अ + इ)}{ज्या\ \frac{1}{2}\ (अ - इ)} \times स्परे\ (आ - ई)$$

सूर्य का सायन भोगांश २९२°५९' अथवा १८०°+११२°५९ है जिसका यह अर्थ है कि शरद् संपात बिन्दु से सूर्य ११२°५९ पूर्व है। विषुव संपात के उदय काल से शरद् सम्पात के उदय काल तक ३० घड़ी होती है। इसलिए शरद् संपात का विषुवकाल ३० घड़ी या १८०° होता है। इसलिये यदि यह मालूम हो जाय कि शरद् सम्पात से ११२°५९' का उदय काशी में कितनी देर में होता है तो इस विन्दु का भी विषुवकाल जाना जा सकता है। ऐसी दशा में चित्र ६२ के गोलीय त्रिभुज श का पू का भुज श का ११२°५९', पू का २३°५५' ∠श पू का = काशी का लम्बांश = ९०° − २५°२०' = ६०°४०', श पू = श का का विषुवकाल इसलिये गोलीय त्रिकोणमिति के ऊपर दिये हुए सूत्र के अनुसार,

---

* देखो **Todhunter** और **Leathem** की **Spherical Trigonometry** पृष्ठ ७५

$$\text{स्परे}\frac{\text{श पू}}{२}=\frac{\text{ज्या}\ \frac{१}{२}\ (\angle\text{श पू का}+\angle\text{पू श का}}{\text{ज्या}\ \frac{१}{२}\ (\angle\text{श पू का}-\angle\text{पू श का}}\times$$

$$\text{स्परे}\ \frac{१}{२}\ (\text{श का}-\text{पू का})$$

$$=\frac{\text{ज्या}\ \frac{१}{२}\ (६४^\circ४०'+२३^\circ२७')}{\text{ज्या}\ \frac{१}{२}\ (६०^\circ४०'-२३^\circ२७')}\times$$

$$\text{स्परे}\ \frac{१}{२}\ (११२^\circ\ ५९'-२३^\circ५५')$$

$$=\frac{\text{ज्या}\ ४४^\circ३.'५}{\text{ज्या}\ २०^\circ३६'.५}\ \text{स्परे}४४^\circ३२'$$

$$\therefore\ \text{लरिस्परे}\frac{\text{श पू}}{२}=\text{लरिज्या}\ ४४^\circ३'.५-\text{लरिज्या}\ २०^\circ३६'.५+$$

$$\text{लरि स्परे}\ ४४^\circ३२'$$

$$=९.८४२३-९.५४६५+९.९९२९$$

$$=१०.२८८७$$

$$\therefore\frac{\text{श पू}}{२}=६२^\circ४७'$$

$$\therefore\text{श पू}=१२५^\circ३४'$$

$$=२०\ \text{घड़ी}\ ५५\cdot७\ \text{पल}$$

अमावस्यान्त का विषुवकालः—जिस क्षण शरद-सम्पात बिंदु पूर्व क्षितिज पर आवेगा उससे २० घड़ी ५५·७ पल उपरान्त सूर्य क्षितिज पर आवेगा जब इसका सायन भोगांश शरद-सम्पात से ११२°५९′ होगा[१]। परन्तु वसंत-सम्पात से शरद-सम्पात का विषुव काल ३० घड़ी होता है इसलिए माघी अमावस्या के सूर्योदय के समय विषुवकाल ५० घड़ी ५५·७ पल है। यह नाक्षत्र मान में है। परन्तु सूर्योदय से अमावस्यान्त काल का समय १४ घड़ी ४५ पल है। यह सावन मान में है जो नाक्षत्र मान के १४ घड़ी ४७·५ पल के लगभग है। (देखो पृष्ठ ३२६)। इसलिए,

सूर्योदय के समय विषुवकाल = ५० घड़ी ५५·७ पल
सूर्योदय से अमावस्यान्त का नाक्षत्र काल = १४ ″ ४७·५ पल
∴ अमावस्यान्त के समय विषुव काल = $\overline{६५}$ घड़ी ४३·२ पल
= ५ घड़ी ४३·२ पल
= ३४°१९′

१. यह बात उस रीति से भी जानी जा सकती है जो पृष्ठ ३१४-१५ में बतलायी गयी हैं।

विषुवकाल से उदयलग्न और अग्रा जानना—अब यह जानना है कि जब विषुवकाल ३४°१९′ है तब उदयलग्न का सायन भोगांश क्या है ? यह चित्र ६० की सहायता से सहज ही जाना जा सकता है जहाँ व पू=३४°१९,′ ∠ का व पू=परमक्रान्ति=२३°२७′ और ∠ व पू का=१८०°—∠ व पू द=१८०°—लम्बांश=१८०°—६४°४०′=११५°२०′

यदि गोलीय त्रिभुज के तीन कोण अ, इ, उ अक्षरों से और इनके सामने के भुज क्रमशः आ, ई, ऊ अक्षरों से प्रकट किये जाँय तो गोलीय त्रिकोणमिति के दो सूत्र[1] इस प्रकार प्रकट किये जा सकते हैं :—

$$\text{स्परे } \tfrac{1}{2}\,(\text{आ}+\text{ई}) = \frac{\text{कोज्या } \tfrac{1}{2}\,(\text{आ}-\text{इ})}{\text{कोज्या } \tfrac{1}{2}\,(\text{आ}+\text{इ})} \times \text{स्परे } \frac{\text{ऊ}}{2}$$

$$\text{स्परे } \tfrac{1}{2}\,(\text{आ}-\text{ई}) = \frac{\text{ज्या } \tfrac{1}{2}\,(\text{अ}-\text{इ})}{\text{ज्या } \tfrac{1}{2}\,(\text{अ}+\text{इ})} \times \text{स्परे } \frac{\text{ऊ}}{2}$$

इन दोनों सूत्रों के सहारे से आ और ई दोनों के मान जाने जा सकते हैं। इस प्रकार चित्र ६० के गोलीय त्रिभुज व पू का से

$$\text{स्परे } \tfrac{1}{2}\,(\text{व का}+\text{का पू}) = \frac{\text{कोज्या } \tfrac{1}{2}\,(\angle\text{व पू का} - \angle\text{का व पू})}{\text{कोज्या } \tfrac{1}{2}\,(\angle\text{व पू का} + \angle\text{का व पू})} \times \text{स्परे } \frac{\text{व पू}}{2}$$

$$= \frac{\text{कोज्या } \tfrac{1}{2}\,(115^\circ 20' - 23^\circ 27')}{\text{कोज्या } \tfrac{1}{2}\,(115^\circ 20' + 23^\circ 27')} \times \text{स्परे } \frac{34^\circ 19'}{2}$$

$$= \frac{\text{कोज्या } 45^\circ 56'\cdot 5}{\text{कोज्या } 69^\circ 23'\cdot 5} \times \text{स्परे } 17^\circ 9'\cdot 5$$

$$\therefore \text{लरिस्परे } \tfrac{1}{2}\,(\text{व का}+\text{का पू}) = \text{लरि कोज्या } 45^\circ 56'\cdot 5 + \text{लरि स्परे } 17^\circ 9'\cdot 5 - \text{लरि कोज्या } 69^\circ 23'\cdot 5$$

$$= 9\cdot 8422 + 9\cdot 4896 - 9\cdot 5464$$

$$= 9.7854$$

$$\therefore \frac{\text{व का}+\text{का पू}}{2} = 31^\circ 23'$$

---

१. देखो **Todnunter** और **Leathem** की **Spherical Trigonometry** पृष्ठ ७४

∴ व का + का पू = ६२°४६′ ....(१)

इसी तरह, दूसरे सूत्र से,

$$\text{स्परे } \frac{१}{२} (\text{व का} - \text{का पू}) = \frac{\text{ज्या } ४५°५६'·५}{\text{ज्या } ६९°२३·५'} \times \text{स्परे} १७°९'·५$$

$$\therefore \text{लरि स्परे } \frac{\text{व का} - \text{का पू}}{२} = \text{लरि ज्या } ४५°५६'५$$

$$+ \text{लरि स्परे } १७°९'·५ - \text{लरि ज्या } ६९°२३'·५$$

$$= ९·८५६५ + ९·४८९६ - ९·९७१३$$

$$= ९·३७४८$$

$$\therefore \frac{\text{व का} - \text{का पू}}{२} = १३°२०'$$

∴ व का − का पू = २६°४०′ ....(२)

समीकरण (१) और (२) को जोड़ने से,

२ व का = ८९°२६′

∴ व का = ४४°४३′

और समीकरण (२) को समीकरण (१) से घटाने पर,

२ का पू = ३६°६′

∴ का पू = १८°३′

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि ऊपर के दो सूत्रों की सहायता से यदि विषुव-काल ज्ञात हो तो किसी समय का उदय लग्न और अग्रा दोनों सिद्ध हो सकते हैं। इसलिए,

अमावस्यान्त काल का सायन उदय लग्न = ४४°४३′

और उदयन लग्न की उत्तर अग्रा = १८°३′

पृष्ठ ५२४ में सायन लग्न ४३°३१′ और पृष्ठ ५२४ में उदय लग्न की अग्रा १७°३९′ आयी है जो नवीन रीति से प्राप्त अंकों से बहुत भिन्न हैं। इसका कारण यही है कि वहाँ उदय लग्न अनुपात के द्वारा जाना गया है जो स्थूल है।

जब सायन लग्न ४४°४३′ है तब त्रिभोन लग्न

= ४४°४३′ − ९०°

= ३६०° + ४४°४३′ − ९०°

∴ अमान्तकालिक त्रिभोन लग्न = ३१४°४३′

अमान्त काल का मध्यलग्न जानना—अमान्तकाल में जो बिषुवकाल आया है उससे १५ घड़ी अथवा ९०° कम उसी समय के मध्यलग्न का विषुवकाल

होगा क्योंकि विषुवद्वृत्त का जो विंदु यामोत्तर-वृत्त पर होता है वही मध्य लग्न का विषुवकाल और विषुवद्वृत्त का जो विन्दु पूर्व क्षितिज पर होता है वही उदय लग्न का विषुवकाल होता है। परन्तु विषुवद्वृत्त के इन दोनों विन्दुओं का अन्तर १५ घड़ी या ९०° के समान होता है।

चित्र ६३ में यदि व पू को ३४°१९,′ व का को ४४°४३′ तथा यामोत्तर वृत्त और विषुवद् वृत्त के सामान्य विन्दु को च मान लिया जाय तो च व म गोलीय त्रिभुज के व म का मान सहज ही जाना जा सकता है क्योंकि

च व=च पू−व पू=९०°−३४°१९′=५५°४१′

∠च व म=२३°२७′

और ∠व च म=९०°। क्योंकि यह विषुवद्वृत्त और यामोत्तरवृत्त के बीच का कोण है, इसलिए नेपियर के पहले नियम के अनुसार (देखो पृष्ठ १२५),

कोज्या २३°२७′=स्परे ५५°४१′×को स्परे व म

$$= \frac{\text{स्परे } ५५°४१'}{\text{स्परे व म}}$$

$$\therefore \text{स्परे व म} = \frac{\text{स्परे } ५५°४१'}{\text{कोज्या } २३°२७'}$$

∴ लरि स्परे व म=लरि स्परे ५५°४१′−लरि कोज्या २३°२७′

=१०·१६५८−९·९६२५=१०·२०३३

∴ व म=५७°५७′

∴ सायन मध्यलग्न=३६०°−५७°५७′

=३०२°३′

यह ५२४ पृष्ठ में आये हुए सायन मध्यलग्न से केवल १′ बड़ा है। इसका यह अर्थ हुआ कि सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार जो मध्यलग्न आया है वह बिलकुल ठीक है। इसका कारण यह है कि मध्यलग्न और सूर्य बहुत पास हैं यदि मध्यलग्न से सूर्य दूर होता तो इसमें भी अन्तर पड़ता।

त्रिभोनलग्न का नतांश जानना—

मध्य लग्न का नतांश सूर्य-सिद्धान्त की रीति से ४५°३′ आया है (देखो पृष्ठ ५२५)। यह रीति बिलकुल शुद्ध है। इससे त्रिभोन लग्न की नतांशज्या या दृक्क्षेप जानने की जो विधि पृष्ठ ४१३ में बतलायी गयी है उसके अनुसार त्रिभोन लग्न का नतांश ४२°१८′ होता है यदि उदय लग्न की अग्रा नवीन रीति से १८°३′ मानी जाय। परन्तु यह बहुत स्थूल है। इसलिये गोलीय त्रिभुज म ख वि (चित्र ६३)

से ख वि का मान सीधे ही निकालना उचित होगा। यहाँ ख वि वित्रिभ लग्न या त्रिभोन लग्न का नतांश है, म ख मध्य लग्न का नतांश है और म वि मध्य लग्न और त्रिभोन लग्न का अन्तर है जो ३१४°४३′ − ३०२°३′ अथवा १२°४०′ के समान है और ∠ म वि ख = ९०°, इसलिए नेपियर के दूसरे नियम के अनुसार,

$$\text{कोज्या म ख} = \text{कोज्या ख वि} \times \text{कोज्या म वि}$$

$$\therefore \text{कोज्या ख वि} = \frac{\text{कोज्या म ख}}{\text{कोज्या म वि}} = \frac{\text{कोज्या ४५°३′}}{\text{कोज्या १२°४०′}}$$

$$\therefore \text{लरि कोज्या ख वि} = \text{लरि कोज्या ४५°३′} - \text{लरि कोज्या १२°४०′}$$

$$= ९\cdot८४९१ - ९\cdot९८९३ = ९\cdot८५९८$$

$$\therefore \text{ख वि} = ४३°३६′$$

∴ त्रिभोन लग्न का नतांश = ४३°३६′

यह जानने की दूसरी रीति भी है जो उसी गोलीय त्रिभुज के ∠म वि ख और म ख की सहायता से नेपियर के दूसरे नियम पर आश्रित है। दोनों रीतियों से त्रिभोन लग्न का नतांश अभिन्न होता है। इसलिए सूर्य-सिद्धान्त के पृष्ठ ४१३ में बतलायी गयी रीति की अपेक्षा यही मान्य होनी चाहिए।

दृक्क्षेप = त्रिभोन लग्न की नतांश ज्या = ज्या ४३°३६′ = ·६८९६

दृग्गति = त्रिभोन लग्न की उन्नतांश ज्या = कोज्या ४३°३६′ = ·७२४२

$$\text{छेद} = \frac{१}{४\ \text{दृग्गति}} = \frac{१}{४ \times \cdot७२४२}$$

अमान्तकालिक त्रिभोन लग्न = ३१४°४३′ (पृष्ठ ५३०)

अमान्तकालिक सायन सूर्य = २९३°१४′ (पृष्ठ ५२४)

∴ अमान्त कालिक विश्लेषांश = २१°२९′

$$\therefore \text{सूर्य या चन्द्रमा का लंबन} = \frac{\text{ज्या विश्लेषांश}}{\text{छेद}}$$

$$= ४ \times \cdot७२४२ \times \text{ज्या } २१°२९′$$

$$= ४ \times \cdot७२४२ \times \cdot३६६२$$

$$= १\cdot०६०८ \text{ घड़ी}$$

$$= १ \text{ घड़ी } ३\cdot६५ \text{ पल}$$

यह पच्छिम लम्बन है क्योंकि त्रिभोन लग्न से सूर्य पच्छिम है। इसलिए इसको अमावस्यान्त काल में जोड़ने पर भोगांश-लंबन-संस्कृत-अमावस्यान्त काल आवेगा।

सूर्योदय से अमावस्यान्त का समय = १४ घड़ी ४५ पल

पच्छिम भोगांश लंबन = १ घड़ी ३·६ पल

∴ सूर्योदय से लंबन-संस्कृत-अमावस्यान्त काल=१५ घड़ी ४८.६ पल

अर्थात् लंबन के कारण चन्द्रमा सूर्य के सामने सूर्योदय से १५ घड़ी ४८·६ पल पर आवेगा। यह भी बिल्कुल शुद्ध नहीं है, इसलिए असकृत्कर्म करना आवश्यक है अर्थात् अब यह देखना चाहिए कि सूर्योदय से १५ घड़ी ४८·६ पल पर क्या लंबन होता है। इस काल के लिए इस समय का उदय लग्न, त्रिभोन लग्न, मध्य लग्न इत्यादि जानना चाहिए जिसके लिए वही क्रिया फिर दुहरानी पड़ेगी जो पृष्ठ ५२८ से अब तक दिखलाई गई है।

१५ घड़ी ४८·६ पल (सावन) =१५ घड़ी ५१·१ पल (नाक्षत्र)

सूर्योदय का विषुव काल =५० घड़ी ५५·७ पल (पृष्ठ ५२८)

∴ लंबन-संस्कृत-अमावस्यान्त के समय विषुव काल

= ६ घड़ी ४६·८ पल

= ४०°४१′ के लगभग

पृष्ठ ५२९ के समीकरणों में ३४°१९ की जगह ४०°४१′ रख कर सरल करने से इस समय की उदय लग्न और अग्रा आ जायगी क्योंकि और गुणक सामान्य हैं। इसलिए

लरि स्परे ½ (व का+ का पू) = लरि कोज्या ४५°५६′·५+ लरि स्परे २०°२०′·५−लरि कोज्या ६९°२३′·५

=९·८४२२+९·५६९१ − ९·५४६४

=९·८६४९

∴ $\frac{\text{व का+ का पू}}{२}$=३६°१४′

व का +का पू=७२°२८′.....................................(३)

लरि स्परे ½ (व का−का पू) = लरि ज्या ४५°५६′·५+ लरि स्परे २०°२०′·५−लरि ज्या ६९°२३′·५

=९·८५६५ − ९·५६९१ − ९·९७१३

=९·४५४३

∴ $\frac{\text{व का−का पू}}{२}$=१५°५३′

∴ व का−का पू = ३१°४६′.....................................(४)

समीकरण (३) और (४) से,

व का = ५२°७′

का पू = २०°२१′

∴ सूर्योदय से १५ घड़ी ४८·६ पल पर उदय लग्न ५२°७′ और अग्रा २०°२१′ है ।

∴ इस समय त्रिभोन लग्न = ५२°७′ − ६०° = ३२२°७′

और विषुवकाल = ४०°४१′

∴ पृष्ठ ५३० की तरह च व = ६०° − ४०°४१′ = ४६°१६′

∴ स्परे व म = $\frac{\text{स्परे } ४६°१६′}{\text{कोज्या } २३°२७′}$

∴ लरि स्परे व म = लरि स्परे ४६°१६′ − लरि कोज्या २३°२२′

= १०.०६५७ − ६.६६२५ = १०.१०३२

∴ व म = ५१°४५′

∴ सायन मध्य लग्न = ३६०° − ५१′४५′ = ३०८°१५′

मध्य लग्न की क्रान्तिज्या = ३०८°१५′ × ज्या २३°२७′

= − ज्या ५१°४५′ × ज्या २३°२७′

∴ लरि क्रान्ति ज्या = ६.८६५० + ६·५६६६ = ६·४६४६

∴ मध्यलग्न की दक्षिण क्रान्ति = १८°१३′

काशी का उत्तर अक्षांश = २५°२०′

∴ मध्य लग्न का नतांश = ४३°३३′

मध्य लग्न और त्रिभोन लग्न का अन्तर = ३२२°७′ − ३०८°१५′

= १३°५२′

∴ त्रिभोन लग्न के नतांश की कोटिज्या = $\frac{\text{कोज्या } ४३°३३′}{\text{कोज्या } १३°५२′}$

∴ लरि नतांश कोज्या = लरि कोज्या ४३°३३′ − लरि कोज्या १३°५२′

= ६.८६०२ − ६.६८७२ = ६.८७३०

त्रिभोन लग्न का नतांश = ४१°४३′

सूर्य की स्पष्ट दैनिक गति = ६१′.३७

∴ सूर्य की एक घड़ी की गति = १′·०२३

सूर्य की ३ पल की गति = ·०५१

∴ सूर्य की एक घड़ी ३ पल की गति = १′.०७

अमान्तकालिक सायन सूर्य = २६३°१४′

∴ लम्बन-संस्कृत-अमान्तकालिक-सूर्य = २६३°१५′

त्रिभोन लग्न = ३२२°७′

सायन सूर्य = २६३°१५′

∴ विश्लेषांश $=२८°५२'$

दृग्गति = त्रिभोन लग्न की नतांश कोटिज्या

$=$ कोज्या $४१°४३'$

∴ छेद $= \frac{१}{४ \text{ दृग्गति}} = \frac{१}{४ \text{ कोज्या } ४१°४३'}$

∴ सूर्य का लंबन $= \frac{\text{ज्या विश्लेषांश}}{\text{छेद}}$

$=४$ कोज्या $४१°४३'$ ज्या $२८°५२'$

$=४ \times .७४६४ \times .४८२८$ घड़ी

$=१.४४२$ घड़ी

$=१$ घड़ी २६.५ पल

सूर्योदय से अमावस्यान्त का समय $=१४$ घड़ी ४५ पल

सूर्य का लंबन $=१$ घड़ी २६.५ पल

∴ द्वितीय लंबन-संस्कृत-अमावस्यान्त-काल

$=१६$ घड़ी ११.५ पल

इस समय का त्रिभोन लग्न जानकर फिर लंबन जानना चाहिये:—

१६ घड़ी ११.५ पल (सावन) = १६ घड़ी १४.२ पल (नाक्षत्र)

सूर्योदय का विषुवकाल = ५० घड़ी ५५.७ पल

∴ द्वितीय लंबन-संस्कृत-अमान्त-काल का विषुवकाल

$=७$ घड़ी ९.९ पल

$=४३°$ के लगभग

∴ लरिस्परे $\frac{१}{२}$ (व का + का पू) = लरिकोज्या $४५°५६'.५$ + लरिस्परे $२१°३०'$ − लरिकोज्या $६९°२३'.५$

$=९.८४२२ + ९.५९५४ - ९.५४६४$

$=९.८९१२$

∴ $\frac{\text{व का} + \text{का पू}}{२} = ३७°५४'$

∴ व का + का पू $=७५°४८'$

लरि स्परे $\frac{१}{२}$ (व का − का पू) = लरि ज्या $४५°५६'.५$ + लरि स्परे $२१°३०'$ − लरि ज्या $६९°२३'.५$

$=९.८५६५ + ९.५९५४ - ९.९७१३$

$=९.४८०६$

$\therefore \frac{\text{व का} - \text{का पू}}{२} = १६^\circ ४९'\cdot ५$

$\therefore$ व का — का पू = ३३°३९′

$\therefore$ व का = ५४°४३′·५

और का पू = २१°४′·५

$\therefore$ सूर्योदय से १६ घड़ी ११·५ पल पर उदय लग्न ५४°४३′·५ और अग्रा २१°४′·५

$\therefore$ इस समय त्रिभोन लग्न = ५४°४३′·५ — ९०° = ३२४°४३′.५

और इस समय विषुवकाल = ४३°

$\therefore$ च व = ९०° — ४३° = ४७°

$\therefore$ स्परे व म = $\frac{\text{स्परे ४७}^\circ}{\text{कोज्या २३}^\circ\text{२७}'}$

$\therefore$ लरि स्परे व म = लरि स्परे ४७° — लरि कोज्या २३°२७′

= १०.०३०३ — ९.९६२५ = १०.०६७८

$\therefore$ व म = ४९°२७′

$\therefore$ सायन मध्यलग्न = ३६०° — ४९°२७′ = ३१०°३३′

$\therefore$ मध्यलग्न की क्रान्ति ज्या = ज्या ३१०°३३′ × ज्या २३°२७′

= — ज्या ४९°२७′ × ज्या २३°२७′

लरि क्रान्तिज्या = ९.८८०७ + ९.५९९९ = ९.४८०६

$\therefore$ क्रान्ति = १७°६६′ दक्षिण

काशी का अक्षांश = २५°२०′

मध्यलग्न का नतांश = ४२°५६′

मध्य लग्न और त्रिभोन लग्न का अन्तर = ३२४°४३′·५ — ३१०°३३′

= १४°१०′·५

$\therefore$ त्रिभोन लग्न की नतांश कोटि ज्या = $\frac{\text{कोज्या ४२}^\circ\text{५६}'}{\text{कोज्या १४}^\circ\text{१०}'\cdot\text{५}}$

$\therefore$ लरि नतांश कोटिज्या = लरि कोज्या ४२°५६′ — लरि कोज्या १४°१०′.५

= ९·८६४६ — ९·९८६५ = ९·८७८१

$\therefore$ त्रिभोन लग्न का नतांश = ४०°५७′

सूर्य की १ घड़ी की गति = १·′०२३

सूर्य की २० पल की गति = ·३४१

५ ″ = ·०८५
१ ″ = ·०१७
·५ ″ = ·००६

∴ १ घड़ी २६·५ पल की गति = १′·५
अमान्तकालिक सायन सूर्य = २६३°१४′
१ घड़ी २६·५ पल की गति = १′·५
द्वितीय-लंबन-संस्कृत-अमान्तकाल का सूर्य = २६३°१५′·५
त्रिभोन लग्न = ३२४°४३′·५
∴ विश्लेषांश = ३१°२८′
दृग्गति = त्रिभोन लग्न की नतांश कोटि ज्या = कोज्या ४०°५७′

$$\therefore \text{छेद} = \frac{१}{४\text{दृग्गति}} = \frac{१}{४ \text{ कोज्या } ४०°५७'}$$

$$\therefore \text{लंबन} = \frac{\text{ज्या विश्लेषांश}}{\text{छेद}}$$

= ४ कोज्या ४०°५७′ × ज्या ३१°२८′
= ४ × ·७५५३ × ·५२२०
= १ घड़ी ३४·६ पल

सूर्योदय से अमान्तकाल तक का समय = १४ घड़ी ४५ पल
तीसरी बार का लंबन = १ घड़ी ३४·६ पल
∴ तृतीय-लंबन-संस्कृत-अमान्तकाल = १६ घड़ी १९·६ पल

इस प्रकार पहले लंबन से अमावस्यान्त काल १५ घड़ी ४८·६ पल पर, दूसरे लंबन के १६ घड़ी ११·५ पल पर और तीसरे लंबन से १६ घड़ी १९·६ पल पर होता है। इससे प्रकट है कि पिछले अमावस्यान्त कालों में केवल ८ पल का अन्तर है। यदि दो तीन बार और संस्कार किया जाय तो अन्तर शून्य हो जायगा। उस दशा में जो अमावस्यान्त काल आवेगा वही शुद्ध अमावस्यान्त होगा। अनुमान से जान पड़ता है कि जो अमावस्यान्त काल तीसरी बार आया है उससे शुद्ध अमावस्यान्त केवल दो या तीन पल अधिक होगा। इसलिए दो तीन पल के लिए दो तीन बार और संस्कार करने में झंझट के सिवा विशेष लाभ नहीं है। इसलिए मान लिया जाता है कि लंबन-संस्कृत-शुद्ध-अमावस्यान्त काल सूर्योदय से १६ घड़ी २० पल पर है। यही सूर्यग्रहण का मध्यकाल समझना चाहिए। यहाँ तक ९वें श्लोक की क्रिया समाप्त हुई।

नति—

१० वें श्लोक में बतलाया गया है कि सूर्य और चन्द्रमा की मध्य गतियों के

अंतर को दृक्क्षेप से गुणा करना चाहिए। परन्तु मेरी समझ में यदि स्पष्ट गतियों के अंतर से गुणा किया जाय तो अधिक शुद्धता होगी।

सूर्य और चंद्रमा की दैनिक गतियों का अंतर = ७६२′·३४३

दृक्क्षेप अथवा त्रिभोनलग्न की नतांशज्या = ज्या४०°५७′

$$\therefore \text{नति} \frac{७६२'·३४३ \times \text{ज्या } ४०°५७'}{१५} = \frac{७६२'·४३ \times ·६५५४}{१५} = ३४'·६२$$

यहाँ त्रिज्या से भाग देने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि ज्या का मान दशमलव भिन्न लिया गया है। यह दक्षिण है क्योंकि मध्यलग्न का नतांश दक्षिण है।

चंद्रमा की ६० घड़ी की गति = १४°१३″·७

चन्द्रमा की १ घड़ी की गति = १४′१३″·७

" ३० पल " = ७′ ६″·६

" ५ " = १′ ११″·१

∴ चन्द्रमा की १ घड़ी ३५ पल की गति = २२′३१·७″ = २२′·५

गणित-सिद्ध अमावस्यान्तकालिक चंद्रमा = ६रा०°३२′·८

∴ लंबन-संस्कृत-अमावस्यान्तकालिक चंद्रमा = ६रा०°५५′·३

" " राहु = ३रा६°२८′·०

राहु से चंद्रमा का अन्तर = ५रा२४°२७′·३

= १७४°२७′·३

$$\therefore \text{चन्द्रशर की ज्या} = \frac{\text{ज्या } १७४°२७'·३ \times \text{ज्या } ४°३०'}{३४३८}$$

$$= \frac{\text{ज्या } ५°३२'·७ \times \text{ज्या } ४°३०'}{३४३८}$$

$$= \frac{३३२·७ \times २७०}{३४३८}$$

$$= २६'·१३$$

यह उत्तर शर है क्योंकि राहु से चंद्रमा आगे हैं परन्तु ६ राशि से कम दूर है।

∴ नति संस्कृत चंद्रशर = − ३४′·६२ + २६′·१३ = − ८′·४६

अर्थात् नति संस्कृत दक्षिण चंद्रशर = ८′·४६

चंद्रकक्षा में सूर्य बिम्ब का स्फुट व्यास = ३३′·६३४

चंद्रमा का स्फुट व्यास = ३४′·५५५

छाद्य अथवा सूर्य का व्यासार्ध = १६′·८१७
छादक अथवा चन्द्रमा का व्यासार्ध = १७′·२७८
∴ मानैक्य खंड = ३४′·१०
और मानान्तर खंड = ०′·४६

ग्रास का परिमाण = मानैक्यखंड − नति संस्कृत चंद्रशर
= ३४′·१ − ८′·४९
= २५′·६१

यह चन्द्रबिम्ब के व्यास से छोटा है इसलिए सर्वग्रास ग्रहण न लगेगा वरन् खंड ग्रहण लगेगा। (देखो पृष्ठ ४६० और श्लोक ११ चं० ग्र०)

पृष्ठ ४९९ के अनुसार

$$\text{स्थित्यर्ध} = \frac{\text{६० घड़ी} \times \sqrt{\{(\text{३४·१} + \text{८·४९})(\text{३४·१} - \text{८·४९})\}}}{\text{७९२·३४३}}$$

$$= \frac{\text{६०} \times \sqrt{\{\text{४२·५९} \times \text{२५·६१}\}}}{\text{७९२·३४३}}$$

$$= \frac{\text{६०} \times \sqrt{\text{१०९०·७३}}}{\text{७९२·३४३}}$$

$$= \frac{\text{६०} \times \text{३३·०२६}}{\text{७९२·३४३}}$$

$$= \frac{\text{१९८१५६०}}{\text{७९२३४}} \text{ घड़ी}$$

= २ घड़ी ३०·०६ पल
= २ घड़ी ३० पल

∴ स्पर्शकाल = १६ घड़ी २० पल − २ घड़ी ३० पल
= १३ घड़ी ५० पल

अर्थात् काशी में सूर्योदय से १३ घड़ी ५० पल पर ग्रहण का स्पर्श होगा। परन्तु यह स्थूल है। सूक्ष्म गणना करने के लिए इस समय का भी लंबन और नति फिर निकाल कर स्थित्यर्ध इत्यादि जानना चाहिए जैसा कि श्लोक १४—१७ में बतलाया गया है।

१३ घड़ी ५० पल (सावन) = १३ घड़ी ५२.३ पल (नाक्षत्र)
सूर्योदय का विषुवकाल = ५० घड़ी ५५·७ पल
∴ स्पर्शकाल के समय विषुवकाल = ४ घड़ी ४८ पल
= २८°४८′

∴ लरि स्परे ½ (व का+का पू)=लरि कोज्या ४५°५६′·५+लरि स्परे १४°२४′−लरि कोज्या ६६°२३′·५

=९·८४२२+९·४०९५−९·५४६४

=९.७०५३

∴ स्परे ½ (व का+का पू)=२६°५४′

∴ व का+का पू०)=५३°४८′

लरि स्परे ½ (व का−का पू) =९.८५६५+९.४०९५−९.९७१३

=९.२९४७

∴ ½ (व का−का पू) =११°९′

∴ व का−का पू =२२°१८′

∴ व का =३८°३′

और का पू =१५°४५′

∴ सूर्योदय से १३ घड़ी ५० पल पर उदय लग्न ३८°३′ और अग्रा १५°४५′ है ।

∴ इस समय त्रिभोन लग्न=३८°३′−९०°=३०८°३′

और " विषुवकाल =२८°४८′

पृष्ठ ५३२ की तरह च व =९०°−२८°४८′=६१°१२′

∴ स्परे व म $=\dfrac{\text{स्परे ६१°१८′}}{\text{कोज्या २३°२७′}}$

∴ लरि स्परे व म=लरि स्परे ६१°१२′−लरि कोज्या २३°२७′

=१०·२५९८—९·९६२५=१०·२९७३

∴ व म =६३°१४′

∴ सायन मध्य लग्न =३६०°−६३°१४′=२९६°५६′

मध्य लग्न की क्रान्ति ज्या =ज्या २९६°४६′×ज्या २३°२७′

=−ज्या ६३°१४′×ज्या २३°२७′

∴ लरि क्रान्तिज्या =९.९५०८+९.५९९९=९.५५०७

∴ मध्यलग्न की दक्षिणी क्रान्ति=२०°४९′

काशी का उत्तर अक्षांश =२५°२०′

∴ मध्य लग्न का नतांश =४६°९′

मध्यलग्न और त्रिभोन लग्न का अन्तर=३०८°३′−२९६°४६′

=११°१७′

∴ त्रिभोन लग्न के नतांश की कोटिज्या $=\dfrac{\text{कोज्या ४६°९′}}{\text{कोज्या ११°१७′}}$

∴ लरि नतांश कोटिज्या = लरि कोज्या ४६°६′ — लरि कोज्या ११°१७′

= ९·८४०६ − ९·९९१५ = ९·८४९१

∴ त्रिभोन लग्न का नतांश = ४५°३′

दृग्गति = त्रिभोन लग्न की नतांश कोटि ज्या = कोज्या ४५°३

$$\therefore \text{छेद} = \frac{१}{४ \text{ कोज्या } ४५°३'}$$

सूर्योदय से १४ घड़ी ४५.५ पल पर स्पष्ट सायन सूर्य = ९रा२३°१४′

५५ पल की सूर्य की गति = १′

∴ १३ घड़ी ५० पल पर अथवा स्पर्शकालिक सूर्य = ९रा२३°१३′

= २९३°१३′

त्रिभोन लग्न = ३०८°३′

विश्लेषांश = १४°५०′

$$\text{लंबन} = \frac{\text{ज्या विश्लेषांश}}{\text{छेद}}$$

= ज्या १४°५०′ × ४ × कोज्या ४५°३′

= ४ × ·२५६० × ·७०६५

= ·७२३५ घड़ी

= ४३.४ पल = ४३ पल

मध्य ग्रहणकाल का लंबन = १ घड़ी ३५ पल

∴ दोनों का अन्तर = ५२ पल

इसलिए १६वें श्लोक के पूर्वार्ध के अनुसार

स्पष्ट स्पर्श स्थित्यर्ध = प्रथम स्थित्यर्ध + ५२ पल

= २ घड़ी ३० पल + ५२ पल

= ३ घड़ी २२ पल

इसलिए सूर्योदय से स्पर्शकाल तक का समय

= सूर्योदय से मध्यग्रहण का समय — ३ घड़ी २२ पल

= १६ घड़ी २० पल − ३ घड़ी २२ पल

= १२ घड़ी ५८ पल

∴ काशी में सूर्योदय से १२ घड़ी ५८ पल पर ग्रहण का स्पर्श होगा। इसी प्रकार स्पष्ट मोक्ष स्थित्यर्ध भी जान लेना चाहिये।

इस गणना से स्पष्ट है कि काशी में सूर्यग्रहण का स्पर्श और मोक्ष दोनों देख पड़ेगा। परन्तु यह बात काशी में एकत्र हुए किसी मनुष्य को नहीं देख पड़ी जैसा कि लोगों का अनुभव है। इसका कारण यह है कि सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार जो मूलाङ्क आये हैं वे बहुत स्थूल हैं। इसी कारण यद्यपि लग्न के नतांश इत्यादि के जानने की रीति बिल्कुल बदल दी गयी है तो भी सूक्ष्मता नहीं आ सकी। इन मूलाङ्कों में सबसे बड़ी अशुद्धि राहु के मूलाङ्क में है जैसा कि चन्द्रग्रहणाधिकार में बतलाया गया है।

राहु का मूलाङ्क लेने पर क्या दशा होती है ?

१९२९ ई० के नाविक पंचांग के अनुसार ११ जनवरी सोमवार को ग्रीनविच के मध्यम मध्याह्नकाल में सायन राहु का स्थान ११५°.७५०५ था। इस समय काशी में मध्याह्नोपरान्त १३ घड़ी ५० पल ३१ विपल हुआ था (देखो पृष्ठ २५१), जो मध्यम प्रातःकाल से २८ घड़ी ५०.५ पल होता है। इस समय से माघी अमावस्या के अन्त तक अर्थात् गुरुवार के मध्यम प्रातःकाल के १६ घड़ी ५४ पल तक २ दिन ४८ घड़ी ३·५ पल होता है। इतने समय में राहु की गति इस प्रकार निकली:—

१ दिन की गति	=०°.०५२९५
२ ,,	=०°.१०५९२
३० घड़ी की गति	=०°.०२६४८
१५ ,,	=०.०१३२४
३ ,,	=०.००२६५
३ पल की गति	=०.००००४
योग	=०.१४८३

यह घटाने पर सायन राहु का स्थान हुआ, ११५·६०२२
=११५°३६′·१

परन्तु अयनांश	=२२°४१′
∴ राहु का निरयन भोगांश (अमावस्यान्त काल में)	=९२°५५′
चन्द्रमा का निरयन ,,	=२७०°३३′
∴ राहु से चन्द्रमा का अन्तर	=१७७°३८′

यदि चन्द्रमा का परमशर ४°३०′ की जगह ५°८′४२″ माना जाय (देखो पृ० ७५) तो

चन्द्रशर ज्या = ज्या १७७°३८′ × ज्या ५°८′४२″

= ज्या २°२२′ × ज्या ५°८′४२″

= ·०४१३ × ·०८९७

= ·००३७

∴ चन्द्रशर = १२′४०″ उत्तर = १२′·६७ उत्तर

= ३४·६२ दक्षिण

∴ नति संस्कृति चंद्रशर = २१′·९५ दक्षिण

∴ ग्रास का परिमाण = मानैक्य खंड — नति संस्कृति चन्द्रशर

= ३४′·१ — २१′·९५

= १२′·१५

इस प्रकार यहाँ भी सिद्ध होता है कि यदि राहु का भोगांश ठीक-ठीक लिया जाय तो भी ग्रास का परिमाण १२′·१५ होता है अर्थात् ग्रहण का स्पर्श और मोक्ष काशी में देखा जा सकता है परन्तु यह भी अनुभव में नहीं आया। इसलिए अब यह देखना है कि यदि सूर्य और चन्द्रमा के लंबन, नति और स्फुट व्यास इत्यादि दृग्गणित के अनुसार और नवीन रीतियों से निकाले जाँय तो क्या अन्तर पड़ता है।

नाविक पंचांग के अनुसार :—

अमावस्यान्त काल में चन्द्रमा का क्षितिज लंबन = ६१′१२″ = ६१′·२

चंद्रमा का उत्तर शर = ७′३६″ = ७′·६

" " व्यासार्ध = १६′४०″·६ = १६′·६८

सूर्य का व्यासार्ध = १६′१७″·२ = १६′·२९

त्रिभोन लग्न और मध्यलग्न वही माने जाते हैं जो पहले निकाले गये हैं। (पृष्ठ ५३६)

पृष्ठ ४०७ के सूत्र (च) के अनुसार

भु = लि ज्या त्रा कोज्या श — लि कोज्या त्रा ज्या श कोज्या व

जहाँ त्रा त्रिभोन लग्न का नतांश, लि चन्द्रमा का क्षितिज लंबन, श चन्द्रमा का शर, व विश्लेषांश और भु नति है।

∴ नति = ६१′·२ ज्या ४०°५७′ कोज्या ७′·६ — ६१′·२ कोज्या ४०°५७′ × ज्या ७′·६ × कोज्या ३१°२८′

= ६१′·२ × ·६५५४ × ·९९९९ — ६१′·२ × ·७५५३ × ·००२२ × ·८५२९

= ६१′·२(·६५५४ × ·९९९९ — ·७५५३ × ·८५२९ × ·००२२)

= ६१·२(·६५५३३४९ — ·००१४१७२)

=४०·०२

चन्द्रशर उत्तर=७′·६

∴ नति संस्कृति चन्द्रशर=३२′·४२

मानैक्यखंड=१६′·६८+१६′·२९=३२′·९७

∴ ग्रास का परिमाण=३२′·९७−३२′·४२=०′·५५

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि यदि राहु, चन्द्रमा और सूर्य के व्यास, लंबन और नति नवीन गणनानुसार लिये जाँय तो ग्रास १ कला से भी कम होता है जो उद्योग करने पर भी नहीं देखा जा सकता है। यही बात अनुभव से भी सिद्ध होती है। इसलिए ग्रहण की गणना के लिए हमें अपने सिद्धान्त ग्रंथों में दृग्गणित के अनुसार सुधार करना अत्यन्त आवश्यक है।

सूर्य-ग्रहणाधिकार का विज्ञान भाष्य समाप्त।

षष्ठम अध्याय

परिलेखाधिकार

(संक्षिप्त वर्णन)

[श्लोक १—परिलेख का प्रयोजन। श्लोक २-१२—स्पर्श, मोक्ष और मध्यकाल के ग्रहणों का परिलेख खींचने की रीति। श्लोक १३—कितना भाग ग्रस्त होने पर ग्रहण देखना सम्भव है। श्लोक १४-१६—ग्राहक का मार्ग खींचने की रीति। श्लोक १७-१९—किसी इष्टकाल में ग्रहण का परिलेख खींचने की रीति। श्लोक २०-२१—सर्वग्रास ग्रहण के आरंभ काल का परिलेख खींचने की श्लोक २२—सर्वग्रास ग्रहण के अंतकाल का परिलेख खींचने की रीति। श्लोक २३—किस प्रकार के चंद्रग्रहण में चन्द्रमा का रंग काला, भूरा, इत्यादि होता है। श्लोक २४—परिलेख खींचने की रीति किसको बतलानी चाहिए।]

इस अध्याय का नाम किसी-किसी प्रति में छेद्यकाधिकार भी है। दोनों का अर्थ एक है। छेद्यक की तुलना में परिलेख सरल है, इसलिए यहाँ परिलेखाधिकार ही लिखा गया है।

प्रयोजन—

न छेद्यकमृते यस्मात्क्षेपा ग्रहणयोः स्फुटाः।
ज्ञायन्ते यत्प्रवक्ष्यामि छेद्यकज्ञानमुत्तमम् ।।१।।

अनुवाद—(१) छेद्यक, परिलेख या चित्र के बिना सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहणों के भेद का ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता कि विम्ब की किस दिशा से ग्रहण का आरंभ, किस दिशा से मोक्ष तथा कितना ग्रास होगा। इसलिए छेद्यक बनाने का उत्तम ज्ञान मैं कहता हूँ।

परिलेख खींचने की रीति—

सुसाधितायामवनौ विन्दुं दत्वा ततो लिखेत्।
सप्तवर्गाङ्गुलेनादौ मण्डलं वलनाश्रितम् ।।२।।
ग्राह्यग्राहकयोगार्धं सम्मितेन द्वितीयकम्।
मण्डलं तत्समासाख्यं ग्राह्यार्धेन तृतीयकम् ।।३।।
याम्योत्तरा प्राच्यपरा साधनं पूर्ववद् दिशाम्।
प्रागिन्दोर्ग्रहणं पश्चान्मोक्षोऽर्कस्य विपर्ययात् ।।४।।

यथादिशं प्राग्ग्रहणं वलनं हिमदीधितेः ।
मौक्षिकं तु विपर्यस्तं विपरीतमिदं रवेः ॥५॥
वलनाग्रान्नयेन्मध्यं सूत्रं तद्यत्र संस्पृशेत् ।
तत्समासे ततो देयौ विक्षेपौ ग्रासमौक्षिकौ ॥६॥
विक्षेपाग्रात् पुनस्सूत्रं मध्यविन्दुं प्रवेशयेत् ।
तद्ग्राह्यवृत्तसंस्पर्शे ग्रासमोक्षौ विनिर्दिशेत् ॥७॥
नित्यशोऽर्कस्य विक्षेपाः परिलेखे यथादिशम् ।
विपरीतं शशाङ्कस्य तद्वशादथ मध्यमम् ॥८॥
वलनं प्राङ्मुखं नेयं तद्विक्षेपैकता यदि ।
भेदे पश्चान्मुखं नेयम् इन्दोर्भानो विपर्ययात् ॥९॥
वलनाग्रात्पुनस्सूत्रं मध्यविन्दुं प्रवेशयेत् ।
मध्यात्सूत्रेण विक्षेपं वलनाभिमुखं नयेत् ॥१०॥
विक्षेपाग्राल्लिखेद्वृत्तं ग्राहकार्धेन तेन यत् ।
ग्राह्यवृत्तं समाक्रान्तं तद्ग्रस्तं तमसा भवेत् ॥११॥
छेद्यकं लिखितं भूमौ फलके वा विपश्चिता ।
विपर्ययो दिशां ग्राह्यः पूर्वापर कपालयोः ॥१२॥

अनुवाद— (२) अच्छी तरह शोधी हुई समतल भूमि पर एक विन्दु स्थिर करके और उसी को केन्द्र मानकर ४९ अंगुल के व्यासार्ध का एक वृत्त खींचो। इसे वलनाश्रित वृत्त कहते हैं। (३) उसी केन्द्र से एक दूसरा वृत्त भी खींचो जिसका व्यासार्ध छाद्य और छादक विम्बों के व्यासार्धों के योग के अर्थात् मानैक्यखंड के समान हो। इस वृत्त को समास वृत्त कहते हैं। इसी तरह उसी केन्द्र से एक तीसरा वृत्त भी खींचो जिसका व्यासार्ध उस ग्रह के बिम्ब के व्यासार्ध के समान हो जिस पर ग्रहण लगता है। (४) इसी विन्दु से होती हुई उत्तर-दक्षिण-रेखा तथा पूर्व-पश्चिम-रेखा पहले (त्रिप्रश्नाधिकार श्लो० ३, ४ में) बतलाई हुई रीति के अनुसार खींचो। चन्द्रग्रहण में स्पर्श पूर्व दिशा से और मोक्ष पश्चिम दिशा से होते हैं परन्तु सूर्यग्रहण में इसके विपरीत होता है अर्थात् सूर्यग्रहण में स्पर्श पच्छिम से और मोक्ष पूर्व से होता है। (५) चंद्रग्रहण में चंद्रमा के स्पर्शकालिक स्फुट वलन की ज्या जितनी हो पूर्व विन्दु से उतने ही अंतर पर और उसी दिशा में जिस दिशा का स्फुट वलन हो केन्द्र से वलनाश्रित वृत्त तक एक रेखा खींचो। इसी प्रकार चन्द्रमा के मोक्षकालिक स्फुट-वलन की ज्या जितनी हो, पच्छिम विन्दु से उतने ही अन्तर पर परन्तु स्फुटवलन की दिशा की विपरीत दिशा में केन्द्र से वलनाश्रित वृत्त तक एक दूसरी रेखा खींचो। सूर्यग्रहण में उपर्युक्त रेखाओं की दिशाओं का क्रम उनके विपरीत होता है जो

चन्द्रग्रहण में बतलायी गयी हैं। इन रेखाओं को वलनाग्र रेखा कहते हैं और यह रेखाएँ वलनाश्रित वृत्त को जहाँ काटती हैं उसे वलनाग्र विन्दु कहते हैं। (६) वलनाश्रित वृत्त पर (५वें श्लोक के अनुसार) स्पर्श और मोक्षकाल के जो वलनाग्र विन्दु बनाये जाते हैं उनसे केन्द्र तक जो रेखाएँ जाती हैं वे समास वृत्त को जिन विन्दुओं पर काटती हैं उनसे चन्द्रमा के स्पर्शकालिक और मोक्षकालिक शरों के अंतर पर केन्द्र से समास वृत्त तक रेखाएँ खींचो। यह रेखाएँ समास वृत्त को जहाँ काटती हैं उन विन्दुओं का विक्षेपाग्र विन्दु कहते हैं। (७) इन विक्षेपाग्र विन्दुओं से केन्द्र तक जो रेखाएँ जाती हैं ग्राह्य बिम्ब को जिन बिन्दुओं पर काटती हैं उन्हीं को क्रमानुसार स्पर्शविन्दु और मोक्ष विन्दु कहते हैं।

(८) सूर्य ग्रहण के परिलेख में विक्षेपाग्र विन्दु उसी दिशा में बनाओ जिस दिशा में चन्द्रमा का शर हो परन्तु चन्द्रग्रहण के परिलेख में विक्षेपाग्र विन्दु की दिशा चन्द्रमा के शर की दिशा के विपरीत होती है। इसी के अनुसार मध्य ग्रहण काल का भी विक्षेपाग्र विन्दु बनाओ।

(९) चन्द्रग्रहण के मध्यकाल के परिलेख में यदि मध्यकाल के स्फुटवलन और विक्षेप की दिशाएं एक हों तो वलनाग्र विन्दु उत्तर-दक्षिण-रेखा के पूर्व में बनाना चाहिए। परन्तु यदि स्फुटवलन और विक्षेप की दिशाएं भिन्न हों तो वलनाग्र विन्दु उत्तर-दक्षिण रेखा के पच्छिम में बनाना चाहिए। यदि विक्षेप की दिशा दक्षिण हो तो उत्तर विन्दु से पूर्व वा पच्छिम वलनाग्र विन्दु बनाना चाहिए। परन्तु यदि विक्षेप की दिशा उत्तर हो तो दक्षिण विन्दु से पूर्व या पच्छिम वलनाग्र विन्दु बनाना चाहिए। सूर्यग्रहण के मध्यकाल के परिलेख में इसके विपरीत करना चाहिए अर्थात् यदि वलन और विक्षेप दोनों की दिशाएँ एक हों तो वलनाग्र विन्दु उत्तर-दक्षिण रेखा से पच्छिम की ओर और यदि दोनों की दिशाएँ भिन्न हों तो वलनाग्र विन्दु उत्तर-दक्षिण रेखा से पूर्व की ओर बनाना चाहिए। परन्तु यदि विक्षेप की दिशा दक्षिण हो तो दक्षिण विन्दु से और उत्तर हो तो उत्तर विन्दु से पूर्व या पच्छिम की ओर वलनाग्र विन्दु होना चाहिए।

(१०) मध्यग्रहण के वलनाग्र विन्दु से केन्द्र तक एक रेखा खींचो। इसी रेखा पर वलनाग्र विन्दु की दिशा में केन्द्र से विक्षेप के अंतर पर एक विन्दु बनाओ, इसी को मध्यकाल का विक्षेपाग्र विन्दु कहते हैं।

(११) विक्षेपाग्र विन्दु को केन्द्र मानकर ग्राहक या छादक के व्यासार्ध के समान त्रिज्या से एक वृत्त बनाओ। यह वृत्त छाद्य बिम्ब को (चन्द्रग्रहण में चंद्र बिम्ब और सूर्य-ग्रहण में सूर्य बिम्ब को) जहाँ तक ढक लेता है उतना ही ग्रहण का परम ग्रस्त भाग होता है।

(१२) ज्योतिषी को चाहिए कि समतल भूमि पर अथवा फलक (काठ के तख्ते) पर परिलेख बनावे। पूर्व कपाल में दिशाओं का जो क्रम रहता है उसके विपरीत पच्छिम कपाल में होना चाहिए अर्थात् पूर्व कपाल में जहां लब्ध क्रम—पूर्व, दक्षिण, पच्छिम और उत्तर दिशाएँ होंगी वहां पच्छिम कपाल में क्रमानुसार पच्छिम, उत्तर, पूर्व और दक्षिण दिशाएं होंगी।

विज्ञान भाष्य—इन श्लोकों में ग्राह्य बिम्ब को स्थिर मानकर उसके जितने अंतर पर और जिस दिशा में ग्राहक का केन्द्र ग्रहण के स्पर्श, मध्य और मोक्ष काल में होता है उसको रेखागणित की सहायता से जानने की रीति बतलायी गयी है। चंद्रग्रहण में चन्द्रमा ग्राह्य और भूछाया ग्राहक होती है। सूर्य ग्रहण में सूर्य ग्राह्य और चन्द्रमा ग्राहक होता है। अब श्लोकों के क्रम से प्रत्येक रीति की व्याख्या की जाती है :—

श्लोक २—चंद्रग्रहणाधिकार श्लोक २४-२५ तथा पृष्ठ ४७५-४८० में बतलाया गया है कि स्फुटवलन क्या है और इससे क्रान्तिवृत्त का ज्ञान कैसे होता है। वहाँ यह भी बतलाया गया है कि स्फुटवलन की ज्या को ७० से भाग देने पर इसकी ज्या का परिमाण अंगुलों में आ जाता है। इस प्रकार त्रिज्या का मान ४९ अंगुल के लगभग होता है क्योंकि त्रिज्या ३४३८ कलाओं की होती है जिसको ७० से भाग देने पर लब्धि ४९·१ आती है जिसे पूर्णाङ्कों में ४९ ही समझना चाहिए। इसीलिए इस श्लोक में ४९ अंगुल के व्यासार्ध का वलनाश्रित वृत्त खींचने की रीति बतलायी गयी है। इस वृत्त से स्फुटवलन बतलानेवाली रेखा सहज ही खींची जा सकती हैं। भास्कराचार्य तथा अन्य आचार्यों ने वलनाश्रित वृत्त के खींचने का नियम नहीं बतलाया है। उन्होंने केवल इतना लिखा है कि समासवृत्त पर पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चिन्ह बनाकर स्फुटवलन के परिमाण का कोण दिशा के अनुसार बना लेना चाहिए।

श्लोक ३—इस श्लोक में समासवृत्त और जिस ग्रह में ग्रहण लगता है उसके बिम्ब का वृत्त अर्थात् ग्राह्य-विम्ब वृत्त के खींचने की बात है। पर यह स्पष्ट नहीं बतलाया गया है कि इसका परिमाण क्या होना चाहिए। यदि ७० कलाओं का एक अंगुल माना जायगा तो समास-वृत्त और ग्राह्य-विम्ब-वृत्त बहुत छोटे होंगे क्योंकि ग्राह्य-बिम्बवृत्त का व्यासार्ध १६ कला अथवा एक अंगुल के चौथे भाग से भी कम होता है और समास-वृत्त का व्यासार्ध १ अंगुल के लगभग होता है। इसलिए इन वृत्तों के लिए ७० कलाओं का एक अंगुल मानते में सुविधा नहीं होगी। ऐसी दशा में चंद्रग्रहणाधिकार के २६ वें श्लोक में जिस अंगुल की चर्चा है उसे काम में लाना चाहिये।

परन्तु उसमें अंगुल का जो मान दिया गया है वह उन्नत काल के अनुसार बदलता हुआ बतलाया गया है (देखो पृष्ठ ४८१)। परन्तु मैं समझता हूँ कि यदि अंगुल का परिमाण सदा ३ कला का माना जाय तो विशेष हानि नहीं हो सकती क्योंकि जैसा पृष्ठ ४८२ में बतलाया गया है वर्तन के कारण सूर्य या चन्द्रबिम्ब के आकारों में उदय या अस्त काल में ही अधिक अन्तर देख पड़ता है। अन्य समय में यह अन्तर इतना कम होता है कि उस पर विचार करने की आवश्यकता ही नहीं जान पड़ती। इसलिए यहां मैं ३ कला का एक अंगुल मानना सुगम समझता हूँ, इसमें कुछ संस्कार करने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

श्लोक ४—इसके पूर्वार्द्ध में यह बतलाया गया है कि जिस विन्दु को केन्द्र मानकर वलनाश्रित वृत्त, समास-वृत्त और ग्राह्यबिम्ब-वृत्त खींचने को कहा गया है उसी विन्दु से उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पच्छिम रेखाएं त्रि० प्र०-श्लोक २-४ तथा चित्र ४४ के अनुसार खींचना चाहिए। उत्तरार्ध में यह बतलाया गया है कि चन्द्रग्रहण में स्पर्श चन्द्र-विम्ब के पूर्व भाग में होता है और मोक्ष पच्छिम भाग में होता है; परन्तु सूर्यग्रहण में स्पर्श सूर्य-बिम्ब के पच्छिम भाग में होता है और मोक्ष पूर्व भाग में होता है। इसका कारण स्पष्ट है। चन्द्रमा आकाश में पूर्व की ओर चलता हुआ पृथ्वी की परिक्रमा करता है इसलिए जिस समय वह पृथ्वी की छाया में प्रवेश करने लगता है उस समय उसका पूरब वाला भाग ही पहले पहल छाया में घुसता है। इसी प्रकार चंद्र बिम्ब का पच्छिम वाला भाग ही मोक्ष के समय छाया से अलग होता है। परन्तु सूर्य ग्रहण में चन्द्रबिम्ब पच्छिम से पूर्व की ओर बढ़ता हुआ सूर्य बिम्ब को ढक लेता है इसलिए स्पर्श के समय सूर्य बिम्ब का पच्छिम वाला भाग ढकने लगता है और मोक्ष के समय सूर्य बिम्ब का पूर्व वाला भाग चन्द्र बिम्ब से अलग होता है।

श्लोक ५—चंद्रग्रहण के स्पर्शकाल में चंद्रमा के स्फुटवलन की जो दिशा होती है पूर्व विन्दु से उसी दिशा में स्फुटवलन के अंतर पर वलनाश्रित वृत्त पर चिह्न करना चाहिए। परन्तु मोक्षकाल में स्फुट वलन की जो दिशा हो उसके विरुद्ध दिशा में पच्छिम विन्दु से यह चिह्न करना चाहिए। इन चिन्हों को वलनाग्र-विन्दु कहते हैं। मोक्ष काल में दिशा के उलट देने का कारण पृष्ठ ४७६ के चित्र १०१ के स्पष्ट हो जाता है। वहां यह दिखलाया गया है कि ग्रह के प्राची अर्थात् पूर्व बिन्दु से जिस समय क्रान्तिवृत्त उत्तर की ओर होता है उसी समय प्रतीची अर्थात् पच्छिम बिन्दु से क्रान्तिवृत्त दक्खिन की ओर है। इसलिए जिस समय स्फुटवलन की दिशा उत्तर कही जाती है उस समय वह पूर्व विन्दु से उत्तर की ओर होती है न कि पच्छिम विन्दु से। परन्तु स्फुट वलन की जो दिशा चन्द्रग्रहणाधिकार के २४-२५ श्लोकों से सिद्ध होती है वह पूर्व बिन्दु से ही समझी जाती है इसलिए उस नियम

के अनुसार मोक्षकालिक वलन को जो दिशा आती है वह पूर्व विन्दु के ही अनुसार आती है परन्तु चन्द्रग्रहण में मोक्ष पश्चिम विन्दु की ओर होता है इसलिए इस विन्दु से स्फुटवलन का कोण बनाने के बिए अथवा क्रान्तिवृत्त की दिशा जानने के लिए स्फुटवलन की दिशा उलट दी जाती हैं।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उसके विपरीत सूर्यग्रहण में करना चाहिए। अर्थात् स्पर्श काल में स्फुटवलन की जो दिशा हो उसके विपरीत दिशा में पच्छिम विन्दु से वलनाग्र विन्दु बनाना चाहिए, परन्तु मोक्ष काल में पूर्व विन्दु से स्फुटवलन की दिशा में ही वलनाग्र विन्दु बनाना चाहिए। इसका कारण स्पष्ट है। सूर्यग्रहण में स्पर्श सूर्यबिम्ब के पच्छिम की ओर और मोक्ष पूर्व की ओर होता है। परन्तु पच्छिम की ओर स्फुटवलन की दिशा उलट जाती है जैसा ऊपर कहा गया है। इस-लिए सूर्यग्रहण में स्पर्शकालिक वलन की दिशा को उलटना पड़ता है परन्तु मोक्ष-कालिक वलन की दिशा में कोई फेरफार नहीं करना पड़ता।

श्लोक ६-८—वलनाग्र विन्दु से जो रेखा वलनाश्रित वृत्त अथवा समास-वृत्त था ग्राह्यबिम्ब के केन्द्र तक खींची जाती है उससे केवल यह जाना जा सकता है कि क्रान्तिवृत्त की दिशा क्या है। सूर्यग्रहण में ग्राह्यबिम्ब सूर्य ही होता है और सूर्य सदैव क्रान्तिवृत्त पर रहता है इसलिए केन्द्र से वलनाग्र विन्दु तक जानेवाली रेखा क्रान्तिवृत्त ही समझी जा सकती है। परन्तु चन्द्रग्रहण में ग्राह्यबिम्ब चन्द्रमा होता है और चन्द्रमा क्रान्ति वृत्त से अपने शर के समान अन्तर पर उत्तर या दक्षिण होता है इसलिए चन्द्र बिम्ब के केन्द्र से वलनाग्र विन्दु तक जाने वाली रेखा क्रान्ति-वृत्त कदापि नहीं हो सकती। यह इसके समानान्तर होती है। चाहे सूर्यग्रहण हो चाहे चन्द्रग्रहण, दोनों दशाओं में छादक का केन्द्र वलनाग्र विन्दु से केन्द्र तक जाने वाली रेखा पर नहीं होता क्योंकि सूर्यग्रहण में छादक चन्द्रमा होता है जो क्रान्ति-वृत्त पर नहीं चलता और चन्द्रग्रहण में छादक भूछाया होती है जो चंद्रमा की कक्षा में नहीं चलती इसलिए स्पर्श या मोक्ष काल में छादक के केन्द्र का पता लगाने के लिए उस विन्दु से जहाँ वलनाग्र रेखा समास-वृत्त को काटती है चन्द्र-विक्षेप के अन्तर पर समास-वृत्त तक केन्द्र से एक रेखा खींचते हैं। यह रेखा समास-वृत्त को जहाँ काटती है उसे विक्षेपाग्र विंदु कहते हैं। स्पर्श या मोक्ष के समय छादक का केन्द्र इसी विन्दु पर होता है। इसलिए यदि इस विन्दु को केन्द्र मानकर छादक के व्यासार्ध से एक वृत्त खींचा जाय तो यह ग्राह्यबिम्ब को जहाँ स्पर्श करेगा वहीं ग्रहण का स्पर्श या मोक्ष होगा। विक्षेपाग्र विन्दु से केन्द्र तक जो रेखा खींची जाती है उससे भी स्पर्श या मोक्ष का स्थान जाना जा सकता है क्योंकि जिस विन्दु पर छादक और छाद्य बिम्ब स्पर्श करते हैं उसी विन्दु पर विक्षेपाग्र विन्दु से केन्द्र तक

खींची जाने वाली रेखा भी ग्राह्य बिम्ब को काटती है (देखो पृष्ठ ४६७ चित्र १००)। इस चित्र में च को ग्राह्य बिम्ब का केन्द्र समझ लिया जाय तो च से क्रान्तिवृत्त छ प के समानान्तर जो रेखा खींची जायगी वह केन्द्र से वलनाग्र विन्दु तक जानेवाली रेखा कही जा सकती है। भूछाया छ से इस रेखा का जो अंतर होता है वह च के शर के समान होता है। च को केन्द्र मानकर च छ के व्यासार्ध से जो वृत्त खींचा जायगा वही समासवृत्त होगा। च से जानेवाली वलनाग्र रेखा समास वृत्त को जहाँ काटेगी वहाँ से च छ का अंतर भी चन्द्रमा के शर के समान होगा। इस प्रकार सातवें श्लोक में बतलाये गये नियम की उपपत्ति सिद्ध हुई।

छठें श्लोक में यह नहीं वतलाया गया है कि वलनाग्र रेखा की किस दिशा में विक्षेपाग्र रेखा खींचनी चाहिए। यह ८वें श्लोक में बतलाया गया है। सूर्य-ग्रहण में विक्षेपाग्र रेखा उसी दिशा में खींचनी चाहिए जिस दिशा में चन्द्रमा का शर हो अर्थात् यदि चन्द्र शर की दिशा उत्तर हो तो विक्षेपाग्र रेखा भी वलनाग्र रेखा से उत्तर होनी चाहिए, और यदि चन्द्र शर दक्खिन हो तो विक्षेपाग्र रेखा वलनाग्र रेखा से दक्खिन खींचनी चाहिए। इसका कारण चित्र १०० पृष्ठ ४६७ से स्पष्ट है। यदि इस चित्र में छ को सूर्य बिम्ब का केन्द्र[1] मान लिया जाय और क्रान्तिवृत्त छ प को चन्द्र की कक्षा च प से उत्तर में मान लिया जाय तो चन्द्र शर दक्खिन होता है। ऐसी दशा में चन्द्रमा सूर्यबिम्ब को ऐसे बिन्दु पर स्पर्श करता है जो सूर्य बिम्ब के दक्षिणार्ध में है। अर्थात् जब चन्द्रशर दक्खिन होता है तब चन्द्रमा सूर्य-बिम्ब को दक्षिण की ओर स्पर्श करता है। इसी प्रकार यह सिद्ध हो सकता है कि यदि चन्द्रमा का शर उत्तर हो तो यह सूर्यबिम्ब को उत्तर की ओर स्पर्श करेगा।

परन्तु चन्द्रग्रहण में इसके विपरीत होता है। यह भी इसी चित्र से स्पष्ट होता है, यदि छ को भूछाया का केन्द्र मान लिया जाय। चित्र में चन्द्रशर दक्खिन दिखलाया गया है। ऐसी दशा में भूछाया चन्द्रबिम्ब को ऐसे बिन्दु पर स्पर्श करती है जो चन्द्र बिम्ब के उत्तर की ओर है। इसी प्रकार यदि चंद्रशर उत्तर हो तो सिद्ध हो सकता हैं कि भूछाया चन्द्रबिम्ब को दक्षिण की ओर स्पर्श करेगी। इसलिये यह नियम हो गया कि चन्द्रग्रहण में स्पर्शविन्दु की दिशा चन्द्र शर की दिशा के विपरीत होनी चाहिये अर्थात चंद्रग्रहण में विक्षेपाग्र रेखा वलनाग्र रेखा से उस दिशा में खींचनी चाहिये जो चन्द्रशर की दिशा के विपरीत हो।

---

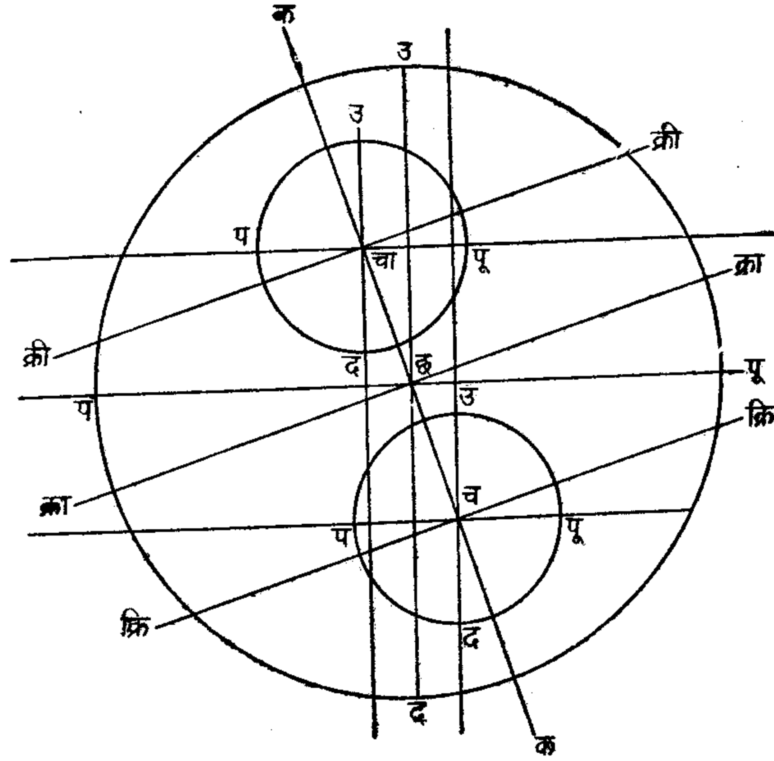
१. यदि छ को सूर्य बिम्ब का केन्द्र तथा इसके वृत्त को सूर्य बिम्ब मान लिया जाय तो इसी चित्र से सूर्यग्रहण के सम्बन्ध की सारी बातें जानी जा सकती है।

मोक्ष काल के विक्षेप की दिशा भी इसी नियम के अनुसार निश्चय करनी चाहिये। यदि चन्द्रशर की दिशा दक्षिण हो तो चन्द्रग्रहण में चन्द्रमा का मोक्ष चन्द्र बिम्ब के उत्तरार्ध में होता है जैसा कि उपर्युक्त चित्र में चन्द्रमा को ची स्थिति में दिखलाया गया है। परन्तु सूर्यग्रहण में सूर्य का मोक्ष सूर्यबिम्ब के दक्षिणार्ध में होता है। इसी प्रकार यदि चन्द्रशर की दिशा उत्तर हो तो चन्द्रमा का मोक्ष चन्द्रबिम्ब के दक्षिणार्ध में और सूर्य का मोक्ष सूर्य बिम्ब के उत्तरार्ध में होता है।

मध्य ग्रहण काल में भी विक्षेप की दिशा इसी नियम से निश्चय की जा सकती है। उसी चित्र से यह प्रकट है कि जब चन्द्र शर दक्षिण होता है तब चन्द्र ग्रहण के मध्य काल में भू छाया का केन्द्र चन्द्र-बिम्ब से उत्तर होता है परन्तु सूर्य ग्रहण के मध्य काल में चन्द्रमा सूर्य-बिम्ब के केन्द्र से दक्षिण होता है। इसी प्रकार जब चंद्र शर उत्तर होता है तब चंद्र ग्रहण के मध्य काल में भू छाया का केन्द्र बिम्ब से दक्षिण होता है और सूर्य ग्रहण के मध्य काल में चंद्रमा सूर्य बिम्ब के केन्द्र से उत्तर होता है।

श्लोक ९—चन्द्रमा के मध्यग्रहणकाल में यदि चन्द्रशर और स्फुट वलन की दिशा एक हो तो वलनाग्र विन्दु उत्तर-दक्षिण रेखा से पूर्व बनाना चाहिये परन्तु यदि इनकी दिशाओं में भिन्नता हो अर्थात् स्फुटवलन उत्तर और चन्द्रशर दक्षिण हो अथवा स्फुटवलन दक्षिण और चन्द्रशर उत्तर हो तो वलनाग्र विन्दु उत्तर दक्षिण रेखा से पच्छिम होना चाहिये। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि यदि चन्द्रशर दक्षिण हो तो उत्तर विन्दु के पूर्व या पच्छिम की ओर वलनाग्र विन्दु बनाया जाय और यदि चन्द्रशर उत्तर हो तो दक्षिण-विन्दु से पूर्व या पच्छिम की ओर वलनाग्र-विन्दु बनाया जाय।

परन्तु सूर्य-ग्रहण के मध्यकाल का परिलेख खींचने के लिए ऊपर जो कुछ चन्द्रग्रहण के सम्बन्ध में कहा गया है उसके विपरीत होना चाहिये। अर्थात् यदि चन्द्रशर और स्फुटवलन की दिशा एक हो तो वलनाग्र विन्दु उत्तर-दक्षिण रेखा से पच्छिम की ओर और यदि इनकी दिशाओं में भिन्नता हो तो वलनाग्र विन्दु उत्तर-दक्खिन रेखा से पूर्व की ओर होना चाहिये। साथ ही साथ यह भी ध्यान रहे कि यदि चन्द्रशर दक्खिन हो तो दक्खिन-विन्दु से पूर्व या पच्छिम की ओर वलनाग्र विन्दु बनाया जाय और यदि चन्द्रशर उत्तर हो तो उत्तर विन्दु से पूर्व या पच्छिम वलनाग्र विन्दु बनाया जाय। चित्र १०२ से इसका ठीक ठीक ज्ञान सहज ही हो सकता है। चन्द्रग्रहण के सम्बन्ध में जो भूछाया है वही सूर्यग्रहण के सम्बन्ध में सूर्य बिम्ब समझ लेने से यही चित्र चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण दोनों के लिए काम दे सकता है।



चित्र नं० १०२

छ=भू छाया या सूर्य विम्ब का केन्द्र।

च=चन्द्र विम्ब का केन्द्र जब चन्द्रशर दक्षिण है।

चा=चन्द्र विम्ब का केन्द्र जब चन्द्रशर उत्तर है।

पू=उस विम्ब का पूर्व विन्दु जिसकी परिधि पर यह अक्षर है।

प=उस विम्ब का पच्छिम विन्दु जिसकी परिधि पर यह अक्षर है।

उ=उस विम्ब का उत्तर विन्दु जिसकी परिधि पर यह अक्षर है।

द=उस विम्ब का दक्षिण विन्दु जिसकी परिधि पर यह अक्षर है।

क्राक्रा=क्रान्तिवृत्त

कक=कदम्बप्रोत वृत्त

क्रिक्रि या क्रिक्री चन्द्रमा के केन्द्र से जाता हुआ क्रान्तिवृत्त के समानान्तर वृत्त

इस चित्र में स्फुटवलन उत्तर की ओर दिखलाया गया है। इसलिए प्रत्येक विम्ब के केन्द्र से जाती हुई पू प रेखा के पू विन्दु से क्रान्तिवृत्त क्र क्रा उत्तर की ओर है। इस चित्र से नीचे लिखी बातें स्वयम्‌सिद्ध हैं :—

(१) चन्द्र ग्रहण के समय जब चन्द्रमा च पर और भू छाया छ पर हो—

चन्द्र शर दक्षिण स्फुटवलन उत्तर	भू छाया का केन्द्र छ चन्द्रमा के उत्तर विन्दु उ से पच्छिम की ओर

(२) चन्द्रग्रहण के समय जब चन्द्रमा चा पर और भू छाया छ पर हो —

चन्द्र शर उत्तर	भू छाया का केन्द्र छ चन्द्रमा के दक्षिण
स्फुटवलन उत्तर	विन्दु द से पूर्व की ओर

(३) सूर्य ग्रहण के समय जब चन्द्रमा च पर और सूर्य छ पर हो—

चन्द्र शर दक्षिण	चन्द्रमा का केन्द्र च सूर्य विम्ब के
स्फुटवलन उत्तर	दक्षिण विन्दु द से पूर्व की ओर

(४) सूर्यग्रहण के समय जब चन्द्रमा धा पर और सूर्य छ पर हो—

चन्द्र शर उत्तर	चन्द्र का केन्द्र चा सूर्य विम्ब के उत्तर
स्फुटवलन उत्तर	विन्दु उ से पच्छिम की ओर

इसी प्रकार यदि प्रत्येक विम्ब के केन्द्र से जाने वाली क्रा क्रा रेखा पू प रेखा के पू विन्दु से दक्षिण की ओर खींची जाय तो स्फुट वलन की दिशा दक्खिन की ओर होगी। इस दशा में भी यह स्पष्ट हो जायगा कि श्लोक ६ का नियम बिलकुल ठीक उतरता है। चित्र खींचते समय इस बात का ध्यान रहना आवश्यक है कि छ से च वा च को जाने वाली रेखा क्रान्तिवृत्त से समकोण पर अथवा कदम्बप्रोत वृत्त पर हो।

श्लोक १०—जब श्लोक ६ के अनुसार मध्य ग्रहण काल का वलनाग्र विन्दु जान लिया जाय तब केवल यह जानना रह जाता है कि इस वलनाग्र विन्दु से ग्राह्य विम्ब के केन्द्र तक जाने वाली रेखा के किस विन्दु पर ग्राहक का केन्द्र है। यह तो प्रत्यक्ष ही है कि मध्य ग्रहण काल में ग्राह्य और ग्राहक विम्बों के केन्द्रों का अन्तर चन्द्रमा के शर के समान होता है। इसलिये ग्राह्य विम्ब के केन्द्र से वलनाग्र विन्दु की दिशा में चन्द्रशर के अन्तर पर ग्राहक का केन्द्र नाप कर स्थिर कर लेना चाहिए।

श्लोक ११—ग्राहक के इसी केन्द्र पर ग्राहक विम्ब के व्यासार्ध से जो वृत्त खींचा जायगा वही ग्राहक का विम्ब सूचित करेगा। यह वृत्त ग्राह्य विम्ब का जितना भाग ढक लेगा वही विम्ब का ग्रस्त भाग होगा। यदि ग्राह्य का पूरा विम्ब ग्राहक वृत्त से ढक जायगा तो सर्वग्रास ग्रहण लगेगा, नहीं तो खंडग्रास ग्रहण होगा। इसकी उपपत्ति पृष्ठ ४६१ के चित्र ६६ के सम्बन्ध में बतलायी जा चुकी है।

श्लोक १२—इस श्लोक में यह बतलाया गया है कि समतल भूमि पर अथवा काठ या किसी अन्य वस्तु की तख्ती पर परिलेख खींचा जा सकता है। फलक की जगह काग़ज़ भी आजकल सुगमता से प्रयोग किया जा सकता है।

इस श्लोक के उत्तरार्ध में यह बतलाया गया है कि पूर्व कपाल के परिलेख में दिशाओं का जो क्रम हो पच्छिम कपाल के परिलेख में उसके विपरीत होना चाहिये। परन्तु यह बात समझ में नहीं आती क्योंकि यदि ग्रहण का स्पर्श पूर्व कपाल में हो और मोक्ष पच्छिम कपाल में, जैसा कि प्रायः होता है, तो एक ही ग्रहण के स्पर्शकाल या सम्मीलन काल का परिलेख उन्मीलन या मोक्षकाल के परिलेख से भिन्न होना चाहिये। परन्तु ऐसी बात न तो व्यवहार में सुविधाजनक है और न बहुत आवश्यक ही है। इनके सिवा अगले श्लोकों में सम्मीलन और उन्मीलन की दिशाएँ जानने की जो रीतियाँ बतलायी गयी हैं वे तभी सम्भव हैं जब एक ही परिलेख से काम लिया जाय। अन्य आचार्यों ने इस सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा है। केवल ब्रह्म स्फुट सिद्धांत के ग्रहणोत्तराध्याय के श्लोक[1] २६ में यह लिखा हुआ है कि फलक पर यदि परिलेख बनाया जाय तो इस पर जो दिशाएँ अंकित की जायँगी वे भूमि के परिलेख की दिशाओं के विपरीत होंगी। इसका कारण यह है कि भूमि के परिलेख में दिशाओं का क्रम वह है जो त्रिप्रश्नाधिकार के श्लोक १-४ में बतलाया गया है। परन्तु फलक के परिलेख में यह सुविधा भी होती है कि उसको हम ग्राह्य विम्ब की ओर उलट कर रख सकते हैं और स्पर्श या मोक्ष विन्दु की दिशा का ज्ञान सहज ही कर सकते हैं। ऐसी दशा में फलक पर हमारे बायें हाथ की ओर पूर्व, दाहिने हाथ की ओर पच्छिम, ऊपर की ओर उत्तर और नीचे की ओर दक्खिन होगा। परन्तु भूमि के परिलेख में हमारे दाहिने हाथ की ओर पूरब, बायें हाथ की ओर पच्छिम, उत्तर की ओर उत्तर और दक्षिण की ओर दक्षिण होता है।

सूर्य-सिद्धान्त के टीकाकारों ने तो यही लिखा है कि पूर्व या पच्छिम कपाल के भेद से दिशाओं के क्रम में भिन्नता कर देनी चाहिये। परन्तु मुझे इसके कारण का ज्ञान अभी तक नहीं हुआ इसलिए मैं इसका अर्थ पद्धति के विरुद्ध जैसा कि ब्रह्म स्फुट सिद्धान्त में बतलाया गया है करता हूँ। आशा है इस पर कोई सज्जन अपना मत प्रकट करेंगे और इसका कारण बतलाने की कृपा करेंगे।

ग्रहण देखना कब सम्भव है :—

स्वच्छत्वात्षोडशांशोऽपि ग्रस्तश्चन्द्रस्य दृश्यते।
लिप्तात्रयमपि ग्रस्तं तीक्ष्णत्वान्न विवस्वतः ॥१३॥

---

१. प्राच्यपरे विपरीते विपरीतं मध्यवलनमर्केन्द्वोः।
पूर्ववदन्तत् सर्वं फलके स्वे ग्रहण परिलेखाः ॥ २६ ॥

जिसकी टीका सुधाकरजी इस प्रकार करते हैं—फल के प्राच्यपरे विपरीते कार्ये। भूमौ यः प्राग्विन्दुः पश्चिम विन्दुश्च फलके पश्चिम विन्दुः प्राग्विन्दुः कार्य इति। अर्केन्द्वोर्मध्यवलनं यथादिशमागतं विपरीतं कार्यम्।

अनुवाद—(१३) चन्द्रमा का १२वाँ भाग भी ग्रस्त हो तो स्वच्छता के कारण देखा जा सकता है परन्तु सूर्य की तीन कला भी ग्रस्त हो तो सूर्य की तीक्ष्णता के कारण नहीं देख पड़ता।

विज्ञान भाष्य—इसका अर्थ करने में टीकाकारों ने बड़ा मत-भेद प्रकट किया है। आचार्य रंगनाथ जी, तथा उनके अनुयायी माधव पुरोहित जी और पंडित इन्द्र-नारायण द्विवेदी जी यह अर्थ लगाते हैं कि चन्द्रमा का १२ वाँ भाग भी ग्रस्त हो तो स्वच्छता के कारण नहीं देख पड़ता। परन्तु यह अर्थ मेरी समझ में ठीक नहीं जंचता। स्वच्छता का अर्थ तीक्ष्णता नहीं लिया जा सकता। स्वच्छता के शब्द से ही यह बोध होता है कि चन्द्रमा की ज्योति स्वच्छ या स्पष्ट होती है इसलिए बारहवाँ भाग भी ग्रस्त हो तो स्वच्छतापूर्वक स्पष्ट देखा जा सकता है। जैसा अर्थ मैंने ऊपर लिखा है वैसा ही अर्थ श्री विज्ञानानन्द स्वामी ने अपने बंगला अनुवाद के पृष्ठ २०३ पर किया है।

इस सम्बन्ध में भास्कराचार्य[1], ब्रह्मगुप्त इत्यादि ने लिखा है कि चंद्रमा के १६वें भाग से कम ग्रहण हो तो नहीं देखा जा सकता और सूर्य के १२वें भाग से कम ग्रहण हो तो नहीं देखा जा सकता। इससे भी सूर्य-सिद्धान्त के पूर्वोक्त श्लोक का अर्थ वही ठीक जान पड़ता है जो मैंने किया है। ब्रह्मगुप्त जी ने स्वच्छता का शब्द इसी अर्थ में प्रयोग किया है जैसा कि इनके अवतरणों से प्रकट होता है।

छादक के केन्द्र का मार्ग खींचना—

स्वसंज्ञिताः त्रयः कार्या विक्षेपाग्रेषु विन्दवः।
तत्र प्राङ्मध्ययोर्मध्ये तथा मौक्षिक मध्ययोः ॥१४॥
लिखेन्मत्स्यौ तयोर्मध्यमुखपुच्छविनिर्गतम् ।
प्रासार्य सूत्र द्वितयं तयोर्यत्र युतिर्भवेत् ॥१५॥
सूत्रेण विलिखेद्वृत्तं तत्र विन्दुत्रयं स्पृशन् ।
स पन्था ग्राहकस्योक्तः तेनाऽसौ सम्प्रयास्यति ॥१६॥

---

१. इन्दोर्भागः षोडसः खण्डितोऽपि तेजः पुञ्जच्छन्नभावान्न लक्ष्यः ।
तेजस्तैक्ष्ण्यात् तीक्ष्णगोर्द्वादशांशो नादेश्योतोऽल्पोग्रहो बुद्धि मद्भिः ॥३७॥
—सिद्धान्त शिरोमणि, गणिताध्याय चन्द्रग्रहणाधिकार

वलनादि शशिवदन्यद् ग्रहणं तैक्ष्ण्याद्रवेरनादेश्यम् ।
द्वादशभागादूनं स्वच्छत्वात् षोडशादिन्दोः ॥२०॥
—ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त; सूर्यग्रहणाधिकार

अनुवाद—(१४) स्पर्श, मध्य और मोक्षकाल में ग्राहक का केन्द्र जहाँ-जहाँ होता है उन विन्दुओं का पता विक्षेपाग्र विन्दुओं से ही लगाया जाता है। इन तीन विन्दुओं में से स्पर्श और मध्य विन्दुओं से तथा मध्य और मोक्ष विन्दुओं से (१५) मत्स्य बनावे। प्रत्येक मत्स्य को दो समान भागों में विभाजित करने वाली और उसके मुख और पुच्छ से होकर निकलने वाली रेखाएँ बढ़ाने पर जिस विन्दु पर मिलती हैं (१६) उसको केन्द्र मानकर एक ऐसा धनु बनावे जो पूर्वोक्त तीन विन्दुओं को स्पर्श करे तो इसी धनु पर ग्रहणकाल में छादक के केन्द्र का मार्ग होता है।

विज्ञान भाष्य—यदि दो बिन्दुओं में से प्रत्येक को केन्द्र मानकर दूसरे बिन्दु की दूरी पर दो धनु खींचे जाँय तो उनके बीच में जो क्षेत्र बनता है वह मछली के आकार का होता है। ऐसे आकार को तिमि या मत्स्य कहा जाता है (देखो पृष्ठ २२३) इसी प्रकार का मत्स्य बनाने का नियम १४वें श्लोक में बतलाया गया है। स्पर्श और मध्यकाल के छादक के केन्द्रों से तथा मध्य और मोक्षकाल के छादक के केन्द्रों से जो दो मत्स्य बनाए जाते हैं उनकी सामान्य जीवाएँ (**common chords**) बढ़ाने पर जिस विन्दु पर मिलती हैं उसको छादक के केन्द्र के मार्ग का केन्द्र माना गया है और इसी केन्द्र से छादक के केन्द्रों को स्पर्श करने वाला धनु छादक के केन्द्र का मार्ग माना गया है। यह त्रिप्रश्नाधिकार के ४१वें श्लोक के भाभ्रम-रेखा के खींचने के नियम की तरह है, और उसी प्रकार स्थूल भी है। इस नियम से छादक के केन्द्र का जो मार्ग सिद्ध होता है उससे यथार्थ मार्ग का अंतर बहुत कम होता है। इसलिए आगे लिखे हुए श्लोकों के अनुसार इससे जो काम लिया जाता है वह व्यवहार के लिए पर्याप्त शुद्ध है।

किसी इष्टकाल में ग्रहण का परिलेख खींचना—

ग्राह्यग्राहकयोगार्धात्प्रोज्झ्येष्टग्रासमागतम्।
अवशिष्टाङ्गुलसमां शलाकां मध्यबिन्दुतः ॥१७॥
तमोमार्गोन्मुखीं दद्याद्ग्रसतः प्रग्रहाश्रितम्।
विमुञ्चतो मोक्षदिशं ग्राहकाध्वानमेव वा ॥१८॥
स्पृशेद्यत्र ततो वृत्तं ग्राहकार्धेन संलिखेत्।
तेन ग्राह्यं यदाक्रान्तं तत्तदा ग्रासमादिशेत् ॥१९॥

अनुवाद—(१७) गणित से जाने गये इष्टकाल के ग्रास को मानैक्य खंड से घटाने पर जो शेष आवे उसके अंगुल बनाकर इसी के समान एक शलाका अथवा सीधी लकड़ी लेकर परिलेख के केन्द्र से (१८) यदि इष्टकाल ग्रहण के मध्यकाल से पहले हो तो स्पर्श विन्दु की ओर और यदि इष्टकाल मध्यकाल के उपरान्त हो तो मोक्ष विन्दु

की ओर छादक के केन्द्र के मार्ग पर रखो और देखो कि जब शलाका का एक सिरा केन्द्र पर है तब इसका दूसरा सिरा छादक के केन्द्र के मार्ग को कहाँ छूता है, (१९) जहाँ छूवे वहीं इष्टकाल में छादक का केन्द्र होगा। इसी विन्दु को केन्द्र मानकर छादक के व्यासार्ध से जो वृत्त खींचा जायगा वही इष्टकाल में छादक का बिम्ब होगा। यह छाद्य बिम्ब को जितना ढक लेगा उतना ही भाग इष्टकाल में ग्रस्त होगा और इस समय का जो परिलेख होगा वही इष्ट ग्रास का परिलेख होगा।

विज्ञान भाष्य—यह काम आजकल परकार की सहायता से सहज ही हो सकता है। इन तीन श्लोकों का सार यह है कि जब हमें चन्द्रग्रहणाधिकार के श्लोक १८-२० के अनुसार इष्ट काल का ग्रास ज्ञात हो जाय तब इसका परिलेख कैसे खींचना चाहिए। पृष्ठ ४६१ के चित्र ६६ के संबंध में बतलाया गया है कि चन्द्रमा का ग्रस्त भाग ज झ=छझ+चज—च छ=मानैक्यार्ध—चन्द्रमा के केन्द्र से भूछाया के केन्द्र का अंतर। इसलिए यदि मानैक्यार्ध से ग्रस्त भाग घटाया जाय तो छादक और छाद्य के केन्द्रों की दूरी ज्ञात हो सकती है। जब यह दूरी जान ली गयी और छाद्य का केन्द्र तथा छादक का मार्ग ज्ञात ही है तब छादक का स्थान जान लेना कुछ कठिन नहीं है। यदि परकार के दोनों भुजों की नोकों की दूरी छादक और छाद्य के केन्द्रों की दूरी के समान कर ली जाय और छाद्य के केन्द्र को केन्द्र मानकर एक धनु खींचा जाय तो यह छादक के मार्ग को दो बिन्दुओं पर काटेगा। जो विन्दु मध्यविन्दु से स्पर्शविन्दु की ओर होता है वहाँ छादक मध्यकाल के पहले रहता है और जो विन्दु मध्यविन्दु से मोक्ष विन्दु की ओर होता है वहाँ छादक मध्यकाल के पीछे रहता है। इस विन्दु को जानकर छादक के व्यासार्ध से जो वृत्त खींचा जायगा वह छाद्य को जहाँ तक ढक लेगा वही ग्रस्त भाग होगा। इस प्रकार किसी इष्टकाल का परिलेख सहज ही खींचा जा सकता है।

सर्वग्रास ग्रहण के आरंभ या अंत का परिलेख खींचने की रीति—

मानान्तरार्धकमितां शलाकां ग्रासदिङ्मुखीम्।
निमीलनाख्यां दद्यात्सा तन्मार्गे यत्र संस्पृशेत् ॥२०॥
ततो ग्राहकखण्डेन प्राग्वन्मण्डलमालिखेत्।
तद्ग्राह्यमण्डलयुतिर्यत्र तत्र निमीलनम् ॥२१॥
एवमुन्मीलने मोक्षदिङ्मुखं संप्रसारयेत्।
विलिखेन्मण्डलं प्राग्वदुन्मीलनमथोक्तवत् ॥२२॥

अनुवाद—(२०) परिलेख के केन्द्र से अर्थात् ग्राह्य बिम्ब के केन्द्र से मानान्तर खंड के समान एक शलाका छादक के मार्ग पर स्पर्शविन्दु की ओर इस प्रकार रखे

कि शलाका का एक सिरा केन्द्र पर और दूसरा सिरा छादक के मार्ग को स्पर्श करे। इसी स्थान पर सम्मीलन के समय छादक का केन्द्र होता है। (२१) इसको केन्द्र मानकर ग्राहक के बिम्बार्ध के व्यासार्ध से जो वृत्त खींचा जायगा वह ग्राह्य बिम्ब के जिस विन्दु पर स्पर्श करेगा उसी स्थान पर सम्मीलन का आरम्भ होगा। (२२) इसी प्रकार मानान्तर खंड के समान शलाका को मोक्ष विन्दु की ओर रक्खा जाय तो शलाका का सिरा छादक के मार्ग को जहाँ स्पर्श करेगा उस विन्दु को केन्द्र मानकर ग्राहक के व्यासार्ध के समान त्रिज्या से जो वृत्त खींचा जायगा वह ग्राह्य बिम्ब को जहाँ स्पर्श करेगा वहीं उन्मीलन होगा अर्थात् इसी विन्दु से सर्वग्रास ग्रहण का अंत होगा।

विज्ञान भाष्य—इसकी व्याख्या करने की बहुत आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह चित्र १०० से स्वयम् स्पष्ट है। सम्मीलन या उन्मीलन काल के समय छाद्य और छादक के केन्द्रों का अंतर मानान्तर खंड के समान होता है। इसलिए जब हमें छाद्य का केन्द्र, छादक का मार्ग तथा छाद्य, और छादक के केन्द्रों का अंतर ज्ञात है तब छादक का केन्द्र स्थिर करना कठिन नहीं हो सकता। हाँ, इतना ध्यान रखना चाहिए कि जब हमें सम्मीलन काल का परिलेख खींचना हो तब स्पर्श की दिशा में और जब उन्मीलन काल का परिलेख खींचना हो तब मोक्ष की दिशा में शलाका रखनी चाहिए। यह काम भी आजकल परकार से सहज ही लिया जा सकता है। परकार की दोनों नोकों का अंतर मानान्तर खंड के समान करके इसकी एक नोक को केन्द्र पर रखकर दूसरी नोक से एक धनु खींचे जो छादक के मार्ग को दो विन्दुओं पर काटेगी। जो विन्दु स्पर्श की ओर होगा वहीं सम्मीलन काल में छादक का केन्द्र होगा और जो विन्दु मोक्ष की ओर होगा वहीं उन्मीलन काल में छादक का केन्द्र होगा। जब छादक का केन्द्र स्थिर कर लिया गया तब छादक के विम्बार्ध के समान त्रिज्या से वृत्त खींचकर सर्वग्रास ग्रहण के आरंभ और अंत का स्थान जान लेना कुछ भी कठिन नहीं होता।

ग्राह्य विम्ब का रंग कैसा होता है--

अर्धादूनं च धूम्रं स्यात्कृष्णमर्धाधिकं भवेत्।
विमुञ्चतः कृष्णधूम्रं कपिलं सकलग्रहे ॥२३॥

अनुवाद—(२३) जब चन्द्र विम्ब का आधे से कम भाग ग्रस्त होता है तब ग्रस्त भाग का रंग धुएँ की तरह होता है। आधे से अधिक ग्रस्त होने पर ग्रस्त भाग काला देख पड़ता है। जब चन्द्र विम्ब का बहुत सा भाग ग्रस्त हो जाता है और थोड़ा ही सा बचा रहता है तब ग्रस्त भाग का रंग लाली लिये हुए काला होता है। परन्तु

सर्वग्रास ग्रहण का रंग लाली हुए भूरा होता है। (सूर्यग्रहण में सूर्य के ग्रस्त भाग का रंग सदैव काला होता है।)

विज्ञान भाष्य—जब तक चन्द्रमा का प्रकाश तेज रहता है तब तक इसकी तुलना में ग्रस्त भाग का रंग धूम्र या काला देख पड़ता है। परन्तु जब चन्द्रमा का थोड़ा ही सा भाग बचा रहता है तब इसका प्रकाश तेजरहित हो जाता है। इसलिए ग्रस्त भाग का रंग कुछ-कुछ लाल भी देख पड़ता है। लाली का कारण यह है कि सूर्य का सूक्ष्म प्रकाश वायुमंडल से वर्तित होकर चन्द्र विम्ब पर पड़ता है इसलिए काले ग्रस्त भाग पर कुछ लाली आ जाती है। जिस समय पूरा चन्द्र विम्ब छाया में आ जाता है उस समय चन्द्र विम्ब काला न होकर लाली लिए हुए भूरा देख पड़ता है। इसका कारण भी सूर्य का वर्तित प्रकाश है जो पृथ्वी के वायुमण्डल से घूमकर चन्द्रमा पर पड़ता है। यदि वायुमण्डल न होता तो चन्द्रमा के ग्रस्त भाग का रंग भी सदैव काला ही होता जैसा कि ग्रस्त सूर्य का रंग होता है।

वायुमण्डल के वर्तन के कारण कभी-कभी एक आश्चर्यजनक घटना और भी देख पड़ती है। उदय या अस्त काल में जब ग्रहण लगता है तब कभी-कभी चमकते हुए सूर्य की उपस्थिति में ग्रस्त चन्द्रमा देख पड़ता है जिससे एक ओर चन्द्रमा में ग्रहण लगा रहता है और दूसरी ओर सूर्य अपने तेज से पृथ्वी को प्रकाशमान किये रहता है। ऐसी[1] घटनाएँ सन् १६६६, १६६८ और १७५० ईस्वी में देख पड़ी थीं।

परिलेख खींचने का रहस्य गुप्त रखना चाहिए—

रहस्यमेतद्देवानां न देयं यस्य कस्यचित्।
सुपरीक्षितशिष्याय दातव्यं ज्ञानमुत्तमम्॥२४॥

अनुवाद—(२४) परिलेख खींचने की विद्या देवताओं की गोप्य वस्तु है। यह विद्या ऐसे-वैसे आदमी को न बतलानी चाहिए। अच्छी तरह परीक्षा किये हुए शिष्य को यह उत्तम विद्या बतलानी चाहिए।

विज्ञान भाष्य—इसका सार यही जान पड़ता है कि परिलेख खींचने की रीति सुगमतापूर्वक समझ में नहीं आ सकती इसलिए जो इसके तत्व को अच्छी तरह नहीं समझ सकता उसको बतलाने से कोई लाभ नहीं है। इस विद्या का अधिकारी वही शिष्य हो सकता है जो इसके रहस्य को समझ सकता है।

परिलेखाधिकार नामक ६ठें अध्याय का अनुवाद समाप्त हुआ।

---

१. देखो Parker's Astronomy, page 171.

अब चन्द्रग्रहण का परिलेख खींचने का एक उदाहरण देकर यह बतलाया जायगा कि पाश्चात्य अर्वाचीन ज्योतिषी सूर्य-ग्रहण की गणना कैसे करते हैं और यह कैसे मालूम करते हैं कि भूभाग के किन किन स्थानों में सर्वग्रास ग्रहण देख पड़ता है तथा किन-किन स्थानों में कितना ग्रास देख पड़ता है। इसके उपरान्त संक्षेप में यह भी बतलाया जायगा कि खाल्दिया और यूनान देश वाले ग्रहण की गणना कैसे करते थे। सूर्य-ग्रहण का परिलेख खींचने का उदाहरण विस्तारभय से छोड़ दिया जाता है।

उदाहरण—संवत् १९८१ वि० की श्रावणी पूर्णिमा के चंद्रग्रहण का परिलेख खींचना—

यह तो प्रकट ही है कि परिलेख खींचने के लिए तात्कालिक स्फुटवलन और चन्द्रमा के शर के ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है और छादक ग्रह के केन्द्र का मार्ग खींचने के लिए स्पर्शकाल, मध्यकाल और मोक्षकाल के स्फुटवलनों और चंद्र-शरों के ज्ञान की आवश्यकता होती है। इनमें से स्पर्श और मोक्षकाल के स्फुटवलनों की गणना चन्द्रग्रहणाधिकार पृष्ठ ४९९-५०५ में की गयी है। इसलिए अब ग्रहण के मध्यकाल के स्फुटवलन की गणना भी कर लेनी चाहिये।

आक्षवलन की गणना

चन्द्रमा का पूर्णिमान्तकालिक शर = ८·७६ अथवा ८·८ कला (पृष्ठ ४९५)

पूर्णिमान्तकालिक चंद्र-भोगांश २९८°३४′ (पृष्ठ ४९५)

अयनांश २२°४०′ (पृष्ठ ४९८-४९९)

पूर्णिमांतकालिक चन्द्र सायनभोग ३२१°१४′

पूर्णिमान्तकालिक चन्द्र मध्यम कान्तिज्या

= ज्या २३°२७′ ज्या ३२१°१४′

= ·३९७९ × ज्या ३८°४६′

= ·३९७९ × ·६२६१

= ·२४९१

∴ पूर्णिमान्तकालिक चन्द्र माध्यम क्रान्ति = १४°२५′·३ दक्षिण

" " शर ८′·८ उत्तर

∴ " " स्पष्ट क्रान्ति = १४°१६′·५ दक्षिण

काशी के सूर्योदय से स्पर्शकाल तक का समय	= ४५ घड़ी	५४ पल
स्थित्यर्ध	= ४ "	४२ "
सूर्योदय से ग्रहण के मध्यकाल का समय	= ५० "	३६ "
सूर्योदय से मध्यरात्रि का समय (पृष्ठ ५००)	= ४६	११
मध्यरात्रि के उपरान्त ग्रहण का मध्यकाल	= ४ "	२५ "

इसलिए ग्रहण के मध्यकाल में पृथ्वी की छाया के केन्द्र का पच्छिम नतकाल ४ घड़ी २५ पल अथवा २६५ पल या १५९० असु हुआ। यही मध्यग्रहणकालिक चन्द्रमा का भी नतकाल हुआ क्योंकि इस समय भूछाया और चन्द्रमा के केन्द्रों के भोगांश समान होते हैं। इसलिए

मध्यग्रहणकालिक चन्द्रमा का नतकाल = १५९० असु = १५९०′ = २६°३०′

चन्द्रमा की मध्यग्रहणकालिक चर ज्या = स्परे २५°२०′ स्परे १४°१६′·५

= ·४७३४ × ·२५४४

= ·१२०४

∴ मध्यग्रहणकालिक चरांश = ६°५५′

पृष्ठ २९२ के समीकरण (ग) के अनुसार, मध्यकाल के चन्द्रमा की नतांश कोटिज्या

= (कोज्या २६°३०′ − ज्या ६°५५′)

× कोज्या २५°२०′ × कोज्या १४°१६′·५

= (·८९४९ − ·१२०४) × ·९०३८ × ·९६९१

= ·७७४५ × ·९०३८ × ·९६९१

= ·६७८४

∴ मध्यग्रहणकालिक नतांश = ४७°१७′

पृष्ठ २७६ के अनुसार,

ज्या अग्रा = ज्या १४°१६′·५ / (ज्या ४७°१७′ × कोज्या २५°२०′)

+ कोस्परे ४७°१७′ × स्परे २५°२०′

= ·२४६५ / (·७३४७ × ·९०३८) + ·९२३३ × ·४७३४

= ·३७१२ + ·४३७१

= ·८०८३

∴ अग्रा = ५३°५६′

∴ पच्छिम विन्दु से चन्द्रमा का मध्यग्रहणकालीन दिगंश = ५३°५६′ दक्षिण

∴ चित्र १०१ के अनुसार,

स्परे (ख उ ग) = अग्रा कोटिज्या × नतांश स्पर्शरेखा

= कोज्या ५३°५६′ स्परे ४७°१७′

= ·५८८७ × १·०८३१

= ·६३७६

∴ ख उ ग = ३२°३१′

∴ मध्यकालिक चन्द्रमा के समप्रोतवृत्त का नतांश = ३२°३१′

$$\therefore \text{ज्या (आक्षवलन)} = \frac{\text{ज्या } ३२°३१′ \times \text{ज्या } २५°२०′}{\text{कोज्या } १४°१६′·५}$$

$$= \frac{·५३७५ \times ·४२७९}{·९६९१}$$

$$= \frac{·२३००}{·९६९१}$$

$$= ·२३७३$$

∴ आक्षवलन = १३°४४′ दक्षिण, क्योंकि चन्द्रमा पच्छिम कपाल में है।

मध्यग्रहणकालिक चन्द्रमा का सायन भोगांश = ३२१°१४′

इसमें ९०° जोड़ने पर चन्द्रमा का सायन भोगांश = ५१°१४′ जिसकी क्रान्ति उत्तर होगी इसलिए आयनवलन उत्तर होगा।

$$\text{ज्या (आयनवलन)} = \frac{\text{ज्या } २३°२७′ \times \text{ज्या } ५१°१४′}{\text{कोज्या } १४°१६.′५}$$

$$= \frac{·३९७९ \times ·७७९७}{·९६९१}$$

$$= \frac{·३१०२}{·९६९१}$$

$$= ·३२०१$$

∴ आयनवलन = १८°४०′ उत्तर

इसलिए मध्यग्रहणकालिक स्फुटवलन = १३°४४′ दक्षिण + १८°४०′ उत्तर

= ४°५६′ उत्तर

इसलिए स्पर्श, मध्य और मोक्षकाल के परिलेख के आवश्यक अङ्क यह हुए :—

स्पर्शकाल सम्बन्धी—

स्फुटवलन = १९°१०′ उत्तर (पृष्ठ ५०४)

$$\therefore \text{ज्या } १९°१०′ = ११२८′ = \frac{११२८}{७०} = १६ \text{ अंगुल}$$

चन्द्रशर = १४·′६ उत्तर (पृष्ठ ५००)

$$= \frac{१४·६}{३} \text{ अंगुल} = ४·८७ \text{ अंगुल}$$

मध्यकाल सम्बन्धी—

स्फुटवलन = ४°५६′ उत्तर

∴ ज्या स्फुटवलन = ज्या ४°५६′ = २९६′ = $\frac{२९६}{७०}$ = ४·२३ अंगुल

चन्द्रशर = ८′·८ उत्तर (पृष्ठ ४९५)

= $\frac{८·८}{३}$ = २·९३ अंगुल

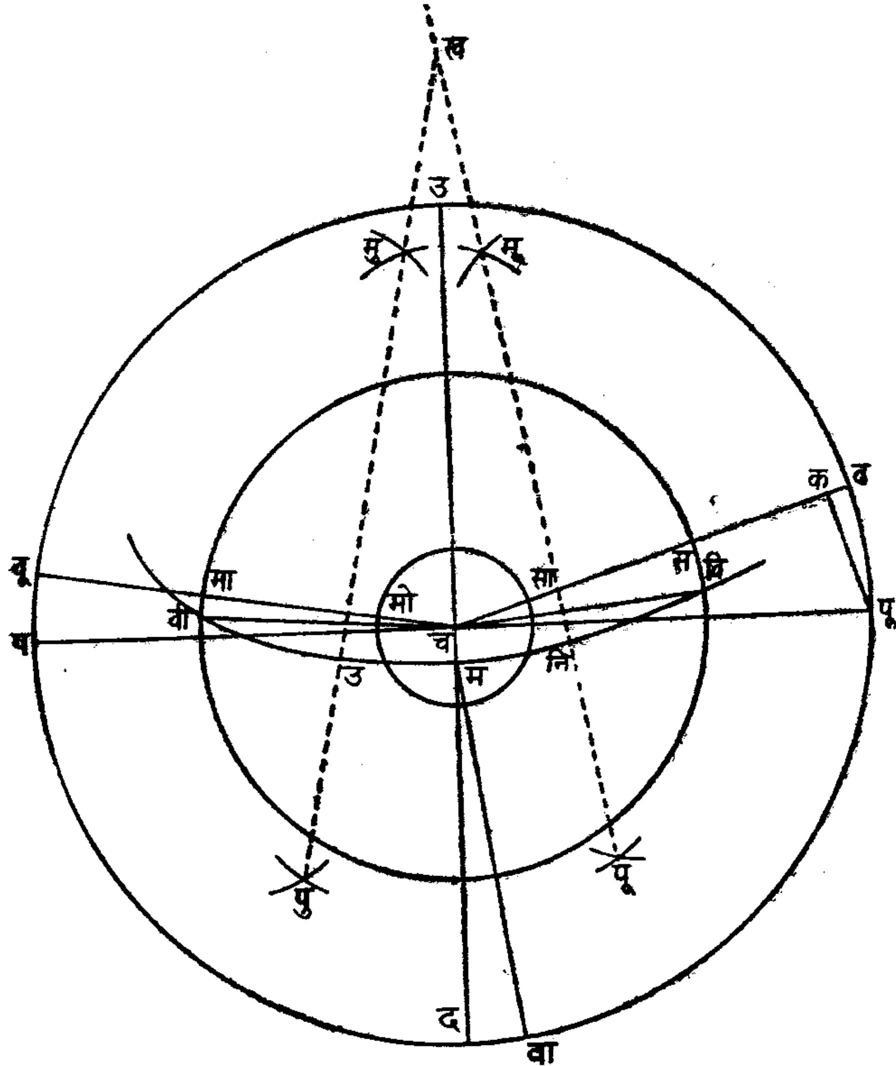
मोक्ष काल सम्बन्धी—

स्फुटवलन = ३°५९′ दक्षिण (पृष्ठ ५०५)

∴ ज्या ३°५९′ = २३९′ = $\frac{२३९}{७०}$ = ३·४ अंगुल

चन्द्रशर = ३′ उत्तर (पृष्ठ ५००)

= १ अंगुल



चित्र १०३

उ पू द प=वलनाश्रित वृत्त

उ, पू, द, प,=उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पच्छिम विन्दु

स बि वी मा=समासवृत्त जिसका व्यासार्ध मानैक्य खंड के समान है

सबसे छोटा वृत्त=चन्द्रविम्ब

च=चन्द्रविम्ब, समास वृत्त और वलनाश्रित वृत्त का केन्द्र

च व=वलनाग्र रेखा अथवा वलनाश्रितवृत्त की त्रिज्या जिसका पूर्व विन्दु से अन्तर स्पर्शकाल के स्फुट वलन की ज्या पू क के समान है

पू च व=स्पर्शकालिक वलन

व=स्पर्शकाल का वलनाग्र विन्दु

स=स्पर्शकाल की वलनाग्र रेखा और समासवृत्त का युतिविन्दु

स वि=स्पर्शकालिक चन्द्रविक्षेप या शर। यह वलनाग्र रेखा के दक्षिण की ओर खींचा गया है क्योंकि चन्द्रशर उत्तर है और यह परिलेख चन्द्रग्रहण का है (श्लोक ८)

वि=स्पर्शकालिक विक्षेपाग्र विन्दु अथवा स्पर्शकालिक भूछाया का केन्द्र

वि च=स्पर्शकालिक विक्षेपाग्र रेखा

सा=विक्षेपाग्र रेखा और चन्द्रविम्ब का युति-विन्दु अथवा ग्रहण का स्पर्श विन्दु

द च वा=मध्यग्रहणकालिक वलन

च वा=मध्यग्रहणकालिक वलनाग्र रेखा (श्लोक ९)

च म =च वा रेखा पर मध्यग्रहणकालिक चन्द्र विक्षेप (श्लोक १०)

म=मध्य ग्रहण काल में भूछाया का केन्द्र। इसको केन्द्र मानकर भूछाया के व्यासार्ध से जो वृत्त खींचा जाता है उसी से मध्यकालिक या परम ग्रास का परिमाण जाना जाता है।

प च वू=मोक्षकालिक वलन

च वू=मोक्षकालिक वलनाग्र रेखा

मा=मोक्ष काल की वलनाग्र रेखा और समास वृत्त का युतिविन्दु

मा वी=मोक्षकालिक चन्द्र विक्षेप। यह भी वलनाग्र रेखा के दक्षिण की ओर खींचा गया है

च वी=मोक्षकालिक विक्षेपाग्र रेखा

मी=मोक्षकालिक विक्षेपाग्र रेखा और समासवृत्त का युतिविन्दु अथवा ग्रहण का मोक्षविन्दु

वी=मोक्षकालिक भूछाया का केन्द्र

मु, पु=मध्य ग्रहण तथा मोक्षकाल के भूछाया के केन्द्रों म और वी पर खींचे हुए मत्स्य के मुख और पुच्छ विन्दु

मू पू =मध्य ग्रहण तथा स्पर्शकाल के भूछाया के केन्द्रों म और वि पर खींचे हुए मत्स्य के मुख और पुच्छ विन्दु

ख=मु पु और मू पू का युति-विन्दु

वि म वी=ख को केन्द्र और ख वि को त्रिज्या मानकर खींचा हुआ धनु जो ग्रहण काल में भूछाया के केन्द्र का मार्ग है (श्लोक १४-१६)

च नि अथवा च उ=मानान्तर खंड

नि=निमीलन या सम्मीलन काल में भूछाया का केन्द्र। इसको केन्द्र मान कर भूछाया के व्यासार्ध से जो वृत्त खींचा जाता है वह चन्द्रविम्ब को जिस विन्दु पर स्पर्श करता है वहीं सर्वग्रास ग्रहण का आरंभ होता है। (श्लोक २०-२१)

उ=उन्मीलन काल में भूछाया केन्द्र। इसको केन्द्र मानकर भूछाया के व्यासार्ध से जो वृत्त खींचा जाता है वह चन्द्र-विम्ब को जिस विन्दु पर स्पर्श करता वहीं सर्वग्रास का अन्त होता है। (श्लोक २२)

सब के लिए (देखो पृष्ठ ४६०)

भू भा का व्यासार्ध=४३′·६७=$\frac{४३·६७}{३}$=१४·६६ अंगुल

चन्द्रविम्ब का व्यासार्ध=१६′·६६=१६·६६+३=५·५५ अंगुल

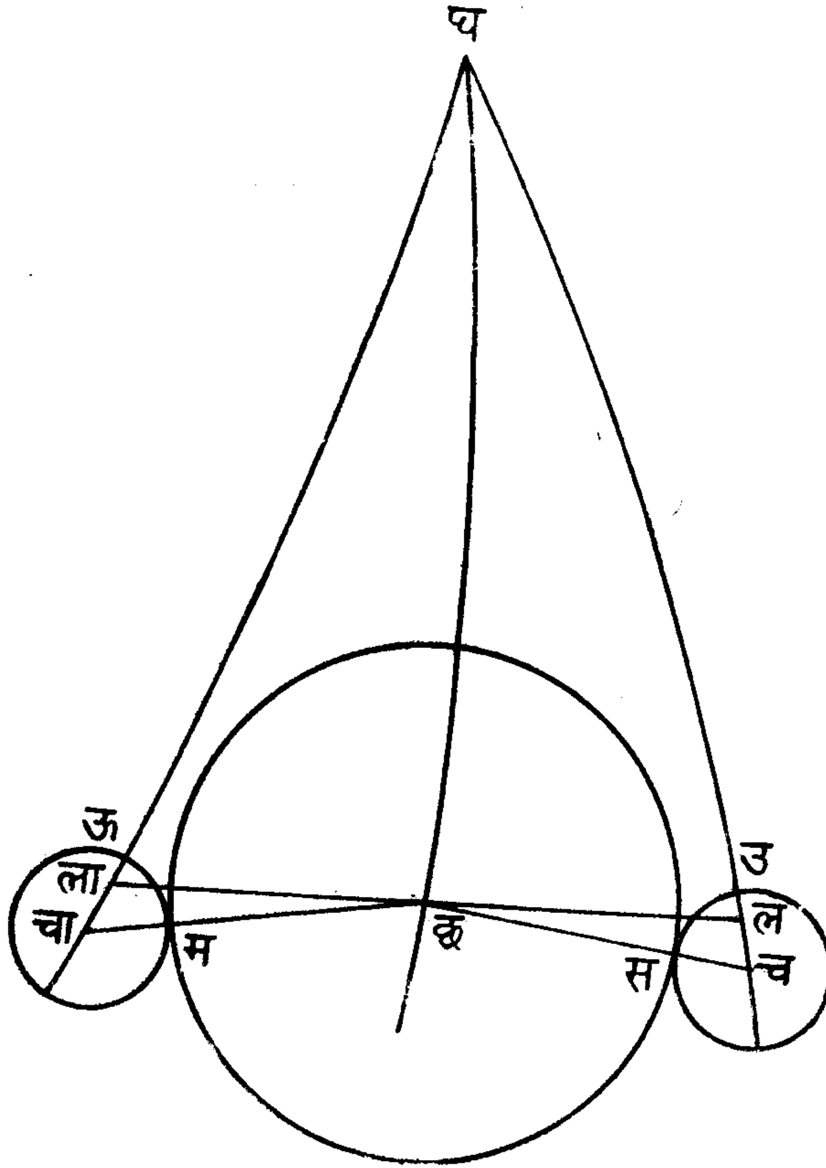
मानैक्य खंड=६०′·६३=६०·६३÷३=२०·२१ अंगुल

मानान्तर खंड=२७′·३१=२७·३१÷३= ९·१ अंगुल

यहाँ मैंने विम्बों या शरों का अंगुलात्मक परिमाण जानने के लिए प्रत्येक को ३ से भाग दिया है और ३ कला का अंगुल समझा है जैसा कि ऊपर श्लोक ३ के विज्ञान भाष्य में बतलाया गया है। इस परिलेख में वलनाश्रित वृत्त का एक अंगुल १ मिलीमीटर के समान लिया जाता है और अन्य वृत्तों या शरों के खींचने के लिए एक अंगुल डेढ़ मिलीमीटर के समान माना जाता है।

अर्वाचीन रीति से स्पर्शबिन्दु की दिशा की गणना—

पाश्चात्य ज्योतिषी समप्रोत वृत्त की दिशा से स्पर्शविन्दु की दिशा की गणना नहीं करते वरन् ध्रुवप्रोत वृत्त की दिशा से स्पर्श या मोक्ष विन्दु की दिशा की गणना करते हैं। इसलिए इनकी गणना में स्फुटवलन के जानने की आवश्यकता नहीं पड़ती। नीचे संक्षेप में यह रीति भी बतला दी जाती है :—



चित्र १०४

छ=भू छाया का केन्द्र

ध=उत्तरी आकाशीय ध्रुव

च=स्पर्शकाल में चन्द्रमा का केन्द्र

चा=मोक्षकाल में चन्द्रमा का केन्द्र

स =स्पर्शविन्दु

म=मोक्ष विन्दु

च उ ध=स्पर्श काल के चन्द्रमा के केन्द्र का ध्रुवप्रोत वृत्त

चा ऊ ध=मोक्षकाल के ,, ,, ,,

उ=स्पर्शकाल के चन्द्रबिम्ब का उत्तर विन्दु

ऊ=मोक्षकाल के ,, ,,

छ ल या छ ला=छ से चन्द्र केन्द्र के ध्रुवप्रोतवृत्त का लम्बान्तर (Perpendicular distance)

∠उ च स=चन्द्रमा के उत्तर विन्दु से पूर्व की ओर स्पर्श विन्दु की दिशा

∠ऊ चा म=चन्द्रमा के उत्तर विन्दु से पच्छिम की ओर मोक्ष विन्दु की दिशा

च ध=स्पर्शकाल में चन्द्रबिम्ब के केन्द्र का ध्रुवांतर
=९०° – चन्द्रमा की स्पर्श कालिक क्रान्ति

छ ध=भूछाया के केन्द्र का ध्रुवान्तर=९०° – भूछाया की क्रान्ति

चा ध=मोक्षकाल में चन्द्रबिम्ब के केन्द्र का ध्रुवान्तर
=९०° – चंद्रमा की मोक्षकालिक क्रान्ति

यह स्पष्ट है कि स्पर्श या मोक्षकाल में चन्द्रमा भूछाया के बहुत निकट रहता है और इन दोनों की दूरी च छ मानैक्यखंड के समान होती है जिसका परिमाण एक अंश के लगभग होता है इसलिए इसकी तुलना में चन्द्रमा या भूछाया का ध्रुवान्तर छ ध बहुत होता हैं। इसलिए छ ल, छ च या छ ला, छ चा धनु को सीधी रेखाएँ तथा गोलीय त्रिभुज च छ ल या चा छ ला को सरल त्रिभुज (Plane triangle) मान लेने में कोई हानि नहीं हो सकती। इसी तर्क से छ ध को ल ध के समान माना जा सकता है क्योंकि च ध पर छ ल लम्ब खींचा गया है। इसलिये यदि चन्द्रमा की क्रान्ति क और भूछाया की क्रान्ति का हो तो,

च ल=च ध—ध ल=च ध—छ ध

यदि चन्द्रमा और भूछाया दोनों की क्रान्तियाँ उत्तर हों तो,

च ध – छ ध=(९०° – क) – (९०° – का)=का – क

और यदि दोनों की क्रान्तियां दक्खिन हों तो,

च ध – छ ध=(९०°+क) – (९०°+का)
=क – का= – का – (– क)

अर्थात् दोनों दशाओं में च ल का परिमाण जानने के लिए भूछाया की क्रान्ति से चन्द्रमा की क्रान्ति घटानी चाहिए। यह याद रखना चाहिए कि उत्तर क्रान्ति धनात्मक और दक्षिण क्रान्ति ऋणात्मक लिखी जाय।

∴ कोज्या उ च स=कोज्या ल च छ

$$=\frac{\text{च ल}}{\text{च छ}}=\frac{\text{का} - \text{क}}{\text{मानैक्य खंड}}$$

$$=\frac{\text{भूछाया की क्रान्ति} - \text{चन्द्रमा की क्रान्ति}}{\text{मानैक्य खंड}}$$

इसी प्रकार मोक्ष काल में;

कोज्या ऊ चा म = कोज्या ऊ चा छ

$$= \frac{\text{चा ला}}{\text{च छ}} = \frac{\text{का} - \text{क}}{\text{मानैक्य खंड}}$$

यहाँ इतना स्मरण रखना आवश्यक है कि जब चन्द्रमा भूछाया से उत्तर होगा तब कोण उ च स या ऊ चा म ६०° से बड़ा होगा इसलिए इसकी कोटिज्या ऋणात्मक होगी। परन्तु जब चन्द्रमा भूछाया से दक्षिण होगा तब कोण उ च स या ऊ चा म ६०° से छोटा होगा और इसकी कोटिज्या धनात्मक होगी। चन्द्रमा भूछाया से उत्तर तब होता है जब चन्द्रमा की उत्तर क्रान्ति भूछाया की उत्तर क्रान्ति से अधिक होती है अथवा चन्द्रमा की दक्षिण क्रान्ति भूछाया की दक्षिण क्रान्ति से कम होती है। इसके विपरीत दशा में चन्द्रमा भूछाया से दक्षिण होता है।

उदाहरण—अर्वाचीन रीति से उपर्युक्त चन्द्रग्रहण के स्पर्श और मोक्ष विन्दुओं की दिशाएँ जानना—

चन्द्रमा की स्पर्शकालिक क्रान्तियाँ ज्ञात ही हैं। इसलिए भूभा केन्द्र की स्पर्शकालिक और मोक्षकालिक क्रान्तियाँ जान लेनी चाहिए।

भूभा का स्पर्शकालिक भोगांश = २६८°२६′·५

अयनांश = २२°४०′

∴ भूभा का स्पर्शकालिक सायन भोगांश = ३२१°६′·५

∴ भूभा की स्पर्शकालिक क्रान्तिज्या = ज्या २३°२७′ × ज्या ३२१°६′.५

= ज्या २३°२७′ × ज्या (३६०° − ३८°५०′·५)

= − ज्या २३°२७′ × ज्या ३८°५०′·५

= − ज्या ·३६७६ × ·६२७१

= − ज्या ·२४६६

∴ भूभा की स्पर्शकालिक क्रान्ति = १४°२७′·३; दक्षिण भूभा का मोक्षकालिक भोगांश = २६८°३८′·५

अयनांश = २२°४०′

भूभा का मोक्षकालिक सायन भोगांश = ३२१°१८′·५

∴ भूभा की मोक्षकालिक क्रान्तिज्या = ज्या २३°२७′ × ज्या ३२१°१८′५

= ज्या २३°२७′ × ज्या (३६०° − ३८°४१′·५)

= − ज्या २३°२७′ × ज्या ३८°४१′·५

$= -\text{·}३६७६ \times \text{·}६२५१$
$= -.२४८७$

∴ भूभा की मोक्षकालिक क्रान्ति = १४°२४′ दक्षिण

इसलिए कोज्या उ च स $= \dfrac{\text{भूछाया की क्रान्ति} - \text{चन्द्रमा की क्रान्ति}}{\text{मानैक्य खंड}}$

$= \dfrac{-१४°२७'\text{·}३ - (-१४°३१'\text{·}४)}{६०\text{·}६३}$

$= \dfrac{+४\text{·}१}{६०\text{·}६३} = +\text{·}०६७६$

∴ उ च स = ८६°७′

अर्थात् चन्द्र बिम्ब के उत्तर विन्दु से ८६°७′ पूर्व की ओर ग्रहण का स्पर्श होगा।

कोज्या ऊचाम $= \dfrac{\text{का} - \text{क}}{\text{मानैक्य खंड}}$

$= \dfrac{-१४°२४' - (-१४°२')}{६०\text{·}६३}$

$= \dfrac{-२२'}{६०\text{·}६३} = -\text{·}३६२६$

यह मान ऋणात्मक है। इसलिए ऊ चा म कोण ९०° से अधिक है इसलिए जिस कोण की कोटिज्या ·३६२६ है उसको १८० से घटाने पर ऊचाम का मान निकलेगा।

कोटि ज्या ६८°४३′ = ·३६२६

∴ ऊ चा म = १८०° − ६८°४३′ = १११°१७′

अर्थात् चन्द्र विम्ब के उत्तर विन्दु से १११°१७′ पश्चिम की ओर ग्रहण का मोक्ष होगा। नाविक पंचांग के अनुसार ग्रहण का स्पर्श उत्तर विन्दु से ८४° पूर्व और मोक्ष उत्तर विन्दु से ११०° पच्छिम बतलाया गया है। इस अंतर का कारण यह है कि सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार क्रान्ति निकालने की रीति कुछ स्थूल है।

चन्द्रग्रहण का परिलेख खींचने की रीति बतलाने के बाद विचार था कि संक्षेप में अर्वाचीन रीति से सूर्यग्रहण की गणना की रीति जिसे बेसेलियन रीति कहते हैं लिखूँ परन्तु इस समय दो पुस्तकों के[१] अभाव से तथा कई विघ्न-बाधाओं

१. इन पुस्तकों के नाम (१) Chauvenet's Manual of Spherical and Practical Astronomy Vol. I और (2) Loomi's Introduction to Practical Astronomy हैं। पहली पुस्तक में यह विषय बहुत अच्छी तरह समझाया गया है। यह दोनों पुस्तकें इलाहाबाद की पब्लिक लाइब्रेरी में हैं परन्तु इस समय वार्षिक निरीक्षण के कारण अप्राप्य हैं।

के कारण समयाभाव से भी यह इच्छा अभी पूरी नहीं हो सकती। आशा है कि पुस्तक समाप्त होने पर परिशिष्ट में यह विषय अच्छी तरह समझाया जा सकेगा।

इस समय ग्रहण के सम्बन्ध में थोड़ी सी बातें और लिखकर यह अध्याय पूरा कर दिया जायगा।

पृष्ठ ४५७-५८ में बतलाया गया है कि जब सूर्य चन्द्रमा के किसी पात, राहु या केतु के पास होता है तभी अमावस या पूर्णमासी के दिन सूर्य या चन्द्रग्रहण सम्भव है। इसलिए यह सिद्ध है कि ग्रहण का फेरा सूर्य और चन्द्रमा के पात की गतियों पर अवलम्बित है। यदि चन्द्रमा का पात अचल होता तो सूर्य दोनों पातों के निकट वर्ष में दो बार एक ही महीने में पहुँचता जिससे ग्रहण लगने के महीने और तिथि स्थिर रहते। परन्तु चन्द्रमा का पात प्रतिदिन ३′१०″·६४ पच्छिम की ओर चलता है जब कि सूर्य की मध्यम दैनिक गति ५९′८″·३३ पूर्व की ओर है। इसलिए प्रति दिन सूर्य चन्द्रपात से ६२′१८″·९७ अथवा ६२′१९″ दूर होता जाता है। प्रतिदिन इतना दूर होते-होते सूर्य फिर उसी पात के पास ३६०° ÷ ६२′१९″ = १२९६००० ÷ ३७३९ = ३४६·६२ दिन में पहुँचता है। दूसरे पात के पास पहुँचने में इसका आधा समय १७३·३१ दिन लगता है। यदि अमावस या पूर्णमासी के फेरे भी इतने ही दिन में पूरे होते तो प्रत्येक ३४६·६२ या १७३·३१ दिन के उपरान्त ग्रहण देख पड़ते। परन्तु चान्द्रमास का मध्यममान २९·५३०५९ दिन है जो ११ महीने में ३२४·८३६४७ दिन और १२ महीने में ३५४·३६७०५ दिन के समान है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि ग्रहण का फेरा ३४६·६२ दिन में नहीं पड़ सकता।

परन्तु २२३ चान्द्रमास में २२३ × २९·५३०५९ दिन अथवा ६५८५·३२ दिन होते हैं और ३४६·६२ दिन के १९ फेरे में १९ × ३४६·६२ = ६५८५·७८ दिन होते हैं इसलिए ग्रहणों का फेरा अर्थात् ग्रहण-चक्र ६५८५·३२ दिनों का होता है। इतने दिनों के बाद उसी प्रकार के ग्रहण फिर आरंभ होते हैं। इसलिए इस अवधि को ग्रहणचक्र कहा जा सकता है। हमारे प्राचीन ज्योतिष में इस चक्र की चर्चा नहीं है। पाश्चात्य ज्योतिष में इसका नाम सरोस (Saros) है और इसे खाल्दिया निवासियों ने विक्रमी संवत् के आरम्भ से साढ़े छः सौ वर्ष पूर्व निश्चय किया था।

इस ग्रहण चक्र से खाल्दिया वालों को ग्रहणों का पता लगाने में बड़ी सुविधा होती थी क्योंकि बिना लम्बी-चौड़ी गणना किये ही केवल ६५८५.३२ दिनों की ग्रहणों की सारणी से यह सहज ही जान लेते थे कि भविष्य में ग्रहण कब लगेगा। परन्तु यह याद रखना चाहिये कि यह चक्र (युग) सूर्य, चन्द्रमा और राहु की मध्यम गतियों के अनुसार निकाला गया है इसलिए इसमें थोड़ी सी स्थूलता है। दूसरे,

यह युग पूरे ६५८५ दिनों का नहीं है वरन् सात-आठ घंटे अधिक है। इसका यह फल होता है कि उसी स्थान में और उसी समय वही ग्रहण कभी देख पड़ेगा और कभी नहीं। जैसे प्रयाग में सूर्यास्त के समय चन्द्रग्रहण देख पड़ा तो दूसरी बार ६५८५ दिनों के बाद सूर्यास्त से सात आठ घंटे बाद कोई २ बजे रात को यही चन्द्र-ग्रहण फिर देख पड़ेगा। परन्तु तीसरी बार यह ग्रहण उस समय लगेगा जब प्रयाग में सूर्योदय हो चुका रहेगा। इसलिए यह प्रयाग में नहीं देख पड़ेगा परन्तु प्रयाग के पश्चिम उस स्थान में जहाँ ग्रहण के समय रात्रि रहेगी देख पड़ेगा।

एक सौर वर्ष में ३६५·२५८७६ दिन होते हैं। इसलिए १८ वर्षों में ६५७४·६५७७ दिन हुए जो ग्रहण चक्र से केवल १०·६६ दिन कम है। इसलिए प्रकट है कि यदि ग्रहण चक्र का आरंभ मेष संक्रान्ति के दिन हुआ तो दूसरे चक्र का आरम्भ मेष संक्रान्ति से १०·६६ दिन उपरान्त होगा और तीसरे चक्र का आरंभ मेष संक्रान्ति से २१·३२ दिन पर होगा।

एक पात पर कितने ग्रहण हो सकते हैं—एक चान्द्रमास में २९·५३ दिन होते हैं इसलिए एक पक्ष में १४·७६५ दिन हुए। ऊपर बतलाया गया है कि १ दिन में सूर्य राहु से ६२′१९″ दूर होता है। इसलिए एक पक्ष में १४·७६५ × १°२′ १९″ = १५°२०′ ६″ दूर होता है। यदि पूर्णमासी के दिन चन्द्रमा पात पर हो तो इस दिन सर्वग्रास चन्द्रग्रहण अवश्य लगेगा। इसी समय सूर्य दूसरे पात पर होगा इसलिए इससे एक पक्ष पहले और पोछे दोनों अमावसों पर सूर्य दूसरे पात से १५°२०′ आगे पीछे रहेगा जो सूर्य ग्रहण की महत्तम सीमा १८°·५ से कम है। इसलिए इन दोनों अमावसों में खंड सूर्य-ग्रहण हो सकता है (देखो पृष्ठ ४६३-६४)। इस प्रकार एक चान्द्रमास में अधिक से अधिक तीन ग्रहण हो सकते हैं जबकि सूर्य एक पात से १५°२०′ आगे पीछे होता है। परन्तु ऐसे तीनों ग्रहण एक ही स्थान से बहुत कम देख पड़ते हैं।[1]

---

१. महाभारत में एक पक्ष में दो ग्रहणों की चर्चा इस प्रकार है :—

चतुर्दशीं पंचदशीं भूतपूर्वा च षोडशीं। इमां तु नाभिजानेहममावस्यां त्रयोदशीं ॥
चन्द्रसूर्यावुभौ ग्रस्तावेकमासीं त्रयोदशीं ॥३२॥ भीष्म पर्व अध्याय ३

यहाँ एक पक्ष में दो ग्रहणों की ही चर्चा नहीं है वरन् यह भी है कि एक पक्ष १३ दिन का हो गया है। इस पर आश्चर्य प्रकट किया गया है कि १४·१५ और १६ दिन के पक्ष तो देखे गये हैं परन्तु १३ दिनों का पक्ष अभी तक नहीं सुना गया। इस पर स्व० शंकरबालकृष्ण दीक्षित ने अपने भारतीय ज्योतिषशास्त्र के पृष्ठ ११४-११५ पर अच्छा विवेचन किया है और बतलाया है कि पूर्णमासी के चन्द्र-

यदि अमावस्या के दिन सूर्य पात पर हो तो इस दिन सूर्यग्रहण अवश्य होगा। इससे पहले या पीछे आने वाली पूर्णमासी के दिन सूर्य इस पात से १५°२०′ पहले या पीछे होगा इसलिए चन्द्रमा भी पूर्णमासी के दिन दूसरे पात से इतना ही आगे या पीछे होगा। परन्तु चन्द्रग्रहण की महत्तम सीमा १२°३६ है (देखो पृष्ठ १०८)। इसलिए पूर्णमासी के दिन चन्द्रमा पात से महत्तम सीमा से अधिक दूर होने के कारण ग्रस्त नहीं हो सकता। इस प्रकार यह सिद्ध है कि ऐसी अवस्था में एक पात पर एक ही ग्रहण हो सकता है और वह सर्वग्रास सूर्यग्रहण है। इसलिए एक पात पर कम से कम एक सूर्यग्रहण और अधिक से अधिक तीन ग्रहण (दो सूर्यग्रहण तथा एक चन्द्रग्रहण) हो सकते हैं।

एक वर्ष में कितने ग्रहण हो सकते हैं—ऊपर बतलाया गया है कि एक पात से दूसरे पात तक जाने में सूर्य को २७३ दिन लगते हैं और ६ चन्द्रमास में १७७ दिन होते हैं इसलिए यदि किसी पात से दो अंश पहले सूर्य हो और चन्द्र-

---

ग्रहण होने के पश्चात् १३ दिन पर अमावस्या के दिन सूर्य ग्रहण एक ही स्थान से नहीं देखा जा सकता। इस पर मेरा मत इस प्रकार है :—

१३ दिन के पक्षवाली बात पर आश्चर्य इसलिए हुआ कि उस समय तिथियों का मान वेदाङ्ग ज्योतिष की मध्यम गणना से जाना जाता था जिसके अनुसार एक पक्ष में १४ दिन ४५ घड़ी २६ पल होते हैं। इस दशा में १३ दिन का पक्ष असम्भव समझा जाता था जो आजकल आश्चर्यजनक नहीं है क्योंकि स्पष्ट गणना के अनुसार १३ दिन के पक्ष अनेक बार हुए हैं और होते रहेंगे। उस प्राचीन काल में १३ दिन का पक्ष ग्रहणों के देखने से ही जान पड़ा था। वह इस प्रकार संभव है :—

स्पष्ट मान के अनुसार एक पक्ष में कम से कम १३ दिन ५० घड़ी होते हैं। मान लीजिए ११ तारीख के सूर्योदय से १ घड़ी उपरान्त तक पूर्णिमा थी और इस दिन ग्रस्त चन्द्रमा का अस्त हुआ। ऐसी दशा में यह प्रत्यक्ष है कि पक्ष का आरम्भ १२ तारीख को माना जायगा। यदि पक्ष १३ दिन ५७ घड़ी का हो तो अमावस्या का अन्त २४ तारीख को सूर्योदय से ५८ घड़ी पर होगा। यदि सूर्य में ग्रहण भी लगे तो २५ तारीख को ग्रस्त सूर्य उदय होगा और थोड़ी ही देर में ग्रहण का मोक्ष हो जायगा। इससे यह सहज ही प्रकट हो जाता है कि अमावस्या २४ तारीख की रात को ही समाप्त हो जाती है। इस प्रकार १२ तारीख को प्रतिपदा और २४ तारीख को अमावस्या की गणना होगी और १३ दिन का पक्ष देख पड़ेगा। महा-भारत काल में ऐसी ही घटना हुई होगी।

ग्रहण लगे तो इससे पहले और पीछे दोनों अमावसों को सूर्यग्रहण लग सकता है। इस चन्द्रग्रहण से १७७ दिन पीछे सूर्य दूसरे पात से २ अंश पीछे रहेगा। इसलिए इस समय भी चन्द्रग्रहण होगा। इस चन्द्रग्रहण के पहले की अमावस्या को सूर्य दूसरे पात से १३ अंश पहले रहने के कारण ग्रस्त होगा तथा पीछेवाली अमावस्या को सूर्य दूसरे पात से १७ अंश पीछे रहने के कारण उस समय भी ग्रस्त हो सकता है क्योंकि सूर्यग्रहण की महत्तम सीमा १८ अंश के लगभग है। इस प्रकार दोनों पातों पर तीन तीन ग्रहण के हिसाब से ६ ग्रहण हो गये। परन्तु ३४६ दिन में सूर्य फिर पहले पात पर पहुँच जावेगा इसलिए एक सूर्य ग्रहण ३४६ दिन के बाद और हो सकता है। इस प्रकार यदि वर्ष के आरम्भ में सूर्यग्रहण से आरम्भ करके पहले महीने में ३ ग्रहण लगें और वर्ष के मध्य में तीन और ग्रहण लगें तो वर्ष के अन्त में एक सूर्यग्रहण और लग सकता है। ऐसी दशा में एक ही सौर वर्ष के भीतर सात ग्रहण हो सकते हैं। परन्तु १२ चान्द्रमासों के एक वर्ष में अथवा मेष-संक्रान्ति से जिस सौर वर्ष का आरम्भ होता है उसमें यदि अधिकमास न पड़े तो ६ ही ग्रहण होंगे क्योंकि जब चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से वर्ष का आरम्भ माना जाय तो चैत्र शुक्ल १५ को पहला चन्द्रग्रहण होगा। इससे पहले का सूर्यग्रहण चैत्र की अमावस्या को पड़ेगा जो पिछले वर्ष में गिना जायगा। इस प्रकार यद्यपि ३६५ दिन के वर्ष में सात ग्रहण हो सकते है तथापि मेष संक्रान्ति से आरम्भ होने वाले सौर वर्ष में अथवा चैत्र शुक्ल से आरम्भ होने वाले चान्द्र वर्ष में अधिक से अधिक केवल ६ ही ग्रहण देख पड़ेंगे। इन ६ ग्रहणों में ४ ग्रहण सूर्य के और २ चन्द्रमा के होंगे। यदि वर्ष में अधिक से अधिक ७ ग्रहण माने जायँ तो ५ सूर्यग्रहण होंगे और २ चन्द्रग्रहण होंगे।

ऊपर यह सिद्ध हो ही चुका है कि यदि किसी पात पर या उसके तीन अंश आगे-पीछे सर्वग्रास या कंकण सूर्यग्रहण हो तो इसके पहले या पीछे आने वाली पूर्णमासियों के दिन चन्द्रग्रहण नहीं हो सकते। इसलिए इस पात पर केवल एक सूर्यग्रहण होगा। दूसरे पात पर भी केवल एक सूर्यग्रहण हो सकता है। इसलिए वर्ष के भीतर कम से कम २ ग्रहण अवश्य पड़ेंगे और यह सूर्यग्रहण होंगे।

इस पर लोग यह शङ्का करेंगे कि सूर्यग्रहण बहुत कम देख पड़ते हैं और चन्द्रग्रहण अधिक। इसका कारण यह है कि चन्द्रग्रहण भूतल के अधिकांश भाग से देख पड़ता है और सूर्यग्रहण अनेक बार पड़ते हुए भी भूतल के बहुत थोड़े भाग से देखा जा सकता है इसलिए एक ही स्थान से सूर्यग्रहणों की संख्या कम और चन्द्रग्रहणों की संख्या अधिक जान पड़ती है। परन्तु यदि सारे संसार के ग्रहणों की संख्या पर विचार किया जाय तो यही सिद्ध होता है कि सूर्यग्रहणों की संख्या चन्द्रग्रहणों की संख्या से कहीं अधिक होती है।

दस दिन ऊपर १८ वर्ष के ग्रहण-चक्र या ग्रहण-युग में प्रायः ७१ ग्रहण पड़ते हैं जिनमें ४१ सूर्यग्रहण होते हैं और २६ चन्द्रग्रहण। इन दोनों का अनुपात वही है जो सूर्य और चन्द्रग्रहणों की परम सीमा का अनुपात है।

एक स्थान से सर्वग्रास अथवा कंकण सूर्यग्रहण बहुत कम देख पड़ता है यद्यपि एक ग्रहण-चक्र में सारे संसार के सर्वग्रास और कंकण सूर्यग्रहणों की संख्या २८ के लगभग होती है। हैली नामक पाश्चात्य ज्योतिषी के मतानुसार २० मार्च ११४० ईस्वी से २२ अप्रैल १७१५ ई० तक लंदन में कोई सर्वग्रास सूर्यग्रहण नहीं देख पड़ा।

परन्तु सर्वग्रास सूर्यग्रहण बड़े महत्व की घटना होती है और किसी स्थान पर साढ़े सात मिनट अथवा १६ पल से अधिक नहीं रहता। इतने थोड़े समय के लिए भी आजकल के पाश्चात्य ज्योतिषी लाखों रुपया खर्च करके दूर-दूर के जङ्गल, पहाड़, समुद्र, अथवा टापुओं में जहाँ से देखने में अधिक सुविधा होने की संभावना होती है जाते हैं। इस कारण के बेधों से सिद्ध होता है कि सूर्य ठोस पिंड नहीं है। इसके चारों ओर आग की लपकें देख पड़ती हैं जिनकी परीक्षाओं से सिद्ध होता है कि इनमें हाइड्रोजन इत्यादि वायवीय पदार्थ भी हैं। परन्तु इस चर्चा का ग्रहण से विशेष सम्बन्ध नहीं है इसलिए यहाँ इस पर और कुछ न लिख कर अध्याय समाप्त किया जाता है।

इस प्रकार परिलेखाधिकार का विज्ञान भाष्य समाप्त हुआ।

सप्तम अध्याय

ग्रहयुत्यधिकार

श्लोक—१ ग्रहों का युद्ध, समागम और अस्त। श्लोक २ और ३ का पूर्वार्ध—समागम हो चुका है या होने वाला है? श्लोक ३ का उत्तरार्ध, ४, ५, ६—कब और कहाँ समागम होगा। श्लोक ७-१०—दृक्कर्म की रीति। श्लोक ११—दृक्कर्म की आवश्यकता कहाँ-कहाँ होती है। श्लोक १२—दृक्कर्म संस्कृत ग्रहों के समागम के समय उनका परस्पर अन्तर क्या होता है। श्लोक १३-१४—पांच ताराग्रहों के बिम्बों के मध्यम मान तथा स्पष्ट मान जानने के नियम। श्लोक १५-१७—युतिकाल में ग्रहों की दिशा जानकर बेध करने की रीति। श्लोक १८ के उत्तरार्ध से श्लोक २२ तक—अनेक प्रकार के युद्धों की परिभाषा। श्लोक २३—शुभाशुभ फल जानने के लिये युद्धों की कल्पना।

इस अध्याय में यह जानने की रीति बतलायी गयी है कि ग्रह एक दूसरे के बहुत निकट कब और कहां देख पड़ते हैं और इनका शुभाशुभ फल क्या होता है।

ग्रहों का युद्ध, समागम और अस्त

ताराग्रहाणामन्योन्यं स्यातां युद्धसमागमौ।
समागमः शशाङ्केन सूर्येणास्तमयस्सह ॥१॥

अनुवाद (१)—भौम, बुध, गुरु, शुक्र और शनि पांच ताराग्रहों का आपस में युद्ध और समागम होता है। जब तारा ग्रह चन्द्रमा के साथ हो जाता है तब चन्द्रमा के साथ उसका समागम होता है और जब ग्रह सूर्य के साथ हो जाता है तब कहा जाता है कि वह ग्रह अस्त हो गया।

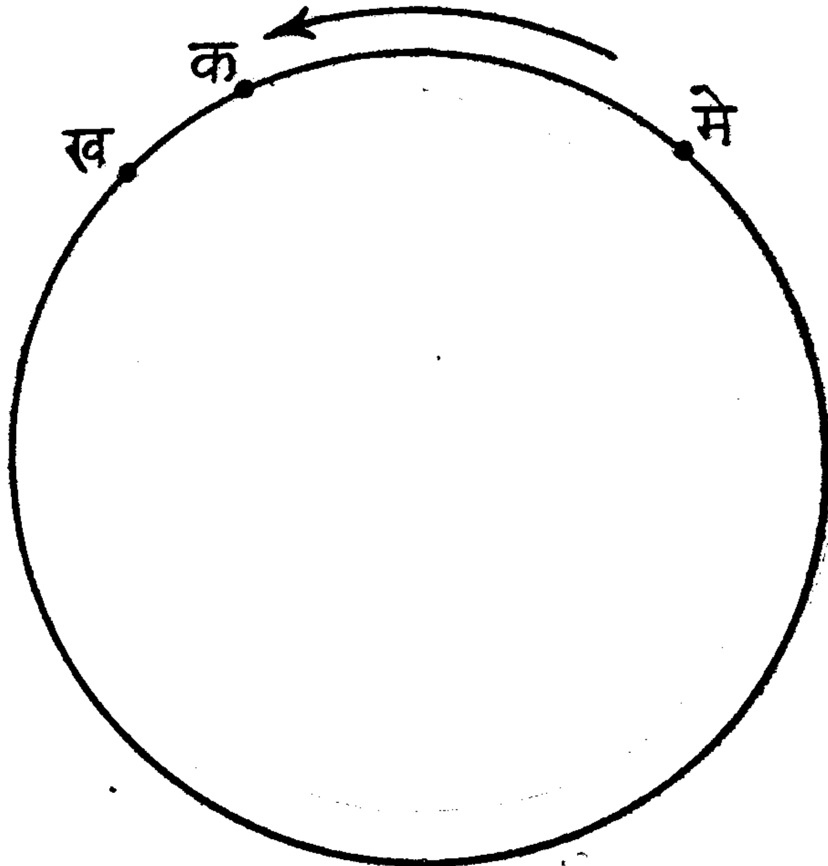
यह जानना कि समागम हो चुका है या होनेवाला है—

शीघ्रे मन्दाधिकेऽतीतः संयोगो भविताऽन्यथा।
तयोः प्राग्यायिनोरेवं वक्रिणोस्तु विपर्ययात् ॥२॥
प्राग्यायिन्यधिकेऽतीतः वक्रिण्येध्यस्समागमः।

अनुवाद (२)—इष्ट काल में जिस ग्रह की गति मन्द हो उस के भोगांश से यदि शीघ्र गति वाले ग्रह का भोगांश अधिक हो और दोनों ग्रह मार्गी हों अर्थात् पूर्व

की ओर जा रहे हों तो समझना चाहिए कि दोनों का समागम इष्टकाल के पहले ही हो चुका है। परन्तु यदि शीघ्र गति वाले ग्रह का भोगांश मन्दगति वाले ग्रह के भोगांश से कम हो तो समझना चाहिए कि समागम अभी होनेवाला है। परन्तु यदि दोनों ग्रह वक्री हों अर्थात् पच्छिम की ओर जा रहे हों तो ऊपर जो कुछ कहा गया है उसके विपरीत समझना चाहिए अर्थात् शीघ्रगति वाले ग्रह का भोगांश अधिक हो तो समझना चाहिए कि समागम होने वाला है और यदि कम हो तो समझना चाहिये कि समागम हो चुका है। (३) यदि एक ग्रह मार्गी और दूसरा वक्री हो तो और यदि मार्गी ग्रह का भोगांश वक्री ग्रह के भोगांश से अधिक हो तो इष्ट काल से पहले ही समागम हो चुका है परन्तु यदि वक्री ग्रह का भोगांश अधिक हो तो समझना चाहिए कि समागम होने वाला है।

विज्ञान भाष्य—मान लीजिए दिये हुए चित्र में मे मेष का आदि विन्दु है और क, ख दो ग्रह हैं। यह स्पष्ट है कि उस का भोगांश क के भोगांश से अधिक है। यदि ख कि गति क की गति से अधिक हो तो यह प्रकट है कि ख क से और दूर होता जायगा और इन दोनों का समागम अतीत हो गया है। परन्तु यदि ख की गति मन्द



चित्र १०५

हो तो स्पष्ट है कि क शीघ्र गति से चलता हुआ ख के पास पहुँच जायगा और दोनों का समागम होगा। यह दोनों घटनाएँ उस दशा में घटेंगी जब दोनों ग्रह मार्गी हों अर्थात् तीर की दिशा में जा रहे हों। यदि दोनों वक्री हों अर्थात् तीर के विरुद्ध दिशा में जा रहे हों तो यदि ख की वक्री गति अधिक हो तो समागम होगा और कम हो तो समागम हो चुका है। यदि ख मार्गी हो और क वक्री तो दोनों का समागम हो चुका है परन्तु यदि ख वक्री हो और क मार्गी तो दोनों का समागम होने वाला है।

यह जानना कि किस समय और किस स्थान पर ग्रहों का समागम होगा—

ग्रहान्तरकलास्स्वस्वभुक्तिलिप्तासमाहताः ॥३॥
भुक्त्यन्तरेण विभजेदनुलोमविलोमयोः।
द्वयोर्वक्रिण्यथैकस्मिन्भुक्तियोगेन भाजयेत् ॥४॥
लब्धं लिप्तादिकं शोध्यं गते देयं भविष्यति।
विपर्ययाद्वक्रगतावेकस्मिन् तद्धनक्षयौ ॥५॥
समलिप्तौ भवेतां तौ ग्रहौ भगणसंस्थितौ।
विवरं तद्वदुद्धृत्य दिनादिफलमिष्यते ॥६॥

अनुवाद—(३) इष्टकाल के दोनों ग्रहों के भोगांशों का अन्तर निकाल कर कला बनाओ और इसको प्रत्येक ग्रह की दैनिक गति की कलाओं से अलग-अलग गुणा करो। (४) प्रत्येक गुणनफल को दोनों ग्रहों की दैनिक गतियों की अन्तर-कलाओं से भाग दे दो यदि दोनों ग्रह मार्गी दा दोनों ग्रह वक्री हों। परन्तु यदि एक ग्रह वक्री हो और दूसरा मार्गी हो तो उपर्युक्त गुणनफल को दोनों ग्रहों की दैनिक गतियों की कलाओं को जोड़कर योगफल से भाग दे दो। (५) यदि दोनों ग्रहों का समागम हो चुका हो और दोनों ग्रह मार्गी हों तो प्रत्येक लब्धि को उस ग्रह के भोगांश में घटा दो जिसकी दैनिक गति से गुणा किया हो; परन्तु यदि समागम होने वाला हो तो लब्धि को ग्रह के भोगांश में जोड़ दो। यदि दोनों ग्रह वक्री हों तो इसकी उलटी क्रिया करनी चाहिये अर्थात् यदि समागम हो चुका हो तो लब्धि को ग्रह के भोगांश में जोड़ दो और होनेवाला हो तो घटा दो। यदि एक ग्रह वक्री हो और दूसरा मार्गी, तो इन्हीं नियमों के अनुसार जहाँ जैसी आवश्यकता हो जोड़ना घटाना चाहिए (६) ऐसा करने से राशिचक्र के उस स्थान के भोगांश का पता लग जाता है जहाँ दोनों ग्रहों का समागम हो चुका है अथवा होगा। दोनों ग्रहों के भोगांशों के अंतर को इनकी

दैनिक गतियों के अन्तर से भाग देने पर जो लब्धि आती है इष्टकाल से उतने ही दिन के पहिले या पीछे समागम हो चुका रहता है अथवा होता है।

विज्ञान भाष्य—३रे श्लोक के उत्तरार्ध से ६ठें श्लोक के अन्त तक जो दो नियम बतलाये गये हैं वे अङ्कगणित के "समय और दूरी" वाले नियमों से बिलकुल मिलते-जुलते हैं। इसका एक उदाहरण यह है—प्रयाग से पैंसेजर गाड़ी २५ मील प्रति घन्टे के हिसाब से ६ बजे प्रातःकाल पटने की ओर चली और डाक गाड़ी ४० मील प्रति घंटे के हिसाब से इसी ओर ८ बजे चली तो बतलाओ कि दोनों का मेल कहाँ होगा और कब होगा ?

जिस युक्ति से यह प्रश्न किया जाता है उसी युक्ति से ग्रहों के समागम की भी गणना की जाती है। ऐसे प्रश्नों में पहले यह जानना चाहिए कि जिस समय डाकगाड़ी चली उस समय पैसेंजर गाड़ी उससे कितने अंतर पर थी, फिर यह जानना पड़ता है कि डाकगाड़ी प्रति घंटे १५ मील अधिक चलकर इस अन्तर को कितनी देर में पूरा करेगी। यहाँ १५ मील दोनों गाड़ियों की प्रति घंटे की गतियों का अंतर है क्योंकि दोनों गाड़ियां एक ही दिशा में जा रही हैं।

यदि पैसेंजर गाड़ी प्रयाग से पटने की ओर और डाकगाड़ी पटने से प्रयाग की ओर ६ बजे चलें तो दोनों के समागम का स्थान और समय जानने के लिए दोनों की गतियों का योग करके इस योगफल से प्रयाग और पटने के बीच की दूरी को भाग दे देने से उस समय का ज्ञान होगा जितने समय में दोनों गाड़ियाँ एक दूसरे से मिलेंगी। यहाँ गतियों का योग किया जाता है क्योंकि दोनों गाड़ियां एक दूसरे की ओर मिलने के लिए चल रही हैं इसलिए इनके मिलने की चाल इन दोनों की गतियों के योग के समान होती है।

ठीक इसी प्रकार ग्रहों की युतिकाल और युतिस्थान की गणना की जाती है। मान लीजिए कि चित्र १०५ में किसी इष्टकाल में क ग्रह का भोगांश मेंक=भ और ख ग्रह का भोगांश मेख=भा। यह भी मान लीजिए कि उसी इष्टकाल में क और ख की दैनिक गतियां क्रमशः ग और गा हैं।

दोनों ग्रहों का अन्तर क ख = भा − भ

दोनों ग्रहों की दैनिक गतियों का अन्तर = ग − गा

इसलिए इष्टकाल से जितने समय पहले या पीछे समागम हो चुका या होगा उसको यदि स कहा जाय तो $स = \frac{भा - भ}{ग - गा}$

२२वें श्लोक की उपपत्ति—यदि गा से ग अधिक हो तो हर धनात्मक होगा जिससे स भी धनात्मक होगा, ऐसी दशा में दोनों का समागम इतने दिनों के बाद होगा। परन्तु यदि गा से ग कम हो तो हर ऋणात्मक होने के कारण स भी ऋणात्मक होगा जिसका अर्थ यह है कि इतने दिन पहले ही दोनों ग्रहों का समागम हो चुका है। इस जगह दोनों ग्रहों की गतियाँ स्वयम् धनात्मक मानी गयी हैं। यहां सरलता के लिए इसको स्मरण रखना चाहिए कि मार्गी गति धनात्मक और वक्री गति ऋणात्मक समझी गयी है।

यदि ग और गा दोनों ऋणात्मक हों अर्थात् यदि दोनों ग्रह वक्री हों तो उपर्युक्त दिनफल का हर (–ग)–(–गा)=गा—ग हो जायगा जो पहले का बिलकुल उलटा है अर्थात् यदि गा से ग कम हो तो दिनफल धनात्मक होगा और समागम होगा परन्तु यदि गा से ग अधिक हो तो दिनफल ऋणात्मक होगा और समागम पहले ही हो चुका है। इस प्रकार २२वें श्लोक की उपपत्ति सिद्ध हुई।

३२वें श्लोक के पूर्वार्ध की उपपत्ति—यदि क मार्गी और ख वक्री हो तो ग धनात्मक और गा ऋणात्मक होगा इसलिए समीकरण का हर ग—(–गा) के समान होगा जो वास्तव में ग+गा अर्थात धनात्मक हो जायगा इसलिए स धनात्मक होने से समागम उतने ही समय पश्चात् होगा।

परन्तु यदि ख मार्गी और क वक्री हो तो ग ऋणात्मक और गा, धनात्मक होगा ऐसी दशा में समीकरण का हर ग—गा=—ग—(+गा)=—ग—गा=—(ग+गा) जो ऋणात्मक है इसलिए समागम उतने समय पहले ही हो चुका है।

यहाँ यह भी सिद्ध हो जाता है कि युतिकाल का समय जानने के लिए दोनों ग्रहों के भोगांशों के अंतर को दोनों ग्रह की गतियों के अन्तर से भाग देना चहिये यदि दोनों ग्रहों मार्गी या दोनों ग्रह वक्री हों; परन्तु यदि उनमें से एक मार्गी हो और दूसरा वक्री हो तो दोनों की गतियों के योग से भाग देना पड़ता है।

३२वें श्लोक के उत्तरार्ध से ६८वें श्लोक तक की उपपत्ति—इन श्लोकों का सार यह है :—

$$\text{इष्टकाल से युतिकाल तक का समय} = \frac{\text{भा—भ}}{\text{ग—गा}}$$

$$\text{इष्टकाल से युतिकाल तक क ग्रह की चाल} = \text{ग} \times \frac{\text{भा—भ}}{\text{ग—गा}}$$

$$\text{,,} \quad \text{,,} \quad \text{ख} \quad \text{,,} = \text{गा} \times \frac{\text{भा—भ}}{\text{ग—गा}}$$

इसलिये यदि क के इष्टकाल के भोगांश में $ग \times \frac{भा—भ}{ग—गा}$ जोड़ दिया जाय तो इसका युतिकाल का भोगांश और ख के इष्टकाल के भोगांश में $गा \times \frac{भा—भ}{ग—गा}$ जोड़ा जाय तो ख का युतिकाल का भोगांश ज्ञात होगा जो दोनों एक ही होंगे क्योंकि युतिकाल में दोनों ग्रहों के भोगांश एक होते हैं। यहाँ ग—गा का मान ग्रहों की मार्गी और वक्री गतियों के अनुसार बदलेगा जैसा कि पहले कहा गया है क्योंकि जब दोनों ग्रह मार्गी होंगे तो ग और गा दोनों धनात्मक होंगे और जब दोनों ग्रह वक्री होंगे तब ग और गा दोनों ऋणात्मक होंगे। इन दोनों दशाओं में ग—गा का मान वही होगा जो दोनों का अन्तर है। परन्तु यदि एक वक्री हुआ और दूसरा मार्गी तो ग—गा का मान वह होगा जो दोनों का योगफल है परन्तु यह योगफल ऋणात्मक होगा यदि ग ऋणात्मक है और धनात्मक होगा यदि गा ऋणात्मक हो। इस प्रकार चौथे श्लोक की उपपत्ति सिद्ध हुई।

यह पहले ही मान लिया गया है कि इष्ट काल में क, ख ग्रहों के भोगांश क्रमशः भ और भा हैं और इष्टकाल से युतिकाल तक इनकी चालें क्रमशः $ग \times \frac{भा—भ}{ग—गा}$ और $गा \times \frac{भा-भ}{ग—गा}$ हैं, इसलिए युतिकाल में इनके भोगांश क्रमशः $भ + ग \times \frac{भा—भ}{ग—गा}$ और $भ + गा \times \frac{भा—भ}{ग—गा}$ हैं। इन दोनों मानों का धन चिह्न प्रत्येक मान के दूसरे पद के चिह्न के अनुसार धन या ऋण होगा जैसा कि पहले कहा गया है। इस प्रकार ५वें और छठें श्लोक के पूर्वार्ध की उपपत्ति सिद्ध होती है। छठें श्लोक के उत्तरार्ध की उपपत्ति पहले ही सिद्ध की गयी है।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि इस रीति से युक्तिस्थान का जो भोगांश ज्ञात होगा वह स्थूल होगा क्योंकि किसी इष्टकाल में किसी ग्रह की जो दैनिक गति होती है वह प्रत्येक दिन एकसी नहीं रहती, कुछ घटती-बढ़ती रहती है। इसलिए इष्टकाल की दैनिक गतियों के अनुसार गणना करने से कुछ स्थूलता रह जाती है। इस कारण यह आवश्यक है कि उपर्युक्त गणना से जो समय आवे उस समय के ग्रह के भोगांश और दैनिक गतियाँ स्वतन्त्र गणना से फिर निकाले और इनके ही आधार पर ऊपर के चार श्लोकों में दिये हुये नियमों से फिर युतिस्थान जाने।

दृक्कर्म की रीति—

कृत्वा दिनक्षपामानं ततो विक्षेपलिप्तिकाः।
नतोन्नतं साधयित्वा स्वकाल्लग्नवशात्तयोः ॥७॥

विषुवच्छायायाऽभ्यस्ताद्विक्षेपाद्द्वादशोद्धृतात् ।
फलं स्वनतनाडीघ्नं स्वदिनार्धविभाजितम् ।।८।।

लब्धं प्राच्यामृणं सौम्याद्विक्षेपात्पश्चिमे धनम् ।
दक्षिणे प्राक्कपाले स्वं पश्चिमे तु तथा क्षयः ।।९।।

सत्रिभग्रहजक्रान्तिभागघ्नाः क्षेपलिप्तिकाः ।
विकलास्स्वमृणंक्रान्तिक्षेपयोर्भिन्नतुल्ययोः ।।१०।।

नक्षत्र ग्रहयोगेषु ग्रहास्तोदय साधने ।
शृङ्गोन्नतौ तु चन्द्रस्य दृक्कर्मादाविदं स्मृतम् ।।११।।

तात्कालिकौ पुनः कार्यौ विक्षेपौ तु तयोरथ ।
दिक्तुल्यत्वेऽन्तरं भेदे योगश्शेषं ग्रहान्तरम् ।।१२।।

अनुवाद—(७) युक्तिकाल के ग्रहों के दिनमान और रात्रिमान तथा उनके विक्षेपों का मान जानना चाहिए फिर उस काल में जो राशि पूर्व में लग्न हो उससे प्रत्येक ग्रह का नतकाल और उन्नतकाल जानना चाहिये। (८) विक्षेप को उस स्थान की पलभा से गुणा करके १२ से भाग देना चाहिये। जो लब्धि आवे उसको प्रत्येक ग्रह की नत घड़ी से गुणा करके उसके दिनमान के आधे से और यदि रात्रि हो तो रात्रिमान के आधे से भाग दे देना चाहिये। (९) अब जो लब्धि आवे उसको यदि विक्षेप उत्तर हो तो पूर्व कपाल में ग्रह के भोगांश में घटा दो और पच्छिम कपाल में जोड़ दो। परन्तु यदि विक्षेप दक्षिण हो तो पूर्व कपाल में उस लब्धि को ग्रह के भोगांश में जोड़ दो और पच्छिम कपाल में घटा दो। (१०) ग्रह के भोगांश में तीन राशि जोड़कर उसकी क्रान्ति निकालो और इस क्रान्ति के अंश को विक्षेप की कला से गुणा कर दो, गुणनफल को विकला समझकर ग्रह के भोगांश में जोड़ दो। यदि क्रान्ति और विक्षेप की दिशाएँ भिन्न हों और यदि इनकी दिशाएँ एक ही हों तो घटा दो। (११) नक्षत्र और ग्रह के योग में ग्रह का उदय और अस्त साधन करने में, चन्द्रमा का शृंङ्गोन्नत जानने के पहले इस दृक्कर्म का संस्कार करना चाहिये। (१२) दृक्कर्म संस्कृत ग्रहों का युतिकाल और इस समय के इनके विक्षेप फिर निकालकर यदि विक्षेपों की दिशा एक ही हो तो अन्तर करे और भिन्न हो तो योग करे। ऐसा करने से जो आवे वही युतिकाल में दोनों ग्रहों का परस्पर अंतर होगा।

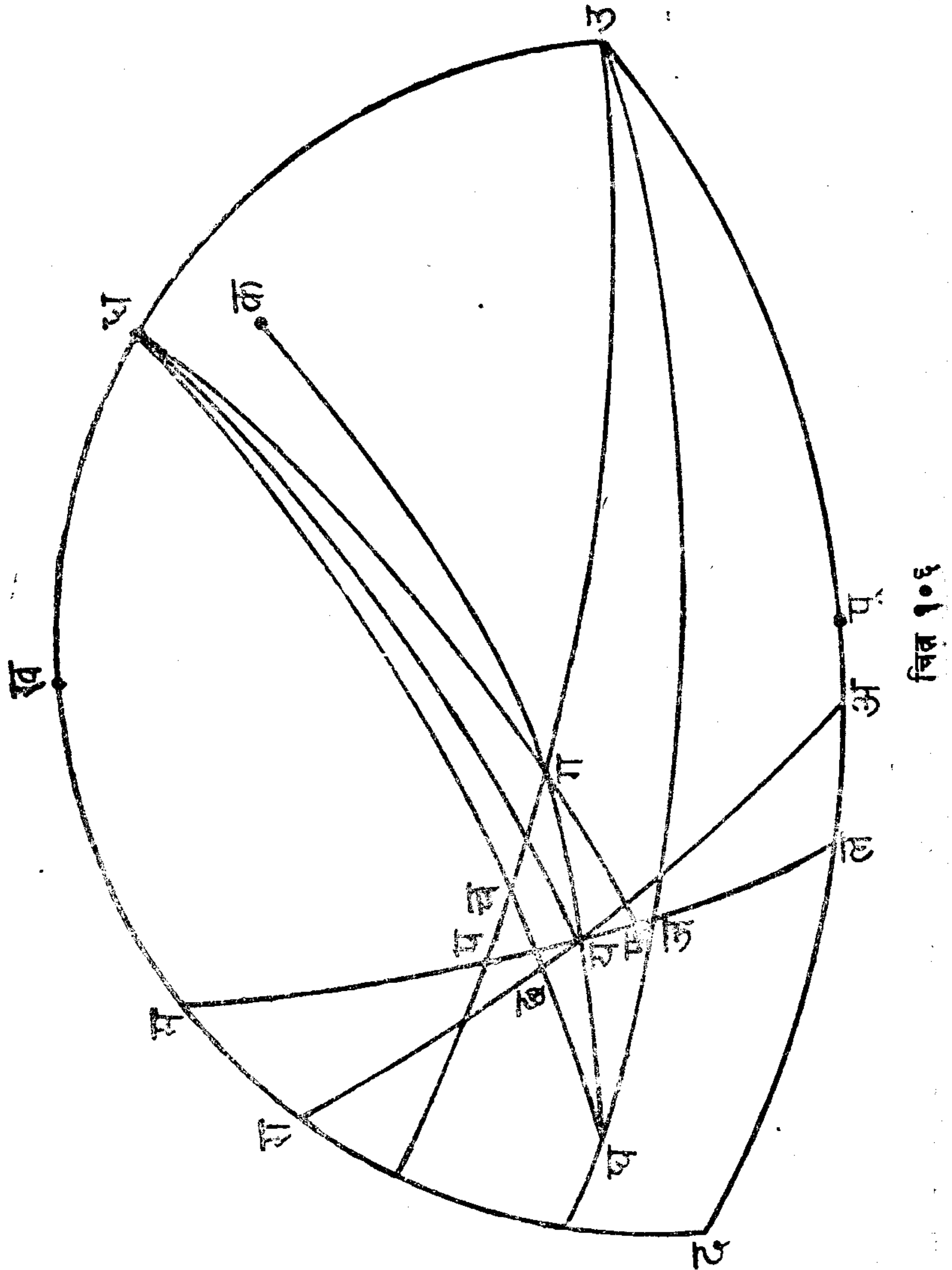
विज्ञान भाष्य—युतिकाल में ग्रहों के स्थान जानने की जो रीति ३—६ श्लोकों में बतलायी गयी है। उससे यह ज्ञात होता है कि उस समय ग्रह कदम्बप्रोतवृत्त पर कहां है परन्तु स्पष्ट युतिकाल उस समय को कहते हैं जिस समय दोनों ग्रह

समप्रोतवृत्त पर होते हैं अर्थात् उस वृत्त पर होते हैं जो दोनों ग्रहों से होता हुआ क्षितिज के उत्तर बिन्दु पर जाता है। इसलिए स्पष्ट युक्तिकाल जानने के लिए पहले दी हुई रीति से ग्रहों के जो भोगांश आते हैं उसमें दो संस्कार किये जाते हैं जिनके नाम आक्षदृक्कर्म और आयनदृक्कर्म हैं। यह संस्कार आक्षवलन और आयनवलन के सदृश हैं। भास्कराचार्यजी ने तो ब्रह्मगुप्तजी के अनुसार आक्षवलन और आयनवलन से ही आक्षदृक्कर्म और आयनदृक्कर्म निकालने की रीति बतलायी है जो आजकल अधिकतर प्रचलित है परन्तु सूर्यसिद्धान्त में इस कार्य के लिए दूसरी ही रीति दी है। यहाँ पहले सूर्यसिद्धान्त की रीति समझाकर संक्षेप में यह भी बतलाया जायगा कि भास्कराचार्य्य की रीति कैसी है।

चित्र १०६ से प्रकट होता है कि इस अध्याय के छठें श्लोक तक युक्तिकाल के ग्रहों के भोगांश जानने की जो रीति दी हुई है उसके अनुसार ग और घ ग्रहों का जो भोगांश होगा वह क्रान्तिवृत्त के य विन्दु के भोगांश के समान होगा। परन्तु इस समय इन ग्रहों के समप्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त को ज और प विन्दुओं पर काटते हैं इसलिए उपर्यूक्त युक्तिकाल में इन ग्रहों के समप्रोत वृत्तों का अंतर क्रान्तिवृत्त पर प ज के समान होगा। सिद्धान्तानुसार जिस समय यह अन्तर शून्य के समान हो उस समय को युतिकाल कहते हैं अर्थात् दो ग्रहों की युति उस समय होती है जिस समय दोनों ग्रह एक ही समप्रोतवृत्त पर हों। यह जानने के लिए पहले यह क्रिया करनी पड़ती है कि दोनों ग्रहों के भोगांश एक कब होंगे जो ४-६ श्लोकों के अनुसार जाना जाता है। इसके बाद यह जानना पड़ता है कि उस समय य प और य ज क्या हैं। इनको मैं सुविधा के लिए क्रमशः ग और घ के आक्ष-आयन-दृक्कर्म-संस्कृत-फल कहूँगा। यह प्रकट है कि—

प्रत्येक समीकरण के दाहिने पक्ष में जो दो पद हैं उनका मान सहज ही जाना जा सकता है और इस प्रकार य प और य ज के मान भी जाने जा सकते हैं। पहले पद के जानने की रीति ७-९ श्लोकों में बतलायी गयी है और इसका नाम आचार्यों ने आक्षदृक्कर्म रखा है। दूसरे पद के जानने की रीति १०वें श्लोक में बतलायी गयी है और इसका नाम आचार्यों ने आयनदृक्कर्म रखा है। पहले को आक्षदृक्कर्म कहा गया है क्योंकि इसका परिमाण द्रष्टा के अक्षांश के अनुसार बदलता है और दूसरे को आयनदृक्कर्म कहा गया है क्योंकि इसका परिमाण अयनान्तवृत्तों (देखो पृष्ठ २३०) के अनुसार बदलता है जैसा कि आगे सिद्ध किया जायगा।

आक्षदृक्कर्म—यह प्रकट है कि निरक्ष देश पर क्षितिज का उत्तर बिन्दु उ और ध्रुव घ एक हो जाते हैं इसलिये यहां किसी ग्रह के समप्रोतवृत्त और ध्रुवप्रोत-



चित्र १०६ का वर्णन

उ पू द=क्षितिज वृत्त का पूर्वार्ध

उ, पू, द=क्रमशः उत्तर, पूर्व और दक्षिण बिन्दु

उ ध ख म रा द=यामोत्तरवृत्त

क=कदम्ब

ध=ध्रुव

ख=खस्वस्तिक

म=मध्यलग्न

ग, घ=दो ग्रहों के स्थान (चित्र में घ की जगह ध बन गया है)

क ग य घ=कदम्बवृत्त

ल ज फ य च प म=क्रान्तिवृत्त

ख=क्रान्तिवृत्त का वह बिन्दु जो पूर्व क्षितिज में लग्न हैं।

अ य छ रा=य बिन्दु का अहोरात्रवृत्त

ध च छ घ=घ ग्रह पर जाता हुआ ध्रुवप्रोतवृत्त

ध ग फ=ग ग्रह पर जाता हुआ ध्रुवप्रोतवृत्त

उ ज घ=घ ग्रह पर जाता हुआ समप्रोतवृत्त

उ ग प=ग ग्रह पर जाता हुआ समप्रोतवृत्त

ज=घ ग्रह के समप्रोत वृत्त और क्रान्तिवृत्त का सम्पात बिन्दु

प=ग ग्रह के समप्रोतवृत्त और क्रान्तिवृत्त का सम्पात बिन्दु

प ज=दोनों ग्रह के समप्रोत वृत्तों का अन्तर (क्रान्ति वृत्त पर)

च ज=घ ग्रह का आक्षदृक्कर्म (घ ग्रह के समप्रोत और ध्रुवप्रोत वृत्तों का क्रान्तिवृत्त पर अंतर)

च य=घ ग्रह का आयन दृक्कर्म (घ ग्रह के कदम्बप्रोत और ध्रुवप्रोत वृत्तों का क्रान्तिवृत्त पर अंतर)

य ज=घ ग्रह का आक्ष-आयन-दृक्कर्म-संस्कृत फल, अर्थात् घ ग्रह के समप्रोत और कदम्बप्रोत वृत्तों का क्रान्ति वृत्त पर अंतर

प फ=ग ग्रह का आक्षदृक्कर्म (ग ग्रह के समप्रोत और ध्रुवप्रोत वृत्तों का क्रान्तिवृत्त पर अंतर)

प फ=ग ग्रह का आयनदृक्कर्म (ग ग्रह के कदम्बप्रोत और ध्रुवप्रोत वृत्तों का क्रान्तिवृत्त पर अंतर)

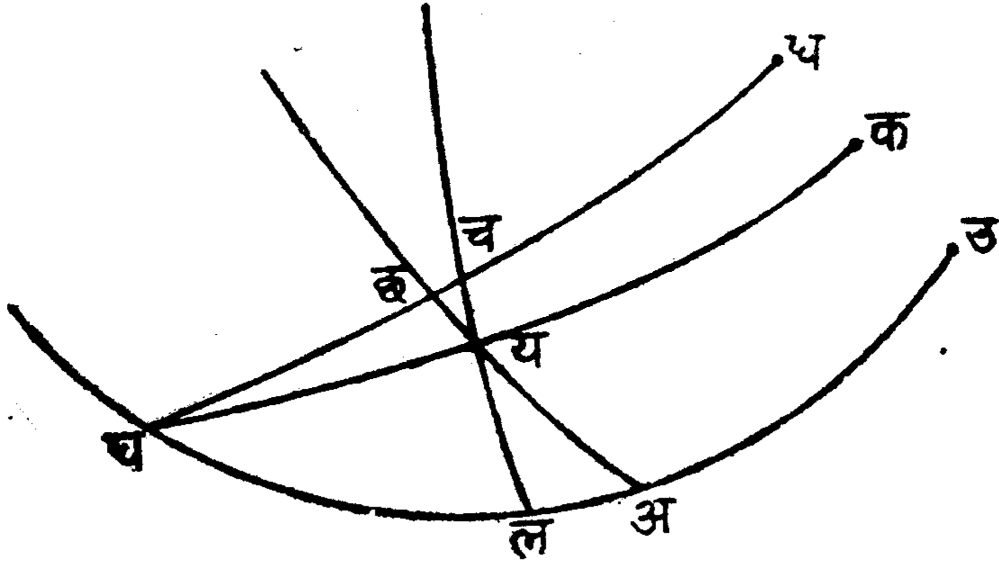
प य=ग ग्रह का आक्ष-आयन-दृक्कर्म-संस्कृत फल अर्थात् ग ग्रह के समप्रोत और कदम्बप्रोत वृत्तों का क्रान्तिवृत्त पर अन्तर

य प=प फ−य फ

और य ज=च ज−च य

वृत्त एक में मिले रहते हैं। इस कारण वहां प फ या च ज का मान शून्य होता है अर्थात् वहां आक्षदृक्कर्म शून्य होता है। जैसे-जैसे अक्षांश बढ़ता है अर्थात् जैसे-जैसे

क्षितिजवृत्त के उत्तर विन्दु उ से ध्रुव ध ऊपर होता जाता है तैसे प फ या च अ अर्थात् आक्षदृक्कर्म बढ़ता है। जिस समय ग्रह यामोत्तर वृत्त पर होता है उस समय भी उसके समप्रोतवृत्त और ध्रुवप्रोतवृत्त एक में मिले रहते हैं क्योंकि यामोत्तरवृत्त उ और ध दोनों विन्दुओं पर होता है। इसलिए यह सिद्ध है कि किसी स्थान के यामोत्तर वृत्त पर भी ग्रह का आक्षदृक्कर्म शून्य रहता है। अब केवल यह जानना रह गया है कि आकाश के अन्य विन्दुओं पर ग्रह का आक्षदृक्कर्म क्या होता है। पहले यह देखना चाहिये कि यदि ग्रह क्षितिजवृत्त पर हो तो आक्षदृक्कर्म का परिमाण क्या होता है। यह तो स्पष्ट ही है कि यदि ग्रह क्षितिजवृत्त पर हो तो क्षितिजवृत्त ही इसका समप्रोतवृत्त भी होता है। चित्र १०७ से प्रकट है कि जब घ ग्रह पूर्व क्षितिज में लग्न होता है तब क्रान्तिवृत्त पर इसका स्थान य होता है।



चित्र १०७

उ अ ल ध=पूर्व क्षितिज वृत्त

उ =उत्तर विन्दु

ध=उदय होते हुए ग्रह का स्थान

ल=उदय लग्न

क=कदम्ब

य=क्रान्तिवृत्त पर ध ग्रह का स्थान

च=घ के ध्रुवप्रोतवृत्त और क्रान्तिवृत्त का सम्पात विन्दु

अ य छ=य का अहोरात्र वृत्त

च ल=घ का आक्षदृक्कर्म

य का अहोरात्रवृत्त अयछ घ के ध्रुवप्रोतवृत्त को छ विन्दु पर काटता है। अ छ घ गोलीय समकोण त्रिभुज है क्योंकि अहोरात्र वृत्त अ य छ ध्रुवप्रोतवृत्त से ९० अंश का कोण बनाता है। अहोरात्रवृत्त विषुवद्वृत्त के समानान्तर होता है कथा विषुवद् वृत्त और पूर्वक्षितिज वृत्त के बीच का कोण लम्बांश के समान होता है इसलिए कोण छ अ घ लम्बांश के समान है। यदि अ छ घ को सरल समकोण त्रिभुज मान लिया जाय तो कोण अ छ घ = ९० अंश और कोण छ अ घ = लम्बांश। इसलिए कोण छ घ अ = अक्षांश क्योंकि अक्षांश + लम्बांश = ९० अंश। इस-लिए सरल त्रिभुज अ छ घ में

$$\frac{\text{छ अ}}{\text{छ घ}} \frac{\text{ज्या}\angle\ \text{छ घ अ}}{\text{ज्या}\angle\ \text{छ अ घ}} = \frac{\text{ज्या अक्षांश}}{\text{ज्या लम्बांश}} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$$ (देखो पृष्ठ ५६ और २६३)

यदि छ घ को घ य के समान और छ अ को च ल के समान मान लिया जाय तो

$$\frac{\text{च ल}}{\text{घ य}} = \frac{\text{छ अ}}{\text{छ घ}} = \frac{\text{प ल भा}}{१२}$$

$$\therefore \text{च ल} = \frac{\text{घ य} \times \text{प ल भा}}{१२}$$

$$= \frac{\text{ग्रह का शर} \times \text{प ल भा}}{१२}$$

परन्तु च ल घ = ग्रह का आक्षदृक्कर्म। इसलिये सिद्ध होता है कि जिस समय ग्रह क्षितिज पर होता है उस समय उसका आक्षदृक्कर्म उसके शर को प ल भा से गुणा करके १२ से भाग देने पर आता है। यही ८वें श्लोक के पूर्वार्ध का तात्पर्य है। इस प्रकार जब यह सिद्ध हो गया कि क्षितिजस्थ ग्रह का आक्षदृक्कर्म क्या होता है और यामोत्तरवृत्त पर उसका मान शून्य होता ही है तब अन्य समय के लिये उसकी गणना त्रैराशिक से इस प्रकार की जाती है कि जब ग्रह के आधे दिन में आक्षदृक्कर्म का मान कम से कम शून्य और अधिक से अधिक क्षितिजस्थ आक्षदृक्कर्म के समान होता है तब इष्ट नतकाल में इसका मान क्या होता है। अर्थात् दिनार्द्ध : इष्टनत काल :: क्षितिजस्थ आक्षदृक्कर्म : इष्ट आक्षदृक्कर्म। यही ८वें श्लोक का अर्थ है।

चित्र १०६ और १०७ में ग्रह पूर्वकपाल में दिखलाये गये हैं। यहाँ घ का शर दक्षिण है तो घ का समप्रोतवृत्त कान्तिवृत्त को ज विन्दु पर काटता है जो य से पूर्व है। इसलिये दक्षिण शर में य के भोगांश में घ का आक्षदृक्कर्म जोड़ने से ज का भोगांश आवेगा। परन्तु जब ग का शर उत्तर है तो ग का समप्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त

को प स्थान पर काटता है जो य से पच्छिम है इसलिये उत्तर शर में य के भोगांश में ग का आक्षदृक्कर्म घटाने से प का भोगांश आवेगा। पच्छिम कपाल में इसके विपरीत होता है अर्थात् दक्षिण शरवाले ग्रह का आक्षदृक्कर्म ग्रह के भोगांश में घटाना पड़ता है और उत्तर शर वाले ग्रह का आक्षदृक्कर्म ग्रह के भोगांश में जोड़ना पड़ता है। यह बात चित्र १०६ से ही स्पष्ट हो जाती है क्योंकि यदि वह चित्र पच्छिम कपाल का समझ लिया जाय तो ज विन्दु य से पच्छिम समझा जायगा और प विन्दु य से पूरब समझा जायगा क्योंकि पच्छिम कपाल में किसी विन्दु से उसके नीचे का विन्दु पच्छिम होता है और ऊपर का विन्दु पूर्व होता है परन्तु पूर्व कपाल में किसी विन्दु से उसके नीचे का विन्दु पूर्व होता है और ऊपर का विन्दु पच्छिम होता है। इस प्रकार ९वें श्लोक में बतलायी गयी जोड़ने घटाने की क्रिया की उपपत्ति भी सिद्ध हो गयी।

यह स्मरण रखना चाहिए कि ८वें श्लोक में बतलायी गयी रीति स्थूल है क्योंकि जिन कल्पनाओं से यह सिद्ध हुई है वह स्वयम् स्थूल है।

आयन दृक्कर्म—

चित्र १०६ से प्रकट है कि घ ग्रह का आयन दृक्कर्म च य है। अब देखना है कि सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार च य का मान जानने की क्या रीति है।

त्रिभुज च य छ इतना छोटा है कि च य को छ य के समान समझ लेने से कोई हानि नहीं हो सकती। त्रिभुज छ य घ को सरल समकोण त्रिभुज समझ लेने से भी विशेष हानि नहीं है क्योंकि घ ग्रह का शर घ य बहुत छोटा होता है और कोण घ छ य समकोण है क्योंकि अ छ रा य विन्दु का अहोरात्रवृत्त है और ध्र छ घ घ का ध्रुवप्रोतवृत्त है। इसलिए समकोण त्रिभुज छ य घ में

$$\frac{\text{छ य}}{\text{घ य}} = \frac{\text{ज्या}\angle\text{छ घ य}}{\text{ज्या}\angle\text{घ छ य}} = \frac{\text{ज्या}\angle\text{छ घ य}}{\text{ज्या }९०^\circ} = \frac{\text{ज्या}\angle\text{छ ध्र य}}{\text{त्रिज्या}}$$

चूंकि ग्रह का शर बहुत छोटा होता है इसलिए कोण छ ध्र य या कोण ध्र घ क को कोण ध्र य क के समान समझ लेने में कोई हानि नहीं है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि

$$\frac{\text{छ य}}{\text{घ य}} = \frac{\text{ज्या}\angle\text{ध्र य क}}{\text{त्रिज्या}} \quad \therefore \text{छ य} = \frac{\text{घ य}\times\text{ज्या}\angle\text{ध्र य क}}{\text{त्रिज्या}}$$

परन्तु कोण ध्र य क य विन्दु का अयन वलन है क्योंकि यह य के ध्रुवप्रोत-वृत्त और कदम्बप्रोतवृत्त के बीच में है (देखो चित्र १०१) और य के ९० अंश के आगे के भोगांश की क्रान्ति के समान होता है (देखो पृष्ठ ४८०) इसलिए ज्या

∠ध य क की जगह पर य+९०° की क्रान्तिज्या जो पृष्ठ ४८० के समीकरण (२) के अनुसार ज्ञात होती है रखना चाहिए। यदि यह क्रान्ति ज्या क्रा के समान मान ली जाय तो $छ\,य = \frac{घ\,य \times क्रा}{त्रिज्या}$ । इस समीकरण में सब परिमाणों को कलाओं में समझना चाहिए।

यह बतलाया गया है (देखो स्पष्टाधिकार पृष्ठ १२२) कि परमक्रान्तिज्या का मान १३९७ कला है और परमक्रान्ति २४° के समान मानी गयी है। २४ का ५८ गुना १३९२ होता है जो १३९७ के बहुत निकट है इसलिए यदि यह मान लिया जाय कि २४ का ५८ गुना १३९७ के प्रायः समान है तो कोई हर्ज नहीं। इसलिए जब २४ अंश की ज्या २४×५८ कला के समान होती है तब यह समझने में बहुत हानि नहीं है कि किसी अंश की ज्या उसकी ५८ गुनी कला के समान होती है।

इसलिए का=क्रान्त्यंश×५८ त्रिज्या=६०×५८। इस प्रकार उपर्युक्त समीकरण का रूप यह होगा :—

$$छय = \frac{ध\,य \times क्रान्त्यंश \times ५८}{५८ \times ६०} = \frac{घ\,य \times क्रान्त्यंश}{६०}\ कला$$

कला की ६० गुनी विकला होती है इसलिए यदि ऊपर के समीकरण के दाहने पक्ष को ६० से गुणा किया जाय तो उसका मान विकलाओं में बदल जायगा। परन्तु ६० से गुणा करने पर नीचे वाला ६० कट जायगा और समीकरण का रूप यह होगा :—

छ य=घ य×क्रान्त्यंश विकला

यहां छ य=च य=आयन दृक्कर्म, घ य ग्रह ध का शर या विक्षेप कलाओं में है और क्रान्ति अंशों में है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि य के आगे के ९० अंश की क्रान्ति को अंशों में लिख कर इसको विक्षेप की कलाओं से गुणा कर देने पर जो आता है वह विकलाओं में घ ग्रह का आयन दृक्कर्म है जैसा कि श्लोक १० में बतलाया गया है। इस नियम का दूसरा सरल रूप यह भी हो सकता है कि ग्रह के आयन वलन को अंशों में लिखकर इसको ग्रह की विक्षेप कला से गुणा कर देने से जो आता है वह विकलाओं में ग्रह का आयनदृक्कर्म है।

अब यह देखना है कि यह आयनदृक्कर्म किस समय धनात्मक और किस समय ऋणात्मक होता है अर्थात् इस आयनदृक्कर्म को ग्रह के भोगांश में किस समय जोड़ना चाहिये और किस समय घटाना चाहिये। स्पष्टाधिकार के पृष्ठ २०० के चित्र ३९ को ध्यानपूर्वक देखने से पता चल सकता है कि जब तक ग्रह उत्तरायण रहता है

अर्थात् सायन मकर राशि के आदि विन्दु उ से सायन कर्कराशि के आदि विन्दु द तक कहीं रहता है तब तक उसका कदम्बप्रोतवृत्त ध्रुवप्रोतवृत्त से बायें रहता है अर्थात् कदम्ब प्रोतवृत्त का तल ध्रुवप्रोतवृत्त के तल से ऊपर रहता है जैसा कि चित्र ३९ में दिखलाया गया है। परन्तु जब तक ग्रह दक्षिणायन रहता है अर्थात् सायन कर्क राशि के आदि विन्दु द से सायन मकर राशि के आदि विन्दु उ तक कहीं रहता है तब तक उसका कदम्ब प्रोतवृत्त ध्रुवप्रोतवृत्त से दाहने रहता है अर्थात् उसका कदम्बप्रोतवृत्त का तल ध्रुवप्रोतवृत्त के तल से नीचे रहता है जैसा कि चित्र १०६ में दिखलाया गया है।

चित्र ३९ से प्रकट है कि जब ग ग्रह उत्तरायण और इसका शर उत्तर है तब इसका ध्रुवप्रोतवृत्त प विन्दु से पच्छिम हैं जहाँ इसका कदम्बप्रोतवृत्त, क्रान्तिवृत्त को काटता है। परन्तु यदि उत्तरायण ग्रह का शर दक्षिण, मानलो च पर हो तो स्पष्ट है कि इसका ध्रुवप्रोतवृत्त वही रहेगा जो ग का है परन्तु कदम्बप्रोत वृत्त च क (जो चित्र में नहीं दिखलाया गया) क्रान्तिवृत्त को उससे पच्छिम काटेगा अर्थात् च ग्रह का क्रान्तिवृत्त पर जो स्थान होगा उससे आगे पूर्व में ध्रुवप्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त को काटेगा। अर्थात् पहली दशा में ग्रह के भोगांश से घटाने पर और दूसरी दशा में जोड़ने पर ध्रुवप्रोतवृत्त और क्रान्तिवृत्त के सम्पात का स्थान ज्ञात होगा।

इसी प्रकार चित्र १०६ से प्रकट है कि जब ग और घ ग्रह दक्षिणायन हैं इनके कदम्बप्रोतवृत्त से दाहिने हैं। ऐसी दशा में उत्तर शर वाले ग ग्रह का ध्रुवप्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त को फ स्थान पर काटता है जो य से आगे पूर्व में है इसलिए ब के भोगांश में य फ जोड़ने से फ का स्थान ज्ञात होगा। परन्तु दक्षिण शर वाले घ का ध्रुवप्रोत-वृत्त क्रान्तिवृत्त के च स्थान पर काटता है जो य से पीछे पच्छिम में है इसलिए ब के भोगांश में च य ग घटाने पर च का स्थान ज्ञात होगा।

यह प्रकट ही है कि जब ग्रह उत्तरायण रहता है तब इसके भोगांश में ९० अंश जोड़ने से जो भोगांश आता है उसकी क्रान्ति सदैव उत्तर रहती है क्योंकि जब ग्रह सायन मकर से आगे सायन कर्क तक कहीं रहता है तब इससे ९० अंश आगे का भोगांश सायन मेष से आगे और सायन तुला के पहले रहता है जिसकी क्रान्ति उत्तर होती है। इसी प्रकार जब ग्रह दणिणायन रहता है तब इसके भोगांश में ९० अंश जोड़ने से जो भोगांश आता है उसकी क्रान्ति सदैव दक्षिण होती है। इसलिए जो बात ऊपर उत्तरायण और दक्षिणायन के सम्बन्ध में कही गयी है वही उत्तर क्रान्ति और दक्षिण क्रान्ति के सम्बन्ध में भी लागू होती है जैसा कि १० वें श्लोक के उत्तरार्ध में बतलाया गया है।

१२ वें श्लोक की उपपत्ति—आक्ष और आयन दृक्कर्म संस्कार करने पर ग्रहों के जो भोगांश आते हैं इनका अंतर जानकर यह देखना चाहिए कि दोनों ग्रहों का यह अंतर कब शून्य होता है। जिस समय यह अंतर शून्य होता है उसी समय दोनों ग्रहों की युति समप्रोतवृत्त पर होती है। इस समय यदि दोनों ग्रहों के शर एक ही दिशा में हों अर्थात् दोनों उत्तर या दोनों दक्षिण हो तो दोनों का अन्तर निकालने पर और यदि दोनों ग्रहों के शरों की दिशाएँ भिन्न हों अर्थात् एक का उत्तर और दूसरे का दक्षिण हो तो दोनों शरों का योग करने पर जो आता है उतने ही अन्दर पर दोनों ग्रह समप्रोतवृत्त पर देख पड़ते हैं।

इस प्रकार सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार आक्ष और आयन दृक्कर्म का संस्कार करने की रीति की उपपत्ति सिद्ध होती है जिससे यह पता तो चलता ही है कि यह रीति स्थूल है क्योंकि कई कल्पनाओं से यह सिद्ध की गयी है।

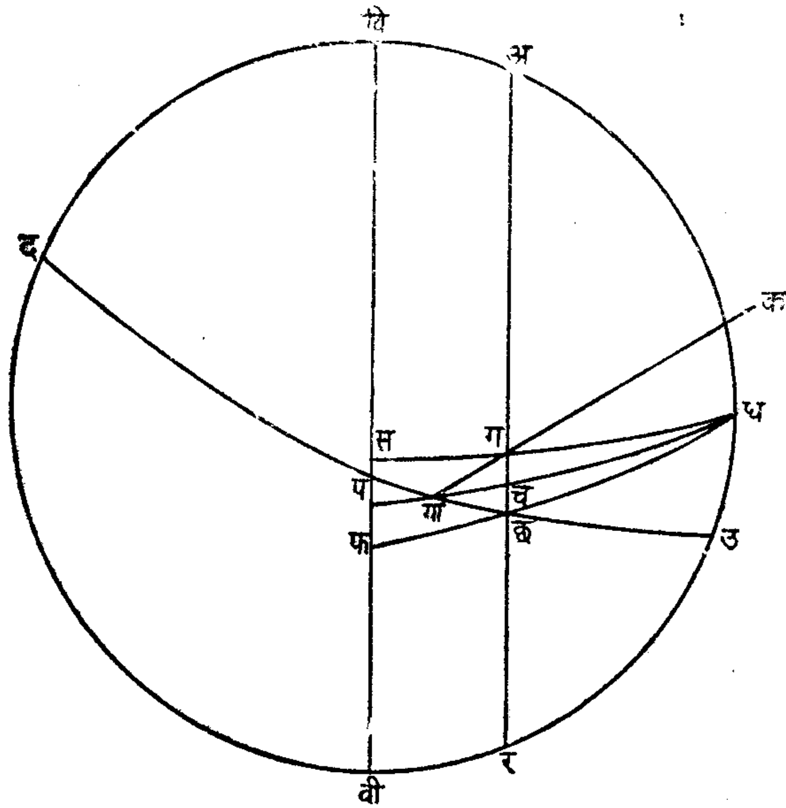
भास्कराचार्य जी के अनुसार दृक्कर्म—

भास्कराचार्यजी कहते हैं कि जिस समय ग्रह के क्रान्तिवृत्त का स्थान क्षितिज में लग्न होता है उस समय ग्रह अपने शर के कारण क्षितिज के ऊपर रहता है या नीचे रहता है। जिस समय ग्रह क्षितिज के ऊपर रहता है उस समय वह अपने क्रान्तिवृत्त के स्थान से पहले ही उदय हो जाता है और जिस समय नीचे रहता है उस समय वह पीछे उदय होता है। कितना पहले या पीछे उदय होता है यह दृक्कर्म से जाना जाता है। इस दृक्कर्म के २ खंड होते हैं। एक खंड ग्रह के आयन-वलन पर आश्रित और दूसरा आक्षवलन पर आश्रित रहता है। जो आयनवलन पर आश्रित होता है उसको आयन दृक्कर्म और जो आक्षवलन पर आश्रित रहता है उसको आक्षदृक्कर्म कहते हैं।

चित्र १०८ में ग ग्रह का शर उत्तर है। ग का अहोरात्रवृत्त अ ग च छ रा क्षितिज को छ विन्दु पर काटता है इसलिए जिस समय ग के क्रान्तिवृत्त का स्थान गा क्षितिज पर है उस समय ग के अहोरात्रवृत्त का छ विन्दु क्षितिज पर है इसलिए ग का उदय गा से उतना पहले हुआ है जितनी देर में ग के अहोरात्र-वृत्त का ग छ खंड क्षितिज के ऊपर आया है। परन्तु ग छ=ग च+च छ जिनमें से प्रत्येक का मान इस प्रकार जाना जाता है :

ग च की गणना—

गोलीय समकोण त्रिभुज ग गा च में ग च गा कोण समकोण है क्योंकि गा का ध्रुवप्रोतवृत्त ग के अहोरात्रवृत्त को च स्थान पर काटता है इसलिए



चित्र १०८

उ छ गा द=पूर्व क्षितिजवृत्त

उ=उत्तर विन्दु

घ =उत्तर ध्रुव

क=कदम्ब

उ घ अ वि ह=यामोत्तरवृत्त

ग=ग्रह

गा=क्रान्तिवृत्त पर ग ग्रह का स्थान, इस समय यह पूर्व क्षितिज पर लग्न भी है। क्रान्तिवृत्त इसलिए नहीं दिखलाया गया कि चित्र सरल रहे।

अ ग च छ र=ग का अहोरात्र वृत्त

वि स प फ वी=विषुवद् वृत्त; क ग गा=ग का कदम्बप्रोतवृत्त

ध च गा प=गा का ध्रुवप्रोतवृत्त

ध छ फ=छ का ध्रुवप्रोतवृत्त,

ग च=आयनदृक्कर्म; च छ=आक्षदृक्कर्म; ग गा=ग ग्रह का शर या विक्षेप

गा च=ग ग्रह का स्पष्ट शर (देखो गणिताध्याय ग्रहच्छायाधिकार श्लोक)

$\angle$ ग गा च=गा का आयनवलन

$\angle$ उ गा ध=गा का आक्षवलन

$$\frac{\text{ज्या ग च}}{\text{ज्या ग गा}} = \frac{\text{ज्या} \angle \text{ग गा च}}{\text{ज्या ९०}} = \frac{\text{आयनवलन ज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$\therefore \text{ज्या ग च} = \frac{\text{ज्या ग गा} \times \text{आयनवलन ज्या}}{\text{त्रिज्या}} \qquad (१)$$

परन्तु ग च अहोरात्रवृत्त का खंड है और इसके सामने का कोण ध्रुव पर ग ध च के समान है जो विषुवद्वृत्त के स प खंड के समान है। इसलिए यह जानने के लिए कि ग च खंड कितनी देर में उदय होता है हमें स प खंड का जानना आवश्यक है जो इस अनुपात से जाना जाता है—

$$\frac{\text{ज्या ग च}}{\text{ज्या स प}} = \frac{\text{ज्या ग ध}}{\text{ज्या ध स}} = \frac{\text{ज्या ग ध}}{\text{त्रिज्या}} \qquad (२)$$

परन्तु $\text{ग ध} = \text{ध स} - \text{ग स} = ९०^{\circ} - \text{ग की क्रान्ति}$

$\therefore \text{ज्या ग ध} = \text{ग की क्रान्ति कोटिज्या}$

$$\therefore \text{ज्या स प} = \frac{\text{त्रिज्या} \times \text{ज्या ग च}}{\text{ज्या ग ध}}$$

$$= \frac{\text{त्रिज्या}}{\text{ग की क्रान्ति कोटिज्या}} \times \frac{\text{ज्या ग गा} \times \text{आयनवलनज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{\text{ज्या ग गा} \times \text{आयनवलनज्या}}{\text{ग की क्रान्ति कोटिज्या}}$$

$$\therefore \text{आयनदृक्कर्म} = \frac{\text{शर ज्या} \times \text{आयनवलनज्या}}{\text{क्रान्ति कोटिज्या}}$$

इस क्रिया से स प का जो मान आवेगा वह कलाओं में होगा यदि ज्याओं और कोटिज्याओं की गणना भारतीय रीति से की जायगी। इसका अर्थ यह हुआ कि केवल आयनवलन के कारण ग का उदयकाल गा के उदयकाल से स प असुओं के समान आगे होगा। यदि यह जानना हो कि इतनी देर में क्रान्तिवृत्त का कौन सा खंड उदय होगा तो इसको १८०० से गुणा करके जिस राशि में ग्रह हो उसके लंकोदयासुओं से भाग देना चाहिए क्योंकि यह तो स्पष्ट ही है कि जब राशि के लंकोदयासुओं में राशि का ३० अंश या १८०० कला उदय होता है तब जितने समय में स प का उदय होता है उतने समय में राशि का कितना खंड उदय होगा। यही ग्रहच्छायाधिकार के श्लोक ४ का सार है।

च छ की गणना

समकोण गोलीय त्रिभुज च गा छ में गा च छ कोण समकोण है क्योंकि गा

च ध्रुवप्रोतवृत का खंड है, च छ अहोरात्रवृत का खंड है जो ध्रुवप्रोतवृत्त से समकोण पर होता है। गा च को भास्कराचार्यजी ने ग का स्पष्ट शर माना है और भेद दिखलाने के लिए ग गा को मध्यम शर माना है। कोण च गा छ = कोण ध गा उ = आक्षवलन। यदि गा विषवद्वृत्त के पास हो तो कोण ध गा उ अक्षांश के समान माना जा सकता है। ऐसी दशा में और यदि च गा छ त्रिभुज समतल-त्रिभुज मान लिया जाय क्योंकि ग्रह का स्पष्ट शर गा च साधारणतः बहुत छोटा होता है तब च छ गा कोण लम्बांश के समान माना जा सकता है क्योंकि ९०° — अक्षांश = लम्बांश। ऐसी दशा में चूँकि गोलीय त्रिभुज च गा छ में

$$\frac{\text{ज्या च छ}}{\text{ज्या}\angle\text{च गा छ}} = \frac{\text{ज्या च गा}}{\text{ज्या च छ गा}}$$

$$\text{अथवा ज्या च छ} = \frac{\text{ज्या स्पष्ट शर} \times \text{ज्या आक्षवलन}}{\text{लम्ब ज्या}}$$

परन्तु च छ का मान विषवद्वृत्त के प फ खंड के समान है जो सजातीय त्रिभुज ध च छ और ध प फ से इस प्रकार जाना जाता है :—

$$\frac{\text{ज्या प फ}}{\text{ज्या च छ}} = \frac{\text{ज्या ध प}}{\text{ज्या ध च}} = \frac{\text{त्रिज्या}}{\text{ज्या (९०° — च प)}}$$

$$\frac{\text{त्रिज्या}}{\text{ज्या (९०° — ग्रह की क्रान्ति)}} = \frac{\text{त्रिज्या}}{\text{क्रान्ति कोटिज्या}}$$

$$\therefore \text{ज्या प फ} = \frac{\text{ज्या च छ} \times \text{त्रिज्या}}{\text{क्रान्ति कोटिज्या}}$$

$$= \frac{\text{ज्या स्पष्ट शर} \times \text{ज्या आक्षवलन} \times \text{त्रिज्या}}{\text{क्रान्ति कोटिज्या} \times \text{लम्ब ज्या}}$$

यही ग्रहच्छायाधिकार के ७वें श्लोक का अर्थ है। इस प्रकार प फ का जो मान कलाओं में आवेगा वही आक्षदृक्कर्म है।

आक्ष और आयन दृक्कर्म किस समय जोड़ना और किस समय घटाना चाहिए इसके लिए वही नियम हैं जो पहले सूर्य सिद्धान्त के सम्बन्ध में बतलाया गया है।

स्पष्ट शर को जानने की एक रीति जो कुछ स्थूल है भास्कराचार्यजी ने ग्रहच्छायाधिकार के तीसरे श्लोक में यों बतलायी है :—

ग्रह के भोगांश में तीन राशि जोड़ने से जो भोगांश आवे उसकी क्रान्ति की कोटिज्या को अर्थात् द्युज्या को मध्यम शर से गुणा करके गुणनफल को त्रिज्या से

भाग दे देना चाहिए। यह नियम चित्र १०८ के गोलीय समकोण त्रिभुज ग गा च से स्पष्ट है। क्योंकि ग्रह के भोगांश में ९०° जोड़ने से जो आता है उसकी क्रान्ति अयनवलन के समान होती है (देखो चन्द्रग्रहणाधिकार श्लोक २५) जो यहाँ ग गा च कोण के समान है इसलिए उसकी क्रान्ति-कोटिज्या अयनवलन-कोटिज्या के समान होगी। यदि गा ग च त्रिभुज समतल समकोण त्रिभुज मान लिया जाय तो $\angle$गा ग च $= 90° - \angle$ग गा च $= 90° -$ आयनवलन

$$\therefore \frac{\text{ज्या ग गा}}{\text{ज्या}\angle\text{ग च गा}} = \frac{\text{ज्या गा च}}{\text{ज्या}\angle\text{गा ग च}} = \frac{\text{ज्या गा च}}{\text{ज्या } 90° - \text{आयनवलन}}$$

$$\therefore \text{ज्या गा च} = \frac{\text{ज्या ग गा} \times \text{ज्या } (90° - \text{आयनवलन})}{\text{ज्या } 90°}$$

$$= \frac{\text{ज्या मध्यम शर} \times \text{ज्या } (90° - \text{आयनवलन})}{\text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{\text{मध्यम शर ज्या} \times \text{अयनवलन कोटिज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

ग्रहों के विम्बमान—

कुजार्किज्ञामरेज्यानां त्रिंशत्सार्धार्धवर्धिता ।
विष्कम्भश्चन्द्रकक्ष्यायां भृगोष्षष्टिरुदाहृत: ॥१३॥
चित्रतु:कर्णयोगाप्तास्ते द्विघ्नास्त्रिज्यया हता: ।
स्फुटा: स्वकर्णास्तिथ्याप्ता भवेयुर्मानलिप्तिका: ॥१४॥

अनुवाद—(१३) मंगल, शनि, बुध, गुरु और शुक्र के बिम्बों के व्यास चन्द्रकक्षा में क्रमानुसार ३०, ३७॥, ४५, ५२॥ और ६० योजन हैं। (१४) किसी ग्रह के बिम्ब का स्पष्ट व्यास जानने के लिए उस ग्रह के ऊपर लिखे हुए व्यास के दुगुने को त्रिज्या (३४३८) से गुणा करके गुणनफल को त्रिज्या और उस ग्रह के चतुर्थ शीघ्रकर्ण के योग से भाग देने से जो लब्धि आती है वही बिम्ब का स्पष्ट व्यास होता है। यदि इसको १५ से भाग दे दिया जाय तो कलाओं में बिम्ब का परिमाण मालूम हो जाता है।

विज्ञान भाष्य—१३वें श्लोक में यह बतलाया गया है कि ग्रहों के बिम्बों के व्यास चन्द्रकक्षा में क्या हैं। इसके आधार पर चन्द्रग्रहणाधिकार के श्लोक १-३ के अनुसार यह विलोम रीति से जाना जा सकता है कि अपनी कक्षा में ग्रह के बिम्ब का व्यास क्या है। परन्तु युति के सम्बन्ध में यह जानने की कोई आवश्यकता नहीं होती। यहाँ तो केवल यह जानना चाहिए कि युतिकाल में ग्रहबिम्ब का कलात्मक

मान क्या होता है। परन्तु किसी पिण्ड का कोणात्मक या कलात्मक मान उसकी दूरी पर अवलंबित होता है (देखो स्पष्टाधिकार पृष्ठ ८५) और पृथ्वी से ग्रह की दूरी एक सी नहीं रहती, घटा-बढ़ा करती है इसलिए पहले यह जानना आवश्यक है कि ग्रहबिम्ब का मध्यम कोणात्मक मान क्या है। यहाँ चन्द्रमा की कक्षा में ग्रहबिम्ब का जो परिमाण योजनों में समझा गया था वही दिया गया है। साथ ही साथ अगले श्लोकों में यह भी बतलाया गया है कि अभीष्ट काल में ग्रहबिम्ब का जो स्पष्टमान योजनों में आवे उसको १५ से भाग देने पर उसका स्पष्ट कलात्मक मान आ जाता है। चन्द्रग्रहणाधिकार के पृष्ठ ४५२ पर यह बतलाया गया है कि चन्द्रकक्षा का १५ योजन १ कला के समान कैसे होता है। इसलिए यह स्पष्ट है कि चन्द्रकक्षा के बिम्बमानों को १५ से भाग देने पर इसका परिमाण कला में क्यों आ जाता है। इस प्रकार चन्द्रकक्षा में ग्रहों के बिम्बों का कलात्मक मान नीचे लिखे अनुसार हुआ :—

मंगल का बिम्ब	= ३० योजन	= ३० ÷ १५=२	कला
शनि ,,	= ३७॥ योजन	= ३७॥ ÷ १५=२॥	कला
बुध ,,	= ४५ योजन	= ४५ ÷ १५=३	कला
गुरु ,,	= ५२॥ योजन	= ५२॥ ÷ १५=३॥	कला
शुक्र ,,	= ६० योजन	= ६० ÷ १५=४	कला

इनसे यह सिद्ध होता है कि हमारे आचार्य मंगल के बिम्ब को सबसे छोटा समझते थे। इससे बड़ा शनि का बिम्ब समझा था, इत्यादि। परन्तु स्पष्टाधिकार के ९६ पृष्ठ की सारणी से प्रकट होता है कि यदि सब ग्रह द्रष्टा से उतनी दूर हों जितनी दूर सूर्य पृथ्वी से है तो बुध के बिम्ब का व्यास सबसे छोटा अर्थात् ६·६८ विकला है। मंगल का इससे बड़ा अर्थात् ९·३६ विकला है। इसके बाद शुक्र, शनि और गुरु के बिम्बों के व्यास क्रमानुसार १६·८०, १६९·५ और १९४·७२ विकला हैं। इस प्रकार यह सिद्ध है कि हमारे आचार्यों ने स्थूल यन्त्रों के द्वारा बिम्बों के जो परिमाण निकाले थे वे अत्यन्त अशुद्ध हैं जैसा कि म० म० सुधाकर द्विवेदी जी भी ने लिखा[१] है।

---

१. सूक्ष्म दूरदर्शक यन्त्रादिना बुध शुक्रयोरपि शशिवत् सितवृद्धि हानित्वं शृङ्गोन्नतिश्चोपलभ्यते। आचार्य समये तादृश यन्त्राणामभावाद् दृष्ट्या शृङ्गोन्नतिः सितासित बिम्बमितिश्च नोपलब्धाऽतोऽनुमानेन रवेरासन्नेत्वादित्यादि कल्पना न समीचीनेति सर्वं स्फुटम्।

ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त ग्रहयुत्यधिकार श्लोक ३-४ की टीका।

अब यह प्रकट है कि जब १३वें श्लोक में दिये हुए बिम्बों के परिमाण ही अशुद्ध हैं तब इन्हीं के आधार पर अगले श्लोक के अनुसार स्पष्ट बिम्ब के परिमाण ठीक-ठीक कैसे जाने जा सकते हैं।

अब यह विचार किया जायगा कि अगला श्लोक कहाँ तक शुद्ध है। इस श्लोक की प्रथम पंक्ति का सार यह है :—

$$\text{स्पष्ट बिम्ब} = \frac{\text{मध्यम बिम्ब} \times २ \times \text{त्रिज्या}}{\text{त्रिज्या} + \text{चतुर्थ शीघ्रकर्ण}}$$

$$\text{अथवा स्पष्ट विम्ब} = \frac{\text{मध्य बिम्ब} \times \text{त्रिज्या}}{\frac{\text{त्रिज्या} + \text{चतुर्थ शीघ्रकर्ण}}{२}}$$

इसको त्रैराशिक के रूप में इस प्रकार लिखा जा सकता है :—

$$\frac{\text{त्रिज्या} + \text{चतुर्थ शीघ्रकर्ण}}{२} : \text{त्रिज्या} : : \text{मध्यबिम्ब} : \text{स्पष्ट बिम्ब}$$

नियम के इस रूप से सिद्ध होता है कि हमारे आचार्य को यह बात अच्छी तरह मालूम थी कि जब त्रिज्या की दूरी पर ग्रह बिम्ब अपने मध्यम मान के समान होता है तब इससे अधिक दूरी पर स्पष्ट बिम्ब का मान कम होगा और कम दूरी पर स्पष्ट बिम्ब का मान अधिक होगा जैसा कि स्पष्टाधिकार पृष्ठ ८५ में दिखलाया गया है। परन्तु त्रिज्या को ३४३८ मानने से काम नहीं चल सकता। यदि त्रिज्या की जगह वह दूरी रखी जाय जो चन्द्रमा से पृथ्वी की दूरी है और $\frac{\text{त्रिज्या} + \text{चतुर्थ शीघ्रकर्ण}}{२}$ की जगह वह दूरी रखी जाय जो इष्टकाल में पृथ्वी से इष्ट ग्रह की दूरी है तो यह अनुपात ठीक हो सकता है। कोई कोई आचार्य इस त्रैराशिक के पहले पद में त्रिज्या की जगह तृतीय कर्ण लेते हैं। परन्तु इससे भी उतनी शुद्धता नहीं आ सकती जैसी आनी चाहिये। पृथ्वी से किसी ग्रह की दूरी इष्टकाल में क्या होती है इसकी गणना करने के लिये पहले यह जानना होता है कि सूर्य से उस ग्रह की दूरी स्पष्टाधिकार के पृष्ठ १७९-८० में दिये हुए सूत्र के अनुसार क्या है। फिर उसी अधिकार के पृष्ठ १८३ में दिये हुए चित्र के अनुसार पृथ्वी से उस ग्रह की दूरी अर्थात् शीघ्र कर्ण जानना चाहिये। अब यदि ६६ पृष्ठ में दिये हुए मध्यबिम्ब को पृथ्वी और सूर्य के बीच की दूरी से गुणा करके इसी शीघ्र कर्ण से भाग दिया जाय तो ग्रह का स्पष्ट बिम्ब शुद्धतापूर्वक जाना जा सकता है।

आचार्य केतकर की ज्योतिर्गणित के अनुसार पंचतारा ग्रहों के बिम्बों के लघुतम और परम मान तथा लघुतम और परम लम्बन त्रिप्रश्नाधिकार के पृष्ठ ४१० में

ग्रह	स्पष्ट बिम्ब		शीघ्र कर्ण	
	लघुतम	परम	परम	लघुतम
	विकला	विकला		
मंगल	४.४	२१·२	२५२४	५२४
बुध	४·८	१०·६	१३८७	६१३
गुरु	३१.६	४६·७	६२०३	४२०३
शुक्र	६·६	६०·०	१७२३	२७७
शनि	१५·८	१६·५	१०५३६	८५३६

* यह बड़े हर्ष की बात है कि आचार्य बेङ्कटेश बापू केतकर अभी जीवित हैं और अपने सुपुत्र के साथ बीजापुर में रहते हैं और पिता पुत्र दोनों ज्योतिष के अध्ययन में अभी तक लगे हुए हैं। मैंने भूल से आपके नाम के पहले पृष्ठ १८६ में आपको 'स्वर्गीय' लिख दिया था क्योंकि मैं समझता था कि आप स्वर्गीय हो गये होंगे। परन्तु श्रीमान् पदम एस० एम० गोडेज **Padam S. M. codrez** के पत्रों से मालूम हुआ कि आप अभी जीवित हैं। इस सूचना के लिए मैं इन महाशय का बड़ा कृतज्ञ हूँ। पूना के महाराष्ट्रीय पंचांगैक्य मंडल के १८८२ वि० के प्रथम अधिवेशन के वृत्तान्त से सिद्ध होता है कि आप वृद्ध होते हुए भी ज्योतिष संबंधी वाद विवादों में सम्मिलित होते हैं। लेखक

दिये गये हैं। उनसे यह प्रगट होता है कि बिम्बों का परिमाण लम्बन के अनुसार बदलता है अर्थात् यदि लंबन अधिक होता है तो स्पष्ट बिम्ब भी अधिक होता है और लंबन कम होता है। तो स्पष्ट बिंब कम होता है। परन्तु लंबन का परिमाण दूरी के विलोम अनुपात के अनुसार बदलता है अर्थात् जब दूरी अधिक हो जाती है तब लम्बन कम हो जाता है और जब दूरी कम हो जाती है तब लंबन अधिक हो जाता है (देखो पृष्ठ ३८५)।

चित्र ३४ (देखो पृष्ठ १८३) से प्रकट हैं कि जिस समय ग्रह का शीघ्र केन्द्र शून्य होता है उस समय पृथ्वी से ग्रह की दूरी अत्यन्त अधिक होती है अर्थात् उस समय ग्रह का शीघ्र कर्ण अत्यन्त अधिक होता है तथा यह पृथ्वी से सूर्य की दूरी और सूर्य से ग्रह की दूरी के योग के समान होता है। परन्तु जिस समय ग्रह का शीघ्र केन्द्र १८० अंश होता है उस समय पृथ्वी से ग्रह की दूरी अत्यन्त कम होती है तथा यह पृथ्वी से सूर्य की दूरी और सूर्य से ग्रह की दूरी के अंतर के समान होती है। ग्रह के शीघ्रकर्ण और बिम्बों का संबंध पिछले पृष्ठ की सारणी से अच्छी तरह प्रकट होता है।

यहाँ पृथ्वी से सूर्य की दूरी अथवा सूर्य का शीघ्रकर्ण १००० माना गया है।

युतिकाल में ग्रहों को बेध करने की गति—

छायां भूमौ विपर्यस्ते स शङ्क्वग्रे प्रदर्शयेत्।
ग्रहः स्वदर्पणान्तस्थ शंक्वग्रे सम्प्रदृश्यते ॥ १५॥
पञ्चहस्तोच्छ्रितौ शङ्कु यथा दिग्भागसंस्थितौ।
ग्रहान्तरकलाक्षिप्तौ अधोहस्तनिखातितौ ॥१६॥
कर्णं सूत्रे तथा दद्याच्छायाग्राच्छङ्कुमूर्धगे।
छायाकर्णाग्रसंयोगे संस्थितस्य प्रदर्शयेत् ॥१७॥
स्वशङ्कुमूर्धगौ व्योम्नि ग्रहौ दृक्तुल्यतामितौ।

अनुवाद—(१५) समतल भूमि पर जिस पर शंकु गाड़कर छाया नापी जाती है, शंकु की जिस दिशा में ग्रह हो उसकी विपरीत दिशा में, ग्रह की युति-कालिक छाया के अग्र में रखे हुए दर्पण में ग्रह को दिखलाना चाहिए। ऐसे दर्पण में ग्रह शंकु की नोक के साथ मिला हुआ देख पड़ता है। (१६) पाँच हाथ के ऊँचे दो शंकुओं को उन दिशाओं में गाड़े जिनमें युतिकाल के ग्रह हों। इन शंकुओं का परस्पर यामोत्तर अंतर उतना ही होना चाहिए जितना उन ग्रहों का अन्तर हो। इनको दृढ़तापूर्वक खड़ा रखने के लिए एक-एक हाथ पृथ्वी के नीचे गड्ढा खोदकर गाड़ना

चाहिए। (१७) ग्रह की युतिकालिक छाया के अग्रविन्दु से शंकु की चोटी तक छाया कर्ण बतलाने वाला एक डोरा सीधा बाँधे। देखने वाले को चाहिये कि अपनी आँख छाया कर्ण के इसी सूत्र पर रखे। (१८) ऐसा करने से ग्रह आकाश में शंकु की चोटी से लगा हुआ देख पड़ेगा।

विज्ञान भाष्य—यह साढ़े तीन श्लोक बड़े महत्व के हैं। इनसे यह सिद्ध होता है कि हमारे आचार्य ज्योतिष की सूक्ष्म गणना इसीलिए करते थे कि इससे ग्रहों का प्रत्यक्ष स्थान वही आवे जो वेध से देख पड़ता है क्योंकि जब तक ग्रहों की गणना बिलकुल शुद्ध नहीं होगी तब तक हम उनको इस प्रकार देख ही नहीं सकते जैसा कि इन श्लोकों में बतलाया गया है। इससे एक बात और भी ज्ञात होती है कि हमारे आचार्यों को प्रकाश के परावर्तन का नियम भी ज्ञात था।

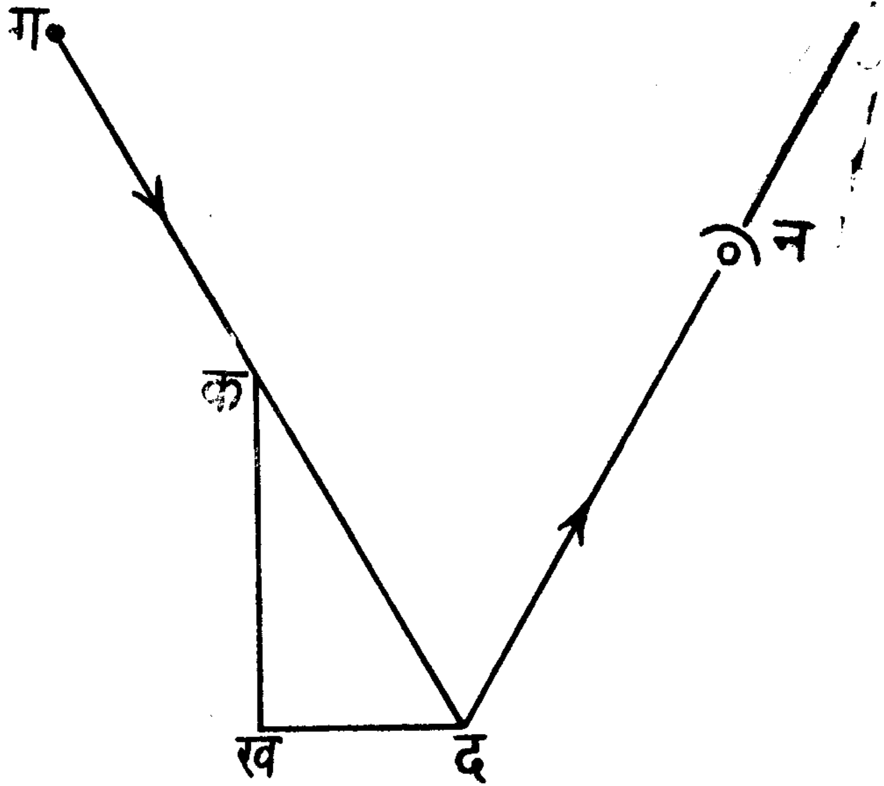
यहाँ ग्रहों की छाया की गणना करने के लिए त्रिप्रश्नाधिकार में बतलायी हुई रीति के अनुसार युतिकालिक ग्रहों का नतकाल उनके भोगांश, क्रान्ति और चर से पृष्ठ ३३१ में बतलायी गयी रीति के अनुसार जानना चाहिए। नतकाल जान लेने पर पृष्ठ २६२ के समीकरण (ख) और (ग) के अनुसार ग्रहों के नतांश जानना चाहिए। नतांश से पृष्ठ २७३ के समीकरण (ख) के अनुसार दिगंश अथवा अग्रा जानना आवश्यक है। नतांश से छाया जानने के लिए नतांश की स्पर्श-रेखा को शंकु के परिमाण से गुणा कर देना चाहिए। यहाँ १५वें श्लोक के लिए यदि शंकु का परिमाण १२ अंगुल का हो तो कुछ हर्ज नहीं परन्तु १६वें श्लोक के लिए शंकु का परिणाम ४ हाथ का होना चाहिये। ऐसा होने से द्रष्टा खड़ा होकर ग्रहों का बेध सुगमतापूर्वक कर सकता है।

१५वें श्लोक का सार चित्र द्वारा इसे प्रकार प्रकट किया जा सकता है :—

द्रष्टा का नेत्र द न रेखा के किसी विन्दु पर होने से दर्पण में ग्रह ग और शंकु की चोटी क एक साथ मिले हुए देख पड़ेंगे।

यदि क ख शंकु चार हाथ का हो तो ख द छाया के अग्रविन्दु द से शंकु की चोटी क तक जो सूत्र क द ताना जायगा उस पर किसी जगह द्रष्टा का नेत्र हो तब भी ग्रह ग शंकु की चोटी क से मिला हुआ देख पड़ेगा। यही १६, १७ और १८वें श्लोक के पूर्वार्ध का सार है।

यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि आजकल यह वेध तभी ठीक-ठीक आ सकता है जब ग्रह का नतांश दृग्गणित के अनुसार शुद्ध-शुद्ध जाना जाय। इस काम के लिए हमारे सिद्धान्त ग्रन्थों में नवीन बेधों के अनुसार संशोधन करना अत्यन्त आवश्यक है।



चित्र १०७

ग—युतिकालिक ग्रह का स्थान

क ख—समतल भूमि में गड़ा हुआ शंकु

द—ख द छाया का अग्रबिन्दु जहाँ दर्पण रखा जायगा

न—द्रष्टा का नेत्र

इन श्लोकों से यह भी प्रकट होता है कि ज्योतिष-विज्ञान का अध्ययन ग्रन्थों के आधार पर ही नहीं होना चाहिए वरन् वेध भी करना चाहिए। इसलिए सिद्ध है कि ज्योतिष का पठन-पाठन उचित रीति से तभी सम्भव है जब ज्योतिष विद्यालय के साथ अच्छी वेधशाला भी हो। ऐसी वेधशाला में शंकु इत्यादि के स्थान में आजकल के सूक्ष्म यंत्र दूरदर्शक इत्यादि हों तभी वेधों में शुद्धता आ सकती है और सिद्धान्त ग्रन्थों में उचित संशोधन करके उनका जीर्णोद्धार भी हो सकता है।

पाँच प्रकार की युतियों के लक्षण—

उल्लेखं तारकास्पर्शे भेदे भेदः प्रकीर्तितः ।१८॥

आरादंशुविमर्दाख्यमंशुयोगे परस्परम् ।

अंशादूनेऽपसव्याख्यं युद्धमेकोऽत्र चेदणुः ॥१९॥

समागमस्यादधिके भवतश्चेद्बलाधिकौ ।

अनुवाद—(१८) का उत्तरार्ध--यदि युतिकाल में दोनों ग्रहों के बिम्बों का केवल स्पर्श होता हो तो ऐसी युति को उल्लेख नामक युति कहते हैं। परन्तु यदि एक का बिम्ब दूसरे के विम्ब को भेद करे अर्थात् कुछ ढक ले तो ऐसी युति को भेद नामक युति कहते हैं। (१९) यदि दोनों ग्रहों के बिम्ब तो कुछ दूर हों परन्तु उनकी किरणें मिली हुई देख पड़ें तो ऐसी युति को अंशुविमर्द नामक युद्ध कहते हैं। यदि दोनों ग्रहों के बिम्बों का अन्तर एक-एक अंश से कम हो तो ऐसी युति को अपसव्य युद्ध कहते हैं। इस युद्ध में यदि एक का बिम्ब छोटा हो तो अपसव्य व्यक्त होता है अन्यथा अव्यक्त होता है। (२०) यदि दोनों बिम्बों का अन्तर एक अंश से अधिक हो तो ऐसी युति को समागम कहते हैं। यदि दोनों ग्रह बली हों अर्थात् स्थूल हों तो व्यक्त समागम होता है। अन्यथा अव्यक्त समागम होता है।

विज्ञान-भाष्य—यहाँ केवल परिभाषा बतलायी गयी है जो स्पष्ट है। इसलिए इस पर कुछ अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है।

पराजित और विजयी ग्रहों का लक्षण—

अपसव्ये जितो युद्धे दूरेऽप्यणुरदीप्तिमान् ॥२०॥
रूक्षो विवर्णो विध्वस्तो मलिनो दक्षिणाश्रितः।
उदक्स्थो दीप्तिमान्स्थूलो जयी याम्येऽपि यो बली ॥२१॥

अनुवाद—(२०) अपसव्य नामक युद्ध में जिस ग्रह का बिम्ब ढक जाता है, छोटा और तेजहीन होता है, (२१) रूखा वर्णहीन या फीका होता है और दक्षिण की ओर होता है वह पराजित समझा जाता है। परन्तु जिस ग्रह का बिम्ब उत्तर की ओर होता है तेजवान और बड़ा होता है वह विजयी समझा जाता है। बली अर्थात् बड़ा और तेजवान ग्रह दक्षिण की ओर हो तब भी विजयी समझा जाता है।

विज्ञान-भाष्य—यह भी स्पष्ट है।

आसन्नावप्युभौ दीप्तौ भवतस्तौ समागमे।
स्वल्पौ द्वावपि विध्वस्तौ भवेतां कूटविग्रहे ॥२२॥

अनुवाद—(२२) यदि दोनों ग्रह पास होते हुए भी प्रभायुक्त हैं तो समागम नामक युद्ध होता है और यदि दोनों ग्रह छोटे और फीके हैं तो कूटविग्रह नामक युद्ध होता है।

उदक्स्थो दक्षिणस्थो वा भार्गवः प्रायशो जयी।
शशाङ्केनैवमेतेषां कुर्यात्संयोगसाधनम् ॥२३॥

अनुवाद—(२३) शुक्र चाहे उत्तर की ओर हो चाहे दक्षिण की ओर बहुधा विजयी होता है। इसी प्रकार चंद्रमा के साथ पाँचों ताराग्रहों की युति का साधन करना चाहिए।

विज्ञान-भाष्य—पांच तारा ग्रहों की लघुतम और परम बिम्ब मानों की सारणी से यह प्रकट है कि शुक्र ग्रह का लघुतम बिम्ब मंगल और बुध के लघुतम बिम्बों से बड़ा है इसलिए इनकी युक्ति के समय तो शुक्र ही अधिक दीप्तिमान और स्थूल होने से विजयी होता है। जिस समय मंगल का विम्ब परम होता है उस समम यह सूर्य से १८० अंश आगे होता है। ऐसी दशा में शुक्र के साथ इसकी युति हो ही नहीं सकती; शुक्र और मंगल की युति तभी हो सकती है जब मंगल भी सूर्य के पास रहे। ऐसी दशा में मंगल का बिम्ब शुक्र के बिम्ब से सदैव छोटा रहेगा। इसलिए मंगल और बुध से शुक्र सदैव अधिक दीप्तिमान और विजयी होता है। हाँ, गुरु या शनि के साथ शुक्र की जब युति होती है तब शुक्र पूर्व में अस्त होने के पहले और पच्छिम में उदय होने पर कुछ समय तक इनसे छोटा होता है। इसलिए यह शनि या गुरु से पराजित कहा जा सकता है परन्तु ऐसी अवस्था बहुत कम होती है। इसीलिए इस श्लोक में कहा गया है कि शुक्र प्राय: विजयी होता है।

भावाभावाय लोकानां कल्पनेयं प्रदर्शिता।
स्वमार्गगाः प्रयान्त्येते दूरमन्योन्यमाश्रिताः ॥२४॥

अनुवाद—(२५) लोगों के शुभाशुभ फल के लिए ग्रहों के युद्ध समागम इत्यादि की कल्पना की गयी है। यथार्थ में ग्रह अपनी-अपनी कक्षा में भ्रमण करते हैं और एक दूसरे से बहुत दूर हैं परन्तु परस्पर आश्रित अथवा बहुत निकट देख पड़ते हैं।

विज्ञान भाष्य—इस श्लोक में आचार्य ने फलित ज्योतिष के सम्बन्ध में कुछ संकेत किया है परन्तु इस पर अच्छी तरह विचार नहीं किया है कि किस प्रकार के युद्ध या समागम से कैसा फल होता है। इसका कारण यही जान पड़ता है कि यह सिद्धान्त ज्योतिष का ग्रन्थ है इसलिए इसमें विस्तार के साथ फलित ज्योतिष की चर्चा करने के लिए स्थान नहीं है।

इस प्रकार ग्रहयुत्यधिकार नामक सातवें अधिकार का विज्ञान भाष्य समाप्त हुआ।

अष्टम अध्याय

नक्षत्रग्रहयुत्यधिकार

(संक्षिप्त वर्णन)

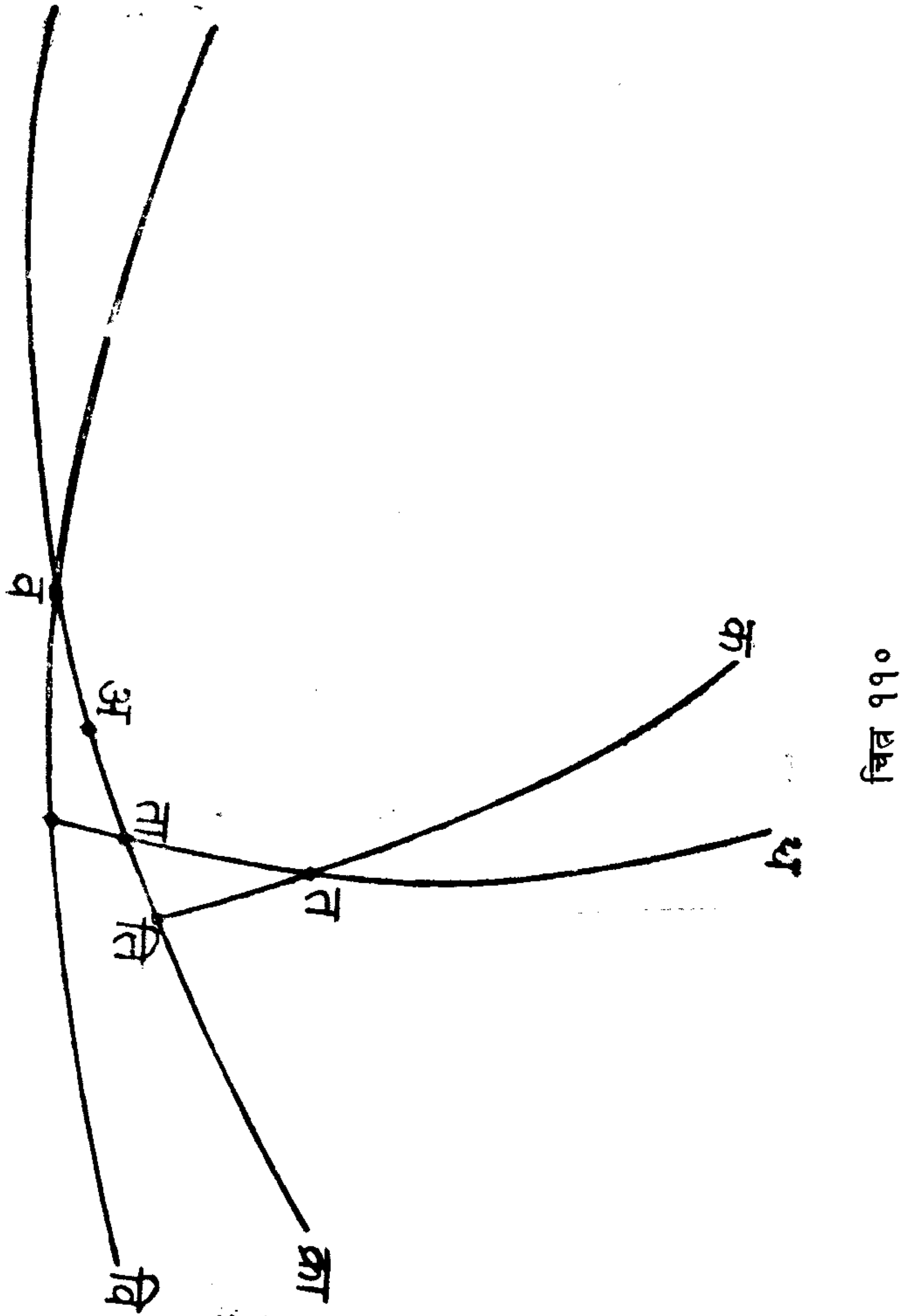
[श्लोक १—नक्षत्रों के भोग से उनके ध्रुव कैसे जाने जाते हैं। श्लोक २-९— नक्षत्रों के भोग और विक्षेपों के मान। श्लोक १०, ११ और १२ का पूर्वार्ध—अगस्त्य, मृगव्याध, अग्नि और ब्रह्म-हृदय नामक तारों के भोग, ध्रुव और विक्षेप। श्लोक १२ का उत्तरार्ध—ध्रुव और विक्षेप को परीक्षा करने की रीति। श्लोक १३—रोहिणी-शकट भेद कब हो सकता है। श्लोक १४-१५—तारे के साथ ग्रह की युति का काल और स्थान जानने की रीति। श्लोक १६-१९—नक्षत्र पुंजों का कौन तारा योगतारा है। श्लोक २०-२१—प्रजापति, अपाम्वत्स और आप ताराओं के ध्रुव और विक्षेप।]

इस अधिकार में यह बतलाया गया है कि सूर्य, चन्द्रमा और ग्रहों के मार्ग में कौन-कौन नक्षत्र पुंज पड़ते हैं, उनके स्थान कहाँ हैं और ग्रहों के साथ उनके मुख्य तारे अथवा योगतारे की युति का समय कैसे जाना जाता है। कुछ ऐसे तारों की भी चर्चा आ गयी है जो अत्यन्त प्रतिभावान होने के कारण प्राचीनकाल के साहित्य में विशेष स्थान रखते हैं, परन्तु जिनके साथ ग्रहों की युति नहीं होती। परन्तु ऐसे सब तारों या तारापुंजों की चर्चा यहाँ मालूम नहीं क्यों नहीं की गयी। मैं परिशिष्ट में ऐसे तारों या तारापुंजों की भी चर्चा करूँगा जो इस अधिकार में नहीं दिये गये हैं परन्तु प्राचीन साहित्य में आये हैं अथवा विशेष महत्व रखते हैं जैसे सप्तर्षि, काश्यप मंडल, इत्यादि। इन ताराओं के विषय में आजकल नवीन वेधों से जो कुछ मालूम हुआ है वह भी संक्षेप में वहीं दिया जायगा।

प्रोच्यते लिप्तिका भानां स्वभोगेन दशाहता:।
भवन्त्यतीतधिष्ण्यानां योगलिप्तायुता ध्रुवा: ॥१॥

अनुवाद—(१) अश्विनी आदि तरीकों के जो भोग आगे कहे जाते हैं उनको दस से गुणा करके गुणनफल को गत नक्षत्रों की भोग-कलाओं में जोड़ने से जो आता है वही उन तारों के ध्रुव हैं।

विज्ञान भाष्य—इस श्लोक के पूर्वार्ध में जो स्वभोग शब्द आया है उसका



चित्र ११०

वक्रा=क्रान्तिवृत्त
व वि=विषुवद्वृत्त
व=वसन्त सम्पात
अ=अश्विनी का आदि बिन्दु
त=तारे का स्थान
क=कदम्ब
ध=ध्रुव

धतता=त तारे का ध्रुवप्रोतवृत्त
कतति=त तारे का कदम्बप्रोतवृत्त
अता=त का ध्रुवाभिमुख भोग या ध्रुव
तता=त का ध्रुवाभिमुख विक्षेप
अति=त का कदम्बाभिमुख भोग अथवा भोग
तति=त का कदम्बाभिमुख विक्षेप अथवा विक्षेप

अर्थ भोगांश नहीं है और न इसका परिमाण अंशों या कलाओं में ही है । तारे के स्वभोग का अर्थ है तारे का अपने नक्षत्र के आदि विन्दु से अन्तर । यह अन्तर ऐसी इकाई में है जिसको न तो अंश कह सकते हैं और न कला । इसीलिए यह बतलाया गया है कि यदि इस स्वभोग को दस से गुणा किया जाय तो इसका परिमाण कलाओं में मालूम होता है । ऐसा जान पड़ता है कि प्रचलित इकाइयों से भिन्न इकाई का प्रयोग संक्षेप के लिए किया गया है । दस से गुणा करने पर जो आता है वही तारे की अपने नक्षत्र के आदि बिन्दु से कलाओं में दूरी होती है । इस दूरी को गत नक्षत्रों की भोग-कलाओं में जोड़ने से अश्विनी के आदि बिन्दु से अर्थात् राशि-चक्र के आदि विन्दु से उक्त तारे का ध्रुव कलाओं में जाना जाता है । पहले बतलाया गया है कि अश्विनी के आदि विन्दु से किसी ग्रह का क्रान्तिवृत्त पर जो अन्तर होता है वह भोगांश कहलाता है और क्रान्तिवृत्त से उस ग्रह का कदम्ब-प्रोतवृत्त पर जो अन्तर होता है वह विक्षेप कहलाता है । परन्तु यहाँ भोगांश न कहकर ध्रुवांश या ध्रुव कहा गया है । यह चित्र ११० से स्पष्ट हो जाता है । यदि त तारे से जाते हुए कदम्बप्रोतवृत्त और ध्रुवप्रोतवृत्त खींचे जायँ तो ये क्रान्तिवृत्त पर दो भिन्न विन्दुओं पर मिलते हैं । क्रान्तिवृत्त के जिस विन्दु ति पर कदम्बप्रोतवृत्त मिलता है उससे अश्विनी के आदि का जो अन्तर होता है उसे तारे का भोग अथवा कदम्बाभिमुख भोग कहते हैं । जैसा कि पहले के अध्यायों में बतलाया गया है और इसी विन्दु से तारे के अन्तर तति को विक्षेप या शर कहते हैं । जिसे यहाँ कदम्बाभिमुख विक्षेप कहना अधिक उपयुक्त होगा परन्तु इस अध्याय में भोग और विक्षेप दूसरे अर्थ में प्रयोग किये गये हैं । भोग का अर्थ कदम्बाभिमुख भोग नहीं है वरन् ध्रुवाभिमुख भोग है और आगे जिस विक्षेप की चर्चा की गयी है उसका अर्थ कदम्बाभिमुख विक्षेप नहीं वरन् ध्रुवाभिमुख विक्षेप है । यह बात चित्र के नीचे जो विवरण दिया है उससे और भी स्पष्ट हो जाती है । एक ही परिभाषिक शब्द से दो भिन्न अर्थ प्रकट करने में भ्रम हो जाता है इसलिये इसको अच्छी तरह ध्यान में रखना चाहिये ।

ग्रहयुत्यधिकार में यह बतलाया गया है कि ग्रहों के भोगों और विक्षेपों में आयन दृक्कर्म और आक्षदृक्कर्म दो संस्कार करने पड़ते हैं । ग्रहों के भोग में आयन दृक्कर्म का संस्कार करने से जो आता है वही ग्रह का ध्रुवाभिमुख भोग अथवा ध्रुव होता है । इसलिए जब इस अध्याय में ग्रहों का ध्रुवाभिमुख भोग ही लिखा गया है, तब नक्षत्रों के साथ आयनदृक्कर्म की आवश्यकता न पड़ेगी, केवल आक्षदृक्कर्म की आवश्यकता पड़ेगी जैसा कि इसी अध्याय के १४वें श्लोक में बतलाया गया है । इस

प्रकार यह प्रगट है कि तारों का ध्रुवांश लिखने में यही सुभीता है कि इसमें आयनदृक्कर्म नहीं करना पड़ता ।

तारों के स्वभोग और विक्षेप—

अष्टार्णवाः शून्यकृताः पञ्चषष्टिर्नगेषवः ।
अष्टार्था गोऽब्धयोऽष्टागा षडगा मनवस्तथा ।।२।।
कृतेषवो युगरसाः शून्यबाणा वियद्रसा ।
खवेदास्सागरनगा अष्टागाः सागरर्तवः ।।३।।
नवोऽथ रसा वेदा वैश्वमाप्याधंभोगगम् ।
आप्यस्यान्तेऽभिजित्तारा वैश्वान्ते श्रवणस्स्थितः ।।४।।
त्रिचतुः पादयोः सन्धौ श्रविष्टा श्रवणस्य तु ।
स्वभोगतो वियन्नागाः षट्कृतिर्यमलाश्विनः ।।५।।
रन्ध्राद्रयः क्रमादेषां विक्षेपाः स्वादपक्रमात् ।
दिङ्मासविषयास्सौम्ये याम्ये पञ्च दिशो भवाः ।।६।।
सौम्ये रसाः खं याम्येऽगाः सौम्ये खार्का स्त्रयोदश ।
दक्षिणे रुद्रयमलाः सप्तत्रिंशत्तथोत्तरे ।।७।।
याम्येऽध्यर्ध त्रककृता नव सार्धशरेषवः ।
उत्तरस्यां तथा षष्टिः त्रिंशत्षट्त्रिषदेव हि ।।८।।
दक्षिणेऽतोर्धभागस्तु चतुर्विंशतिरुत्तरे ।
भागाः शड्विंशतिः खञ्च दस्रादीनां यथाक्रमम् ।।९।।

अनुवाद—अश्विनी से लेकर पूर्वाषाढ़ तक के योग-तारों के स्वभोग क्रम से ४८, ४०, ६५, ५७, ५८, ४, ७८, ७६, १४, ५४, ६४, ५०, ६०, ४०, ७४, ७८, ६४, १४, ६, ४ हैं; उत्तराषाढ़ का योगतारा पूर्वाषाढ़ नक्षत्र के आधे पर, अभिजित के योग तारे का भोग पूर्वाषाढ़ नक्षत्र के अंत में, श्रवण का योग-तारा उत्तराषाढ़ नक्षत्र के अन्त में, धनिष्ठा का योग-तारा श्रवण नक्षत्र के तीसरे और चौथे चरणों की सन्धि में अर्थात् तीसरे चरण के अंत में हैं। शतभिषक् पूर्वाभाद्रपद, उत्तरा भाद्र पद, और रेवती के योग तारों के स्वभोग क्रम के ८०, ३६, २२ और ७९ हैं। क्रान्तिवृत्त से इन अश्विन्यादि योग-तारों के विक्षेप क्रम से १२, १२, ५, उत्तर की ओर; ५, १०, ९ दक्षिण की ओर; ६, ० उत्तर की ओर; ७ दक्खिन की ओर; ०, १२, १३ उत्तर की ओर; ११, २ दक्षिण की ओर; ३७ उत्तर की ओर; १$\frac{१}{२}$, ३, ४, ९, ५$\frac{१}{२}$, ५ दक्षिण की ओर; ६०, ३०, ३६, उत्तर की ओर; $\frac{१}{२}$ दक्षिण की ओर; २४, २६, और ० अंश उत्तर की ओर हैं।

विज्ञान भाष्य—प्रत्येक तारे के स्वभोग को पहले श्लोक के अनुसार १० से गुणा करने पर तारे की स्वभोग-कला आ जायगी। इसको गत नक्षत्रों की भाग-कक्षाओं में जोड़ देने से उस तारे का ध्रुव ज्ञात होगा। जैसे अश्विनी तारे का स्वभोग ४८ है, इसको १० से गुणा किया तो इसका स्वभोग ४८० कला हुआ। अश्विनी तारा अश्विनी नामक पहले ही नक्षत्र में है इसलिए गत नक्षत्र शून्य हुआ इसलिए ४८० कला अथवा ८ अंश अश्विनी तारे का ध्रुव हुआ। इसी प्रकार रोहिणी तारे का स्वभोग कलाओं में ५७० हुआ। रोहिणी के पहले तीन नक्षत्र अश्विनी, भरणी, कृत्तिका गत हैं इसलिए इनका भोग ३ × ८०० कला हुआ क्योंकि एक नक्षत्र ८०० कलाओं के समान होता है (देखो स्पष्टाधिकार श्लोक ६४)। इसलिए रोहिणी तारे का ध्रुव = ५७० + ३ + ८०० कला = ५७० × २४०० कला = २९७० कला = ४९ अंश ३० कला।

इसी प्रकार प्रत्येक तारे का ध्रुवांश जाना जा सकता है। उत्तराषाढ़, अभिजित, श्रवण और धनिष्ठा तारों के स्वभोगों में विशेषता है, इसलिए इनके ध्रुवांश नीचे लिखे अनुसार बतलाये जाते हैं :—

उत्तराषाढ़ का तारा पूर्वाषाढ़ नक्षत्र के आधे पर अर्थात् पूर्वाषाढ़ नक्षत्र के ४०० कला पर है। पूर्वाषाढ़ के पहले अश्विनी से मूल तक १९ नक्षत्र होते हैं जिनके भोग १९ × ८०० कला = १५२०० कला के समान है। इसलिए उत्तराषाढ़ का ध्रुव ४०० + १५२०० कला = १५६०० कला = २६० अंश हुआ।

अभिजित तारा पूर्वाषाढ़ के अंत में बतलाया गया है, इसलिए इसका ध्रुव २६० अंश + ४०० कला अर्थात् २६६ अंश ४० कला हुआ।

श्रवण तारे का ध्रुव उत्तराषाढ़ नक्षत्र के अंत में है। एक नक्षत्र = १३ अंश २० कला। पूर्वाषाढ़ नक्षत्र का अंत २६६ अंश ४० कला पर होता है, इसलिए उत्तराषाढ़ के अंत में श्रवण तारा का ध्रुव २८० अंश हुआ।

धनिष्ठा तारा श्रवण नक्षत्र के तीसरे चरण के अंत में हैं। नक्षत्र के तीन चरण ६०० कला। अथवा १० अंश के समान होते हैं। इसलिए धनिष्ठा का ध्रुव २८० + १० = २९० अंश हुआ।

विक्षेप तो अंशों में दिया ही हुआ है, इसलिए इस पर अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है।

यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि ऊपर दिये हुए तारों के ध्रुव सब सिद्धान्त ग्रन्थों में समान नहीं हैं। इसके कई कारण हो सकते हैं—(१) वेधों की

भिन्नता (२) अश्विनी के आदि विन्दु की स्थिति के निश्चय करने में भिन्नता (३) योग तारों के निश्चय में भिन्नता और (४) सम्पात विन्दु की गति। पहला कारण तो स्पष्ट है क्योंकि वेध यन्त्रों की स्थूलता के कारण वेध के फलों में भिन्नता स्वाभाविक है। दूसरा कारण भी विशेष महत्व का है। इससे यह जान पड़ता है कि अश्विनी के आदि विन्दु के निश्चय में पुराने आचार्यों में भी मतभेद था जैसा कि आजकल है। परन्तु इस मतभिन्नता से आजकल संक्रान्तियों और मलमासों के निश्चय करने में बड़ी कठिनाई उपस्थित हो रही है जिससे अखिल भारतीय तिथियों और पर्वों की स्थिरता ही नहीं हो सकती। इस बात पर सब प्रान्तों के ज्योतिषाचार्यों में एकता हो जाय तो बड़ा भारी काम हो जायगा और इसके उद्योग में जो सज्जन तन मन धन लगावेंगे वे बड़े पुण्य के भागी होंगे। महाराष्ट्र और गुजरात प्रान्तों में इसके सम्बन्ध में बहुत दिनों से उद्योग हो रहा है परन्तु अभी तक कुछ निश्चय नहीं हुआ।

इसी प्रकार सम्पात विन्दु की गति के कारण तारों के ध्रुवों और विक्षेपों में अन्तर पड़ता जाता है यद्यपि इनके कदम्बाभिमुख भोगों और शरों में स्थिरता रहती है।

अब १०-१२ श्लोकों में बतलाये गये तारों के ध्रुवक और विक्षेप देकर कई सारणियों में यह बतलाने का उद्योग किया जायगा कि तारों के ध्रुवांशों के सम्बन्ध में प्राचीन और अर्वाचीन आचार्यों के क्या मत हैं।

अशीतिभागैर्याम्यायामगस्त्यो मिथुनान्तगः।
विंशे च मिथुनस्यांशे मृगव्याधो व्यवस्थितः ॥१०॥
विक्षिप्तो दक्षिणे भागैः खार्णवैस्स्वादपक्रमात्।
हुतभुग्ब्रह्म हृदयौ वृषद्वाविंशभागगौ ॥११॥
अष्टाभिः त्रिंशता चैव विक्षिप्तावुत्तरेण तौ।
गोलं बध्वोपरिक्षेत्रं विक्षेपध्रुवकान् स्फुटान् ॥१२॥

अनुवाद—(१०) अगस्त्य तारे का ध्रुव मिथुन राशि के अन्त में अर्थात् ९० अंश और दक्षिण विक्षेप ८० अंश है। मृगव्याध अथवा लुब्धक तारे का ध्रुव मिथुन के २० अंश पर अर्थात् ८० अंश है। (११) इसका विक्षेप क्रान्तिवृत्त से दक्षिण ४० अंश पर है। अग्नि और ब्रह्महृदय दोनों तारों के ध्रुव वृषराशि के २२ अंश पर अर्थात् ५२ अंश हैं। (१२) इनके विक्षेप क्रम से ८ अंश और ३० अंश क्रान्तिवृत्त से उत्तर की ओर हैं। गोलयंत्र के द्वारा इन स्फुटविक्षेपों और ध्रुवकों की परीक्षा करना चाहिए।

विज्ञान-भाष्य—१२ वें श्लोक का उत्तरार्ध बड़े महत्व का है। इससे यह सिद्ध होता है कि हमारे आचार्यों को लकीर का फकीर होना इष्ट नहीं था इसीलिए

नक्षत्रों के योग ताराओं तथा कुछ अन्य ताराओं के ध्रुवाभिमुख भोग (ध्रुव)

(देखो भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ ४५२)

नक्षत्र की क्रम संख्या	ताराओं के नाम	प्रचलित सूर्य-सिद्धान्त		ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त		लल्ल तंत्र		दामोदरीय भट तुल्य		सुन्दर सिद्धान्त		ग्रहलाघव		शंकर बालकृष्ण दीक्षित		अन्य तारों के अंग्रेजी नाम
		अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	
१	अश्विनी	८	०	८	०	८	०	८	३०	८		८		७	४३	
२	भरणी	२०	०	२०	०	२०	०	२१	१५	२०		२१		२१	५१	
३	कृत्तिका	३७	३०	३७	२८	३६	०	३७	४५	३८		३८		३६	२	
४	रोहिणी	४९	३०	४९	२८	४९	०	४९	०	५०		४९		४७	३७	
५	मृगशिरा	६३	०	६३	०	६२	०	६२	०	६३		६२		६१	२६	
६	आर्द्रा	६७	०	६७	०	७०	०	६६	०	६७		६६		७५	४३	
७	पुनर्वसु	९३	०	९३	०	९२	०	९२	४५	९३		९४		९१	२१	

८	पुष्य	१०६	०	१०६	०	१०५	०	१०६	०	१०६	१०६	१०५	४३
९	आश्लेषा	१०९	०	१०८	०	११४	०	१०७	१५	१०८	१०७	१०८	३८
१०	मघा	१२९	०	१२९	०	१२८	०	१२९	०	१२९	१२९	१२६	५९
११	पूर्वा फाल्गुनी	१४४	०	१४७	०	१३९	२०	१४८			१४८	१४४	३१
१२	उत्तरा फाल्गुनी	१५५	०	१५५	०	१५४	०	१५५	३०	१५५	१५५	१५४	१
१३	हस्त	१७०	०	१७०	०	१७३	०	१७०	०		१७०	१६५	६
१४	चित्रा	१८०	०	१८३	०	१८४	०	१८३	०	१८३	१८३	१८०	०
१५	स्वाती	१९९	०	१९९	०	१९७	०	११८	३०	१९९	१९८	१९३	२८
१६	विशाखा	२१३	०	२१२	५	२१२	०	२१२	१५	२१२	२१२	२०२	११
१७	अनुराधा	२२४	०	२२४	५	२२२	०	२२४	१५		२२४	२११	८
१८	ज्येष्ठा	२२९	०	२२९	५	२२८	०	२२९	३०	२२९	२३०	२२२	५९
१९	मूल	२४१	०	२४१	०	२४१	०	२४२	०		२४०	२४०	४५

नक्षत्र की क्रम संख्या	ताराओं के नाम	प्रचलित सूर्य-सिद्धान्त		ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त		लल्लतंत्र		दामोदरीय भट तुल्य		सुन्दर सिद्धान्त		ग्रहलाघव		शंकर बालकृष्ण दीक्षित		अन्य तारों के अंग्रेजी नाम
		अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंक	वर्ग	अंश	काल	अंश	कला	अंश	कला	
२०	पूर्वाषाढा	२५४	०	२५४	०	२५४	०	२५५	३२	२५४		२५५		२५३	२३	
२१	उत्तराषाढा	२१०	०	२६०	०	२६७	२०	२६०	०	२६०		२६१		२६३	५	
	अभिजित	२६६	४०	२६५	०	२६७	०	२५६	४५			२५८		२५६	१०	
२२	श्रवण	२८०	०	२७८	०	२८३	१०	२७५	१५	२७८		२७५		२७२	५८	
२३	धनिष्ठा	२९०	०	२९०	०	२९६	२०	३८७	३०	२९०		२८६		२८४	४७	
२४	शततारका	३२०	०	३२०	०	३१३	२०	३२०	०	३२०		३२०		३१८	४३	
२५	पूर्वभाद्रपद	३२६	०	३२६	०	३२७	०	३२५	०	३२६		३२५		३२२	३	
२६	उत्तर भाद्रपद	३३७	०	३३७	०	३३५	२०	३३७	०	३३७		३३७		३४०	३५	

२७	रेवती	३५९	५०	०	०	३५९	०	०	०	०	०	३५६ १	५७ २०	
	अगस्त्य	९०	०	८७	०	८७	०			८७	८०			Canopus
	व्याध	८०	०	८६	०	८६	०			८६	८१			Sirius
	अग्नि	५२	०							५२	५३			β Tauri
	ब्रह्मा	५२	०							५२	५६			α aurigae (capella)
	प्रजापति	५७	०							५७	६१			β aurigae
	अपांवत्स	१८०	०								१८३			θvirginis*
	आपस	१८०	०											δvirginis*

Popular Hindu Astronomy Part I pp. 240-241

नक्षत्रों के योग ताराओं तथा कुछ अन्य ताराओं के ध्रुवाभिमुख शर या विक्षेप

(देखो भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ ४५३)

नक्षत्रों की क्रम-संख्या	ताराओं के नाम	प्रचलित सूर्य-सिद्धान्त		ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त		लल्लतंत्र		दामोदरीय भटतुल्य		सुन्दर सिद्धान्त		ग्रहलाघव		शंकर बालकृष्ण दीक्षित		शर की दिशा
		अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	
१	अश्विनी	१०		१०		१०		१०		१०		१०		८		उत्तर
२	भरणी	१२		१२		१२		१२	१५	१२		१२		१०	५७	उत्तर
३	कृत्तिका	५		४	३१	५		४		४		५		४	८	उत्तर
४	रोहिणी	५		४	३३	५		४		४	३०	५		५	३२	दक्षिण
५	मृगशिरा	१०		१०		१०		१०		१०		१०		१३	२४	दक्षिण
६	आर्द्रा	८		११		११		११		११		११		६	४६	दक्षिण
७	पुनर्वसु	६		६		६		६		६		६		६	४६	उत्तर

८	पुष्य	०		०		०		०		०		०	५	उत्तर
९	आश्लेषा	७		७		७		७		७		११	२४	दक्षिण
१०	मघा	०		०		०		०		०		०	२९	उत्तर
११	पू०फाल्गुनी	१२		१२		१२	१३	१	४५			१२	१० ३१	उत्तर
१२	उ०फाल्गुनी	१३		१३		१३		१२	४५			१३	१३ २४	उत्तर
१३	हस्त	११		११		८		११		११		११	१३ १७	दक्षिण
१४	चित्रा	२		१	४५	२		१	४५	१	४५	२	२ १२	दक्षिण
१५	स्वाती	३७		३७		३७		३७	१५			३७	३२ ५६	उत्तर
१६	विशाखा	१	३०	१	२३	१	३०	१	१५			१	० २२	दक्षिण
१७	अनुराधा	३	०	१	४४	३		१	४५			२	२ १	दक्षिण
१८	ज्येष्ठा	४		३	३०	४		३	३०			३	४ ३७	दक्षिण
१९	मूल	९		८	३०	८	३०	८	३०			८	१३ ४८	दक्षिण

नक्षत्रों की क्रम-संख्या	ताराओं के नाम	प्रचलित सूर्य-सिद्धान्त		ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त		लल्ल तंत्र		दामोदरीय भटतुल्य		सुन्दर सिद्धान्त		ग्रहलाघव		शंकर बालकृष्ण दीक्षित		शर की दिशा
		अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला	
२०	पूर्वाषाढ़	५	३०	५	२०	५	२०	५	३०			५		२	७	दक्षिण
२१	उत्तराषाढ़	५		५		५		५				५		१	२८उ	दक्षिण
	अभिजित्	६०		६२		६३		६२		६२		६२		६१	५५	उत्तर
२२	श्रवण	३०		३०		३०		२९	३०	३०		३०		२९	४९	उत्तर
२३	धनिष्ठा	३६		३६		३६		२५	३०	३६		३६		३४	१५	उत्तर
२४	शततारका	०	३०	०	१८	०	२०	०	१५	०	२०	०		०	२५	दक्षिण
२५	पू. भाद्रपद	२४		२४		२४		२३	४५			२४		२१	६	उत्तर
२६	उ. भाद्रपद	२६		२६		२६		२६				२७		१३	४५	उत्तर

२७	रेवती	०	०	०	०		०	० १४ ३ १८	दक्षिण
	अगस्त्य	८०	७७	८०		७७	७६		दक्षिण
	व्याध	४०	४०	४०		४०	४०		दक्षिण
	अग्नि	८				८	८		उत्तर
	ब्रह्मा	३०				३०	३०		उत्तर
	प्रजापति	३८				३८	३६		उत्तर
	अपांवत्स	३					३		उत्तर
	आप	६							उत्तर

वह स्थान-स्थान पर कहते गये हैं कि यंत्रों के द्वारा ग्रहों और नक्षत्रों का वेध करके जो ध्रुवक यथार्थ आवें उनको मानना चाहिए। यहाँ उन्होंने केवल गोलयंत्र की चर्चा की है। त्रिप्रश्नाधिकार के ११ वें श्लोक में बतलाया गया है कि शंकु की छाया से सूर्य का जो भोगांश आता है उससे गणित से निकाले हुए भोगांश का जो अंतर होता है वही स्पष्ट अयनांश है। इन बातों से स्पष्ट होता है कि हमारे आचार्यों को यह इष्ट था कि ज्योतिष सम्बन्धी गणित का मिलान आकाश के प्रत्यक्ष वेध से करके उचित संशोधन भी करते रहना चाहिए।

यहाँ गोलयंत्र की विशेष चर्चा नहीं की जायगी क्योंकि यह विषय ज्योतिषोपनिषदध्याय नामक १३ वें अध्याय में जहां और यंत्रों की चर्चा है स्वयम् आवेगा इसलिए वहीं चित्र देकर यह अच्छी तरह समझाया जायगा। साथ ही साथ यह भी बतलाया जायगा कि इस समय कुछ नवीन यंत्रों जैसे दूरदर्शक यंत्र इत्यादि से बहुत ही सूक्ष्मतापूर्वक कैसे काम लिया जा सकता है और प्रत्येक ज्योतिष विद्यालय के साथ नवीन ढंग के एक-एक बेधालय की कितनी आवश्यकता होती है।

पिछली सारणियों में यह बताया गया है कि भिन्न-भिन्न आचार्यों के मत से उपर्युक्त तारों के ध्रुवक और विक्षेप क्या हैं। ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त के ध्रुवक और विक्षेप भास्कराचार्य की सिद्धान्तशिरोमणि के ध्रुवक और विक्षेप से मिलते हैं। लल्लतंत्र, दामोदरीयभट तुल्य, और सुन्दरी-सिद्धान्त के ध्रुवक और विक्षेप स्वर्गीय शंकर बालकृष्ण दीक्षित के भारतीय ज्योतिष शास्त्र से लिये गये हैं। दीक्षित जी ने चित्रा तारे का ध्रुवक १८० अंश मानकर सन् १८८७ ई० के नाटिकल अलमैनेक में दिये हुए तारों के विषुवांशों और क्रान्तियों से जो ध्रुवक और विक्षेप स्थिर किये थे वे भी इस सारिणी में दिये जायँगे। दीक्षित जी ने रेवती तारे के दो ध्रुवक और दो विक्षेप दिये हैं। इसका कारण यह है कि इनके मत से रेवती का योग तारा जीटा पिसियम या म्यू पिसियम हो सकता है। इसीलिए पहला ध्रुवक या विक्षेप जीटा पिसियम का है और दूसरा म्यू पिसियम का।

ग्रह का रोहिणी-शकट-भेद कब होता है—

वृषे सप्तदशे भागे यस्य याम्योऽशकद्वयात्।
विक्षेपोऽभ्यधिको हन्याद् रोहिण्याश्शकटं तु सः ॥१३॥

अनुवाद—(१३) वृषराशि के १७ वें अंश पर स्थित जिस ग्रह का दक्षिण विक्षेप २ अंश से अधिक होता है वह ग्रह रोहिणी नक्षत्र के शकट को भेद करता है।

विज्ञान भाष्य—रोहिणी नक्षत्र में ५ तारे हैं जिनकी आकृति गाड़ी की तरह अथवा अंग्रेजी के वी (V) अक्षर की तरह है। इन पांच तारों में सबसे उत्तर वाले तारे का दक्षिण विक्षेप २ अंश ३५ कला के लगभग है। इस तारे को आजकल एपसिलान टारि कहते हैं। और रोहिणी के योग तारे का दक्षिण शर ५ अंश ३२ कला है। जिस ग्रह का दक्षिण शर या विक्षेप इन दो सीमाओं के बीच में होता है वह रोहिणी के शकट के भीतर हो जाता है। इसी को रोहिणी के शकट का भेदन कहते हैं। यह प्रकट है कि ग्रह का विक्षेप उसके पात पर आश्रित रहता है। चन्द्रमा का पात १८ वर्षों में एक फेरा करता है। इस एक फेरे में चन्द्रमा केवल ५,६ वर्ष शकट का भेद करता है। यदि चन्द्रमा का दक्षिण शर २ अंश ३५ कला से अधिक हो और ५ अंश ३२ कला से कम और उस समय यह रोहिणी नक्षत्र में हो तो यह अवश्य रोहिणी के शकट में होकर चलेगा इसलिए चन्द्रमा का रोहिणी-शकट-भेद होगा। अब यह देखना है कि जिस समय चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्र में होता है उस समय इसका दक्षिण शर २ अंश ३५ कला से अधिक कम होता है।

मध्यमाधिकार के पृष्ठ ७५ में बतलाया गया है कि चन्द्रमा का परमविक्षेप ५ अंश ८ कला ४२ विकला है। इसका अर्थ यह है कि जब चन्द्रमा राहु से ९० अंश आगे रहता है तब इसका उत्तर शर ५ अंश ८ कला और ४२ विकला होता है और जब यह केतु से ९० अंश आगे रहता है तब इसका दक्षिण शर इतना ही होता है। परन्तु जब यह राहु या केतु पर रहता है तब इसका शर शून्य होता है। इसलिए स्पष्टाधिकार के श्लोक २८, चित्र २५ के आधार पर यह सहज ही जाना जा सकता है कि चन्द्रमा का शर २ अंश ३५ कला से अधिक कब होता है। इस चित्र में यदि व स चन्द्रमा की कक्षा, व प क्रान्तिवृत्त, व राहु का स्थान, स चन्द्रमा का स्थान, स ए चन्द्रशर और स व प चन्द्रमा का परम विक्षेप मान लिया जाय तो व स और प का सम्बन्ध सहज ही जाना जा सकता है। यहां यदि स प को २ अंश ३५ कला मान लिया जाय तो

$$\text{ज्या (वस)} = \frac{\text{ज्या (सप)}}{\text{ज्या (सवप)}} = \frac{\text{ज्या } २^\circ ३५'}{\text{ज्या } ५^\circ\ ९'} = \frac{.०४५१}{.०८९८} = \cdot ५०२२$$

$\therefore$ व स = ३० अंश ९ कला

अर्थात् जब चन्द्रमा अपने पात से एक राशि आगे रहता है तब इसका शर २ अंश ३५ कला से अधिक होता है। परन्तु रोहिणी क्रान्तिवृत्त के दक्षिण है और इसका ध्रुवाभिमुख भोगांश सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार ४९ अंश ३० कला और शंकर बालकृष्ण दीक्षित के अनुसार ४७ अंश ३७ कला है तथा कदम्बाभिमुख भोगांश

सूर्य-सिद्धान्त की गणना से ४८ अंश ६ कला और शंकर बालकृष्ण दीक्षित की गणना से ४५ अंश ५७ कला है। इसलिए यदि रोहिणी के योग तारा का कदम्बाभिमुख भोगांश ४६ अंश मान लिया जाय तो जिस समय चन्द्रमा का भोगांश इतना ही होगा उस समय ही रोहिणी-शकट-भेद हो सकता है यदि इसका दक्षिण शर भी २ अंश ३५ कला से अधिक हो। ऐसी दशा में चन्द्रमा को केतु से कम से कम १ राशि आगे रहना चाहिए अर्थात् जब केतु का भोगांश कम से कम १६ अंश हो तभी रोहिणी-शकट-भेद हो सकता है।

ऊपर की गणना से यह सिद्ध हुआ कि जब केतु से चन्द्रमा १ राशि आगे रहता है तब इसका दक्षिण शर २ अंश ३५ कला होता है। इसके बाद इसका दक्षिण शर बढ़ते-बढ़ते ५ अंश ८ कला हो जाता है। उस समय यह केतु से ३ राशि आगे हो जाता है। फिर इसका दक्षिण शर घटने लगता है और जब यह केतु से ५ राशि आगे अथवा राहु से १ राशि पीछे रहता है तब तक इसका दक्षिण शर २ अंश ३५ कला से कम नहीं होता। इसी सीमा के भीतर चन्द्रमा रोहिणी के शकट का भेद करता है। परन्तु ऊपर सिद्ध हुआ है कि जब केतु का भोगांश १६ अंश होता है अर्थात् जब केतु मेष राशि के १६ अंश पर होता है तब यदि चन्द्रमा का दक्षिण विक्षेप २ अंश ३५ कला हो तो रोहिणी-शकट-भेद होगा। इसके बाद केतु अपनी वक्री गति से जब पीछे हटता जायगा तब भी चन्द्रमा रोहिणी के शकट को भेद करेगा क्योंकि उस समय रोहिणी नक्षत्र में इसका दक्षिण शर २ अंश ३५ कला से अधिक होता जायगा। इस प्रकार जब तक केतु मेष के १६ अंश से ४ राशि पीछे नहीं चला जाता तब तक रोहिणी नक्षत्र में चन्द्रमा का दक्षिण शर २ अंश ३५ कला से कम नहीं होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि जब केतु मेष राशि के १६ अंश पर आवेगा तब चन्द्रमा के रोहिणी-शक भेद का आरम्भ होगा और जब तक यह धनु के १६ अंश पर नहीं आवेगा तबतक चन्द्रमा के प्रति फेरे में रोहिणी नक्षत्र में चन्द्रमा का रोहिणी-शकट-भेद होगा। परन्तु राहु केतु से ६ राशि आगे रहता है। इसलिये यह भी कहा जा सकता है कि जब तक राहु मिथुन के १६ अंश से तुला के १६ अंश तक की सीमा में रहता है तब तक चन्द्रमा का रोहिणी-शकट-भेद होता है।

इसी प्रकार अन्य ग्रहों के रोहिणी शकट-भेद की भी गणना की जा सकती है। परन्तु मध्यमाधिकार पृष्ठ ७५ में दी हुई सारिणी से यह प्रकट होता है कि शुक्र और बुध के सिवा किसी ग्रह का परम शर २ अंश ३५ कला से अधिक नहीं है इसलिए बुध और शुक्र का ही रोहिणी शकट-भेद संभव है। शनि का परम शर २ अंश २६ कला ३६ विकला है इसलिए शनि का रोहिणी-शकट-भेद भी असंभव जान

पड़ता है। परन्तु वराह मिहिर[1] तथा ग्रहलाघवकार[2] ने लिखा है कि शनि अथवा मङ्गलक रोहिणी-शकट-भेद होने से बड़ा अनिष्ट होता है।

युतिकाल का साधन—

ग्रहवद् द्युनिशेमानां कुर्याद् दृक्कर्म पूर्ववत्।
ग्रहमेलनविज्ञेयं ग्रहभुक्त्या दिनादिकम् ॥१४॥
एष्यो हीने ग्रहे योगो ध्रुवकादधिके गतः।
विपर्ययाद्वक्रगतैः ग्रहैः ज्ञेयः समागमः ॥१५॥

अनुवाद—(१४) पहले जिस तरह युतिकालिक ग्रहों का दिनमान और रात्रिमान जानने को कहा गया है उसी तरह नक्षत्रें का भी दिनमान और रात्रिमान साधन करके उनका आक्षदृक्कर्म संस्कार करना चाहिये। इसके पश्चात् जैसे ग्रहों का परस्पर युतिकाल और युतिस्थान जाना जाता है उसी तरह केवल ग्रह की गति से ग्रह और नक्षत्र का युतिकाल और युतिस्थान जान लेना चाहिये। (१५) यदि ग्रह का आयन-आक्ष-दृक्कर्म-संस्कृत भोग नक्षत्र के आक्षदृक्कर्म-संस्कृत ध्रुवक से कम हो तो समझना चाहिये कि नक्षत्र और ग्रह का योग होने वाला है और यदि अधिक हो तो समझना चाहिये कि योग हो चुका है। परन्तु यदि ग्रह वक्री हो तो इसका उलटा समझना चाहिये।

विज्ञान भाष्य—इन दोनों श्लोकों में जो नियम बतलाये गये हैं उनकी व्याख्या ग्रहयुत्यधिकार में आ चुकी है। यहां ग्रह का तो आयन और आक्ष दोनों दृक्र्म करने को कहा गया है परन्तु नक्षत्र का केवल आक्षदृक्कर्म करने को कहा गया है। इसका कारण स्पष्ट है। क्योंकि ग्रह का जो भोगांश स्पष्टाधिकार के अनुसार आता है वह कदम्बाभिमुख होता है इसलिए उसमें आयन-दृक्कर्म का संस्कार करने से वह ध्रुवाभिमुख होता है। अब यदि इसमें आक्षदृक्कर्मका संस्कार किया जाय तो इसका भोगांश समप्रोतवृत्त में आता है। परन्तु नक्षत्रों के जो ध्रुवक

---

१. रोहिणी शकटमर्कनंदनी यदि भिनत्ति रुधिरोथवा शशी।
किं वदामि यदि नष्टसागरे जगद्शेषमुपयाति संक्षये ॥३५॥
—बृहत्संहिता ३४ अध्याय

२. कभशकटमसौ भिनत्त्यसृक् शनिरुडुयो यदि चेज्जनक्षयः ॥७॥
भौमकर्योः शकटभिदा युगान्तरे स्यात् सेदानीं न हि भवतीदृशि स्वपाते ॥८॥
—ग्रहलाघव, नक्षत्रच्छायाधिकार

दिये गये हैं वे ध्रुवाभिमुख हैं इसलिए इनमें केवल आक्षदृक्कर्म का संस्कार करने की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार ग्रह और नक्षत्र के भोगों में किसी इष्टकाल में जो अंतर होता है उसको ग्रह की दैनिक गति से भाग देने पर यह जाना जाता है कि कितने समय में ग्रह का नक्षत्र से योग होगा या होने वाला है। और सब बातें ग्रहयुत्यधिकार में बतलाये गये नियम के अनुसार ही समझनी चाहिए। यहाँ सुगमता यह है कि नक्षत्र स्थिर होते हैं इसलिए केवल एक ग्रह के सम्बन्ध की गणना करनी पड़ती है।

नक्षत्रों के योगतारों के पहचानने की रीति—

फल्गुन्योः भाद्रपदयोः तथैवाऽऽषाढयोर्द्वयोः।
विशाखाश्विनिसौम्यानां योगतारा तथोत्तरा ॥१६॥
पश्चिमोत्तरतारा या द्वितीया पश्चिमे स्थिता।
हस्तस्य योगताराऽसौ श्रविष्ठायाश्च पश्चिमा ॥१७॥
ज्येष्ठाश्रवणमैत्राणां बार्हस्पत्यस्य मध्यमा।
भरण्याग्नेयपित्र्याणां रेवत्याश्चापि दक्षिणा ॥१८॥
रोहिण्यादित्यमूलानां प्राची सार्पस्य चैव हि।
यथाप्रधानं शेषाणां स्थूलास्स्युर्ध्रुवतारकाः ॥१९॥
पूर्वस्यां ब्रह्महृदयादंशकैः पञ्चभिः स्थितः।
प्रजापतिर्वृषान्तेऽसौ सौम्ये अष्टत्रिंशदंशकैः ॥२०॥
अपांवत्सस्तु चित्राया उत्तरेंऽशैश्च पञ्चभिः।
बृहत्किञ्चिदतो भागैरापष्षड्भिस्तथोत्तरे ॥२१॥

इत्यष्टमोध्यायः

अनुवाद—(१६) पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपद, उत्तरा भाद्रपद, पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, विशाखा, अश्विनी और मृगशिरा नक्षत्रों में से प्रत्येक नक्षत्र का उत्तरवाला तारा उस नक्षत्र का योग तारा है। (१६) हस्तनक्षत्र के पश्चिमोत्तर दिशा में जो दो तारे हैं। उनमें दूसरा पच्छिमवाला तारा इस नक्षत्र का योगतारा है और धनिष्ठा नक्षत्र के दो उत्तरवाले तारों में भी पच्छिमवाला तारा योग तारा है। (१८) ज्येष्ठा, श्रवण, अनुराधा और पुष्य नक्षत्रों के बीचवाले तारे प्रत्येक के योग तारे हैं। भरणी, कृत्तिका, मघा और रेवती नक्षत्र के दक्षिणवाला तारा प्रत्येक नक्षत्र का योग तारा है। (१९) रोहिणी, पुनर्वसु, मूल और आश्लेषा नक्षत्र का पूर्ववाला तारा प्रत्येक का योग तारा है। २८ नक्षत्रों में से अब जितने शेष हैं, उनमें

अर्थात् आर्द्रा, चित्रा, स्वाती, अभिजित और शतभिषक् नक्षत्रों में प्रत्येक नक्षत्रों का सबसे बड़ा तारा उस नक्षत्र का योग तारा है। (२०) ब्रह्महृदय तारे से ५ अंश पूर्व की ओर प्रजापति नामक तारा वृष के अंत में है। इसका उत्तर विक्षेपांश ३८ है। (२१) चित्रा तारे से ५ अंश उत्तर की ओर अपांवत्स तारा है जिससे ६ अंश उत्तर कुछ बड़ा आप नामक तारा है।

विज्ञान भाष्य—१६-१९ श्लोकों में यह बतलाया गया है कि प्रत्येक नक्षत्र में कौन तारा मुख्य माना गया है जिसके ध्रुवक और शर पहले बतलाये गये हैं। ऐसे मुख्य तारे को योगतारा कहा गया है। आजकल इन योगताराओं के सम्वन्ध में विद्वानों में कुछ मतभेद है। आगे एक सारणी दी जायगी जिससे पता चलेगा कि आजकल कौन विद्वान् किस तारे को योगतारा मानता है। नक्षत्र के लिए कभी-कभी उनके देवताओं के नामों का प्रयोग किया गया है इसलिए सुविधा के लिए यह भी बतलाया जायगा कि किस नक्षत्र का स्वामी कौन देवता है तथा प्रत्येक नक्षत्र में कितने तारे हैं। तारों की संख्याओं में प्राचीन आचार्यों में भी मतभेद है जैसा कि सारणी से पता चलेगा।

ब्रह्महृदय का ध्रुवक १ राशि २२ अंश बतलाया गया है। इससे ५ अंश पूर्व प्रजापति तारा है। इसलिए प्रजापति का ध्रुवक १ राशि २७ अंश है। श्लोक में बतलाया गया है कि प्रजापति वृषराशि के अंत में है परन्तु इसका अर्थ यही लेना चाहिये कि यह वृषराशि के अंत के पास है। चित्रा तारे का दक्षिण शर २ है और अपांवत्स तारा चित्रा से ५ अंश उत्तर है इसलिए अपांवत्स का उत्तर शर ३ अंश हुआ। आप तारा अपांवत्स से ६ अंश उत्तर है इसलिए इसका उत्तर शर ९ अंश हुआ।

तारों और नक्षत्रों की पहचान के लिए ४ आकाश-चित्र दिये जायँगे जिनसे यह सहज ही जाना जा सकता है कि कौन नक्षत्र किस समय आकाश में कहां देख पड़ता है।

इन सारणियों में तारों के अङ्गरेजी नाम विलक्षण ढंग से दिये हुए हैं इसलिये यह बतला देना आवश्यक है कि ये नाम किस प्रकार रखे गये हैं। अङ्गरेजी में तारा-पुञ्जों के जो नाम प्रचलित हैं वह अधिकतर लैटिन और यूनानी (Greek) भाषा से लिए गये हैं। प्रत्येक तारापुंज के नाम के पहले कोई यूनानी अक्षर जोड़ कर रखा गया है। इन अक्षरों का क्रम अधिकतर इस प्रकार रखा गया है कि उस पुंज में जो तारा सबसे चमकीला और बड़ा है उसका नाम पहले अक्षर 'अल्फा' से प्रकट किया गया है। उसके बाद जो तारा उससे छोटा है उसका नाम दूसरे अक्षर 'बीटा' से प्रकट किया गया है, इत्यादि। कुछ प्रधान तारों के नाम इस तरह तो

नक्षत्र के देवता

(मुहूर्त चिंतामणि तथा भारतीय

क्रम संख्या	नक्षत्रों के नाम	नक्षत्र के स्वामी या देवता	तैत्तिरीय संहिता	नक्षत्र कल्प	वृद्धगार्गीय संहिता	नारद संहिता	वराह मिहिर	खंडखाद्यक
१	अश्विनी	अश्विनी कुमार	२	२	२	३	३	२
२	भरणी	यम		३	३	३	३	३
३	कृत्तिका	अग्नि	७	६	६	६	६	६
४	रोहिणी	ब्रह्मा	१		५	५	५	५
५	मृगशिरा	चन्द्रमा		३	३	३	३	३
६	आर्द्रा	रुद्र	१या२	१	१	१	१	१
७	पुनर्वसु	अदिति	२	२	२	४	५	२
८	पुष्य	वृहस्पति	१	१	१	३	३	१
९	आश्लेषा	सर्प		६	६	५	६	६
१०	मघा	पितर		६	६	५	५	६
११	पूर्वा फाल्गुनी	भग	२	२	२	२	८	२
१२	उत्तरा फाल्गुनी	अर्यमा	२	२	२	२	२	२
१३	हस्त	सूर्य		५	५	५	५	५
१४	चित्रा	विश्वकर्मा	१	१	१	१	१	१
१५	स्वाती	पवन	१	१	१	१	१	१

और तारों की संख्या

ज्योतिषशास्त्र पृष्ठ ४५८)

लल्लकृत रत्नकोश	शाकल्य ब्रह्मसिद्धान्त	श्रीपतिकृत रत्नमाला	मुहूर्त तत्व	मुहूर्त चिंतामणि	नक्षत्र के तारों के नाम Kaye के Hindu Astronomy के अनुसार
३	२	३	३	३	β, γ Arietis
३	३	३	३	३	35, 39, 41 Arietis
६	६	६	६	६	η Tauri, etc.
५	५	५	५	५	α, θ γ, δ, ϵ Tauri
३	३	३	३	३	λ, ϕ_1, ϕ_2 Orionis
१	१	१	१	१	α Orionis
४	२	४	४	४	β, α Geminorum
३	३	३	३	३	θ, δ, γ Cancri
५	५	५	५	५	ϵ, δ, σ, η, ρ Hydrae
५	५	५	५	५	α, η, γ, γ, l, μ, ϵ, Leonis
२	२	२	२	२	δ, θ Leonis
२	२	२	२	२	β, 93 Leonis
५	५	५	५	५	δ, γ, ϵ, α, β Corvi
१	१	१	१	१	α Virginis
१	१	१	१	१	α Bootis

क्रम संख्या	नक्षत्रों के नाम	नक्षत्रों के स्वामी या देवता	तैत्तिरीय संहिता	नक्षत्रकल्प	वृद्ध गार्गीय संहिता	नारद संहिता	वराह मिहिर	खंड खाद्यक
१६	विशाखा	इन्द्र, अग्नि	२	२	२	२	५	२
१७	अनुराधा	मित्र		४	४	४	४	४
१८	ज्येष्ठा	इन्द्र	१		३	३	३	३
१९	मूल	राक्षस	१या२		६	११	११	२
२०	पूर्वाषाढ़	जल		४	४	४	२	४
२१	उत्तराषाढ़	विश्वदेव		४	४	२	८	४
	अभिजित	ब्रह्मा	१		३			३
२२	श्रवण	विष्णु	१	३	३		३	३
२३	धनिष्ठा	वसु	४	५	४			५
२४	शतभिषक	वरुण	१	१	१	१००	१००	१
२५	पूर्वा भाद्रपद	अजपाद		२	२	२	२	२
२६	उत्तरा भाद्रपद	अहिर्बुध्न्य	४	२	२	२	८	२
२७	रेवती	पूषा	१	१	४	३२	३२	१

लल्ल कृत रत्नकोश	शाकल्य ब्रह्म सिद्धान्त	श्रीपति कृत रत्नमाला	मुहूर्त तत्व	मुहूर्त चिंता मणि	नक्षत्र के तारों के नाम Kaye के Hindu Astronomy के अनुसार
४	२	४	४	४	γ, β, α, l Librae
४	३	४	४	४	δ, β, π Scorpii
३	३	३	३	३	α, σ, L Scropii
११	६	११	११	११	λ, μ, x, L θ, ∈ Scorpii
२	४	४	४	२	δ, ∈, Sagittarii
२	४	४	३	२	6, ζ Sagittarii
३	३	३	३	३	α, ∈, ζ Lyrae
३	३	३	३	३	α, β, γ, Aquilae
४	५	४	४	४	β, α, γ, δ Delphini
१००	१००	१००	१००	१००	λ Aquarii, etc.
२	२	२	२	२	α, β Pegasi
२	२	२	२	२	γ Pegasi, α Andromedae
३२	३२	३२	३२	३२	γ Pisceium, etc.

किस नक्षत्र का कौन तारा योगतारा है (भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ ४५६)

क्रम संख्या	नक्षत्र का नाम	कोलब्रुक के मत से	बेंटली और केरोपंत के मत से	व्हिटने और बर्जेस के मत से	बापूदेव के मत से	वें. बा. केतकर के मत से	शंकर बालकृष्ण दीक्षित के मत से	चंद्रशेखर सिंह सामंत का सिद्धान्त दर्पणभूमिका पृ० ५६, ५७
१	अश्विनी	α Arietis	β Arietis	β Arietis	α Arietis	β Arietis	β Arietis	α Arietis
२	भरणी	μ or 35, Arietis	35 Arietis	35 Arietis	35 Arietis	41 Arietis	41 Arietis	41 Arietis
३	कृत्तिका	η Tauri	η Tauri	η Tauri	η Tauri	η Tauri	η Tauri	η Tauri
४	रोहिणी	α Tauri अर्थात् Aldebaran	Aldebaran	Aldebaran	Aldebaran	Aldebaran	Aldebaran	Aldebaran
५	मृगशिरा	λ Orionis	116 Tauri	λ orionis	λ orionis	λ orionis	λ orionis	λ orionis
६	आर्द्रा	α Orionis	133 Tauri	α orionis	α orionis	α orionis	γ Geminorum	α orionis
७	पुनर्वसु	Pollux अर्थात् β Geminorum	Pollux	Pollux	Pollux	Pollux	Pollux	β Geminorum
८	पुष्य	δ cancri	δ cancri	δ cancri	δ cancri	δ cancri	δ cancri	Proesepe

९	आश्लेषा	α cancri	49 cancri	ε Hydrae	α cancri	α cancri	ζ Hydrae	ζ Hydrae
१०	मघा	α Leonis अर्थात् Regulus	Regulus	Regulus	Regulus	Regulus	Regulus	Regulus
११	पूर्वा फाल्गुनी	δ Leonis	θ Leonis	δ Leonis	δ Leonis	θ Leonis	θ Leonis	δ Leonis
१२	उत्तरा फाल्गुनी	β Leonis अर्थात् Denebola	Denebola	Denebola	Denebola	Denebola	Denebola	β Leonis
१३	हस्त	γ or δ corvi	δ corvi	δ corvi	γ or δ corvi	δ corvi	δ corvi	δ corvi
१४	चित्रा	Spica अर्थात् α Virginis	spica	spica	spica	spica	spica	spica
१५	स्वाती	Arcturus अर्थात् α Bootes	Arcturus	Arcturus	Arcturus	Arcturus	Arcturus	Arcturus
१६	विशाखा	α or K Librae	24 Librae	24 Librae	α or K Librae	24 Librae	α Librae	α Librae
१७	अनुराधा	δ Scorpii	β Scorpii	δ Scorpii	δ Scorpii	δ Scorpii	δ Scorpii	δ Scorpii
१८	ज्येष्ठा	α Scorpii अर्थात् Antares	Antares	Antares	Antares	Antares	Antates	Antares
१९	मूल	v or 34 scorpii	34 scorpii	λ scorpii	34 scorpii	45 ophiuchi	λ Scorpii	λ Scorpii
२०	पूर्वाषाढ़	δ Saggittarii	δ Saggittarii	δ Sagittarii	δ Sagittarii	δ Sagittarii	λ Sagittarii	δ Sagittarii
२१	उत्तराषाढ़	t Saggittarii	φ Sagittarii	σ Sagittarii	t Sagittarii	σ Sagittarii	π Sagittarii	φ Sagittarii

क्रम संख्या	नक्षत्र का नाम	कोलब्रुक के मत से	बेंटली और केरोपंत के मत से	व्हिटने और बर्जेस के मत से	बापूदेव के मत से	वें. बा. केतकर के मत से	शंकर बालकृष्ण दीक्षित के मत से	चंद्रशेखर सिंह सामंत का सिद्धान्त दर्पणभूमिका पृ० ५६, ५७
	अभिजित	α Lyrae Aega	Aega	Aega	Aega	Aega	Aega	Aega
२२	श्रवण	α Aquilae अर्थात् Altair	Altair	Altair	Altair	Altair	Altair	Altair
२३	धनिष्ठा	α Delphini	α Delphini	β Delphini	α Delphini	α Delphini	α Delphini	α Delphini
२४	शतभिषक	λ aquarii	λ aquarii	λ Aquarii	λ Aquarii	λ Aquarii	λ Aquarii	λ Aquarii
२५	पूर्वा भाद्रपद	Markab अर्थात् α Pegasi	Markab	Markab	Markab	Markab	Markab	β Pegasi
२६	उत्तरा भाद्रपद	α Andromedae अर्थात् Alpherat	γ Pegasi (Algenib) α Andromedae	Algenib α Andromedae	α Andromedae	α Andromedae	γ Pegasi (Algenib)	αA ndromedae
२७	रेवती	ζ Piscium	ζ Piscium	ζ Piscium	ζ Piscium	ζ Piscium	ζ or μ Picium	η Piscium

यूनानी अक्षर		नाम	उच्चारण	समान उच्चारण के रोमन अक्षर	हमारे आकाश चित्र में प्रयोग किये हुए अंक
क	α	**alpha**	आल्फ़ा	**a**	१
ख	β	**Beta**	बीटा	**b**	२
ग	γ	**Gamma**	गैमा	**g**	३
घ	δ	**Delta**	डेल्टा	**d**	४
च	ϵ	**Epsilon**	एप्साइलन	**e short**	५
छ	ζ	**Zeta**	ज़ीटा	**z**	६
ज	η	**Eta**	ईटा	**e long**	७
झ	θ	**Theta**	थीटा	**th**	८
ट	ι	**Iota**	आयोटा	**i**	९
ठ	K	**Kappa**	कैपा	**k**	१०
ड	λ	**Lambda**	लैम्डा	**l**	११
ढ	μ	**Stet**	म्यू	**m**	१२
त	ν	**Nu**	न्यू	**n**	१३
थ	ξ	**xi**	क्साई	**x**	१४
द	o	**omicron**	आमीक्रोन	**o short**	१५
	π	**Pi**	पाई	**p**	१६
	ρ	**Rho**	रो	**r**	१७

यूनानी अक्षर	नाम	उच्चारण	समान उच्चारण का रोमन अक्षर	हमारे आकाश चित्र में प्रयोग किये हुए अंक
σ	Sigma	सिग्मा	s	१८
τ	Tau	टा	t	१९
υ	upsilon	अपसाइलन	u	२०
φ	Phi	फाई	ph	२१
र χ	chi	काई	ch	२२
ल ψ	Psi	प्साई	ps	२३
ω	omega	ओमेगा	olog	२४

१२ राशियों के नाम

१ संस्कृत साहित्य में प्रचलित नाम	२ संस्कृत के पर्याय	३ अंग्रेजी नाम	४ लैटिन नाम
मेष	क्रिय:	Ram	Aries
वृष	ताबुरि	Bull	Taurus
मिथुन	जितुम:, जित्तम:	Twins	Gemini
कर्क	कुलीर	crab	cancer
सिंह	लेय	Lion	Leo
कन्या	पाथोन, पाथेय	virgin	Virgo
तुला	जूक:	Balance	Libra
वृश्चिक	कौर्प्य:	scorpion	scorpio
धनु	तौक्षिक	Archer	sagittarius
मकर	आलोकेर (?)	capricorn	capricornus
कुंभ	हृदरोग	Water-bearer	Aquarius
मीन	इत्थ्य, इथुसी (?)	Fishes	Pisces

रखे ही गये हैं परन्तु साथ ही साथ उनके साहित्य में प्रचलित नाम भी अब तक व्यवहार में आते हैं।

यदि यह मालूम हो कि संस्कृत साहित्य में किसी तारे का क्या नाम प्रचलित है और अङ्गरेजी साहित्य में क्या नाम है तो तारों के पहचानने में बड़ी सुविधा होती है। इसलिए पहले यह बतला कर कि यूनानी भाषा के अक्षर और उनके नाम क्या हैं, एक सारिणी से यह भी बतलाया जायगा कि तारापुंजों के नाम संस्कृत और अङ्गरेजी तथा लेटिन और यूनानी भाषाओं में क्या है। अक्षरों की जगह हमारे आकाश चित्र में हिन्दी के अङ्क क्रमानुसार प्रयुक्त किये जायगे जैसा कि अन्तिम स्तम्भ में बतलाया गया है।

संस्कृत, लैटिन और अंग्रेजी सभी नामों के एक ही अर्थ हैं परन्तु यूनानी नामों[१] के अक्षरों में भी समानता पायी जाती है जिससे जान पड़ता है कि इनकी उत्पत्ति एक ही देश में हुई है। वह देश चाहे भारतवर्ष हो या यूनान अथवा कोई अन्य देश जिससे इन दोनों देशों ने लिया हो। यह बात भाषा-तत्व-विशारदों से ही स्पष्ट हो सकती है कि इस एकता का क्या कारण है। ज्योतिष के और भी शब्द ऐसे हैं जिनके संस्कृत, अरबी और यूनानी नामों में समता है। परन्तु इस विषय पर यहां तुलनात्मक विचार नहीं किया जायगा क्योंकि इसकी सामग्री इस समय दुर्लभ है। यदि सुविधा हुई तो भूमिका में यह विषय फिर उठाया जायगा।

इस अध्याय में जिन नक्षत्रों की चर्चा हुई है उनकी पहचान के लिए यह आवश्यक है कि उनके चित्र दिये जायँ। इसलिए और फाल्गुन मासों के आकाशचित्र[२] दिये जाते हैं। इन चित्रों में तारों के यूनानी नाम नहीं दिये गये हैं इसलिए योग-तारों के पहचानने में कुछ कठिनाई पड़ सकती है परन्तु नक्षत्रों अर्थात् तारा-समूहों और उनकी स्थिति के समझने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती। इन चित्रों में केवल

---

१. खेद है कि यूनानी अक्षरों के टाइप के अभाव से यूनानी नाम नहीं दिये गये।

२. संवत् १९७८ विक्रमीय के कार्तिक मास से संवत् १९७९ के भाद्रपद मास तक की मर्यादा के लिये जब वह काशी के ज्ञानमण्डल से प्रकाशित होती थी, उसके सम्पादक बाबू सम्पूर्णनन्दजी की इच्छा से दस मास के आकाशचित्र इसी लेखक द्वारा बनाये गये थे। उन्हीं से चार चित्र चुनकर दिये हैं। इनमें उस समय के मंगल, गुरु तथा अन्य प्रधान नक्षत्र समूहों के भी स्थान दिखलाये गये हैं। इनमें से जिनकी चर्चा प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में आयी है उनके नाम संस्कृत ग्रन्थों से ही लिये गये हैं परन्तु जिनकी चर्चा प्राचीन ग्रन्थों में नहीं है उनके नाम वही रखे गये हैं जो आजकल

वही तारे नहीं दिये गये हैं जिनकी चर्चा इस अध्याय में आयी है वरन् आकाश के अङ्गरेजी ग्रन्थों में पाये जाते हैं अथवा इनके हिन्दी के समानार्थ-सूचना शब्द बनाये गये हैं। जैसे **Cassiopea** के लिए काश्यप मंडल, **Cepheus** के लिए सिफियस, **Draco** के लिए अजगर, **Leporis** के लिए शशक इत्यादि। आचार्य वेंकटेश बाबू केतकर ने अपने ज्योतिर्गणित के पृष्ट ३२४ में कई प्रधान तारों के नाम प्रसिद्ध ऋषियों और देवताओं के नाम पर रखे हैं जैसे कण्व, कुवेर, रुद्र, यम, पराशर इत्यादि। परन्तु ये नाम इस चित्र में नहीं दिये गये हैं क्योंकि अभी ये किसी सभा द्वारा स्थिर नहीं किये गये हैं इसलिए पाठकों को तभी सुविधा होगी जब वही नाम दिये जायँ जो संसार के साहित्य में बहुत प्रसिद्धि पा चुके हैं।

इन चित्रों में आकाश के वह दृश्य दिखलाये गये हैं जो २५ अक्षांश के सब स्थानों से चित्रों में बतलाये हुए महीनों में संध्या के ८ बजे से १० बजे तक देखे जा सकते हैं। महीने का आरम्भ संक्रान्ति के प्रायः दूसरे दिन से माना गया है क्योंकि चांद्रमास के अनुसार बनाया हुआ चित्र एक महीने से अधिक काम नहीं दे सकता जबकि संक्रान्ति के हिसाब से बनाया हुआ चित्र सैकड़ों वर्ष तक काम में आ सकता है। संक्रान्ति का विचार भी आजकल तीन तरह से किया जाता है। यहाँ सूर्य सिद्धान्त की रीति से संक्रान्ति का विचार किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए यह बतलाना आवश्यक जान पड़ता है कि कौन संक्रान्ति अङ्गरेजी महीने की किस तारीख को पड़ती है। इन चार चित्रों से वर्ष के बारहों महीनों में कैसे काम लिया जा सकता है उसके लिए भी कुछ बातें अगले दो पृष्ठों की सारणी में दे दी जाती हैं जिसकी विधि आगे बतलायी जायगी।

आगे जो तीन-तीन महीने एकसाथ दिखलाये गये हैं उसका अर्थ यह है कि उन तीन महीनों की पहली तारीख को बीचवाले महीने का आकाश-चित्र ६ठे स्तम्भ में बतलाये हुए समय पर देखा जा सकता है। अथवा यों कहिये कि मोटे अक्षरों में बतलाये हुए महीने का आकाश-चित्र इस महीने के पीछे-आगे वाले महीनों की १ली तारीख को ६ठें स्तम्भ में बतलाये हुए समय पर देखा जा सकता है।

इस सारणी में केवल यह बतलाया गया है कि महीने की १ ली तारीख को

और शनि ग्रहों के चित्र भी यथास्थान दिये गये थे, जो ब्लाक से हट नहीं सकते इसलिये पाठकों को यह ध्यान रखना चाहिए कि वे ग्रह अब वहां नहीं देख पड़ेंगे क्योंकि ग्रहों के स्थान बदलते रहते हैं तारों की तरह एक से नहीं रहते। इन ब्लाकों के देने में ज्ञानमंडल के संचालक बाबू शिवप्रसाद गुप्तजी ने जो उदारता दिखलाई है उसके लिए विज्ञान-परिषद और लेखक दोनों गुप्तजी के ऋणी हैं।

सौर मास	किस संक्रान्ति से आरम्भ होता है	उस दिन की अङ्गरेजी तारीख जिस दिन सौर मास की पहली तारीख मानी गयी है	सौर मास की १ली तारीख के मध्याह्न काल का सूर्य का विषुवांश *		नक्षत्र काल † जिस का आकाश चित्र बनाया गया है		सौरमास की १ ली तारीख को आकाश चित्र देखने का समय धूप-घड़ी के अनुसार मध्याह्नोपरान्त		सौर मास की १ ली तारीख का काल-समीकरण
			घन्टा	मिनट	घन्टा	मिनट	घन्टा	मिनट	
वैशाख	मेष	१४ अप्रैल	१	२६			११	५६	
ज्येष्ठ	बृष	१५ मई	३	२७	१३	३०	१०	१	
आषाढ़	मिथुन	१५ जून	५	३३			७	५६	

* मध्याह्नकाल में सूर्य का विषुवांश होता है वही मध्याह्न का नक्षत्रकाल भी होता है (देखो पृष्ठ २७५ पाद टिप्पणी)। यह १६८५ विक्रमीय का प्रयाग के मध्याह्नकाल का विषुवांश है। यह प्रतिवर्ष एक-एक मिनट कम होता जाता है परन्तु ४ वर्ष के बाद प्रायः यही फिर हो जाता है। परन्तु यह अन्तर नगण्य है।

† नाक्षत्र काल नाक्षत्र-घटिका-यन्त्र से जाना जाता है और जिस समय बसन्त-सम्पात-विन्दु यामोत्तरवृत्त पर जाता है उस समय नाक्षत्र दिन का आरम्भ होता है (देखो पृष्ठ ३३७-३६) '

श्रावण	कर्क	१७ जुलाई	७	४५			११	४३
भाद्रपद	सिंह	१७ अगस्त	९	४६	१९	३०	९	४२
आश्विन	कन्या	१७ सितम्बर	११	३८			७	५१
कार्तिक	तुला	१८ अक्टूबर	१३	३१			११	५७
मार्गशीर्ष	वृश्चिक	१७ नवम्बर	१५	२९	१	३०	९	५९
पौष	धनु	१६ दिसम्बर	१७	३४			७	५५
माघ	मकर	१४ जनवरी	१९	४२			११	४६
फाल्गुन	कुम्भ	१३ फरवरी	२१	४६	७	३०	९	४३
चैत्र	मीन	१५ मार्च	२३	३९			७	५०

कौन आकाश चित्र किस समय देखना चाहिये । यदि महीने की किसी और तारीख को आकाश-चित्र से काम लेना हो तो यह ध्यान में रखना चाहिये कि जो दृश्य महीने की १ ली तारीख को १० बजे देख पड़ता है वही दृश्य २री तारीख को दस बजने से ४ मिनट पहले, ३री तारीख को दस बजने से ४×२=८ मिनट पहले, एक सप्ताह के बाद अर्थात् ८वीं तारीख को ४×७ =२८ मिनट पहले और १५ दिन के बाद १६ तारीख को १५×४=६० मिनट या १ घंटा पहले अर्थात् ९ बजे देख पड़ेगा । इसका कारण यह है कि पृथ्वी दिन रात भर में १ अंश सूर्य की परिक्रमा करने में आगे बढ़ती है जिससे सूर्य तारों के मध्य पूरब की ओर एक अंश खसकता हुआ देख पड़ता है । इसलिये सूर्य को यामोत्तर वृत्त पर आने में प्रतिदिन ४ मिनट की देर हो जाती है अथवा सूर्य का विषुवांश प्रति दिन प्रायः ४ मिनट बढ़ता जाता है । परन्तु आकाश-चित्र जिस नाक्षत्र-काल का बनाया गया है वह स्थिर है इसलिये मध्याह्न से जितने समय पर आकाश किसी दिन देख पड़ता है उससे ४ मिनट पहले ही दूसरे दिन देख पड़ता है (देखो पृष्ठ ४९३-४९६) । सीधा नियम यह है कि मध्याह्न के सूर्य के विषुवांश से जितना पहले या पीछे आकाश चित्र का नाक्षत्र-काल है मध्याह्न से उतना ही पहले या पीछे आकाश-चित्र में बतलाये गये दृश्य आकाश में देख पड़ते हैं । जैसे वैशाख की १ ली तारीख को मध्याह्नकालीन सूर्य का विषुवांश १ घण्टा २९ मिनट के लगभग होता है और ज्येष्ठ के आकाश चित्र का नाक्षत्रकाल १० घंटा ३० मिनट है अर्थात् मध्याह्नकालीन विषुवांश से १२ घण्टा १ मिनट पीछे है इसलिये वैशाख की १ ली तारीख को ज्येष्ठ का आकाश चित्र रात के १२ बजकर १ मिनट पर देख पड़ेगा । परन्तु ६ठें स्तम्भ में ११ बज कर ५९ मिनट बतलाया गया है इसका कारण यह है । कि १२ घंटा १ मिनट नाक्षत्र-काल में है और ११ घंटा ५९ मिनट धूपघड़ी के अनुसार सावन-काल में है । क्योंकि यह बतलाया जा चुका है कि सावन दिन नाक्षत्र दिन से ४ मिनट के लगभग बड़ा होता है (देखो पृष्ठ ३३७-३९) इसलिये नाक्षत्र-काल का ६ घण्टा सावन-काल के ५ घण्टा ५९ मिनट के समान होता है ।

इस नियम के अनुसार यदि आप माघ महीने की १ली तारीख को एक ही रात में आकाश के कुल तारों को देखना चाहें तो सहज ही देख सकते हैं । इस तारीख को बम्बई और जगन्नाथ पुरी को मिलाने वाली रेखा के उत्तर के प्रान्तों में अर्थात् सारे उत्तर भारत में सूर्य साढ़े पांच बजे के पहले अस्त होता है । इसलिये ६ बजे संध्या के समय आकाश के तारे अच्छी तरह दिखाई पड़ने लगते हैं । इस तारीख को मध्याह्नकालीन सूर्य का विषुवांश १९ घण्टा ४२ मिनट होता है इसलिये मध्याह्न से

६ घन्टा पीछे का नाक्षत्र काल हुआ १९ घण्टा ४२ मिनट+६ घण्टा=२५ घन्टा ४२ मिनट अथवा १ घन्टा ४२ मिनट जो १ घन्टा ३० मिनट के लगभग है। इस लिये माघ की १ली तारीख को १ घन्टा ३० मिनट वाले नाक्षत्रकाल का आकाश चित्र अर्थात् मार्गशीर्ष का आकाश त्रित्र ६ बजे संध्या के समय देखा जा सकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि आप श्रवण से लेकर पुनर्वसु तक के १३ नक्षत्रों को अथवा धनिष्ठा से लेकर पुनर्वसु तक के १२ नक्षत्रों को सहज ही पहचान सकते हैं। यदि इससे ६ घंटा पीछे १२ बजे रात को आकाश देखें तो उस समय का नाक्षत्रकाल ७ घंटा ४२ मिनट के लगभग होगा जब कि फाल्गुन मास का आकाश-चित्र आपके काम में आ सकता है क्योंकि फाल्गुन मास का आकाश चित्र उस समय का है जब नाक्षत्र काल ७ घंटा ३० मिनट होता है। इस चित्र से आपको अश्विनी से लेकर हस्त नक्षत्र तक की पहचान सहज ही हो सकती है। इसी प्रकार यदि आप इसी रात को ६ बजे प्रातःकाल के लगभग अथवा १०, १२ मिनट और पहले ही आकाश देखें तो ज्येष्ठ का आकाश चित्र काम दे सकता है क्योंकि ६ बजे प्रातःकाल का नाक्षत्रकाल १३ घंटा ४० मिनट के लगभग होगा और इससे १२, १३ मिनट पहले का आकाश-चित्र १३ घंटा ३० मिनट के नाक्षत्रकाल के समय का होगा। इस आकाश-चित्र से आप पुनर्वसु से लेकर मूल या पूर्वाषाढ़ तक के तारे देख सकते हैं। इसी प्रकार यह भी हिसाब लगाया जा सकता है कि किसी और रात को किस समय किस मास के आकाश चित्र काम दे सकते हैं।

चित्र का साधारण वर्णन—चित्र में जो गोल रेखा खींची हुई है वह २५ अक्षांश का क्षितिज है इसलिए प्रयाग या काशी के क्षितिज से प्रायः मिलता है। केन्द्र में धन का एक चिह्न इस प्रकार+है। इससे आकाश का वह विन्दु प्रकट होता है जो २५ अक्षांश पर सिर के ठीक ऊपर होता है। इसे खस्वस्तिक या खमध्य कहते हैं। गोल रेखा के पास उत्तर, दक्षिण, पूरब, पच्छिम तथा इनके बीच की दिशाएं दिखलाई गयी हैं। उत्तर से दक्षिण तक जो सीधी रेखा देख पड़ती है वह यामोत्तर वृत्त है। मध्याह्नकाल में सूर्य इसी रेखा पर रहता है। पूरब से पच्छिम तक जो टेढ़ी रेखा देख पड़ती है वह विषुवद्वृत्त है। वसंत-सम्पात और शरद्-संपात के दिन सूर्य इसी पर देख पड़ता है और ठीक पूर्व में उदय तथा ठीक पच्छिम में अस्त होता है। विषुवद्वृत्त को काटती हुई एक दूसरी रेखा भी है जिसे क्रान्तिवृत्त कहते हैं। सूर्य इसी पर प्रतिदिन चलता हुआ देख पड़ता है। यथार्थ में यह हमारी पृथ्वी का मार्ग है जिस पर चलती हुई यह वर्ष भर में सूर्य की एक परिक्रमा कर लेती है। यह मार्ग बड़े महत्व का है। चंद्रमा और ग्रह इसी के आसपास आकाश में चक्कर लगाते हुए

देख पड़ते हैं। क्रान्तिवृत्त २७ समान भागों में बाँटा गया है जिन्हें नक्षत्र कहते हैं। मार्गशीर्ष के आकाश चित्र में नक्षत्रों के नाम भी दे दिये गये हैं परन्तु अन्य चित्रों में नक्षत्रों की केवल क्रम संख्या दी गयी है। जैसे क्रान्तिवृत्त पर जहाँ १ लिखा है वहाँ १ला नक्षत्र अश्विनी का अन्त होता है, जहाँ ५ लिखा है वहाँ ५वाँ नक्षत्र मृगशिरा समाप्त होता है, इत्यादि। क्रान्तिवृत्त पर जहाँ छोटे से वृत्त के भीतर चिह्न बना हुआ है वहीं सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार आजकल रेवती नक्षत्र का अन्त और अश्विनी नक्षत्र का आरम्भ समझा जाता है। क्रान्तिवृत्त, विषुवद्वृत्त और यामोत्तरवृत्त की रेखाएं आकाश में देख नहीं पड़ती हैं। इनकी कल्पना ज्योतिषियों ने सुविधा के लिए की है।

वैसे तो निर्मल आकाश में जब अन्धेरी रात हो अनगिनत तारे देख पड़ते हैं परन्तु इन चित्रों में केवल वही दिखलाये गये हैं जो चांदनी रात में भी देखे जा सकते हैं। आकार का परिचय कराने के लिये कुछ ऐसे तारे भी ले लिये गये हैं जो पूर्णमासी के ३, ४ दिन आगे-पीछे चन्द्रमा का अधिक प्रकाश होने के कारण नहीं देख पड़ते। आकाश-गङ्गा भी जिनमें नन्हें-नन्हें असंख्य तारे एक दूसरे से मिले हुए देख पड़ते हैं इन चित्रों में नहीं दिखलायी गयी है। अंधेरी रात में यह आकाश-गंगा भी उत्तर की ओर प्रजापति, परशु, कश्यप, राजहंस और श्रवण मण्डलों को नहलाती हुई वृश्चिक, धनु राशियों को सींचती हुई प्रसिद्ध अग्रहायण और लुब्धक मण्डल को पुनर्वसु और प्रश्वा से अलग करती हुई उत्तर से दक्खिन तक आकाश को घेरे हुए है।

जिस समय का चित्र बनाया गया है उससे कुछ पहले देखने पर पूर्व क्षितिज के पास वाले तारे उदय न होने के कारण नहीं देख पड़ेंगे और पच्छिम क्षितिज के पास वाले तारे कुछ ऊपर देख पड़ेंगे और यामोत्तर वृत्त के पास वाले तारे कुछ पूरब की ओर हटे हुए देख पड़ेंगे। परन्तु यदि उपर्युक्त समय से कुछ पीछे आकाश देखा जाय तो पूर्व क्षितिज के तारे कुछ ऊपर उठे हुए देख पड़ेंगे और क्षितिज के पास कुछ नये तारे भी उदय हो चुके रहेंगे; पच्छिम क्षितिज में कुछ तारे अस्त हुए रहेंगे और यामोत्तर वृत्त के पास वाले तारे पच्छिम की ओर ढल चुके रहेंगे।

२५ अक्षांश के जो स्थान उत्तर हैं वहाँ उत्तर के कुछ और तारे देख पडेंगे। परन्तु जो स्थान दक्षिण हैं वहाँ दक्खिन के कुछ और तारे देख पड़ेंगे और तारों की ऊँचाई-नीचाई में भी कुछ अन्तर देख पड़ेगा परन्तु इससे कोई कठिनाई नहीं हो सकती।

चित्र देखने की रीति—जिधर मुँह करके आकाश को देखना हो चित्र में अंकित उसी दिशा को नीचे करके चित्र को खड़ा कर लीजिए। सबसे नीचे वह तारा है जो क्षितिज के पास देख पड़ेगा। नीचे से केन्द्र तक जो जो तारे चित्र में

दिखाये गये हैं क्षितिज से खस्वतिक तक वही तारे उसी क्रम से देख पड़ेंगे।

ज्येष्ठ मास का आकाश चित्र—

सिर के ऊपर—स्वामी खस्वस्तिक से कुछ पूरब और दक्खिन है। पौन घण्टे में यह यामोत्तर वृत्त पर आ जायगा और उस समय खस्वस्तिक से ५ अंश दक्खिन रहेगा।

उत्तर—सप्तर्षि के पहले ५ तारे यामोत्तर वृत्त से पच्छिम हो गये हैं। छठा तारा वशिष्ठ प्रायः यामोत्तर वृत्त पर है। इसी के पास इसका युगल तारा अरुंधती भी ध्यान से देखने पर देख पड़ेगा। सातवाँ तारा मरीचि कुछ पूरब है और १५ मिनट में यामोत्तर वृत्त पर आ जायगा।

सप्तर्षि के नीचे ४ मंद तारे पूरब से पच्छिम की ओर प्रायः एक रेखा में फैले हुए देख पड़ते हैं। यह अजगर की पूंछ की तरफ के तारे हैं, जिसका मुँह इस समय उत्तर-पूर्व दिशा में प्रायः उसी ऊँचाई पर देख पड़ता है जिस ऊँचाई पर लघु-सप्तर्षि के तारे उत्तर दिशा में अजगर की लपेट के नीचे देख पड़ते हैं। उत्तर से कुछ पूर्व की ओर सिफियस के तीन तारे क्षितिज के पास ही देख पड़ते हैं।

उत्तर-पूरब—इस दिशा में क्षितिज के पास ही हंस मण्डल के तारे देख पड़ते हैं। यहाँ से लेकर पूरब-दक्खिन के कोने तक एक चमकती हुई सड़क सी दिखाई पड़ती है। इसी को आकश-गंगा कहते हैं। इसमें अनगिनत तारे आरम्भिक दशा में हैं। हंस के ऊपर बहुत ही चमकीला तारा अभिजित है। प्रथम श्रेणी का यह तीसरा तारा है। इसी के बगल में पूरब की ओर अजगर का मुख है।

पूरब—क्षितिज के पास ही कुछ उत्तर की ओर हटकर श्रवण नक्षत्र के तीन तारे हैं जिसके बीच का तारा बहुत चमकीला और प्रथम श्रेणी का है। श्रवण के ऊपर खस्वस्तिक और क्षितिज के बीचोबीच हरिकुलेश पुंज है जिसके सभी तारे मन्द ज्योति के हैं। हरिकुलेश पुंज के कुछ ही ऊपर ५, ७ तारे मुकुट के आकार के देख पड़ते हैं। इसके तारे भी मन्द ज्योति के हैं। इसके और ऊपर खस्वस्तिक के पास स्वाती पुंज है जिसका स्वाती नामक तारा प्रथम श्रेणी का चमकीला तारा है रङ्ग में कुछ-कुछ लाल है।

पूरब-दक्षिण—इस समय इस दिशा में वृश्चिक राशि के तारे अपनी अपूर्व छटा से आकाश को शोभायमान कर रहे हैं। ऐसा जान पड़ता है मानों एक बड़ा भारी बिच्छू आकाश में लटक रहा है जिसका मुख अनुराधा नक्षत्र के तीन तारों से बना हुआ है और पेट में ज्येष्ठा नक्षत्र के तीन तारे लटक रहे हैं। बीच वाला तारा भी प्रथम श्रेणी का और कुछ-कुछ लाल है। बिच्छू का डंक दक्खिन की ओर फैला हुआ

है जिसमें बहुत से छोटे-छोटे तारे चमक रहे हैं। क्षितिज के पास ही मूल नक्षत्र के तारे भी पास ही पास देख पड़ते हैं। कुछ पूरब की ओर परन्तु क्षितिज के पास ही पूर्वाषाढ़ नक्षत्र के तारे देख पड़ते हैं। मूल और पूर्वाषाढ़ के तारे धनुराशि में हैं जो पूरा उदय नहीं हुआ है। पूर्वाषाढ़ के ऊपर चित्र में मङ्गल ग्रह के दो स्थान दिखलाये गये हैं परन्तु अब वह यहाँ नहीं देख पड़ेगा। अनुराधा के ऊपर विशाखा नक्षत्र के दो तारे दहने बायें फैले हुए देख पड़ते हैं। ये बहुत चमकीले नहीं हैं परन्तु बड़े महत्व के हैं।

दक्षिण—इस दिशा में क्षितिज के पास ही सेन्टोरी पुंज के दो तीन तारे प्रथम श्रेणी के हैं। ये इतने दक्खिन हैं कि हम काशी, प्रयाग निवासियों को एक घन्टे से अधिक नहीं दिखाई पड़ते। लखनऊ वालों को इससे भी कम समय तक देख पड़ते हैं। अलीगढ़, बरेली वालों को कठिनाई से देख पड़ेंगे और इससे भी उत्तर रहने वालों को नहीं देख पड़ेंगे। कुछ पच्छिम की ओर क्षितिज के पास ही दूसरी श्रेणी के चार तारे पास ही पास देख पड़ते हैं। यह भी एक घन्टे से अधिक नहीं देख पड़ते।

खस्वस्तिक और दक्षिण क्षितिज के मध्य से कुछ और ऊपर प्रथम श्रेणी का चित्रा तारा है जो अपनी स्थिति के कारण बड़े महत्व का है। यह प्रायः क्रान्तिवृत्त पर है। आज से कोई सवा सोलह सौ वर्ष पहले शरद सम्पात इसी तारे के पास होता था अर्थात् जब सूर्य यहाँ पहुँचता था तब वह दक्षिण गोल में जाता था। आजकल शरद सम्पात इस तारे से २२ अंश ५० कला के लगभग पच्छिम हो गया है और उस जगह है जहाँ १२ वें नक्षत्र के पास श अक्षर लिखा हुआ है। महाराष्ट्र प्रान्त में इसी तारे के सम्बन्ध में बड़ा वाद-विवाद चल रहा है। जो लोग कहते हैं कि अश्विनी नक्षत्र अथवा मेष राशि का आरम्भ उस बिन्दु से माना जाना चाहिए जिससे चित्रा तारा ठीक १८० अंश दूर है वे लोग चैत्र पक्ष के कहलाते हैं। इस पक्ष के समर्थक आचार्य वेंकटेश बापू जी केतकर तथा अन्यान्य सज्जन हैं। इनके विरुद्ध एक दूसरा पक्ष है जिसके समर्थक लोकमान्य तिलक भी थे। इनका मत है कि अश्विनी का आरम्भ स्थान वह बिन्दु है जिससे चित्रा तारा १८४, अंश के लगभग दूर है। यह विन्दु रेवती नक्षत्र में है (देखो भाद्रपद मास का चित्र)। इसीलिए इस पक्ष को रैवत पक्ष कहते हैं।

चित्रा से पच्छिम कुछ नीचे की ओर हस्त नक्षत्र के ५ तारे हाथ की अंगुलियों की तरह फैले हुए देख पड़ते हैं। हस्त के ऊपर कन्या राशि के कई मन्द-मन्द तारे देख पड़ते हैं। नीचे की ओर के दो-तीन तारे जो प्रायः सीधी रेखा में हैं क्रान्तिवृत्त के पास ही प्रायः उसी के समानान्तर देख पड़ते हैं। इस रेखा के पच्छिम सिरे पर

जो तारा है उसी के पास आजकल शरद सम्पात विन्दु है, इसलिये जब सूर्य यहां आता है तब वह दक्षिण गोल में जाता है। इसी से चित्रा तारा २३ अंश के लगभग दूर है।

दक्षिण पच्छिम—इस दिशा के आकाश में कोई महत्व के तारे नहीं हैं। बहुत मन्द-मन्द तारों की एक वक्र रेखा चित्रा और हस्त नक्षत्रों के नीचे से होती हुई पच्छिम दिशा तक फैली हुई है जिसके पच्छिमी सिरे पर एक तारा कुछ चमकीला है।

पच्छिम—क्षितिज के पास प्रश्वा नामक तारा देख पड़ता है। इससे उत्तर की ओर कई मन्द-मन्द तारे एक वक्र रेखा में देख पड़ते हैं जिसके उत्तरी छोर पर दो प्रथम श्रेणी के तारे हैं। यही पुनर्वसु नक्षत्र के दो तारे हैं। प्रश्वा से पुनर्वसु तक मन्द-मन्द तारों की जो वक्र रेखा बन जाती है वह मिथुन राशि है। प्रश्वा के ऊपर बहुत मन्द-मन्द तारों का एक वक्र है जिसे कर्क राशि कहते हैं। यह ठीक पच्छिम की ओर देख पड़ता है। इससे ऊपर कुछ ही पच्छिम की ओर हटकर खस्वस्तिक और क्षितिज के बीचोबीच सिंह राशि के तारे अपनी अपूर्व छटा दिखा रहे हैं। सिंह की गर्दन नीचे की ओर लटकी हुई है जिसमें ६, ७ तारे सहज ही देखे जा सकते हैं जिनका आकार हँसिया की तरह जान पड़ता है। दक्खिन वाला अथवा बायीं ओर वाला तारा कुछ कुछ लाल है और प्रथम श्रेणी का है। इसी को मघा का योग तारा या केवल मघा तारा कहते हैं। यह प्रायः क्रान्तिवृत्त पर है इसलिए बड़े महत्व का है। इससे दाहिने उत्तर की ओर एक और तारा है जो चमक में मघा से कुछ कम है परन्तु इतना चमकीला अवश्य है कि पूर्णमासी की रात में भी देखा जा सकता है। मघा के ऊपर दो तारे दाहिने बायें चमकते हुए देख पड़ते हैं। ये पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र के तारे हैं और सिंहराशि की कमर में हैं। सिंह राशि की पूँछ में पूर्वाफाल्गुनी के कुछ और ऊपर उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र का अकेला तारा है। इस प्रकार यह प्रकट है कि पच्छिम दिशा में दो राशियों के तारे अपनी चमक से सहज ही लोगों को आकर्षित कर सकते हैं; केवल कर्कराशि के तारों को मिथुन और सिंहराशियों के बीच कुछ दक्खिन की ओर ध्यान से देखना पड़ता है।

उत्तर पच्छिम—इस दिशा में क्षितिज के पास प्रजापति मण्डल के केवल प्रजापति नाम का तारा देख पड़ता है। ब्रह्महृदय तारा कुछ पहले अस्त हो गया है। इसके सिवा क्षितिज के पास कोई चमकीला तारा अथवा तारासमूह नहीं है। बहुत ऊपर पहले बतलाये हुए सप्तर्षिमण्डल के तारे देख पड़ते हैं। सप्तर्षिमण्डल के दो ध्रुव-सूचक तारों क्रतु और पुलहकी रेखा में दक्खिन की ओर एक तारा है। इससे और दक्खिन परन्तु पूर्वाफाल्गुनी के उत्तर दोनों के बीच में बहुत मन्द-मन्द तारे सर्पाकार

देख पड़ते हैं और पुराणों में प्रसिद्ध नहुष राजा की याद दिलाते हैं जो अगस्त ऋषि के शाप से सर्प बन गया था।

इस प्रकार ज्येष्ठमास के आकाश चित्र का वर्णन पूरा हुआ।

भाद्रपद मास का आकाश चित्र

सिर के ऊपर—इस समय तीन प्रसिद्ध नक्षत्रमण्डल खस्वस्तिक के आस-पास देख पड़ते हैं। श्रवणमण्डल के तीन तारे प्रायः यामोत्तरवृत्त पर खस्वस्तिक से कुछ दक्खिन हटे हुए देख पड़ते हैं। इसी के पास धनिष्ठा नक्षत्र के चार तारे बहुत पास-पास परन्तु मन्द ज्योति के हैं। यह नक्षत्र ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्व का है। वेदांग-ज्योतिष-काल में जब सूर्य यहाँ पहुँचता था तभी उत्तरायण का आरम्भ होता था।

खस्वस्तिक के पास ही एक मन्द तारा है जो हंस की पूँछ का अन्तिम तारा है। इससे उत्तर पूर्व दिशा में एक ही रेखा में दो और तारे हैं जो इससे अधिक चमकीले हैं परन्तु उत्तर वाला इनमें सबसे अधिक चमकीला है। बीच वाले तारे के अगल-बगल पहली रेखा से समकोण बनाते हुए प्रायः एक ही रेखा में दो-तीन तारे और देख पड़ते हैं जो हंस के पंख की तरह जान पड़ते हैं। यह हंस आकाशगंगा में पंख फैलाये तैरता हुआ जान पड़ता है। हंस के पच्छिम अभिजित नक्षत्र है जिसका सबसे चमकीला तारा भी अभिजित नाम से प्रसिद्ध है। यह आकाशगङ्गा से बाहर पच्छिम की ओर है। चमक में इस तारे का स्थान तीसरा है।

आकाशगङ्गा—यह चित्र में नहीं दिखलाई गई है परन्तु इस समय इसका दृश्य बहुत ही मनोरम है। इस समय यह उत्तर-पूर्व क्षितिज से दक्षिण-पच्छिम क्षितिज तक फैली हुई है। उत्तर-पूर्व दिशा में इस समय परशु या पारसीक मण्डल उदय हो रहा है। वहीं से आकाशगङ्गा का भी आरम्भ देख पड़ता है जो राह में काश्यप मण्डल को नहलाती हुई सिफियस के बगल से होती हुई हंस को अच्छी तरह शराबोर कर देती है। हंस के उत्तर वाले तारे से ही इसकी दो शाखायें हो जाती हैं जो प्रायः समानान्तर दिशा में आगे बढ़ती हुई दक्षिणपच्छिम क्षितिज के पास फिर मिलती हुई जान पड़ती हैं। पूर्ववाली शाखा श्रवण नक्षत्र को परिप्लावित करती हुई धनु-राशि के मूल और पूर्वाषाढ़ नक्षत्रों को लीन करती हुई क्षितिज में गुप्त हो जाती है। पच्छिमवाली शाखा में चमकीले तारे बहुत कम हैं। दक्षिण-पच्छिम क्षितिज के पास वृश्चिक के डंक के तारों को डुबाती हुई यह भी गुप्त हो जाती है। ज्येष्ठा नक्षत्र इस शाखा के पच्छिमी तट पर देख पड़ता है।

उत्तर—लघु सप्तर्षि के तारे ध्रुव से पच्छिम की ओर फैले हुए हैं। लघु सप्तर्षि के कुछ और पच्छिम अजगर लटका हुआ देख पड़ता है जिसके मुख के चार तारे अभिजित के पास तक फैले हुए देख पड़ते हैं। अजगर की पूँछ के पास सप्तर्षि मण्डल के ध्रुव-सूचक तारे उत्तर और उत्तर-पच्छिम दिशाओं के बीच क्षितिज के पास ही देख पड़ते हैं। इस सप्तर्षि मण्डल के अन्य तारे उत्तर-पच्छिम दिशा में देख पड़ते हैं।

ध्रुवतारा के पूरब कुछ ऊपर की ओर सिफियस के ४ मंद तारे हैं जिसके और पूरब काश्यप मण्डल के तारे अंग्रेजी के डबलू (W) अक्षर का आधार बनाते हुए देख पड़ते हैं। काश्यप मण्डल से नीचे उत्तर-पूर्व दिशा में परशु या पारसीक मण्डल के तारे क्षितिज के पास ही हैं।

पूर्व—पूर्व और उत्तर-पूर्व दिशाओं के बीच क्षितिज के पास ही अश्विनी नक्षत्र के तीन तारे उदय होते हुए देख पड़ते हैं। इसके ऊपर अंतरमदा (Andromeda) का वक्र देख पड़ता है जिसका आरम्भ पारसीक मण्डल के पास से होता है। इस वक्र पर पूर्वाभाद्रपद और उत्तरभाद्रपद नक्षत्रों के उत्तरवाले तारे हैं। इन दो नक्षत्रों के दो-दो तारे मिलकर एक वर्गाकार बनाते हैं जिसे भाद्रपदावर्ग अथवा (square of Pegasus) कहते हैं। वर्ग के नीचे वाले दो तारे उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में हैं और ऊपर वाले तारे पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र में हैं। उत्तराभाद्रपद के तारों की रेखा की सीध में दक्खिन की ओर बढ़ने पर प्रायः उतनी ही दूरी पर जितनी दूरी पर ये दो तारे आपस में हैं वसंत-संपात विन्दु है जहाँ क्रान्तिवृत्त और विषुवद्वृत्त एक दूसरे को काटते हुए जान पड़ते हैं। जब सूर्य यहाँ देख पड़ता है तभी वसंत ऋतु का आरम्भ होता है और सूर्य उत्तर गोल में आता है। इसी दिन दिन रात समान होते हैं और इसी समय से दिन बड़ा और रात छोटी होने लगती है।

पूर्व-दक्षिण – इस दिशा में चमकीले तारे बहुत कम हैं। ज्येष्ठ के महीने में इस दिशा में जितने तारे थे वे सब इस महीने में दक्षिण-पच्छिम दिशा में हो गये हैं। क्षितिज के पास एक प्रथम-श्रेणी का तारा (Fomalhaut) अवश्य देख पड़ता है जिसे हिन्दी में कुम्भज कहना उचित प्रतीत होता है यद्यपि कुम्भज का पर्याय अगस्त्य तारा इससे बहुत भिन्न है। इसका नाम कुम्भज मैंने दो कारणों से रखा है। एक कारण तो यह है कि यह कुम्भ राशि के पास है, दूसरा कारण यह है कि यह ७,८ बजे संध्या के समय प्रायः आश्विन के महीने में दिखाई देने लगता है जब वर्षा ऋतु का अन्त होता है। जबकि अगस्त्य नामक तारे का उदय वर्षा ऋतु के ठीक मध्य में होता है और प्रातःकाल केवल थोड़ी देर तक देख पड़ता है। कुम्भज से कुछ

और दक्षिण की ओर तीन तारे समकोण त्रिभुज के तीन कोण विन्दु बनाते हुए देख पड़ते हैं। इनका नाम सारस रखा गया है क्योंकि अंग्रेजी में इन्हें Crane कहते हैं।

कुम्भज के ऊपर कुछ पूरब की ओर हटे हुए कुम्भराशि के मन्द मन्द तारे हैं। सारस के ऊपर और श्रवण नक्षत्र के नीचे दोनों के बीच में मकरराशि के मन्द तारे हैं।

दक्षिण—इस दिशा में इस समय क्षितिज के पास कोई चमकीले तारे नहीं हैं। श्रवण नक्षत्र बहुत ऊपर खस्वस्तिक के पास देख पड़ता है।

दक्षिण-पच्छिम—जैसे ज्येष्ठ के महीने में दक्षिण-पूर्व दिशा वृश्चिक और धनु राशियों के तारों से शोभायमान होती है इसी तरह इस महीने में दक्षिण-पच्छिम दिशा इन्हीं दो राशियों के तारों से जगमगा रही है। यहाँ विशेषता यह है कि इस समय धनुराशि के सभी तारे, तथा पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ नक्षत्रों के भी तारे दिखाई पड़ रहे हैं। बिच्छू के और पच्छिम क्षितिज के पास विशाखा नक्षत्र के तारे भी दिखाई देते हैं।

पच्छिम—इस दिशा में इस समय कोई तारे विशेष महत्व के नहीं हैं। विशाखा के तारे कुछ दक्खिन हट कर हैं। स्वाती का तारा कुछ उत्तर की ओर हटा हुआ है परन्तु यह कहा जा सकता है कि प्रायः इसी दिशा में स्वाती का तारा है। स्वाती मण्डल के ऊपर मुकुट और मुकुट के ऊपर हरिकुलेश मण्डल के मन्द मन्द तारे हैं जिनकी चर्चा ज्येष्ठ मास के आकाश चित्र के पूरब दिशा के वर्णन में अच्छी तरह की जा चुकी है।

मार्गशीर्ष मास का आकाश चित्र

इस मास में आकाश बहुत स्वच्छ रहता है। वैशाख, जेठ महीनों की धूल और सावन भादों के बादल कहीं देख नहीं पड़ते और न माघ, फागुन के कुहरा से ही दृष्टि को बाधा पहुँचती है। इसलिए इस महीने के आकाश-चित्र से ज्ञान और मनो-रंजन दोनों होते हैं। इस महीने के आकाश में पूरब दिशा में बहुत से नये तारे और तारा समूह देख पड़ते हैं जिनकी चर्चा प्राचीन साहित्य में भी अनेक स्थलों पर की गयी है।

उत्तर—क्षितिज के पास लघु सप्तर्षि के तारे लटके हुए देख पड़ते हैं। इस समय इनमें ध्रुव तारा सबसे ऊपर है। लघु सप्तर्षि के ऊपर सिफियस के तीन मन्द तारे पच्छिम की ओर फैले हुए देख पड़ते हैं। क्षितिज से जितने ऊपर ध्रुव तारा है, ध्रुव तारा से उतने ही ऊपर काश्यप मण्डल अंग्रेजी के एम् (M) अक्षर के आकार का देख पड़ता है। इसके चार बड़े तारे यामोत्तर वृत्त को लाँघकर पच्छिम की ओर

चले गये हैं, केवल एक तारा यामोत्तरवृत्त से कुछ ही पूरब है। काश्यप मण्डल के ऊपर अन्तरमदा का वक्र है जिसका केवल एक तारा अब यामोत्तर-वृत्त से पूरब है और सब पच्छिम की ओर चले गये हैं।

सिर के ऊपर—अश्विनी नक्षत्र बिलकुल सिर पर देख पड़ता है।

उत्तर पूरब—इस दिशा में कुछ पूरब की ओर और हटकर पुनर्वसु के दो तारे उदय हो चुके हैं। इनके ऊपर ठीक उत्तर-पूर्व दिशा में प्रजापति मण्डल चमक रहा है जिससे पाँच मुख्य तारे पंचभुज क्षेत्र बनाते हुए जान पड़ते हैं। इस मण्डल के उत्तर वाले दो तारे बहुत तेजवान हैं और नीचे ऊपर देख पड़ते हैं। नीचे वाले तारे प्रजापति और ऊपर वाले को ब्रह्महृदय कहते हैं। चमक में इसका स्थान चौथा है। आकाश में सबसे चमकीला तारा लुब्धक है जो इस समय पूर्व दिशा से कुछ दक्खिन है और क्षितिज के पास ही देख पड़ता है। दूसरा तारा अगस्त्य है जो अभी क्षितिज के ऊपर नहीं आया है। तीसरा तारा अभिजित है जो उत्तर-पच्छिम क्षितिज के पास देख पड़ता है और चौथा तारा ब्रह्महृदय है। ब्रह्महृदय के सम्मुख पंचभुज क्षेत्र के दक्खिन कोने पर अग्नि नामक तारा है।

प्रजापति मण्डल के ऊपर पारसीक मण्डल या परशुमण्डल है जिसके दक्षिण सिरे पर कृत्तिका नक्षत्र के ६ तारे पास ही पास देख पड़ते हैं। पारसीक मण्डल के ऊपर प्रायः सिर पर अश्विनी नक्षत्र के तीन तारे हैं जिनमें दो बड़े हैं।

पूर्व—इस दिशा में प्रश्वा नामक प्रथम श्रेणी का तारा उदय हो चुका है परन्तु क्षितिज के बिल्कुल पास है। इससे कुछ दक्षिण हटकर क्षितिज के पास ही लुब्धक अपनी दिव्य ज्योति से चमक रहा है। लुब्धक और प्रश्वा के ऊपर प्रसिद्ध आग्रहायण मण्डल (Orion) है जो अपनी दिव्य ज्योति, आकार और प्रसिद्धि के कारण अत्यन्त प्राचीन काल से महत्वपूर्ण समझा जाता है। लोकमान्य तिलक ने इसी के सूक्ष्म विचार से अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ ओरायन (Orion) में सिद्ध किया है कि वेद के जिस मंत्र में इसकी चर्चा की गयी है वह आज से कम से कम ६००० वर्ष पहले प्रकाशित हुआ होगा। इसको कालपुरुष भी कहते हैं। इसकी चर्चा यूनानी और पारसी साहित्य में बहुत आलंकारिक भाषा में की गयी है। इस मण्डल के बीच में तीन चमकीले तारे प्रायः एक ही रेखा में पास ही पास देख पड़ते हैं जिन्हें इल्वक कहते हैं। इनमें सबसे ऊपर वाला तारा प्रायः विषुवद्वृत्त पर है इसलिए क्षितिज के जिस विन्दु पर यह तारा उदय होता है वही ठीक पूर्व दिशा है और जहाँ अस्त होता है वही पच्छिम दिशा है। आग्रहायण के चारों कोनों पर चार तारे अपनी अपूर्व छटा दिखलाते हैं। इनमें उत्तरवाला नीचे का तारा कुछ कुछ लाल रंग का

देख पड़ता है। इसे ही आर्द्रा नक्षत्र का योग तारा कहते हैं। इसके ऊपरवाला तारा मृगशिरा नक्षत्र का योग तारा कहलाता है। दक्खिन की ओर का ऊपरवाला तारा भी प्रथम श्रेणी का है। गाँववाले इस मण्डल को हन्नाहन्नी कहते हैं और जाड़े की रात में इसकी स्थिति से समय का पता लगाते हैं। आग्रहायण मण्डल के दक्खिन कई तारे मंद ज्योति के हैं जिनसे शशक का आकार बना हुआ जान पड़ता है। इसीलिए इनको शशक (Leporis) कह सकते हैं।

आग्रहायण के ऊपर कुछ उत्तर हटकर रोहिणी नक्षत्र है जिसका नीचे वाला तारा प्रथम श्रेणी का कुछ कुछ लाल रंग का है। इसी रंग के कारण इसका नाम रोहिणी पड़ा। रोहिणी नक्षत्र के ५ तारों से जो आकार बनता है वह अङ्गरेजी के (V) अक्षर के सदृश होता है। रोहिणी नक्षत्र के उत्तर प्रजापति मंडल और ऊपर कुछ उत्तर की ओर कृत्तिका पुंज है जिसे गाँव वाले कचपचिया कहते हैं। इससे भी रात को समय जानने का काम लिया जाता है। कृत्तिका के ऊपर प्रायः शिर पर अश्विनी नक्षत्र है।

जिन तारापुंजों की चर्चा इस समय की गयी है और जो इस समय पूर्व दिशा में देख पड़ते हैं जाड़े की ऋतु में रात भर दिखाई देते हैं इसलिए इनको शीतकाल के नक्षत्र (Winter constellations) कहते हैं।

पूर्व-दक्षिण—इस दिशा में कोई चमकीले तारे नहीं देख पड़ते। शशक कुछ पूरब है जिसकी चर्चा पहले हो चुकी है।

दक्षिण—इस दिशा में क्षितिज के पास तीन तारों का पुंज है जिसे अङ्गरेजी में फीनिक्स कहते हैं। बहुत ऊपर तिमिमंडल देख पड़ता है जिसका मुँह ह्वेल मछली के आकार का नीचे की ओर लटका हुआ और फैला हुआ जान पड़ता है। इसके तारे सभी धीमी ज्योति के हैं।

दक्षिण-पच्छिम—इस दिशा में इस समय सारस और कुम्भज या दूसरा अगस्त देख पड़ते हैं। दूसरे की चर्चा पहले की जा चुकी है।

पच्छिम—दक्षिण और पच्छिम दिशाओं के बीच क्षितिज के पास मकर राशि के मन्द मन्द तारे फैले हुए हैं। इनके ऊपर कुम्भ राशि के तारे भी देख पड़ते हैं।

पच्छिम—इस दिशा में क्षितिज के पास ही श्रवण नक्षत्र के तारे देख पड़ते हैं। श्रवण के ऊपर कुछ उत्तर हटकर धनिष्ठा के तारे हैं। श्रवण के बहुत ऊपर पूर्वा भाद्रपद और उत्तरा भाद्रपद के तारे हैं जिनका वर्गाकार भी बहुत ही साफ-साफ देख पड़ता है। वर्गाकार क्षेत्र के नीचेवाली भुज के दो तारे पूर्वाभाद्रपद और ऊपर वाले भुज के दो तारे उत्तरा भाद्रपद के तारे कहलाते हैं।

उत्तर-पच्छिम—इस दिशा में अभिजित नक्षत्र क्षितिज के पास ही देख पड़ता है। अभिजित के ऊपर हंसमंडल के तारे हैं।

इससे और उत्तर क्षितिज के पास अजगर के मुख के कुछ तारे देख पड़ते हैं।

आकाश-गंगा—इस समय आकाशगंगा पूर्व क्षितिज के पास से उत्तर-पच्छिम क्षितिज तक फैली है। पूर्व क्षितिज में यह प्रश्वा को उत्तर तट पर और लुब्धक को दक्खिन तट पर छोड़ती हुई आग्रहायण के उत्तर, अग्नि और ब्रह्महृदय के बीच से होती हुई पारसीक मंडल और काश्यप मंडल के मध्य हंसमंडल के पास दो शाखाओं में बँटती हुई और श्रवण को दक्खिन तट पर छोड़ती हुई पच्छिम और उत्तर-पच्छिम क्षितिज में विलीन हो जाती है।

फाल्गुन मास का आकाशचित्र

सिर पर—मिथुनराशि इस समय ठीक सिर पर है। पुनर्वसु के दोनों तारे प्रायः खस्वस्तिक पर और प्रश्वा कुछ दक्खिन है।

उत्तर—लघुसप्तर्षि ध्रुवतारा से पूर्व की ओर फैला हुआ है। ध्रुवतारा से पच्छिम सिफियस के तीन तारे हैं जिनमें से एक क्षितिज से बिल्कुल मिला हुआ है। लघुसप्तर्षि के पूर्व अजगर की लपेट है जिसका मुँह अभी क्षितिज से नीचे है।

उत्तर-पूर्व—इस दिशा में सप्तर्षि मंडल के सातों तारे दिखाई पड़ रहे हैं। सप्तर्षि के ऊपर सर्पाकार मंद-मंद तारे हैं।

उत्तर-पूर्व और पूर्व दिशाओं के बीच क्षितिज के पास ही कुछ कुछ लाल रंग का स्वाती तारा है।

पूरब—इस दिशा में क्षितिज के पास कन्या राशि के तारे दिखाई पड़ रहे हैं। अभी चित्रा उदय नहीं हुआ है। कन्या राशि के ऊपर सिंहराशि के सब तारे दिखाई पड़ रहे हैं। नीचे वाला अकेला तारा उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र का है। इसके ऊपर दो तारे पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र के हैं। पूर्वाफाल्गुनी के ऊपर मघा नक्षत्र के तारे हंसिया के आकार के देख पड़ते हैं। इस हंसिया के नीचे के दो तारे बहुत चमकीले हैं जिनमें दक्खिनवाला तारा मघा का योगतारा है। यह भी कुछ कुछ लाल रंग का देख पड़ता है।

हँसिया के ऊपर बहुत मंद-मंद तारे हैं। उत्तरवाले तारों को पुष्यनक्षत्र और दक्खिन वालोंतारों को आश्लेषा नक्षत्र कहते हैं। यहीं कर्कराशि भी है। पुनर्वसु और मघा के बीच में जितने मंद-मंद तारे हैं सभी कर्कराशि में कहे जा सकते हैं।

पूर्व और पूर्व-दक्षिण दिशाओं के बीच ४,५ तारे क्षितिज के पास ही देख पड़ते हैं। ये हस्तनक्षत्र के तारे हैं।

पूर्व क्षितिज से लेकर सिर के ऊपर तक वरन् कुछ और पच्छिम तक जितने नक्षत्र क्रान्तिवृत्त के पास देख पड़ते हैं उनको वर्षा के नक्षत्र कहते हैं। इसलिए नहीं कि ये वर्षा ऋतु में देख पड़ते हैं वरन् इसलिए कि जब सूर्य इन नक्षत्रों में रहता है तभी यहाँ वर्षा होती है। वर्षा के नक्षत्रों के नाम क्रमानुसार यह है :—आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त और चित्रा।

पूर्व-दक्षिण—इस दिशा में कोई प्रसिद्ध तारा इस समय नहीं देख पड़ता।

दक्षिण—इस दिशा में क्षितिज के पास कई तेजवान तारों का समूह है जो जहाज के आकार का देख पड़ता है इसीलिए इसको नौका पुंज (Argo Navis) कहते हैं। इस समूह का प्रधान तारा अगस्त यामोत्तरवृत्त से पच्छिम हो गया है और क्षितिज के पास देख पड़ता है। चमक में इसका स्थान दूसरा है। पहला स्थान लुब्धक को प्राप्त है जो इससे ठीक ऊपर देख पड़ता है। नौका पुंज के ऊपर लुब्धक मंडल है।

पच्छिम दक्षिण—इस दिशा में क्षितिज के पास कोई चित्ताकर्षक नक्षत्र नहीं है। कुछ ऊपर शशक और इससे भी ऊपर प्रसिद्ध आग्रहायण मंडल हैं। आग्रहायण मंडल के ऊपर प्रायः सिर पर मिथुन राशि के तारे हैं।

पच्छिम—इस दिशा में कुछ उत्तर को हटकर अश्विनी नक्षत्र क्षितिज के पास ही हैं। इससे ऊपर २, ३ बहुत मंद तारे हैं जिसे भरणी नक्षत्र कहते हैं। भरणी से कुछ और उत्तर तीन तारे त्रिकोण बनाते हुए देख पड़ते हैं। भरणी के ऊपर कुछ पच्छिम की ओर कृत्तिका नक्षत्र है। कृत्तिका के कुछ ऊपर और पच्छिम रोहणी नक्षत्र है। कृत्तिका से उत्तर पारसीक मंडल है इन दोनों नक्षत्रों के ऊपर प्रजापति मंडल है जिसका अग्नि तारा कृत्तिका के ऊपर और ब्रह्महृदय पारसीक के ऊपर है। ब्रह्महृदय के ऊपर प्रजापति का तारा है। पारसीक और प्रजापति मंडलों के उत्तर वाले तारे ब्रह्महृदय, प्रजापति आदि उत्तर पच्छिम दिशा में देख पड़ते हैं।

त्रिकोण के उत्तर अंतरमदा के कुछ तारे क्षितिज के पास देख पड़ते हैं।

उत्तर पच्छिम—इस दिशा में पारसीक और प्रजापति मंडल के उत्तर वाले तारे हैं जिनकी चर्चा अभी हो चुकी है। इस दिशा से कुछ उत्तर और हटकर काश्यप मंडल के तारे क्षितिज के पास हैं।

आकाश-गंगा—इस समय उत्तर पश्चिम के कोने से दक्खिन क्षितिज तक फैली हुई है। उत्तर-पश्चिम क्षितिज से आरम्भ कर के इसमें या इसके आसपास कश्यप, पारसीक, प्रजापति, आग्रहायण, लुब्धक मंडल और नौका पुंज के तारे हैं।

इन चार मासों के आकाश चित्रों और इनके वर्णनों से आकाश के सभी सभी प्रधान तारों और तारासमूहों की जानकारी की जा सकती है। इनकी सहायता से रात्रि में जब आकाश निर्मल हो दिशा, देश और काल का ज्ञान सहज ही हो सकता है।

इस प्रकार नक्षत्रग्रहयुत्यधिकार नामक आठवें अध्याय का विज्ञान भाष्य समाप्त हुआ।

नवम अध्याय

उदयास्ताधिकार

(संक्षिप्त वर्णन)

[१ श्लोक—सूर्य के निकट आ जाने के कारण ग्रहों और नक्षत्रों के अदृश्य होने का विचार। २-३ श्लोक—ग्रहों के उदय और अस्त होने की दिशा। ४-५ श्लोक—ग्रहों का कालांश जानने की रीति। ६-६ श्लोक— ग्रहों के परम कालांश। १०-११ श्लोक—यह जानने की रीति कि किसी इष्टकाल में उदय या अस्त होने को कितने दिन शेष हैं या बीत गये हैं। १२-१५ श्लोक—किस तारे का क्या परम कालांश है। १६-१७ श्लोक—तारे के दृश्य या लोप होने के दिन को जानने की रीति। १८ श्लोक—उन तारों के नाम जो कभी अदृश्य नहीं होते]

इस अध्याय में यह बतलाया गया है कि ग्रहों और तारों का उदय और अस्त कब होता है और कैसे जाना जाता है। यहाँ उदय और अस्त के अर्थ साधारण उदय और अस्त के अर्थों से भिन्न हैं। साधारणतः जब सूर्य, चन्द्रमा इत्यादि पूर्व क्षितिज के ऊपर आ जाते हैं तब इनका उदय समझा जाता है और जब ये पच्छिम क्षितिज के नीचे चले जाते हैं तब इनका अस्त समझा जाता है। यह पृथ्वी की दैनिक गति के कारण होता है जिसे पुराने आचार्य प्रवह-गति कहते थे। इसके सिवा जब ग्रह चन्द्रमा या तारे सूर्य के बहुत पास हो जाते हैं जिससे वे सूर्योदय के लगभग पूर्व क्षितिज के ऊपर आते हैं और सूर्यास्त के लगभग पच्छिम क्षितिज के नीचे चले जाते हैं तब भी वे अस्त कहे जाते हैं। ऐसी दशा में वे सूर्य के तीव्र प्रकाश के कारण देखे नहीं जा सकते। जिस समय वे सूर्य के निकट आने के कारण अदृश्य हो जाते हैं उस समय से वे अस्त समझे जाते हैं और जिस समय वे सूर्य से इतनी दूर हो जाते हैं कि सूर्योदय के कुछ पहले या सूर्यास्त के कुछ पीछे देख पड़ने लगते हैं उस समय उनका उदय समझा जाता है। इस अधिकार में इसी प्रकार के उदय अस्त की बातें बतलायी गयी हैं। पाश्चात्य ज्योतिषी इसको heliacal rising and setting कहते हैं।

अध्याय का प्रयोजन—

अथोदयास्तमययोः परिज्ञानं प्रकीर्त्यते।
दिवाकरकराक्रान्त मूर्तीनामल्पतेजसाम् ॥१॥

अनुवाद—(१) सूर्य के प्रकाश से आक्रान्त होने के कारण अथवा दब जाने के कारण अल्प प्रकाशवाले पिंडों का जो उदय अस्त होता है उसके जानने की रीति बतलायी जाती है।

विज्ञान भाष्य—इसकी व्याख्या ऊपर की जा चुकी है।

उदय और अस्त की दिशा—

> **सूर्यादभ्यधिकाः पश्चादस्तं जीवकुजार्कजाः।**
> **ऊनाः प्रागुदयं यान्ति शुक्रज्ञौ वक्रिणौ तथा ॥२॥**
> **ऊनाः विवस्वतः प्राच्यामस्तं चन्द्रज्ञभार्गवाः।**
> **व्रजन्त्यभ्यधिकाः पश्चादुदयं शीघ्रयायिनः ॥३॥**

अनुवाद—(२) जब गुरु, मंगल और शनि के भोगांश सूर्य के भोगांश से कुछ अधिक होते हैं तब इनका पच्छिम में अस्त होता है और जब इनके भोगांश से कुछ कम होते हैं तब इनका पूर्व में उदय होता है। इसी प्रकार वक्री शुक्र और बुध का भी उदय अस्त होता है, अर्थात् जब वक्री शुक्र और बुध के भोगांश सूर्य के भोगांश से अधिक होते हैं तब इनका पच्छिम में अस्त और कम होते हैं तब पूर्व में उदय होता है। (३) चन्द्रमा, (मार्गी) बुध और शुक्र के भोगांश सूर्य के भोगांश से कम होते हैं तब ये पूर्व में अस्त होते हैं और जब ये तीव्र गति के कारण सूर्य से कुछ आगे बढ़ जाते हैं तब पच्छिम में उदय होते हैं।

विज्ञान भाष्य—इन दो श्लोकों में संक्षेप में यह बतलाया गया है कि सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध इत्यादि के भोगांशों से अथवा स्पष्ट स्थानों से मोटी रीति से कैसे जाना जा सकता है कि कौन ग्रह किस दिशा में उदय या अस्त होगा। इस काम के लिए ग्रहों के दो भाग कर दिये गये हैं। एक भाग में गुरु, मंगल और शनि हैं जिनकी गति सूर्य की गति से मंद है और दूसरे भाग में बुध, शुक्र और चन्द्रमा हैं जिनकी गति सूर्य की गति से तीव्र है। इनमें भी बुध और शुक्र की गतियों में विशेषता होने के कारण कुछ भिन्नता है।

गुरु, मङ्गल और शनि की अपेक्षा सूर्य अधिक चलता है इसलिए सूर्य ही गुरु, मङ्गल और शनि की ओर बढ़ता हुआ देख पड़ता है। जब सूर्य इनके इतना निकट पहुँच जाता है कि ये अदृश्य हो जाते हैं तब सूर्य के भोगांश से इनका भोगांश अधिक रहता है क्योंकि भोगांश की नाप पच्छिम से पूरब की ओर होती है। अदृश्य होने के पहले ये तीनों ग्रह सूर्यास्त के पीछे पच्छिम क्षितिज के पास ही देख पड़ते हैं और वहीं गोधूली प्रकाश की तीव्रता के कारण अदृश्य हो जाते हैं इसलिए कहा जाता है कि ये तीन ग्रह पच्छिम में अस्त होते हैं। कुछ दिन में जब सूर्य इनसे आगे

बढ़ जाता है और इनका भोगांश सूर्य के भोगांश से कम हो जाता है तब ये फिर पूर्व में सूर्योदय के कुछ पहले दिखलाई पड़ने लगते हैं। इसलिए कहा जाता है कि पूर्व में इनका उदय होता है।

जब वक्री बुध और शुक्र के भोगांश सूर्य के भोगांश से अधिक होते हैं तब ये सूर्यास्त के उपरान्त पच्छिम क्षितिज में देख पड़ते हैं और वहीं अदृश्य हो जाते हैं। कुछ दिन में ये ग्रह अपनी वक्र गति के कारण सूर्य की दूसरी ओर बहुत शीघ्र चले जाते हैं और इनके भोगांश सूर्य के भोगांश से कम हो जाते हैं। ऐसी दशा में ये सूर्योदय के पहले पूर्व क्षितिज में फिर दीखने लगते हैं। इसलिए कहा जाता है कि वक्री बुध और शुक्र भी पच्छिम में अस्त और पूर्व में उदय होते हैं।

परन्तु चन्द्रमा तथा मार्गी बुध और शुक्र की गति सूर्य की गति से अधिक होती है इसलिए जब ये सूर्य की ओर बढ़ते हुए उसके पास इतना पहुँच जाते हैं कि अदृश्य हो जाते हैं तब इनके भोगांश सूर्य के भोगांश से कम होते हैं और ये पूर्व क्षितिज में ही सूर्योदय के पहले अदृश्य होते हैं। इसलिए कहा जाता है कि ये पूर्व में अस्त होते हैं। जब ये सूर्य के आगे बढ़ जाते हैं तब इनके भोगांश सूर्य के भोगांश से अधिक हो जाते हैं और सूर्यास्त के उपरान्त पच्छिम क्षितिज में दीखने लगते हैं। इसलिए कहा जाता है कि चन्द्रमा और मार्गी बुध और शुक्र पच्छिम में उदय होते हैं।

कालांश जानने की रीति—

सूर्यास्तकालिकौ पश्चात्प्राच्यामुदयकालिकौ।
दिवाकरग्रहौ कुर्यात् दृक्कर्माथ ग्रहस्य तु ॥४॥
तयोर्लग्नान्तरप्राणाः कालांशाः षष्टिभाजिताः।
प्रतीच्यां षड्भयुतयोस्तद्वल्लग्नान्तरासवः ॥५॥

अनुवाद—(४) यदि पच्छिम में किसी ग्रह के उदय या अस्त होने का समय जानना हो तो अनुमान से जाने हुए दिन के सूर्यास्त काल के सूर्य और ग्रह को स्पष्ट करे और पूरब में किसी ग्रह के उदय या अस्त होने का समय जानना हो तो उस दिन के सूर्योदय-काल के सूर्य और ग्रह को स्पष्ट करे तथा ग्रह का दृक्कर्म संस्कार करे। दृक्कर्म संस्कृत ग्रह और सूर्य के उदय लग्नों के असुओं का अन्तर निकाले और इसको ६० से भाग दे तो ग्रह का पूर्व में उदय या अस्त सम्बन्धी कालांश ज्ञात होता है। यदि ग्रह का पच्छिम में उदय या अस्त सम्बन्धी कालांश जानना हो तो सूर्य और ग्रह के भोगांश में ६ राशि जोड़ने से जो आवे उनके लग्नों के असुओं के अन्तर को ६० से भाग देकर कालांश जानना चाहिए।

विज्ञान भाष्य—सूर्य के उदय होने से जितने समय पहले कोई ग्रह पूर्व क्षितिज में आता है अर्थात् उदय होता है उस समय को उस ग्रह का कालान्तर कहते हैं। लग्न काल की गणना सूक्ष्मता के लिए असुओं में की जाती है और विषुवद्-वृत्त की एक कला का उदय एक असु में होता है। इसलिए ६० काल का उदय ६० असुओं में होता है परन्तु ६० कला एक अंश के समान है। इसलिए सूर्य और ग्रह के उदय-कालों के अन्तर को जो प्राय· असुओं में होता है और जिसे ५ वें श्लोक में लग्नान्तर-प्राण या लग्नान्तरासु कहा गया है ६० से भाग देने पर जो आता है उसको अंशों में समझ लेना चाहिए, इसी को ग्रह का कालांश कहते हैं।

पृष्ठ ५६१ में बतलाया गया है कि यह जानने के लिए कि ग्रह किस समय क्षितिज में लग्न होता है इसके स्पष्ट भोगांश में आक्ष और आयन दृक्कर्म संस्कार करना चाहिए क्योंकि स्पष्टाधिकार के अनुसार ग्रह का जो भोगांश आता है उससे तो केवल यह मालूम होता है कि ग्रह अपनी कक्षा में कहाँ है। परन्तु ग्रह की कक्षा क्रान्ति-वृत से भिन्न होती है इसलिए जिस समय ग्रह का क्रान्तिवृत्त वाला विन्दु क्षितिज पर आता है उस समय ग्रह का बिम्ब क्षितिज पर नहीं वरन् अपने शर के अनुसार कुछ आगे या पीछे उदय होता है (देखो चित्र १०७, १०८) जिसका ज्ञान दृक्कर्म संस्कार से ही होता है। इसीलिए चौथे श्लोक में पहले दृक्कर्म संस्कार आदि करने को कहा गया है। दृक्कर्म संस्कार करने पर जब ग्रह के क्षितिज पर का समय ठीक ठीक ज्ञात हो जाय तभी यह जाना जा सकता है कि सूर्योदय से कितना पहले वह ग्रह पूर्व क्षितिज में लग्न होता है।

परन्तु जब ग्रह का उदय या अस्त पश्चिम में होता है तब सूर्यास्तकालिक सूर्य और ग्रह का समय स्पष्ट किया जाता है क्योंकि तब यह जानने की आवश्यकता पड़ती है कि सूर्यास्त से कितने समय पीछे ग्रह का अस्त होता है। इस काम के लिए भी ग्रह में दृक्कर्म संस्कार की आवश्यकता पड़ती है जैसा कि उदय लग्न के समय की जाती है। अब दृक्कर्म संस्कृत ग्रह अथवा भास्कराचार्यजी के शब्दों में दृग्ग्रह और सूर्य के अस्तलग्नासुओं का अन्तर जानना चाहिए अर्थात् यह देखना चाहिए कि जिस समय सूर्य अस्त होता है उस समय से कितने असु उपरान्त इष्ट ग्रह का बिम्ब पश्चिम क्षितिज पर आता है। इन असुओं को ६० से भाग देने पर अस्त समय के कालांश अथवा अस्तांश का ज्ञान हो जाता है। परन्तु ५वें श्लोक के उत्तरार्ध में बतलाया गया है कि अस्तकालिक सूर्य और दृग्ग्रह के भोगांशों में ६ राशि या १८० अंश जोड़ कर दोनों के लग्नासुओं का अन्तर निकाले। इसका कारण यह है कि जिस समय सूर्य अस्त होता रहता है उस समय पूर्व क्षितिज में क्रान्तिवृत्त का वह विन्दु लग्न

होता है जो सूर्य से १८० अंश आगे रहता है। इसी प्रकार जब दृग्ग्रह अस्त होता रहता है तब भी पूर्व क्षितिज में वह विन्दु लग्न रहता है जो दृग्ग्रह से १८० अंश आगे है। इसलिए यदि यह मालूम हो जाय कि सूर्य और दृग्ग्रह के अस्तकालों में पूर्व क्षितिज के लग्नों के उदयासुओं में क्या अन्तर होता है तो भी अस्तांश या कालांश का ज्ञान हो सकता है।

ग्रहों के परम कालांश—

एकादशामरेड्यस्य तिथिसङ्ख्याऽर्कजस्य तु।
कालांशा भूमिपुत्रस्य दश सप्ताधिकास्तथा ॥६॥
पश्चादस्तमयोऽष्टाभि: उदय: प्राङ्महत्तया।
प्रागस्तमुदय: पश्चादल्पत्वाद्दशभि: भृगो: ॥७॥
एवं बुधो द्वादशभि: चतुर्दशभिरंशकै:।
वक्री शीघ्रगतिश्चार्कात्करोत्यस्तमयोदयौ ॥८॥
एभ्योऽधिकै: कालभागैर्दृश्या न्यूनैरदर्शना:।
भवन्ति लोके खचरा भानुभाग्रस्तमूर्तय: ॥९॥

अनुवाद—(६) गुरु का परमकालांश ११, शनि का १५ और मङ्गल का १७ है। (७) शुक्र का बिम्ब बड़ा देख पड़ने के कारण पच्छिम में अस्त होने का और पूर्व में उदय होने का परमकालांश ८ है परन्तु बिम्ब छोटा देख पड़ने के कारण इसके पूर्व में अस्त होने का और पच्छिम में उदय होने का परमकालांश १० है। (८) इसी प्रकार वक्री और शीघ्र गति वाला बुध जब सूर्य से १२ कालांश पर रहता है तब पच्छिम में उसका अस्त और पूर्व में उदय होता है। परन्तु इसका पूर्व में अस्त होने और पच्छिम में उदय होने का कालांश १४ है। (९) सूर्य के प्रकाश से ग्रस्त होने के कारण अथवा दब जाने के कारण यदि किसी ग्रह का किसी समय का कालांश उसके परमकालांश से अधिक हुआ तो उस समय वह ग्रह देख पड़ता है और कम हुआ तो नहीं देख पड़ता।

विज्ञान भाष्य—इन श्लोकों में ग्रहों के कालांशों की वह सीमा बतलायी गयी है जिससे अधिक होने पर ग्रह देख पड़ते हैं और कम होने पर नहीं देख पड़ते। इसलिए इस सीमा को परमकालांश कहा जा सकता है। प्रत्येक ग्रह का परम-कालांश भिन्न है। इसका कारण यह है कि जिस ग्रह का बिम्ब बड़ा होता है वह सूर्य के पास होने पर भी सुगमतापूर्वक देखा जा सकता है और जिसका बिम्ब छोटा होता है वह कुछ कठिनाई से देखा जा सकता है। दूर के ग्रहों में बृहस्पति का बिम्ब सबसे बड़ा है इसलिए इसका परम कालांश ११

माना गया है अर्थात् यदि सूर्योदय से ११ अंश या ११० पल ४४ मिनट पहले बृहस्पति उदय हो अथवा सूर्यास्त से इतना ही समय पीछे अस्त हो तो यह प्रातः-काल या सायङ्काल के संधि-प्रकाश में भी देखा जा सकता है। इसलिए जब बृहस्पति का कालांश घटते घटते ११ हो जाता है तब यह पच्छिम क्षितिज में अदृश्य हो जाता है। इसके बाद जब इसका कालांश घटते घटते शून्य हो जाता है तब यह सूर्य के साथ उदय या अस्त होता है। इस समय से इसका कालांश बढ़ने लगता है और जब तक ११ अंश नहीं होता तब तक यह अदृश्य रहता है क्योंकि सूर्य के तीव्र प्रकाश में यह देखा नहीं जा सकता। इसी को साधारण बोलचाल में गुरु-आदित्य अथवा 'गुरु-बादिक' भी कहते हैं। यह अवधि साधारणतः १ महीने की होती है। इस अवधि में हिन्दू लोग विवाह, मुंडन इत्यादि कोई शुभ काम नहीं करते।

शनि का बिम्ब गुरु के बिम्ब से छोटा और मङ्गल के बिम्ब से बड़ा होता है इसलिए शनि का परमकालांश १५ और मङ्गल का १७ माना गया है। परन्तु शुभ कामों में इनके उदय अस्त का विचार नहीं किया जाता है।

शुक्र के परमकालांश ८ और १० माने गये हैं। इसका कारण यह है कि जब शुक्र वक्री होकर पच्छिम में अस्त होता है और पूर्व में उदय होता है तब पृथ्वी से इसका अन्तर बहुत कम रहता है क्योंकि यह सूर्य और पृथ्वी के बीच में रहता है (देखो स्पष्टाधिकार पृष्ठ १०१—१०३)। निकट रहने से इसका बिम्ब बहुत बड़ा देख पड़ता है इसलिए यह सन्धि प्रकाश में बहुत देर तक देखा जा सकता है। इसकी सीमा ८ कालांश ३२ मिनट या ८० पल की मानी गयी है अर्थात् जब सूर्यास्त के उपरान्त ३२ मिनट से भी कम समय में शुक्र अस्त होता है तब नहीं देख पड़ता और कहा जाता है कि शुक्र पच्छिम में अस्त हो गया। इसके बाद जब शुक्र सूर्योदय से ३२ मिनट पहले उदय होने लगता है तब यह फिर देख पड़ने लगता है और कहा जाता है कि पूर्व में शुक्र उदय हो गया। यह अवधि एक सप्ताह से अधिक नहीं होती क्योंकि जब शुक्र वक्री रहता है तब शुक्र और सूर्य का अन्तर दोनों की गतियों के योग के समान प्रतिदिन घटता या बढ़ता है इसलिए शुक्र बहुत जल्द सूर्य के पीछे चला जाता है।

परन्तु जब शुक्र पूर्व में अस्त और पच्छिम में उदय होता है तब इसका परम कालांश १० होता है क्योंकि इस समय यह पृथ्वी से बहुत दूर सूर्य की दूसरी ओर रहता है (देखो, चित्र २१, २२)। दूर रहने से शुक्र का बिम्ब छोटा देख पड़ता है इसलिए यह संध्या प्रकाश में उतनी देर तक नहीं देख पड़ता जितनी देर तक वक्री

होने पर देख पड़ता है। जब यह पूर्व में अस्त होता है तब मार्गी रहता है अर्थात् इसकी गति उसी ओर को होती है जिस ओर को सूर्य चलता हुआ देख पड़ता है इसलिए इन दोनों का अन्तर दोनों की गतियों के अन्तर के समान प्रति दिन घटता या बढ़ता है। इसलिए शुक्र के अस्त होने की यह अवधि दो महीने के लगभग की होती है।

जब तक शुक्र अस्त रहता है तब तक भी हिन्दुओं में विवाह, मुण्डन इत्यादि कोई शुभ काम नहीं किये जाते।

शुक्र की तरह बुध भी जब वक्री रहता है तब पृथ्वी के निकट रहने के कारण बड़ा देख पड़ता है और इसका परम कालांश १२ होता है। परन्तु जब यह पृथ्वी से वहुत दूर सूर्य की दूसरी ओर रहता है तब छोटा देख पड़ता है और इसका परम कालांश १४ होता है।

बुध के अस्त होने का विचार विवाह, मुण्डन इत्यादि में नहीं किया जाता।

यहाँ तक तो यह बतलाया गया कि सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार ग्रहों के उदय और अस्त होने की गणना किस प्रकार की जाती है और इनके परम कालांश क्या हैं। अब यहाँ दो प्रश्न उपस्थित होते हैं, एक तो यह कि क्या कालांश जानने की यह रीति शुद्ध है, दूसरे यह कि क्या ये परमकालांश ठीक हैं। इसका उत्तर देना इसलिए सुगम है कि इसकी जांच इन ग्रहों के प्रत्यक्ष दर्शन से की जा सकती है। क्योंकि इनके उदय अस्त की परिभाषा ही ऐसी है कि जब तक ये सूर्य के निकट होने के कारण बिना किसी यन्त्र की सहायता के देखे न जा सकें तभी तक इनको अस्त समझना चाहिये अन्यथा उदय। इस कसौटी पर कसने से तो यही सिद्ध होता है कि सूर्य-सिद्धान्त अथवा अन्य किसी भारतीय[1] ज्योतिष सिद्धान्त के आधार पर निकाले हुए उदय या अस्त कालों में तो कभी-कभी दस-दस पन्द्रह-पन्द्रह दिन का अन्तर पड़ जाता है। यह प्रकट है कि कालांश की शुद्ध-शुद्ध गणना तभी संभव है जब ग्रहों का स्पष्ट भोगांश और शर बिलकुल शुद्ध हों। परन्तु भारतीय सिद्धान्तों के आधार पर जाने गये भोगांश और शर ठीक नहीं होते जैसा कि पिछले अध्यायों के अनेक स्थानों में बतलाया जा चुका है। उदाहरण के लिये (पूर्णिमान्त) चैत्र कृष्ण ११ भौमवार सम्वत् १६८३ वि० तदनुसार २६ मार्च सन् १६२७ की मध्य रात्रि

१. आचार्य केतकर का ज्योतिर्गणित भारतीय ज्योतिष सिद्धान्त के आधार पर नहीं बनाया गया है वरन् पाश्चात्य सिद्धान्तों के आधार पर बनाया गया है जिनमें अर्वाचीन आविष्कारों की भी सहायता ली गयी है।

	मंगल			बुध			गुरु			शुक्र			शनि		
	रा	अं	क	रा	अं	क	रा	अं	क	रा	अं	क	रा	अं	क
विश्व पंचांग[१]	१	२५	३८	१०	२१	०	१०	२९	५०	०	१८	३६	७	९	२६
भारतभूषण पंचांग[२]	१	२५	४०	१०	१९	३०	१०	२४	३६	०	१६	३८	७	१४	११
गणेशदत्त शर्मा का पंचांग[३]	१	२५	४०	१०	१९	३०	१०	२४	३६	०	१६	३८	७	१४	११
नवल किशोर प्रेस का पंचांग[४]	१	२६	५२	१०	२१	४७	१०	२४	४४	०	१५	४८	७	१४	१८
विक्रम विजय पंचांग[५]	१	२५	४०	१०	१७	५८	१०	२२	४२	०	१६	३७	७	१४	२०
ज्योतिर्गणित के अनुसार[६]	१	२६	५३	१०	२२	२०	१०	२३	५४	०	१५	३५	७	१४	४९

(नोट—निर्देशों के लिए पृष्ठ ६६० देखें)

काल के ५ तारा-ग्रहों के निरयन भोग ६ पंचांगों के अनुसार दिये जाते हैं जिनसे यह भी पता लगेगा कि ग्रहों की गणना में हमारे यहाँ भिन्न-भिन्न मतों के अनुसार कितना भेद पड़ता है। (देखें पृष्ठ ६५६)

प्रत्येक ग्रह के भोगांशों की तुलना करने से यह प्रकट हो जाता है कि शुद्ध सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार निकाले हुए भोगांश ज्योतिर्गणित अथवा दृग्गणित से निकाले हुए भोगांशों से बहुत भिन्न है। गुरु और शनि के भोगांश तो पाँच-पाँच छः छः अंश भिन्न हैं इसके प्रतिकूल मकरंद सारणी के अनुसार जाने हुए भोगांश दृग्गणित से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। इसलिए ग्रहों के उदय अस्त का विचार सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार कदापि ठीक नहीं हो सकता। इसके सिवा यह तो दिखलाया ही जा चुका है कि दृक्कर्म संस्कार की रीति भी स्थूल है। इसलिए यह सिद्ध है कि उदय अस्त का विचार करने के लिए हमको दृग्गणित सिद्ध मूलाङ्कों से ही काम लेना चाहिये और इसके लिए या तो ज्योतिर्गणित से काम लिया जाय जो पाश्चात्य ज्योतिष सिद्धान्त के आधार पर बनाया गया है अथवा नया स्वतन्त्र सिद्धान्त तैयार किया जाय, क्योंकि नाविक पंचांगों के आधार पर ग्रहों का उदय अस्त जानकर अपने धार्मिक कृत्यों, मुण्डन, विवाह इत्यादि का निश्चय करना उचित नहीं जान पड़ता।

१—शुद्ध सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार बनाया हुआ काशी के हिन्दू विश्वविद्यालय से प्रकाशित तथा पं० मदनमोहन मालवीय, ज्योतिषाचार्य पं० रामयत्न ओझा, पं० रामव्यास पाण्डेय, पं० पूर्णचन्द्र त्रिपाठी इत्यादि द्वारा सम्पादित।

२—मकरंद सारणी के अनुसार बनाया हुआ काशी के ज्योतिषाचार्य पं० रामनिहोर द्विवेदी तथा श्री रामानन्द मिश्र द्वारा विरचित तथा पं० रामयत्न ओझा द्वारा अनुमोदित ?

३—यह भी मकरंद सारणी के अनुसार बनाया गया और पं० बलदेव मिश्रात्मज पं० गणेशदत्त शर्मा द्वारा सम्पादित।

४—पं० रामप्रसाद सिद्धान्ती के पुत्र श्री पं० श्यामविहारी द्वारा बनाया गया।

५—सूर्य-सिद्धान्त संस्कृतं मकरंदीयम् काश्यक्षवृत्तीर्यं दृग्गणितैक्य विषैरलंकृतम् जब्बलपुरीय पं० श्री लक्ष्मीप्रसाद विद्याभूषण विरचितम्।

६ आचार्य वेंकटेश बाबू केतकर के ज्योतिर्गणित के अनुसार लेखक द्वारा गणना किया हुआ परन्तु अयनांश २२ अंश ४१ कला मानकर, इसलिये दृग्गणित के अनुसार शुद्ध है। केवल अश्विनी का आदि बिन्दु सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार स्थिर किया गया है।

स्थान	पंचांग का विवरण	शुक्रास्तकाल	शुक्रोदयकाल	गुरु का अस्तकाल	गुरु का उदयकाल
काशी	बालकृष्ण शास्त्री का	ज्येष्ठ शुक्ल १०, ८५ २६ मई १६२८ ई०	अधिक श्रावण शु० १३, ८५; ३० जुलाई २८	चैत्र शुक्ल ३, ८५ विक्रमी	वैशाख शुक्ल ८, ८५ वि० २७
,,	विश्वपंचांग काशी विश्व विद्यालय का	ज्येष्ठ शुक्ल १०, २६ मई	अ० श्रा० शु० १३; ३० जुलाई	२४ मार्च १६२८ ई० चैत्र शुक्ल २, २३ मार्च	अप्रैल १६२८ ई० वैशाख शु० ८, २७ अप्रैल
लखनऊ	रामप्रसाद सिद्धान्ती का नवल किशोर प्रेस का	ज्येष्ठ शुक्ल २, २१ मई	अ० श्रा० कृ० ३, ४ अगस्त	चैत्र शुक्ल ४, २५ मार्च	वैशाख शु० ७, २६ अप्रैल
औंध	शास्त्रशुद्ध ऐक्य वर्द्धक पंचांग	* आ० कृ० ३, ६ जून	अ० श्रा० शु० ११, २८ जुलाई	चैत्र शुक्ल ३, २४ मार्च	वैशाख शु० १, २१ अप्रैल
बागलकोट	केतकी पंचांग	,, ,,	,, ,,	? ?	वैशाख शु० १, २१ अप्रैल
पूना	चित्रशाला पंचांग	आ० कृ० ३, ६ जून	अ० श्रा० शु० ११, २८ जुलाई	चैत्र शुक्ल ३, २४ मार्च	वैशाख शु० १, २१ अप्रैल

*यहाँ कृष्ण पक्ष पूर्णिमान्त गणना के अनुसार लिखा गया है, अमान्त गणना से यह ज्येष्ठ कृष्ण है जो महाराष्ट्र प्रान्त में प्रचलित है।

स्थान	पंचांग का विवरण	शुक्रास्तकाल	शुक्रोदयकाल	गुरु का अस्तकाल	गुरु का उदयकाल
पूना	पंचांग प्रवर्तक कमेटी का	ज्ये० शु० १३, १ जून	श्रा० शु० १५, १ अगस्त	चैत्र शुक्ल ३, २४ मार्च	वैशाख शु० ३, २२ अप्रैल
,,	शंकर शास्त्री का	ज्ये० शु० १४, २ जून	अ० श्रा० शु० ६, २६ जुलाई	,, २, २३ मार्च	वैशाख शु० ४, २३ अप्रैल
मुंबई	बालकृष्ण तुकाराम का	,, १५, ३ जून	अ० श्रा० शु० ११, २८ जुलाई	,, १, २२ ,,	वैशाख शु० २, २२ अप्रैल
,,	गुजराती पत्राच्या न्यूस प्रेस में चैत्री पंचांग	,, ३, २२ मई	अ० श्रा० कृ० ३, ४ अगस्त	,, ४, २५ ,,	वैशाख शु० ६, २५ अप्रैल

यहाँ तक तो यह बतलाया गया कि ग्रहों का उदय अस्त जानने के लिए कालांश जानने की प्राचीन रीति में ही स्थूलता है। अब यह बतला देना भी आवश्यक है कि ग्रहों के परम कालांश के परिमाण में भी आजकल कितना मतभेद है। उदाहरण के लिये हम इसी वर्ष के गुरु और शुक्र के उदय अस्त के कालों को लेकर पिछले पृष्ठ पर दिखला चुके हैं कि किसने कितना परम कालांश माना है।

इस कोष्ठक से यह स्पष्ट है कि काशी के दोनों पंचांगों के अनुसार शुक्रास्त और शुक्रोदय के दिन एक हैं परन्तु गुरु के अस्तकाल के दिन में एक दिन का अन्तर है। इसी प्रकार औंध के शास्त्रशुद्ध ऐक्यवर्द्धक पंचांग, बागलकोट के केतकी पंचांग और पूना के चित्रशाला पंचांग में शुक्र तथा गुरु के उदय और अस्त के दिन एक हैं। इससे जान पड़ता है कि काशी के पंचांगवालों ने इन ग्रहों के परम कालांश एकमत से कुछ माना है और महाराष्ट्र के तीन पंचागवालों ने एकमत होकर कुछ माना है। काशी के विश्वपंचांग से यह सिद्ध होता है कि इसमें ग्रहों का उदय अस्त १६२८ ई० के नाविक पंचांग के आधार पर स्थिर किया गया है। केतकी पंचांग ज्योतिर्गणित के अनुसार बनाया गया है जो अर्वाचीन ज्योतिष सिद्धान्त से मिलता-जुलता है इसलिए यह सहज ही जाना जा सकता है कि आचार्य केतकर तथा इनके अनुयायियों ने गुरु और शुक्र के परमकालांश क्या माना है।

अब हम १६२८ ई० के नाविक पंचांग से शुक्र के उदय और अस्त काल के दिन के सूर्य और शुक्र के विषुवांश और क्रान्ति से परमकालांश जानने की रीति लिखते हैं:—

तारीख	सूर्य का विषुवांश	सूर्य की क्रान्ति	शुक्र का विषुवांश	शुक्र की क्रान्ति
	घंटा मिनट सेकंड	अंश कला विकला	घंटा मिनट सेकंड	अंश कला विकला
२६ मई	४ २४ १६.५६	२१ ३७ ३७.६	३ ४७ २.६७	१६ १२ १६.४
३० जुलाई	८ ३७ ४६.८६	१८ ३१ ८.८	६ ११ ३७.२६	१७ ३७ ६.१
६ जून	४ ५७ ३.३२	२२ ३६ ३८.२	४ २७ ५४.५६	२१ २० १८.७
२८ जुलाई	८ २६ ५७.३८	१८ ५६ ३२.७	६ १ ३६.६	१८ १८ ६.५

२६ मई को सूर्य की क्रान्ति २१ अंश ३७ कला ३७.६ विकला अथवा २१°३८′ है और शुक्र की क्रान्ति १६ अंश १२ कला १६.४ विकला अथवा १६°१२′ है। यह जानने के लिए कि सूर्य और शुक्र किस समय क्षितिज पर आवेंगे पहले इनके चरकाल जानना आवश्यक है (देखो चित्र ६० पृष्ठ ३०८)। काशी का अक्षांश २५°२०′ है।

उदयकालिक सूर्य की चरज्या = स्परे २१°३८′ × स्परे २५°२०′
= ·३६६६ × ·४७३७
= ·१८७६
∴ चरांश = १०°५०′
∵ चरकाल = ४३ मिनट २० सेकंड

सूर्य की क्रान्ति उत्तर है इसलिए सूर्य के विषुवांश से यह चरकाल घटाने पर यह ज्ञात होगा कि सूर्योदय के समय विषुवद्वृत्त का कौन सा विन्दु पूर्व में लग्न है (देखो चित्र ६०)।

	घं०	मि०	से०
सूर्य का विषुवांश	४	२४	१७
चरकाल		४३	२०
अन्तर	३	४०	५७

इसलिए सूर्योदय काल में विषुवद्वृत्त का वह विन्दु पूर्व में लग्न है जो वसंत सम्पात से ३ घन्टा ४० मि० ५७ सेकंड या ३ घन्टा ४१ मिनट आगे है।

उदयकालिक शुक्र की चरज्या = स्परे १६°१२′ × स्परे २५°२०′
= ·३४८२ × .४७३७
= ·१६४६
∴ चरांश = ६·३०′
∴ चरकाल = ३८ मिनट

	घं०	मि०
शुक्र का विषुवांश	३	४७
चरकाल		३८
अंतर	३	६

इसलिए शुक्र जिस समय पूर्व क्षितिज पर आवेगा उस समय विषुवद्वृत्त का वह विन्दु पूर्व में लग्न होगा जो वसंत सम्पात से ३ घन्टा ६ मिनट आगे है।

ऊपर बतलाया गया है कि सूर्य के लग्न काल में विषुवद्वृत्त का ३ घन्टा ४१ मिनट लग्न था इसलिए सूर्य और शुक्र के लग्नकालों में ३ घन्टा ४१ मिनट—३ घन्टा ९ मिनट=३२ मिनट का अन्तर होगा। इसलिए विश्वपंचांग के अनुसार पूर्व अस्त होने के समय शुक्र का परमकाल ३२ मिनट और परमकालांश ८ है। यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि नाविक पंचांग के जो विषुवांश ऊपर के कोष्टक में दिये गये हैं वे ग्रीनविच के २९ मई के मध्यम मध्याह्न काल के हैं जो काशी के साढ़े पाँच बजे संध्या के लगभग के हैं। यथार्थ में इस दिन के काशी के सूर्योदय काल के विषुवांशों और क्रान्तियों से काम लेना चाहिए परन्तु शुक्र और सूर्य की गतियों में बहुत थोड़ा अन्तर है इसलिए इन दोनों का सापेक्ष अन्तर प्रातःकाल भी प्रायः उतना ही समझ लेने में कोई हर्ज नहीं है जितना सायंकाल के लिए समझा गया है।

दूसरी बात और भी विचार करने की है। त्रिप्रश्नाधिकार में बतलाया गया है कि वातावरण के कारण प्रकाश में वर्तन हो जाता है जिससे सूर्य यथार्थ उदयकाल से दो-ढाई मिनट पहले ही देख पड़ने लगता है (देखो पृष्ठ ३७८)। इसलिए ऊपर की गणना से शुक्र का जो परमकाल ३२ मिनट होता है वह यथार्थ में ३० ही मिनट या उससे भी आधा मिनट कम ठहरता है।

अब देखना चाहिए कि ६ जून को शुक्र का कालांश क्या है। इसके लिए प्रातःकाल के विषुवांश और क्रान्ति से काम लिया जायगा क्योंकि इससे अधिक शुद्धता होगी। यहाँ सेकंड और विकलाओं की गणना नहीं की जायगी।

	सूर्य				शुक्र			
पूना की	विषुवांश		क्रान्ति		विषुवांश		क्रान्ति	
	घंटा	मिनट	अंश	कला	घंटा	मिनट	अंश	कला
५ जून की संध्या में	४	५३	२२	३३	४	२३	२१	६
६ जून की संध्या में	४	५७	२२	४०	४	२८	२१	२०
६ जून के सूर्योदय काल में	४	५५	२२	३६	४	२५·५	२१	१३

पूना का अक्षांश १८°३०′।

∴ पूना में सूर्य की चरज्या=स्परे १८°३०′×स्परे २२°३६

=·३३४६×·४१६३

=·१३९३

∴ चरांश = ८°

∴ चरकाल = ३२ मिनट

इसलिये सूर्योदय काल में विषुवद्वृत्तीय लग्न = ४ घन्टा ५५ मिनट—३२ मिनट = ४ घन्टा २३ मिनट

शुक्र की चरज्या = स्परे १८°३०′ × स्परे २१°१३′

= ·३३४६ × ·३८८२

= ·१२९९

∴ चरांश = ७°२८′

∴ चरकाल = ३० मिनट के लगभग

इसलिए जिस समय शुक्र क्षितिजस्थ होगा उस समय विषुवद्वृत्तीय लग्न होगा।

४ घन्टा २५½ मिनट—३० मिनट = ३ घन्टा ५५½ मिनट

परन्तु सूर्योदय काल में विषुवद्वृत्तीय लग्न = ४ घन्टा २३ मिनट

इसलिए चित्रशाला पंचांग या केतकी पंचांग के अनुसार शुक्र का परम काल हुआ।

४ घन्टा २३ मिनट—३ घन्टा ५५½ मिनट = २७½ मिनट

यदि इससे २½ मिनट घंटा दिया जाय, क्योंकि वर्तन के कारण सूर्योदय गणनाकाल से २ या ढाई मिनट पहले ही होता है, तो शुक्र का परमकाल २५ मिनट ही होता है जो सवा ६ अंश के समान हुआ।

इस प्रकार यह सिद्ध है कि दृश्य गणना से भी शुक्रोदय काल और शुक्रास्त काल में बड़ी भिन्नता पड़ जाती है क्योंकि कोई परमकालांश कुछ मानता है और कोई कुछ। इसलिए इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि भारतवर्ष भर के ज्योतिषी मिलकर इस बात का निश्चय अवश्य करें कि किस ग्रह का परम कालांश क्या माना जाय, नहीं तो पंचांगों की यह धाँधली कभी बंद नहीं हो सकती।

अब अधिक उदाहरण देकर विस्तार करने की आवश्यकता नहीं है। शुक्र के परमकालांश के सम्बन्ध में आचार्य बेंकटेश बापू केतकर ने अपने ज्योतिर्गणित के पृष्ठ ३३३ में जो लिखा है वह ज्यों का त्यों यहाँ दे दिया जाता है :–

वातावरणे निर्मले सति हेमन्ततौं षण्मिते कालांशान्तरे शुक्रो दृश्यते। प्रयत्ने कृते सार्धपञ्चमिते कालांशान्तरेऽपि द्रष्टुं शक्यते। परमस्मिन्प्रसङ्गे तत्तेजोहानिरियती जायते यत्केवलास्तीक्ष्णेक्षणा ज्योतिर्विद एव तं द्रक्ष्यन्ति।

बाल्य और वृद्धकाल

यह स्पष्ट है कि वातावरण सदैव निर्मल नहीं रहता। गरमी के दिनों में तो धूल इतनी रहती है कि क्षितिज के ऊपर सूर्य भी कुछ दूर तक नहीं देख पड़ता इसलिए ऐसी दशा में शुक्र या गुरु को देखना बड़ा कठिन होता है। दूसरी बात यह है कि देखने वाले की दृष्टि की मंदी और तीव्रता से भी ग्रहों के देखने में दो तीन दिन का अंतर हो सकता है। इन सब कारणों से ग्रहों के उदय या अस्त होने के दिन से दो तीन या चार दिन आगे पीछे तक वे अदृश्य हो सकते हैं। जान पड़ता है इसी कारण पुराने आचार्यों ने गुरु और शुक्र के बाल्य-वृद्धकाल का विचार किया है परन्तु इसमें भी एकमत नहीं है जैसा कि मुहूर्त चिंतामणि में लिखा है :—

> पुरःपश्चाद्भृगोर्बाल्यं त्रिदशाहं च वार्धकम्
> पक्षं पंच दिनं ते द्वेगुरोः पक्षमुदाहृते ॥२७॥
> ते दशाहं द्वयोःप्रोक्तं कैश्चित्सप्तदिनं परैः।
> त्र्यहं त्वात्ययिकेऽप्यन्यैरर्धाहं च त्र्यहं विधोः ॥२८॥[1]

गुरु और शुक्र के बाल्यकाल और वृद्धकाल में भी बहुत से शुभकर्मों का वैसे ही निषेध है जैसे इनके अस्तकाल में।[2]

उदय वा अस्त का विचार कालांश से होना चाहिए या उन्नतांश से ?

इस सम्बन्ध में एक बात और भी विचार करने के योग्य है। ग्रहों के उदय-अस्त के विषय में अब तक जो कुछ कहा गया है उससे स्पष्ट हो गया है कि जब ग्रह सूर्य के इतना पास आ जाते हैं कि प्रातः या सायंकाल के संधिप्रकाश (twilight) के कारण देख नहीं पड़ते तभी कहा जाता है कि वे अस्त हो गये। परन्तु सन्धिप्रकाश की तीव्रता और सीमा सब ऋतुओं और स्थान में एकसी नहीं रहती। इस बात का कोई भी अनुभव कर सकता है कि हमारे यहाँ जाड़े के दिनों में संधिप्रकाश की सीमा बढ़ जाती है और गरमी के दिनों में घट जाती है। इसका कारण यह है कि संधिप्रकाश का सम्बन्ध क्षितिज के नीचे गये हुए सूर्य के नतांश से होता है जो सूर्य की क्रान्ति और इष्टस्थान के अक्षांश पर आश्रित है (देखो पृष्ठ २६१ सूत्र १)। अनुभव से सिद्ध हुआ है कि जब तक सूर्य क्षितिज के नीचे १८° से अधिक नहीं होता तब तक इसके प्रकाश का कुछ न कुछ अंश वातावरण के द्वारा लौटकर भूतल पर आता रहता है। सूर्य के अस्तकाल से लेकर उस समय तक जब तक वह क्षितिज के नीचे १८ अंश से अधिक नहीं जाता जो मन्द प्रकाश मिलता है उसी को सन्धि प्रकाश कहते हैं।

---

१. संस्कार प्रकरण

२. देखो मुहूर्त चिंतामणि शुभाशुभ प्रकरण श्लोक ४६,४७

इसी प्रकार सूर्य के उदयकाल से जब पहले वह क्षितिज से १८ अंश नीचे हो जाता है तबसे प्रातःकालिक संधि-प्रकाश का आरंभ होता है। यह प्रकट है कि जब सूर्य १८ अंश क्षितिज से नीचे रहता है तब यह खस्वस्तिक से ९०+१८=१०८ अंश नीचे होता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि जिस समय सूर्य का पूर्व-नतांश १०८ अंश होता है उस समय से संधिप्रकाश का आरंभ होता है और जिस समय उसका पूर्वनतांश ९० अंश होता है उस समय तक प्रातःकालिक संधिप्रकाश रहता है। इसी प्रकार जब तक सूर्य का पच्छिम-नतांश ९० से १०८ रहता है तब तक सायं-कालिक संधिप्रकाश रहता है।

पृष्ठ २९१ के सूत्र (१) में बतलाया गया है कि नतांश और नतकाल का क्या सम्बन्ध है और यह अक्षांश और क्रान्ति पर किस प्रकार आश्रित है। इस सूत्र में नतांश की जगह १०८, तथा इष्टस्थान के अक्षांश और इष्टदिन की सूर्य की क्रान्ति के मान उत्थापित किये जाँय तो जो नतकाल आवेगा उससे सूर्य का उदय-कालिक या अस्तकालिक नतकाल घटा दिया जाय तो उस दिन के संधिप्रकाश का परिमाण मालूम हो जायगा। उदय या अस्तकाल का नतकाल जानने के लिए नतांश का परिमाण ९० अंश ३५ कला लेना पड़ेगा क्योंकि उदय या अस्त होते हुए सूर्य या किसी ग्रह का प्रत्यक्ष नतांश ९० होता है परन्तु वातावरण के वर्तन के कारण यथार्थ नतांश ३५ कला और बढ़ जाता है (देखो पृष्ठ ३७८-३८०) इसलिये सूर्य का उदय या अस्तकालिक नतांश यथार्थ में ९०°३५′ होता है।

इस प्रकार यह सिद्ध है कि संधिप्रकाश सब ऋतुओं में और सब स्थानों में एकसा नहीं होता इसलिए ग्रहों के दर्शन और लोप का दिन जानने के लिए सब स्थानों और सब ऋतुओं के लिए एक ही ग्रह का परम कलांश भिन्न-भिन्न मानाना पड़ेगा जहाँ संधिप्रकाश देर तक रहेगा वहाँ उसी परम कलांश से काम न चलेगा जो थोड़े संधिप्रकाश के लिए काम दे सकता है। इन सब बातों का विचार करने से यही युक्तियुक्त जान पड़ता है कि ग्रहों के लोप और दर्शन का विचार उनके उन्नतांश से किया जाय न कि कालांश से जैसा कि आचार्य केतकर जी पृष्ठ ३३३ में लिखते हैं :—

सर्वे ग्रहाः शीघ्रकेन्द्रगत्या सूर्यमुपेत्य कानिचिद्दिनान्यदृश्या भवन्ति। इयं चमत्कृती रविग्रहयोरुदयास्तमययोः कालयोरन्तरमाश्रयत इति पूर्वा चार्याणां मतं न समञ्जसम्। यतः संध्यारुणदीप्तिः सूर्यस्य क्षितिजादपस्तनान्नतांशाननुसरति न च कालांशान्। यत्र देशे ३५° अक्षांशास्तत्र विषुवदिवसे संधिप्रकाशः सूर्यस्योदयास्त-कालात्प्राक् पश्चात् ३ घ० ४० पल वर्तते। परमयन्प्रवृत्तिदिवसे स एव ४ घड़ी

४० पल भवति। एतयोः कालांशाः क्रमेण २२°, २८° भवन्ति। अतएव सिद्धं यदेकैरेव कालांशैर्येद्दर्शनादर्शन गणितं पूर्वाचार्यैरुक्तं तदुपपत्ति विरुद्धं स्थूलं चेति। अतो ग्रहाणां लोपदर्शन गणितं तेषामुन्नतांशश्रयेणैव कार्यम्।

आचार्य केतकर के मत से शुक्र का उदयास्तकालिक उन्नतांश ६°.४ और गुरु का ११° है। (देखो ज्योतिर्गणित पृ० ३५१)

उदाहरण—काशी में सायन मकर संक्रान्ति, सायन मेष संक्राति और सायन कर्क संक्रान्ति के दिन संधि प्रकाश की अवधि क्या होती है?

काशी का अक्षांश २५°१८′

सायन मकर संक्रान्ति तथा सायन कर्क संक्रान्ति के दिन सूर्य की क्रान्ति २३°२७′ (देखो पृष्ठ ३०६) और सायन मेष या तुला संक्रान्ति के दिन सूर्य की क्रान्ति शून्य होती है।

सायन कर्क संक्रान्ति के दिन का सन्धि-प्रकाश जब सूर्य की क्रान्ति उत्तर होती है—

बतलाया गया है कि संधि प्रकाश के आरंभ या अन्त में सूर्य का नतांश १०८ होता है इसलिए २६१ पृष्ठ के सूत्र (१) के अनुसार

$$\text{कोज्या नतकाल} = \frac{\text{कोज्या } १०८° - \text{ज्या } २५°१८' \times \text{ज्या } २३°२७'}{\text{कोज्या } २५°१८' \times \text{कोज्या } २३°२७'}$$

$$= \frac{-\text{ज्या } १८° - \text{ज्या } २५°१८' \times \text{ज्या } २३°२७'}{\text{कोज्या } २५°१८' \times \text{कोज्या } २३°२७'}$$

$$= \frac{-\cdot३०९० - \cdot४२७४ \times \cdot३९७९}{\cdot९०४१ \times \cdot९१७५}$$

$$= \frac{-\cdot३०९० - \cdot१७०१}{\cdot८२९५}$$

$$= \frac{-\cdot४७९१}{\cdot८२९५}$$

$$= -\cdot५७७६$$

यहाँ कोज्या नतकाल ऋणात्मक है इसलिए नतकालांश ९० अंश से अधिक है। यदि यह ९० अंश से अ अंश अधिक हो तो

कोज्या नतकाल = कोज्या (९० + अ = − ज्या अ = − ·५७७६

∴ अ = ३५°१७′

∴ संधि प्रकाश के आरंभ काल का नतकाल

$$= ९०° + ३५°१७' = १२५°१७'$$

पृष्ठ ३७६ के अनुसार काशी में सूर्योदयकालिक नतकाल

$$=१०१^\circ५०'+४३'=१०२^\circ३३'$$

इसलिए संधिप्रकाश काल$=१२५^\circ१७'-१०२^\circ३३'$

$$=२२^\circ४४'=$$ १ घंटा ३० मि० ५६ सेकंड

सायन मकर संक्रान्ति के दिन का संधिप्रकाश काल—

इस समय सूर्य की क्रान्ति दक्षिण होती है इसलिए उपर्युक्त सूत्र में ऋण चिह्न धन हो जायगा (देखो पृष्ठ २६३) और संधिप्रकाश के आरम्भ का नतकाल नीचे लिखे समीकरण से सिद्ध होगा—

$$\text{कोज्या नतकाल}=\frac{-\text{ज्या }१८^\circ+\text{ज्या }२५^\circ१८'\times\text{ज्या }२३^\circ२७'}{\text{कोज्या }२५^\circ\ १८'\times\text{कोज्या }२३^\circ\ २७'}$$

$$=\frac{-\cdot३०९०+\cdot१७०१}{\cdot८२९५}$$

$$=\frac{-.१३८९}{\cdot८२९५}$$

$$=-\cdot१६७५$$

$$\therefore \text{कोज्या नतकाल}=\text{कोज्या }(९०+\text{अ})=-\text{ज्या अ}$$

$$=-\cdot१६७५$$

$$\therefore \text{अ}=९^\circ३८'$$

$\because$ संधिप्रकाश के आरम्भ काल का नतकाल

$$=९०^\circ+९^\circ३८'=९९^\circ३८'$$

पृष्ठ ३७६ के अनुसार सूर्योदयकालिक नतकाल

$$=७८^\circ१०'+४३'=७८^\circ५३'$$

$\because$ संधि प्रकाशकाल$=९९^\circ३८'-७८^\circ५३'=२०^\circ४५'$

$$=$$ १ घंटा २३ मिनट

सायन मेष या तुलासंक्रान्ति के दिन सन्धि प्रकाशकाल—

इस दिन सूर्य की क्रान्ति शून्य होती है इसलिए ज्या क्रांति भी शून्य के समान होगी परन्तु कोज्या १ होगी इसलिए संधिप्रकाश के आरम्भ काल का नतकाल इस सूत्र से जाना जायगा।

$$\text{कोज्या नतकाल}=\frac{\text{कोज्या }१०८^\circ}{\text{कोज्या }२५^\circ१८'}$$

$$=\frac{-\text{ज्या }१८^\circ}{\cdot९०४१}$$

$$= \frac{-\cdot ३०६}{\cdot ९०४०}$$

$$= -\cdot ३४१८$$

∴ कोज्या नतकाल = कोज्या (९० + अ) = − ज्या अ

= − ·३४१८

∴ अ = १९°५९′

∴ संधिप्रकाश के आरम्भ का नतकाल = ९० + १९°५९′

= १०९°५९′

पृष्ठ ३८० के अनुसार सूर्योदय का नतकाल ९०°३८′·७ या ९०°३९′ है। इसलिए

संधिप्रकाशकाल = १०९°५९′ − ९०°३९′ = १९°२०′

= १ घंटा १७ मिनट २० सेकंड

इस प्रकार यह सिद्ध है कि किसी स्थान पर संधिप्रकाश काल सब ऋतुओं में एकसा नहीं होता। ऊपर जो गणना की गयी है उसमें सूर्य उस समय क्षितिज पर समझा गया है जिस समय सूर्य का केन्द्र क्षितिज पर आता है परन्तु सूर्य का ऊपरी बिम्ब १ मिनट के लगभग पहले ही क्षितिज को छू लेता है क्योंकि सूर्य का बिम्बार्ध १६ कला के लगभग होता है। इस कारण संधि प्रकाश काल १ मिनट और कम हो जाता है।

उदयास्तकाल के कितने दिन बीते हैं या शेष हैं—

तत्कालांशान्तरकला भुक्त्यन्तर विभाजिताः ।
दिनादितत्फलं लब्धैर्भुक्तियोगेन वक्रिणः ॥१०॥
यल्लग्नासुहते भुक्ती अष्टादश शतोद्धृते ।
स्यातां कालगतीताभ्यां दिनादि गत गम्ययोः ॥११॥

अनुवाद—(१०) ग्रह के इष्टकालिक कालांश और परमकालांश के अंतर को कलाओं में लिखकर सूर्य और ग्रह की दैनिक कालगतियों के अन्तर से (यदि ग्रह मार्गी हो) और योग से (यदि ग्रह वक्री हो) भाग देने से जो आता है वह दिनों की संख्या है। (११) सूर्य या ग्रह जिस राशि में हो उसके लग्नासुओं को स्पष्ट दैनिक गति से गुणा करके गुणनफल को १८०० से भाग देने पर जो प्राप्त होता है वही ग्रह की कालगति होती है। सूर्य और ग्रह की कालगतियों (के अन्तर या योग) से ही उदय या अस्तकाल के गत या गम्य दिन जाने जाते हैं।

विज्ञान भाष्य—यदि किसी दिन यह जानना हो कि किसी ग्रह के उदय

या अस्त होने को कितने दिन हैं या उदय अथवा अस्त होने के उपरान्त कितने दिन बीत गये हैं तो उस दिन का ग्रह का कालांश ४-५ श्लोकों के अनुसार जान लेना चाहिए जिससे यह मालूम हो जाता है कि ग्रह सूर्योदय से कितने पहले उदय होता है या सूर्यास्त से कितना पीछे अस्त होता है।

यदि यह कालांश परमकालांश से अधिक तथा सूर्य का भोगांश ग्रह के भोगांश से अधिक हुआ—और यह ग्रह मार्गी बुध या शुक्र है तो समझ लेना चाहिये कि अभी इसके अस्त होने में कुछ दिन शेष है परन्तु यदि यह ग्रह मङ्गल, गुरु या शनि अथवा वक्री बुध या शुक्र है तो समझना चाहिए कि इसके उदय हुए कुछ दिन बीत गये हैं। परन्तु यदि कालांश अधिक तथा सूर्य का भोगांश ग्रह के भोगांश से कम हुआ और ग्रह मङ्गल, गुरु या शनि अथवा वक्री बुध या शुक्र है तो समझना चाहिए कि अभी इनके अस्त होने में कुछ दिन शेष हैं। इसके विपरीत यदि कालांश परमकालांश से कम तथा सूर्य का भोगांश ग्रह के भोगांश से अधिक हुआ—तो समझना चाहिए कि मार्गी बुध या शुक्र के अस्त हुए कुछ दिन बीत गये और मङ्गल, गुरु या शनि तथा वक्री बुध या शुक्र के उदय होने में कुछ दिन शेष हैं। परन्तु यदि सूर्य का भोगांश भी ग्रह के भोगांश से कम हुआ तो समझना चाहिए कि मार्गी बुध और शुक्र के उदय होने में कुछ दिन शेष हैं तथा मङ्गल, गुरु, शनि और वक्री बुध या शुक्र के अस्त हुए कुछ दिन बीत गये हैं। सब दशाओं में इन दिनों की संख्या जानने के लिए कालांश और परमकालांश का अन्तर निकालना चाहिए और देखना चाहिए कि यह अन्तर कितने दिन में घट कर शून्य हो जायगा वा शून्य बढ़ते बढ़ते इतना हुआ है। ऐसा करने के लिए इस अन्तर को सूर्य और इष्ट ग्रह की दैनिक गतियों के अन्तर से भाग देना चाहिए यदि ग्रह मार्गी हो परन्तु यदि वक्री हो तो इनकी दैनिक गतियों को जोड़ लेना चाहिए जैसा कि ग्रहयुत्यधिकार में बतलाया गया है। परन्तु सूर्य या ग्रह की दैनिक गति साधारणतः क्रान्तिवृत्तीय होती है और कालांश विषुवद्वृत्तीय होता है इसीलिए क्रान्तिवृत्तीय दैनिक गतियों को विषुवद्वृत्तीय में बदलने के लिए ११ वें श्लोक में बतलाया गया है कि सूर्य या ग्रह जिस राशि में हो उसके लग्नासुओं को सूर्य या ग्रह की दैनिक गति से गुणा करके १८०० से भाग देना चाहिए क्योंकि राशि के उदय होने का समय उसके लग्नासुओं के समान होता है इसलिए ग्रह की जितनी दैनिक गति होती है उसके उदय होने का समय भी उसी अनुपात से समझना चाहिए। दैनिक गति छोटी होने के कारण साधारणतः कलाओं में लिखी जाती है इसीलिए एक राशि को भी १८०० कलाओं में लिखा जाता है इससे ग्रह की जो दैनिक गति आती है वह विषुवद्वृत्तीय हो जाती है इसीलिए

इसको कालगति कहा गया है क्योंकि इससे काल का पता सहज ही लग जाता है। बीजगणित की भाषा में १०-११ श्लोकों के नियम को इस प्रकार लिखा जा सकता है :—

इष्ट दिन का ग्रह का कालांश ~ ग्रह का परमकालांश

$$= \text{कालांशान्तर} \qquad (१)$$

किसी ग्रह की दैनिक कालगति

$$= \frac{\text{ग्रह की दैनिक गति} \times \text{ग्रह की राशि के लग्नासु}}{१८००} \qquad (२)$$

गत या गम्य दिनों की संख्या

$$= \frac{\text{कालांशान्तर}}{\text{सूर्य की कालगति} + \text{ग्रह की कालगति}} \qquad (३)$$

यदि ग्रह वक्री हो तो अन्तिम समीकरण में धन का चिह्न रखना चाहिए, नहीं तो दोनों अन्तर का निकालना चाहिए। यहाँ ऋण के चिह्न की जगह अंतर का चिह्न अधिक युक्तियुक्त है क्योंकि किसी ग्रह की कालगति सूर्य की कालगति से अधिक होती है और किसी की कम।

ग्रह की कालगति जानने का जो नियम दिया गया है वह कुछ स्थूल है। इसका कारण यह है कि ग्रह की गति क्रान्तिवृत्त पर नहीं होती वरन् अपने कक्षावृत्त पर होती है जो क्रान्तिवृत्त से कुछ भिन्न है परन्तु इससे विशेष हानि नहीं है। यदि ग्रह का विषुवांश और क्रान्ति मालूम कर ली जाँय तो विषुवांश में प्रतिदिन का जो अन्तर होता है वही कालगति होती है। विषुवांश जान लेने पर ग्रह का कालांश भी सुविधा और शुद्धतापूर्वक जाना जा सकता है क्योंकि फिर दृक्कर्म की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। इसलिए मेरी सम्मति में ग्रहों या तारों का उदय अस्त और युति की गणना करने के लिए ग्रहों या तारों के भोगांश की जगह विषुवांश के ज्ञान की अधिक आवश्यकता है जिसकी शुद्ध शुद्ध जानकारी अर्वाचीन ज्योतिष सिद्धान्त और यन्त्रों की सहायता से ही हो सकती है। इस बात के लिए आवश्यकता है एक वेधशाला की, जहाँ हमारे ज्योतिषी ग्रहों और तारों का वेध करके इनके स्थानों और मूलांकों का ठीक-ठीक पता लगा सकें।

तारों के परम कालांश

स्वात्यगस्त्यमृगव्याध चित्रा ज्येष्ठाः पुनर्वसुः।
अभिजिद् ब्रह्महृदयं त्रयोदशभिरंशकैः ॥१२॥

~ यह अन्तर का चिन्ह है और सूचित करता है कि इसके दहिने बायें की संख्याओं में जो बड़ी हो उससे छोटी को घटाना चाहिये।

हस्तश्रवण फाल्गुन्यौ धनिष्ठा रोहिणी मघाः ।
चतुर्दशांशकैर्दृश्या विशाखाऽश्विनिदैवतम् ॥१३॥
कृत्तिकामैत्रमूलानि सार्परौद्रर्क्षमेव च ।
दृश्यन्ते पञ्चदशभिराषाढाद्वितयं तथा ॥१४॥
भरणीतिष्यसौम्यानि सौक्ष्म्यात्त्रिस्सप्तकांशकैः ।
शेषाणि सप्तदशभिस्तथा दृश्यानि भानि तु ॥१५॥

अनुवाद—(१२) स्वाती, अगस्त्य, मृगव्याध या लुब्धक, चित्रा, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, अभिजित्, ब्रह्महृदय तारों के परम कालांश १३ हैं । (१३) हस्त, श्रवण, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, धनिष्ठा, रोहिणी, मघा, विशाखा और अश्विनी के परम कालांश १४ हैं । (१४) कृत्तिका, अनुराधा, मूल, आश्लेषा, आर्द्रा, पूर्वाषाढ़, और उत्तराषाढ़ नक्षत्रों के परम कालांश १५ हैं । (१५) सूक्ष्म होने के कारण भरणी, पुष्य और मृगशिरा के परम कालांश २१ हैं । इससे अधिक होने पर वे दृश्य और कम होने पर अदृश्य होते हैं । शेष नक्षत्रों के परम कालांश १७ हैं ।

विज्ञान भाष्य—१५ वें श्लोक में जिन शेष नक्षत्रों के लिए संकेत है वे वही हैं जिनकी चर्चा नक्षत्र ग्रहयुत्यधिकार में हुई है परन्तु जिनके नाम यहाँ नहीं दिये गये हैं । तारों के इन कालांशों से यह भी प्रगट होता है कि हमारे आचार्यों के मत से कौन तारा चमक में किस श्रेणी का है । चमक में प्रथम श्रेणी के तारे १२वें श्लोक में दिये गये हैं जिनके कालांश १३ हैं । दूसरी श्रेणी में वे तारे आते हैं जो १३वें श्लोक में दिये गये हैं और जिनके कालांश १४ हैं । तीसरी श्रेणी के तारे १४वें श्लोकमें लिखे गये हैं जिसके कालांश १५ हैं । इनके सिवा १५वें श्लोक में जो तारे आये हैं उनकी श्रेणी का ठीक ठीक पता नहीं लगाया जा सकता ।

आजकल चमक के अनुसार तारों का विभाग बहुत ही सूक्ष्मरीति से किया जाता है । अँधेरी रात में बिना किसी यन्त्र की सहायता के तेज आँखवाले मनुष्य सारे आकाश में जितने तारे देख सकते हैं उनकी संख्या ६००० से अधिक नहीं है । इस ६ हजार तारों को ६ श्रेणियों (magnitudes) में विभक्त किया गया है । इन श्रेणियों का विभाग इस प्रकार किया गया है कि प्रथम श्रेणी का कोई विशेष तारा छठीं श्रेणी के किसी विशेष तारे से चमक में १०० गुना होता है । इससे यह फल निकलता है कि किसी श्रेणी का तारा अपने नीचे वाली श्रेणी के तारे से २.५११९ गुना चमकीला होता है अर्थात् १ली श्रेणी का तारा २री श्रेणी के तारे से २.५११९ गुना चमकीला होता है, दूसरी श्रेणी वाला तारा तीसरी श्रेणी वाले तारे से २.५११९ गुना चमकीला होता है परन्तु पहली श्रेणी वाला तारा तीसरी श्रेणी वाले

तारे से २.५११९ × २.५११९ = ६.३०९६. गुना चमकीला होता है इत्यादि। यह तो हुई उन तारों की बात जिन्हें तेज आँख वाले बिना किसी यन्त्र की सहायता के देख सकते हैं। दूरदर्शक यन्त्र से १५वीं श्रेणी तक के तारे देखे गये हैं। यहाँ तक बतला देना आवश्यक है कि जो तारे एक श्रेणी में हैं वे भी सब समान चमक के नहीं हैं। पहली श्रेणी में जो तारे रखे गये हैं उनकी संख्या २० से अधिक नहीं हैं परन्तु इनमें सबसे अधिक चमकीला लुब्धक है। उसके बाद अगस्त्य का नम्बर आता है। इन दोनों की चमक में भी इतना अन्तर है कि कोई भी सहज ही देख सकता है। इसलिए अधिक सूक्ष्म गणना करने के लिए प्रत्येक श्रेणी में दस और विभाग किये गये हैं। यह तो प्रकट है कि तारे की चमक जितनी ही अधिक है उसकी श्रेणी की क्रम संख्या उतनी ही छोटी है इसलिए प्रथम श्रेणी के सबसे चमकीले तारे लुब्धक की श्रेणी ऋणात्मक और—१·४ है और इसकी चमक ९·१ मानी गयी है। श्रेणी और चमक का सम्बन्ध नीचे की सारणी[1] से सहज ही समझ में आ सकता है:—

६ठीं श्रेणी के तारे की चमक	=	१
५वीं ,, ,, ,,	=	२.५ गुनी
४थी ,, ,, ,,	=	६.३ ,,
३री ,, ,, ,,	=	१५.८ ,,
२री ,, ,, ,,	=	३९.६ ,,
१ली श्रेणी के तारे की चमक	=	१०० गुनी
१ली श्रेणी के सबसे चमकीले तारे लुब्धक की चमक	=	४००,,

सूर्य की चमक = २४०००००००००००० गुनी

किसी तारे की चमक सदैव एकसी नहीं रहती इसलिए पुरानी और नयी पुस्तकों में प्रथम श्रेणी के २० तारों के क्रम में भी दो-चार जगह भिन्नता हो गयी है। इस भिन्नता का कारण यह भी है कि चमक परखने की कसौटी भी पहले कुछ स्थूल थी और अब सूक्ष्म हो गयी है। इस बात का पता अगले पृष्ठ की सारणी[2] से चलेगा :—

---

१. सर नारमन लाकयर के (Elementary Lessons in Astronomy) पृष्ठ १० से उद्धृत।

२. देखो The Twentieth Century Atlas of Popular Astronomy by Heath, Second edition pp. 112

नाम	श्रेणी	चमक	नयी श्रेणी[1]
सूर्य	—२६·५		
पूर्ण चन्द्रमा	—१२·०		
शुक्र	— ३·०	३६·८	
लुब्धक α canis majoris, sirius	— १·४	६·१	
अगस्त्य α Argus, canopus	— ०·८	५·२	— १.५८
ब्रह्महृदय α Aurigae, caplela	०.१	२.३	—०.८६
स्वाती α Bootis, Arcturus	०.२	२.१	०.२१
α centauri ...	०.२	२.१	०.२४
अभिजित α Lyrae, Vega	०.२	२.१	०.०६
β Orionis, Regel ...	०.३	१.६	०.१४
α Eridani, Achernar ...	०.४	१.७	०.३४
प्रश्वा α canis minoris, Procyon	०.५	१.६	०.६०
β centauri	०.७	१.३	०.४८
α orionis, Betelguese ...	०.६	१.१	०.८६
α crucis	०.६	१.१	परिवर्तनशील
श्रवण α aquilae, Altair ...	०.६	१.१	०.८६
रोहिणी α tauri, Aldebaran	१.०	१.०	१.०६
चित्रा α Virginis, spica ...	१.१	०.६	१.२१
पुनर्वसु α Geminorum, Pollux	१.२	०.८	१.२१
ज्येष्ठा α scorpii, Antares	१.२	०.८	१.२२
मघा α Leonis, Regulus	१.३	०.८	१.३४
कुम्भज α Piscis Australis, Fomalhaut	१.३	०.८	१.२६
α cygni, Deneb	१.४	०.७	१.३३

१. यह १६२६ ई० के Nautical almanac के अनुसार है ।

पूर्ण चन्द्रमा से सूर्य ६३१००० गुना चमकीला है। चौथे स्तम्भ में जो नयी श्रेणी दी गयी है उससे प्रकट होता है कि कई तारों के क्रम में अन्तर पड़ गया है। इसके अनुसार अगस्त्य के बाद centauri और अभिजित आते हैं न कि ब्रह्महृदय जैसा कि पुरानी श्रेणी में दिखलाया गया है। इसी प्रकार अन्य तारों के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिए।

गतगम्य दिन जानने की दूसरी रीति—

अष्टादशशताभ्यस्तान् दृश्यांशान्स्वोदयासुभिः।
विभज्यलब्धाः क्षेत्रांशास्तैः दृश्यादृश्यताथवाः ।।१६।।

अनुवाद—(१६) अथवा दृश्यांश (कालांश) को १८०० से गुणा करके राशि के लग्नासुओं से भाग देने से जो क्षेत्रांश (भोगांश) आवे उससे भी दृश्य और अदृश्य होने का दिन जाना जा सकता है।

विज्ञान भाष्य—यह नियम १० वें और ११ वें श्लोकों में बतलाये हुए नियम का विलोम है। वहाँ कालांशांतर को दैनिक काल-गतियों के अन्तर से भाग देने को कहा गया है और यहाँ बतलाया गया है कि दैनिक गति से दैनिक कालगति कैसे जानी जा सकती है। यहाँ दैनिक काल-गति जानने की आवश्यकता नहीं वरन् कालांशांतर को ही क्रान्तिवृत्तीय भोगांशान्तर में बदलने के लिए बतलाया गया है। इसलिए इसकी उपपत्ति वही है जो वहाँ बतलायी गयी है। यदि यह श्लोक ११ वें श्लोक के बाद दिया गया होता तो अधिक उपयुक्त होता क्योंकि इसका सम्बन्ध १५ वें श्लोक से तो बहुत कम है।

तारों का उदय अस्त जानना—

प्रागेषामुदयः पश्चादस्तं दृक्कर्म पूर्ववत्।
गतैष्य दिवसप्राप्तिर्भानुभुक्त्या सदैव हि।।१७।।

अनुवाद—(१७) तारों का पूर्व में उदय और पच्छिम में अस्त होता है। तारों का आक्ष दृक्कर्म संस्कार पहले की तरह करना चाहिए और उदयास्त का गतगम्य दिन जानने के लिए सूर्य की ही गति से काम लेना चाहिए।

विज्ञान भाष्य—नक्षत्रों में कोई गति नहीं देख पड़ती इसलिए सूर्य ही उनके पास पहुँचता हुआ देख पड़ता है। जब सूर्य उनके इतना पास हो जाता है कि वे इसके प्रकाश में दब जाते हैं तभी उनका अस्त समझा जाता है। इसलिए इनका अस्त सदैव पच्छिम में होता है जैसा कि मंदगामी मंगल, गुरु और शनि ग्रहों के साथ होता है। जब सूर्य इनके इतना आगे बढ़ जाता है कि वे देख पड़ने लगते हैं तभी

उनका उदय समझा जाता है और इस समय यह सूर्योदय के पहले पूर्व क्षितिज में पड़ते हैं।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि नक्षत्रों की क्रान्ति नहीं बदलती इसलिये इनका कालांश जानने के लिए केवल आक्षदृक्कर्म संस्कार की आवश्यकता होती है।

अभी बतलाया गया है कि उदय अस्त का गत-गम्य दिन जानने के लिए सूर्य और ग्रह की कालगतियों के अन्तर से कालांशान्तर को भाग दिया जाता है। परन्तु नक्षत्रों में गति शून्य होती है इसलिए केवल सूर्य की गति से ही कालांशान्तर को भाग देने की आवश्यकता पड़ती है।

कभी अस्त न होने वाले तारे—

अभिजिद्ब्रह्महृदयं स्वातीवैष्णववासवाः।
अहिर्बुध्न्यमुदकस्थत्वान्न लुप्यन्तेऽर्करश्मिभिः ॥१८॥

अनुवाद—(१८) अभिजित्, ब्रह्महृदय, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा, उत्तरा भाद्रपद बहुत उत्तर में होने के कारण सूर्य के प्रकाश से नहीं छिपते।

विज्ञान भाष्य—जब सूर्य इन तारों के विषुवांश पर या इसके निकट आता है तब उससे इनका अंतर उत्तर की ओर इतना अधिक होता है कि ये सूर्य के उदयास्त काल से इतना पहिले उदय या अस्त होते हैं कि देख पड़ते हैं इसलिए सूर्य के प्रकाश से यह कभी लुप्त नहीं हो सकते। यह बात ६७९ पृष्ठ की सारणी* से और भी स्पष्ट होती है :—

इससे प्रकट है कि सूर्य की क्रान्ति केवल ब्रह्महृदय के सामने उत्तर होती है अन्यथा दक्षिण है जब कि तारों की क्रान्ति सदैव उत्तर है। ब्रह्महृदय और सूर्य का क्रान्त्यन्तर भी २३ अंश के लगभग है। अब देखना है कि काशी या प्रयाग में ब्रह्म-हृदय का चरकाल क्या है?

चरज्या = क्रान्ति स्पर्शरेखा × अक्षांश स्पर्शरेखा

∴ ब्रह्महृदय की चरज्या = स्परे ४५°५६′ × स्परे २५°२५′

= १.०३३१ × .४७५२

= .४९०९

∴ चरांश = २९°२४′

∴ चरकाल = १ घण्टा ५८ मिनट के लगभग

इस दिन सूर्य का चरकाल ४७ मिनट के लगभग होता है। दोनों की क्रान्ति उत्तर है। इसलिए ब्रह्महृदय का उदय सूर्योदय काल से १ घण्टा ५८ मिनट—४७

---

* १९२९ के नाविक पंचांग के अनुसार

तारों के नाम	विषुवांश			क्रान्ति उत्तर			सूर्य का बिषुवांश			सूर्य की क्रान्ति			सूर्य की क्रान्ति की
	घं०	मि०	से०	अं०	क०	विक०	घं०	मि०	से०	अं०	क०	विक०	दिशा और ता०
अभिजित्	१८	३४	३२	३८	४३	०	१८	३६	१६	२३	११	१८	दक्षिण, ३० दि०
ब्रह्महृदय	५	११	२६	४५	५५	४०	५	१२	३४	२३	०	८	उत्तर. १० जून
स्वाती	१४	१२	२५	१९	३३	५	१४	१३	५	१३	२३	९	द०, २९ अक्टूबर
श्रवण	१९	४७	१९	८	४०	४७	१९	४७	१८	२१	९	४१	द०, १५ जनवरी
धनिष्ठा	२०	३६	२०	१५	३९	३८	२०	३७	५९	१८	३०	२४	द०, २७ जनवरी

मिनट=१ घण्टा ११ मिनट पहले होगा और इसका अस्त सूर्यास्त से इतना ही पीछे होगा इसलिए इस दिन ब्रह्महृदय प्रातःकाल और सायंकाल दोनों समय देखा जा सकता है। जिस दिन सूर्योदय काल में यह तारा पूर्व क्षितिज में लग्न होता है उस दिन तो इसका दैनिक अस्त सूर्योदय काल से १६ घण्टे के उपरान्त होगा जब सूर्य को अस्त होने में १४ घण्टे से अधिक नहीं लग सकता। इसलिए इस दिन भी यह सायं-काल में अच्छी तरह देखा जा सकता है। इसी प्रकार जिस दिन यह सूर्यास्त काल में पच्छिम क्षितिज में लग्न होता है उस दिन सूर्योदय से २ घण्टे से भी अधिक पहले उदय होकर लोगों को दर्शन देता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि काशी प्रयाग के उत्तर के देशों में तो यह कभी अदृश्य नहीं हो सकता, हाँ उन स्थानों में जिनका उत्तर अक्षांश २० अंश से कम है, यह कुछ दिनों के लिए अवश्य अदृश्य हो जायगा इसलिए यह जगन्नाथ पुरी में प्रत्येक दिन देखा जा सकता है परन्तु बम्बई में नहीं।

शेष तारों में श्रवण ऐसा तारा है जिसकी उत्तर क्रान्ति बहुत कम है। इसलिए देखना चाहिये कि इसके लिए यह नियम कहाँ तक ठीक है।

काशी प्रयाग में श्रवण का चरकाल=१७ मिनट के लगभग

,,　　　सूर्य का चरकाल=४३　,,　　,,

दोनों की क्रान्ति भिन्न हैं इसलिए इस दिन सूर्योदय से १७+४३ मिनट=१ घण्टा पहले श्रवण का उदय होगा। परन्तु श्रवण का कालांश ५६ मिनट है इसलिये यह अच्छी तरह देखा जा सकता है। परन्तु काशी प्रयाग के दक्षिण के देशों के लिए यह नियम लागू नहीं हो सकता।

इसी प्रकार अन्य तारों के बारे में भी जाना जा सकता है।

इस प्रकार उदयास्ताधिकार नामक ९वें अध्याय का विज्ञान भाष्य समाप्त हुआ।

———

दशम् अध्याय

शृङ्गोन्नत्यधिकार

(संक्षिप्त वर्णन)

[श्लोक १—चन्द्रमा का उदय अस्त जानने की विधि पहले की तरह है और कालांश १२ हैं। श्लोक २-४—शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा का दैनिक अस्तकाल जानने की रीति। श्लोक ५—कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा का दैनिक उदयकाल जानने की रीति। श्लोक ६-८—सूर्यास्तकाल में सूर्य से चन्द्रमा का रेखात्मक अन्तर जानने की रीति। श्लोक ९—चन्द्रमा के शुक्ल भाग का बिम्ब जानने की रीति। श्लोक १०-१४—चन्द्रमा के शुक्ल भाग का परिलेख खींचने की रीति। श्लोक १५—कृष्ण पक्ष में चन्द्रबिम्ब का परिलेख खींचने का नियम।]

इस अध्याय में चन्द्रमा का उदयास्त काल जानने की रीति बतलायी गयी है। इससे पहले के अध्याय में केवल उस प्रकार के उदय अस्त का वर्णन है जिसमें ग्रह सूर्य के बहुत पास आ जाने से अदृश्य हो जाता है। परन्तु इस अध्याय में इस प्रकार के उदय अस्त के सिवा चन्द्रमा का दैनिक उदयास्त काल जानने की रीति भी है। फिर यह जानने की रीति बतलायी गयी है कि किस दिन चन्द्र-बिम्ब का कितना भाग प्रकाशित रहता है और उसका आकार कैसे खींचा जा सकता है। शुक्ल पक्ष के आरम्भ में अथवा कृष्ण पक्ष के अन्त में चन्द्रमा के प्रकाशित या शुक्ल भाग का आकार शृङ्ग की तरह होता है और उत्तर या दक्खिन की तरफ उठा रहता है इसीलिए इस अध्याय का नाम शृङ्गोन्नत्यधिकार है।

यहाँ यह याद दिलाने की आवश्यकता है कि चन्द्रमा का स्पष्ट स्थान सूर्य-सिद्धान्त की गणना की रीति से जाने गये स्थान से बहुत भिन्न होता है जैसा कि स्पष्टाधिकार के पृष्ठ १८६-१९६ में अच्छी तरह दिखलाया गया है। इसके सिवा चन्द्रमा की स्पष्ट क्रान्ति भी सूर्य-सिद्धान्त की रीति से ठीक नहीं होती। इन सब कारणों से इस अध्याय के लिए दृग्गणित के मूलाङ्कों से ही काम लेना चाहिए, नहीं तो सूर्य-सिद्धान्त के मूलाङ्कों के द्वारा चन्द्रमा के उदयास्त का जो समय ज्ञात होगा वह प्रत्यक्ष से १५,१६ मिनट आगे पीछे होगा। इसलिए आवश्यक है कि भारतीय ज्योतिष का संशोधन करने के लिए एक अच्छी वेधशाला हो जिसमें चन्द्रमा, ग्रहों

और नक्षत्रों का सूक्ष्म से सूक्ष्म वेध लेकर इनके मूलाङ्क फिर से स्थिर किये जायँ। ऐसे काम में भी नाविक पंचांग के आश्रित होना किसी प्रकार वांछनीय नहीं है।

चन्द्रमा का उदयास्त काल और कालांश—

उदयास्त विधि: प्राग्वत्कर्तव्य: शीतगोरपि।
भागैर्द्वादशभि: पश्चाद् दृश्य: प्राग्यात्यदृश्यताम्॥१॥

अनुवाद—(१) चन्द्रमा के भी उदय और अस्त होने का समय उदयास्ताधिकार के श्लोक ४, ५ में बतलायी गयी रीति से जानना चाहिए। जब इसका कालांश सूर्य से १२ अंश पीछे होता है तब यह पच्छिम में दृश्य होता है और पहले होता है तब पूर्व में अदृश्य हो जाता है।

विज्ञान-भाष्य—इस पर विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि जैसे और ग्रहों का उदयास्त काल जाना जाता है वैसे ही चन्द्रमा का भी। चन्द्रमा का ऐसा उदय अस्त चान्द्र-मास में केवल एक बार होता है। चन्द्रमा की गति बहुत तीव्र है इसलिए चन्द्रमा का अस्त पूर्व में कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को होता है और उदय पच्छिम में शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा के उपरान्त सन्ध्याकाल में होता है।

दैनिक उदयास्त काल जानने की रीति—

रवीन्द्वो: षड्भयुतयो: प्राग्वल्लग्नान्तरासव:।
एकराशौ रवीन्द्वोश्च कार्या विवरलिप्तिका:॥२॥
तन्नाडिकाहते भुक्ती रवीन्द्वो: षष्टिभाजते।
तत्फलान्वित मो भूय: कर्तव्या विवरासव॥३॥
एवं यावत् स्थिरी भूता रवीन्द्वोरन्तरासव:।
तै: प्रणैरस्तमेतीन्द्र: शुक्लेऽर्कास्तमयात्परम्॥४॥

अनुवाद—(२) (शुक्ल पक्ष के जिस दिन चन्द्रमा का अस्त काल जानना हो उस दिन के सूर्यास्त काल के सूर्य और चन्द्रमा को स्पष्ट करके और चन्द्रमा में आक्ष और आयनदृक्कर्म संस्कार करके) सूर्य के भोगांश और चन्द्रमा के दृक्कर्म संस्कृत भोगांश में छ: छ: राशि जोड़ने से जो आवे उनके उदय लग्नों के अन्तरासुओं को जान ले। यदि सूर्य और चन्द्रमा एक ही राशि में हों तो इनके भोगांशों के अन्तर की कला बना लेना पर्याप्त होगा। (३) इन उदय लग्नों के अन्तरासुओं की घड़ी बना कर इससे सूर्य और चन्द्रमा की दैनिक गतियों से गुणा कर दे और गुणनफल को ६० से भाग दे दे। सूर्य की गति से जो लब्धि मिले उसे उसको सूर्य के भोगांश में और चंद्रगति से जो लब्धि मिले चन्द्रमा के भोगांश

में जोड़ कर इनका लग्नान्तर काल पहले की तरह फिर निकाले। (४) इस प्रकार कई बार करने से लग्नान्तर काल स्थिर हो जाता है। इतने ही समय पर शुक्ल पक्ष में सूर्यास्त के उपरान्त चन्द्रमा का अस्त होता है।

विज्ञान भाष्य—किसी किसी ग्रन्थ में इन तीन श्लोकों के स्थान में केवल एक श्लोक है जिसका पूर्वार्ध दूसरे श्लोक का पूर्वार्ध है और उत्तरार्ध चौथे श्लोक का उत्तरार्ध। इसलिए किसी किसी के मत से दूसरे श्लोक के उत्तरार्ध से लेकर चौथे श्लोक के पूर्वार्ध तक की ४ पंक्तियाँ प्रक्षिप्त हैं। पं० इन्द्र नारायण द्विवेदी, पं० माधव पुरोहित अथवा पं० बलदेव प्रसाद मिश्र जी ने इन चार पंक्तियों को लिख तो दिया है परन्तु इनका अर्थ नहीं किया है और न इनके विषय में कुछ लिखा ही है। हाँ, आचार्य रङ्गनाथ जी की संस्कृत टीका में, जिसका सम्पादन भी पं० बलदेव प्रसाद जी ने अपनी हिन्दी टीका के साथ किया है, इसकी चर्चा अच्छी तरह है जहाँ लिखा है[1]—

१. श्लोक मध्य एकराशावित्यादि रवीन्दोरित्यन्त रासव इत्यन्त श्लोक द्वयं केनचिन्मन्दमतिना समयोऽसकृदेव साध्य इति शिष्यधीवृद्धिद तन्त्रोक्तं सुबुद्धि मन्ये-नायुक्तमपि युक्तं मत्वानिक्षिप्तम्।

स्वामी विज्ञानानन्द सम्पादित बंगाल के सूर्य-सिद्धान्त में ये दो श्लोक मूल संस्कृत श्लोकों के साथ नहीं दिये गये हैं वरन् बङ्गला की टीका में हैं और वहाँ बतलाया गया है कि ये प्रक्षिप्त क्यों हैं।

चन्द्रशेखर सिंह सामन्त के सिद्धान्त-दर्पण में तीसरा श्लोक ज्यों का त्यों उद्धृत[2] किया गया है और चौथे श्लोक के पूर्वार्ध के अर्थ को कई श्लोकों में विस्तारपूर्वक लिखकर उत्तरार्ध भी दे दिया गया है। इसके उपरान्त यह श्लोक[3] लिखा गया है—

अत्रार्क सावनत्वं हि द्वयोस्तात्कालिकी कृतौ
तत्कृतौ केवलस्येन्दोः प्राणानामार्क्षता मता
सूर्यास्तकालिकौ तौ चेद्ग्राह्यौ ते चंद्रसावना ॥११॥

जिससे यह सिद्ध होता है कि चन्द्र शेखरसिंह सामन्त ने सूर्य-सिद्धान्त के प्रक्षिप्त कहे जाने वाले श्लोकों के डेढ़ श्लोकों को बहुत आवश्यक समझा है। यथार्थ में यह है भी आवश्यक जैसा कि अभी दिखलाया जायगा। इसलिए मेरी समझ में इसको

१. श्री सूर्यसिद्धान्त पृष्ट १६७ श्री वेंकटेश्वर प्रेस का छपा
२. देखो योगेशचन्द्र राय सम्पादित सिद्धान्त-दर्पण पृष्ठ १३३
३. ,, ,, ,, १३४

प्रक्षिप्त कह कर उड़ा देना और इसका अर्थ ही न करना उचित नहीं है क्योंकि यदि यह प्रक्षिप्त हो तो भी अनुचित नहीं है क्योंकि इसके अनुसार गणना न करने से तो चन्द्रमा के अस्त काल में १ घड़ी या २४ मिनट तक का अन्तर पड़ सकता है। आचार्य रङ्गनाथजी ने अपनी टीका १५२५ शाके[1] में की थी इसलिए यह विवाद कई सौ वर्ष पहले का है कि यह प्रक्षिप्त है या नहीं। मैं यह बतलाना चाहता हूँ कि इन श्लोकों का क्या अर्थ है। श्लोक २ के पूर्वार्ध में तो संक्षेप में उदयास्ताधिकार के चौथे और पाँचवें श्लोकों में बतलाये गये नियम की ओर संकेत है जो बिलकुल ठीक है। उत्तरार्ध में यह बतलाया गया है कि यदि सूर्य और चन्द्रमा एक ही राशि में हों तो इन दोनों के दृक्कर्म-संस्कृत-भोगांशों के अन्तर को ही कलांश समझ कर जान लेना चाहिए कि सूर्यास्त के उपरांत कितने समय पर चन्द्रमा का अस्त होगा। इसका कारण यह जान पड़ता है कि जब चन्द्रमा सूर्य से इतने थोड़े अन्तर पर रहता है कि ये दोनों एक ही राशि में हों तब इनके लग्नान्तरासुओं में जो अन्तर होता है वह इनके भोगांशों के अंतर से बहुत भिन्न नहीं होता इसलिए सुगमता के लिए यह स्थूल नियम बतला दिया गया है।

इसके बाद श्लोक ३ में असकृत्कर्म (approximation) से चन्द्रमा का अस्तकाल सूक्ष्मतापूर्वक जानने की रीति बतलायी गयी है। इसका कारण यह है कि दूसरे श्लोक के पूर्वार्ध के अनुसार चन्द्रमा के अस्तकाल का जो समय आता है वह ठीक नहीं होता क्योंकि चन्द्रमा की गति बहुत तीव्र होती है इसलिए सूर्य के अस्तकाल में चन्द्रमा का जो भोगांश होता है उससे चन्द्रमा के अस्तकाल का भोगांश कुछ बढ़ जाता है जिससे वह कुछ देर में अस्त होता है। सूर्य से चन्द्रमा जितना ही अधिक दूर रहता है उसीके अनुपात में चन्द्रमा के अस्त होने में बिलम्ब लगता है। शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी या चतुर्दशी के दिन तो यह विलम्ब २० मिनट के लगभग हो जाता है क्योंकि इस दिन सूर्यास्त से १०, ११ घण्टे से भी अधिक समय में चन्द्रमा का अस्त होता है और इतने समय में इसकी गति ५, ६ अंश के लगभग होती है जिससे इसके अस्त होने में २० से २४ मिनट तक का विलम्ब हो सकता है। यही जानने के लिए कहा गया है कि सूर्य और चन्द्रमा में ६ राशि जोड़ने से जो लग्नान्तरासु आवे उसकी घटिका बनाकर अर्थात् असुओं को ६ से भाग देकर पल और पलों को ६० से भाग देकर घड़ी बनाकर इसको सूर्य और चन्द्रमा की दैनिक गतियों से गुणा कर दे और गुणनफल को ६० से भाग दे दे तो यह मालूम हो जायगा कि लग्नान्तरासुओं में सूर्य और चन्द्रमा में कितनी गति हुई। क्योंकि जब ६० घड़ी में सूर्य और चन्द्रमा की

१. देखो वेंकटेश्वर प्रेस का सूर्य-सिद्धान्त पृष्ठ २४६

गति दैनिक गति के समान होती है तो लग्नान्तरासुओं में इसी के अनुपात से होगी। यह गति जान लेने पर इसे सूर्यास्तकालिक सूर्य और चन्द्रमा के भोगांश में जोड़कर और योगफल में ६ राशि और जोड़कर इनके लग्नों के अन्तरासु फिर निकाले। इस प्रकार २, ३ बार असकृत्कर्म करने से जब अन्तर स्थिर हो जाय तब सूर्यास्त से उतने ही समय उपरान्त चन्द्रमा का अस्त होता है।

यहाँ एक बात विचारणीय है। जब सूर्यास्तकाल के सूर्य और चन्द्रमा एक बार स्पष्ट कर लिये गये और पहली बार यह मालूम कर लिया गया कि सूर्यास्त काल से इतने समय उपरान्त चन्द्रमा का अस्त होगा तब इसमें और चन्द्रमा के प्रत्यक्ष अस्तकाल में जो अन्तर पड़ेगा वह केवल चन्द्रमा की गति के कारण होगा इसलिए असकृत्कर्म के लिए केवल चन्द्रमा की गति को सूर्यास्तकालिक चन्द्रमा के भोगांश में जोड़ना चाहिए न कि सूर्य की गति को भी। परन्तु नियम में सूर्य और चन्द्रमा दोनों की गतियों को जोड़ने को कहा गया है। सूर्य की गति को भी जोड़ने से जो समय आवेगा वह नाक्षत्र-काल नहीं होगा वरन् सावन काल होगा। परन्तु पहला अन्तर नाक्षत्र काल में आता है इसलिए नाक्षत्र काल और सावन काल का योग नहीं हो सकता। इसलिए उचित यह है कि केवल चन्द्रमा की गति का असकृत्कर्म किया जाय परन्तु सूर्य की गति लेने से अधिक से अधिक अन्तर २ मिनट का हो सकता है क्योंकि १२ घण्टे का नाक्षत्र काल १२ घण्टे के सावन काल से केवल २ मिनट अधिक होता है। इसलिए इतनी भूल के लिए नियम को ही प्रक्षिप्त समझ कर निकाल देना बुद्धिमानी नहीं जान पड़ती।

कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा का उदय काल जानना—

भगणार्धं रवौ दत्वा कार्यास्तद्विवरासवः।
तैः प्राणैः कृष्णपक्षे तु शीतांशुरुदयं व्रजेत ॥५॥

अनुवाद—(५) सूर्यास्तकालिक सूर्य के भोगांश में ६ राशि जोड़ने से जो आवे उसके लग्नकाल और सूर्यास्तकालिक स्पष्ट चन्द्रमा के लग्नकाल के अन्तरासुओं से असकृत्कर्म के द्वारा जो समय आता है सूर्यास्त से उतने ही समय उपरान्त कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा का पूर्व क्षितिज में उदय होता है।

विज्ञान-भाष्य—कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा का भोगांश सूर्यास्तकालिक सूर्य के भोगांश से १८० अंश से अधिक होता है इसलिए सूर्यास्त के उपरान्त पूर्व क्षितिज में चन्द्रमा का उदय होता है। यह जानने के लिए सूर्यास्त काल के सूर्य और चन्द्रमा के भोगांश जानकर केवल सूर्य के भोगांश में ६ राशि जोड़ना चाहिए क्योंकि चन्द्रमा का

उदय तो पूर्व क्षितिज में होता ही है इसलिए यह केवल यह जानने की आवश्यकता है कि सूर्यास्तकाल में पूर्व क्षितिज में कौन राशि लग्न है और इसके उपरान्त चन्द्रमा कितने समय में लग्न होगा। इस क्रिया से जो समय आवेगा उस समय चन्द्रमा का उदय नहीं होगा क्योंकि इतने समय में चन्द्रमा अपनी गति से और पूर्व हो जायगा। इससे कितना अन्तर पड़ जायगा यह जानने के लिए तीसरे श्लोक में बतलाये गये नियम से असकृत्कर्म करना होगा। यहाँ भी केवल चन्द्रमा की गति से ही असकृत्कर्म करना चाहिए।

सूर्यास्त काल में सूर्य से चन्द्रमा का रेखात्मक अन्तर जानने की रीति

अर्केन्द्वोः क्रान्तिविश्लेषः दिक्साम्ये युतिरन्यथा।
तज्ज्येन्दुरर्काद्यत्रासौ विज्ञेया दक्षिणोत्तरा ॥६॥
मध्याह्नेन्दुप्रभाकर्ण संगुणा यदि सोत्तरा।
तदाऽर्कघ्नाक्षजीवायाश्शोध्या योज्या तु दक्षिणे ॥७॥
शेषो लम्बज्यया भक्तो लब्धं बाहुस्स्वदिङ्मुखः।
कोटिश्शङ्कुस्तयोर्वर्गयुतेर्मूलं श्रवो भवेत् ॥८॥

अनुवाद—(६) सूर्यास्तकालिक सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्ति जानकर यदि इनकी दिशाएँ एक हैं तो इनकी ज्याओं का अन्तर करे और भिन्न हों तो योग करे। सूर्य से चन्द्रमा जिस दिशा में हो वही दिशा इस अंतर या योग को भी समझे अर्थात् यदि चन्द्रमा सूर्य से दक्षिण हो तो अन्तर या योग की दिशा दक्षिण समझे और उत्तर हो तो उत्तर समझे। (७) इस योग या अन्तर को चन्द्रमा के तात्कालिक छाया कर्ण से गुणा कर दे। यदि दिशा उत्तर हो तो इस गुणनफल को १२ और अक्षज्या के गुणनफल में घटा दे और दक्षिण हो तो जोड़ दे। (८) इस शेष या योगफल को लम्बज्या से भाग दे दे और लब्धि को इष्ट दिशा का भुज समझे। चन्द्रमा के शंकु अर्थात् नतांश-कोटिज्या को कोटि मानकर भुज और कोटि के वर्गों के योगफल का वर्गमूल निकालने से जो आवे उसे कर्ण समझना चाहिए। यही कर्ण सूर्य और चन्द्रमा का सूत्रात्मक या रेखात्मक अंतर है।

विज्ञान-भाष्य—इन तीन श्लोकों का सार यह है :—

यदि सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्तिज्याओं का अन्तर प मान लिया जाय तो छठें श्लोक के अनुसार

प = चन्द्र क्रान्तिज्या ± सूर्य क्रान्तिज्या,

सातवें और आठवें श्लोक के पूर्वार्ध के अनुसार

$$\text{भुज} = \frac{\text{प} \times \text{चन्द्रछायाकर्ण} \pm १२ \text{ अक्षज्या}}{\text{लम्बज्या}}$$

कोटि = चन्द्रमा का शंकु अर्थात् चन्द्रमा की नतांशकोटिज्या

$$\therefore \text{कर्ण} = \sqrt{\text{भुज}^{२} + \text{कोटि}^{२}}$$

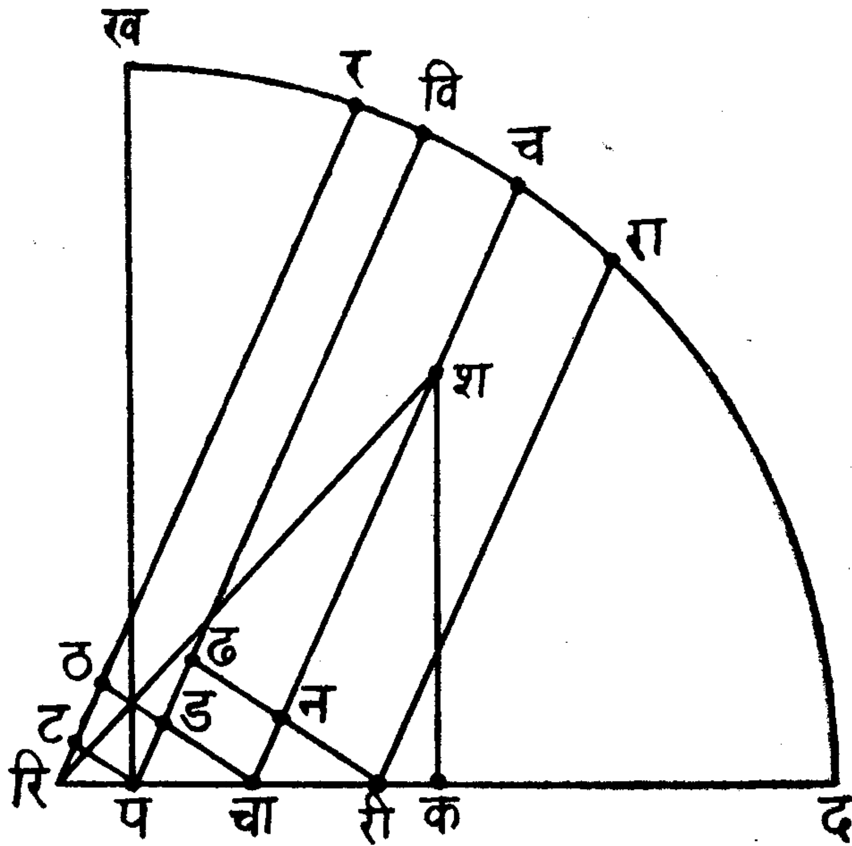
छठें श्लोक में यह बतलाया गया है कि सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्तियों के अन्तर या योग की ज्या को लेकर सातवें श्लोक के अनुसार काम करना चाहिये परन्तु यह नियम तभी लागू हो सकता है जब सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्तियाँ बहुत कम हों क्योंकि किसी कोण और उसकी ज्या में अन्तर तभी बहुत कम होता है जब उस कोण का मान कम हो। इसीलिये अनुवाद में क्रान्तियों के योग या अन्तर की जगह क्रान्तिज्याओं का योग या अन्तर कहा गया है।

इसी तरह सातवें श्लोक के पूर्वार्ध में 'मध्याह्नेन्दुप्रभाकर्ण' कहा गया है जिसका अर्थ है मध्याह्नकालिक चन्द्रमा का छायाकर्ण, परन्तु यह युक्तियुक्त नहीं जान पड़ता इसलिए इसको सूर्यास्तकालिक अथवा जिस समय की शृङ्गोन्नति जाननी हो उस समय का चन्द्रमा का छायाकर्ण ही समझना उचित है। स्वामी विज्ञानानन्द जी तथा आचार्य रङ्गनाथ जी ने भी इसका अर्थ यही किया है और बतलाया है कि यदि एक सूर्योदय तक से दूसरे के समय को १ दिन माना जाय तो सूर्यास्त का समय मध्याह्न कहा जा सकता है। परन्तु मध्याह्न का शब्द यहाँ भ्रमात्मक है क्योंकि मध्याह्न का साधारण अर्थ १२ बजे दिन का ही लिया जाता है। इसलिए श्लोक में मध्याह्न शब्द उचित नहीं है।

उपपत्ति—सूर्यास्तकाल में सूर्य से चन्द्रमा का जो रेखात्मक अन्तर होता है उसी को यहाँ कर्ण कहा गया है और उसी को जानने की रीति बतलायी गयी है। सूर्यास्त काल में चन्द्रमा आकाश में जिस विन्दु पर हो उसका धरातल से जो लम्बान्तर (perpendicular distance) होता है उसे ही यहाँ कोटि कहा गया है परन्तु यह भारतीय प्रथा के अनुसार उन्नतांशज्या अथवा नतांश-कोटिज्या के समान होता है और नतांश-कोटिज्या का दूसरा नाम शंकु भी है (देखो पृष्ठ २८२) इसलिए कोटि को शंकु कहा गया है। इसी कोटि के आधारविंदु से सूर्य का जो रेखात्मक अंतर धरातल पर होता है उसे ही भुज या बाहु कहा गया है जिसको जानने की रीति श्लोक ६, ७ और ८ के पूर्वार्ध में बतलायी गयी है।

यहाँ एक बात और ध्यान में रखनी चाहिए। इस नियम से तभी काम लिया जा सकता है जब सूर्यास्तकालिक सूर्य और चन्द्रमा को याम्योत्तरवृत्त के तल (plane) में समझ लिया जाय अर्थात् चन्द्रमा द्रष्टा से जिस दिशा में हो उसे दक्षिण

या उत्तर दिशा समझनी चाहिए और चन्द्रमा के भुज कोटि और कर्ण को भी यामोत्तरवृत्त के तल में समझना चाहिए। यह सब बातें * चित्र ११५ से अच्छी तरह समझ में आ जायगी।



चित्र ११५

प=क्षितिज का पच्छिम विन्दु

द= " का दक्षिण विन्दु

पद=पच्छिम विन्दु से दक्षिण त्रिन्दु तक का क्षितिज का चतुर्थांश

ख=खस्वस्तिक

र रि=सूर्य के अहोरात्र वृत्त का खंड जो यामोत्तर वृत्त और पच्छिम क्षितिज के बीच में है जब कि सूर्य की क्रान्ति उत्तर होती है।

रा री=सूर्य के अहोरात्रवृत्त का खंड जब क्रान्ति दक्षिण हो।

रि, री=पच्छिम क्षितिज के विन्दु जहाँ सूर्य अस्त होता है।

च चा=चन्द्रमा के अहोरात्र वृत्त का खंड जो यामोत्तर वृत्त और पच्छिम क्षितिज के बीच में है।

विप=विषुवद्वृत्त का चतुर्थांश जो यामोत्तरवृत्त और क्षितिज के बीच है।

* यह चित्र स्वामी विज्ञानानन्द के बङ्गला सूर्य-सिद्धान्त से लिया गया है।

श = सूर्यास्तकाल का चन्द्रमा का स्थान जब कि यह याम्योत्तरवृत्त से पच्छिम होता है।

शक = चन्द्रमा से क्षितिज तल पर लम्ब या चंद्र-शंकु या कोटि।

शरि वा शरी = सूर्य से चन्द्रमा का रेखात्मक अंतर या कर्ण।

करि या करी = भुज; पट और चाठ सूर्य के अहोरात्र वृत्त पर लम्ब हैं।

इस चित्र में याम्योत्तर-वृत्त के तल खदप पर क्षितिज के ऊपर के खगोल का वह अंश दिखलाया गया है जो पच्छिम क्षितिज के सूर्यास्त विन्दु से लेकर दक्षिण विन्दु तक फैला हुआ है। इसीलिए चन्द्रमा का स्थान श याम्योत्तर वृत्त से पच्छिम होते हुए भी याम्योत्तर वृत्त पर ही जान पड़ता है और चन्द्रमा के शंकु, भुज, कर्ण याम्योत्तर-वृत्त के तल पर देख पड़ते हैं। सूर्य और चन्द्रमा के अहोरात्रवृत्त तथा विषुवद्वृत्त का चतुर्थांश भी याम्योत्तरवृत्त के ही तल पर दिखलाये गये हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि पद क्षितिज के दक्षिणार्ध और याम्योत्तरवृत्त की छेद रेखा (Projection) है र रि और च चा इष्ट काल के सूर्य और चन्द्रमा के अहोरात्रवृत्त हैं। रा री भी सूर्य का अहोरात्रवृत्त है जब क्रान्ति दक्षिण होती है। इसलिए विर सूर्य की उत्तर क्रान्ति, विच चन्द्रमा की दक्षिण क्रान्ति और वि रा सूर्य की दक्षिण क्रान्ति है। खवि इष्ट स्थान का अक्षांश और विद लम्बांश है। अहोरात्र वृत्तों और क्षितिज के बीच के कोण भी लम्बांश के समान हैं।

चित्र से प्रकट है कि चन्द्रकर्ण $\text{शरि}^2 = \text{शक}^2 + \text{करि}^2$

इसमें शक इष्टकालिक चन्द्रमा का शंकु है जिसकी गणना चन्द्रमा के नतकाल से त्रिप्रश्नाधिकार के पृष्ठ २६० के सूत्र (क) अथवा पृष्ठ २६२ के सूत्र (ग) के अनुसार सहज ही जाना जा सकता है और करि चंद्रमा का भुज है जिसको जानने की रीति ऊपर के ढाई श्लोकों में बतलायी गयी है।

करि = रिचा + चाक, जिसमें रिचा सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्तियों के अन्तर पर आश्रित है और चाक चन्द्रमा के उन्नतांश पर।

समकोण त्रिभुज चाठरि में भारतीय रीति के अनुसार,

$$\frac{\text{चाठ}}{\text{ज्या चारिठ}} = \frac{\text{चारि}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$\therefore \text{चारि} = \frac{\text{चाठ} \times \text{त्रिज्या}}{\text{ज्या चारिठ}}$$

परन्तु चाठ = चाड + ड ठ = चन्द्रक्रान्तिज्या + सूर्यक्रान्ति ज्या और

ज्या चारिठ = लम्बज्या

$$\therefore \text{चारि} = \frac{(\text{चंद्रक्रान्तिज्या} + \text{सूर्यक्रान्तिज्या})\ \text{त्रिज्या}}{\text{लम्बज्या}}$$

इसी प्रकार समकोण त्रिभुज शकचा में

$$\frac{\text{चाक}}{\text{ज्या चाशक}} = \frac{\text{शक}}{\text{ज्या शचाक}}$$

परन्तु कोण शचाक = लम्बांश और कोण चाशक लम्बांश का पूरक है इसलिए यह अक्षांश के समान हुआ और शक चंद्रमा का शंकु है इसलिए,

$$\text{चाक} = \frac{\text{शंकु} \times \text{अक्षज्या}}{\text{लम्बज्या}}$$

यहाँ चाक और चारि के मान कलाओं में है क्योंकि भारतीय रीति से ज्या के मान कलाओं में होते हैं। परन्तु परिलेख के लिए नाप अंगुलों में की जाती है इस-लिए इसको अंगुलों में बदलने के लिए यह मान लेना होगा कि चन्द्रमा का शंकु शक १२ अंगुल है और इसका तात्कालिक अंगुलात्मक छायाकर्ण त्रिज्या अर्थात् ३४३८ के समान है। यदि मान लिया जाय कि चारि और चाक के अंगुलात्मक मान क्रमानुसार त और थ हैं तो नीचे लिखे तीन अनुपात सिद्ध होते हैं—

$$\frac{\text{त्रिज्या}}{\text{छायाकर्ण}} = \frac{\text{शक}}{१२} = \frac{\text{चारि}}{\text{त}} = \frac{\text{चाक}}{\text{थ}}$$

$$\therefore \text{त} = \frac{१२ \times \text{चारि}}{\text{शक}} = \frac{१२ \times \text{चारि} \times \text{छायाकर्ण}}{१२ \times \text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{१२ \times (\text{चंद्रक्रांतिज्या} + \text{सूर्यक्रांतिज्या})\text{त्रिज्या} \times \text{छायाकर्ण}}{१२ \times \text{त्रिज्या} \times \text{लम्बज्या}}$$

$$= \frac{\text{छायाकर्ण} \times (\text{चंद्रक्रांतिज्या} + \text{सूर्यक्रांतिज्या})}{\text{लम्बज्या}}$$

$$\text{इसी तरह थ} = \frac{१२ \times \text{चाक}}{\text{शक}} = \frac{१२ \times \text{शंकु} \times \text{अक्षज्या}}{\text{शक} \times \text{लम्बज्या}}$$

$$= \frac{१२\text{अक्षज्या}}{\text{लम्बज्या}}$$

क्योंकि शक और शंकु एक ही वस्तु है।

यहाँ चंद्रमा और सूर्य की क्रांतिज्याएँ जोड़ी गयी हैं क्योंकि इनकी क्रांतियों की दिशाएँ भिन्न हैं। यदि दोनों की क्रांतियों की दिशा एक ही हो तो अंतर निकालना पड़ेगा जैसे यदि सूर्य रा पर हो तो अंतर निकालना पड़ेगा क्योंकि इस दशा में

$$\text{करी} = \text{चाक} - \text{चारी}$$

इस प्रकार ६-८ श्लोकों की उपपत्ति सिद्ध हुई।

चन्द्रबिम्ब का शुक्ल भाग जानने की रीति—

सूर्योनशीतगोर्लिप्ताः शुक्लं नवशतोद्धृताः।
चन्द्रबिम्बांगुलाभ्यस्तं हृतं द्वादशभिः स्फुटम् ॥९॥

अनुवाद—चंद्रमा के भोगांश से सूर्य का भोगांश घटाने से जो आवे उसकी कला बनाकर ९०० से भाग देने पर जो आता है वह अंगुलों में चन्द्रमा का शुक्ल भाग होता है। इसको चन्द्रमा के तात्कालिक अंगुलात्मक बिम्ब से गुणा करके १२ से भाग देने पर स्फुट शुक्ल भाग का मान अंगुलों में आ जाता है।

विज्ञान भाष्य—पूर्ण चन्द्रमा का मध्यम बिम्ब १२ अंगुल का माना गया है। जिस समय चन्द्रमा पूर्ण होता है उस समय यह पूरा शुक्ल देख पड़ता है और जिस समय अमावस्या होती है उस समय चंद्रमा के शुक्ल भाग का अभाव रहता है। जैसे-जैसे चन्द्रमा सूर्य से आगे बढ़ता है तैसे-तैसे इसका शुक्ल भाग भी बढ़ता जाता है और अन्त में पूर्णिमा काल में इसका पूरा बिम्ब शुक्ल देख पड़ता है। ऐसी दशा में चन्द्रमा का सूर्य से अन्तर १८० अंश या $१८० \times ६० = १०८००$ कला होता है इसलिए चन्द्रमा के शुक्ल भाग का परिमाण इस प्रकार हुआ कि जब सूर्य से चन्द्रमा १०८०० कला आगे जाता है तब इसका शुक्ल भाग १२ अंगुल के समान होता है इसलिए जब किसी काल में चन्द्रमा सूर्य से अ कला आगे हो तब उसका शुक्ल

$$\text{भाग} = \frac{\text{अ} \times १२}{१०८००} = \frac{\text{अ}}{९००} \text{ अंगुल}$$

परन्तु यह मध्यम बिम्बमान से लगाया गया है। स्पष्ट बिम्ब इससे भिन्न होता है जिसकी गणना चन्द्रग्रहणाधिकार (पृष्ठ ४८१-८२) के अनुसार करनी चाहिए। जब स्पष्ट बिम्ब का मान अंगुलों में आ जाय तब फिर अनुपात करना चाहिए कि जब मध्यम बिम्ब १२ अंगुल का होता है तब इष्ट शुक्ल भाग $\frac{\text{अ}}{९००}$ अंगुल होता है, इसलिए जब स्पष्ट बिम्ब च है तब

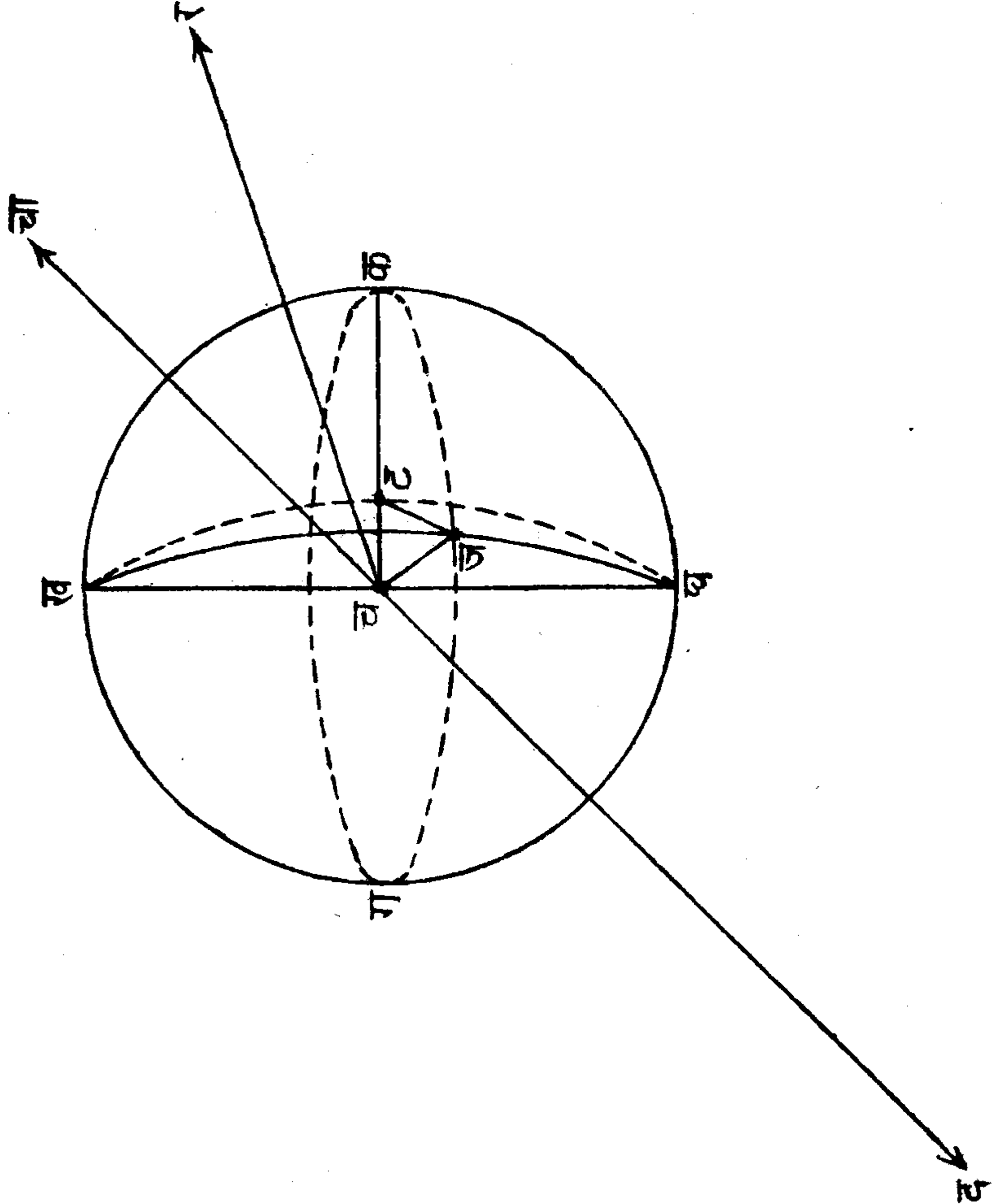
$$\text{शुक्ल भाग} = \text{स्पष्ट बिम्ब} \times \frac{\text{अ}}{९००} \div १२$$

$$= \text{स्पष्ट बिम्ब} \times \frac{\text{अ}}{९००} \times \frac{१}{१२}$$

यह नियम स्थूल है क्योंकि चन्द्रबिम्ब के शुक्ल भाग की वृद्धि तिथि वृद्धि के अनुपात में नहीं बढ़ती जैसा कि अभी प्रकट होगा। चन्द्रमा के शुक्ल भाग की नोकों को शृंग (cusp या horn) कहते हैं। दोनों शृंगों को मिलाने वाली रेखा चन्द्रबिम्ब के उस वृत्त का व्यास है जो उसके प्रकाशित भाग को अप्रकाशित भाग से अलग करता है। इसलिए यह चन्द्र सूर्य के केन्द्रों को मिलानेवाली रेखा से समकोण पर होता है। यह उस वृत्त का भी व्यास है जो चन्द्रमा के द्रष्टा के सामने वाले भाग को उसके दूसरी ओर वाले भाग से अलग करता है। इसलिए यह द्रष्टा और चन्द्र-केन्द्र को मिलानेवाली रेखा से भी समकोण पर होता है। जब दोनों शृंगों को मिलानेवाली रेखा द्रष्टा और चन्द्रकेन्द्र तथा सूर्य और चन्द्र केन्द्रों को मिलाने वाली रेखाओं के समकोण पर होती है तब यह उस तल (plane) के भी समकोण पर होगी जो द्रष्टा चन्द्रकेन्द्र और सूर्यकेन्द्र से होकर जाता है अर्थात् सूर्य और चन्द्र केन्द्रों से होकर जाननेवाला महावृत्त (great circle) शृंगों को मिलानेवाले व्यास को दो समान भागों में काटता है। यह महावृत्त क्षितिज-तल से जो कोण बनाता है वह बहुत परिवर्त्तनशील है इसलिए चन्द्रमा का शृंग भिन्न-भिन्न मासों में भिन्न-भिन्न रीति से झुका रहता है अर्थात् कभी क्षितिज-तल के समानान्तर होता है और कभी लम्ब की दिशा में।

चन्द्रमा के दृश्य गोलार्ध का शुक्ल भाग दो वृत्तार्धों के बीच में होता है जिनमें से एक वृत्तार्ध द्रष्टा के सामनेवाले चन्द्रबिम्ब का होता है और दूसरा सूर्य के सामने वाले चन्द्रबिम्ब का। द्रष्टा के सामने वाले चन्द्रबिम्ब का वृत्तार्ध सूर्य की ओर किनारे पर होता है परन्तु सूर्य के सामने वाले चन्द्रबिम्ब का वृत्तार्ध भीतर की ओर होता है और द्रष्टा को तिरछी (obliquely) दिशा में देख पड़ता है इसलिए यह दीर्घ वृत्तार्ध के आकार का देख पड़ता है क्योंकि किसी वृत्त का छेद (projection) तिरछी रेखा में देखने पर दीर्घवृत्त (ellipse) होता है। इसकी जाँच कोई मनुष्य एक गोल चूड़ी और दीपक से सहज ही कर सकता है। चूड़ी लेकर दीवाल और दीपक के बीच में इस प्रकार थामना चाहिए कि चूड़ी का तल दीवाल के समानान्तर हो और दीपक का केन्द्र, चूड़ी का केन्द्र और दीवाल पर चूड़ी की छाया का केन्द्र समसूत्र में दीवाल के तल से समकोण पर हो। ऐसी दशा में चूड़ी की छाया गोल होगी। यदि चूड़ी इसी जगह थामे हुए तिरछी कर दी जाय जिससे इसका तल दीवाल से समानान्तर न रहे अथवा चूड़ी के तल को दीवाल के समानान्तर रखते हुए चूड़ी को नीचे ले जायँ या ऊपर उठा दें जिससे तीनों के केन्द्रों को मिलाने वाली रेखा दीवाल की लम्ब दिशा में न हो तब दीवाल पर चूड़ी की

जो छाया पड़ेगी वह बिल्कुल गोल न होगी वरन् दीर्घवृत्त के आकार की होगी। पहली दशा में छाया के दीर्घवृत्त का दीर्घ अक्ष सम दिशा (horizontal) में होगा और दूसरी दशा में ऊर्ध्वाधर (vertical)। इसी प्रकार चन्द्रबिम्ब के शुक्ल भाग की भीतरी सीमा दीर्घवृत्तार्ध होती है जिसका दीर्घ अक्ष चन्द्रबिम्ब के व्यास के



चित्र ११६

चित्र ११६ Hugh Godfray M. A. की A Treatise on Astronomy से लिया गया है।

समान होता है और लघु अक्ष सदैव परिवर्त्तनशील। अब यह बतलाया जायगा कि सूर्य और चन्द्रमा के स्थानों के अनुसार शुक्ल भाग की वृद्धि या क्षीणता किस प्रकार होती है।

मान लो कि च चन्द्रमा का केन्द्र, च द द्रष्टा की दिशा, क ख ग घ चन्द्र बिम्ब का वह तल जो द्रष्टा की दिशा से समकोण पर है, च र सूर्य की दिशा और ख ज घ चन्द्रबिम्ब का वह तल है जो च र दिशा से समकोण पर है। चन्द्र-पृष्ठ का जो खण्ड ख क घ और ख ज घ वृत्तार्धों के बीच में है वही चन्द्रबिम्ब का शुक्ल भाग है जो द्रष्टा को देख पड़ता है। परन्तु ख ज घ वृत्तार्ध को द्रष्टा तिरछा देखता है इसलिए यह क ख ग घ तल पर प्रलम्बित (projected) होकर दीर्घ वृत्तार्ध ख ट घ के रूप में देख पड़ता है। यही दीर्घवृत्तार्ध ख ट घ चंद्रबिम्ब के शुक्ल भाग की भीतरी सीमा है। यहाँ च ज चंद्रगोल की त्रिज्या है इसलिए च क के समाम है और च ट च ज का छेद्य है इसलिए

च ट = च ज कोज्या ज च ट

= च क कोज्या र च चा

क्योंकि कोण ज च ट चंद्रमा के उन तलों के बीच का कोण है जो द्रष्टा और सूर्य की दिशाओं से समकोण पर हैं इसलिये यह द्रष्टा की दिशा द च चा और सूर्य की दिशा च र के बीच के कोण र च चा के समान है। इसलिए

ट क = च क — च ट

= च क — च क कोज्या र च चा

= च क (१ — कोज्या र च चा)

= च क उत्क्रमज्या र च चा

कोण र च चा का मान सहज ही जाना जा सकता है क्योंकि त्रिभुज द च र का यह वहिःकोण है और इसके तीन भुज द च, च र और द र क्रमानुसार द्रष्टा से चंद्रमा, चंद्रमा से सूर्य और द्रष्टा से सूर्य की दूरियाँ हैं जो ज्ञात हो सकती हैं।

इस प्रकार यह सिद्ध है कि शुक्ल भाग का मान तिथि-वृद्धि के अनुपात के अनुसार नहीं बढ़ता जैसा कि नौवें श्लोक में बतलाया गया है क्योंकि किसी कोण की उत्क्रमज्या का मान उस कोण की वृद्धि के अनुपात से नहीं बढ़ता, जैसे यदि कोण दूना हो जाय तो उसकी उत्क्रमज्या भी दूनी नहीं हो जाती (देखो पृष्ठ १२०)।

शृङ्गोन्नति जानने का परिलेख—

दत्वाऽर्कसंज्ञितं विन्दुं ततो बाहुं स्वदिङ्मुखम्।
ततः पश्चान्मुखं कोटिं कर्णं कोट्यग्रमानुगम्॥११॥

कोटिकर्णयुतेरिन्दोः बिम्बं तात्कालिकं लिखेत् ।
कर्णसूत्रेण दिग्सिद्धि प्रथमं परिकल्पयेत् ॥१२॥
शुक्लं कर्णेन तद्बिम्बयोगाद्न्तमुखं नयेत् ।
शुक्लाग्रयाम्योत्तरयो मध्ये मत्स्यौ प्रसाधयेत् ॥१३॥
तन्मध्यसूत्रसंयोगाद् बिन्दु त्रिस्पृग्लिखेद्धनुः ।
प्राग्बिम्बं यादृगेव स्यात्तादृक् तत्र दिने शशी ॥१४॥
कोट्या दिक्साधनात्तिर्यक् शुक्लं तच्छृङ्गमुन्नतम् ।
दर्शयेदुन्नतां कोटिं कृत्वा चन्द्रस्य साऽऽकृतिः ॥१५॥
कृष्णे षड्भयुतं सूर्यं विशोध्येन्दोस्तथाऽसितम् ।
दद्याद्वामं भुजं तत्र पश्चिमे मण्डलं विधोः ॥१६॥

अनुवाद—(१०) समतल भूमि में सूर्य को सूचित करनेवाला विन्दु लिखकर इससे भुजकी दिशा में भुज के समान रेखा खींचकर इसके अग्र विन्दु से पच्छिम की ओर १२ अंगुल की कोटि रेखा खींचे और इस कोटि रेखा के अग्रविन्दु को सूर्य को सूचित करनेवाले विन्दु से मिलाकर कर्ण खींचे। (११) कोटि और कर्ण के संपात-विन्दु को केन्द्र मान कर तात्कालिक चंद्रबिम्ब के समान एक वृत बनावे। पहले इसकी परिधि पर कर्ण रेखा के आधार पर दिशाओं के चिह्न बनावे। (१२) कर्ण रेखा और चन्द्रबिम्ब के सम्पात विन्दु से केन्द्र की ओर कर्ण-रेखा पर चन्द्रमा के शुक्ल भाग का चिह्न बनावे। इस चिह्न और चन्द्रबिम्ब के उत्तर दक्षिण विन्दुओं से दो मत्स्य बनावे। (१३) इन मत्स्यों के मध्य से जाने वाली रेखाओं के सम्पात विन्दु को केन्द्र मानकर एक धनु खींचे जो तीनों विन्दुओं को अर्थात् शुक्लाग्र विन्दु और उत्तर दक्षिण विन्दुओं को स्पर्श करे। इस धनु और चन्द्रबिम्ब के पूर्व भाग के बीच-में जैसा चित्र होता है वैसा ही चन्द्रमा उस दिन देख पड़ता है। (१४) अब कोटि के आधार पर चन्द्रबिम्ब की परिधि पर दिशाओं के चिह्न बनावे। कोटि रेखा से सम-कोण बनानेवाली और चन्द्रबिम्ब के जानेवाली रेखा के ऊपर शुक्ल भाग का जो शृङ्ग रहेगा वही उन्नत देख पड़ेगा और आकाश में चन्द्रमा की आकृति वैसी ही देख पड़ेगी। (१५) कृष्णपक्ष में सूर्य की राशि में ६ राशि जोड़ने से जो आवे उसे चन्द्रमा के भोगांश से घटाकर चन्द्रबिम्ब के असित अर्थात् अप्रकाशित भाग का साधन उसी प्रकार करना चाहिए। यहाँ भुज की दिशा उलटी होती है और चन्द्रबिम्ब के पच्छिम भाग में काले भाग की वृद्धि होती है।

विज्ञान-भाष्य—इन श्लोकों में यह बतलाया गया है कि चन्द्रमा के शुक्ल भाग का परिलेख किस प्रकार बनाया जाता है। मान लो कागज का पृष्ठ समतल

भूमि या पट्टी है जिस पर परिलेख बनाना है और विन्दु रवि का स्थान है (देखो चित्र ११७)। यदि ६-८ श्लोकों के अनुसार जाने हुए भुज का मान र भ के समान

चित्र ११७

हो और इसकी दिशा दक्षिण हो तो र विन्दु से दक्षिण ओर, और उत्तर हो तो उत्तर की ओर र भ के समान एक रेखा खींचो जिसका भ सिरा भुज-अग्र कहा जा सकता है। इस भुज-अग्र से पच्छिम की ओर कोटि के समान अर्थात् १२ अंगुल के समान एक रेखा च तक खींचो। इस च विन्दु को कोटि-अग्र कहते हैं और इसी को तात्कालिक चन्द्रबिम्ब का केन्द्र समझना चाहिए। र च रेखा को कर्ण कहते हैं जिसकी चर्चा आठवें श्लोक में की गयी है। च को केन्द्र मानकर तात्कालिक चन्द्रबिम्ब के व्यासार्ध च पर एक वृत्त खींचो जो परिलेख में चन्द्रबिम्ब सूचित करता है। कर्ण-रेखा को इतना बढ़ाओ कि वह चन्द्रबिम्ब के दूसरी ओर प तक पहुँच जाय। च विन्दु से जाती हुई एक लम्ब रेखा प पू पर खींचो जो चन्द्रबिम्ब के उ, द विन्दुओं पर पहुँचे। इन उ, पू, द, प विन्दुओं को चन्द्रबिम्ब की क्रमानुसार उत्तर, दक्षिण और पच्छिम दिशाएँ समझो। नौवें श्लोक के अनुसार आये हुए चन्द्रमा के शुक्ल भाग का जो परिमाण हो पू से उतनी ही दूरी पर च की ओर एक विन्दु छ रखो। उ छ द विन्दुओं से होता हुआ जो धनु खींचा जायगा वही

चन्द्रमा के शुक्ल भाग का भीतरी किनारा है और उस दिन चन्द्रमा के शुक्ल भाग की वही आकृति होगी जो उ छ द और उ पू द धनुओं के बीच में है। उ छ द धनु खींचने के लिए यह रीति बतलायी गयी है कि उ को केन्द्र मानकर छ पर धनु खींचो और छ को केन्द्र मानकर उ पर धनु खींचो; इन दोनों धनुओं के योग-विन्दुओं को मिलाने वाली रेखा खींचो। इसी प्रकार द और छ विन्दुओं पर भी धनु खींच कर उनके योग-विन्दुओं को मिलाने वाली रेखा खींचो। यह दोनों रेखाएँ जहाँ चन्द्रबिम्ब के भीतर काटें उसको केन्द्र मान कर छ विन्दु पर जो धनु खींचा जायगा वह उ छ द विन्दुओं को स्पर्श करेगा और वही चन्द्रमा के शुक्ल भाग का भीतरी किनारा होगा।

उ, छ, द, विन्दुओं पर जानेवाले वृत्त का केन्द्र जानने की रीति रेखा-गणित की रीति से मिलती जुलती है क्योंकि धनुओं के योग विन्दुओं को मिलाने-वाली रेखाएँ उ छ और द छ रेखाओं की समविभाजक लम्ब रेखाएँ हैं जिनका सम्पात् विन्दु उ छ द वृत्त का केन्द्र है। चित्र में क विन्दु इसी रीति से स्थिर किया गया है। अब क को केन्द्र मानकर क छ त्रिज्या से उ छ द धनु खींचा गया और उ छ द पू क्षेत्र की आकृति जानी गयी जो चन्द्रमा के शुक्ल भाग की आकृति है जिसमें उ द चन्द्रमा के शृङ्ग हैं।

यह जानने के लिए कि कौन शृङ्ग उन्नत अर्थात् उठा हुआ है चन्द्र-बिम्ब की दिशाओं में दूसरी कल्पना करने को १४वें श्लोक में कहा गया है परन्तु मेरी समझ में इसकी आवश्यकता नहीं है। कोटि-अग्र च से भुजा भ र के समानान्तर एक रेखा खींचो। जो शृङ्ग इस रेखा के ऊपर होता है वही उन्नत कहा जाता है। दिये हुए चित्र में उत्तर शृङ्ग उन्नत है।

चित्र से स्पष्ट है कि यदि भुज की दिशा दक्षिण हो तो चन्द्रमा का उत्तर शृङ्ग उन्नत होगा और भुज की दिशा उत्तर हो तो दक्षिण शृङ्ग उन्नत होगा। परन्तु यदि भुजा शून्य हो अर्थात् न उत्तर हो, न दक्षिण, तो चन्द्रमा का कोई शृङ्ग उन्नत न होगा वरन् सम होगा।

यह बतलाया जा चुका है कि शुक्ल भाग की वृद्धि जानने की जो रीति दी गयी है वह स्थूल है और उ छ द धनु भी वृत्त की परिधि का अंश नहीं है वरन् दीर्घवृत्त की परिधि का अंश है। इसलिए परिलेख की यह रीति स्थूल है परन्तु काम चलाने के लिए पर्याप्त है।

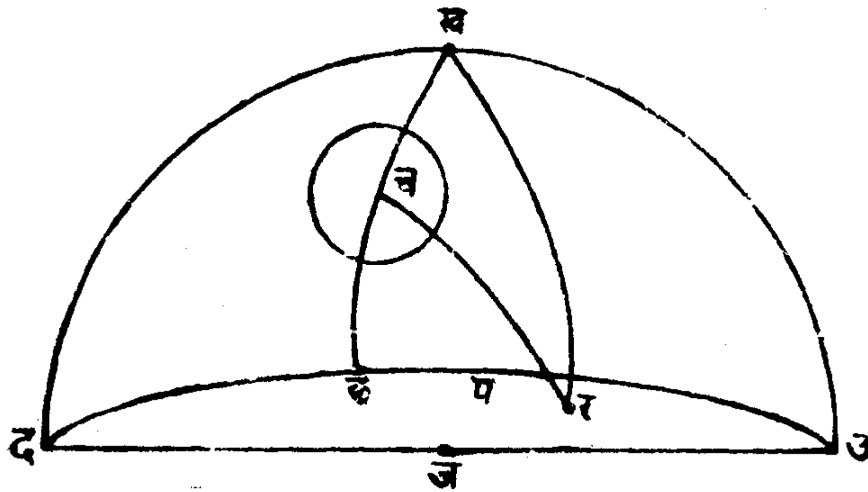
कृष्ण पक्ष के लिए नियम में जो संशोधन किया गया है उससे चन्द्रमा के असित भाग का ज्ञान होता है। परन्तु मेरी समझ में यदि सूर्योदयकालिक सूर्य की

राशि से चन्द्रमा की राशि घटाकर शुक्ल भाग की गणना की जाय और परिलेख बनाया जाय तो अधिक अच्छा है।

अब संक्षेप में यह बतला देना उचित होगा कि शुद्ध गणित की रीति से शृङ्गोन्नति की गणना कैसे की जाती है।

शृङ्गोन्नति की गणना की नवीन रीति—

सूर्य और चन्द्र बिम्बों के केन्द्रों से जानेवाले महावृत्त से चन्द्रशृङ्गों को मिलानेवाली रेखा समकोण बनाती है। खमध्य और चन्द्र बिम्ब के केन्द्र से जाने वाला महावृत अर्थात् दृङ्मण्डल पहले महावृत्त से जो कोण बनाता है वही शृङ्गोन्नति के कोण के समान होता है इसलिए शृङ्गोन्नति जानने के लिए इसी कोण के जानने की आवश्यकता होती है जो गोलीय त्रिकोणमिति के एक सूत्र के अनुसार जिसकी चर्चा त्रिप्रश्नाधिकार में कई स्थानों पर की गयी है सहज ही



चित्र ११८

उ ख द=यामोत्तर वृत्त ख =खमध्य

ज =देखने वाले का स्थान उ ज द=उत्तर-दक्षिण रेखा

उ प द=पच्छिम क्षितिज

च =पच्छिम गोल में चन्द्रमा का स्थान

र =अस्त हुए सूर्य का स्थान

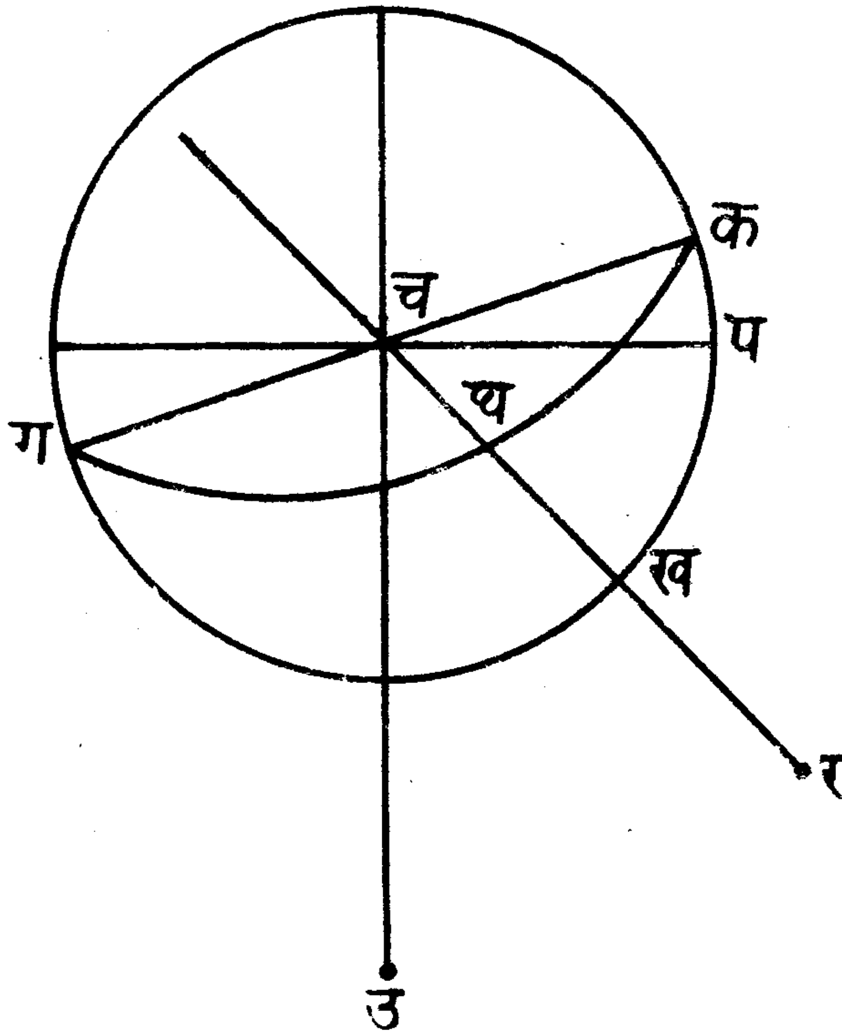
ख च =चन्द्रमा का नतांश

ख र =सूर्य का नतांश

च र=सूर्य और चन्द्रमा के बीच का अन्तर

∠ र ख च=सूर्य और चन्द्रमा के दिगंशों का अन्तर

मालूम हो सकता है। यदि सूर्य और चन्द्रमा के विषुवांश और क्रान्ति मालूम हों तो विषुवांश से विषुव काल और नतकाल जाने जा सकते हैं और नतकाल, क्रान्ति तथा अक्षांश से पृष्ठ २९१ के सूत्र (१) के नतांश और इससे पृष्ठ २७३ में दिये हुए सूत्र से दिगंश जाने जा सकते हैं। चित्र ११८ से विदित होता है कि इनके आधार पर शृङ्गोन्नति कैसे जानी-जा सकती है।



चित्र ११९

च=चन्द्र बिम्ब का केन्द्र

उ च=चन्द्र केन्द्र का ऊर्ध्व वृत्त (दृङ्मण्डल)

र च=सूर्य की दिशा

क ख ग घ=चन्द्रमा का शुक्ल भाग

∠उ च र=शृङ्गोन्नति का कोण=∠क च प

गोलीय त्रिकोणमिति के सूत्र के अनुसार,

कोज्या च र = कोज्या ख र × कोज्या ख च + ज्या ख र × ज्या ख च × कोज्या ∠ र ख च

इस सूत्र से जब च र आ जाय तब,

$$\text{कोज्या} \angle \text{ख च र} = \frac{\text{कोज्या ख र} - \text{कोज्या ख च} \times \text{कोज्या च र}}{\text{ज्या ख च} \times \text{ज्या च र}}$$

कोण ख च र को १८० अंश से घटाने पर जो कोण आवेगा वही शृङ्गोन्नति वा कोण होगा क्योंकि यह ∠ छ च र के समान है। यदि चन्द्रमा से सूर्य उत्तर होगा तो उत्तर शृङ्ग उन्नत होगा और दक्षिण होगा तो दक्षिण शृङ्ग उन्नत रहेगा। यदि सूर्य और चन्द्रमा दोनों के दिगंश एक होंगे तो शृङ्ग सम होगा। इतना जान लेने पर चन्द्रमा के शृङ्गोन्नति का परिलेख इस प्रकार खींचना चाहिए जैसा चित्र ११६ से प्रकट होता है।

यह स्पष्ट है कि सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार सूर्य और चन्द्रमा को स्पष्ट करने से शृङ्गोन्नति की गणना ठीक नहीं हो सकती क्योंकि सूर्य-सिद्धान्त के ध्रुवाङ्कों में कुछ स्थूलता आ गयी है। इसलिए उचित है कि ग्रहों के ध्रुवाङ्क शुद्ध वेध द्वारा फिर से स्थिर किये जायँ।

इस प्रकार शृङ्गोन्नत्यधिकार नामक दसवें अध्याय का विज्ञान-भाष्य समाप्त हुआ।

एकादश अध्याय

पाताधिकार

(संक्षिप्त वर्णन)

[श्लोक १-२—वैधृति और व्यतीपात पातों की परिभाषा। श्लोक ३-५—दोनों पातों का स्वरूप और प्रभाव। श्लोक ६—सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्ति कब निश्चय करे। श्लोक ७-८—यह जानना कि पातकाल बीत चुका है अथवा होनेवाला है। श्लोक ९-११—सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्तियाँ कब समान होती हैं। श्लोक १२-१३—स्पष्ट क्रान्ति से शुद्ध पातकाल जानना। श्लोक १४-१५—पातकाल का आरम्भ, मध्य और अंत कब होता है। श्लोक १६-१८—पातकाल में क्या करना चाहिये। श्लोक १९—पात दो बार कब होते हैं, और अभाव कब होता है। श्लोक २०—पंचांग संबंधी व्यतीपात योग जानना। श्लोक २१—भसंधि और गंडांत काल की परिभाषा। श्लोक २२—पात और गंडांतकाल किस लिए निषिद्ध हैं श्लोक २३—उपसंहार।]

इस अधिकार में गणितज्योतिष के साथ साथ फलितज्योतिष का भी समावेश है। यही इसकी विशेषता है। दूसरी विशेषता यह है कि इसके बाद जो तीन अध्याय आवेंगे उनका नाम 'अधिकार' नहीं है वरन् 'अध्याय' है। इस अधिकार में जिन पातों की चर्चा है उनको महापात भी कहते हैं।

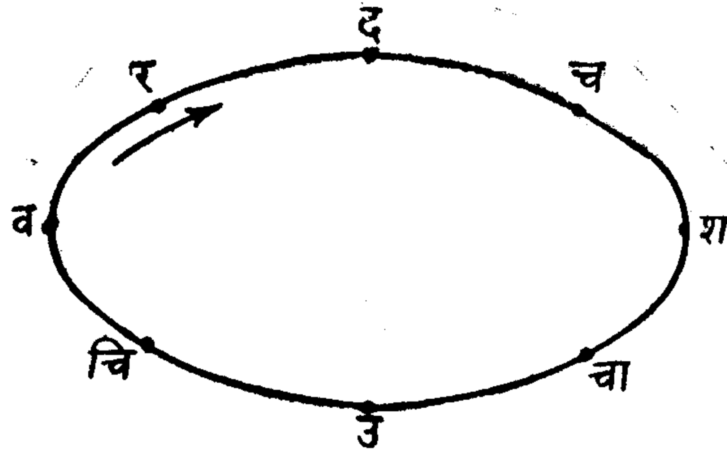
वैधृति और व्यतीपात की परिभाषा—

एकायनगतौ स्यातां सूर्याचन्द्रमसौ यदा।
तद्युतौ मण्डले क्रान्त्योः तुल्यत्वे वैधृताभिधः॥
विपरीतायनगतौ चन्द्रार्कौ क्रान्तिलिप्तिकाः।
समस्तदा व्यतीपातो भगणार्धे तयोर्युतौ॥

अनुवाद—(१) जब सूर्य और चन्द्रमा एक अयन में होते हैं और जब इनके भोगांशों का योग १२ राशि के समान होता है तब दोनों की क्रान्तियाँ समान होने से वैधृति नामक पात होता है। (२) जब सूर्य और चन्द्रमा भिन्न अयनों में होते हैं और जब इनके भोगांशों का योग ६ राशि के समान होता है तब इनकी क्रान्तियाँ समान होने से व्यतीपात नामक पात होता है।

विज्ञान-भाष्य—जब सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्तियाँ समान होती हैं तभी वैधृति और व्यतीपात नामक पात होते हैं अर्थात् जब विषुवद्वृत्त से सूर्य और चन्द्रमा की दूरियाँ समान होती हैं तभी वैधृत और व्यतीपात होते हैं। परन्तु सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्तियाँ समान होते हुए भी दोनों उत्तर हो सकती हैं या दोनों दक्षिण; अथवा एक उत्तर और दूसरी दक्षिण। अब यह देखना है कि यह दशा कब होती है। जब सूर्य विषुवद्वृत्त पर होता है तब इसकी क्रान्ति शून्य होती है। यह घटना वर्ष में दो बार होती है—सायन मेष और सायन तुला संक्रान्ति के दिन। सायन मेष से सायन कर्क तक सूर्य की उत्तर क्रान्ति शून्य से बढ़ते-बढ़ते आजकल २३ अंश २७ कला तक हो जाती है। सायन कर्क से घटने लगती है और सायन तुला तक घट कर शून्य फिर हो जाती है। सायन तुला से क्रान्ति दक्षिण हो कर सायन मकर तक बढ़कर २३ अंश २७ कला हो जाती है। सायन मकर से सायन मेष तक घटते-घटते शून्य हो जाती है। जब सूर्य सायन मकर से आगे बढ़ता है तब यह उदय या अस्त होने के समय क्षितिज पर उत्तर की ओर खसकता हुआ देख पड़ता और यह गति सायन कर्क तक देखी जाती है इसीलिए सायन मकर संक्रान्ति से सायन कर्क संक्रान्ति तक के समय को उत्तरायण कहते हैं। परन्तु सायन कर्क संक्रान्ति के उपरान्त सूर्य क्षितिज पर दक्षिण की ओर खसकता हुआ देख पड़ता है इसीलिए सायन कर्क संक्रान्ति से सायन मकर संक्रान्ति तक के समय को दक्षिणायन कहते हैं। चन्द्रमा भी सूर्य की तरह अपने लगभग एक मास के चक्कर में आधे मास तक उत्तरायण और आधे मास तक दक्षिणायन रहता है परन्तु इसकी कक्षा क्रान्ति-वृत्त से कुछ भिन्न होने के कारण तथा इसकी कक्षा और क्रान्तिवृत्त के सम्पात स्थानों राहु और केतु से स्वयम् वक्री होने के कारण इसके उत्तरायण और दक्षिणायन का समय स्थिर करना कुछ कठिन है। परन्तु मोटे हिसाब से यह कहने में कोई हर्ज नहीं है कि जब चन्द्रमा सायन मकर राशि के निकट आता है तब यह उत्तरायण होता है और जब सायन कर्क राशि के निकट आता है तब दक्षिाणयन होता है क्योंकि चन्द्र-कक्षा और क्रान्तिवृत्त के बीच का कोण अर्थात् चन्द्रमा का परमशर केवल ५°९′ के लगभग है। दिये हुए चित्र १२० से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

मान लो दिया हुआ दीर्घवृत्त क्रान्तिवृत्त है और इसके व और श विन्दु क्रम से वसन्तऔर शरद सम्पात हैं जहाँ विषुवद्वृत्त क्रान्तिवृत्त से मिलता है। सरलता के लिए विषुवद् वृत्त नहीं दिखलाया गया है। यदि मान लिया जाय कि चन्द्रमा की कक्षा क्रान्तिवृत्त ही है तो यह स्पष्ट है कि जब सूर्य और चन्द्रमा व और श बिन्दुओं से समान दूरी पर होंगे तभी दोनों की क्रान्तियाँ समान होंगी। अब देखना है कि



चित्र १२०

चन्द्रमा के एक फेरे के यह घटना कितनी बार हो सकती है। मान लो र सूर्य का स्थान वसंत-सम्पात व और दक्षिणायन विन्दु द के बीच में किसी जगह है। जब चन्द्रमा भी र पर रहेगा अर्थात् अमावस्या के दिन, तब दोनों की क्रान्तियाँ एक ही रहेंगी। जब चन्द्रमा च, चा और चि पर रहेगा तब भी दोनों की क्रान्ति समान रहेंगी यदि वर=चश=शचा=चिव। परन्तु जब चन्द्रमा चा विन्दु पर रहेगा तब पूर्णिमा होगी। सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार पातकालिक क्रान्तिसाम्य के लिए अमावस्या और पूर्णिमा के दिन का विचार नहीं किया जाता इसलिए जब चन्द्रमा च और चि पर रहेगा तभी क्रान्ति साम्य का योग आवेगा।

पहले श्लोक में बतलाया गया है कि जब सूर्य और चन्द्रमा के भोगांशों का योग ३६० अंश हो तब वैधृति नामक पात होता है। यह दशा तभी हो सकती है जब सूर्य र, च, चा या चि पर हो तो चन्द्रमा क्रम से चि, चा, च या र पर हो क्योंकि तभी वसंत सम्पात व से सूर्य और चन्द्रमा के भोगांशों का योग ३६० अंश हो सकता है। चित्र से स्पष्ट है कि र और चि स्थान उत्तरायण विन्दु उ, वसंत सम्पात व और दक्षिणायन बिन्दु द के बीच में है इसलिए र और चि दोनों उत्तरायण हैं। इसी प्रकार च, चा दोनों दक्षिणायन हैं। इसीलिए पहले श्लोक में बतलाया गया है कि जब सूर्य और चन्द्रमा एक अयन में हों और दोनों के (सायन) भोगांशों का योग ३६० अंश हो तभी वैधृति पात होता है। इसके प्रतिकूल जब दोनों भिन्न अयन में हों और भोगांशों का योग १८० अंश हो तब व्यतीपात होता है। चित्र में यदि सूर्य और चन्द्रमा र, च पर हों तो दोनों के भोगांशों का योग १८०° होगा और चा, चि पर हों तो भी दोनों के भोगांशों का योग ३६०+१८० अंश अथवा १८० अंश होगा। परन्तु र और च अथवा च और चि स्थान भिन्न अयनों में है, इसलिए व्यतीतपात नामक क्रान्तिसाम्य योग तभी होता है जब सूर्य और चन्द्रमा भिन्न अयनों

में हों और सूर्य वसंत-सम्पात से जितना आगे या पीछे हो उतना ही चन्द्रमा शरद सम्पात से पीछे या आगे हो ।

दोनों पातों का स्वरूप और स्वभाव—

तुल्यांशुजालसंपर्कात्तयोस्तु प्रवहाहतात्[1] ।
तद्दृक्क्रोधभवो वह्निः लोकाभावाय जायते ।।३।।
विनाशयति पातोऽस्य लोकानामसकृद्यतः ।
व्यतीपातः प्रसिद्धोऽत्र संज्ञाभेदेन वैधृतः ।।४।।
स कृष्णो दारुणवपुः लोहिताक्षो महोदरः ।
सर्वानिष्टकरो रौद्रः भूयोभूयः प्रजायते ।।५।।

अनुवाद—(३) क्रान्ति-साम्य-कालिक सूर्य और चन्द्रमा की समान किरणों के मिलने से और उनकी दृष्टि रूपी क्रोध से उत्पन्न अग्नि प्रवह वायु से प्रज्वलित होकर संसार के लिए अशुभ फल उत्पन्न करती है । (४) जब सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्तियाँ समान होती हैं तब यह पात संसार को बारंबार नाश करता है । इसे व्यतीपात और वैधृति कहते हैं । (५) यह पात रंग में काला, कठिन शरीरवाला, लाल नेत्रवाला, बड़ा पेटवाला, सबका अशुभ करने वाला और भयंकर है और बार-बार उत्पन्न होता है ।

विज्ञान भाष्य—इन तीन श्लोकों में दोनों पातों का बड़ा भयंकर चित्र खींचा गया है परन्तु तो भी काशी के अच्छे-अच्छे पंचांगों में भी इनकी चर्चा बहुत कम रहती है । बम्बई प्रान्त के भी पंचांगों में इनकी चर्चा नहीं देख पड़ती । हाँ, गुजराती के 'प्रत्यक्ष पंचांग' में इसका विचार अवश्य रहता है । इससे जान पड़ता है कि सूर्य-सिद्धान्त के इन महापातों का विचार फलित ज्योतिषी लोग बहुत कम करते हैं ।

व्यतीपात और वैधृति नाम के योग भी होते हैं । पहले की क्रम संख्या १७ और दूसरे की २७ है । व्यतीपात नामक योग का सम्बन्ध व्यतीपात नामक पात से कुछ भी नहीं है परन्तु वैधृत योग का सम्बन्ध इस नाम के पात से उस समय अवश्य रहा होगा जब वसंत-संपात अश्विनी नक्षत्र के आदि स्थान में था ।

सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्ति कब निश्चय करनी चाहिए—

भास्करेन्द्वोर्भचक्रान्तश्चक्रार्धावधिसंस्थयोः ।
दृक्तुल्यसाधितांशादि युक्तयोः स्वावपक्रमौ ।।६।।

---

१. वेंक्टेश्वर प्रेस वाले और बंगला संस्करण में प्रवहावृतः पाठ है ।

अनुवाद—(६) त्रिप्रश्नाधिकार में बतलायी हुई रीति से छाया सूर्य का भोगांश जानकर इससे स्पष्टाधिकार की रीति से जाने हुए स्पष्ट सूर्य को घटाकर अयनांश निकाले और यह अयनांश स्पष्ट सूर्य और चन्द्रमा के भोगांशों में जोड़े। अयनांश-संस्कृत सूर्य और चन्द्रमा अर्थात् सायन सूर्य और सायन चन्द्रमा के भोगाशों का जोड़ जब १२ राशि या ६ राशि हो तब इन दोनों की स्पष्ट क्रान्ति निश्चय करनी चाहिए।

विज्ञान-भाष्य—यह जानने के लिए कि सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्ति कब समान होती है, सायन सूर्य और सायन चन्द्रमा के भोगांश जानने की आवश्यकता है इसीलिए स्पष्ट सूर्य और चन्द्रमा में अयनांश जोड़ने की विधि बतलायी गयी है। इस रीति से क्रान्ति-साम्य का जो समय आवेगा वह स्थूल होगा क्योंकि चन्द्रमा की कक्षा क्रान्तिवृत्त से भिन्न है। इस विषय की और बातें चित्र १२० के साथ ही बतला दी गयी हैं।

यह जानना कि पात-काल बीत गया है या आनेवाला है—

अथौजपदगस्येन्दोः क्रान्तिर्विक्षेपसंस्कृता ।
यदि स्यादधिका भानोः क्रान्तेः पातो गतस्तदा ॥७॥
ऊना चेत्स्यात्तदा भावी वामं युग्मपदस्य च ।
पदान्यत्वं विधोः क्रान्तिर्विक्षेपाच्चेद्विशुध्यति ॥८॥

अनुवाद—(७) सूर्य और चन्द्रमा की स्पष्ट क्रान्ति जानने के बाद यह देखना चाहिये कि चन्द्रमा वसंत-संपात से विषम पद में है या सम पद में। यदि चन्द्रमा विषम पद में हो और इसकी विक्षेप-संस्कृत क्रान्ति अर्थात् स्पष्ट क्रान्ति सूर्य की स्पष्ट क्रान्ति से अधिक हो तो समझना चाहिये कि पातकाल बीत गया है, (८) और यदि कम हो तो समझना चाहिये कि पातकाल आनेवाला है। परन्तु यदि चन्द्रमा समपद में हो तो इसका उलटा समझना चाहिये अर्थात् समपद में चन्द्रमा की स्पष्ट क्रान्ति सूर्य की क्रान्ति से अधिक हो तो समझना चाहिए कि पातकाल आनेवाला है और कम हो तो समझना चाहिए कि पातकाल बीत गया है। यदि चन्द्रमा के विक्षेप या शर से इसकी क्रान्ति कम हो और घटाना पड़े तो ऊपर के नियम में विषमपद के बारे में जो कुछ कहा गया है वह समपद के बारे में समझना चाहिये और समपद के बारे में जो कहा गया है वह विषमपद के बारे में समझना चाहिए।

विज्ञान-भाष्य—ओज और युग्मपद अथवा विषम और समपद की चर्चा स्पष्टाधिकार पृष्ठ १२६-२७ में अच्छी तरह हुई है। यहाँ वसंत-संपात बिन्दु से सायन कर्क बिन्दु या दक्षिणायन बिन्दु तक प्रथम पद, दक्षिणायन बिन्दु से शरद सम्पात

बिन्दु तक द्वितीय पद, शरद सम्पात से सायन मकर या उत्तरायण बिन्दु तक तृतीय पद और उत्तरायण बिन्दु से बसंत सम्पात तक चतुर्थ पद है। प्रथम और तृतीय पदों को विषम या ओज पद और द्वितीय तथा चतुर्थ पद को सम पद या युग्म पद कहा गया है।

चित्र १२० से स्पष्ट होता है कि जब चन्द्रमा विषमपद अर्थात् व द या श उ में कहीं रहेगा तब व्यतीपात या वैधृति के लिए सूर्य को क्रमानुसार द श या उ व में होना चाहिए। यह भी स्पष्ट है कि सूर्य या चन्द्रमा की क्रान्ति विषम पद में बढ़ती रहती है और समपद में घटती रहती है। इसलिए जब चन्द्रमा विषम पद में और सूर्य सम पद में होता है तब चन्द्रमा की क्रान्ति बढ़ती रहती है और सूर्य की घटती रहती है। इसलिए छठें श्लोक से पातकाल का जो स्थूल समय निकाला जाता है उस समय यदि चन्द्रमा की क्रान्ति सूर्य की क्रान्ति से अधिक है तो चन्द्रमा की क्रान्ति और बढ़ती जायगी और सूर्य की क्रान्ति घटती जायगी। इसलिए दोनों की क्रान्ति इस समय से पहले ही समान हो चुकी है और पातकाल बीत गया है। इसके विरुद्ध यदि चन्द्रमा की क्रान्ति सूर्य की क्रान्ति से कम हो तो चन्द्रमा की क्रान्ति बढ़ती रहने के कारण वह समय आने वाला है जब दोनों की क्रान्ति समान होगी और तभी पातकाल होगा। इसी तरह जब चन्द्रमा समपदों में होगा तब सूर्य विषम पदों में होगा। ऐसी दशा में चन्द्रमा की क्रान्ति घटती और सूर्य की बढ़ती रहेगी। इसलिए यदि चन्द्र-क्रान्ति अधिक है तो घटते-घटते सूर्य की क्रान्ति के बराबर हो जायगी और पातकाल श्लोक ६ से निकाले हुए समय के बाद आवेगा। परन्तु यदि चन्द्रक्रान्ति कम हो तो पातकाल बीता हुआ समझना चाहिए।

आठवें श्लोक के उत्तरार्ध में यह बतलाया गया है कि यदि विक्षेप से मध्यक्रान्ति घटाकर स्पष्ट क्रान्ति आती हो तो ऊपर बतलाए हुए नियम से भिन्न नियम काम में लाना होगा क्योंकि यदि मध्य क्रान्ति और शर की दिशा भिन्न है तो सीधे ही यह नहीं बतलाया जा सकता कि चन्द्रक्रान्ति बढ़ रही है या घट रही है। ऐसी दशा में १ दिन आगे और पीछे की क्रान्ति जानने से ही काम चलेगा।

असकृत्कर्म से तुल्य क्रान्तियों का स्थान निश्चय करना—

क्रान्तिज्ये त्रिज्ययाऽभ्यस्ते परक्रान्तिज्ययोद्धृते।
तच्चापान्तरमर्धं वा योज्यं भाविनि शीतगौ ॥९॥
शोध्यं चन्द्राद् गते पाते सूर्यस्य गतिताडितम्।
चन्द्रभुक्त्या हृतं भानो लिप्तादि शशिवत्फलम् ॥१०॥
तद्वच्छशाङ्कपातस्य फलं देयं विपर्ययात्।
कर्मैतदसकृत्कुर्यात् यावत्क्रान्ती समे तयोः ॥११॥

अनुवाद—(९) सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्तिज्या को त्रिज्या से गुणा करके परम क्रान्तिज्या से भाग देना चाहिये। लब्धियों के धनु बनाकर उनका अन्तर निकाले। इस अन्तर को या इसके आधे को चन्द्रमा के भोगांश में जोड़ दे यदि पात-काल आने वाला हो और (१०) यदि पातकाल बीत चुका हो तो उस अन्तर या इसके उसके आधे को चन्द्रमा के भोगांश से घटा दे। इस अन्तर या आधे को जिसको जोड़ा या घटाया जाय उस दिन की सूर्य की गति से गुणा करके उस दिन की चन्द्रगति से भाग देना चाहिए। जो लब्धि आवे उसे सूर्य के भोगांश में उसी तरह जोड़ना या घटाना चाहिए जैसे चन्द्रमा में जोड़ा या घटाया है। (११) इसी प्रकार उस अन्तर या उसके आधे को चन्द्रपात अर्थात् राहु की गति से गुणा करके चन्द्र गति से भाग देकर जो लब्धि आवे उसे राहु के भोगांश में उलटे क्रम से संस्कार दे अर्थात् यदि चन्द्रमा में अन्तर जोड़ा हो तो राहु में घटाना चाहिए और घटाया है तो जोड़ना चाहिए। इन संस्कारों के बाद सूर्य और चन्द्रमा की स्पष्ट क्रान्ति फिर जाननी चाहिए। यदि दोनों समान न हों तो फिर ९-१० श्लोकों में बतलायी गयी क्रिया करनी चाहिए। यह असकृत्कर्म (Method of approximation) तब तक करना चाहिए जब तक सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्ति समान न हो जायँ।

विज्ञान-भाष्य—नौवें श्लोक के पूर्वार्ध में जो नियम बतलाया गया है वह स्पष्टाधिकार के २८वें श्लोक में बतलाये गये नियम का विलोम है (पृष्ठ १२२-२३)। यहाँ क्रान्तिज्या, त्रिज्या और परम क्रान्तिज्या से भोगांश जानने की रीति है। इस रीति से जो भोगांश आवेगा वह ९० अंश से कम होगा। इससे अधिक जानने की आवश्यकता भी नहीं है क्योंकि हमको तो यही देखना है कि वसंत या शरद सम्पात से सूर्य और चन्द्रमा कितनी दूर हैं। स्पष्ट क्रान्ति भिन्न होने से यह भोगांश भी भिन्न होंगे परन्तु एक दूसरे के निकट अवश्य होंगे। इन भोगांशों का जो अन्तर होगा उतना ही चन्द्रमा पातकाल से आगे या पीछे होगा। यदि पातकाल आनेवाला है तो यह अन्तर चन्द्रमा के भोगांश में जोड़ना चाहिए क्योंकि उस समय तक चन्द्रमा इतना ही आगे बढ़ जायगा और यदि पातकाल बीत चुका है तो यह अन्तर चन्द्रमा के भोगांश से घटाना चाहिए क्योंकि बीते हुए पातकाल के समय चन्द्रमा इतना ही पीछे रहेगा। परन्तु सूर्य भी इतने समय में कुछ न कुछ स्थान छोड़ेगा। इसलिए पातकाल का सूर्य का स्थान भी स्पष्ट करना आवश्यक है। इसके लिए अनुपात से काम लेना चाहिए कि जब चन्द्रमा की दैनिक गति इतनी है तो सूर्य की दैनिक इतनी है इसलिए जब चन्द्रमा की गति उस अन्तर के समान होगी तब सूर्य की गति क्या होगी अर्थात् चन्द्र

दैनिक गति : चन्द्र अन्तर :: सूर्य की दैनिक : सूर्य अन्तर । इस प्रकार जो अन्तर आवे उसे सूर्य के भोगांश में जोड़ना चाहिए यदि चन्द्रमा का अन्तर जोड़ा गया हो, नहीं तो घटाना चाहिए । इस प्रकार पातकाल में सूर्य और चन्द्रमा के स्पष्ट भोगांश मालूम हो जायँगे । इससे फिर सूर्य और चंद्रमा की स्पष्ट क्रान्ति जाननी चाहिये । परन्तु चन्द्रमा की स्पष्ट क्रांति जानने के लिए चंद्रमा का शर जानना आवश्यक है जो चंद्रमा के पात राहु या केतु पर अवलम्बित है और इतनी देर में चंद्रपात भी वक्रीगति से अपना स्थान बदल देगा इसलिए उसी प्रकार अनुपात से राहु का भी परिवर्तन जान लेना चाहिये । परन्तु इस परिवर्तन का संस्कार राहु में विलोम रीति से करना चाहिए अर्थात् जब चंद्रमा और सूर्य में जोड़ना हो तो इसमें घटाना चाहिये और घटाना हो तो जोड़ना चाहिये क्योंकि राहु की गति उलटी होती है । जब चंद्र-क्रांति में चंद्र-शर का संस्कार करके स्पष्ट क्रान्ति आ जाय तब देख पड़ेगा कि सूर्य की क्रान्ति अब भी कुछ भिन्न है । इन क्रान्तियों से ६-११ श्लोकों में बतलायी गयी रीति को फिर दुहरावे और तब तक दुहरावे जब तक दोनों की क्रान्ति समान न हो जाय । इसी को असकृत्कर्म कहते हैं जिसकी चर्चा पीछे कई जगह हो चुकी है ।

६-११ श्लोकों में बतलाये गये नियम की इतनी व्याख्या पर्याप्त है । यहाँ मुझे केवल इतना ही कहना है कि यह सब झंझट करने पर भी पातकाल का ठीक-ठीक ज्ञान होना असंभव है क्योंकि चंद्रमा की गति इतनी सरल नहीं है जैसी सूर्य-सिद्धान्त में बतलायी गयी है । इसका शुद्ध स्थान जानने के लिए कई संस्कार करने पड़ते हैं जिनकी चर्चा स्पष्टाधिकार में अच्छी तरह की गयी है । इसलिए यदि पातकाल का ठीक-ठीक निर्णय करना हो तो आधुनिक वेधों से ही काम लेना चाहिए जिसके लिए आधुनिक सिद्धान्त के आधार पर सारणी आदि तैयार करनी चाहिये ।

नौवें श्लोक के उत्तरार्ध में बतलाया गया है कि सूर्य और चंद्रमा के भोगांशों के अंतर या इस अन्तर के आधे को जोड़ना या घटाना चाहिए । टीकाकारों ने लिखा है कि आधा तब लेना चाहिए जब अन्तर अधिक हो । इससे गणना में तो कोई भेद नहीं पड़ता, केवल कुछ सरलता आ जाती है क्योंकि उद्देश्य तो यह है कि असकृत्कर्म से वह समय जाना जाय जिस समय दोनों की क्रान्ति समान होती है ।

पातकाल अर्धरात्रि से पहले या पीछे—

क्रान्त्योस्समत्वे पातोऽथ प्रक्षिप्तांशोनिते विधौ ।
हीनेऽर्धरात्रिकाद्यातो भावि तात्कालिकेऽधिके ।।१२।।

अनुवाद—सूर्य और चन्द्रमा की स्पष्ट क्रान्तियाँ जब समान होती हैं तभी पातकाल होता है । नौवें श्लोक के अनुसार जाना हुआ पातकालिक स्पष्ट चन्द्रमा का

भोगांश स्पष्टाधिकार के अनुसार जाने हुए उस दिन के अर्धरात्रिकालिक स्पष्ट चन्द्रमा के भोगांश से कम हो तो समझना चाहिए कि पातकाल अर्धरात्रि से पहले हो चुका है और अधिक हो तो समझना चाहिए कि पातकाल अर्धरात्रि के बाद होगा।

विज्ञान-भाष्य—चन्द्रमा का भोगांश सदैव बढ़ता रहता है इसलिए यदि पातकालिक स्पष्ट चन्द्रमा का भोगांश अर्धरात्रिकालिक स्पष्ट चन्द्रमा के भोगांश से कम हो तो निश्चय है कि पातकाल अर्धरात्रि से पहले हो चुका है और अधिक है तो अर्धरात्रि के बाद होगा।

पातकाल अर्धरात्रि से कितना पहले या पीछे है—

स्थिरीकृतार्धरात्रेन्द्वोः द्वयोर्विवरलिप्तिका:।
षष्टिघ्नाश्चन्द्रभुक्त्याप्ताः पातकालस्य नाडिका: ॥१३॥

अनुवाद—उपर्युक्त नियम से निश्चित किया हुआ पातकालिक चन्द्र-भोगांश और उस दिन के अर्धरात्रिकालिक चन्द्रभोगांश के अंतर को कलाओं में लिखकर साठ से गुणा करने और गुणनफल को अर्धरात्रिकालिक चन्द्रगति से भाग देने से जो लब्धि आवेगी उतनी ही घड़ी पहले या पीछे पातकाल हुआ है या होगा।

विज्ञान-भाष्य—पातकालिक चन्द्रमा और अर्धरात्रिकालिक चंद्रमा के भोगांशों के अंतर से यह मालूम होगा कि पातकालिक चन्द्रमा अर्धरात्रिकालिक चन्द्रमा से कितना पहले या पीछे था। फिर यह गणना करनी चाहिए कि अर्धरात्रिकालिक चन्द्रमा की दैनिक गति ६० घड़ी में होती है तो वह अंतर कितनी घड़ी में हुआ होगा। इतना ही आगे या पीछे पातकाल होना चाहिए।

यदि सूर्य और चन्द्र की गणना आधुनिक सिद्धान्त द्वारा बहुत सूक्ष्म की जाय तो भी इस नियम से जो पातकाल आवेगा वह स्थूल होगा क्योंकि पातकालिक गणना बहुत सूक्ष्म होती है और चन्द्रमा की दैनिक गति इतनी अधिक होती है कि यदि अर्द्धरात्रिकालिक गति को पातकालिक समझ लिया जाय जैसा कि इस नियम में समझा गया है तो सूक्ष्मता नहीं आ सकती क्योंकि यदि पातकाल और अर्द्धरात्रि काल में बहुत अंतर है तो दोनों समय की चन्द्रगतियाँ समान नहीं होंगी इसलिए मेरी समझ में यह अच्छा होगा कि इस नियम से जो पातकाल आवे उस समय से दो घड़ी आगे और पीछे की चन्द्रगतियों से काम लिया जाय।

पातकाल के आरम्भ और समाप्त होने का समय जानना—

रवीन्द्वोर्मानयोगार्धं षष्ट्या संगुण्य भाजयेत्।
तयोर्भुक्त्यन्तरेणाप्तं स्थित्यर्धं नाडिकादिकम् ॥१४॥

पातकालस्स्फुटो मध्यः सोऽपि स्थित्यर्धवर्जितः ।
तस्य संभवकालस्स्यात् संयुक्तश्चान्तसंज्ञितः ।।१५।।

अनुवाद—(१४) सूर्य और चन्द्रबिम्बों के मानों को जोड़कर आधा करे और इसको ६० से गुणा करके दोनों की गतियों के अन्तर से भाग दे दे तो लब्धि स्थित्यर्ध घड़ी होती है। (१५) इसको स्पष्ट पातकाल से जो पात का मध्यकाल होता है घटा देने से जो समय आता है उसी समय पातकाल का आरम्भ होता है और जोड़ने से जो समय आता है उसी समय पातकाल का अन्त होता है।

विज्ञान-भाष्य—स्थित्यर्ध की जो परिभाषा चन्द्रग्रहणाधिकार पृष्ठ ४६८-७० में दी गयी है वही यहाँ भी समझनी चाहिए। पृष्ठ ४६६ में

$$\frac{६० \times \text{च फ}}{\text{चा} - \text{रा}}$$

सूत्र दिया गया है। यदि इसमें च फ की जगह सूर्य और चन्द्र-बिम्बों के योग का आधा रख दिया जाय तो पातकाल का स्थित्यर्ध हो जायगा जिसे जानने का नियम १४वें श्लोक में बतलाया गया है। १५वें श्लोक में स्थित्यर्ध से आरम्भ और अन्तकाल उसी तरह जाना जाता है जिस तरह ग्रहण का स्पर्श और मोक्षकाल जाना जाता है।

इसका सार यह है कि जिस समय चन्द्रमा और सूर्य के बिम्बों के किनारों की क्रान्ति समान होती है उस समय से पातकाल का आरम्भ होता है और जिस समय दोनों बिम्बों के केन्द्रों की क्रान्ति समान होती है उस समय पात का मध्य-काल होता है जिसके जानने की रीति १३ श्लोकों तक बतलायी गयी है और जिस समय दोनों बिम्बों के दूसरे किनारों की क्रान्तियाँ भी समान हो जाती हैं उस समय पातकाल का अन्त होता है।

पातकाल का प्रभाव और उसके योग्य कर्म—

आद्यन्तकालयोर्मध्ये कालो ज्ञेयोऽतिदारुणः ।
प्रज्वलज्ज्वलनाकारः सर्वकर्मसु गर्हितः ।।१६।।
एकायनगतं यावदर्केन्द्वोर्मण्डलान्तरम् ।
संभवस्तावदेवास्य सर्वकर्मविनाशकृत् ।।१७।।
स्नानदानजपश्राद्धव्रतहोमादिकर्मसु ।
प्राप्यते सुमहच्छ्रेयः तत्कालज्ञानतस्तदा ।।१८।।

अनुवाद—(१६) पातकाल के आरंभ से अंत तक का समय बड़ा दारुण, प्रज्वलित, और अग्नि स्वरूप होता है। यह सब शुभ कार्यों के लिए निन्दित है। (१७) जब तक सूर्य बिम्ब के किसी विन्दु की क्रान्ति चन्द्रबिम्ब के किसी विन्दु की

क्रान्ति के समान होती है तब तक सब कर्मो का नाश करनेवाले इस पात की स्थिति रहती है। (१८) इस काल में स्नान, दान, जप, श्राद्ध, व्रत, होम आदि कर्मों से अत्यन्त पुण्य प्राप्त होता है और इस काल के ज्ञान से भी पुण्य होता है।

विज्ञान-भाष्य—जैसे पूर्णिमा, अमावस्या आदि कालों में स्नान, दान, जप अदि काम अच्छे समझे जाते हैं वैसे ही पातकाल में भी यह कर्म अच्छे बतलाये गये हैं और जिस प्रकार मुहूर्त-चितामणि में बतलाये गये बहुत से योगों में शुभ कर्म करना वर्जित है उसी प्रकार यहाँ भी। परन्तु ज्योतिषी लोग यथार्थ में इन महापातों का विचार कम करते हैं, वह शायद इसलिए कि इसकी गणना पुराने सिद्धान्तों के आधार पर तो असम्भव ही है। इसीलिए पंचांगों में इनकी चर्चा नहीं के बराबर रहती है। हिन्दू विश्वविद्यालय के विश्व-पंचांग में भी दो एक जगह चर्चा करके छोड़ दिया जाता है यद्यपि इसके लेखकों को नाविक-पंचांग की सहायता से पातकाल का जानना बड़ा सुगम होता है क्योंकि और बातों में तो ये नाविक पंचांग से सहायता लेते ही हैं। १८वें श्लोक की अंतिम बात निस्संदेह बहुत सुन्दर है। उसमें यह बतलाया गया है कि पातकाल के जानने से भी पुण्य होता है अर्थात् पातकाल का शुद्ध-शुद्ध ज्ञान प्राप्त करना भी पुण्य कार्य है जो तभी संभव है जब सूर्य, चन्द्रमा इत्यादि की गणना ठीक-ठीक दृक्तुल्यता से की जाय और ज्योतिष सिद्धान्त का पठन-पाठन नवीन वैज्ञानिक रीति से किया जाय। केवल प्राचीन सिद्धान्तों को ही सब कुछ समझना और उनमें देशकाल के अनुसार संशोधन न करना तथा शुद्ध वैज्ञानिक रीति को निंदित समझना बुद्धिमानी नहीं है और न प्राचीन ज्योतिषाचार्यों की पद्धति के ही अनुकूल है।

रवीन्द्वोः तुल्यता क्रान्त्योर्विषुवत्सन्निधौ यदा।
द्विर्भवेच्च तदा पातः स्यादभावो विपर्ययात् ॥१६॥

अनुवाद - जब विषुवद् वृत्त के निकट अर्थात् वसंत संपात या शरद संपात के पास सूर्य चन्द्रमा की क्रान्तियाँ समान होती हैं तब पात दो बार होते हैं। इसके विपरीत दशा में अर्थात् सायन कर्क या सायन मकर बिन्दु के समीप पात का अभाव होता है।

विज्ञान-भाष्य—जब सूर्य और चन्द्रमा वसंत या शरद सम्पात के पास होते हैं तब इनकी क्रान्तियों की गति बहुत तीव्र होती है। इसलिए जब चन्द्रमा विषुवत् वृत्त के दक्षिण होता है और सूर्य उत्तर तब दोनों की क्रान्तियाँ समान होती हैं। इसके बाद जब चन्द्रमा शीघ्र गति से कारण उत्तर हो जाता है तब भी इसकी क्रान्ति सूर्य की क्रान्ति के समान हो जाती है। इस प्रकार क्रान्ति-साम्य दो बार एक ही दो दिन के बीच में हो सकता है। परन्तु जब सूर्य और चन्द्रमा दोनों

विषुवद्वृत्त से उत्तर रहेंगे तब अमावस्या का समय होगा और ऐसी दशा में पात-काल नहीं माना जाता जैसा कि पहले और दूसरे श्लोकों से सिद्ध होता है । इसलिए जान पड़ता है कि केवल यह विशेषता बतलाने के लिए श्लोक १६ दिया गया है कि क्रान्ति-साम्य दो बार हो सकता है, दो ही एक दिन के अन्तर पर ।

परन्तु यदि सूर्य सायन कर्क या सायन मकर विन्दुओं के समीप हो तो इसकी क्रान्ति परम क्रान्ति के निकट रहती है । यदि इस समय चन्द्रमा की क्रान्ति शर की दिशा भिन्न होने के कारण कम हो तो क्रान्ति साम्य नहीं हो सकता और न वैधृति या व्यतीपात का ही संयोग घट सकता है ।

तीसरे प्रकार का व्यतीपात जानने की रीति--

शशाङ्कार्कयुतेर्लिप्ता भभोगेन विभाजिताः ।
लब्धं सप्तदशान्तोऽन्यो व्यतीपातः तृतीयकः ।।२०।।

अनुवाद—सूर्य और चन्द्रमा के भोगांशों को जोड़कर कला बनावे और इसको ८०० से भाग दे दे । यदि लब्धि १७ के अन्त में हो अर्थात् १७ के निकट हो तो तीसरा व्यतीपात होता है ।

विज्ञान भाष्य—स्पष्टाधिकार के श्लोक ६५ में विष्कम्भादि २७ योगों के जानने की रीति दी हुई है । इनमें १७ वां योग व्यतीपात बतलाया गया है (देखो पृष्ठ २१६) । इसी के जानने की रीति यहाँ भी दुहरायी गयी है । वह इसलिए, जिससे मालूम हो जाय कि इस अधिकार में क्रान्ति-साम्य से उत्पन्न जिन महापातों की चर्चा है उन्हीं के समकक्ष व्यतीपात नामक योग भी होता है । इसी तर्क से कहा जा सकता है कि २७वें योग वैधृति को भी वैधृति नामक महापात के समान समझना चाहिए ।

यहां एक बात ध्यान देने की है । व्यतीपात और वैधृति योगों की गणना सूर्य और चन्द्रमा के निरयण भोगांशों से की जाती है परन्तु महापातों की गणना सायन भोगांशों से की जाती है । इसलिए यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि २०वें श्लोक में जो नियम दिया गया है उसमें सायन भोगांशों का प्रयोग करना चाहिए या निरयण । गूढ़ार्थ प्रकाशिका संस्कृत टीका में तो अयनांश संस्कृत भोगांश अर्थात् सायन भोगांश से ही गणना करने को बतलाया गया है और इसी का अनुसरण पं० माधव पुरोहित और पं० इन्द्रनारायण द्विवेदी ने किया है । परन्तु स्वामी विज्ञानानन्द ने अपनी बंगला टीका में कोई चर्चा नहीं की है । मुझे जान पड़ता है कि यह व्यतीपात विष्कम्भादि योगों का ही व्यतीपात है, उससे भिन्न नहीं है । इसलिए जिस प्रकार इन योगों की गणना होती है उसी प्रकार इस श्लोक में बतलाये हुए व्यतीपात की

गणना करनी चाहिए अर्थात् निरयण भोगांशों से ही इसकी गणना होनी चाहिए तथा गूढ़ार्थ प्रकाशिका के अयनांश-संस्कृत भोगांशों को न लेना चाहिए। सायन भोगांश लेने में एक अड़चन और है। वह यह कि इससे जो व्यतीपात या वैधृति काल आवेगा वह विष्कम्भादि योगों के व्यतीपात और वैधृति से भी भिन्न होगा। इस प्रकार एक मास में चार-चार व्यतीपात और वैधृति कालों की कल्पना करनी पड़ेगी जो ग्रन्थकार की तर्क-शैली से भी अनुचित जान पड़ती है।

भसंधि और गंडान्त योग कब होता है—

सार्पेन्द्रपौष्णधिष्ण्यानामन्त्याः पादा भसन्धयः।
तदग्रभेष्वाद्यपदो गण्डान्तं नाम कीर्त्यते ॥२१॥

अनुवाद—आश्लेषा, ज्येष्ठा और रेवती नक्षत्रों के चौथे चरण नक्षत्र-सन्धि हैं और इनके आगेवाले नक्षत्रों मघा, मूल, और अश्विनी के प्रथम चरण गंडांत कहलाते हैं।

विज्ञान-भाष्य—मुहूर्त-चिन्तामणि तथा अन्य मुहूर्त ग्रन्थों में इनकी चर्चा विशेष प्रकार से है। नक्षत्र-संधि या गंडांत में जो संतान होती है उसके लिए साधारणतः कहा जाता है कि मूल में हुई है। इसे अशुभ मानते हैं। बच्चा पैदा होने के २७वें दिन जब वही गंडांत या भसंधि काल फिर आता है तब मूलशान्ति के लिए विशेष प्रकार की पूजा की जाती है। यहाँ गंडांत की चर्चा करने का अर्थ यही जान पड़ता है कि जो अशुभ फल महापातों का होता है यही गंडांत का भी होता है जैसा कि अगले श्लोक से प्रकट है। यह भसंधियाँ चौथी, आठवीं, और बारहवीं राशियों के अंतिम भाग हैं और गंडांत पाँचवीं, नवीं और पहली राशियों के आरंभिक भाग हैं।

व्यतीपातत्रयं घोरं गण्डान्त त्रितयं तथा।
एवं भसन्धित्रितयं सर्वं कर्मसु वर्जयेत् ॥२२॥

अनुवाद—तीनों व्यतीपात, तीनों गंडांत और नक्षत्रसंधियाँ बहुत भयंकर होती हैं इसलिए ये सब शुभकामों में वर्जित हैं अर्थात् जब ये हों तब कोई शुभ कर्म नहीं करना चाहिये।

विज्ञान-भाष्य—इस श्लोक में वैधृत व्यतीपात की चर्चा नहीं है परन्तु तर्क शैली से और पहले के श्लोकों से जान पड़ता है कि वैधृति भी इसमें सम्मिलित है। टीकाकारों ने ऐसा ही किया भी है।

उपसंहार—

इत्येवं परमं पुण्यं ज्योतिषां चरितं हितं।
रहस्यमिदमाख्यातं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥२३॥

अनुवाद—मैंने यह परम पवित्र अत्यन्त रहस्मयुक्त और हितकर ज्योति-विज्ञान की कथा कही, अब और क्या सुनना चाहता है ?

विज्ञान-भाष्य—सूर्यांश पुरुष ने मयासुर से जिस ज्योतिर्विज्ञान की कथा पहले अधिकार में आरंभ की थी उसका अंत यहाँ हुआ। इस पर मयासुर ने जो प्रश्न किये उसकी चर्चा आगे तीन अध्यायों में होगी। इसलिए यहाँ तक जो कुछ कहा गया है उसे सूर्य-सिद्धान्त का पूर्वार्ध कहते हैं। इसके आगे जो तीन अध्याय हैं उन्हें उत्तरार्ध कहते हैं। अब हम यहाँ संक्षेप में यह बतला कर कि महापातों की गणना कैसे की जाती है इस पूर्वार्ध को समाप्त करेंगे।

पंचांगों से महापातकों का स्थूलकाल निश्चय करना—विष्कम्भादि २७ योगों की गणना पंचांगों में अवश्य रहती है। इनको जानने की रीति स्पष्टाधिकार के ६५ वें श्लोक में बतलायी गयी है जो यह है—सूर्य और चन्द्रमा के भोगांशों को जोड़ कर कला बनाओ और इसको ८०० से भाग दे दो। जो लब्धि आवे उससे बीते हुए योगों की संख्या मालूम होती है और जो शेष बचता है उससे वर्तमान योग का ज्ञान होता है।

इस नियम में सूर्य और चन्द्रमा के भोगांश अश्विनी नक्षत्र के आदि बिन्दु से नापे जाते हैं और महापातों की गणना के लिए भोगांशों की नाप वसंत-संपात विन्दु से की जाती है। यदि दोनों के लिए भोगांशों की नाप वसंत-संपात से होती तो महापातों का समय जानना बड़ा सुगम होता क्योंकि जिस समय १४वें योग हर्षण का आधा समय बीतता उस समय सूर्य और चन्द्रमा के भोगांशों का जोड़ १८० अंश होता और व्यतीपात नामक पातकाल का मध्य होता है और जिस समय वैधृति योग का अंत होता उसी समय वैधृति नामक पात का मध्यकाल होता। परन्तु बात ऐसी नहीं है। इसलिए इसमें थोड़ा सा संस्कार करना पड़ेगा। सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार अश्विनी का आदि-विन्दु आजकल जहाँ है वहाँ से वेध-द्वारा-सिद्ध वसंत संपात विन्दु २२ अंश ४५ कला के लगभग पच्छिम है। इसी अन्तर को अयनांश कहते हैं। यदि यहाँ से सूर्य और चन्द्रमा के भोगांश लिये जायँ तो दोनों का जोड़ ४५ अंश ३० कला अधिक होता है। व्यतीपात के लिए सूर्य और चन्द्रमा के सायन भोगांशों का जोड़ १८० अंश होता है, इसलिए १८० अंश—४५ अंश ३० कला=१३४ अंश ३० कला=८०७० कला। यह अश्विनी नक्षत्र के आदि-विन्दु से व्यतीपातकालिक सूर्य और चन्द्रमा के भोगांशों का जोड़ है। इसको ८०० कला से भाग देने पर १० लब्धि और ७० कला शेष होते हैं। १० से सिद्ध होता है कि व्यतीपात काल में गंड योग बीता रहता है और वृद्धि योग का आरम्भ हुआ रहता है। इस-

लिए स्थूल रूप से व्यतीपात काल को निश्चय करने के लिए जिस समय वृद्धि योग का आरम्भ होता है उसी समय के सूर्य चन्द्रमा की स्पष्ट क्रान्ति जानकर व्यतीपात काल की सूक्ष्म गणना करनी चाहिए।

वैधृति नामक पातकाल का निश्चय करने के लिए ४५ अंश ३० कला को ३६० अंश से घटाना चाहिए। ऐसा करने से शेष आया ३१४ अंश ३० कला=१८८७० कला। इसको ८०० से भाग देने पर २३ लब्धि और ४७० कला शेष हुए, जिससे प्रकट होता है कि वैधृति नामक पातकाल में २३ वाँ योग शुभ बीता रहता है और २४वें योग शुक्ल का भी आधा बीत चुका रहता है। इसलिए स्थूल रूप से वैधृति नामक पात शुक्ल योग के आधे भाग पर होता है। इसलिए सूक्ष्म गणना करने के लिए इसी समय के सूर्य, और चन्द्रमा और स्पष्टक्रान्ति जाननी चाहिए। इसके लिए सूर्य, चन्द्रमा और राहु के स्पष्ट भोगांश, सूर्य की क्रान्ति, चन्द्रमा की मध्यमक्रान्ति और शर जानकर इसका संस्कार करके चन्द्रमा की स्पष्ट क्रान्ति जाननी चाहिए जिसकी रीति स्पष्टाधिकार पृ० १९९-२०० में बतलायी गयी है। इसलिए उदाहरण में इन सब बातों के बतलाने की आवश्यकता नहीं जाना पड़ती। यहाँ केवल यह दिखलाना पर्याप्त होगा कि सूर्य-सिद्धान्त के ध्रुवाङ्कों से महापातों के समय की गणना करना न तो सुगम ही है और न शुद्ध जब कि आधुनिक रीति से जाने हुए ध्रुवाङ्कों से यह बात शुद्धतापूर्वक जानी जा सकती है। मेरे पास इस समय १९२९ ई० का नाविक पंचांग मौजूद है इसलिए इसी की सहायता से वैशाख शुक्ल १९८६ विक्रमीय के व्यतीतपात नामक महापात की गणना की जाती है।

१९८६ के वैशाख शुक्ल पक्ष में गंड योग का अंत १४ मई को ४२ घड़ी ४० पल पर होता है और इसके बाद वृद्धि योग का आरम्भ होता है इसलिए १४ या १५ मई को व्यतीपात नामक महापात होगा : अब नाविक पंचांग से यह देखना चाहिए कि इन तारीखों में किस समय सूर्य और चन्द्रमा की स्पष्ट क्रान्तियाँ समान होंगी। नाविक पंचांग के पृष्ठ ५१ से जान पड़ता है कि १४ मई को सूर्य का उत्तर क्रान्ति १८ अंश ३४ कला और ४२ विकला है तथा १५ मई को १८ अंश ४९ कला और ६ विकला है। परन्तु चन्द्रमा की क्रान्ति १४ मई को २२ अंश से अधिक है इसलिए १४ मई को व्यतीपात काल नहीं आवेगा परन्तु १५ मई की शाम को यह घटना हो सकती है क्योंकि,

	अंश	कला	वि०
१५ मई के मध्याह्न काल में सूर्य की क्रान्ति	१८	४९	६.१
१६ ,, ,, ,,	१९	३	१०·९

२४ घंटे में क्रान्तिगति		१४	४·८
१५ मई के सायंकाल ६ बजे चंद्रक्रान्ति	१८	५४	११·५
,, ,, ७ ,, ,,	१८	४२	३३.४
१ घंटे में चन्द्रक्रान्ति की गति		११	३८.१

यहाँ सूर्य क्रान्ति बढ़ रही है और चन्द्रमा की घट रही है इसलिए चन्द्रमा की क्रान्ति की गति से यह निश्चय है कि ६ बजे के आसपास ही दोनों की क्रान्तियां समान होंगी। ६ घंटे में सूर्य की क्रान्ति की गति $\frac{६}{२४}$ × (१ कला ४·८ विकला) = ३ कला ३१·२ विकला है। इसलिए ६ बजे सायंकाल सूर्य की क्रान्ति हुई १८ अंश ४९ कला ६·१ विकला + ३ कला ३१·२ विकला = १८ अंश ५२ कला ३७·३ विकला। यह छः बजे की चन्द्र क्रान्ति से कम है और चन्द्र-क्रान्ति घट रही है तथा सूर्य-क्रान्ति बढ़ रही है इसलिए छः बजे के बाद ही कुछ मिनिटों में दोनों की क्रान्तियाँ समान होंगी। यह जानने के लिये दोनों की क्रान्तियों के अन्तर को दोनों की क्रान्ति-गतियों के अंतर से भाग देना चाहिये।

	अंश	कला	विकला
६ बजे चन्द्र-क्रान्ति =	१८	५४	११·५
,, सूर्य क्रान्ति =	१८	५२	३७·३
दोनों का अन्तर =		१	३४·२ = ९४·२ वि०

सूर्य की १ घंटे की क्रान्ति-गति = $\frac{\text{१४ कला ४·८ वि०}}{\text{२४}}$

= ३५·२ विकला

चंद्रमा की १ घंटे की क्रान्ति गति = ११ कला ३८·१ विकला

दोनों की दिशाएँ भिन्न हैं इसलिए इनका अंतर जानने के लिए इनको जोड़ना चाहिए। इसलिए दोनों का योग = १२ कला १३·३ विकला = ७३३·३ विकला।

जब ७३३·३ विकला का अंतर १ घंटे में होता है तब ९४·२ विकला का अंतर कितने समय में होगा।

७३३·३ : ९४·२ : : १ घंटा : इष्टकाल

∴ इष्टकाल = $\frac{\text{९४·२} \times \text{१}}{\text{७३३·३}}$ घंटा

= $\frac{\text{९४·२} \times \text{·१} \times \text{६०}}{\text{७३३·३}}$ मिनट

= ७ मिनट ४३ सेकंड के लगभग

इसलिए १५ मई को ६ बजकर ७ मिनट ४३ सेकंड पर व्यतीपात का मध्यकाल होगा। परन्तु यह गणना ग्रीनविच के टाइम से की गई है जो भारतवर्ष के रेलवे टाइम से ५ घंटा ३० मिनट पीछे है। इसलिए भारतवर्ष के रेलवे टाइम के अनुसार १५ मई की रात को ११ बजकर ३७ मिनट ४३ सेकंड पर व्यतीपात काल का मध्य होगा।

अब स्थित्यर्ध-काल जानकर इससे घटाया जाय तो व्यतीपात काल का प्रारंभ काल आ जायगा और जोड़ा जाय तो अंतकाल आवेगा। यह १४वें श्लोक के अनुसार सुगमतापूर्वक हो सकता है इसलिए उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

इस प्रकार पाताधिकार नामक ११वें अध्याय का विज्ञान भाष्य समाप्त हुआ।

द्वादश अध्याय

भूगोलाध्याय

(संक्षिप्त वर्णन)

[श्लोक १-६—मयासुर के भूगोल, खगोल तथा ऋतु सम्बन्धी अनेक प्रश्न। श्लोक १०-११—सूर्यांश पुरुष का मयासुर से उत्तर सुनने के लिए कहना। श्लोक १२-२३—वासुदेव से लेकर पंच महाभूतों तक की उत्पत्ति का क्रम। श्लोक २४—पाँच ताराग्रहों की उत्पत्ति। श्लोक २५—बारह राशियों और २७ नक्षत्रों की उत्पत्ति। श्लोक २६-३०—चराचर जगत् की उत्पत्ति। श्लोक ३०-३३—ब्रह्माण्ड में ग्रहों की कक्षाओं का क्रम और पृथ्वी का स्थान। श्लोक ३३-३६—भूगोल में पाताल, सुमेरु आदि के स्थान। श्लोक ३७-४२—विषुवत्‌रेखा पर स्थित चार नगरों के स्थान। श्लोक ४३-४५—विषुवत्‌रेखा और उत्तर दक्षिण ध्रुवों का सम्बन्ध। श्लोक ४६—भिन्न ऋतुओं में सूर्य की किरणें मन्द और तीव्र क्यों होती हैं। श्लोक ४७-५०—उत्तर ध्रुवनिवासियों अर्थात् देवताओं और दक्षिण ध्रुव निवासियों अर्थात् असुरों के दिन रात का विभाग। श्लोक ५१—देवताओं और असुरों के मध्याह्न और मध्यरात्रि का समय। श्लोक ५२-५३—भूगोल पर १८० अंश की दूरी पर रहने वाले एक दूसरे को ऊपर नीचे क्यों समझते हैं। श्लोक ५४—भूगोल चाक की तरह क्यों देख पड़ता है। श्लोक ५५-५८—भूतल पर दिन रात के घटने-बढ़ने का कारण। श्लोक ५६—किसी समय विषुवत्‌रेखा से कितनी दूरी पर सूर्य ठीक ऊपर देख पड़ता है। श्लोक ६०-६१—विषुवत्‌रेखा से कितनी दूरी पर ६० घड़ी का दिन और ६० घड़ी की रात होती है। श्लोक ६२-६०—घड़ी से भी बड़ा दिन या रात कहाँ होती है। श्लोक ६३-६७—दो दो महीने, चार चार और छः छः महीने का दिन या रात कहाँ होती है। श्लोक ६८—उत्तरायण और दक्षिणायन के दिन सूर्य कहाँ ठीक देख पड़ता है। श्लोक ६६—किसी वस्तु की छाया कहाँ किस दिशा में होती है। श्लोक ७०-७१—भूतल पर जब एक जगह सूर्य का उदय होता है तब कहाँ मध्याह्न रहता है और कहाँ मध्यरात्रि अथवा अस्तकाल। श्लोक ७२—ध्रुवों की दिशा में जाने से आकाशीय ध्रुओं की उन्नति और नक्षत्र-कक्षा की अवनति देख पड़ती है। श्लोक ७३—प्रवह वायु के द्वारा नक्षत्र-चक्र कैसे भ्रमण करता है। श्लोक ७४—देवताओं, पितरों और मनुष्यों के दिन रात का प्रमाण। श्लोक ७५-७७—ग्रहों की कक्षाओं और उनके भ्रमणकालों का सम्बन्ध। श्लोक

७८-७९—वर्षपति, मासपति, दिनपति तथा होरापतियों का सम्बन्ध। श्लोक ८०—नक्षत्र-कक्षा का विस्तार। श्लोक ८१-८४—आकाश-कक्षा का प्रमाण तथा इससे ग्रह की कक्षाओं और गतियों का सम्बन्ध। श्लोक ८५-९०—कक्षाओं का परिमाण योजनों में।]

इस अध्याय में भूगोल की उत्पत्ति, स्थिति, विस्तार आदि सभी बातों का निरूपण किया गया है, इसीलिए इसका नाम भूगोलाध्याय है। साथ ही साथ ग्रहों, नक्षत्रों और आकाश की कक्षाओं के प्रमाण भी दिये गये हैं।

मयासुर के प्रश्न और सूर्यांश पुरुष के उत्तर की भूमिका—

अथार्कांशसमुद्भूतं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः।
भक्त्या परमयाऽभ्यर्च्य पप्रच्छेदं मयोऽसुरः ॥१॥
भगवन् किंप्रमाणा भूः किमाकारा किमाश्रया।
किंविभागा कथं चाऽत्र सप्तपातालभूमयः ॥२॥
अहोरात्रव्यवस्थां च विदधाति कथं रविः।
कथं पर्येति वसुधां भुवनानि विभावयन् ॥३॥
देवासुराणामन्योन्यमहोरात्रं विपर्ययात्।
किमर्थं तत्कथं वा स्याद् भानोः भगणपूरणात् ॥४॥
पित्र्यं मासेन भवति नाडीषष्ट्या तु मानुषम्।
तदेव किल सर्वत्र न भवेत् केन हेतुना ॥५॥
दिनाब्दमासहोराणामधिपा न समाः कुतः।
कथं पर्येति भगणः सग्रहोऽयं किमाश्रयः ॥६॥
भूमेरुपर्युपर्यूर्ध्वाः किमुत्सेधाः किमन्तराः।
ग्रहर्क्षकक्ष्याः किम्मात्राः स्थिताः केन क्रमेण ताः ॥७॥
ग्रीष्मे तीव्राः करा भानोः न हेमन्ते तथाविधाः।
कियती तत्करव्याप्तिः मानानि कति किञ्च कैः ॥८॥
एतन्मे संशयं छिन्धि भगवन्भूतभावन।
अन्यो न त्वामृते छेत्ता विद्यते सर्वदर्शिवान् ॥९॥
इति भक्त्योदितं श्रुत्वा मयेनार्कांशसंभवः।
रहस्यतरमध्यायं पुनः प्राह यथाश्रुतम् ॥१०॥
श्रृणुष्वैकमना भूत्वा गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम्।
वक्ष्याम्यतीवभक्तानां नादेयं विद्यते मम ॥११॥

अनुवाद—(१) इसके उपरान्त मयासुर ने सूर्य के अंश से उत्पन्न हुए पुरुष को हाथ जोड़ कर प्रणाम करके और बड़ी भक्ति से पूजा करके यह पूछा। (२) हे भगवन्, इस पृथ्वी का परिमाण क्या है, इसका आकार कैसा है और यह किस के आधार पर है, इसके कितने विभाग हैं और इसमें सात पातालों की भूमि कैसे स्थित है। (३) सूर्य अहोरात्र की व्यवस्था कैसे करते हैं और भुवनों को प्रकाशित करते हुए पृथ्वी के चारों ओर कैसे घूमते हैं। (४) देवताओं और असुरों के दिन-रात एक दूसरे के विपरीत क्यों होते हैं और सूर्य का एक भगण (चक्कर) पूरा होने पर यह कैसे होता है। (५) पितरों का दिन-रात एक मास का और मनुष्यों का ६० घड़ियों का क्यों होता है। सब जगह एक ही प्रकार के दिन-रात क्यों नहीं होते। (६) दिन, वर्ष, मास और होरा (घंटा) के स्वामी समान क्यों नहीं होते, ग्रहों के साथ नक्षत्र मंडल कैसे घूमता है और इनका आधार क्या है। (७) ग्रहों और नक्षत्रों की कक्षाएँ पृथ्वी से ऊपर कितनी कितनी ऊँचाई पर तथा परस्पर कितने अन्तर पर हैं, इनके मान क्या हैं और ये किस क्रम से स्थित हैं। (८) ग्रीष्म ऋतु में सूर्य कि किरणें बहुत तीव्र क्यों होती हैं और हेमन्त ऋतु में वैसी क्यों नहीं होतीं। यह किरणें कितनी दूर दूर तक जाती हैं; सौर, चन्द्र आदि मान कितने हैं और इनसे क्या प्रयोजन निकलता है। (९) हे भूतभावन, भगवत् मेरी इन शंकाओं को दूर कीजिये क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं इसलिये आपके सिवा दूसरा मनुष्य मेरी शंकाओं को नहीं दूर कर सकता (१०) भक्ति से कहे हुए मयासुर के इन वचनों को सुनकर सूर्यांश पुरुष ने उससे फिर पहले के रहस्य स्वरूप दूसरा अध्याय कहा। (११) एकाग्रचित्त होकर यह अध्यात्म नामक तत्व सुनो जिसे मैं कहता हूँ क्योंकि भक्तों के लिए मैं कोई वस्तु अदेय नहीं समझता।

विज्ञान-भाष्य—मयासुर ने जितने प्रश्न किये हैं उनका उत्तर जानने की अभिलाषा सभी तत्वज्ञानियों को होती है। इस पर सूर्यांश पुरुष ने बतलाया है कि उत्तर में जिस रहस्य का प्रतिपादन किया जायगा वह अध्यात्म ज्ञान से सम्बन्ध रखता है। इस पर बहुत से लोग कह उठेंगे कि मयासुर के प्रश्नों का उत्तर तो कोई भी ज्योतिषी और भूगोलशास्त्री दे सकता है। यह विचार कुछ दूर तक ठीक है परन्तु सूर्यांश पुरुष ने इस संसार की उत्पत्ति की चर्चा की है वह तो अवश्य अध्यात्म संबंधी ही कही जा सकती है क्योंकि यह भौतिक विज्ञान से परे की बात है।

सृष्टि का क्रम—

वासुदेवः परं ब्रह्म तन्मूर्तिः पुरुषः परः।
अव्यक्तो निर्गुणः शान्तः पञ्चविंशात्परोऽव्ययः ॥१२॥
प्रकृत्यन्तर्गतो देवः बोध्यमानश्च सर्वगः।
संकर्षणोऽपः सृष्ट्वादौ तासुवीर्यमवासृजत् ॥१३॥

तदण्डमभवद्धैमं सर्वत्रतमसाऽऽवृतम् ।
तत्रानिरुद्धः प्रथमं व्यक्तीभूतस्सनातनः ॥१४॥
हिरण्यगर्भो भगवानेषच्छन्दसि पठ्यते ।
आदित्यो ह्यादिभूतत्वात् प्रसूत्या सूर्य उच्यते ॥१५॥
परं ज्योतिस्तमःपारे सूर्योऽयं सवितेति च ।
पर्येति भुवनान्येव भावयन्भूतभावनः ॥१६॥
प्रकाशात्मा तमोहन्ता महानित्येष विश्रुतः ।
ऋचोऽस्य मण्डलं सामान्युस्रा मूर्तिर्यजूंषि च ॥१७॥
त्रयीमयोऽयं भगवान् कालात्मा कालकृद्विभुः ।
सर्वात्मा सर्वगस्सूक्ष्मः सर्वमस्मिन्प्रतिष्ठितम् ॥१८॥
रथे विश्वमये चक्रं कृत्वा संवत्सरात्मकम् ।
छन्दांस्यश्वाः सप्तयुक्ताः पर्यटत्येष सर्वदा ॥१९॥
त्रिपादममृतं गुह्यं पादोऽयं प्रकटोऽभवत् ।
सोऽहङ्कारं जगत्सृष्ट्यै ब्रह्माणमसृजद्विभुः ॥२०॥
तस्मै वेदान्वरान्दत्वा सर्वलोकपितामहम् ।
प्रतिष्ठाप्याण्डमध्येतु स्वयं पर्येति भावयन् ॥२१॥
अथ सृष्ट्यां मनश्चक्रे ब्रह्माऽहङ्कारमूर्तिभृत् ।
मनसश्चन्द्रमा जज्ञे चक्षुषस्तेजसां निधिः ॥२२॥
मनसः खं ततो वायुरग्निरापो धरा क्रमात् ।
गुणैक वृद्धया पञ्चैव महाभूतानि जज्ञिरे ॥२३॥

अनुवाद—(१२) परं ब्रह्म वासुदेव हैं। इनकी मूर्ति परम पुरुष है जो अव्यक्त, निर्गुण, शान्त और अव्यय और सांख्य शास्त्र के पच्चीस तत्वोंसे परे हैं। (१३) बाहर भीतर सर्व व्यापक देवता ने प्रकृति में प्रवेश करके संकर्षण रूप से प्रारम्भ में जल की सृष्टि करके उसमें बीज रखा (१४) जो सोने का अंडा हो गया जिसके चारों ओर अंधकार था। इसमें सनातन अनिरुद्ध पहले प्रकट हुए। (१५) इन्हीं को वेदों में हिरण्यगर्भ भगवान् कहा गया है। पहले होने के कारण इन्हें आदित्य और सब चराचर जीवों को उत्पन्न करने के कारण इन्हें सूर्य कहते हैं। (१६) परम प्रकाशमय होने के कारण इन्हें सूर्य और अंधकार के अंत में होने के कारण सविता कहते हैं। यह भूतभावन अर्थात् स्थावर जंगम सृष्टि को उत्पन्न, पालन और संहार करनेवाले भगवान लोकों को प्रकाशमान करते हुए भ्रमण करते हैं। (१७) इन्हें ही प्रकाशात्मा अंधकार का नाश करनेवाले और वेदों में महान् तत्व कहते हैं।

इनका मंडल ऋग्वेद, करण सामवेद और मूर्ति यजुर्वेद हैं। (१८) इसलिए इनको वेदत्रयात्मक कहते हैं। इनसे काल की गणना होती है इसलिए इनको कालात्मा और कालकृत कहते हैं। यह सब की आत्मा, सर्वव्यापक, सूक्ष्म हैं और सब सृष्टि इनमें स्थित है। (१९) संसार रूपी रथ में संवत्सर रूपी चक्र बनाकर सात छंदों के सात घोड़ों से युक्त होकर यह सर्वदा भ्रमण करते हैं। (२०) इनके तीन चरण अमृत होने से अगम्य हैं और यह एक चरण प्रकट हुआ है। इसी प्रभु ने जगत् की सृष्टि के लिए अहङ्काररूपी ब्रह्मा को बनाया। (२१) इसके बाद सब लोकों के पितामह ब्रह्मा को श्रेष्ठ वेदों को देकर और इन्हें अंडे के बीच में स्थापित करके अनिरुद्ध भगवान् स्वयम् लोकों को प्रकाशित करते हुए भ्रमण करते हैं। (२२) इसके पश्चात् अहङ्कार मूर्तिधारी ब्रह्माजी ने सृष्टि की रचना करने का विचार किया। ब्रह्मा के मन से चंद्रमा और नेत्रों से तेजपुञ्ज सूर्य उत्पन्न हुए। (२३) मन से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी पांच महाभूत क्रम से एक एक गुण की वृद्धि से उत्पन्न हुए।

विज्ञान भाष्य—सूर्यांश पुरुष ने मयासुर से उपर्युक्त सृष्टिक्रम का जो वर्णन किया है वह वेदान्त, सांख्य, श्रीमद्भागवत् आदि में बतलाये गये सृष्टि-क्रम का मिश्रण है। यह क्रम भिन्न भिन्न ग्रंथों में भिन्न-भिन्न रीति से बतलाया गया है इसलिए यह संभव नहीं कि उन सबकी व्याख्या यहाँ की जाय। इस विषय पर लोकमान्य तिलक ने अपने गीता-रहस्य के ६-९ प्रकरणों में अच्छी तरह विचार किया है और कहीं-कहीं युरोपीय विद्वानों के मतों की भी तुलना की है इसलिए इसकी जानकारी के लिए पाठकों को उसीका अध्ययन करना चाहिए। यहाँ उसीका सार दिया जा सकता है।

सांख्यशास्त्र के अनुसार ब्रह्मांड का वंश-वृक्ष ७२३ पृष्ठ पर दिया जाता है। देखो गी० र० (पृ० १७९) :—

वेदान्त का परब्रह्म* इन २५ तत्वों से परे है जिसकी चर्चा सूर्य-सिद्धान्त के १२वें श्लोक में है (देखो गीता रहस्य पृ० २०३)। सूर्य-सिद्धान्त में संकर्षण, और अनिरुद्ध की जो चर्चा है उसकी चर्चा भागवतधर्म में इस प्रकार आयी है 'वासुदेव रूपी परमेश्वर से संकर्षण रूपी जीव उत्पन्न हुआ; और फिर संकर्षण से प्रद्युम्न अर्थात् मन तथा प्रद्युम्न से अनिरुद्ध अर्थात् अहङ्कार हुआ; कुछ लोग तो इन चार व्यूहों में से दो, तीन या एक ही को मानते हैं (देखो गीता रहस्य पृ० ४२९)। सूर्य-सिद्धान्त में प्रद्युम्न की चर्चा नहीं है। यहां अहङ्कार को ही ब्रह्मा बतलाया है।

*पृष्ठों की संख्या सं० १९७३ के छपे हुए हिन्दी गीता-रहस्य के अनुसार है।

आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी को ही पंचमहाभूत कहते हैं। आकाश में एक गुण शब्द, वायु में दो गुण शब्द, स्पर्श, अग्नि में तीन गुण शब्द, स्पर्श और रूप; जल में चार गुण शब्द, स्पर्श, रूप और रस तथा पृथ्वी में पांच गुण शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध माने गये हैं इसीलिए २३वें श्लोक के उत्तरार्द्ध में बतलाया गया है कि एक एक गुण की वृद्धि से पंचमहाभूतों की उत्पत्ति क्रम से हुई है।

ब्रह्मांड का वंशवृक्ष

पुरुष →(दोनों स्वयंभू और अनादि)←—प्रकृति (अव्यक्त और सूक्ष्म)

महान् अथवा बुद्धि (व्यक्त और सूक्ष्म)

अहंकार (व्यक्त और सूक्ष्म)

(सात्विक सृष्टि अर्थात् व्यक्त और सूक्ष्म इन्द्रियां) (तामस अर्थात् निरिंद्रिय सृष्टि)

पांच बुद्धीन्द्रियां पांच कर्मेन्द्रियां मन

पञ्चतन्मात्राएँ (सूक्ष्म)

पञ्च महाभूत (स्थूल)

पांच ग्रहों की उत्पत्ति—

अग्नीषोमौ भानुचन्द्रौ ततस्त्वङ्गारकादयः।
तेजो भूरवाम्बुवातेभ्यः क्रमशः पञ्च जज्ञिरे ॥२४॥

अनुवाद—अग्नि स्वरूप सूर्य और सोम स्वरूप चन्द्रमा की उत्पत्ति के बाद तेज अर्थात् अग्नि से मंगल, पृथ्वी से बुध, आकाश से बृहस्पति शुक्र और वायु से शनि उत्पन्न हुए।

१२ राशियों और २७ नक्षत्रों की उत्पत्ति—

पुनर्द्वादशधाऽऽत्मानं विभेदे राशिसंज्ञितम्।
नक्षत्ररूपिणं भूयः सप्तविंशात्मकं वशी ॥२५॥

अनुवाद—फिर जितात्मा ब्रह्मा ने मनः कल्पितवृत्त को पहले १२ राशियों में फिर २७ नक्षत्रों में बाँटा ।

चराचर जगत् की उपत्ति—

ततश्चराचरं विश्वं निर्ममे देवपूर्वकम् ।
ऊर्ध्वमध्याधरेभ्योऽथ गात्रेभ्यः प्रकृतिं सृजन् ।।२६।।
गुणकर्मविभागेन सृष्ट्वा प्राग्वदनुक्रमात् ।
विभागं कल्पयामास यथास्वं वेददर्शनात् ।।२७।।
ग्रहऋक्षत्रताराणां भूमेः विश्वस्य वा विभुः ।
देवानां च मनुष्याणां सिद्धानां च यथाक्रमम् ।।२८।।
ब्रह्माण्डमेतत् सुषिरं यत्रेदं भूर्भुवादिकम् ।
कटाहद्वितयस्यैव संपुटं गोलकाकृतिः ।।२९।।

अनुवाद—(२६) इसके पश्चात् श्रेष्ठ, मध्यम और अधम स्रोतों से सत्व, रज और तम विभेदात्मक प्रकृति का निर्माण करके देवता, मनुष्य, राक्षस आदि चराचर विश्व की रचना की। (२७) गुण और कर्म के अनुसार पूर्वोक्त क्रम से सृष्टि रचकर वेदों में बतलायी हुई रीति के अनुसार देश काल के अनुसार इसके विभाग किये। (२८) समर्थवान् ब्रह्मा ने ग्रहों, नक्षत्रों, तारों, पृथ्वी, संसार, देवताओं, मनुष्यों और सिद्धों का यथाक्रम स्थापन किया, (२९) दो समान कड़ाहों के मुँह मिला देने से जैसा खोखला गोला बनता है उसी प्रकार के इस ब्रह्माण्ड अवकाश में भूर्भुवः आदि लोक स्थित हैं।

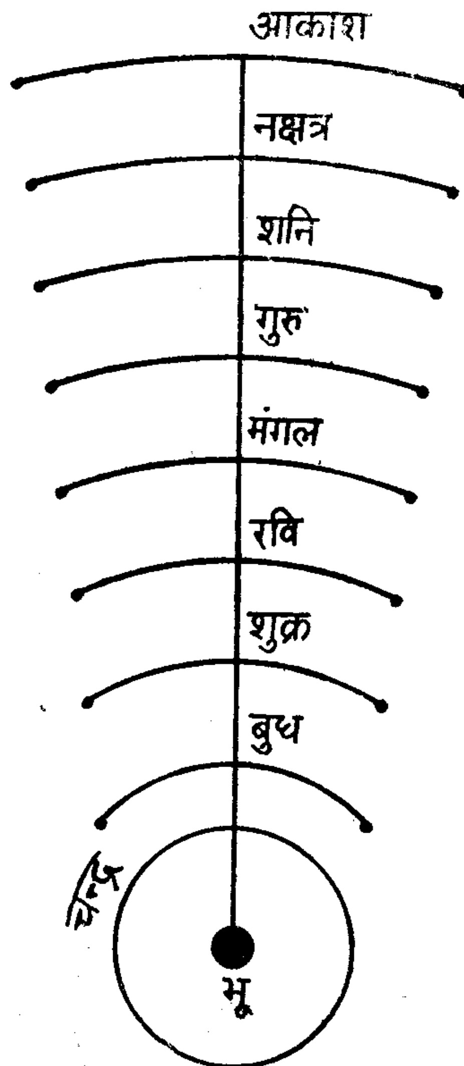
ब्रह्माण्ड में ग्रहों की कक्षाओं का क्रम—

ब्रह्माण्डमध्यपरिधि र्व्योमकक्ष्याऽभिधीयते ।
तन्मध्ये भ्रमणं भानां तदधोऽधः क्रमादथ ।।३०।।
मन्दामरेज्यभूपुत्रसूर्यशुक्रेन्दुजेन्दवः ।
परिभ्रमन्त्यधोऽधस्तात्सिद्धविद्याधरा घनाः ।।३१।।
मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति ।
बिभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम् ।।३२।।

अनुवाद—(३०) ब्रह्माण्ड की परिधि को आकाश कक्षा कहते हैं जिसके भीतर नक्षत्र भ्रमण करते हैं; फिर उसके नीचे क्रमानुसार (३१) शनि, वृहस्पति, मंगल, सूर्य, शुक्र, बुध और चन्द्रमा भ्रमण करते हैं। इसके नीचे सिद्ध, विद्याधर

और मेघ हैं। (३२) इस ब्रह्माण्ड के बिल्कुल बीच में यह भूगोल ब्रह्मा की धारणात्मिका परम शक्ति के बल पर शून्य में ठहरा हुआ है।

विज्ञान-भाष्य—इन तीनों श्लोकों में यह बतलाया गया है कि ब्रह्माण्ड की परम परिधि के भीतर नक्षत्रों और ग्रहों की कक्षाएँ किस क्रम से हैं। हमारी पृथ्वी का स्थान इन ब्रह्माण्ड के बिल्कुल मध्य में माना गया है अर्थात् यह भूगोल सारे ब्रह्माण्ड के केन्द्र में हैं। यह बात अर्वाचीन ज्योतिष-सिद्धान्त के प्रतिकूल है। अर्वाचीन ज्योतिष में सूर्य जगत् का केन्द्र समझा जाता है। सूर्य के सबसे निकट बुध ग्रह की कक्षा है, फिर शुक्र, पृथ्वी, मंगल, वृहस्पति और शनि की कक्षाएँ क्रमानुसार



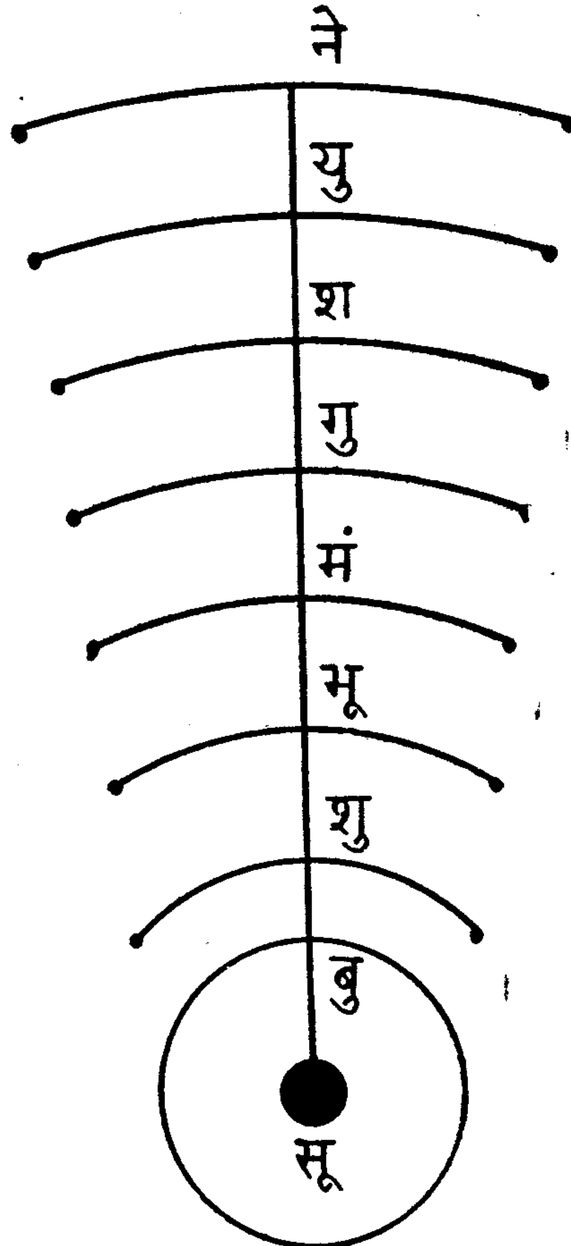
चित्र १२१

भारतीय ज्योतिष के अनुसार कक्षाओं का क्रम (पृथ्वी केन्द्र में)

दूर होती गयी हैं। चन्द्रमा की कक्षा पृथ्वी के चारों ओर है। नक्षत्रों की कक्षा

अर्वाचीन ज्योतिष के अनुसार स्थिर नहीं की जा सकती क्योंकि सब तारे समान दूरी पर नहीं हैं। आकाश कक्षा की सीमा भी स्थिर नहीं की जा सकती क्योंकि आजकल कुछ तारों की दूरी इतनी अधिक समझी जाती है कि आकाश कक्षा की सीमा उसके सामने नगण्य है। चित्र १२१ तथा १२२ से हिन्दू ज्योतिष और अर्वाचीन ज्योतिष के मतों की भिन्नता अच्छी तरह समझ में आ जायगी।

पृथ्वी और चन्द्रकक्षा के बीच में मेघों, विद्याधरों और सिद्धों के लोक हैं जो इस चित्र में नहीं दिखलाये जा सके।



चित्र १२२
अर्वाचीन ज्योतिष के अनुसार ग्रह की कक्षाओं का क्रम (यहाँ सूर्य केन्द्र में है)

इस चित्र में चन्द्रमा की कक्षा नहीं दिखलायी गयी है क्योंकि चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता है और पृथ्वी के साथ-साथ सूर्य के भी चारों ओर जाता है। ऐसे कई चन्द्रमा मंगल, गुरु और शनि के चारों ओर भी भ्रमण करते हुए देखे गये हैं। चित्र १२२ में कक्षाओं की दूरी प्रायः समान देख पड़ती है और आकार गोल, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। इसका विचार आगे किया जायगा; यहाँ तो केवल क्रम दिखलाया गया है।

श्लोक ३२ में जिस धारणात्मिका शक्ति की चर्चा है उसे ही आजकल गुरुत्वाकर्षण कहते हैं। इस श्लोक से यह स्पष्ट हो जाता है कि सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार हमारी पृथ्वी शून्य में स्थित मानी गयी है। इसको कोई जीव थामे हुए नहीं है। परमेश्वर की जिस शक्ति के बल पर यह पृथ्वी शून्य में ठहरी हुई है उसे धारणात्मिकाशक्ति कहा गया है। आजकल यह माना जाता है कि पृथ्वी, चन्द्रमा, ग्रह इत्यादि सूर्य के गुरुत्वाकर्षण से बँधे हुए हैं और ग्रहों, उपग्रहों की गतियों का कारण भी यही गुरुत्वाकर्षण है।

भूगोल में पाताल, सुमेरु आदि के स्थान :—

तदन्तरपुटास्सप्त नागासुरसमाश्रयाः।
दिव्यौषधिरसोपेता रम्याः पातालभूमयः ॥३३॥
अनेकरत्ननिचयो जाम्बूनदमयो गिरिः।
भूगोलमध्यगो मेरुः उभयत्र विनिर्गतः ॥३४॥
उपरिष्टात्स्थितास्तस्य सेन्द्रा देवा महर्षयः।
अधस्तादसुरास्तद्वत् द्विषन्तोऽन्योन्यमाश्रिताः ॥३५॥
ततस्समन्तात्परिधिः क्रमेणायं महार्णवः।
मेखलावत्स्थितो धात्र्या देवासुरविभागकृत् ॥३६॥

अनुवाद—(३३) इस भूगोल के भीतरी परतों में अति सुन्दर सात पाताल भूमि हैं जहाँ नाग और असुर रहते हैं और जहाँ प्रकाश देनेवाले और रसीले वृक्ष हैं। (३४) नाना प्रकार के रत्नों से भरा हुआ, स्वर्णमयी जम्बू नदी से सुशोभित, भूगोल के आर पार दोनों ओर निकला हुआ सुमेरु पर्वत है। (३५) इस सुमेरु पर्वत के ऊपर की ओर इन्द्र के साथ देवता और महर्षि लोग रहते हैं और असुर रहते हैं। ये देवता और असुर एक दूसरे के शत्रु हैं। (३६) इस सुमेर पर्वत के चारों ओर घेरे हुए यह महासागर (लवण समुद्र) पृथ्वी की मेखला की तरह स्थित है तथा देवताओं और असुरों का विभाग कर देता है।

विज्ञान भाष्य—भूगोल के भीतर सात पाताल देश माने गये हैं जिनके नाम अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल हैं। यहां नागों और असुरों का निवास है। सुमेरु पर्वत के पास जम्बूनदी है। यह पर्वत भूगोल के केन्द्र से होता हुआ दोनों ओर अर्थात् उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों पर निकला हुआ माना गया है। उत्तरी ध्रुव पर देवता और दक्षिणी ध्रुव पर असुर रहते हैं जो परस्पर शत्रु हैं। इस मेरु पर्वत को घेरे हुए पृथ्वी के चारों ओर लवण समुद्र है जो देवताओं और असुरों की भूमि को अलग करता है और पृथ्वी की मेखला की तरह है।

इस वर्णन में बहुत सी बातें कल्पना से उत्पन्न हुई जान पड़ती हैं इसलिये इन सब का अस्तित्व नहीं बतलाया जा सकता। उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों को सुमेरु पर्वत के ऊपर और नीचे वाले सिरे समझना चाहिये। इसके बीच में विषुवत् रेखा के पास लवण समुद्र माना गया है जो आजकल भी प्रायः इसी स्थिति में है।

विषुवत् रेखा पर स्थित चार नगरियों का वर्णन :

समन्तान्मेरुमध्यात्तु तुल्यभागेषु तोयधेः।
द्वीपेषु दिक्षु पूर्वादिनगर्यो देवनिर्मिताः ॥३७॥
भूवृत्तपादे पूर्वस्यां यमकोटीति विश्रुता।
भद्राश्ववर्षे नगरी स्वर्णप्राकारतोरणा ॥३८॥
याम्यायां भारते वर्षे लंका तद्वन्महापुरी।
पश्चिमे केतुमालाख्ये रोमकाख्या प्रकीर्तिता ॥३९॥
उदक्सिद्धपुरी नाम कुरुवर्षे प्रतिष्ठिता।
तस्यां सिद्धा महात्मानो निवसन्ति गतव्यथाः ॥४०॥
भूवृत्तपादविवराः ताश्चान्योन्यं प्रतिष्ठिताः।
ताभ्यश्चोत्तरतो मेरुः तावानेवासुराश्रयः ॥४१॥
तासामुपरिगो याति विषुवस्थो दिवाकरः।
न तासु विषुवच्छाया नाक्षस्योन्नतिरिष्यते ॥४२॥

अनुवाद—(३७) मेरु के मध्य भाग के चारों ओर समुद्र के समान अन्तर पर जम्बू द्वीप के पूर्व दक्षिण, और उत्तर दिशाओं में देवताओं की बनाई हुई चार नगरी हैं। (३८) पूर्व में भूपरिधि के चतुर्थांश पर भद्राश्व वर्ष में यमकोटी नगरी प्रसिद्ध है जहाँ सोने के दीवार और फाटक हैं; (३९) दक्षिण में भारतवर्ष में उसी प्रकार लङ्कापुरी और पश्चिम में केतुमाल देश में रोमकपुरी प्रसिद्ध हैं; (४०) उत्तर में कुरु देश में सिद्धपुरी है जहाँ सब प्रकार के दुःखों से मुक्त सिद्ध, महात्मा लोग रहते

हैं। (४१) यह नगरियां एक दूसरे से भूपरिधि के चतुर्थांश अन्तर पर स्थित हैं जिनके उत्तर दिशा में उतने ही अन्तर पर का निवास स्थान मेरु है। (४२) जब सूर्य विषुववृत्त पर आता है तब इन नगरियों के ठीक ऊपर होता है इसलिए न वहाँ विषुवच्छाया होती है और न अक्षांश ही होता है।

विज्ञान-भाष्य—इन छः श्लोकों में विषुवत् रेखा पर स्थित चार नगरियों की स्थिति का बड़ा ही स्पष्ट वर्णन है। ये नगरियां एक दूसरे से भूपरिधि के चतुर्थांश अन्तर पर हैं अर्थात् यह एक दूसरे से ६० अंश के अन्तर पर हैं और उत्तर मेरु (उत्तरी ध्रुव) भी इतने ही अन्तर पर इनसे उत्तर में है। इन नगरियों की दिशायें भारतवर्ष से मानी गयी हैं। भारतवर्ष के दक्षिण विषुवत् रेखा पर लङ्का नगरी है जिसका स्थान मध्यमाधिकार के ६२ वें श्लोक अनुसार के उज्जैन की देशान्तर रेखा माना जाना चाहिए (पृष्ठ ६५)। ग्रीनविच से उज्जैन का देशान्तर ७६ अंश के लगभग है। इसलिये यदि लङ्का इसी देशान्तर पर और विषुत् रेखा पर मानी जाय तो आजकल यहाँ समुद्र है। इससे ६० अंश पूर्व का स्थान ग्रीनविच से १६६ अंश पूर्व देशान्तर पर है। इसलिए यमकोटी नगरी की जगह भी आजकल समुद्र है। लङ्का से ६० अंश पच्छिम अथवा ग्रीनविच से १४ अंश पच्छिम देशान्तर पर भी विषुवत् रेखा पर स्थल का नाम नहीं हैं इसलिए रोमक नगरी का भी पता नहीं लगाया जा सकता। यह रोमक नगरी आजकल के पच्छिमी अफरीका के फ्रीटाउन से ५० मील के लगभग दक्षिण रही होगी। इसी प्रकार सिद्धपुरी वर्तमान् मेक्सिको से १००० मील से भी अधिक दक्षिण रही होगी।

यदि इन चार पुरियों का अस्तित्व कभी रहा होगा तो वह काल बहुत ही प्राचीन होगा क्योंकि आजकल तो इतना अन्तर पड़ गया है कि उस काल का कोई चिह्न वर्तमान नहीं है। यह भी सम्भव है कि इन चार पुरियों का अस्तित्व कवि की कल्पना में ही रहा हो और आलंकारिक भाषा में इस बात का वर्णन किया गया हो कि विषुवत् रेखा पर ये चार स्थान ऐसे हैं कि जब लङ्का में मध्याह्न होता है तब रोमक में सूर्योदय, सिद्धपुरी में मध्यरात्रि और यमकोटि में सूर्यास्त।

यह तो स्पष्ट ही है कि जब सूर्य विषुवत् रेखा के खस्वस्तिक पर रहता है तब वहां मध्याह्नकाल में किसी खड़ी वस्तु की कोई छाया नहीं पड़ती। इस रेखा के क्षितिज पर उत्तर और दक्षिण ध्रुव हैं इसलिए यहाँ ध्रुव तारे की ऊँचाई शून्य होती है। इसलिए अक्षांश भी शून्य होता है। इसी कारण विषुवत् रेखा को निरक्ष देश कहा गया है। इसका और स्पष्ट वर्णन अगले तीन श्लोकों में है।

मेरु पृथ्वी के बीच से होता हुआ दोनों ओर निकला हुआ बतलाया गया है इसलिए इसे पृथ्वी का अक्ष समझना चाहिए जिसका उत्तरी सिरा उत्तरी ध्रुव

और दक्षिणी सिरा दक्षिणी ध्रुव कहलाते हैं। इसी अक्ष के मध्य अर्थात् भूकेन्द्र के चारों ओर समान पूरी पर विषुवत रेखा मानी गयी है जो जम्बूद्वीप और लवण समुद्र की सीमा समझी गयी थी।

विषुवत् रेखा और उत्तर दक्षिण ध्रुवों का सम्बन्ध

मेरोरुभयतो मध्ये ध्रुवतारे नभःस्थिते।
निरक्षदेशसंस्थानामुभये क्षितिजाश्रिये ॥४३॥
अतो नाक्षोच्छ्रयस्तासु ध्रुवयोः क्षितिजस्थयोः।
नवतिर्लम्बकांशास्तु मेरावक्षांशकास्तथा ॥४४॥
मेषादौ देवभागस्थे देवानां याति दर्शनम्।
असुराणां तुलादौ तु सूर्यस्तद्भागसञ्चरः ॥४५।

अनुवाद—(४३) मेरु के दोनों ओर अर्थात् उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों की तरफ आकाश में स्थित ध्रुव तारे ठीक ख मध्य में हैं; निरक्ष देश में रहने वालों को ये दोनों तारे क्षितिज में देख पड़ते हैं। (४४) इसलिये इन नगरियों की क्षितिज रेखा पर दोनों ध्रुवतारों के होने के कारण इन पुरियों का अक्ष ऊँचा नहीं है अर्थात् इनका अक्षांश शून्य है परन्तु लम्बांश ९० है। इसी प्रकार मेरुओं का अर्थात् ध्रुवों का अक्षांश ९० है। (४५) सूर्य जब देव-भाग में अर्थात् उत्तरी गोलार्द्ध में रहता है तब मेष के आदि स्थान में देवताओं को उसका प्रथम दर्शन होता है और जब सूर्य असुर भाग में अर्थात् दक्षिणी गोलार्द्ध में रहता है तब तुला के आदि में वह असुरों को पहले पहल देख पड़ता है।

विज्ञान-भाष्य—यहाँ बतलाया गया है कि उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों के ख मध्य में ध्रुव तारे हैं जो निरक्ष देश की क्षितिज पर हैं। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि प्राचीन काल में जब सूर्य-सिद्धान्त कहा गया था तब दो ध्रुव तारे रहे होंगे। यह भी कहा जा सकता है कि जैसे उत्तरी ध्रुव के ख मध्य में एक तारा है वैसे ही दक्षिणी ध्रुव के ख मध्य में भी एक तारा समझा गया होगा। परन्तु यह निश्चय है कि उत्तरी ध्रुव के ख मध्य में इस समय जो तारा देख पड़ता है वह प्राचीन काल में इस स्थान पर नहीं था क्योंकि अयन-चलन के कारण इसका स्थान भी बदल रहा है (देखो पृष्ठ २४०-४२)। इसलिए यहाँ जिन ध्रुव तारों का वर्णन है वे आकाशीय ध्रुवों के स्थान हैं जो उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों के ख मध्य में हैं। इनसे किसी तारे का सनातन सम्बन्ध नहीं है। जब अयन-चलन के कारण कोई तारा इनके पास आ जाता है तब यह भी प्रत्यक्ष में ध्रुव तारा कहलाने लगता है।

यह कई जगह बतलाया जा चुका है कि विषुवत् रेखा पर अक्षांश शून्य और

लम्बांश ६०° तथा उत्तरी दक्षिणी ध्रुवों पर अक्षांश ६० और लम्बांश शून्य कैसे होता है (देखो पृष्ठ ५८, ५६, २५६, २५७ इत्यादि)।

श्लोक ४५ बड़े महत्व का है। इसमें बतलाया गया है कि जब सूर्य मेष राशि के आदि में होता है तब देवताओं को पहले पहल देख पड़ता है अर्थात् तब उत्तरी ध्रुव निवासियों के लिए सूर्य का उदय होता है और जब वह तुला राशि के आदि में होता है तब असुरों को पहले पहल देख पड़ता है अर्थात् तब दक्षिणी ध्रुव निवासियों के लिए उसका उदय होता है। इससे प्रकट होता है कि मेष राशि का आदि स्थान उसे ही समझना चाहिए जहाँ क्रान्तिवृत्त और विषुवन्मण्डल का योग होता है और जहाँ पहुँचकर सूर्य उत्तर गोल में हो जाता है। इसी स्थान को वसंत-संपात-बिन्दु कहते हैं। इसी प्रकार तुला का आदि बिन्दु शरद-सम्पात-बिन्दु है जहाँ पहुँच कर सूर्य दक्षिण गोल में हो जाता है। जब सूर्य मेष के आदि में विषुवन्मंडल पर आता है तभी उत्तरी ध्रुव वालों के लिए सूर्योदय होता है और इससे ६ महीने तक बराबर सूर्य देख पड़ता है। इसी समय को देवताओं का दिन कहते हैं। और असुरों की रात क्योंकि जब तक सूर्य उत्तर ध्रुव वालों को देख पड़ता है तब तक वह दक्षिण ध्रुव वालों के लिए अदृश्य रहता है और वहां रात रहती है। जिस समय सूर्य तुला राशि के आदि में पहुँचता है उस समय उत्तरी ध्रुव पर सूर्यास्त और दक्षिणी ध्रुव पर सूर्योदय होता है इस समय से ६ महीने तक सूर्य दक्षिण ध्रुव पर बराबर देख पड़ता है और वहाँ महीने का दिन होता है। उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों तथा विषुवत् रेखा पर यह विशेषताएँ इसीलिए होती हैं कि ध्रुव विषुवत् रेखा से ६० अंश के अन्तर पर है (देखो पृष्ठ ६२)।

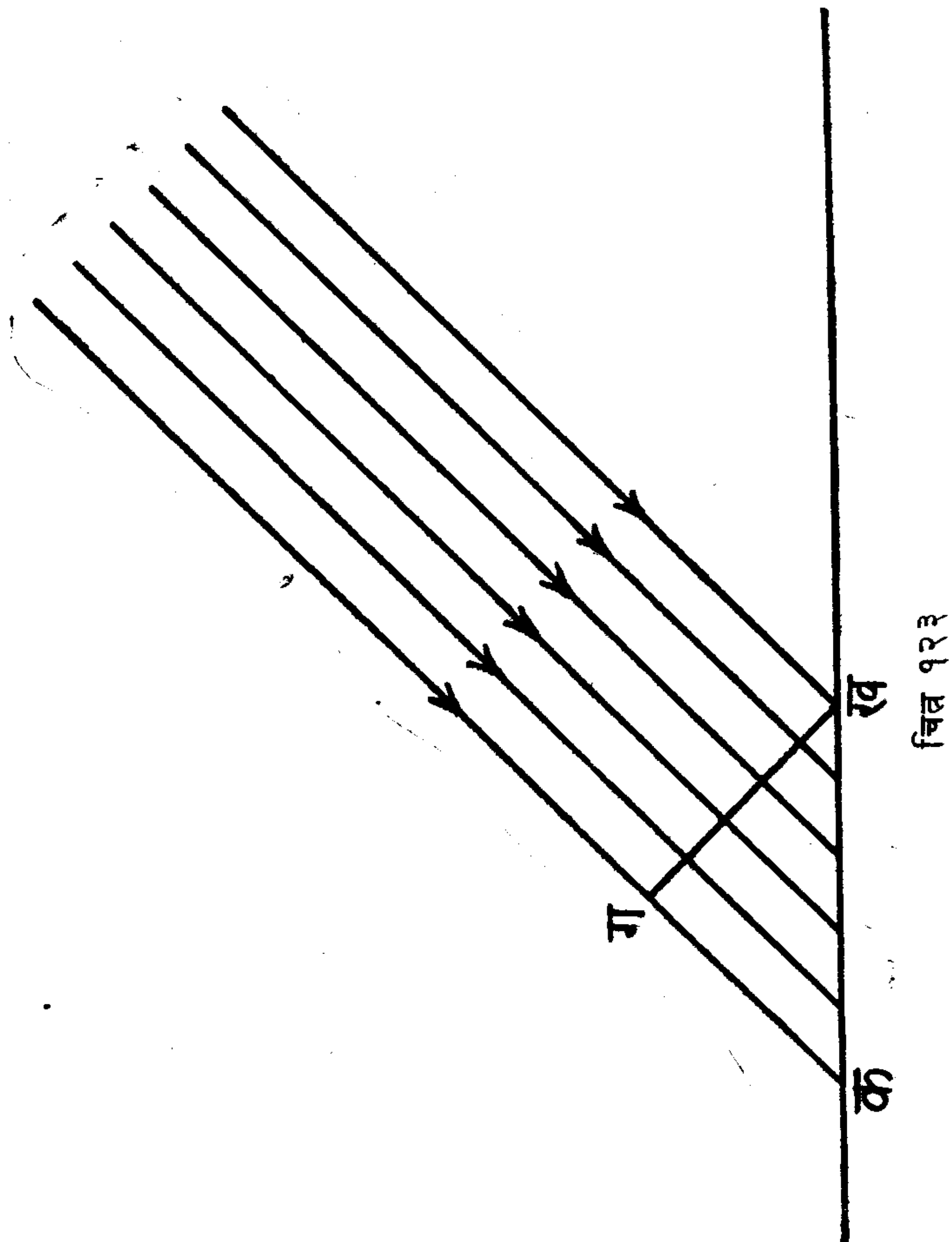
सूर्य की किरणें मन्द और तीव्र क्यों होती हैं ?

अत्यासन्नतया तेन ग्रीष्मे तीव्रकरा रवेः।
देवभागे सुराणां तु हेमन्ते मन्दतान्यथा ॥४६॥

अनुवाद—जब सूर्य देव भाग में अर्थात् उत्तर गोल में रहता है तब देवताओं के बहुत निकट होने के कारण ग्रीष्म ऋतु में उसकी किरणें बड़ी तीव्र होती हैं और हेमन्त ऋतु में दूर होने के कारण मन्द होती हैं।

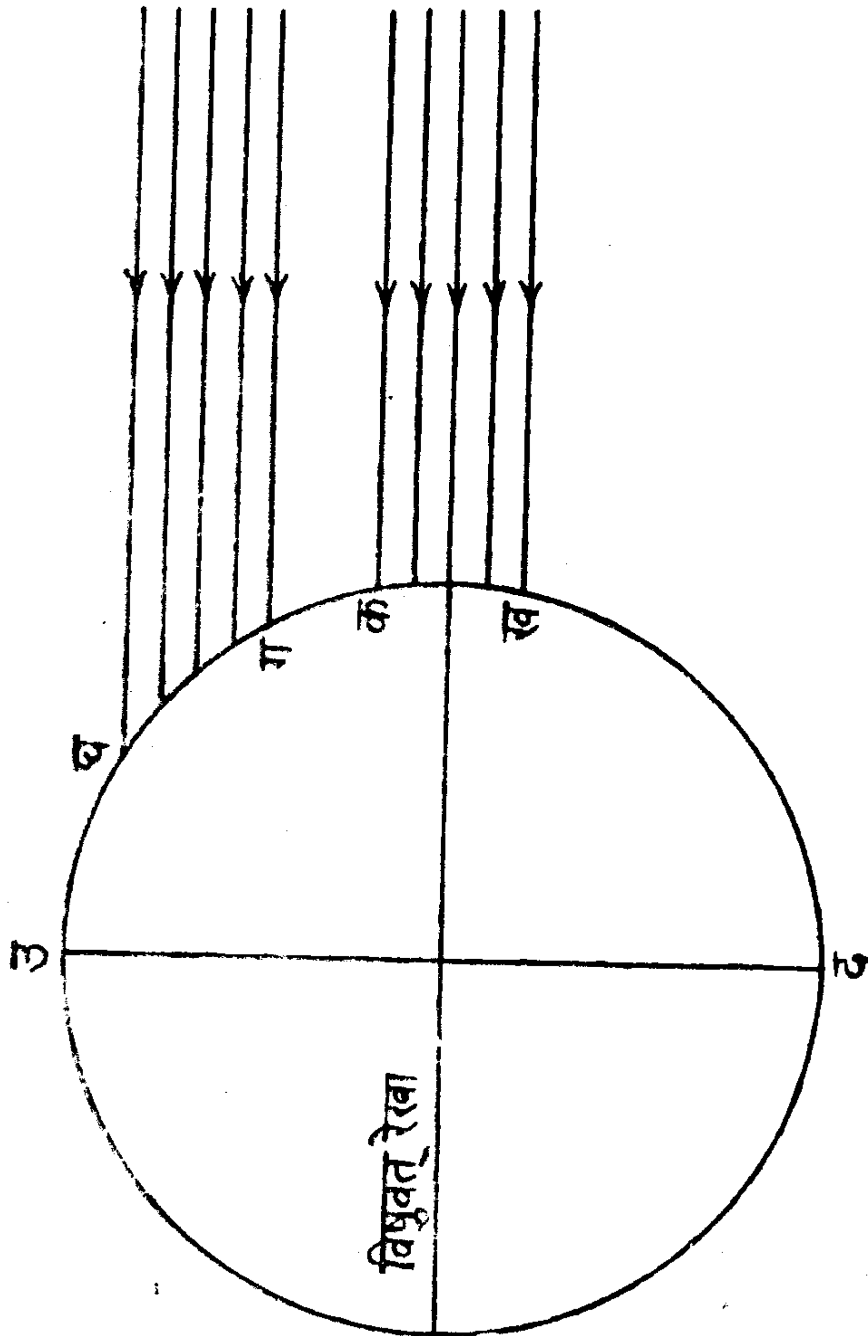
विज्ञान-भाष्य—इस श्लोक में बतलाया गया है कि ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की किरणें इसलिए तीव्र होती हैं कि सूर्य निकट होता है और हेमन्त ऋतु में इसलिए मन्द होती हैं कि सूर्य दूर रहता है परन्तु यह ठीक नहीं है। आजकल यथार्थ में ग्रीष्म ऋतु में सूर्य पृथ्वी से दूर होता है और हेमन्त ऋतु में निकट जैसा कि उसके बिम्बों के आकार से जान पड़ता है (देखो पृष्ठ ८५)। यथार्थ कारण यह है

कि ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की किरणें लम्ब रूप में खड़ी आती हैं इसलिए उनकी प्रखरता अधिक होती है और हेमन्त ऋतु में सूर्य के नीचे होने के कारण किरणें टेढ़ी आती हैं इसलिए उनकी प्रखरता कम पड़ जाती है। यह बात प्रतिदिन देखी जाती है। मध्याह्न में सूर्य ऊँचा होता है इसलिए इसकी किरणें प्रायः खड़ी रहती हैं और गरमी भी बढ़ जाती है। परन्तु प्रातःकाल और सायंकाल इसकी किरणें बहुत तिरछी रहती हैं इसलिये उतनी गरमी नहीं रहती। यही दशा सारे भूपृष्ठ पर एक वर्ष की अवधि में होती है। विषुवत्‌रेखा के आस पास के देशों में सूर्य साल भर तक प्रायः सिर पर देख पड़ता है इसलिये इसकी किरणें लम्बरूप से खड़ी आती हैं और बड़ी तीव्र होती



चित्र १२३

हैं परन्तु उत्तर दक्षिण ध्रुवों पर सूर्य की किरणें बहुत तिरछी हो जाती हैं इसलिये वहां सदैव ठंडक रहती है। यह बात चित्र १२३ से स्पष्ट हो जायगी। इस चित्र में दिखलाया गया है कि सूर्य से आती हुई किरणें ग ख तल पर लम्ब हो कर गिरती हैं और वही किरणें क ख तल पर तिरछी हो जाती हैं। यह स्पष्ट है कि क ख तल ग ख तल से बड़ा है क्योंकि यह समकोण त्रिभुज क ग ख का कर्ण है इसलिये जब वही किरणें अधिक स्थान में फैल जाती हैं तब उनकी शक्ति कम पड़ जाती है और ग ख तल पर जितनी गरमी होती है उतनी क ख तल पर नहीं हो सकती। इसका अनुभव पढ़े, बेपढ़े सभी को है, क्योंकि जब सूर्य की किरणें तिरछी आती हैं तब



चित्र १२४

लोग किसी वस्तु को सुखाने के लिये उसे ऐसे तल पर रखते हैं जो इस प्रकार टेढ़ा कर दिया जाता है कि किरणें लम्ब रूप में गिरें।

चित्र १२४ से प्रकट होता है कि विषुवत् रेखा के आसपास सूर्य की किरणें जितनी आती हैं उतनी ही किरणें विषुवत् रेखा से दूर के देशों में तिरछी होने के कारण अधिक क्षेत्रफल में फैल जाती और मन्द पड़ जाती हैं। इस चित्र से स्पष्ट देख पड़ता है कि जितनी किरणें विषुवत्रेखा के पास क ख भू भाग पर पड़ती हैं उतनी ही किरणें उत्तर ध्रुव के निकट ग ग भूभाग पर पड़ती हैं जो क्षेत्रफल में कहीं अधिक होता है इसलिये फैल जाने के कारण इनकी तीव्रता कम पड़ जाती है।

देवताओं और असुरों के दिन रात के विभाग—

देवासुरा विषुवति क्षितिजस्थं दिवाकरम्।
पश्यन्त्यन्योन्यमेतेषां वाम सव्ये दिनक्षपे ॥४७॥
मेषादावुदितस्सूर्यः त्रीन् राशिनुदगुत्तरे।
संचरन्प्रागहर्मध्यं पूरयेन्मेरुवासिनाम् ॥४८॥
कर्क्यादिसंचरंस्तद्वद् अह्नः पश्चार्धमेव सः।
तुलादीन् त्रीन्मृगादींश्च तद्वदेव सुरद्विषाम् ॥४९॥
अतो दिनक्षपे तेषामन्योन्यं हि विपर्ययात्।
अहोरात्र प्रमाणं च भानोर्भगण पूरणात् ॥५०॥

अनुवाद—(४७) जिस दिन सूर्य विषुवन्मण्डल पर होता है उस दिन देवता और असुर दोनों उसको क्षितिज पर देखते हैं; इनका दिन रात एक दूसरे से विपरीत होता है। (४८) मेष राशि के आदि में उदय होकर सूर्य उत्तर की तीन रशियों मेष, वृष और मिथुन में उत्तर की ओर बढ़ता हुआ उत्तर मेरु-निवासियों अर्थात् देवआओं के दिन का पूर्वार्ध पूरा करता है। (४९) उसी प्रकार कर्क के राशि आदि से आगे बढ़ता हुआ तीन राशि कर्क, सिंह और तुला में वह उनके दिन का उत्तरार्ध पूरा करता है। इसी प्रकार तुला, वृश्चिक और धनु राशियों में जाता हुआ वह असुरों के दिन का पूर्वार्ध तथा मकर, कुम्भ और मीन राशियों में जाता हुआ वह असुरों के दिन का उत्तरार्ध पूरा करता है। (५०) इसलिये देवताओं और असुरों के अहोरात्र एक दूसरे के विपरीत होते हैं और सूर्य का एक भगण (चक्कर) पूरा होने पर इनका एक अहोरात्र होता है।

विज्ञान-भाष्य—जिस दिन सूर्य वसंत-सम्पात-विन्दु पर आता है उस दिन को विषुव-दिन कहते हैं। इस दिन यह उत्तर और दक्षिण ध्रुव से क्षितिज

पर रहता है इसलिए उत्तरध्रुव के निवासियों देवताओं को और दक्षिण ध्रुव के निवासियों असुरों को क्षितिज पर देख पड़ता है। परन्तु सूर्य की गति उत्तर होने के कारण वह देवताओं को उदय होता हुआ और असुरों को अस्त होता हुआ देख पड़ता है। अर्थात् इस दिन से देवताओं के दिन का और असुरों की रात का आरम्भ होता है। सूर्य के इस स्थान को अर्थात् वसंत-सम्पात-बिन्दु को मेष का आदि स्थान कहा गया है। इसके बाद सूर्य उत्तर की ओर प्रतिदिन बढ़ता है। जब यह वसंत-सम्पात बिन्दु से ९० अंश पर पहुँचता है तब इसका उत्तर की ओर का बढ़ना रुक जाता है। इसी दिन देवताओं को यह सबसे ऊँचा उठा हुआ देख पड़ता है। यह ऊँचाई सूर्य की परम क्रान्ति के समान होती है। इसलिये इसी दिन देवताओं का मध्याह्न होता है और असुरों की मध्यरात्रि होती है। वसंत-सम्पात-बिन्दु से ९० अंश तक मेष, वृष, मिथुन तीन राशियाँ होती हैं। जब सूर्य कर्कराशि के आरम्भ से लेकर कर्क, सिंह और कन्या राशियों को पार करके तुला के आदि में पहुँचता है तब यह फिर विषुवन्मण्डल पर आता है। इस समय देवताओं को यह अस्त होता हुआ देख पड़ता है। इसलिये इस समय से देवताओं की रात और असुरों के दिन का आरम्भ होता है। सूर्य का यह स्थान शरद-सम्पात बिन्दु कहलाता है और इस दिन को भी विषुव दिन कहते हैं। इसके बाद जब तक सूर्य तुला, वृश्चिक और धनु राशियों में रहता है तब तक असुरों का पूर्वाह्न और देवताओं की पूर्वरात्रि होती है। जब सूर्य मकर राशि में पहुँचता है तब देवताओं की मध्यरात्रि और असुरों का मध्याह्न होता है। जब सूर्य मकर, कुम्भ और मीन राशियों में होता है तब असुरों का अपराह्न होता है। इस प्रकार सूर्य का एक फेरा जितने समय में पूरा होता है उतने समय में देवताओं या असुरों का एक अहोरात्र होता है। परन्तु देवताओं का जो दिन है वही असुरों की रात और देवताओं की जो रात है वह असुरों का दिन।

इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि मेष, वृष आदि राशियों का आरम्भ वसंत-सम्पात से माना गया है न कि निरयण मेष से जो आजकल वसंत-सम्पात से २३ अंश से भी कुछ आगे है और जो वसंत-सम्पात से सदैव आगे होता जा रहा है। इसी अन्तर को अयनांश कहते हैं। १४०० वर्ष से कुछ अधिक हुए जब वसंत-सम्पात और निरयण मेष साथ-साथ थे इसलिए इस समय मेष का स्थान वही था जिसे आजकल निरयण मेष कहते हैं परन्तु यह दशा अब नहीं है। इस कारण आजकल ज्योतिषियों में दो भेद हो गये हैं, सायन-वादी और निरयण-वादी। जिन्हें सायन-वादी कहा जाता है वे वसंत-सम्पात को ही मेष का आदिस्थान मानते हैं। परन्तु निरयण-वादो लोग निरयण मेष को राशियों का आरम्भ स्थान मानते हैं।

सूर्य-सिद्धान्त में सायन और निरयण का भेद नहीं है। इससे जान पड़ता है कि जिस समय वर्तमान सूर्य-सिद्धान्त लिपिबद्ध हुआ है उस समय वसंत-सम्पात उसी जगह था जिस जगह आजकल निरयण मेष का आदि स्थान माना जाता है। इसके बाद सिद्धान्त शिरोमणि आदि जो ग्रन्थ बने हैं उनमें इन दोनों की चर्चा है।

देवताओं या असुरों के अहोरात्र के वर्णन से, जो सूर्य-सिद्धान्त में कई जगह आया है, यह सिद्ध होता है कि इनका अहोरात्र सायन वर्ष से समान होता है और यही वर्ष का स्वाभाविक मान है। परन्तु इस अहोरात्र का प्रमाण सूर्य के भगण-काल के समान भी बतलाया गया है जो मध्यमाधिकार के श्लोक २६ और ३७ के अनुसार ३६५·२६५८७५६ मध्यम सावन दिन के समान होता है और सायन वर्ष से ·०१६५४० मध्यम सावन दिन बड़ा है। यह भगणकाल शुद्ध नाक्षत्र-सौर वर्ष से भी ·००२३८२ दिन बड़ा है। (देखो पृष्ठ २४५ की पाद-टिप्पणी)। इसलिये जान पड़ता है कि सूर्यसिद्धान्त में सायन वर्ष का मान स्थूल रूप से सूर्य के भगण काल के समान मान लिया गया है।

देवासुरों का मध्याह्न काल कब होता है तथा ऊपर नीचे का क्या अर्थ है—

अतो दिनक्षपे तेषामन्योन्यं हि विपर्ययात्।
उपर्यात्मानमन्योन्यं कल्पयन्ति सुरासुराः ॥५१॥
अन्येऽपि समसूत्रस्था मन्यन्तेऽधः परस्परम्।
भद्राश्वकेतुमालस्था लंकासिद्धपुराश्रिताः ॥५२॥
सर्वत्रैव महीगोले स्वस्थानमुपरिस्थितम्।
मन्यन्ते खे यतो गोलस्तस्य क्वोर्ध्वं क्व वाऽप्यधः ॥५३॥

अनुवाद—(५१) देवताओं और असुरों का मध्याह्न और मध्यरात्रि अयन के अंत में एक दूसरे के विपरीत होती है। देवता और असुर दोनों अपने को दूसरे से ऊपर मानते हैं। (५२) जो लोग भूव्यास की दिशा में रहते हैं वे भी दूसरे को अपने से नीचे मानते हैं जैसे भद्राश्व वर्ष के (यमकोटि नगर के) रहने वाले केतुमाल देश के (रोमक नगर के) रहने वालों को और लङ्का नगर के रहने वाले सिद्धपुर वालों को अपने से नीचे समझते हैं। (५३) इस भूगोल पर सब जगह लोग अपने स्थान को ऊपर मानते हैं क्योंकि यह भूगोल आकाश में स्थित है इसलिये उसका ऊपर और नीचे कहाँ है?

विज्ञान-भाष्य—५१वें श्लोक का पूर्वार्ध ५०वें श्लोक से सम्बन्ध रखता है और उत्तरार्ध यह बतलाया है कि देवता और असुर दोनों अपने को दूसरे से

ऊपर समझते हैं। इसी बात का प्रमाण आगे के दो श्लोकों में उदाहरण के साथ बतलाया गया है।

अयन के अन्त में देवताओं और असुरों का मध्याह्न और मध्यरात्रि परस्पर विपरीत होने का कारण स्पष्ट ही है। क्योंकि जिस समय सूर्य सायन कर्क राशि में प्रवेश करता है उस समय यह उत्तर ध्रुव निवासियों को सबसे ऊँचा देख पड़ता है और दक्षिण ध्रुव निवासियों के लिए सबसे नीचे होकर अदृश्य रहता है इसलिए इस समय देवताओं का मध्याह्न और असुरों की मध्यरात्रि होती है। इसी प्रकार जिस समय सूर्य सायन मकर राशि में प्रवेश करता है उस समय असुरों का मध्याह्न और देवताओं की मध्यरात्रि होती है।

ऊपर नीचे की बात भी समझना कठिन नहीं है क्योंकि सब लोग उस दिशा को ऊपर मानते हैं जो आकाश के मध्य में होता है और इसकी विपरीत दिशा को नीचे समझते हैं। पृथ्वी गोल है और इसके चारों ओर आकाश है इसलिए सब जगह के रहने वाले अपने को ऊपर और अपने भूव्यास के दूसरे सिरे पर रहने वाले को नीचे समझते हैं।

चित्र १२५ में गोल रेखा भूपृष्ठ है। उत्तर ध्रुव के रहने वालों को वह दिशा ऊपर है जिसमें क अक्षर दिखलाया गया है और इसकी विपरीत दिशा वह है जिधर भू-मध्य है। परन्तु इस दिशा की सीध में भूगोल की दूसरी ओर दक्षिण ध्रुव है इसलिए दक्षिण ध्रुव उत्तर ध्रुव से नीचे देख पड़ता है। परन्तु दक्षिण ध्रुव वालों के लिए वह दिशा ऊपर है जिसमें ख अक्षर दिखालाया गया है और भूमध्य की दिशा अथवा उत्तर ध्रुव नीचे है। यह बात चित्र को उलट कर पढ़ने से सहज ही समझ में आ सकती है। इसी प्रकार च स्थान के लिए ग की दिशा ऊपर और छ या घ की दिशा नीचे है परन्तु छ स्थान के लिए घ की दिशा ऊपर और च या ग की दिशा नीचे है।

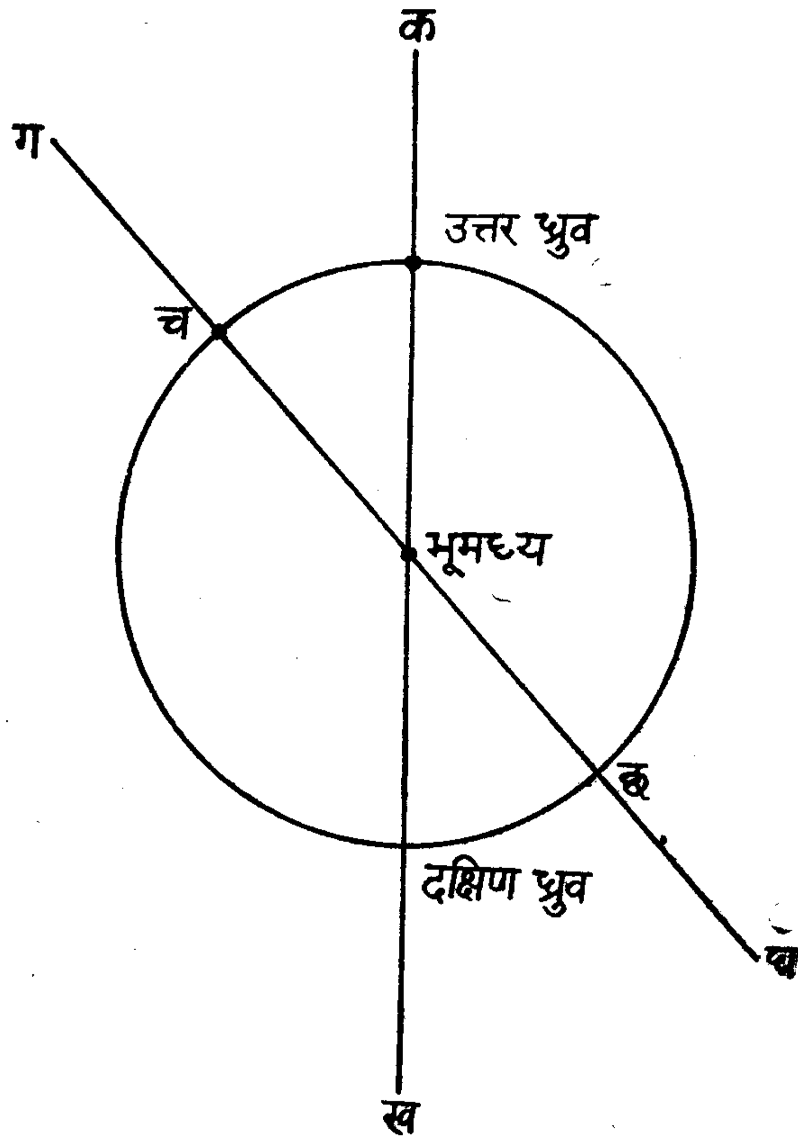
पृथ्वी चपटी देख पड़ने का कारण—

अल्पकायतया लोकाः स्वत्स्थानात्सर्वतो दिशम्।
पश्यन्ति वृत्तामप्येतां चक्राकारां वसुन्धराम् ॥५४॥

अनुवाद—मनुष्य पृथ्वी की अपेक्षा बहुत छोटे होने के कारण अपने स्थान से गोल पृथ्वी को सब दिशाओं में चक्राकार देखते हैं।

विज्ञान-भाष्य—किसी वृत्त के बहुत छोटे खण्ड के धनु और उसकी ज्या में इतना कम अन्तर होता है कि दोनों समान समझे जाते हैं अर्थात् धनु वक्र होने पर भी ज्या के समान होता है और धनु की वक्रता नहीं के समान होती है। इसीलिए

तो २२५ कला की ज्या भी २२५ कला ही समझी गयी है (देखो स्पष्टाधिकार श्लोक १५)। इसी प्रकार किसी गोल पिंड के पृष्ठ का अत्यन्त छोटा भाग वक्र होने पर



चित्र १२५

भी सम देख पड़ता है। यह गणना की जा सकती है कि समतल भूमि या किसी बड़ी झील के तल पर खड़ा होकर चारों ओर देखने से मनुष्य को ३ या ४ मील से अधिक दूर तक का धरातल नहीं देख पड़ता।

मान लो ख भूतल पर एक स्थान है, कख मनुष्य की ऊँचाई हैं, घ भूगोल का केन्द्र है और कग सीधी रेखा है जो भूतल को ग बिन्दु पर स्पर्श करती है। रेखागणित से यह सिद्ध है कि

$$\text{कग}^2 = \text{कख} \times \text{कच} = \text{कख}\ (\text{कख} + \text{खच})$$

मान लो $\text{कख} = \text{उ},\ \text{खघ} = \text{घच} = \text{त्र},\ \text{कग} = \text{क्ष}$

$$\text{तब क्ष}^2 = \text{उ} \times (\text{उ} + २\ \text{त्र}) = \text{उ}^2 + २\ \text{उ} \times \text{त्र}$$

यहाँ २ उ त्र की तुलना में उ^{२} इतना छोटा है कि नगण्य समझा जा सकता है क्योंकि त्र पृथ्वी की त्रिज्या है इसलिए यह ३६६० मील के लगभग है और उ मनुष्य की ऊँचाई है जो १ मील के हज़ारवें भाग के लगभग है, इसलिए यह माना जा सकता है कि

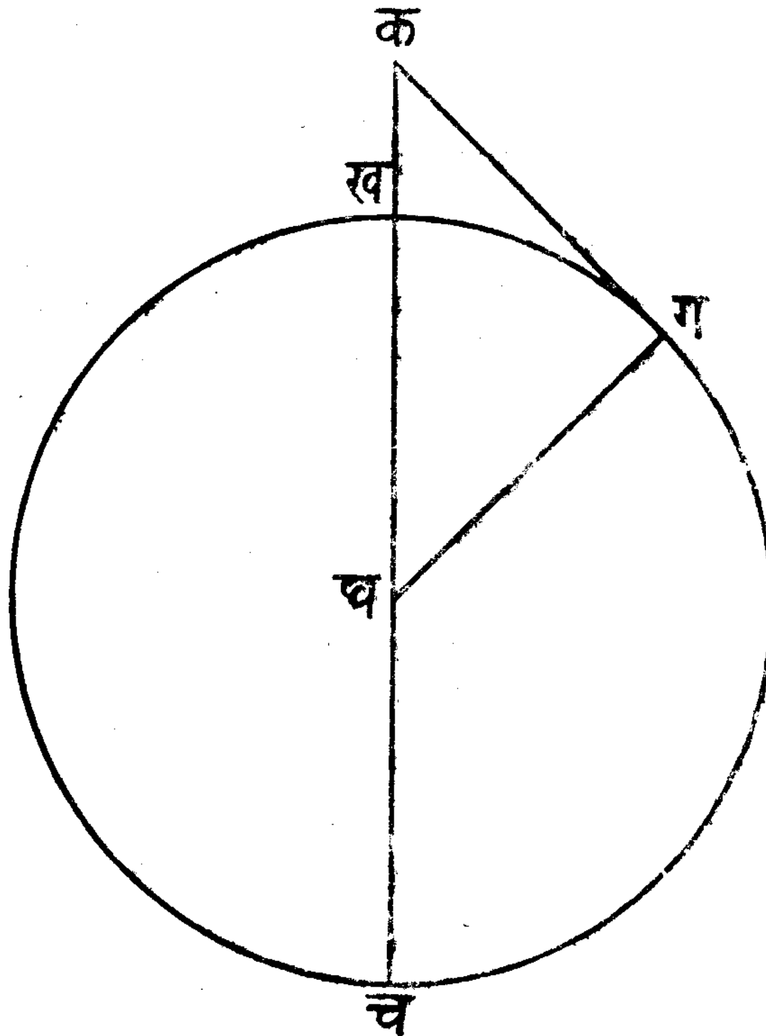
$$क्ष^{२} = २\ उ\ त्र \qquad (१)$$

इस समीकरण में सब नाप मीलों में है। यदि मान लिया जाय कि उ की नाप फुट में फ हो तो

$$फ = उ \times १७६० \times ३$$

$$या\ उ = \frac{फ}{३ \times १७६०}$$

उ का यह मान समीकरण (१) में उत्थापन करने से और त्र की जगह ३६६० रखने से



चित्र १२६

$$क्ष^2 = २ \times \frac{फ}{३ \times १७६०} \times ३९ = ६० \frac{३ फ}{२}$$

$$\text{या} \quad क्ष = \sqrt{फ \times १.५}$$

यहां क्ष का मान मीलों में और फ का फुट में समझना चाहिए। इसलिए यह सिद्ध हुआ कि मनुष्य भूतल से जितने फुट ऊपर हो उसका डेवढ़ा करके वर्गमूल लेने से जो आवे उतने ही मील दूर तक की क्षितिज वह देख सकेगा।

यदि मनुष्य की ऊँचाई ६ फुट हो तो उसकी क्षितिज ३ मील दूर होगी और ऊँचाई २४ फुट हो तो वह ६ मील दूर तक की क्षितिज चारों ओर देख सकेगा।

चित्र से प्रकट है कि यदि क ख ६ फुट हो तो क ग ३ मील होगा और जो क ग होगा वही खग को भी समझना चाहिए।

परन्तु भूतल की परिधि स्थूलरूप से २५००० मील है और ६ फुट ऊँचे मनुष्य की क्षितिज का व्यास ६ मील है जो २५००० मील के चार हजारवें भाग से भी कम है इसलिए उसे यदि गोलाकार पृथ्वी चक्राकार देख पड़ती है तो इसमें क्या आश्चर्य है?

भूतल पर दिन रात के घटने बढ़ने का कारण—

सव्यं भ्रमति देवानामपसव्यं सुरद्विषाम्।
उपरिष्टाद्भगोलोऽयं व्यक्षे पश्चान्मुखं सदा ॥५५॥
अतस्तत्र दिनं त्रिंशन्नाडिकं शर्वरी तथा।
हानिवृद्धी सदा वामं सुरासुर विभागयोः ॥५६॥
मेषादौ प्रत्यहं वृद्धिः उदगुत्तरतोऽधिका।
देवभागे क्षपाहानिः विपरीतं तथाऽऽसुरे ॥५७॥
तुलादौ द्युनिशोर्वामं क्षयवृद्धी तयोरुभे।
देशक्रान्तिवशान्नित्यं तद्विज्ञानं पुरोदितम् ॥५८॥

अनुवाद—(५५) यह नक्षत्र चक्र देवताओं के सव्य दिशा में अर्थात् बांयें से दाहिने और असुरों के अपसव्य दिशा में अर्थात् दाहिने से बायें तथा निरक्ष देश वालों के सिर के ऊपर पश्चिम दिशा में सदा भ्रमण करता है। (५६) इसलिए यहाँ निरक्ष देश में ३० घड़ी का दिन और ३० घड़ी की रात होती है परन्तु देवताओं और असुरों के विभागों में अर्थात् विषुवत् रेखा से उत्तर और दक्षिण के देशों में दिन रात की क्षय वृद्धि परस्पर विपरीत होती है। (५७) मेष राशि में प्रवेश करने के पश्चात् सूर्य जैसे उत्तर की ओर बढ़ता है विषुवत् रेखा से उत्तर के देशों में दिन-मान की वैसे ही वृद्धि और रात्रि की हानि होती है परन्तु विषुवत् रेखा से दक्षिण के देशों में

इसका उलटा होता है अर्थात् वहाँ दिन का क्षय और रात्रि की वृद्धि होती है। (५८) तुलाराशि में प्रवेश करने के पश्चात् सूर्य जैसे-जैसे दक्षिण की ओर बढ़ता है वैसे ही वैसे उत्तर भाग में दिन की हानि और रात्रि की वृद्धि तथा दक्षिण भाग में दिन की वृद्धि और रात्रि की हानि होती है। दिन रात्रि की क्षय वृद्धि स्थान के अक्षांश और सूर्य की क्रान्ति पर निर्भर है जिसका विचार पहले ही किया गया है।

विज्ञान-भाष्य—५५ वें श्लोक में यह बतलाया गया है कि उत्तर ध्रुव निवासियों को नक्षत्र-चक्र सव्य दिशा में भ्रमण करता हुआ देख पड़ता है और दक्षिण ध्रुव निवासियों को अपसव्य दिशा में। सव्य और अपसव्य शब्दों की व्याख्या विज्ञान भाष्य पृष्ठ १२६ में की गयी है। विषुवत् रेखा के निकट देशों में नक्षत्र चक्र सिर के ऊपर पूरब से पच्छिम को भ्रमण करता हुआ देख पड़ता है। विषुवत् रेखा पर दिन का परिमाण ३० घड़ी का और रात्रि का परिमाण भी ३० घड़ी का सदा होता है। इससे उत्तर और दक्षिण के देशों में दिन या रात्रि का परिमाण ३० घड़ी का केवल विषुव दिन को ही होता है जब सूर्य की क्रान्ति शून्य होती है। अन्य कालों में जब सूर्य की क्रान्ति उत्तर होती है तब उत्तर के देशों में दिन ३० घड़ी से बड़ा और रात ३० घड़ी से उतनी ही छोटी होती है परन्तु दक्षिण के देशों में दिन ३० घड़ी से छोटा और रात उतनी ही बड़ी होती है और जब सूर्य की क्रान्ति दक्षिण होती है तब दक्षिण के देशों में दिन बड़ा, रात छोटी तथा उत्तर के देशों में रात बड़ी, दिन छोटा होता है। दिन या रात की क्षयवृद्धि का विचार सूर्य की क्रान्ति और स्थान के अक्षांश के अनुसार किया जाता है जैसा कि स्पष्टाधिकार के ६०-६१ श्लोकों और उनके विज्ञान भाष्य में बतलाया गया है।

नक्षत्र-चक्र के इस भ्रमण का कारण प्राचीनों के मत से प्रवह वायु और नवीन मत से पृथ्वी की दैनिक गति है जिसका विचार आगे के ७४वें श्लोक के विज्ञान भाष्य में किया जायगा।

इन श्लोकों में मेष और तुला का अर्थ सायन मेष और सायन तुला समझना चाहिए क्योंकि दिन रात की क्षयवृद्धि सायन राशियों के ही अनुसार होती है।

विषुवत्रेखा से कितने योजन उत्तर या दक्षिण सूर्य ठीक ऊपर होता है।

भूवृत्तं क्रान्तिभागघ्नं भगणांशविभाजितम्।
अवाप्तयोजनैरर्को व्यक्षाच्चेदुपरिस्थितः ॥५६॥

अनुवाद—भूपरिधि के योजनों को सूर्य की तात्कालिक क्रान्ति के अंशों से गुणा करके ३६० से भाग देने पर जो लब्धि आवे उतने ही योजन विषुवत रेखा से दूर सूर्य ऊपर होता है।

विज्ञान-भाष्य – सूर्य की जो क्रान्ति होती है उतने ही अक्षांश पर वह ठीक ऊपर होता है। क्रान्ति यदि उत्तर हो तो अक्षांश उत्तर समझना चाहिए और क्रान्ति दक्षिण हो तो अक्षांश दक्षिण समझना चाहिए (देखो त्रि० पृ० २६१)। कौन अक्षांश विषुवत् रेखा से कितने योजन पर होता है इसकी गणना जैसे की जाती है वैसे ही इस श्लोक में गणना करने की रीति बतलायी गयी है। भूपरिधि का मान योजनों में जो होता है वह ३६० अंश के समान हैं इसलिये अभीष्ट अक्षांश विषुवत् रेखा से कितने योजन पर है यही अनुपात इसमें बतलाया गया है।

३६० अंश : क्रान्त्यंश : : भूपरिधि योजन : अभीष्ट योजन।

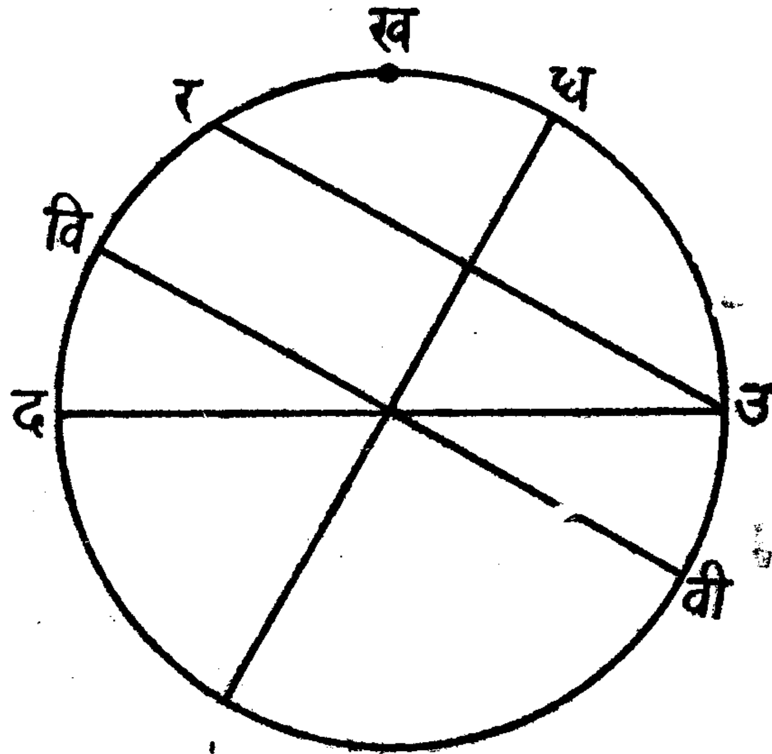
६० घड़ी का दिन या ६० घड़ी की रात कहाँ होती है—

परमापक्रमादेवं योजनानि विशोधयेत्।
भूवृत्तपादाच्छेषाणि यानि स्युर्योजनानि तैः ॥६०॥
अयनान्ते विलोमेन देवासुरविभागयोः।
नाडीषष्ट्या सकृदहर्निशाऽन्यस्मिन्सकृत्तथा ॥६१॥

अनुवाद—(६०) इसी प्रकार सूर्य की परम-क्रान्ति से योजना का मान जान कर इसको भूपरिधि के चतुर्थ भाग से घटाने से जो आवे, विषुवत् रेखा से, उतने ही योजन पर (६१) अयन के अन्त में अर्थात् सायन कर्क संक्रान्ति के दिन उत्तर में ६० घड़ी का एक दिन और दक्षिण में ६० घड़ी की एक रात तथा मकर संक्रान्ति के दिन दक्षिण में ६० घड़ी का एक दिन और उत्तर में ६० घड़ी की एक रात होती है।

विज्ञान-भाष्य—इन श्लोकों का अर्थ समझने के लिए स्पष्टाधिकार के श्लोक ६०-६१ तथा चित्र ४२, ४३ और उसके विवरण को दुहरा लेना चाहिये। इन चित्रों की सहायता से एक नया चित्र बनाकर यह जानना सुगम है कि जब सूर्य की क्रान्ति परम होती है तब किस अक्षांश पर इसका अहोरात्रवृत्त क्षितिज रेखा के बिल्कुल ऊपर हो जाता है। चित्र ४२ के ढंग पर चित्र १२७ बनाया गया है, अन्तर केवल इतना है कि इस चित्र का केन्द्र उस स्थान को सूचित करता है जिसका लम्बांश सूर्य की परम क्रान्ति के समान और अक्षांश उसके पूरक के समान है। उधखविद यहाँ का यामोत्तर-वृत्त, ख खस्वस्तिक, उद क्षितिज की उत्तर दक्षिण रेखा, विषुवन्मण्डल का एक बिन्दु और र सूर्य है जब इसकी क्रान्ति परम होती है अर्थात् सायन कर्क संक्रान्ति का दिन का सूर्य है। उध यहाँ का अक्षांश है इसलिए वीउ=विर। यह स्पष्ट है कि रउ इस दिन के सूर्य का अहोरात्रवृत्त है जो क्षितिज

के बिल्कुल ऊपर है इसलिए इस दिन सूर्य क्षितिज के नीचे नहीं जायगा अथवा अस्त ही न होगा और ६० घड़ी का दिन होगा। इसके विपरीत इतने ही दक्षिण अक्षांश पर इस दिन सूर्य के अहोरात्र वृत्त का व्यास शून्य होगा अर्थात् ६० घड़ी की रात होगी क्योंकि सूर्य वहाँ के क्षितिज रेखा पर ही ६० घड़ी तक रहेगा। जिस स्थान की यह चर्चा है उसका अक्षांश आजकल ९०° — २३° २७′ = ६६° ३३′ है। क्योंकि सूर्य की परम क्रान्ति २३° २७′ के लगभग है। उत्तर वाले स्थान को आजकल उत्तरी ध्रुव-मण्डल और दक्षिण वाले स्थान को दक्षिणी ध्रुव मण्डल कहते हैं।



चित्र १२७

जैसे सायन कर्क संक्रान्ति के दिन उत्तरी ध्रुव मंडल पर ६० घड़ी का दिन और दक्षिणी ध्रुव मंडल पर ६० घड़ी की रात होती है वैसे ही सायन मकर संक्रान्ति के दिन दक्षिणी ध्रुव मंडल पर ६० घड़ी का और उत्तरी ध्रुव मंडल पर ६० घड़ी की रात होती है। यह अवसर एक वर्ष में केवल एक बार आता है।

श्लोकों में अक्षांश को अंशों में न लिख कर योजनों में विषुवत् रेखा से दूरी बतलायी गयी है।

दिन-रात का प्रमाण ६० घड़ी का कहाँ होता है—

तदन्तरेऽपि षष्ट्यन्तं क्षयवृद्धी अहर्निशोः।
परतो विपरीतोऽयं भगोलः परिवर्तते ॥६२॥

अनुवाद—इन अक्षांशों के बीच के देशों में अहोरात्र का प्रमाण ६० घड़ी का होता है और इस समय के भीतर दिन और रात की वृद्धि होती है परन्तु इसके सिवा अन्य स्थानों में यह नियम बदल जाता है क्योंकि वहां नक्षत्र-कक्षा की स्थिति बदल जाती है।

दो महीने का दिन या रात कहाँ होती है—

ऊने भूवृत्तापादे तु द्विज्यापक्रमयोजनैः।
धनुर्मृगस्थः सविता देवभागे न दृश्यते ॥६३॥
तथा चासुरभागे तु मिथुने कर्कटे स्थितः।
नष्टच्छाया महीवृत्तापादे दर्शनमादिशेत् ॥६४॥

अनुवाद—(६२) दो राशियों की क्रांति के योजनों की भूपरिधि के चतुर्थांश से घटाने पर जो आवे, विषुवत् रेखा से, उतने ही अन्तर पर उत्तर में धनु और मकर राशि का सूर्य नहीं देख पड़ता और (६४) दक्षिण में मिथुन और कर्क राशि का सूर्य नहीं देख पड़ता। क्योंकि जिस स्थान पर मध्याह्नकाल में छाया शून्य होती है उस स्थान से भूपरिधि के चतुर्थांश तक सूर्य देख पड़ता है।

विज्ञान-भाष्य—श्लोक ६४ के उत्तरार्ध का अर्थ स्वामी विज्ञानानन्द जी ने अपनी बंगला टीका में यह किया है कि जिस स्थान में भूच्छाया नहीं है वहाँ सूर्य का दर्शन होता है। गूढ़ार्थ प्रकाशिका संस्कृत टीका में इसका अर्थ यों किया गया है 'अभावं प्राप्ता छाया भूच्छाया तत्र तादृशे भूपरिधि चतुर्थांशे सूर्यस्य दर्शनं सदा कथयेत्'। पं० इन्द्रनारायण द्विवेदी तथा माधव पुरोहित की हिन्दी टीका में इसका अर्थ ही नहीं है। मैंने इसका अर्थ यों किया है कि जिस स्थान पर किसी वस्तु की मध्याह्नकालिक छाया शून्य होती हैं उस स्थान से भूपरिधि के चतुर्थ भाग पर्यन्त तक उस दिन सूर्य देख पड़ता है। क्योंकि जहाँ मध्याह्नकालिक छाया शून्य होती है वहीं के ख-स्वस्तिक पर सूर्य होता है और यहीं से ९० अंश तक चारों ओर सूर्य इस समय देख पड़ता है। इसके सिवा 'छाया' का अर्थ भूच्छाया करना ठीक नहीं, मध्याह्न छाया ही उचित है। इसलिए 'नष्टच्छाया' का अर्थ है वह स्थान जहाँ की मध्याह्न छाया शून्य हो।

इन दो श्लोकों में यह बतलाया गया है कि जब सूर्य सायन धनु और मकर राशियों में रहता है तब कहाँ दो मास की रात होती है। जब सूर्य सायन धनु में प्रवेश करता है तब इसकी दक्षिण क्रान्ति २०°१०′ होती है (देखो पृष्ठ ३१६) और जब तक यह धनु और मकर राशियों में रहता है तब तक इसकी दक्षिण क्रान्ति २०° १०′ से अधिक होती है। अब देखना है कि जब सूर्य की दक्षिण क्रांति २०°१०′

होती है तब यह भूपृष्ठ के किस भाग पर दिखाई पड़ सकता है। यह स्पष्ट है कि इस समय सूर्य उस स्थान के खस्वस्तिक पर रहता है, जिसका दक्षिण अक्षांश २०° १०′ है। इसलिए इस स्थान पर मध्याह्नकालिक छाया भी शून्य होगी और यहाँ से भूपरिधि के चतुर्थ भाग तक अर्थात् ९० अंश उत्तर दक्षिण तक सूर्य दिखाई पड़ सकता है। २०° १०′ दक्षिण अक्षांश से ९० अंश उत्तर के स्थान का अक्षांश ९०° — २०° १०=६९°५०′ हुआ। इसलिए इस दिन सूर्य की किरणें यहीं तक जा सकती हैं। इसके बाद जब तक सूर्य की दक्षिण क्रांति २०° १०′ से अधिक दक्षिण होगी तब तक वह ६९° ५०′ के उत्तर अक्षांश पर नहीं देख पड़ेगा अर्थात् इस स्थान पर दो मास की रात होगी। इसके प्रतिकूल ६९° ५०′ दक्षिण अक्षांश पर दो महीने का दिन होगा। इस स्थान का योजनात्मक अन्तर विषुवत् रेखा से क्या होगा यही जानने का नियम इन दोनों श्लोकों में बतलाया गया है जो श्लोक ५९ में बतलाये गये नियम के अनुसार है और जिसका व्यवहार श्लोक ६०-६१ में किया गया है।

इसी तरह जब सूर्य सायन मिथुन और कर्क राशियों में रहता है तब इसकी उत्तर क्रान्ति २०° १०′ से अधिक होती है जिससे ६९° ५०′ उत्तर अक्षांश के स्थानों पर इन दो महीने तक सूर्य बराबर देख पड़ता है इसलिए यहाँ दो मास का दिन होता है और इतने ही दक्षिण अक्षांश पर लगातार दो महीने तक सूर्य अदृश्य होने के कारण रात रहती है।

चार महीने का दिन या रात कहाँ होती है—

एकज्यापक्रमानीतैर्योजनैः परिवर्जितेः।
भूमिकक्ष्या चतुर्थांशे व्यक्षाच्छेषैस्तु योजनैः ॥६५॥
धनुर्मृगालिकुम्भेषु संस्थितोऽर्को न दृश्यते।
देवभागेऽसुराणां तु वृषाद्ये भचतुष्टये ॥६६॥

अनुवाद—(६५) एक राशि की क्रान्ति के योजनों को भूपरिधि के चतुर्थांश से घटाने पर जो आवे विषुवत् रेखा से उतने ही अन्तर पर (६६) उत्तर में धनु, मकर, कुम्भ, और मीन राशियों का सूर्य नहीं देख पड़ता और दक्षिण में वृष, मिथुन, कर्क और सिंह राशियों का सूर्य नहीं देख पड़ता।

विज्ञान-भाष्य—जब सूर्य सायन धनु, मकर, कुम्भ और मीन राशियों में रहता है तब इसकी दक्षिण क्रान्ति एक राशि की क्रान्ति से अर्थात् ११° २९′ से अधिक होती है इसलिए इन चार महीनों में सूर्य उस स्थान पर नहीं देख पड़ता जिसका उत्तर अक्षांश ९०° — ११° २९′=७८° ३१′ है। इसका फल यह होता है कि इन दिनों यहाँ चार महीने की रात होती है परन्तु ७८° ३१′ दक्षिण अक्षांश पर

४ महीने का दिन होता है। इसी प्रकार जब सूर्य की उत्तर क्रान्ति ११° २६′ से अधिक होती है अर्थात् जब सायन वृष, मिथुन, कर्क और सिंह राशियों में रहता है तब ७८° ३१′ दक्षिण अक्षांश पर ४ महीने की रात और उत्तर अक्षांश पर ४ महीने का दिन होता है।

श्लोकों में अक्षांश की जगह विषुवत् रेखा से योजनों में दूरी जानने की रीति दी गई है जैसा कि पहले के श्लोक में है।

६ महीने का दिन या रात कहाँ होती है—

मेरौ मेषादिचक्रार्धे देवाः पश्यन्ति भास्करम् ।
सकृदेवोदितं तद्वदसुराश्च तुलादिगम् ॥६७॥

अनुवाद—जब सूर्य मेष से कन्या तक ६ राशियों में रहता है तब उत्तर ध्रुव के रहने वाले देवता लोग उसको एक ही बार उदय हुआ देखते हैं अर्थात् ६ महीने तक उसका अस्त नहीं होता और जब सूर्य तुला से मीन राशियों में रहता है तब दक्षिण ध्रुव पर असुर लोग उसको बराबर उदय हुआ देखते हैं।

विज्ञान-भाष्य—जब सूर्य सायन मेष में प्रवेश करता है तब यह उत्तर गोल में आता है और ६ मास तक बराबर उत्तर गोल में रहता है इसलिये उत्तर ध्रुव पर यह इन मासों में सदा दिखाई देता है और दक्षिण ध्रुव पर अदृश्य रहता है। इसीलिये इन ६ महीनों में देवताओं का एक दिन और असुरों की एक रात होती है। परन्तु जब सूर्य सायन तुला में आता है तब यह दक्षिण गोल में हो जाता है और ६ मास तक बराबर दक्षिण गोल में रहता है इसलिये इन ६ महीनों में असुर लोग सूर्य को बराबर देखा करते हैं और यहाँ ६ महीने का दिन होता है तथा उत्तर ध्रुव से अदृश्य होने के कारण देवताओं की ६ महीने की रात होती है।

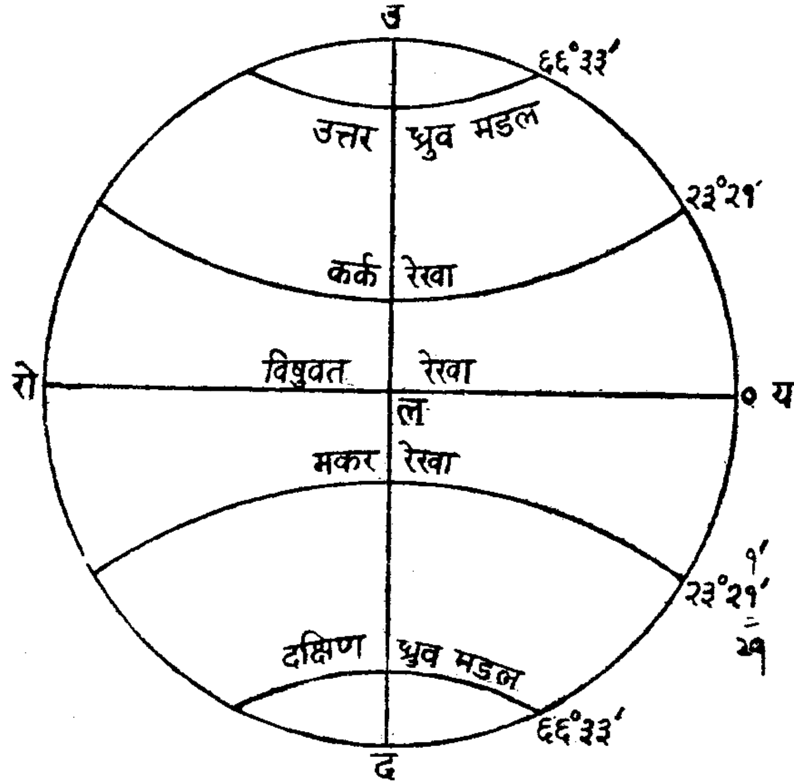
सायन कर्क या मकर संक्रान्ति के दिन सूर्य ठीक ऊपर कहाँ देख पड़ता है और यहाँ क्या विशेषता है—

भूमण्डलात् पञ्चदशे भागे दैवे तथाऽऽसुरे ।
उपरिष्टाद्व्रजत्यर्कः सौम्य याम्यायनान्तगः ॥६८॥
तदन्तरालयोश्छाया याम्योदक् संभवत्यपि ।
मेरोरभिमुख यातः परतश्च स्वभागयोः ॥६९॥

अनुवाद—(६८) विषुवत् रेखा से भूपरिधि के १५वें भाग की दूरी पर स्थित उत्तर या दक्षिण के स्थान के ठीक ऊपर उत्तरायण या दक्षिणायन के अन्तकाल का सूर्य भ्रमण करता है। (६९) इन्हीं रेखाओं के बीच में मध्याह्नकालिक छाया

दक्षिण या उत्तर हो सकती है। इनके बाहर के स्थानों में मध्याह्न छाया अपने-अपने विभाग के मेरु की ओर रहती है।

विज्ञान-भाष्य—उत्तरायण का अन्त सायन कर्क संक्रान्ति काल में होता है जिस समय सूर्य की उत्तर क्रान्ति परम के समान होती है जो सूर्य-सिद्धान्त के मत से २४



(चित्र नं० १२८)

अंश है। इसलिये इस दिन २४ उत्तर अक्षांश पर सूर्य मध्याह्न काल में ठीक ऊपर होता है और मध्याह्नकालिक छाया शून्य होयी है। इसी प्रकार दक्षिणायन के अन्त में सूर्य की दक्षिण क्रान्ति २४° होती है। इसलिये इस दिन २४ दक्षिण अक्षांश पर सूर्य ठीक ऊपर होता है परन्तु भूपृष्ठ का २४ अंश सारी भूपरिधि का १५वां भाग है। आजकल यह २३ अंश २७ कला के लगभग है। इसलिये २३°२७′ उत्तर अक्षांश के देशों पर सायन कर्क संक्रान्ति के दिन मध्याह्न काल में सूर्य ठीक ऊपर होता है और इतने ही दक्षिण अक्षांश पर सायन मकर संक्रान्ति के दिन मध्याह्न काल में सूर्य ठीक ऊपर होता है, २३°२७′ उत्तर अक्षांश रेखा को इसलिये कर्क रेखा और २३°२७′ दक्षिण अक्षांश रेखा को मकर रेखा कहते हैं। इन दोनों अक्षांशों के बीच के भूभाग को उष्ण कटिबन्ध कहते हैं क्योंकि यहाँ सूर्य के बारहों महीने ऊपर रहने से बड़ी गरमी पड़ती है।

इसी भूभाग में प्रत्येक स्थान के मध्याह्न काल की छाया उत्तर या दक्षिण हो सकती है क्योंकि यहाँ के किसी स्थान का अक्षांश सूर्य की परम क्रान्ति से कम

होगा इसलिये जब किसी स्थान का अक्षांश और सूर्य की क्रान्ति एक ही दिशा में है और सूर्य की क्रान्ति कम है तो मध्याह्न छाया उसी दिशा के ध्रुव की ओर होगी परन्तु यदि क्रान्ति अधिक है तो छाया की दिशा उल्टी होगी (देखो त्रिप्रश्नाधिकार चित्र ५५, ५६)। परन्तु कर्क रेखा के उत्तर के देशों में मध्याह्न-छाया की दिशा सदा उत्तर की ओर होगी और मकर रेखा के दक्षिण के देशों में मध्याह्नछाया सदा दक्षिण की ओर होगी।

चित्र १२७ में गोल रेखा के भीतर जो क्षेत्र है वह भूपृष्ठ का गोलार्ध प्रकट करता है। उ और द क्रम से उत्तर और दक्षिण ध्रुव हैं। रो ल य विषुवत् रेखा है। य यमकोटि, ल लंका और रो रोमक नगर है। सिद्धपुरी इस गोलार्ध पर नहीं दिखायी जा सकती क्योंकि यह लंका के समसूत्र में दूसरे गोलार्ध में है। विषुवत् रेखा से २३°२७′ उत्तर कर्क रेखा और दक्षिण मकर रेखा हैं। ये रेखाएँ विषुवत् रेखा के समानान्तर हैं। इन्हीं दोनों रेखाओं के बीच वाले भूभाग पर मध्याह्न-छाया उत्तर या दक्षिण हो सकती है। विषुवत् रेखा ६६ ३३′ उत्तर और दक्षिण तथा उसके समानान्तर उत्तरी ध्रुव मंडल और दक्षिणी ध्रुव मंडल हैं। इन्हीं रेखाओं पर दिन का प्रमाण वर्ष में एक बार ६० घड़ी या २४ घंटे का होता है और रात्रि का प्रमाण भी एक बार इतना ही होता है जैसा कि ६०-६१ श्लोकों में बतलाया गया है। इन्हीं रेखाओं के बीच के भूभाग में अहोरात्र का प्रमाण ६० घड़ी का होता है। इनके बाहर के भूभाग में दिन रात्रि का प्रमाण विचित्र होता है। उत्तरी ध्रुव मंडल के और उत्तर विषुवत् रेखा से ६९°५०′ दूर जो समानान्तर रेखा है उस पर वर्ष में एक बार-बार २ मास का दिन तथा दो मास की रात होती है। इसके भी उत्तर विषुवत् से ७८°३१′ दूर जो रेखा है वहाँ ४ महीने का दिन और ४ महीने की रात होती है। इसी प्रकार दक्षिणी ध्रुव मंडल में भी होता है। उत्तरी ध्रुवों पर ६ महीने का दिन और ६ महीने की रात होती है।

विषुवत् रेखा के चार नगरों में सूर्योदय सूर्यास्त कब होता है—

> भद्राश्वोपरिगः कुर्याद् भारते तूदयं रविः।
> रात्र्यर्धं केतुमालाख्ये कुरुष्वस्तमयं तथा ॥७०॥
> भारतादिषु वर्षेषु तद्वदेव परिभ्रमात्
> मध्योदयार्धरात्रास्तकालात् कुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥७१॥

अनुवाद—(७०) जब भद्राश्व वर्ष के यमकोटि नगरों में सूर्य ठीक ऊपर होता है तब भारतवर्ष के लंका नगर में उसका उदय होता है, केतुमाल देश के रोमक नगर में अर्धरात्रि होती है और कुरुदेश के सिद्धपुरी नगर में उसका अस्त होता

रहता है। (७१) इसी प्रकार भारतवर्ष आदि देशों में क्रम से मध्याह्न, उदय, अर्धरात्रि और अस्तकाल होता है।

विज्ञान-भाष्य—इन चार नगरों का परस्पर सम्बन्ध ३८--४० श्लोकों में बतलाया जा चुका है। यहाँ इनके समयों का सम्बन्ध बतलाया गया है। जब यमकोटि में मध्याह्न होता है तब लंका में जो उससे ९० अंश पच्छिम है सूर्योदय होता है, रोमक में जो लंका से ९० अंश पच्छिम है मध्य रात्रि होती है और सिद्ध पुरी में जो रोमक से ९० अंश पच्छिम है सूर्यास्त होता है। इसी प्रकार जब लंका में मध्याह्न होता है तब रोमक में सूर्योदय सिद्धपुरी में अर्द्ध रात्रि और यमकोटि में सूर्यास्त होता है।

ध्रुवतारा और नक्षत्र चक्र का परस्पर अन्तर—

ध्रुवोन्नतिर्भचक्रस्य नतिर्मेरुं प्रयास्यतः।
निरक्षाभिमुखं यातुर्विपरीते नतोन्नते ॥७२॥

अनुवाद—ध्रुवों की ओर चलने से ध्रुवतारा का उन्नतांश और नक्षत्र चक्र का नतांश बढ़ता जाता है परन्तु विषुवत् रेखा की ओर चलने से इसका उलटा होता है अर्थात् ध्रुवतारा का नतांश तथा नक्षत्र चक्र का उन्नतांश बढ़ता है।

विज्ञान-भाष्य—नक्षत्र चक्र विषुवन्मण्डल के पास है इसलिए विषुवत् रेखा पर नक्षत्र चक्र ठीक ऊपर देख पड़ता है और ध्रुव तारे क्षितिज पर देख पड़ते हैं। यहाँ से ध्रुवों की ओर चलने में ध्रुवों का उन्नतांश बढ़ता जाता है और विषुवन्मण्डल का उन्नतांश उतना ही घटता जाता अथवा नतांश बढ़ता जाता है। ध्रुवों पर ध्रुव तारे का उन्नतांश ९० और विषुवन्मण्डल का उन्नतांश शून्य अथवा नतांश ९० होता है क्योंकि ध्रुवों पर से विषुवन्मण्डल क्षितिज में हो जाता है। इसके विपरीत विषुवत् रेखा की ओर चलने में ध्रुव तारे का नतांश बढ़ता और नक्षत्र चक्र का उन्नतांश बढ़ता है।

नक्षत्र चक्र की गति का कारण—

भचक्रं ध्रुवयोर्बद्धम् आक्षिप्तं प्रवहानिलैः।
पर्येत्यजस्रं तद्बद्धा ग्रहकक्ष्या यथाक्रमम् ॥७३॥

अनुवाद—दोनों ध्रुव तारों से बँधा हुआ और प्रवाह वायु का धक्का खाता हुआ नक्षत्र-चक्र निरन्तर घूमा करता है। इसी से क्रमानुसार बँधी हुई ग्रहकक्षाएँ भी इसी के साथ घूमती हैं।

विज्ञान-भाष्य—सूर्य, चन्द्र, ग्रह, तारे सभी पूर्व क्षितिज पर उदय होकर ऊपर उठते हैं, पच्छिम की ओर घूमते हुए अस्त हो जाते हैं और २४ घंटे में फिर पूर्व क्षितिज पर आकर उदय होते हैं। इसका कारण प्राचीन काल में यह समझा जाता था कि सारा आकाश-चक्र दोनों आकाशीय ध्रुवों में बँधा हुआ प्रवह वायु के द्वारा घूम रहा है और ग्रहों की कक्षाएँ भी उसी आकाश-चक्र में बँधी हुई पूरब से पच्छिम को घूम रही हैं। इस मत के समर्थक भारतवर्ष के कुछ पण्डित अब भी देखे जाते हैं और वाद विवाद करने के लिये तैयार रहते हैं। परन्तु अब अकाट्य प्रमाणों से सिद्ध हो गया है कि आकाश-चक्र की इस गति का कारण प्रवह वायु नहीं है वरन् स्वयम् पृथ्वी की गति है। एक गति से पृथ्वी अपने अक्ष पर २४ घंटे में एक बार पच्छिम से पूरब को घूम जाती है, इस दैनिक गति को पृथ्वी का अक्ष-भ्रमण कहते हैं। इसी से आकाश के सभी पिंड पूरब से पच्छिम को घूमते हुए जान पड़ते हैं। इसी से दिन रात की उत्पत्ति होती है। दूसरी गति से पृथ्वी एक वर्ष में सूर्य की परिक्रमा कर लेती है जिससे ऋतुओं की उत्पत्ति होती है और आकाश में सूर्य पच्छिम से पूरब को चलता हुआ एक वर्ष में पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ देख पड़ता है। इस गति को पृथ्वी की वार्षिक गति कहते हैं। यह दोनों गतियाँ पृथ्वी में एकसाथ होती हैं जैसे ऊपर फेंकी हुई गेंद अपने अक्ष पर नाचती भी जाती है और अपने स्थान को बदलती भी जाती है अथवा लड़कों के खेलने की फिरकी नाचती हुई अपने स्थान को भी बदलती जाती है।

हमारे प्राचीन धर्म ग्रन्थों में पृथ्वी को अचला माना गया है इसलिए पृथ्वी की गति की बात सनातन धर्म के कुछ पण्डितों को मान्य नहीं है परन्तु वाद विवाद में वे वही तर्क उपस्थित करते हैं जिसे आचार्य वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त आदि पेश करते थे। इसलिये पहले यह विचार किया जायगा कि वे तर्क कहाँ तक गणित शास्त्र के अनुकूल हैं। इसके बाद अनेक गणित और भौतिक विज्ञान के प्रमाणों से सिद्ध किया जायगा कि पृथ्वी में दैनिक और वार्षिक दो गतियाँ हैं और इन्हीं के कारण नक्षत्र-चक्र दिन में एक बार पूरब से पच्छिम को घूमता हुआ देख पड़ता है और ऋतु आदि का परिवर्तन होता है तथा ग्रहों की चाल विचित्र प्रकार की देख पड़ती है। आचार्य वराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त ने पृथ्वी की गति का खण्डन जिन युक्तियों से किया था वे यह[1] हैं। यहाँ यह बतला देना आवश्यक जान पड़ता है कि हमारे यहाँ के आचार्य आर्यभट अपने आर्यभटीय ग्रंथ में पृथ्वी का चलना मानते हैं और इसका

---

१. **भ्रमति भ्रमस्थितेव क्षितिरित्यपरेत्ववदन्ति नोडुगणः।**
यद्येवं श्येनाद्यान खात्पुनः स्वनिलयमुपेयुः ॥६॥

समर्थन इस उदाहरण[1] से करते हैं कि जैसे चलती हुई नाव पर बैठे हुए मनुष्य को नाव स्थिर और किनारे के पेड़, घर आदि उलटी दिशा में चलते हुई दिखाई पड़ते हैं इसी तरह नक्षत्र-चक्र अचल होने पर भी घूमनेवाली पृथ्वी पर के रहने मनुष्यों को पच्छिम की तरफ घूमता हुआ देख पड़ता है परन्तु परम्परा विरुद्ध समझ कर किसी ने नहीं माना और वराहमिहिर आदि ने ये तर्क उपस्थित किये थे।

आचार्य वराहमिहिर का एक तर्क यह है कि यदि पृथ्वी ही पूरब की ओर घूमती है तो जो पक्षी अपने घोंसले छोड़ कर आकाश में उड़ जाते हैं वे फिर घोंसले तक क्यों पहुँच जाते हैं क्योंकि पृथ्वी के घूमने के कारण पृथ्वी में लगा हुआ घोंसला तो बहुत दूर पूरब में हो जाता और पक्षी आकाश में रह जाने से बहुत पीछे रह जाता। दूसरा तर्क उन्होंने यह किया कि यदि पृथ्वी पूरब की ओर घूमती तो पताका झण्डा आदि सर्वदा पच्छिम की ओर उड़ते देख पड़ते क्योंकि यह साधारण अनुभव की बात है कि यदि कोई मनुष्य रूमाल हाथ में लटका कर दौड़े तो उसके वेग के कारण रूमाल पीछे की ओर उड़ने लगता है। और यदि यह कहा जाय कि पृथ्वी बहुत मंद गति से घूमती है इसलिये पताका आदि पच्छिम को उड़ते हुए नहीं देख पड़ते तो इतनी मन्द चाल से पृथ्वी दिन भर में एक चक्कर कैसे कर लेती है।

चिड़ियों के अपने घोंसले तक पहुँच जाने का कारण यह है कि जब चिड़िया आकाश में उड़ जाती है तब भी भूभ्रमण का जो वेग उस घोंसले में रहता है वह उतना ही आकाश में भी बना रहता है, इसलिए जिस वेग से घोंसला पूर्व की ओर घूमता जाता है उसी वेग से चिड़िया भी घूमती जाती है, हाँ उसको जान नहीं पड़ता। साथ ही साथ वह अपनी गति भी उत्पन्न कर सकती है जिससे वह घोंसले से दूर जहाँ चाहे जाती है। जैसे रेलगाड़ी पर चढ़ा हुआ आदमी उस वेग का अनुभव नहीं करता जिससे गाड़ी स्वयम् चल रही है, पर उसमें वह वेग वर्तमान रहता

अन्यच्च भवेद्धू्मेरह्ना भ्रमरंहसा ध्वजादीनाम्।
नित्यं पश्चात् प्रेरणमथाल्पगा स्यात्कथं भ्रमति ॥७॥

पंच सिद्धान्तिका अध्याय १३

प्राणेनैति कलां भूर्यदि तर्हि क तो व्रजेत कमध्वानम्।
आवर्त्तनमुर्व्याश्चेन्न पतन्ति समुच्छ्रयाः कस्मात् ॥१७॥

ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त, तन्त्र परीक्षाध्याय

१. **अनुलोम गतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।**
अचलानिभानि तद्वत्सम पश्चिमगानि लङ्कायाम् ॥९॥

आर्यभटीय, गोलपाद

है। इस वेग के रहते हुए भी वह अपनी इच्छा-शक्ति से डब्बे में इधर-उधर चल फिर सकता है, उछल कूद सकता है, गेंद खेल सकता है। क्योंकि गाड़ी में रखी हुई जितनी वस्तुएँ हैं सबमें गाड़ी का वेग वर्तमान रहता है इसलिए यह वेग सबमें समान रूप से रहने के कारण मालूम नहीं होता। इसका पता भी सहज ही लगाया जा सकता है। यदि बहुत तीव्र चलती हुई गाड़ी में बैठ कर एक कंकड़ बाहर की ओर सीधा फेंका जाय तो जब तक वह पृथ्वी को नहीं छू लेता तब तक गाड़ी के साथ ही साथ आगे बढ़ता हुआ देख पड़ता है। यह बात उस समय और भी स्पष्ट देख पड़ती है जब कंकड़ उस समय फेंका जाय जिस समय गाड़ी किसी नदी के पुल पर चलने लगे क्योंकि ऐसी दशा में कंकड़ को धरातल तक पहुँचने में कुछ देर लगेगी इसलिए वह देर तक गाड़ी के साथ आगे बढ़ता हुआ देख पड़ेगा और उस जगह नहीं गिरेगा जिस जगह लक्ष्य करके फेंका जाय वरन् आगे बढ़ कर ठीक अपने ही सीध में गिरेगा। इससे जाना जा सकता है कि जब कोई वस्तु किसी वेग से चलती हुई गाड़ी, वायुयान आदि से अलग होती है तब भी उसमें वह वेग वर्तमान रहता जो गाड़ी में था और जब तक वह वस्तु किसी दूसरे वस्तु पर ठहर नहीं जाती तब तक उसका वेग नष्ट नहीं होता, इसी कारण यदि चलती हुई गाड़ी से कोई कूदता है तो वह गाड़ी के वेग के कारण आगे बढ़ कर गिर जाता है।

इस बात की दूसरी परीक्षा इस प्रकार की जा सकती है। यह तो सभी को मालूम है कि यदि कोई गरुई चीज़ कुछ ऊँचाई से छोड़ दी जाय तो वह अपने ठीक नीचे पृथ्वी पर गिरती है। बड़ी रेलगाड़ी के डब्बे की ऊँचाई फ़र्श से १० फुट के लगभग होती है। इसलिए यदि छत के पास से पत्थर का टुकड़ा नीचे गिराया जाय तो फ़र्श पर पहुँचने में उसे ९, १० फुट चलना पड़ेगा और इसमें उसे पौन सेकंड के लगभग लगेगा। इतनी देर में यदि गाड़ी ३० मील प्रति घंटे की चाल से चलती हो तो ३३ फुट आगे बढ़ जाती है। इसलिए यदि वराहमिहिर का तर्क ठीक हो तो पत्थर के उस स्थान पर नहीं गिरना चाहिये जो उस स्थान से ठीक नीचे है जहाँ से पत्थर गिराया जाता है वरन् ३३ फुट पीछे गिरना चाहिये। परन्तु ऐसा देख नहीं पड़ता। देखने में वह वहीं गिरता है जिसके ठीक ऊपर से गिराया जाता है। इसका कारण यह है कि पत्थर जिस समय छत से गिराया जाता है उस समय उसमें गाड़ी की जो गति वर्तमान रहती है वह गिरने के समय भी वर्तमान रहती है इसलिए चीज गिरते रहने के साथ-साथ गाड़ी के साथ आगे भी बढ़ता जाता है और ठीक वहीं गिरता है जिसके ऊपर से गिराया जाता है। सर्कस के खेल में दौड़ते हुए घोड़े की पीठ पर से ऊपर से ऊपर उछल जाना और फिर उसी की पीठ पर आ जाना इसी नियम का परिणाम है।

अब रही ध्वजा की बात। ध्वजा के प्रत्येक कण में पृथ्वी का वेग रहता है। इसी तरह हवा में भी जो पृथ्वी का एक अंग ही है वह वेग वर्तमान रहता है इसीलिए ध्वजा का कपड़ा पृथ्वी की गति के कारण पश्चिम की ओर उड़ता हुआ नहीं देख पड़ता। गाड़ी, मोटर या रेलगाड़ी के बाहर ध्वजा लगी हुई हो तो वह पीछे की ओर उड़ती हुई देख पड़ती है क्योंकि रेलगाड़ी या मोटर की गति से बाहर की हवा का कोई लगाव नहीं रहता, यह तो हवा को चीरती हुई चलती है इसलिए यह पीछे की ओर बढ़ती है और ध्वजा पताका इत्यादि को पीछे की ओर उड़ाती है। हाँ यदि रेलगाड़ी या मोटर के सब द्वार बन्द कर दिये जाँय तो इसके भीतर की हवा का सम्बन्ध बाहर की हवा से टूट जाता है और उसमें गाड़ी का वेग वर्तमान रहता है इसलिए उसमें ध्वजा को पीछे उड़ाने की शक्ति नहीं रहती। इसी प्रकार पृथ्वी का वातावरण भी ध्वजा को पीछे उड़ाने में असमर्थ होता है क्योंकि पृथ्वी वातावरण को चीरती हुई नहीं चलती वरन् साथ लिए हुई चलती है इसलिए उसमें भी वही वेग रहता है।

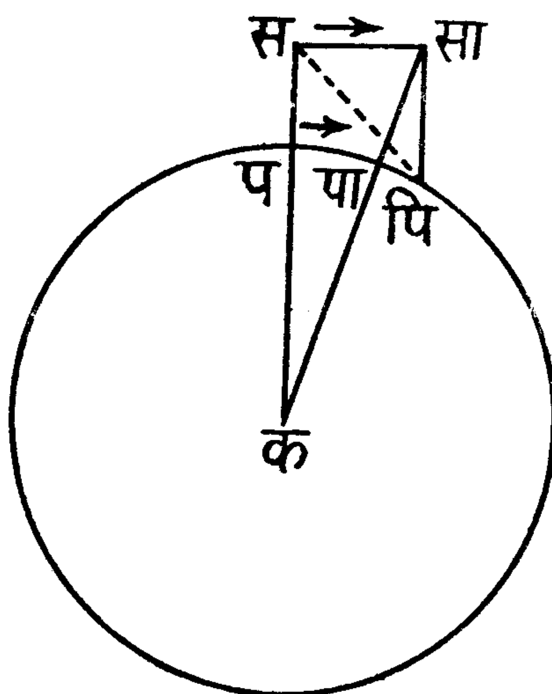
आचार्य ब्रह्मगुप्त का यह तर्क कि पृथ्वी के घूमने से ऊँचे-ऊँचे घरों, पर्वतों आदि कीचोटी कभी ऊपर और कभी नीचे हो जाती और जब नीचे हो जाती तो यह अवश्य गिर पड़ते परन्तु ऐसा नहीं होता इसलिए पृथ्वी नहीं घूमती, बिल्कुल पृथ्वी है। ऊँचाई और नीचाई की कल्पना पृथ्वी के ही विचार से की जाती है। पृथ्वी की ओर जो दिशा है वह नीचे की दिशा कही जाती है और इससे उल्टी आकाश की ओर की दिशा को ऊँची दिशा कही जाती है और जो वस्तुएँ गिरती हैं वे पृथ्वी की आकर्षण शक्ति के कारण ही पृथ्वी पर गिरती हैं इसलिए यदि कोई गोला पृथ्वी के ऊपर हवा में घुमाया जाय और उसमें कोई ऐसी वस्तु चिपका दी जाय तो पृथ्वी की ओर होने पर पृथ्वी पर गिर पड़े तो यह बिल्कुल ठीक है। परन्तु जहाँ पृथ्वी के ही घूमने का प्रश्न है वहाँ इसके नीचे क्या है जिसके आकर्षण से भूपृष्ठ के ऊँचे घर या पर्वत उस ओर गिर कर चले जायँ? पृथ्वी के चारों ओर आकाश ही आकाश है इसलिए वह चाहे जितनी घूमे उस पर के घरों और पर्वतों की चोटी सदैव आकाश की ही ओर रहेगी और नींव पृथ्वी की ओर इसलिए वे गिर कर कहाँ जा सकते हैं।

यहाँ तक तो शंकाओं का समाधान किया गया। अब उदाहरण दे कर गणितशास्त्र के आधार पर सिद्ध किया जायगा कि पृथ्वी में गति है।

अर्वाचीन विज्ञान से पृथ्वी के अक्ष-भ्रमण के प्रमाण—

यह साधारण अनुभव की बात है कि पहिये का वह विन्दु जो धुरी से दूर

है धुरी के पास वाले विन्दु से अधिक चलता है और पहिये के किनारे पर जो विन्दु है उसमें उन सब विन्दुओं से अधिक वेग रहता है जो बीच में होते हैं। यदि पृथ्वी ऐसे अक्ष पर घूमती हुई मानी जाय जिसका एक सिरा उत्तरी ध्रुव पर और दूसरा दक्षिणी ध्रुव पर हो तो यह स्पष्ट है कि किसी ऊँचे पेड़, मकान या मीनार की चोटी उसके आधार की अपेक्षा पृथ्वी के अक्ष से अधिक दूरी पर है इसलिये चोटी की गति उसके आधार की गति से अधिक होगी। इसलिए यदि कोई वस्तु किसी ऊँचे मीनार की चोटी से गिरायी जाय तो वह अधिक वेग के कारण ठीक नीचे न गिर कर कुछ पूरब की ओर बढ़कर गिरेगी क्योंकि उसके ठीक नीचे वाले विन्दु



चित्र नं० १२६

की चाल उससे मन्द है। मान लो स एक मीनार की चोटी है जहाँ से वस्तु नीचे गिरायी जाती है और प मीनार का मूल है जो स के ठीक नीचे है इसलिये लम्ब रेखा स प बढ़ाने पर पृथ्वी के केन्द्र क पर पहुँचेगी। यदि मान लिया जाय कि जितनी देर में वस्तु पृथ्वी तल पर पहुँचती है मीनार की चोटी स से सा तक घूम गयी तो मीनार का मूल प से पा तक पहुँचेगा क्योंकि चोटी और मूल को मिलाने वाली रेखा पृथ्वी के केन्द्र को सदैव जायगी। यह स्पष्ट है कि प पा, स सा से कम है। यह भी स्पष्ट है कि प की भ्रमण गति स की भ्रमण गति से कम है। परन्तु जो वस्तु स बिन्दु से गिरायी जायगी उसकी गति स की गति के समान होगी इस-लिये वह गिरते हुए भी अपनी ऊपर वाली गति को धारण किये रहेगी इसलिये

वह पा पर न गिर कर पि पर गिरेगी जहाँ प पि, स सा के समान है अर्थात् वह वस्तु लम्ब रेखा से कुछ पूरब की ओर बढ़कर गिरेगी।

इसलिये यदि परीक्षा करके यह सिद्ध किया जाय के कि ऊपर से गिरी हुई वस्तु पृथ्वी पर पहुँचते-पहुँचते यथार्थ में कुछ पूरब की ओर बढ़ जाती है तब यह कल्पना भी ठीक मानी जा सकती है कि पृथ्वी पूरब की ओर भ्रमण करती है। परन्तु यह परीक्षा कठिन है क्योंकि इतना ऊँचा स्थान नहीं बनाया जा सकता कि उसकी चोटी और मूल की भ्रमण गतियों में इतना अन्तर हो कि वह साफ साफ देख पड़े क्योंकि पृथ्वी की त्रिज्या ४००० मील के लगभग है और मीनार की चोटी १००० फुट भी नहीं हो सकती। बोलोन और हेमबर्ग में इस सम्बन्ध में जितनी परीक्षाएँ की गयीं उनसे सिद्ध हुआ कि २५० फुट की ऊँचाई से गिरी हुई वस्तु लम्ब रेखा से तिहाई इंच पूरब बढ़ जाती है। गणना करके यह देखा जा सकता है कि जितनी देर में कोई वस्तु २५० फुट नीचे गिरती है उतनी देर में चोटी और मूल की अथवा स और प बिन्दुओं की गतियों का अन्तर भी उतना ही होता है। इसलिये इससे सिद्ध होता है कि पृथ्वी में भ्रमण गति है। इस प्रयोग की पूरी गणना यहाँ नहीं दी जा सकती क्योंकि बिना उच्च गणित की जानकारी के वह समझ में आ नहीं सकता। इसलिये यहाँ केवल सारमात्र दिया गया है।

इस प्रयोग की कल्पना पहले पहले न्यूटन ने की थी। पृष्ठ ७५४ पर जो चित्र दिया गया है वह विषुवत् रेखा पर स्थित देशों के लिये उपयुक्त है। अन्य स्थानों के लिये इसकी गणना में कुछ परिवर्तन करना पड़ता है क्योंकि विषुवत् रेखा से अन्य स्थानों में गिरनेवाली वस्तु में दो गतियाँ हो जाती हैं जिनकी दिशाएँ भिन्न होती हैं। एक गति तो पृथ्वी के दैनिक भ्रमण की होती है जो गिरने वाली वस्तु को मीनार की चोटी से प्राप्त होती है और पृथ्वी के अक्ष के समकोण तल पर होती है और दूसरी गति पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के कारण होती है जिससे वस्तु पृथ्वी के केन्द्र की ओर गिरती है। इसलिये वस्तु लम्ब दिशा से पूरब की ओर तो बढ़ जाती है, साथ ही साथ कुछ दक्षिण या उत्तर भी हो जाती है। गिरते समय वस्तु पर हवा की रगड़ का भी कुछ प्रभाव पड़ता है परन्तु इन सब बातों के होते हुए भी मूल सिद्धान्त में कोई अन्तर नहीं होता।

यह प्रयोग कोयले की गहरी खानों में भी किया जाता है क्योंकि यहाँ गिरने के लिये गहराई अधिक मिल सकती है। ५०० फुट की ऊँचाई से गिरायी हुई वस्तु लम्ब दिशा से १ इञ्च के लगभग पूरब बढ़ जाती है। यह कई प्रयोगों का मध्यमान है, गणना से भी यही बात सिद्ध होती है।

(२) परन्तु इससे भी सहज और स्पष्ट प्रयोग फूको (Foucault) का लोलक-प्रयोग (Pendulum experiment) है। गणित शास्त्र से यह सिद्ध है कि यदि कोई लोलक केवल गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव के स्पन्दन करे या झूले तो इसका स्पन्दन तल (झूलने की दिशा) वही बना रहेगा और इस तल की दिशा पर लोलक के आधार की गति का प्रभाव नहीं पड़ेगा क्योंकि ऐसी दूसरी कोई शक्ति नहीं है जो इसे इस तल से विचलित कर सके। यह सहज ही देखा जा सकता है कि यदि एक भारी लोलक एक पतले तार से लटका कर घड़ियों के लोलक की तरह झुलाया जाय और यदि वह आधार जिसमें लोलक लटकाया जाता है घुमाया जाय तो इसके घूमने से लोलक के स्पन्दन-तल में कोई अन्तर नहीं पड़ता क्योंकि जिस तार या डोरे में लोलक बंधा रहता है उसका जरा सा ऐंठ जाना अधिक सहज है न कि भारी लोलक का ही अपने स्पन्दन तल को बदलना जब कि वह पहले ही से एक तल में झूल रहा है। इसलिये यह सिद्ध है कि यदि पृथ्वी अचल हो तो लोलक के स्पन्दन की दिशा भी आसपास की वस्तुओं तथा आधार के विचार से अचल रहेगी और यदि इसमें भ्रमणगति होगी तो लोलक के स्पन्दन तल की अपेक्षा भूतल की दिशाओं में परिवर्तन हो जायगा और लोलक का स्पन्दन तल ही बदलता हुआ देख पड़ेगा। इसलिये इस लोलक-प्रयोग से पृथ्वी की भ्रमण गति का ही पता नहीं लगेगा वरन् इसकी दिशा का भी पता लगेगा।

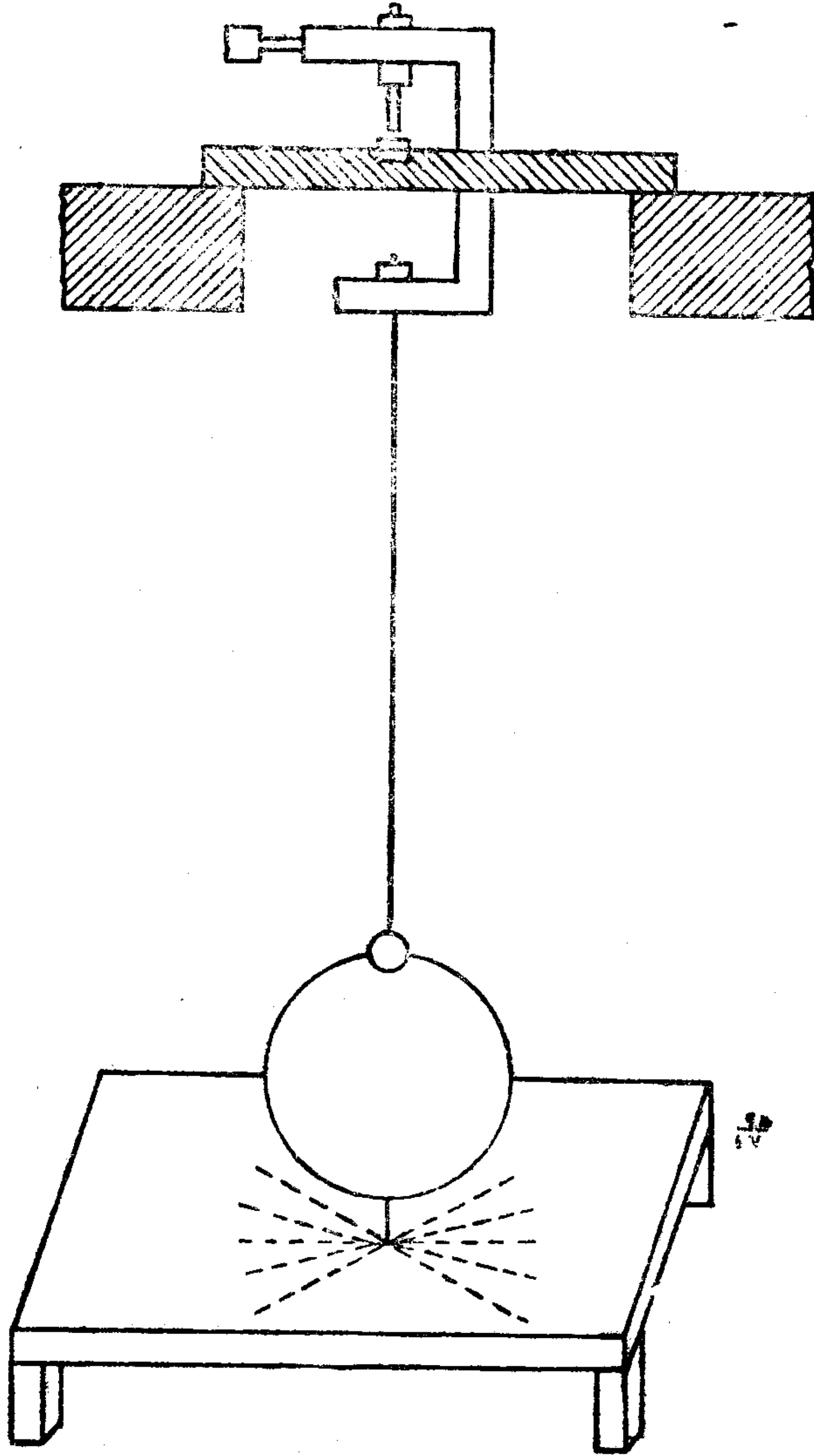
फूको ने यह प्रयोग सन् १८५१ ई० या १९०८ वि० में पेरिस में किया था। उसने अपने लोलक को पैन्थियन नामक विशाल भवन के गुम्बज से लटकाया। इसका तार २०० फुट लम्बा था और गोले की तोल १ मन के लगभग (८० पौंड) थी। जिस समय लोलक झूलता था गोले के नीचे निकली हुई सुई अपने झूलने का चिह्न बालू तल पर बनाती जाती थी और यह देख पड़ता था कि बालू का तल अपसव्य दिशा में अर्थात् दहिने से बायें पच्छिम से पूरब घूमता जाता था।

इस प्रयोग में दो बातों की बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है। लोलक का तार जितना ही लम्बा हो उतनी ही अधिक देर तक यह झूलता रहेगा नहीं तो अपनी तीव्र गति से हवा की रगड़ खा कर जल्द रुक जायगा। दूसरे इसका गोला जितना ही भारी हो अच्छा है क्योंकि इससे लटकाने के दोषों का तथा हवा की रगड़ का प्रभाव बहुत कम पड़ जाता है।

इस प्रयोग को बहुत सफलतापूर्वक करने का उद्योग अमेरिका के एक विज्ञानवेत्ता रसेल डेबलू पोर्टर ने[1] किया है। इन्होंने पियानो बाजा के लगभग १२

---

१. देखो जुलाई सन् १९२८ ई० के सायंटिफिक अमेरिकन Scientific American पृष्ठ १४, १५।



चित्र नं० १३०

फुट लम्बे तार से ढलवे लोहे का कोई ४० पौंड या २० सेर का गोला छत की धरन से लटकाया। यह देखा गया है कि लोलक की गति धीरे धीरे मंद पड़ जाती है परन्तु यदि इनका लोलक लम्ब दिशा से तीन फुट तक खींच कर झुलाया जाय तो आधे घंटे के बाद भी वह लम्ब रेखा से २ फुट इधर उधर झूलता रहता है।

हाँ, इस बात का ध्यान रखना चाहिये की जिस छत में लोलक लटकाया जाय उसमें किसी प्रकार का स्पन्दन न हो और कमरे की हवा में किसी प्रकार का झोंका न हो। लोलक लटकने पर प्रायः घूमता रहता है जिससे डोरे या तार में ऐंठन पड़ जाती है। इससे लोलक में एक दूसरी गति उत्पन्न हो जाती है। इसलिये इसे रोकने के लिये इन्होंने तार को एक पीतल के हुक में लटकाया जिसका आकार प्रश्नवाचक चिह्न की तरह था और हुक की नोक एक छिछली प्याली में थांभ दी गयी जो धरन पर अच्छी तरह कसी हुई थी। प्याली का नतोदर तल अच्छी तरह चिकना कर दिया था।

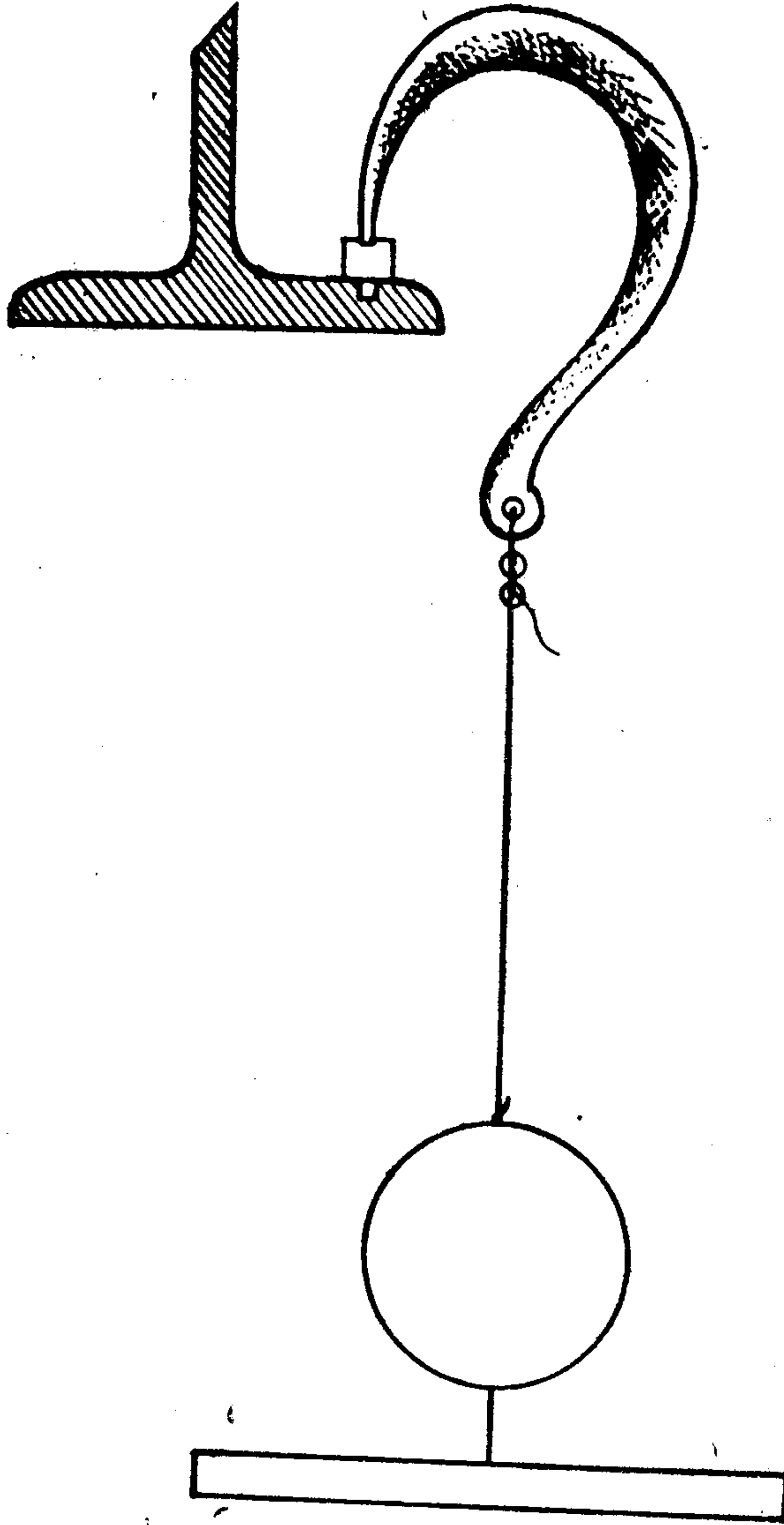
लोलक को झुलाने के पहले बिल्कुल निश्चल रखना चाहिये। इसलिये गोले में एक डोरा बाँध कर डोरे को इतना खींच कर दीवाल में बाँध देना चाहिये कि गोला धरण-बिन्दु की लम्ब रेखा से २, ३ फुट हट जाय। अब यदि डोरे को जला दिया जाय तो गोला हिलने लगेगा और बराबर एक ही तल में झूलता रहेगा। यदि ऐसा न किया जाय तो गोला एक लम्बे दीर्घवृत्त में झूलने लगता है और यदि आरंभ में जरा सी भी गड़बड़ हो तो कुछ देर में बहुत बड़ा रूप धारण कर लेता है।

लोलक के झूलने की दिशा चाहे जो हो परन्तु यदि आरम्भ उत्तर दक्षिण दिशा से किया जाय तो अच्छा है। गोले के नीचे जो सुई निकली हुई हो वह मेज के इतने पास हो कि उस पर रखी हुई कागज की तख़ती के छूने से तनिक ही बची रहे। गोला झुलाने के बाद कागज की तख़ती पर एक सीधी रेखा पेंसिल से खींच कर तख़ती को मेज पर इस प्रकार सरका दो कि सुई छू न जाय और खींची हुई रेखा सुई के झूलने के तल से ठीक मिल जाय। अब तख़ती की रेखा के दक्षिणी किनारे को ध्यान से देखना चाहिये। दो ही तीन मिनट में तख़ती की रेखा का दक्षिणी सिरा पच्छिम से पूरब को अर्थात् अपसव्य दिशा में या घड़ी की विरुद्ध दिशा में घूमता हुआ देख पड़ेगा। कारण यह कि तख़ती पृथ्वी के साथ पच्छिम से पूरब को घूमती रहती है। यह प्रयोग यदि विषुवत् रेखा से दक्षिण के देशों में किया जाय तो तख़ती की रेखा घड़ी की अनुकूल दिशा में घूमती हुई देख पड़ेगी।

अब देखना है कि प्रयोग का परिणाम गणना से कहाँ तक मिलता है।

यदि किसी प्रकार यह सम्भव हो कि लोलक उत्तरी ध्रुव पर लटकाया जाय तो लोलक की लम्ब-रेखा और पृथ्वी का अक्ष एक ही दिशा में होंगे। इसलिए जैसे-जैसे पृथ्वी पच्छिम से पूरब की ओर घूमती जायगी इसके साथ दर्शक के खड़ा होने का तल भी पच्छिम से पूरब को घूमेगा और लोलक का स्पन्दन तल पूरब से पच्छिम की ओर हटता हुआ जान पड़ेगा क्योंकि दर्शक पृथ्वी के घूमने को नहीं देख

सकता। इसलिए लोलक का स्पन्दन-तल उलटी दिशा में २३ घंटे ५६ मिनट ४ सेकेंड में एक चक्कर लगा लेने की गति से घूमता हुआ देख पड़ेगा।



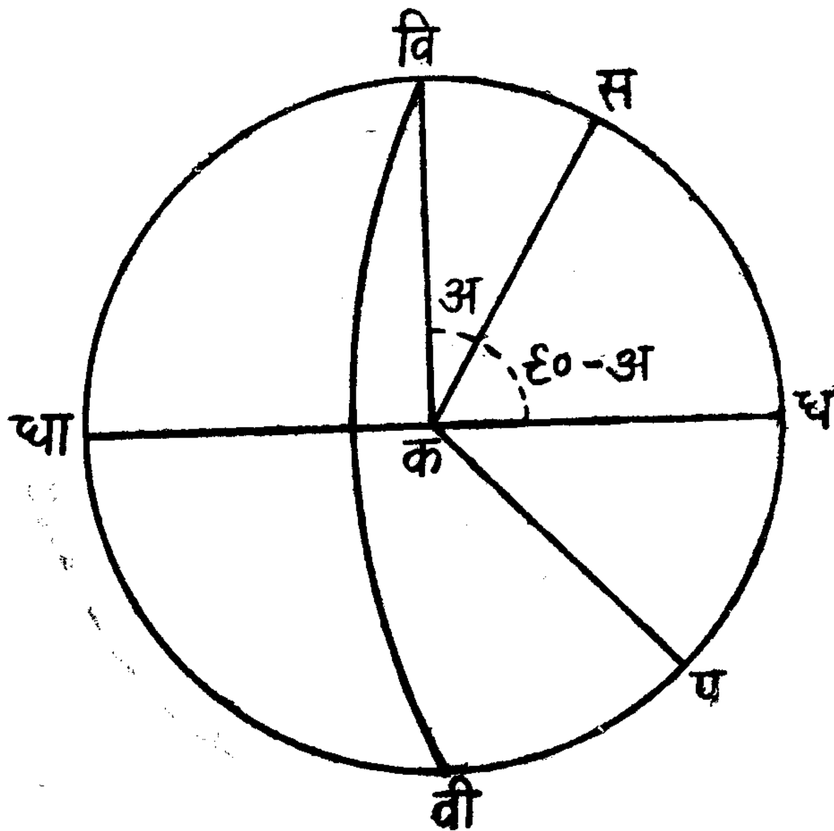
(चित्र नं० १३१)

यह सम्भव नहीं कि एक बार का झुलाया हुआ लोलक लगातार २४ घंटे तक झूलता रहे। परन्तु जितनी देर तक वह झूलता रहेगा उतनी ही देर में इसका स्पन्दन-तल इतना घूमा हुआ देख पड़ेगा कि उससे अनुपात द्वारा सहज ही जाना जा सकता है कि एक चक्कर लगाने का समय क्या हो सकता है।

पोर्टर ने अपने लोलक को इस प्रकार लटकाया था। एक पीतल का हुक जिसकी मोटाई $\frac{१}{८}$ इञ्च थी एक फौलाद की प्याली में रखा गया है जिसमें ऐंठन न पड़े। (देखो चित्र १३१)

यदि विषुवत् रेखा पर लोलक झुलाया जाय तो इसकी नोक से बनी हुई लकीर एक दूसरे के ऊपर होगी क्योंकि यहाँ इसके दोनों किनारों की पच्छिम से पूरब वाली गति समान है इसलिए लोलक का स्पन्दन-तल घूमता हुआ नहीं देख पड़ेगा वरन् एक ही लकीर पर चलता रहेगा।

परन्तु विषुवत् रेखा से भिन्न स्थानों में यह बात नहीं होगी क्योंकि लोलक के ठीक नीचे के धरातल के उस भाग में जो विषुवत् रेखा के पास है पृथ्वी के घूमने की गति उससे अधिक है जो ध्रुव के पास है इसलिए इसका परिणाम यह होगा कि लोलक की नोक से जो लकीर बालू पर बनेगी उसका वह किनारा जो विषुवत् रेखा की ओर है ध्रुव की ओर वाले किनारे से अधिक वेग से घूमने के कारण पूरब की



(चित्र नं० १३२)

ओर हटता हुआ और ध्रुव की ओर वाले किनारे का चक्कर लगाता हुआ देख पड़ेगा परन्तु यह चक्कर २३ घंटे ५६ मिनट ४ सेंकेड से अधिक समय में पूरा होगा जैसा कि नीचे की गणना से सिद्ध है।

कल्पना करो कि परीक्षा के स्थान स का उत्तरी अक्षांश अ है। वि वी विषुवत् रेखा, क पृथ्वी का केन्द्र, ध धा पृथ्वी का अक्ष और ध उत्तरी ध्रुव है। ध धा अक्ष पर घूमने वाला पृथ्वी का कोणीय वेग व गति-विज्ञान के अनुसार दो भागों में बाँटा जा सकता है, जिसका एक भाग क स पर और दूसरा भाग क प पर घूमता हुआ समझा जा सकता है।

वेग का यह भाग जो क स पर है व कोटिज्या (९०°–अ) अथवा व ज्या अ के समान होगा और जो भाग कप पर है वह व कोज्या अ के समान होगा। परन्तु कप पर घूमने वाला वेग क स के समानान्तर होगा इसलिए इसका प्रभाव लोलक पर वैसा ही पड़ेगा जैसा विषुवत् रेखा पर पड़ता है अर्थात् इसके कारण लोलक से बनने वाली लकीर की दिशा में कोई परिवर्तन नहीं होगा परन्तु क स पर घूमने वाला वेग झूलते हुए लोलक की सुई से बनी हुई लकोर की दिशा में परिवर्तन करेगा जिससे लकीर का दक्षिणी सिरा पच्छिम से पूरब की ओर खसकता हुआ देख पड़ेगा और जान पड़ेगा मानों लोलक का स्पन्दन तल ही पूरब से पच्छिम की ओर घूम रहा है क्योंकि पहली लकीर से दूसरी लकीर पच्छिम की ओर बनती चली जायगी।

अब यह देखना है कि कितनी देर में लोलक का स्पन्दनतल यदि लगातार झूलता रहा तो एक चक्कर लगा लेगा। यह मान लिया गया है कि पृथ्वी के अक्ष पर घूमता हुआ वेग व है और स स्थान पर इसका खण्ड वेग व ज्या अ है इसलिए यह जानना सहज है कि जब व वेग से एक चक्कर २४ घंटे में पूरा होता है तब व ज्या अ वेग से एक चक्कर अधिक समय में पूरा होगा इसलिए लोलक से बनी हुई लकीरों का पूरा चक्कर $\frac{\text{व} \times \text{२४ घंटा}}{\text{व ज्या अ}} = \frac{\text{२४ घंटा}}{\text{ज्या अ}}$ समय में पूरा होगा। जहाँ अ स्थान का अक्षांश है। यदि प्रयाग में यह प्रयोग किया जाय तो एक चक्कर $\frac{\text{२४ घंटा}}{\text{ज्या २५° २५'}} = \frac{\text{२४ घंटा}}{\text{.४२९२}}$ =५५ घंटा ५५ मिनट या मोटे हिसाब से ५६ घंटे में होगा। इसलिये यदि आधे घंटे भी लोलक झूलता रहे तो स्पन्दनतल की दिशा में पर्याप्त परिवर्तन देख पड़ेगा क्योंकि जब ५६ घण्टे में पूरा चक्कर होता है तब आधे घण्टे में $\frac{१}{२} \times ३६० \times \frac{१}{५६}$ अंश $= \frac{४५}{१४} =$ ३ अंश १३कला के लगभग परिवर्तन हो जायगा।

जो सहज ही देखा जा सकता है क्योंकि यदि लोलक लम्ब से २ फुट भी हटा कर झुलाया जाय तो ३ अंश के परिवर्तन में लोलक १ इञ्च से अधिक दूर हट जायगा।

इस प्रकार के प्रयोग भिन्न-भिन्न अक्षांशों पर भिन्न-भिन्न विज्ञानवेत्ताओं ने किये और सबके प्रयोगों से यही बात सिद्ध होती है कि लोलक से बनी हुई रेखा के पूरा घूम जाने का समय = $\frac{\text{२४ घण्टा}}{\text{ज्या अक्षांश}}$ और एक घण्टे में घूमने का परिमाण इस प्रकार निकलेगा $\frac{\text{२४ घण्टा}}{\text{ज्या अक्षांश}}$: १ घण्टा : : ३६० अंश : इष्ट परिमाण

$$\therefore \text{इष्ट परिमाण} = \frac{\text{३६०} \times \text{ज्या अक्षांश}}{\text{२४}} = \text{१५ ज्या अक्षांश}$$

अगले पृष्ठ की सारिणी में[1] भिन्न-भिन्न प्रयोगों का परिणाम दिया जाता है—

इस सारणी से प्रत्यक्ष हो जाता है कि लोलक के स्पन्दन तल की दिशा का परिवर्तन पृथ्वी की ही भ्रमण गति से होता है। यह सब प्रयोग विषुवत् रेखा से उत्तर के देशों के लिए है। विषुवत् रेखा से दक्षिण के देशों में भी परिवर्तन इसी नियम से होता है।

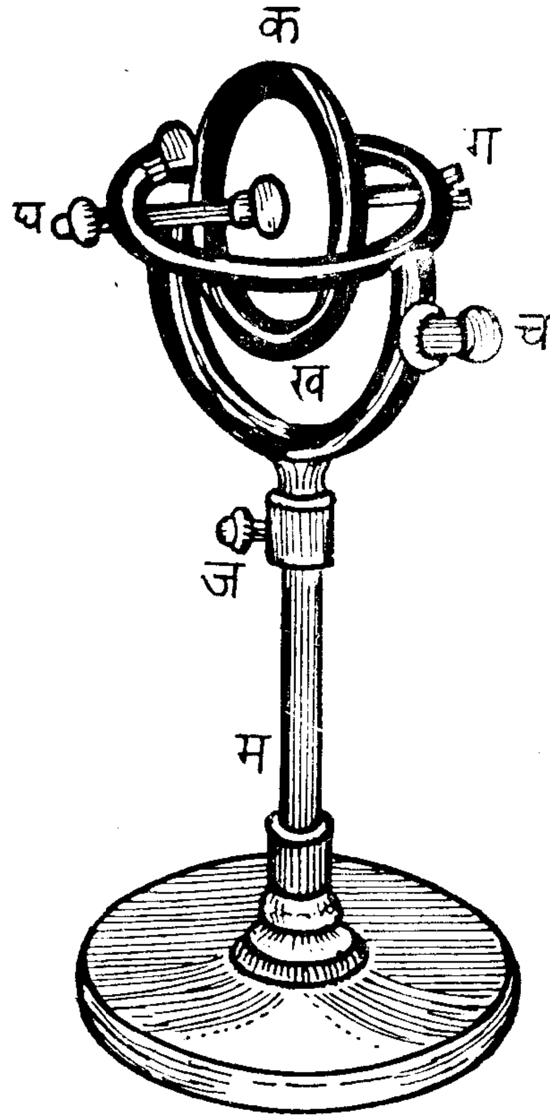
(३) पृथ्वी की भ्रमणगति सिद्ध करने के लिए एक तीसरी रीति भी है, जिसे फूको ने ही निकाली थी। यदि किसी चक्र का किनारा बहुत भारी हो और उसका अक्ष उसके केन्द्र से जाता हुआ उसके धरातल से समकोण बनाता हो वह चक्र अपने अक्ष पर बहुत वेग से घूम सकता हो तो ऐसे चक्र को घुमना पहिया (gyrostat) कहते हैं। यदि इसके साथ इसका आधार भी हो जिससे यह थमा रहता है तो इसका नाम घुमनाचक्र (gyroscope) हो जाता है। एक साधारण घुमना चक्र का चित्र १३३ है—

क ख चक्र सम धरातल अक्ष ग घ पर घूम सकता है और जिस चक्र पर ग घ अक्ष है वह च छ सम फरातल अक्ष पर घूम सकता है (छ अक्षर चित्र में स्पष्ट नहीं है। यह घ के पास और यंत्र के कुछ पोछे है)। च छ अक्ष कुल को लेता हुआ ज म लम्ब अक्ष पर घूम सकता है। यह यंत्र ऐसा बनाना चाहिये कि इसके घूमते समय रगड़ कम से कम हो। ये तीनों अक्ष एक दूसरे से समकोण पर होने हैं, ग, घ और च छ अक्ष समधरातल में और ज म अक्ष लम्ब दिशा में। यदि रगड़

---

१. उर्दू के वैज्ञानिक मासिक पत्र 'रोशनी' अप्रैल १९१६ ई० पृष्ठ २८०-८१ के आधार पर जो Movements of the earth by Norman Lockyer F.R.S. से लिया गया है।

प्रयोग का स्थान	अक्षांश		१ घंटे में स्पन्दन तल की दिशा में परिवर्तन प्रयोग से	१ घंटे में स्पन्दन तल की दिशा में परिवर्तन गणना से	प्रयोगकर्ता का नाम
	अंश	कला			
सीलोन	६	५६	१·८७० अंश	१·८१५ अंश	Schaw and Lamprey
न्यूयार्क	४०	४४	९·७३३	९·८१४	Loomis
Provinces R. I.	४०	४९·५	९·९५५	९·८३३	Carowell and Norton
न्यूहेवन	४१	१८·५	९·९७०	९·९२७	
जेनेवा	४६	१२	१०·५२२	१०·८५६	Dufair and Wartman
पेरिस	४८	५०	११·५००	११·३२३	Foucault
ब्रिस्टल	५१	२७	११·७८८	११·७६३	Bunt
डबलिन	५३	२०	११·९१५	१२·०६५	Galbraith & Houghton
एबरडीन	५७	९	१२·७००	१२·६२८	Gerard

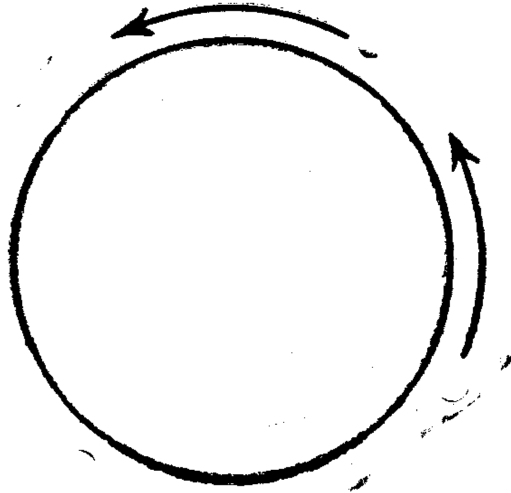


(चित्र नं० १३३)

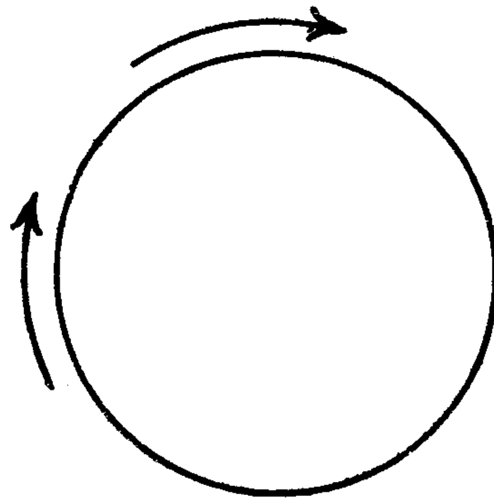
बहुत कम हो जिससे प्रत्येक अक्ष की गति पूरी तरह स्वतन्त्र हो तो घुमने-यंत्र में अनेक अद्‌भुत गुण पाये जाते हैं जब कि क ख चक्र खूब तेज़ी से घूम रहा हो। एक महत्व का गुण यह है कि यदि क ख चक्र तेज़ी से चला दिया जाय तो ग घ अक्ष की दिशा सर्वदा एक ही बनी रहती है जब कि घुमना-चक्र एक जगह से दूसरी जगह ज म को पकड़ कर हटाया जाता है। जब घुमना-चक्र के अक्ष की दिशा पृथ्वी के अक्ष के समानान्तर रखी जाती है तब तो इसकी दिशा आस पास की वस्तुओं की दृष्टि से स्थिर रहती है परन्तु यदि इसका अक्ष किसी अन्य दिशा में करके यह घुमाया जाय तो अक्ष उसी प्रकार दिशा बदलता है जैसे तारे। यदि अक्ष किसी विशेष तारे की दिशा में करके चक्र घुमाया जाय तो जब तक वह चक्र घूमता रहेगा अक्ष सदा उसी तारे की दिशा में रहेगा। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि तारों की

दिशा स्थिर है और उनका प्रतिदिन का पूरब से पच्छिम को घूमना पृथ्वी की दैनिक गति के कारण है ।

इन प्रयोगों के सिवा बहुत सी घटनाएँ ऐसी हैं जिनसे पृथ्वी का अक्ष भ्रमण सिद्ध होता है । उत्तर गोल में लोलक की नोक से बनी हुई रेखा घड़ी की प्रतिकूल दिशा में घूमती है वैसे ही यहाँ बवंडरों के घूमने की दिशा भी होती है । परन्तु दक्षिण गोल में लोलक की नोक से बनी हुई रेखा तथा बवंडरों की दिशा घड़ी की अनुकूल दिशा में घूमती हैं । जो हवाएँ विषुवत् रेखा से ध्रुव की ओर चलती हैं वे उत्तर गोल में पूरब की ओर अर्थात् दाहिने और दक्षिण गोल में भी पूरब की ओर अर्थात् अपने बायें मुड़ जाती हैं । इसका कारण सिवा इसके और क्या हो सकता



उत्तर गोल में बवंडरों की दिशा



दक्षिण गोल में बवंडरों की दिशा

(चित्र १३४)

है कि जब विषुवत् रेखा के ऊपर की हवा गरम नोकर हलकी होती है तब यह ऊपर उठती है इसलिए इसकी जगह भरने के लिए ध्रुवों के पास की ठंडी हवा विषुवत् रेखा की ओर चलती है। परन्तु विषुवत् रेखा पर पृथ्वी की गति पूर्व की ओर अत्यन्त तीव्र होती है और ज्यों-ज्यों ध्रुवों की ओर जाओ त्यों-त्यों यह गति मन्द पड़ती जाती है इसलिए जो हवा विषुवत् रेखा से चलतो है उसकी भी पूर्व की ओर गति तीव्र रहती है इसलिए यह ध्रुवों की ओर के देशों में पहुँचती है जिनकी पूर्वी गति मन्द रहती है। तब यह पूर्व की ओर मुड़ जाती है। इसी प्रकार जो हवा ध्रवों से विषुवत् रेखा की ओर चलती है वह पच्छिम की ओर को मुड़ जाती है।

समुद्र की धाराओं की दिशा भी इसी प्रकार की होती है। मेक्सिको की खाड़ी से जो विषुवत् रेखा के पास है जो गरम जलधारा अटलांटिक महासागर में उत्तर की ओर चलती है वह आगे चलकर पूरब की ओर मुड़ जाती है और उत्तर पूरब दिशा में चलती हुई अटलांटिक महासागर की दूसरी ओर फ्रांस, इंगलैंड, नारवे आदि देशों में पहुँचती है तथा उत्तर की ठंडी धारा ग्रीनलैंड से उत्तरा अमेरिका की ओर जाती है। इसी का फल फल है कि नारवे का हैमरफैस्ट का बन्दरगाह जो ७०½ उत्तरी अक्षांश पर है बारहों महीने बर्फ से मुक्त रहता है जब कि उत्तरी अमेरिका का पूरबी किनारा ४० अक्षांश तक जाड़ा भर और गरमी के भी अधिक भाग तक बर्फ से ढका रहता है।

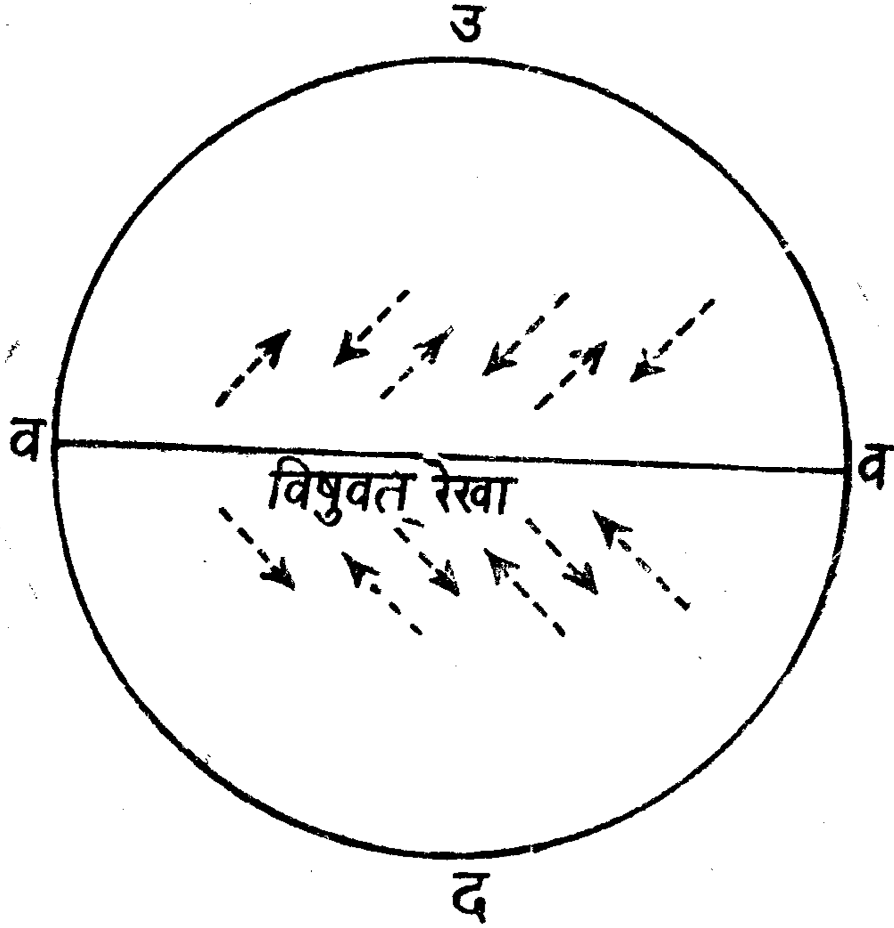
इसी प्रकार हिन्द महासागर के द्वीपसमूह से जो गरम जल धारा उत्तर की ओर को चलती है वह पूरब की ओर को मुड़ कर जापान के पूरबी भाग को गरम रखती है और उत्तर से ठंडी जलधारा जापान के पच्छिमी किनारे से होती हुई चीन सागर में ठीक उलटी दिशा में आती है।

यह संक्षेप में बतलाया गया है कि पृथ्वी की दैनिक गति के कारण हवाओं और धाराओं की दिशाओं में क्या परिवर्तन हो जाता है। यदि इस विषय पर अधिक जानना हो तो भूगोल की अच्छी पुस्तकों से काम लेना चाहिए।

इस अक्ष भ्रमण के सिवा पृथ्वी में एक दूसरी गति भी होती है जिससे यह वर्ष में भर सूर्य की परिक्रमा कर लेती है परन्तु जान पड़ता है मानों सूर्य ही पृथ्वी की परिक्रमा करता है। पृथ्वी की इस गति का प्रमाण और भी सूक्ष्म है जिसका विचार आगे कहीं किया जायगा। इस समय केवल इतना स्मरण करा देना पर्याप्त होगा कि पृथ्वी की इस गति के ही कारण ग्रहों में आठ प्रकार की गतियाँ देख पड़ती हैं (देखो स्पष्टाधिकार पृष्ठ ८४-६४, ६७-१०५)।

७३ श्लोक के उत्तरार्ध में बतलाया गया है कि ग्रह कक्षाएँ भी भचक्र में

बंधी हुई पूरब से पच्छिम को जा रही हैं। परन्तु इन सब गतियों का कारण पृथ्वी की दैनिक गति ही है।



(चित्र १३५)

उ=उत्तर ध्रुव द=दक्षिण ध्रुव व वि=विषुवत् रेखा

सकृदुद्गतमब्दार्धं पश्यन्त्यर्कं सुरासुराः।
पितरः शशिगाः पक्षं स्वदिनं च नराभुवि ॥७४॥

अनुवाद—सुर और असुर एक बार के उदय हुए सूर्य को लगातार आधे वर्ष तक देखते रहते हैं, चन्द्रलोक के निवासी पितृगण उसको एक पक्ष तक और पृथ्वी के निवासी मनुष्य उसको अपने एक दिन तक देखते हैं।

विज्ञान-भाष्य—इस श्लोक के पूर्वार्ध का अर्थ वही है जो ६७वें श्लोक में बतलाया गया है। उत्तरार्ध के प्रथम पद के अर्थ में ही कुछ विशेषता है जिसे समझाने की आवश्यकता है। सनातनधर्मी हिन्दुओं का विश्वास है कि चन्द्रगोल के ऊर्ध्व भाग में पितृगण निवास करते हैं। यह भाग पृथ्वी के सन्मुख नहीं होता। पाश्चात्य ज्योतिषी भी कहते हैं कि चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा इस प्रकार करता है कि इसका अधोभाग ही पृथ्वी के सन्मुख रहता है और ऊर्ध्व भाग सदैव पीछे रहता

है । इसलिए चन्द्रमा अपने अक्ष पर एक भ्रमण उतने ही दिनों में करता है जितने दिन में वह पृथ्वी की परिक्रमा करता है । इसका प्रमाण कठिन नहीं है । चन्द्र बिम्ब को ध्यान से देखने पर ज्ञात होता है कि उसके काले धब्बे बिम्ब के किनारे से सदैव एक ही स्थिति में देख पड़ते हैं जिससे प्रकट होता है कि चन्द्र बिम्ब का वह भाग जो पृथ्वी के सन्मुख है सदैव उसी दशा में रहता है अर्थात् चन्द्रमा का अक्ष-भ्रमण-काल उसके परिक्रमा काल के समान ही होता है । इस पर यह कहा जा सकता है कि चन्द्रमा में अक्ष-भ्रमण होता ही नहीं । परन्तु यह ठीक नहीं है । यह एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा । एक दीपक बीच में रख दीजिये और उसकी ओर देखिए । मान लीजिए कि दीपक आपके उत्तर की ओर है । अब दीपक को देखते हुए आप उसके चारों ओर घड़ी की अनुकूल दिशा में घूमिए । जब आप चौथाई चक्कर कर लेंगे तब दीपक आपके पूरब हो जायगा । आधा चक्कर कर लेने पर दीपक आपके दक्षिण हो जायगा, तीन चौथाई चक्कर करने पर वह आपके पच्छिम हो जायगा और पूरा चक्कर करके उसी स्थान पर आ जाने पर जहाँ से चक्कर लगाना आरम्भ किया था वह दीपक फिर आपके उत्तर हो जायगा । इससे यह सिद्ध हो जाता है कि इस प्रकार के एक चक्कर में आपका मुख सदैव दीपक की ओर रहता है और पीठ सदैव उसके पीछे । साथ ही साथ आपका शरीर भी एक बार घूम जाता है क्योंकि घूमने में भी तो आपका मुख उत्तर, पूरब, दक्षिण और पच्छिम की ओर होता रहता है ।

जब चन्द्रमा का ऊर्ध्व भाग सदा पृथ्वी से विमुख रहता है तब उसका सम्बन्ध सूर्य से किस प्रकार रहता है ? अमावस्या के दिन सूर्य और पृथ्वी के बीच में चन्द्रमा रहता है इसलिए इसका ऊर्ध्व भाग सूर्य के ठीक सामने रहता है । ऊर्ध्व भाग में पितृलोग निवास करते हैं इसलिए अमावस्या के दिन सूर्य पितरों के ठीक सिर पर रहता है अर्थात् इस दिन उनका मध्याह्न होता है । इसीलिए अमावस्या के मध्याह्न काल में पितरों के लिए श्राद्ध तर्पण आदि किये जाते हैं । पूर्णमासी के दिन इनकी मध्यरात्रि होती है । कृष्ण पक्ष का आधा भाग बीतने पर सूर्य पितरों को उदय होता हुआ देख पड़ता है और शुक्ल पक्ष के आधे भाग तक वह बराबर उनको देख पड़ता है अर्थात् पितरों का प्रातःकाल कृष्ण पक्ष की अष्टमी को होता है और सायंकाल शुक्ल पक्ष की अष्टमी को ।

ग्रह कक्षा और ग्रह गतियों का सम्बन्ध —

उपरिस्थस्य महती कक्षाऽल्पाधः स्थितस्यच ।
महत्याकक्षया भागा महान्तोऽल्पास्तथाल्पया ।।७५।।

कालेनाल्पेन भगणं भुङ्क्तेऽल्प भ्रमणाश्रितः ।
ग्रहः कालेन महता मण्डले महति भ्रमन ॥७६॥
स्वल्पयातो बहून भुङ्क्ते भगणांश्छीतदीधितिः ।
महत्या कक्षया गच्छंस्ततः स्वल्पं शनैश्चरः ॥७७॥

अनुवाद—(७५) जो ग्रह कक्षा ऊपर है अर्थात् पृथ्वी से दूर है उसका परिमाण अधिक है और जो ग्रह कक्षा नीचे है अर्थात् पृथ्वी से निकट है उसका परिमाण कम है। बड़ी कक्षा के अंश बड़े और छोटी कक्षा के अंश छोटे होते हैं। (७६) छोटी कक्षा पर चलने वाले ग्रह अल्प काल में अपना भगण अर्थात् चक्कर पूरा कर लेते हैं और बड़ी कक्षा पर चलने वाले ग्रह अधिक काल में अपना भगण पूरा करते हैं। (७७) चन्द्र कक्षा बहुत छोटी है इसलिए चन्द्रमा अनेक भगण पूरा करता है जब कि शनिश्चर बड़ी कक्षा में होने के कारण थोड़े ही भगण पूरा कर पाता है।

विज्ञान-भाष्य—ग्रहों की कक्षाओं और उनकी गतियों के सम्बन्ध में मध्यमाधिकार श्लोक २६, २७ तथा उसके विज्ञान भाष्य पृष्ठ १४-१७ में कुछ बतलाया जा चुका है इसलिए यहाँ अधिक विस्तार की आवश्यकता नहीं है। बड़ी कक्षा के अंश बड़े और छोटी कक्षा के अंश छोटे कैसे होते हैं इसका प्रमाण पृष्ठ १४ के चित्र १ से सहज ही मिल सकता है। बड़े वृत्त का २४ अंश जितना बड़ा है उतना ही छोटे वृत्त का ३६ अंश है अर्थात् बड़े वृत्त का एक अंश छोटे वृत्त के एक अंश से बड़ा है। यह भी स्पष्ट है कि जो ग्रह बड़ी कक्षा में भ्रमण करते हैं उनका भगण काल बड़ा और जो ग्रह छोटी कक्षा में भ्रमण करते हैं उनका भगण काल छोटा होता है। परन्तु ग्रह के भगण काल और उसकी दूरी में ऐसा सरल सम्बन्ध नहीं जैसा कि भारतीय ज्योतिषी समझते थे और जैसा कि इसी अध्याय में आगे बतलाया गया है। यह सम्बन्ध केपलर के तीसरे नियम के अनुसार है जो ग्रह गतियों और उनकी दूरियों के सूक्ष्म विचार से निश्चित किया गया है (देखो पृष्ठ ८४-८१)।

दिनपति, मासपति आदि जानने की रीति

मन्दादधः क्रमेण स्युश्चतुर्था दिवसाधिपः ।
वर्षाधिपतयस्तद्वत् तीयाश्चे प्रकीर्तिता ॥७८॥
ऊर्ध्वं क्रमेण शशिनो मासानमधिपाः स्मृताः ।
होरेशा सूर्यतनयादधोधः क्रमशस्तथा ॥७९॥

अनुवाद – (७८) शनि से नीचे का चौथा ग्रह क्रमानुसार दिनपति और तीसरा ग्रह वर्षपति होता है। (७९) चन्द्रमा से ऊपर के ग्रह क्रमशः मासपति तथा शनि से नीचे ग्रह क्रमशः होरापति होते हैं।

विज्ञान-भाष्य—इन दोनों श्लोकों की पूरी व्याख्या मध्यमाधिकार के पृष्ठ ४०-४५ में की गयी है इसलिये यहाँ अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है।

नक्षत्र कक्षा, आकाश कक्षा तथा ग्रह की गतियों का सम्बन्ध—

भवेद्भकक्षा तिग्मांशोर्भ्रमणं षष्टि ताडितम्।
सर्वोपरिष्टाद्भ्रमति योजनैस्तैर्भमण्डलम् ॥८०॥
कल्पोक्त चन्द्रभगणा गुणिताः शशिकक्षया।
आकाशकक्षा सा ज्ञेया कर व्याप्तिस्तथा रवेः ॥८१॥
सैव यत्कल्पभगणैर्भक्ता तद्भ्रमणं भवेत्।
कुवासरैर्विभज्याह्नः सर्वेषां प्राग्गतिः स्मृता ॥८२॥
भुक्तियोजनजा संख्या सेन्दोर्भ्रमण संगुणा।
स्वकक्षाप्तातु सा तस्य तिथ्याप्ता गति लिप्तिकाः ॥८३॥

अनुवाद—(८०) सूर्य-कक्षा के योजनों को ६० से गुणा करने पर नक्षत्र-कक्षा के योजनों का मान आ जाता है। सब ग्रहों से ऊपर नक्षत्र मण्डल इतने ही योजना में घूमता है। (८१) शशिकक्षा के योजनों को एक कल्प के चन्द्र भगणों की संख्या से गुणा करने पर आकाश कक्षा का मान ज्ञात होता है। सूर्य की किरणें वहीं तक जाती हैं। (८२) आकाश कक्षा के मान को जिस ग्रह के कल्प-भगणों की संख्या से भाग दिया जायगा उसी ग्रह की कक्षा का मान योजनों में ज्ञात होगा। आकाश-कक्षा को कल्प के सावन दिनों के भाग देने पर सब ग्रहों की दैनिकगति योजनों में आ जाती है। (८३) इस योजनात्मक ग्रह गति को चन्द्र-कक्षा से गुणा करके जिस ग्रह की कक्षा से भाग देकर लब्धि को १५ से भाग दें उस ग्रह की दैनिक गति कलाओं में आ जायगी।

विज्ञान-भाष्य—इन श्लोकों में जो कुछ बतलाया गया है उसकी चर्चा कई जगह की गयी है (देखो पृ० १५-१७; ४५१-५३)। संक्षेप में इसका सार यह है :—

(१) नक्षत्र कक्षा = रवि कक्षा × ६०

(२) आकाश कक्षा = कल्प के चन्द्र भगण × चंद्र कक्षा

(३) $\dfrac{\text{आकाशकक्षा}}{\text{कल्प में किसी ग्रह की भगण संख्या}}$ = उस ग्रह की कक्षा

(४) $\dfrac{\text{आकाश कक्षा}}{\text{कल्प के सावन दिन}}$ = प्रत्येक ग्रह की दैनिक योजनात्मक गति

(५) $\dfrac{\text{ग्रह की योजनात्मक गति} \times \text{चंद्र कक्षा}}{\text{ग्रह कक्षा} \times 15}$ = ग्रह की दैनिक कलात्मक गति

दूसरे और तीसरे समीकरण से स्पष्ट है कि आकाश कक्षा का विस्तार उतना माना गया है जितना प्रत्येक ग्रह एक कल्प में योजनों में चलता है। इससे यह सिद्ध है कि हमारे आचार्य प्रत्येक ग्रह की योजनात्मक गति समान समझते थे जो आजकल के वेधों से अशुद्ध है। ग्रह की दैनिक कलात्मक गति जानने का सिद्धान्त वही है जो ४५१-५३ पृष्ठों में अच्छी तरह समझाया गया है।

नक्षत्र कक्षा और आकाश कक्षा के विस्तार कल्पित हैं। नक्षत्रों या तारों की दूरी की सीमा नहीं है। आजकल के वेधों से सिद्ध होता है कि कोई-कोई तारे पृथ्वी से इतनी दूर हैं कि उनके प्रकाश के पहुँचने में लाखों वर्ष लग जाते हैं।

ग्रह की दूरी जानने की रीति

कक्ष्या भूकर्णगुणिता महोमण्डलभाजिता।
तत्कर्णा भूमिकर्णार्धोना ग्रहोच्चे स्वे बलीकृता: ॥८४॥

अनुवाद—किसी ग्रह की कक्षा को भूव्यास से गुणा करने और भूपरिधि से भाग देने पर उस ग्रह की कक्षा का व्यास होता है। इससे भूव्यास घटा कर शेष का आधा करने से भू-पृष्ठ से उस ग्रह की ऊँचाई अथवा दूरी ज्ञात होती है।

विज्ञान-भाष्य—परिधि से व्यास जानने का यह एक नियम है। भूव्यास का भू-परिधि से जो सम्बन्ध है वही सम्बन्ध है वही सम्बन्ध प्रत्येक ग्रह की कक्षा के व्यास और परिधि में होता है। इस श्लोक के पूर्वार्ध का सरल अर्थ यह है कि ग्रह की कक्षा को ३·१४१६ से भाग देने पर उसकी कक्षा का व्यास आ जाता है।

श्लोक के उत्तरार्ध में जो बात बतलायी गयी है वह पृष्ठ ४०८ के चित्र ७८ से स्पष्ट हो जाती है। इस चित्र में यदि भ द रेखा को द की ओर इतना बढ़ाया जाय कि वह चन्द्र कक्षा और सूर्य कक्षा तक पहुँच जाय तो द से चन्द्र कक्षा के बिन्दु की दूरी को चन्द्रमा की ऊँचाई और सूर्य कक्षा के बिन्दु की दूरी को सूर्य की ऊँचाई समझनी चाहिये। इसी तरह अन्य ग्रहों की ऊँचाई के बारे में भी समझना चाहिये।

ग्रह कक्षाओं के विस्तार योजनों में

खत्रयाब्धिद्विदहना: कक्ष्या तुहिनदीधिते:।
ज्ञशीघ्रस्याष्टखद्वित्रिकृशून्येन्दवस्तथा ॥८५॥
शुक्रशीघ्रस्य सप्ताग्नि रसाब्धि रसषड्यमा:।
ततोऽर्कबुधशुक्राणां खखार्थैकसुरार्णवा: ॥८६॥
कुजस्यातोऽष्टशून्याङ्कषडवेदैकभुजङ्गमा:।
चन्द्रोच्चस्य रसार्थाष्टमुनिद्वित्र्यष्टहृय: ॥८७॥
कृततर्कमुनिपञ्चाद्रिगुणेन्दुविषया गुरो:।
स्वर्भानोर्दस्रतत्वाब्धिशैलार्थाकाशकुञ्जरा: ॥८८॥

पञ्चपञ्चाशिवनागतु रसाद्रकांशशनेस्ततः ।
भानां खखखशून्याङ्कवसुरन्ध्रशराश्विनः ॥८९॥
खव्योमखत्रयखसागरषट्कनाग-
व्योमाष्टशून्ययमरूपनगाष्टचन्द्राः ।
ब्रह्माण्डसंपुटपरिभ्रमणं समन्ता-
दभ्यन्तरा दिनकरस्य कर प्रसाराः ॥९०॥

अनुवाद—(८५) चन्द्रमा की कक्षा ३२४००० योजन, बुध शीघ्र की कक्षा १०४३२०९ योजन; (८६) शुक्र शीघ्र की कक्षा २६६४६३७ योजन, सूर्य, बुध और शुक्र की कक्षाएँ ४३३१५००; (८७) मङ्गल की कक्षा ८१४६९०९ योजन, चन्द्रोच्च की कक्षा ३८३२८४८४ योजन; (८८) गुरु की कक्षा ५१३७५७६४ योजन; राहु की कक्षा ८०५७२८६४ योजन; (८९) शनि की कक्षा १२७६६८२५५ योजन; नक्षत्र कक्षा २५९८९००१२ योजन और (९०) आकाश या ब्रह्माण्ड की परिधि १८,७१,२०-,८०,८६,४०,००,००० योजन है जहाँ तक सूर्य की किरणों का प्रसार होता है।

विज्ञान-भाष्य—यदि ग्रहों के कल्प-भगण मध्यमाधिकार के श्लोक २९-३३ के अनुसार मान कर इनकी कक्षाओं की गणना श्लोक ८२ के अनुसार की जाय तो ऊपर दी हुई संख्याओं की इकाई के अंक में थोड़ा सा अन्तर पड़ता है इसका कारण यह जान पड़ता है कि पूरी संख्या लिखने के लिए भिन्नात्मक अंश या तो छोड़ दिया गया है या आधे से अधिक होने के कारण १ मान लिया गया है। ऐसा जान पड़ता है कि चन्द्रोच्च और राहु की कक्षाएँ नियम की समानता दिखलाने के लिए दी गयी हैं क्योंकि ये आकाश में स्वतन्त्र पिंड नहीं है, ये तो चन्द्र कक्षा के ही दो विशेष विन्दु हैं। नक्षत्र कक्षा का भी विशेष महत्व नहीं जान पड़ता।

आजकल वेधों से यह सिद्ध होता है कि ग्रहों की कक्षाएँ गोल नहीं हैं वरन् दीर्घवृत्त है जिनकी एक नाभि पर सूर्य रहता है और सब ग्रह सूर्य की ही परिक्रमा करते हैं। पृथ्वी से किसी ग्रह की दूरी सर्वदा समान नहीं रहती जैसा कि ४१० पृष्ठ के लम्बनों की सारणी से तथा पृष्ठ ५९८ में दिये हुए शीघ्र कर्णों की सारणी से स्पष्ट है। इन शीघ्र कर्णों के मान ऐसी इकाइयों में दिये हुए हैं जिनकी १००० इकाई पृथ्वी से सूर्य की मध्यम दूरी मानी गयी है। ऐसी १००० इकाइयां ९२९००००० मील (९ करोड़ २९ लाख मील) के समान होती हैं क्योंकि पृथ्वी से सूर्य की मध्यम दूरी इतनी ही है (देखो पृष्ठ ४५२)। यदि यह दूरी योजनों में जानना हो तो मीलों को ५ से भाग दे देना चाहिए (देखो पृ० ५४)।

इस प्रकार भूगोलाध्याय नामक १२वें अध्याय का विज्ञान-भाष्य समाप्त हुआ।

त्रयोदश अध्याय

ज्योतिषोपनिषदध्याय

(संक्षिप्त वर्णन)

[श्लोक १-३—भूभगोल की रचना का उपदेश कैसे करना चाहिये। श्लोक ३-१३ भूभगोल बनाने की रीति। श्लोक १३-१५—लग्न, अन्त्या आदि के स्थान निश्चय करना। श्लोक १६-१७—भूभगोल किस प्रकार अपने आप घूम सकता है। श्लोक १८-२४—समय बतलानेवाले अन्य यन्त्रों की चर्चा। श्लोक २५—ज्योतिष का माहात्म्य।]

भूभगोल बनाने की तैयारी—

अथ गुप्ते शुचौ देशे स्नातश्शुचिरलङ्कृतः।
संपूज्य भास्करं भक्त्या ग्रहान्भान्यथ गुह्यकान्॥१॥
पारंपर्योपदेशेन यथा ज्ञातं गुरोर्मुखात्।
आचार्यः शिष्यबोधार्थं सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान्॥२॥
भूभगोलकस्य रचनां कुर्यादाश्चर्यकारिणीम्।

अनुवाद—तब आचार्य स्नान करने के बाद अलंकार धारण करके शुद्ध मन से एकान्त और पवित्र स्थान में सूर्य, ग्रहों, नक्षत्रों और यक्षों की भक्ति के साथ पूजा करके परम्परा से प्राप्त उपदेश के द्वारा गुरु के मुख से सुने हुए और स्वयं प्रत्यक्ष देखे हुए ज्ञान से शिष्य को पूरी तरह समझाने के लिये भूभगोल की आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली रचना करे।

विज्ञान-भाष्य—कई टीकाकारों ने आचार्य का अर्थ सूर्यांश पुरुष और शिष्य का अर्थ मयासुर किया है; परन्तु मेरी समझ में यह सभी आचार्यों के लिये साधारण उपदेश है। 'कुर्यात्' शब्द भी यही प्रकट करता है। इन श्लोकों से प्रकट होता है कि आचार्य को केवल मौखिक उपदेश से ही सन्तुष्ट नहीं होना चाहिये वरन् व्यावहारिक और क्रियात्मक ज्ञान भी कराना चाहिये जिसके लिये उसे स्वयं व्यावहारिक ज्ञान भी रखना चाहिये और ज्ञान को प्रत्यक्ष देनेवाला भी होना चाहिये, ऐसा नहीं कि टीका कर डालें सूर्य सिद्धांत ऐसे गूढ़ ग्रन्थ की, परन्तु आकाश के मुख्य-मुख्य तारों की भी पहचान न हो।

ग्रहों की पूजा में सूर्य की पूजा भी आ जाती है परन्तु यहाँ ग्रहों के साथ सूर्य शब्द अलग भी आया है जो सूचित करता है कि सूर्य की विशेष प्रकार से

पूजा करनी चाहिये क्योंकि इस सिद्धांत के आदि आचार्य सूर्यदेव ही माने गये हैं। ग्रहों की आधुनिक परिभाषा में सूर्य आते भी नहीं हैं परन्तु सूर्य-सिद्धांतकार ने इस विचार से सूर्य का नाम अलग नहीं दिया है क्योंकि और कहीं यह मत नहीं प्रकट होता।

यक्ष लोग धन के देवता कुबेर के सेवक हैं, उनके कोष और बाग की रखवाली करते हैं। यह शायद शिल्पकला में भी निपुण माने गये हैं क्योंकि पुष्पक विमान कुबेर का ही था। इसलिये यन्त्र रचना के अर्थ में दैवी सहायता प्राप्त करने के लिये इनकी भी पूजा करने का आदेश है।

भूभगोल शब्द भू, भ और गोल तीन शब्दों से बना है इसलिये इसका अर्थ है ऐसा गोल जिसमें भूगोल के साथ आकाश का वह गोल हो जिसमें ग्रह नक्षत्र आदि घूमते हुए माने गये हैं।

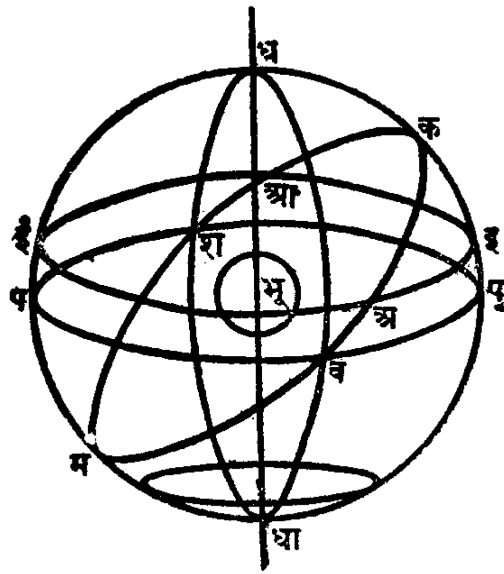
भूभगोल बनाने की रीति—

अभीष्टं पृथिवीगोलं कारयित्वा तु दारवम् ॥३॥
दण्डं तन्मध्यगं मेरोरुभयत्र विनिर्गतम्।
आधारकक्ष्याद्वितयं कक्ष्यां वैषुवतीं तथा ॥४॥
भगणांशाङ्गुलैः कार्या दलितास्तिस्र एव ताः।
स्वाहोरात्रार्धकर्णैश्च तत्प्रमाणानुपाततः ॥५॥
क्रान्तिविक्षेपभागैश्च दलिता दक्षिणोत्तरा।
स्वैस्स्वैरपक्रमैः कार्या मेषादीनामपक्रमात् ॥६॥
कक्ष्याः प्रकल्पयेत्ताश्च कर्क्यादीनां विपर्ययात्।
तद्वत्तिस्रस्तुलादीनां मृगादीनां विलोमतः ॥७॥
याम्यगोलाश्रिताः कुर्यात् कक्ष्याधारद्वयोपरि।
याम्योदग्भागसंस्थानां भानामभिजितस्तथा ॥८॥
सप्तर्षीणामगस्त्यस्य ब्रह्मादीनां प्रकल्पयेत्।
मध्ये वैषुवती कक्ष्या सर्वासामेव संस्थिता ॥९॥
तदाधारयुतेः भार्धमयने विषुवद्द्वये।
विषुवत्स्थानतो भागैः स्फुटैर्भगणसंचरात् ॥१०॥
क्षेत्राण्येवमजादीनां तिर्यग्ज्याभिः प्रकल्पयेत।
अयनादयनं चैव कक्ष्या तिर्यक्तथाऽपरा ॥११॥
क्रान्तिसंज्ञा तया सूर्यः सदा पर्येति भासयन्।
चन्द्राद्याश्च स्वकैः पातैरपमण्डलमाश्रितैः ॥१२॥
ततोऽपकृष्टा दृश्यन्ते विक्षेपाग्रेष्वपक्रमात्।

अनुवाद—(३) लकड़ी का अभीष्ट आकार का एक गोला (भूगोल) बनाकर (४) इसमें छेद करके एक सीधा डंडा कस देना चाहिए जो भूगोल के केन्द्र से होकर दोनों ओर बराबर निकला रहे और मेरु दंड का काम करे। इसी दंड में दो आधार-वृत्त (एक दूसरे से समकोण पर) स्थिर करो जिनके बीचोबीच विषुवद्वृत्त हो। (५) इन तीनों वृत्तों को अंगुल से ३६० अंशों में बाँट दो। विषुवद्वृत्त के मानानुसार अहोरात्र वृत्त के व्यासार्ध से (६) दक्षिणोत्तर वृत्त पर क्रान्ति और शर के अंशों के द्वारा जो इस पर अंकित हों मेष, वृष और मिथुन राशियों के अंतिम विन्दुओं की क्रान्तियों के अंतर पर इन तीन राशियों के (७) अहोरात्र वृत्त स्थिर करो जो विलोम रीति से कर्क, सिंह और कन्या के अहोरात्र वृत्त भी होंगे। इसी प्रकार तुला, वृश्चिक और धनु तथा विलोम रीति से मकर, कुम्भ और मीन राशियों के भी तीन अहोरात्र वृत्त (८) दोनों आधार वृत्तों के ऊपर दक्षिण गोल में स्थिर करो। ऐसे ही उत्तर और दक्षिण गोलों में स्थित नक्षत्रों, अभिजित (९) सप्तर्षि, अगस्त्य, ब्रह्महृदय आदि तारों के अहोरात्र वृत्त स्थिर करो। इन सब अहोरात्र वृत्तों के बीच में विषुवद्वृत्त होता है। (१०) विषुवद्वृत्त और दोनों आधारवृत्तों के युतिबिन्दुओं पर दोनों अयन विन्दु और दोनों विषुव सम्पात होते हैं। विषुव सम्पात के स्थान से सायन राशि चक्र का आरम्भ करो। (११) इस प्रकार मेष वृष आदि राशियों के विभाग तिर्यक ज्याओं द्वारा करो। एक अयन विन्दु से दूसरे अयन विन्दु तक तथा दूसरे से फिर पहले तक जो तिर्यकवृत्त स्थिर किया जायगा (२) उसी का नाम क्रान्तिवृत्त है जिस पर सूर्य सदा प्रकाश देता हुआ भ्रमण करता है। चन्द्र, मंगल आदि ग्रह अपने अपने पातों के द्वारा जो क्रान्तिवृत्त पर होते हैं (१३) खिंचे हुए अपनी अपनी क्रान्ति से विक्षेप के अंत में देख पड़ते हैं।

विज्ञान-भाष्य—यहाँ यह नहीं बतलाया गया है कि आधार कक्षा और विषुवत् कक्षा किस चीज का बनाना चाहिये। अन्य ग्रन्थों में बाँस की पतली-पतली तीलियों का प्रयोग किया गया है क्योंकि यही इतनी लचीली होती हैं कि गोलाई में मोड़ी जा सकती हैं। आजकल लोहे या पीतल के तार से यह काम आसानी से हो सकता है। ऊपर बतलायी हुई रीति से जो भूभगोल बनता है वह अनेक वृत्तों (बलयों) के कारण बहुत ही दुर्बोध हो जाता है इसलिये आजकल यदि चित्र १३६ के अनुसार भूभगोल बनाया जाय तो बनाने में भी सुगमता होगी और समझने में भी।

इस चित्र के बीच में जो सबसे छोटा वृत्त है वह भूगोल (पृथ्वी-गोल) को सूचित करता है, इसीलिये बीच में 'भू' लिखा है। 'धधा' दंड है जो पृथ्वी-गोल के केन्द्र से होकर इसके दोनों ओर निकला रहता है। भू से ध और धा की दूरी समान है। इन्हीं स्थानों से दो आधारवृत्त 'धशधाव' और 'धपधापू' एक दूसरे से समकोण



चित्र १३६

पर बाँधे जाते हैं। इन्हीं दोनों वृत्तों पर ध और धा से समान अन्तर पर 'प व पू श' वृत्त बाँधा जाता है जिसे विषुवत् कक्षा कहा गया है। इन तीनों वृत्तों को ३६० समान भागों में बाँट कर चिह्न बना देते हैं जो अंश कहलाते हैं। इसके बाद मेषादि बारह राशियों के अहोरात्रवृत्त बनाने का आदेश है। परन्तु मेरी समझ में यह आवश्यक नहीं है। ऊपर के तीन वृत्त बाँधने के बाद सीधे क्रान्ति-वृत्त को ही बाँधना सुगम होगा। यह भी ऊपर के किसी वृत्त के समान लेना चाहिए। इसे पहले व और श स्थानों पर विषुवदवृत्त और धशधाव आधारवृत के जोड़ पर बाँधना चाहिये फिर दूसरे आधारवृत्त 'क' और 'म' स्थानों पर बाँधना चाहिये। 'क' या 'म' का अन्तर विषुवद् वृत्त से उतना ही होना चाहिये जितनी सूर्य का परमक्रान्ति होती है जो आजकल साढ़े तेईस अंश (२३° ३०′) के लगभग है। इस क्रान्तिवृत को भी ३६० समान भागों में बाँट देना चाहिये। 'व' स्थान को सायनमेष या वसंत सम्पात तथा 'श' स्थान को सायनतुला या शरद सम्पात कहते हैं। 'क' और 'म' स्थानों को क्रम से सायन कर्क और सायन तुला अथवा दक्षिणायन और उत्तरायण विन्दु कहते हैं (देखो पृ० २३०)। इन स्थानों के विचार से 'ध श धा व' आधार कक्षा को विषुवसम्पातवृत्त (Equinoctial Colure) और 'ध प म धा पू क' आधार कक्षा को अयनवृत्त (Solstitial Colure) कहते हैं, क्योंकि पहले पर दोनों विषुव-सम्पात विन्दु और दूसरे पर दोनों अयन विन्दु होते हैं। चित्र में क्रान्ति वृत्त के 'अ' स्थान पर विषुवद् वृत के समानान्तर एक अहोरात्र वृत्त 'अ इ आई' दिखलाया गया है। यह क्रान्तिवृत्त के दूसरे स्थान 'आ' पर मिलता है। 'अ' विन्दु वसंत-सम्पात 'व' से जितने अंतर पर है उतने ही अंतर पर परन्तु

विलोम दिशा में शरद सम्पात 'श' से 'आ' का स्थान है अथवा 'क' से 'अ' और 'आ' समान दूरी पर हैं। यदि 'अ' सायन वृष राशि के आदि में हो तो 'आ' सायन कन्या राशि के आदि में होगा और यदि पहला सायन मिथुन राशि के आदि में हो तो दूसरा सायन सिंह राशि के आदि में होगा। इसी प्रकार क्रान्ति-वृत्त के किसी स्थान का अहोरात्र वृत्त बाँधा जा सकता है। यही बात श्लोक ६-७ में बतलायी गयी है। इसके सिवा 'धा' स्थान के पास एक अहोरात्र वृत्त समझा जा सकता है।

१२वें श्लोक में चन्द्रमा, मंगल आदि ग्रहों के कक्षा वृत्तों की भी चर्चा है परन्तु चित्र में ऐसा कोई भी कक्षा वृत नहीं दिखलाया गया है। ऐसा कक्षा वृत्त बांधने के लिये पहले ग्रह का पात-विन्दु क्रान्ति-वृत्त पर स्थिर करना चाहिये। इसी पर उस ग्रह का कक्षा वृत्त बांधना चाहिये जिसका दूसरा जोड़ इस स्थान से १८० अंश पर क्रान्ति-वृत पर हो। यह दोनों स्थान ग्रह के पात स्थान हुए। फिर इस वृत्त को ९० अंश के अंतर पर क्रान्ति-वृत्त से उस ग्रह के परम विक्षेप के बराबर उत्तर और दक्षिण स्थानों पर भी बांध देना चाहिये (परम विक्षेप की चर्चा मध्यमाधिकार के पृ० ७४-७६ में की गयी है)।

उदयलग्न, मध्यलग्न, अन्त्या, चरज्या आदि का निश्चय—

उदयं क्षितिजे लग्नमस्तं गच्छति तद्वशात् ॥१३॥
लङ्कोदयैस्तथा सिद्धं खमध्योपरि मध्यगम् ।
मध्यक्षितिजयोर्मध्ये या ज्या साऽन्त्याऽभिधीयते ॥१४॥
ज्ञेया चरदलज्या च विषुवत्क्षितिजान्तरम् ।
कृत्वोपरि स्वकं स्थानं मध्ये क्षितिजमण्डलम् ॥१५॥

अनुवाद—(१३) क्रान्ति वृत्त का जो विन्दु पूर्व क्षितिज में लगा रहता है वह उदय लग्न है। इस उदय लग्न के अनुसार क्रान्ति वृत्त का जो विन्दु पच्छिम क्षितिज में लगा रहता है वह अस्त लग्न होता है। (१४) यामोत्तर वृत्त पर मध्यम लग्न होता है जिसकी गणना लंका के उदयासुओं से की जाती है। अहोरात्र वृत्त और यामोत्तर वृत्त के संधिस्थान से क्षितिज वृत्त तक जो ज्या होती है उसे अन्त्या कहते हैं। (१५) विषुवत् रेखा के क्षितिज जिसे उन्मण्डल कहते हैं और अपने स्थान के क्षितिज के बीच जो अन्तर होता है वह चरज्या है। भूगोल पर अपने स्थान को सबसे ऊपर करने पर क्षितिज वृत्त भूगोल के मध्य में होता है।

विज्ञान-भाष्य—इन श्लोकों में एक ही शब्द कई परिभाषाओं के लिए प्रयुक्त हुआ है इसलिये इनका भाव जल्दी समझ में नहीं आता। १२वें श्लोक के पूर्वार्ध में 'मध्यम' मध्य लग्न के लिये आया है। उत्तरार्ध में 'मध्य' शब्द अहोरात्र

वृत्त और यामोत्तर वृत्त की सन्धि स्थान के लिये आया है। १५वें श्लोक के पूर्वार्ध में 'विषुवत्' विषवक्षितिज या उन्मण्डल के लिये तथा क्षितिज शब्द अपने स्थान के क्षितिज वृत्त के लिये प्रयुक्त हुआ है। इसके उत्तरार्ध में 'मध्ये' शब्द अपने स्थान के ऊर्ध्वाधर यामोत्तर वृत्त के मध्य के लिये आया है। इस प्रकार का प्रयोग बड़ा ही भ्रमोत्पादक होता है और वैज्ञानिक ग्रंथों के लिये दोष समझा जाता है।

यह सब परिभाषाएँ त्रिप्रश्नाधिकार के २८६-६० पृष्ठों पर तथा स्पष्टाधिकार के चित्र ३६, ४२, ४३ और त्रिप्रश्नाधिकार के चित्र ६३ से अच्छी तरह समझी जा सकती है। उपर्युक्त विवरण से भूभगोल यंत्र से इन सब परिभाषाओं का ज्ञान सहज ही हो सकता है।

युक्ति जिससे भूभगोल यंत्र सदा घूमता रहे—

वस्त्रच्छन्नं बहिश्चापि लोकालोकेन वेष्टितम्।
अमृतस्रावयोगेन कालभ्रमणसाधनम् ॥१६॥
गुणबीजसमाकृष्टं गोलयंत्रं प्रकल्पयेत्।
गोप्यमेतत्प्रकाश्योक्त सर्वगम्यं भवेद्यत: ॥१७॥

अनुवाद—(१६) लोकालोक से अर्थात् क्षितिजवृत्त से घिरे हुए गोल को ऊपर कपड़े से ढक कर जल प्रवाह के द्वारा ऐसा प्रबन्ध करे कि यह अपने आप घूमकर नाक्षत्रकाल सूचित करे। (१७) अथवा इस गोल यंत्र को पारे के संयोग से ऐसा बनावे कि वह अपने आप घूमे। इसको गुप्त रखना चाहिये। साफ-साफ बतला देने से इस संसार में यह सबको मालूम हो जायगा।

विज्ञान-भाष्य—इन दोनों श्लोकों की भाषा बहुत ही अस्पष्ट है। इस बात का तनिक भी बोध नहीं होता कि यह गोलयंत्र किस प्रकार अपने आप घूमकर आकाश का प्रकार दैनिक भ्रमण सिद्ध करता था। इतना तो प्रकट है कि गोलयंत्र का मेरुदण्ड इस प्रकार स्थिर किया जाता था कि वह ध्रुव की ओर रहे। फिर उसमें ऐसी युक्ति की जाती होगी कि जल की धारा से उसमें ऐसी टक्कर लगे कि एक नाक्षत्र दिन में वह एक बार घूम जाय जैसे पनचक्की चलती है। पानी की जगह पारे से भी काम लिया जाता था परन्तु यह पता नहीं कि कैसे। अंत में यह बतलाया गया है कि यह युक्ति सबसे नहीं बतलानी चाहिये। शायद इसीलिये संकेत मात्र कर दिया गया है। इससे लोग यह परिणाम निकाल सकते हैं कि लेखक स्वयं इस क्रिया को अच्छी तरह नहीं जानता था। उसको केवल आभास था कि ऐसा यन्त्र बन सकता है जो अपने आप चलता हो, इसीलिये उसने सब बातें गोल रखी हैं। यह भी संभव है कि प्राचीन काल में शिल्पकला की इतनी उन्नति थी कि ऐसे स्वयंवह यंत्र पारे और पानी के संयोग

से उसी प्रकार बनते थे कि जैसे आजकल घड़ी आदि अपने आप चलने वाले यन्त्र बनते हैं, परन्तु बीच में समय के फेर से सब ज्ञान नष्ट हो गया हो।

तस्माद्गुरूपदेशेन रचयेद्गोलमुत्तमम्।
युगे युगे समुत्पन्ना रचनेयं विवस्वतः ॥१८॥
प्रसादात्कस्यचिद्भूयः प्रादुर्भवति कालतः।
कालसंसाधनार्थाय तथा यन्त्राणि कारयेत् ॥१९॥
एकाकी योजयेद्बीजं यन्त्रे विस्मयकारणम्।

अनुवाद—(१८) इसलिये गुरु के उपदेश के अनुसार उत्तम गोल की रचना करनी चाहिये। यह रचना प्रत्येक युग में नष्ट हो जाती है और सूर्य भगवान की (१९) इच्छानुसार उनके प्रसाद से फिर किसी को प्राप्त होती है। इसी प्रकार समय का ज्ञान करने के लिये अन्य यन्त्रों की भी रचना करनी चाहिये। (२०) आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले यंत्र में (उसको चलाने के लिये) पारे का प्रयोग एकान्त में करना चाहिये।

विज्ञान-भाष्य—इन श्लोकों से प्रकट होता है कि स्वयंवह यंत्र बनाने की क्रिया काल पाने पर नष्ट हो जाती है, जिसको फिर सूर्य भगवान् अपनी इच्छा से किसी को बतला देते हैं। इसके सिवा समय बतलानेवाले अन्य यंत्रों को बनाने के लिये भी कहा गया है और अंत में फिर बतलाया गया है कि पारे का प्रयोग एकान्त में करना चाहिये, सबको नहीं बतलाना चाहिये।

समय बतलानेवाले अन्य यन्त्रों के नाम—

शङ्कुयष्टिधनुश्चक्रैश्छाया यन्त्रैरनेकधा ॥२०॥
गुरूपदेशाद्विज्ञाय कालज्ञानमतन्द्रितः।
तोययन्त्रैः कपालाद्यैर्मयूरनरवानरैः।
सूत्रैश्च वेणुगर्भस्थैः सम्यक्कालं प्रसाधयेत् ॥२१॥
पारतालाबुसूत्राणि गुञ्जातैलजलानि च।
बीजानि पांसवश्चैषां प्रयोगास्ते सुदुर्लभाः ॥२२॥

अनुवाद—(२०) शंकु, यष्टि, धनु और चक्र नामक अनेक प्रकार के छाया यंत्रों के द्वारा (२१) चतुर और परिश्रमी मनुष्य गुरु के उपदेश से काल का ज्ञान प्राप्त करते हैं। कपाल आदि जल यंत्रों से, मयूर, नर और वानर यंत्रों से जिनके पेट में बालू रहती है जो सूत के सहारे निकलती है समय का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त

करना चाहिये। (२२) पारे का आरा, जल, सूत, शुल्ब, तेल और जल, पारा और बालू इन सबका प्रयोग करना चाहिये। परन्तु यह भी कठिन है।

विज्ञान-भाष्य—इन श्लोकों में समय जानने के अनेक यंत्रों के नाम गिना दिये गये हैं परन्तु उनके बनाने की विधि कहीं नहीं बतलायी गयी है। पहले चार यंत्रों से सूर्य की छाया देखकर समय जाना जा सकता है इसलिये वे दिन में ही काम कर सकते हैं और उनको छाया यंत्र कहा गया है। इनमें से शंकु की चर्चा त्रिप्रश्नाधिकार नामक तीसरे अध्याय में बहुत हुई है। उस अध्याय मे यह बतलाया गया है कि १२ अंगुल के शंकु से अक्षांश, नतांश, नतकाल, दिशा आदि का ज्ञान कैसे किया जाता है। इसके द्वारा समय जानने के लिये गुणा भाग की क्लिष्ट क्रिया करनी पड़ती है, सीधे समय नहीं निकलता। छाया की नाप भी बहुत शुद्ध नहीं ली जा सकती इसलिये इस यंत्र से जो समय आता है वह चार पाँच मिनट अधिक या कम हो सकता है। इसलिये आजकल इससे काम लेने की जरूरत नहीं।

यष्टि यंत्र—इसकी चर्चा इस पुस्तक में और कहीं नहीं की गई है इसलिये यह नहीं बतलाया जा सकता कि इससे कैसे काम लिया जाता था। भास्कराचार्य जी ने सिद्धान्त शिरोमणि के यंत्राध्याय में इसकी विशेष चर्चा की है जिससे जान पड़ता है कि इससे भी समय का ज्ञान करने के लिये क्लिष्ट गणना करनी पड़ती है। इस-लिये आजकल अच्छे साधनों के होते हुए यह यंत्र भी आवश्यक नहीं है।

धनुष और चक्र-यंत्र से समय का ज्ञान सहज ही हो सकता है। यह दोनों यंत्र वास्तव में एक ही हैं। चक्र-यंत्र में एक गोल चक्र होता है जिसके किनारे समान भागों में अंकित रहते हैं। यदि ६० समान भाग हों तो प्रत्येक भाग एक घड़ी का समय सूचित करता है। इस चक्र के केन्द्र से एक सीधी कीली लोहे या पीतल की कस दी जाय और चक्र पृथ्वी पर दो खंभों में इस प्रकार गाड़ दिया जाय कि कीली का सिर आकाश के ध्रुव की दिशा में हो तो इस यन्त्र से सूर्य का नतकाल (Hour Angle) सहज ही जाना जा सकता है। दिल्ली और काशी आदि के मान-मन्दिरों में पत्थर के वृहदाकार चक्र यन्त्र बने हैं जो पृथ्वी पर इस प्रकार स्थिर किये गये हैं कि इनके तल विषुवद्वृत्त के समानान्तर हैं और इनके केन्द्र से एक कीली दोनों ओर ६ इंच के लगभग निकली हुई ध्रुवों की दिशा में है। इस चक्र-यंत्र के दोनों तरफ़ के किनारे सम भागों में अंकित हैं। जब सूर्य उत्तर गोल में रहता है (सायनमेष संक्रान्ति से सायन तुला संक्रान्ति तक) तब कील की छाया यंत्र के उत्तरी तल पर पड़कर नतकाल बतलाती है और जब सूर्य दक्षिण गोल में रहता है तब कीली की छाया दक्खिनी तल पर पड़ती है और नतकाल सूचित करती है। जैसे-जैसे सूरज ऊपर उठता है छाया

नीचे होती जाती है। मध्याह्नकाल में कील की छाया ठीक नीचे हो जाती है। यदि चाहें तो इसके किनारे घंटों में भी अंकित हो सकते हैं। यह भी एक प्रकार की धूप-घड़ी है।

भास्कराचार्य जी ने एक दूसरे प्रकार का चक्र-यंत्र बतलाया है। यह भी चक्राकार होता है परन्तु यह स्थिर नहीं किया जाता। किनारे से कुछ दूर एक छेद होता है जिसमें एक जंजीर लगी रहती है। इसी जंजीर से यह लटकाया जा सकता है। इसके किनारे ३६० अंशों में अंकित रहते हैं। लटकने पर इसका केन्द्र छेद के ठीक नीचे रहता है। इन दोनों बिन्दुओं के मिलाने वाली रेखा से समकोण पर जो रेखा होती है, और जो चक्र के केन्द्र पर भी रहती है उसके एक किनारे शून्य का अंक रहता है और दूसरे किनारे १८० का। जब समय जानना हो इसको लटकाकर ऐसा घुमाओ कि इसके केन्द्र पर जड़ी हुई कीली की नोक की छाया किनारे के भागों पर पड़े। यदि इसके किनारे सायन राशियों के इष्ट स्थान के उदयमानों में भी विभाजित हों तो इससे लग्न का ज्ञान भी किया जा सकता है। आजकल के सूक्ष्म यंत्रों के सामने इस यंत्र से भी विशेष लाभ नहीं है।

चाप या धनुष यन्त्र—यदि चक्र-यन्त्र का आधा भाग लेकर यंत्र बताया जाय तो सूर्य का नतकाल उसी प्रकार जाना जा सकता है।

आजकल दिन में सूर्य का किसी समय का नतांश एक साधारण चापयंत्र से जो कार्ड-बोर्ड का बनाया जा सकता है सहज ही जाना जा सकता है और उससे नतकाल का ज्ञान भी हो सकता है। ऐसे यंत्र की चर्चा इस लेखक ने विज्ञान भाग ४३ संख्या १ पृष्ठ १८ में चित्र १३८ में की है। उसमें कई सारणियां भी दी गयी हैं जिनसे २८ अक्षांश से २२ अक्षांश तक के स्थानों में दिन में समय जाना जा सकता है। इस यंत्र से सूर्य की छाया के अनुसार समय जाना जाता है और चार-पांच मिनट से अधिक अंतर नहीं पड़ता। इस लेखक की घड़ी जब कभी बन्द हो जाती है या ठीक समय नहीं देती तब वह इसी से मिला लेता है। इस यंत्र से किसी स्थान का अक्षांश भी सहज ही जाना जा सकता है। यह सारणी त्रिप्रश्नाधिकार के पृष्ठ २६१ के गुर (१) के अनुसार तैयार की गयी है। इससे काम लेने की संक्षिप्त रीति इस अध्याय के अंत में दी गयी है जहाँ, एक धूप-घड़ी की भी चर्चा की जायगी।

इन छाया-यन्त्रों के सिवा जल-घड़ी और बालू-घड़ी आदि से भी काम लिया जाता था। जल-घड़ी को कपाल यंत्र कहते थे क्योंकि यह कपाल की तरह अर्द्ध-गोलाकार होती थी इसके पेंदे में एक छोटा सा छेद होता है। यदि यह पानी में तैरा दिया जाय तो छेद से पानी धीरे-धीरे कटोरे में भरने लगता है और इतना भर जाता है कि कटोरा डूब जाता है। इस कटोरे का और छेद का आकार ऐसा होता

था कि दिन रात में ६० बार डूब जाता था। जितनी देर में वह एक बार डूबता था उसे घड़ी कहते थे। वह इसीलिये इसका नाम घटीयंत्र हो गया जो आगे चलकर घड़ी के नाम से प्रसिद्ध हो गया। प्राचीनकाल में घटीयंत्र बनाने के लिये ऐसे नियम बन गये थे जिनसे स्पष्ट बोध होता था कि कपाल या कटोरा कितना बड़ा हो और छेद कैसा हो। इसका विशेष वर्णन २३वें श्लोक के विज्ञान-भाष्य में किया जायगा।

मयूर और बानर यंत्रों के विषय में विस्तारपूर्वक कहीं नहीं लिखा गया है। यह शायद मोर, और वानर के आकार के यंत्र बनाये जाते होंगे जिनमें सूत और बालू के सहारे समय का ज्ञान किया जाता रहा होगा। इन यंत्रों में पारा, तेल, जल आदि के द्वारा ऐसी युक्ति की जाती थी कि वे स्वयम् चलें और समय का ज्ञान करावें परन्तु इस बात का स्पष्ट वर्णन नहीं है कि वह किस प्रकार बनाये जाते थे, केवल इतना ही संकेत है कि इनका प्रयोग बड़ा दुर्लभ है।

पता नहीं कि ऐसे स्वयंवह यंत्र यथार्थ में बनाये गये थे या केवल कल्पना में ही थे। आज कल तो अपने आप चलने वाली तरह तरह की घड़ियां सभी काम में ला सकते हैं परन्तु उनका सिद्धांत बतलाने की यहाँ आवश्यकता नहीं जा पड़ती।

कपाल यन्त्र—

ताम्रपात्रमधश्छिद्रं न्यस्तं कुम्भेऽमलाम्भसि।
षष्टिर्मज्जत्यहोरात्रे स्फुटं यन्त्रं कपालकम्॥२३॥

अनुवाद—ताम्बे का कटोरा जिसके पेंदे में छेद हो निर्मल जल के कुंड में रखने से दिन रात में ६० बार डूबे तो वह शुद्ध कपाल यन्त्र होता है।

विज्ञान भाष्य—ऐसे कपाल यन्त्र का विशेष वर्णन आचार्य श्रीपति ने सिद्धांत शेखर में इस प्रकार दिया :—

शुल्बस्य दिग्भिर्विहितं पलैर्यत् षडङ्गुलोच्चं द्विगुणायतास्यम्।
तदम्भसा षष्ठिपलैः प्रपूर्यं पात्रं घटार्धप्रतिमं घटीस्यात्॥
सत्र्यंशमाषत्रयनिर्मिता या हेम्नः शलाका चतुरङ्गुलास्यात्।
विद्धं तया प्राक्तनमत्र पात्रं प्रपूर्यते नाडिकयाम्बुना तत्॥

अर्थात् दस पल तोल का तांबा लेकर उसका अर्धगोलाकार एक कटोरा ऐसा बनाया जाय जिसकी ऊँचाई ६ अंगुल और जिसके मुख की चौड़ाई इसकी दूनी हो, जिसमें ६० पल पानी आता हो और जिसकी पेंदी में इतना बड़ा छेद होना चाहिये कि उसमें ३⅓ माशा सोने की चार अंगुल लम्बी सुई जा सके जिससे एक घड़ी में वह कटोरा पानी से भर जाय।

इससे यह सिद्ध होता है कि यह आचार्य समय की शुद्ध-शुद्ध नाप के लिये

कितना प्रयत्नशील था। परन्तु इस प्रकार का यन्त्र बनाना सुगम नहीं था। इसीलिये भास्कराचार्य[1] जी ने इसकी उपेक्षा की है।

नरयन्त्र—

नरयन्त्रं तथा साधु दिवा च विमले रवौ।
छाया संसाधनैः प्रोक्तं कालसाधनमुत्तमम् ॥२४॥

अनुवाद—इसी प्रकार नरयन्त्र अथवा शङ्कु दिन में जब सूर्य स्वच्छ हो अच्छा होता है। छाया की ठीक-ठीक नाप से समय का ठीक-ठीक ज्ञान करने की रीति बतलायी गयी है।

विज्ञान-भाष्य—त्रिप्रश्नाधिकार में यह विस्तारपूर्वक बतलाया गया है कि १२ अंगुल लम्बे शंकु की छाया से दिशा, देश और काल की गणना कैसे की जाती है।

उपसंहार—

ग्रहनक्षत्रचरितं ज्ञात्वा गोलं च तत्वतः।
ग्रहलोकमवाप्नोति पर्यायेणात्मवान् नरः ॥२५॥

इति सूर्य-सिद्धान्ते ज्योतिषोपनिषदध्याय

अनुवाद—ग्रह और नक्षत्रों की चाल तथा गोल गणित के तत्व को जानने वाला मनुष्य ग्रहलोक को प्राप्त होता है और जन्मान्तर में आत्मज्ञानी होता है।

विज्ञान-भाष्य—इस श्लोक से यह प्रकट होता है कि हमारे आचार्य ज्योतिष-शास्त्र के तत्व की जानकारी का कितना महत्व समझते थे और इसका प्रत्यक्ष बोध कराने के लिये अनेक प्रकार के यन्त्रों की कैसी रचना करते थे। आजकल यन्त्रों की इतनी उन्नति हो गयी है कि इनके द्वारा आकाशीय पिंडों की गति का साधन बड़ी सूक्ष्मता से किया जा सकता है। इसमें अध्याय में ऐसे एक यन्त्र की चर्चा संक्षेप में की जाती है। जिनको इनके सम्बन्ध में विशेष रीति से जानने की इच्छा हो उन्हें प्रकाश-विज्ञान की पुस्तकें पढ़नी चाहिए।

दूरदर्शक—इस यन्त्र से दूर की वस्तुओं का प्रतिबिम्ब बहुत बड़ा और स्पष्ट देख पड़ता है। इसका सिद्धान्त संक्षेप में यह है :—

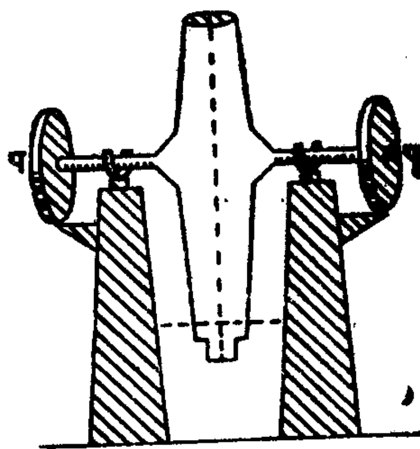
पीतल की नलिका के एक सिरे पर ऐसा ताल रहता है जिससे दूर की वस्तु का प्रतिबिम्ब उसकी नाभी पर या इसके पास ही बनता है। इस प्रतिबिम्ब के पास

---

१. अत्र दशभिः शुल्बस्य पलैरित्यादि यद् घटी लक्षणम् कैश्चित् कृतं तद्युक्ति शून्यं दुर्घट चेत्ये तदुपेक्षितम्। (गोलाध्याय, यन्त्राध्याय श्लोक ८ की व्याख्या)।

ही दूसरे सिरे पर एक छोटा ताल होता है जिससे यह प्रतिबिम्ब बड़ा होकर दिखाई पड़ता है। यह छोटा ताल एक दूसरी नलिका के सिरे पर जड़ा रहता है जो बड़ी नलिका में खिसक सकती है। बड़ा ताल वस्तु की ओर रहता है इसलिये इसका नाम 'वस्तु ताल' और छोटा ताल देखनेवाले के नेत्र की ओर रहता है इसलिये इसे 'नेत्र ताल' कहते हैं। माउन्ट विल्सन के वेधालय के दूरदर्शक के वस्तु ताल का व्यास १०० इंच अथवा ८ फुट ४ इंच हैं। दस वर्ष से एक ऐसा ताल बनाया जा रहा है जिसका व्यास २०० इंच का होगा। इसकी मोटाई २५ इंच की है और तोल ३३००० पौंड अथवा ४०२ मन से कुछ ऊपर। इस ताल से जो प्रतिबिम्ब बनेगा वह दस लाख गुना बढ़ाया जा सकता है। चन्द्रमा यहाँ से २५००० मील दूर है परन्तु इस ताल से देखने पर वह ऐसा जान पड़ेगा मानो केवल २० मील की दूरी पर है। यह ताल जिस नली में जड़ा जायगा उसकी लम्बाई ५५ फुट और तोल २५०००० पौंड अथवा ३०४९ मन[१] है।

यदि यह यंत्र इस प्रकार स्थिर किया जाय कि यह पूर्व-पच्छिम दिशा में स्थापित सम अक्ष पर यामोत्तर वृत्त के तल में घूमे तो इसका नाम यामोत्तर यंत्र हो जाता है। इससे किसी ग्रह या तारे का यामोत्तरलंघन काल, विषुवांश और क्रान्ति की नाप हो सकती है। चित्र १३७ से इस यंत्र के स्थिर करने की रीति मोटे तौर पर मालूम हो सकती है। 'पू प' अक्ष के दोनों सिरों पर दो चक्र होते हैं जिनके किनारों पर अंशों और कलाओं के चिह्न अंकित रहते हैं। दूरदर्शक को किसी ग्रह या तारे की सीध में करते समय चक्र जितना घूम जाता है उसी से उस ग्रह का



चित्र १३७

नतांश जान लिया जाता है। स्थान का अक्षांश मालूम ही रहता है। बस इन दोनों की सहायता से उस ग्रह की क्रान्ति सहज ही जानी जा सकती है।

---

१. २५ अक्टूबर १९३८ के अंग्रेजी दैनिक 'लीडर' से

साधारण चापयन्त्र (अथवा सभी जगह काम देने वाली धूप-घड़ी)

चाप-यंत्र

विज्ञान भाग ४३ संख्या १ पृष्ठ १८ का ब्लाक यहाँ देना चाहिये

चाप यंत्र से समय जानने की सारणी (२५।। अक्षांश के स्थानों के लिये जैसे काशी, प्रयाग, पटना आदि)

मास	तारीख	काल समीकरण	१२	११	१०	९	८	७	६	काल समीकरण	तारीख	मास	सूर्योदय घं०	सूर्योदय मि०
				१	२	३	४	५	६					
जनवरी	१	+३	४९	५१	५७	६५।।।	७६	८७।।।		−१।।	२२	दिस०	६	४८
	१०	७।।	४७।।	४९।।।	५६	६४।।।	७५।	८७		१०।	३		६	४४
	२१	११।।	४५।।	४७।।	५४।	६३।	७४	८६		१३।।	२२	नवम्बर	६	४०
	२९	१३।	४३।।	४५।।।	५२।।	६२	७३	८५		१५।।।	१३		६	३५
फरवरी	५	१४	४१।।	४३।।।	५०।।।	६०।।	७१।।।	८४		१६।	६		६	३१
	११	१४।।	३९।।	४२	४९।	५९	७०।।	८३		१६।	३१	अक्टूबर	६	२७
	१७	१४।	३७।।	४०।	४७।।।	५७।।।	६९।।	८२		१५।।	२५		६	२३।।
	२३	१३।।	३५।।	३८।	४६	५६।।	६८।।	८१		१५	१९		६	१९।।
	२८	१२।।	३३।।	३६।।	४४।।	५५।	६७।	८०।		१३।।।	१४		६	१५।।

मास	तारीख	काल समीकरण	१२	११ / १	१० / २	९ / ३	८ / ४	७ / ५	६ / ६	काल समीकरण	तारीख	मास	सूर्योदय घं०	सूर्योदय मि०
मार्च	५	११॥	३१॥	३४।॥	४३	४४	६६।	७९।		१२॥	९		६	१२
	१०	१०॥	२९॥	३२।॥	४१॥	५२।॥	६५।	७८।		१०।॥	३		६	८
	१६	९।॥	२७॥	३१	४०	५१॥	६४।	८७॥		९।	२८	सितम्बर	६	४
	२१	७॥	२५॥	२९।	३८।॥	५०॥	६३।	७६॥		७॥	२३		६	०
	२६	५।॥	२३॥	२७॥	३७।	४९।	६२।	७५॥	८९	५।॥	१८		५	५६
	३१	४।	२१॥	२५।॥	३६	४८।	६१।	७४।॥	८८।	४	१३		५	५२
अप्रैल	५	२।॥	१९॥	२४।	३४।॥	४७।	६०॥	७४	८७॥	२	७		५	४८
	१०	१॥	१७॥	२२॥	३३॥	४६।	५९॥	७३	८६॥	१	२		५	४४॥
	१६	०	१५॥	२१	३२॥	४५॥	५८।॥	७२।	८५।॥	+१॥	२७	अगस्त	५	४०॥
	२२	−१॥	१३॥	१९॥	३१॥	४४॥	५८	७१॥	८४।॥	३	२२		५	३६॥
	२८	२॥	११॥	१८	३०॥	४३।॥	५७।	७०।॥	८४	४॥	१५		५	३३
मई	४	३।	९॥	१६।॥	२९॥	४३	५६॥	७०	८३	५॥	९		५	२९
	१२	३।॥	७॥	१५।॥	२८।॥	४२।	५५।॥	६९।	८२।	६।	१		५	२५
	२०	३।॥	५॥	१४।॥	२८।॥	४०।॥	५५	६८॥	८१॥	६।	२४	जुलाई	५	२०
जून	१	२॥	३॥	१४	२७।॥	४१।	५४॥	६७।॥	८०।॥	५॥	१२		५	१६
	१४	०	...	...	...	...	...	...	...					
	२१	+१॥	२	१३॥	२७।	४०।॥	५४	६७	८०				५	१२

सारणी को ध्यान से देखने पर पता चलेगा कि जहाँ १२ लिखा हुआ है वह मध्याह्न काल सूचित करता है। इसके बाद वाले खाने में नीचे १ और ऊपर ११ लिखे हुए हैं। इनका अर्थ यह है कि सूर्य का नतांश ११ बजे जितना होता है उतना ही एक बजे होता है। परन्तु मध्याह्नकालिक नतांश से इनमें अधिक अन्तर नहीं रहता। जनवरी और दिसम्बर में तो यह अन्तर सवा दो अंश से अधिक नहीं होता। फरवरी और अक्टूबर में यह २।। से अंश तक हो जाता है। मार्च और सितम्बर में ४। के लगभग हो जाता है। अप्रैल और अगस्त में ६।। अंश और मई, जून, जुलाई, अगस्त में इससे भी अधिक हो जाता है। इसलिये इस धूप घड़ी से जाड़े के दिनों में ११ बजे से १ बजे तक का समय बहुत शुद्धता के साथ नहीं जाना जा सकता।

एक बजे से २ बजे तक या १० बजे से ११ बजे तक का समय सुगमता से जाना जा सकता है। इसके अतिरिक्त अन्य कालों में समय का ज्ञान बहुत ही सूक्ष्मता के साथ किया जा सकता है।

काल-समीकरण—धूप घड़ी से जो समय आता है वह शुद्ध स्थानीय काल होता है। तार घर की घड़ी से जा समय जाना जाता है वह इससे भिन्न होता है। स्थानीय-काल से तार घर की घड़ी का समय जानने के लिये स्थानीय-काल में २ संस्कार करने पड़ते हैं। एक को काल-समीकरण और दूसरे को देशान्तर-संस्कार कहते हैं। काल-समीकरण पहली जनवरी से १६ अप्रैल तक धनात्मक होता है, इसके बाद १४ जून तक वह ऋणात्मक रहता है। १४ जून के बाद फिर धनात्मक हो जाता है और अगस्त तक ऐसा ही रहता है। सितम्बर से दिसम्बर तक प्रायः ऋणात्मक रहता है। जब धनात्मक रहता है तब धूप घड़ी के समय में इसे जोड़ना पड़ता है और जब ऋणात्मक होता है तब घटाना पड़ता है। यह संस्कार करने पर शुद्ध स्थानीय-काल मध्यम स्थानीय काल के समान हो जाता है।

देशान्तर संस्कार—मध्यम-स्थानीय काल जान लेने के बाद यदि अपना स्थान ८२।। अंश की देशान्तर रेखा से १ अंश पूर्व हुआ तो ४ मिनट, २ अंश पूर्व हुआ तो आठ मिनट और दस अंश पूर्व हुआ तो ४० मिनट घटाना पड़ता है। परन्तु यदि अपना स्थान ८२।। अंश की देशान्तर रेखा से पश्चिम हुआ तो उसी हिसाब से जोड़ना पड़ता है। ऐसा करने से जो समय आता है वही तारघर या रेलघड़ी का समय होता है।

सूर्योदय और सूर्यास्त-काल—सारणी में सूर्योदय काल भी घण्टा मिनटों में दिया हुआ है। यदि सूर्योदय काल को १२ घंटे से घटा दिया जाय तो सूर्यास्त काल आ जायेगा। यह वह समय है जिस समय सूर्य के बिम्ब का केन्द्र क्षितिज पर

गणित के अनुसार आना चाहिये। परन्तु वास्तव में प्रकाश-वर्तन के कारण सूर्य का बिम्ब क्षितिज के नीचे रहते हुए भी दिखाई पड़ने लगता है। इस वर्तन के कारण सूर्योदय दिये हुये समय से प्रायः २॥ मिनट पहले और सूर्यास्त २॥ मिनट बाद होता है।

सूर्य का बिम्ब भी विन्दु के समान नहीं है इसलिये उसके ऊपरवाला किनारा प्रायः एक मिनट पहले उदय हो जाता है और १ मिनट बाद अस्त होता है। इसलिये सूर्योदय काल में ३॥। मिनट घटा देने से वह समय आ जायगा जिस समय सूर्य बिम्ब का ऊपर वाला किनारा देख पड़ने लगता है। इसी प्रकार सूर्यास्त काल में ३॥ मिनट जोड़ देने से यह समय आ जायगा जिस समय सूर्य का पूरा बिम्ब छिप जाता है। परन्तु यह समय स्थान का स्पष्ट-काल है। रेल घड़ी का समय जानने के लिये काल-समीकरण और देशान्तर-संस्कार भी करना चाहिये। समीकरण को देखने से पता चलता है कि दो तारीखों में सूर्योदय काल एक ही होता है। उदाहरण के लिये १० जनवरी और ३ दिसम्बर को सूर्योदय ६ बजकर ४४ मिनट पर इलाहाबाद में या २५॥ अक्षांश के स्थानों में सब जगह होता है। परन्तु इन तारीखों में सूर्योदय के समय रेल की घड़ी में भिन्नता दीख पड़ती है। कारण स्पष्ट है। ३ दिसम्बर को काल समीकरण १०। मिनट घटाना पड़ता है। और १० जनवरी को ७॥ मिनट जोड़ना पड़ता है। अन्य संस्कार दोनों में समान होते हैं। उदाहरण के लिये इन दो तारीखों का सूर्योदय काल रेल की घड़ी से जो आता है, वह नीचे बतलाया जाता है—

	३ दिसम्बर	१० जनवरी
स्पष्ट सूर्योदय काल	६ घं० ४४ मि०	६ घं० ४४ मि०
वर्तन-संस्कार	—२॥ मि०	—२॥
काल समीकरण संस्कार	—१०।″	+७॥
देशान्तर संस्कार (इलाहाबाद के लिये)	+२″	+२
रेल की घड़ी से सूर्योदय काल	६ घं० ३३।मि०	६ घं० ५१ मि०

यदि सूर्य बिम्ब के ऊपरी किनारे के उदय का समय जानना हो तो १ मि० कम कर देना चाहिये। इन तारीखों में रेल घड़ी से सूर्यास्त-काल जानने के स्पष्ट सूर्योदय काल को १२ घंटे से घटाने पर ५ घंटा १६ मिनट होता है। इसमें वर्तन, काल-समीकरण और देशान्तर-संस्करण इस प्रकार करना चाहिये।

	३ दिसम्बर	१० जनवरी
स्पष्ट सूर्यास्त	५ घं० १६ मि०	५ घं० १६ मिनट
वर्तन-संस्कार	+२॥ मि०	+२॥ मि०

काल-समीकरण	—१०''	+७ मि०
देशान्तर	+२ मि०	+२ ''
रेल घड़ी का समय	५ घं० १० मि०	५ घंटा २८ मि०

टिप्पणी—गणित सिद्ध सूर्योदय काल में वर्तन-संस्कार घटाना और सूर्यास्त काल में जोड़ना चाहिये।

सूर्य का नतांश नापकर समय जानना—

उदाहरण १—१७ फरवरी को मध्याह्न के पहले सूर्य का नतांश ५० है। समय क्या है? इस तारीख को १० बजे का नतांश ४७॥ और ९ बजे का ५७॥ है इसलिये ९ बजे और १० बजे के बीच सूर्य का नतांश ५० होगा। यह भी प्रगट है कि ९ से १० बजे तक नतांश १० अंश कम होता है। इसलिये इस घंटे में नतांश १ घंटे में १० अंश की दर से घट रहा है अर्थात् १ अंश ६ मिनट में घटता है। ५७॥ से ५० तक ७॥ अंश होते हैं। इसलिये ७॥ अंश की कमी ६×७॥ मिनट अथवा ४६॥ मि० में होती है। इसलिये स्पष्ट स्थानीय काल ९ बजकर ४६॥ मिनट हुआ। इस दिन काल-समीकरण +१४। मिनट है। इसलिये यह संस्कार देने पर मध्यम स्थानीय काल ९ घं० ४६॥ मिनट+१४। मिनट=१० घण्टा १ मिनट हुआ। यदि स्थान इलाहाबाद है तो उसमें २ मिनट और जोड़ना चाहिये। इस प्रकार रेल का समय १० घंटा ३ मिनट हुआ। यदि स्थान काशी हो तो दस घंटा १ मिनट से २ मिनट घटाना चाहिये, क्योंकि काशी २ मिनट पूर्व है। इसलिये काशी में इस तारीख को जिस समय सूर्य का नतांश ५० होगा उस समय ९ बजकर ५९ मिनट हुआ होगा।

उदाहरण २—२३ मार्च को पटना नगर में दोपहर के बाद सूर्य का नतांश ७४ अंश है। इस समय रेल की घड़ी में क्या बजा है?

सारणी में २३ मार्च कहीं नहीं है। उसमें तो मार्च की २१ और २६ तारीखों के नतांश और नतकाल दिये हुए हैं। २१ मार्च को ४ बजे का नतांश ६३। और ५ बजे का ७६॥ है। २६ मार्च को ४ बजे का नतांश ६२। और ४ बजे का ७५॥ है। ५ दिन में ४ बजे के नतांश में १ अंश की कमी पड़ती है और ४ बजे के नतांश में पौन अंश की। इसलिये २ दिन में चार बजे के नतांश में लगभग आधे अंश की कमी पड़ेगी और पाँच बजे के नतांश में लगभग चौथाई अंश की। इसलिये २३ ता० को ४ बजे का नतांश ६२॥ और ५ बजे का नतांश ७६। होंगे। इन दोनों का अन्तर हुआ १'३॥ अंश। यह वृद्धि १ घंटे में होती है। इसलिये नतांश के बढ़ने की गति लगभग ४॥ मिनट प्रति अंश है। परन्तु ७४ नतांश का समय जानना है

जो ७६। से २। अंश कम है। ४॥ मिनट प्रति अंश की दर से २। अंश लगभग १० मिनट में पूरा होगा। इसलिये स्थानीय स्पष्ट काल ५ बजने में १० मिनट है अर्थात् ४ बजकर ५० मिनट हुआ है। यही पटने की धूप-घड़ी का समय है।

अब देखना चाहिये कि इस दिन का काल-समीकरण क्या है। २१ मार्च का काल-समीकरण ७॥ मिनट और २६ तारीख का ५।॥ है इसलिये ५ दिन में काल-समीकरण में १।॥ मिनट की कमी हुई, और २ दिन में पौन मिनट की। इसलिये २३ मार्च को काल समीकरण ६।॥ मिनट है। यह धनात्मक है, इसलिये इसको जोड़ने पर स्थानीय मध्यमकाल ४ बजकर ५६।॥ मिनट अथवा ४ बजकर ५७ मिनट हुआ।

पटने का देशान्तर ग्रीनविच से ८५ अंश ३० कला के लगभग है जो भारत-वर्ष के प्रधान देशान्तर ८२° ३०′ से ३ अंश पूर्व है। इसलिये पटने का देशान्तर-काल १२ मि० पूर्व हुआ। उपर्युक्त समय से १२ मि० घटाने पर आया ४ घंटा ४५ मिनट। यही रेल-घड़ी का का समय हुआ।

किसी स्थान का अक्षांश जानना—किसी सारणी से इष्ट दिन का मध्याह्नकालिक (१२ बजे का) नतांश जान लीजिये। फिर उसी सारणी में देखिये कि २१ मार्च का मध्याह्नकालिक नतांश कितना है। दोनों का अन्तर जान लीजिये। यही उस दिन की सूर्य की क्रान्ति है। अब अपने स्थान का मध्याह्नकालिक नतांश नतांशदर्पण से देख लीजिये। यदि क्रान्ति उत्तर हो तो इस नतांश में जोड़ने से और दक्षिण हो तो घटाने से उस स्थान का अक्षांश आ जावेगा।

उदाहरण—१७ फरवरी को रायबरेली का मध्याह्नकालिक नतांश ३८।। है। सारणी में १७ फरवरी का मध्याह्नकालिक नतांश ३७॥ है, और २१ मार्च का २५॥; इन दोनों नतांशों का अन्तर हुआ १२. इसलिये इस दिन की सूर्य की क्रान्ति हुई १२° दक्षिण। इस क्रान्ति को ३८॥ से घटाने पर आता है २६॥, जो रायबरेली का अक्षांश हुआ। यह यथार्थ में २६। है। इसलिये इसमें चौथाई अंश की अशुद्धि है।

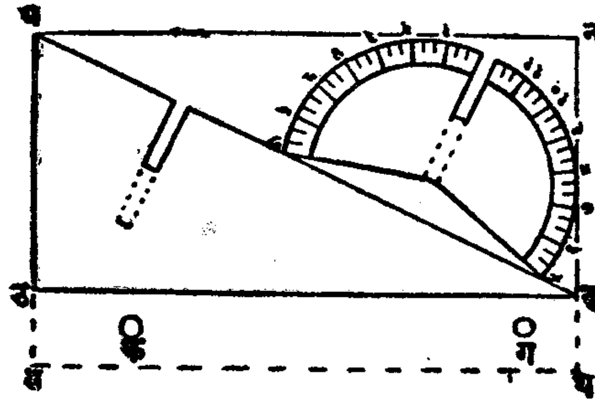
जयपुर के महाराजा सवाई जयसिह द्वितीय ने ज्योतिष शास्त्र का उचित रीति से अध्ययन करने के लिए पहले दिल्ली में, फिर जयपुर, मथुरा, काशी और उज्जैन में ईसा को १८वीं शताब्दी के पहले चरण में अथवा विक्रम की उसी शताब्दी के चौथे चरण में वेधालय बनवाये। प्रत्येक वेधालय में सात आठ यंत्र प्रायः एक ही ढंग के परन्तु भिन्न भिन्न आकार के अब भी दीख पड़ते हैं। उनके नाम यह हैं :—

१—सम्राट यन्त्र, २—षष्टांश यन्त्र, ३—राशिवलय यन्त्र, ४—जयप्रकाश

यन्त्र, ५—कपाल यन्त्र, ६—राम यन्त्र, ७—दिगंश यन्त्र, ८—नाडीवलय यंत्र, ९—दक्षिणोत्तरभित्ति यन्त्र, १०—उन्नतांश यन्त्र, ११—चक्र यन्त्र, १२—क्रान्तिवृत्त यन्त्र।

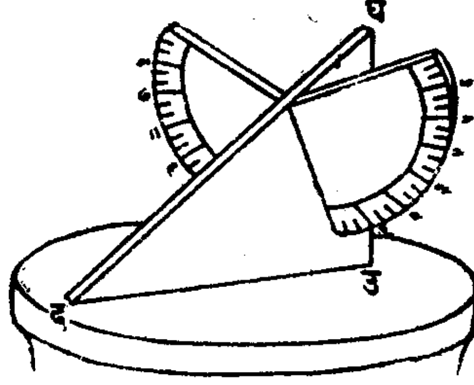
इन यन्त्रों की विशेष चर्चा करने की आवश्यकता यहाँ नहीं है। इनसे प्रकट होता है कि प्राचीन काल में हमारे राजे महाराजे ज्योतिष सम्बन्धी खोज के लिये कैसा परिश्रम करते थे और कितना रुपया खर्च करते थे। इस अध्याय को एक साधारण धूप घड़ी के बनाने की रीति लिखकर समाप्त किया जायगा। ऐसी धूप घड़ी के लिये पीतल की चद्दर जिसकी मुटाई $\frac{1}{8}$ इंच के लगभग, लम्बाई १५ से २० इंच तक और चौड़ाई दस या बारह इञ्च हो तो काम चल सकता है। इस चद्दर से एक समकोण त्रिभुज ऐसा काट लेना चाहिये जिसकी लम्बी भुज पर जो कोण बने वह उस स्थान के अक्षांश के समान हो जहाँ धूप-घड़ी स्थापित करना हो। इसी प्रकार का एक समकोण त्रिभुज बची हुई चद्दर में भी बन जायगा। मान लीजिये त थ न ध पीतल की चद्दर का चौकोर टुकड़ा है। इससे द ध न एक समकोण त्रिभुज ऐसा काट लिया जिसका कोण द ध न प्रयाग के अक्षांश २५°२५′ के समान है। बचा हुआ टुकड़ा त थ द ध है जिसमें द से त थ के समानान्तर द उ रेखा खींच दी जाय तो इसका उ द ध कोण भी २५°२५′, के समान होगा। अब द ध न टुकड़े को लेकर यह देखना चाहिये कि इसमें से बड़े से बड़ा वृत्त खंड किस प्रकार काटा जा सकता है। ऐसे वृत्त खंड का केन्द्र निश्चय करके इसी के पास दो समानान्तर रेखाएं जिनके बीच की दूरी चद्दर की मुटाई के समान हो और जो द ध भुज पर लम्ब बनाती हों खींच लेनी चाहिये। फिर प्रत्येक रेखा की नोक को केन्द्र मान कर दो समान धनु खींच लेने चाहिये। इन धनुओं के केन्द्र पर का कोण ९० अंश से कम न हो और १०५ अंश से अधिक न हो क्योंकि प्रयाग में दिनमान १४ घंटे से अधिक नहीं होता। इस वृत्त खंड के किनारों को पहले पन्द्रह-पन्द्रह अंकों के अंतर पर विभाजित करना चाहिये फिर इन भागों को तीन-तीन या चार-चार समान भागों में बांटना चाहिये (चित्र में तीन ही तीन भाग दिखलाये गये हैं)। पन्द्रह-पन्द्रह अंश-वाले भाग घंटा बतलावेंगे और यदि प्रत्येक घंटे में तीन-तीन भाग हों तो हर एक से २० मिनट और चार-चार भाग हो तो हर एक से पन्द्रह मिनट का ज्ञान हो सकता है। चित्र में इससे छोटे-छोटे भाग नहीं दिखलाये जा सके परन्तु यथार्थ में प्रत्येक चौथे भाग के भी तीन-तीन समान भाग किये जा सकते हैं जिनसे पाँच मिनट का अन्तर जाना जा सकता है। बलिया और रायबरेली के गवर्नमेंट हाई स्कूलों में ऐसी ही धूप-घड़ी स्थापित की गयी हैं। बलिया की धूप-घड़ी को तो नवीं कक्षा के एक विद्यार्थी ने ही इस लेखक की देख-रेख में तैयार की थी परन्तु रायबरेली की धूप-घड़ी एक मिस्त्री से बनवायी गयी थी।

चित्र १३६ को ध्यान से देखने पर यह बातें समझ में आ जायँगी। वृत्त खंड के दो समानान्तर त्रिज्याओं के बीच के आधे भाग को जो परिधि की ओर है काट कर निकाल देना चाहिये और द ध भुज पर लम्ब बनाती हुई दो समानान्तर रेखाएँ इस प्रकार खींचनी चाहिये कि दोनों के बीच का अंतर चद्दर की मुटाई के समान हो। इन्हीं रेखाओं के बीच के उतने हिस्से को निकाल देना चाहिये जिसकी लम्बाई वृत्त खंड के उस भाग के बराबर हो जो कटी हुई रेखाओं से प्रकट किया गया है। अब इस वृत्त खंड को द ध भुज पर इस प्रकार जोड़ देना चाहिये कि वृत्त खंड का केन्द्र द ध भुज पर आ जाय और इसका खुला हुआ भाग त्रिभुज के उस भाग पर बैठ जाय जो कटी हुई रेखाओं से प्रकट किया गया है। ऐसा करने पर इन दोनों का आकार चित्र १४० के उस भाग के समान हो जायगा जो खम्भे पर दिखलाया गया है।



चित्र १३६

इस धूप घड़ी को ऐसे स्थान पर स्थापित करना चाहिये जहाँ धूप दिन भर रहती हो, घर या पेड़ की छाया कम पड़े तो अच्छा है। चार साढ़े चार फुट ऊंचा पक्का खम्भा बनवा कर उस पर यह इस प्रकार स्थिर करना चाहिये कि इसका त थ द उ भाग खम्भे की गच के नीचे हो, द उ ठीक दक्षिण-उत्तर रेखा पर हो, द उ ध त्रिभुज का तल ठीक सीधा खड़ा हो पूरब या पच्छिम किसी तरफ झुका न हो। ऐसी दशा में द ध किनारा ठीक आकाशीय ध्रुव की दिशा में रहेगा। यह खम्भे में अच्छी तरह जकड़ा रहना चाहिये, इसलिये यह अच्छा होगा कि क, ग, स्थानों पर छेद करके इनमें दो लोहे की छड़ें एक-एक हाथ लम्बी जड़ दी जायँ जिनके दूसरे किनारे दो-दो इञ्च पर झुके रहें। इनके द्वारा यह धूप घड़ी खम्भे में डेढ़ फुट की गहराई तक जकड़ी रहेगी (देखो चित्र १४०)।



चित्र १४०

इस घड़ी का समय भी स्थानीय काल के समान होता है। रेलवे टाइम जानने के लिये काल समीकरण और देशान्तर संस्कार उसी प्रकार करना चाहिये जैसा पहले बतलाया गया है।

इस प्रकार ज्योतिषोपनिषदध्याय नामक १३वें अध्याय का विज्ञान भाष्य समाप्त हुआ।

चतुर्दश अध्याय

मानाध्याय

(संक्षिप्त वर्णन)

[श्लोक १-२—मानों की संख्या और व्यवहार। श्लोक ३-११—सौर मान से अहोरात्र, षडशीतिमुख, अयन, विषुव संक्रान्तियाँ; संक्रान्तियों के पुण्यकाल और ऋतु की गणना। श्लोक १२-१४—चान्द्रमान से तिथि, करण, विवाहादि संस्कार, व्रतोपवासादि तथा पितरों के दिन रात का निश्चय। श्लोक १५-१६—नाक्षत्र दिन तथा नक्षत्रों से चान्द्रमासों के नाम। श्लोक १७—वृहस्पति के वर्षों के नाम। श्लोक १८-१९—सावन दिन से यज्ञकाल तथा सूतक आदि का निश्चय। श्लोक २०-२१—दिव्य, प्राजापत्य तथा ब्रह्ममान। श्लोक २२-२७—उपसंहार। अन्त में बीजोपनयनाध्याय के २१ श्लोक हैं जो क्षेपक कहे जाते हैं।

नव मानों के नाम

ब्राह्मं पित्र्यं तथा दिव्यं प्राजापत्यं च गौरवम्।
सौरं च सावनं चान्द्रमार्क्षं मानानि वै नव ॥१॥

अनुवाद—ब्राह्म, दिव्य, पित्र्य, प्राजापत्य, वार्हस्पत्य, सौर, सावन, चान्द्र और नाक्षत्र नव कालमान हैं।

विज्ञान भाष्य—इन शब्दों की व्याख्या आगे आनेवाले श्लोकों में ही दे दी गयी है इसलिये इस समय अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है।

व्यवहार में आनेवाले मान

चतुर्भिर्व्यवहारोऽत्र सौरचान्द्रार्क्ष सावनै।
बार्हस्पत्येन षष्ट्यब्दा ज्ञेया नान्यैस्तु नित्यशः ॥२॥

अनुवाद—इस श्लोक में सौर, चान्द्र, नाक्षत्र और सावन मानों का व्यवहार होता है। साठ संवत्सरों की गणना वृहस्पति मान से होती है, शेष चार मानों का काम नित्य नहीं पड़ता।

विज्ञान भाष्य—इन पांच मानों की चर्चा मध्यमाधिकार में भी आ चुकी है।

सौरमान

सौरेण द्यु तिशोर्मानं षडशीतिमुखानि च ।
अयनं विषुवच्चैव सङ्क्रान्तेः पुण्यकालता ॥३॥

अनुवाद—दिन रात्रि का परिमाण, षडशीतिमुख, उत्तरायण और दक्षिणायन, विषुव संक्रान्ति, तथा अन्य संक्रान्तियों का पुण्यकाल सौरमान से निश्चय किया जाता है।

षडशीतिमुख

तुलादेः षडशीत्यंशैः षडशीतिमुखं दिनम् ।
भचतुष्टयमेवं स्याद् द्विस्वभावेषु राशिषु ॥४॥
षड्विंशे धनुषो भागे द्वाविंशेऽतिमिनस्य च ।
मिथुनेऽष्टादशे भागे कन्यायां च चतुर्दशे ॥५॥

अनुवाद—(४) तुला संक्रान्ति से छियासी दिनों का षडशीति मुख क्रम से होता है। यह चार हैं और द्विस्वभाव राशियों में होते हैं। (५) धनु राशि के २६वें अंश, मीन राशि के २२वें अंश, मिथुन राशिके १८वें अंश और कन्या राशि के १४वें अंश तक।

विज्ञान भाष्य—इन श्लोकों में दिन का अर्थ सावन दिन नहीं है, वरन् वह समय है जिसमें सूर्य एक अंश चलता है। ऐसे ३६० दिनों का एक वर्ष होता है जो सावनमानानुसार ३६५ दिन ६ घंटे से कुछ अधिक हुआ। परन्तु सूर्य की गति सदा समान नहीं होती इसलिये चारों षडशीतिमुखों के मान भी सावन दिनों में समान नहीं हैं। तुला राशि से आरंभ करके तुला और वृश्चिक राशियों के तीस-तीस अंश और धनु के २६ अंश मिलकर ८६ अंश हुए इसलिये प्रथम षडशीतिमुख धनु के २६ अंश पर समाप्त होता है। दूसरा षडशीतिमुख धनु के २७वें अंश से आरम्भ होकर मीन के २२वें अंश पर समाप्त होता है। इसी प्रकार तीसरा मिथुन के १८वें अंश पर और चौथा कन्या के १४वें अंश पर समाप्त होता है। जिन चारों राशियों में षडशीति मुखों का अंत होता है वे द्विस्वभाव की बतलायी गयी हैं जिसकी चर्चा फलित ज्योतिष में आयी है।

किसी किसी ग्रन्थ में तिमिनस्य के स्थान में निमिषस्य पाठ है जो अशुद्ध जान पड़ता है क्योंकि निमिष का अर्थ मीन राशि नहीं है।

पितृपक्ष

ततश्शेषे तु कन्याया यान्यहानि तु षोडश ।
क्रतुभिस्तानितुल्यानि पितृणांदत्तमक्षयम् ॥६॥

अनुवाद—इसके उपरान्त कन्या राशि के शेष १६ दिन यज्ञकाल के समान हैं। इसमें पितरों का श्राद्धादि कर्म करने से अक्षय फल मिलता है।

विज्ञान भाष्य—इससे प्रकट होता है कि पितरों का श्राद्ध उस समय करना चाहिये जब सूर्य कन्या राशि में १५ से ३० अंश तक हो। आजकल तो पूर्णिमान्त गणना से आश्विन कृष्ण पक्ष में और अमान्त गणना से भाद्र कृष्ण पक्ष में अर्थात् चान्द्रमान के अनुसार पितृपक्ष माना जाता है।

संक्रान्तियों के नाम—

भचक्रनाभौ विषुवत्द्वितीयं समसूत्रगम्।
अयनद्वितयं चैव चतस्रः प्रथितास्तु ताः ॥७॥
तदन्तरेषु सङ्क्रान्तिद्वितयं द्वितयं पुनः।
नैरन्तर्यात्तु सङ्क्रान्त्यो ज्ञेयं विष्णुपदीद्वयम् ॥८॥

अनुवाद—(७) भगोल के मध्य में एक ही व्यास पर दो विषुवत् संक्रान्तियाँ और उसी प्रकार दो अयन संक्रान्तियाँ कुल चार संक्रान्तियाँ होती हैं। (८) इनके बीच में दो दो संक्रान्तियाँ और होती हैं जिनमें से वह संक्रान्तियाँ जो इन चारों के बाद ही आती हैं विष्णुपदी कहलाती हैं।

विज्ञान भाष्य—चौथे श्लोक से आरम्भ करके आठवें श्लोक तक १२ संक्रान्तियों के नाम बतलाये गये हैं। जिस समय सूर्य किसी राशि में प्रवेश करता है उस समय संक्रान्ति होती है। राशियाँ बारह हैं जिनमें से चार राशियों को षडशीतिमुख कहते हैं। शेष में दो को विषुवत्, दो को अयन और चार को विष्णुपदी कहते हैं।

राशि	संक्रान्ति के नाम	ऋतुओं के नाम
१ मेष	विषुवत्	वसंत
२ वृष	विष्णुपदी	ग्रीष्म
३ मिथुन	षडशीतिमुख	,,
४ कर्क	अयन	वर्षा
५ सिंह	विष्णुपदी	,,
६ कन्या	षडशीतिमुख	शरद
७ तुला	विषुवत्	,,
८ वृश्चिक	विष्णुपदी	हेमन्त
९ धनु	षडशीतिमुख	,,
१० मकर	अयन	शिशिर

११ कुम्भ	विष्णुपदी	,,
१२ मीन	षडशीतिमुख	बसंत

उत्तरायण दक्षिणायन और ऋतु—

तयोर्मकरसङ्क्रान्तेः षण्मासेषूत्तरायणम् ।
कर्क्यादेस्तु तथैव स्यात् षण्मासा दक्षिणायनम् ।।९।।
द्विराशिमानादृतवः षडुक्ताश्शिशिरादयः ।
मेषादयो द्वादशैते मासास्तैरेव वत्सरः ।।१०।।

अनुवाद—(९) सूर्य जिस समय मकर राशि में प्रवेश करता है उस समय से ६ महीने तक उत्तरायण और जिस समय कर्क राशि में प्रवेश करता है उस समय से ६ महीने तक दक्षिणायन होता है। (१०) ऋतु दो दो राशियों को भोग करता है; मकर संक्रान्ति से शिशिर आदि ऋतु-चक्र का आरम्भ होता है; मेष संक्रान्ति से १२ सौर मासों का आरम्भ होता है जिनका एक वर्ष होता है।

विज्ञान भाष्य—इन श्लोकों में राशियों, संक्रान्तियों और ऋतुओं का परस्पर सम्बन्ध दिखलाया गया है। राशियाँ स्थिर मानी गयी हैं और इनका आरम्भ सूर्य-सिद्धान्त के अनुसार अश्विनी के आदि विन्दु से होता है जिसके अनुसार चित्रा तारे का भोगांश १८० है। परन्तु ऋतुओं का क्रम विषुवत्-सम्पात के अनुसार चलता है जो चल है इसलिये राशि, अयन और ऋतुओं का सम्बन्ध धीरे धीरे छूट रहा है। एक समय था जब उत्तरायण का आरम्भ मकर राशि में उसी समय होता था जब सूर्य की गति भी उत्तर दिशा में आरम्भ होती थी और ६ महीने तक बराबर उत्तर की ओर बढ़ती जाती थी। इसी प्रकार दक्षिणायन का आरम्भ कर्क राशि में उस समय होता था जब सूर्य की गति दक्षिण की ओर हो जाती थी। परन्तु अब यह दोनों घटनाएँ एकसाथ नहीं होतीं, सूर्य की उत्तर की गति मकर संक्रान्ति से २३ दिन पहले ही आरम्भ हो जाती है। पाँच सौ वर्ष में यह अन्तर एक महीने के लगभग हो जायगा। इस विषय पर त्रिप्रश्नाधिकार में विशेष चर्चा की गयी है। सूर्य-सिद्धान्त का यह मत अवश्य है कि विषुव सम्पात अश्विनी के २७ अंश इधर उधर ही रहता है, इससे अधिक अन्तर नहीं होता परन्तु यह न तो आजकल के विज्ञान से सिद्ध होता है और न भास्कराचार्य आदि ने ही इसे माना था। इसके विरुद्ध ब्राह्मण ग्रन्थों में बतलाये गये कृत्तिका आदि नक्षत्रों की स्थितियों से सिद्ध होता है कि सूर्य सिद्धान्त का मत ठीक नहीं है (त्रिप्रश्नाधिकार पृष्ठ २४०)।

कुछ विद्वानों का यह भी मत है जिसका समर्थन ब्राह्मण ग्रन्थों के ही आधार पर अच्छी तरह होता है कि उत्तरायण का आरम्भ पहले उस समय से नहीं माना

जाता था जब सूर्य की प्रवृत्ति उत्तर की ओर होती है वरन् उस समय से माना जाता था जब सूर्य विषुवत रेखा से उत्तर होकर उत्तर गोल में आ जाता है। इससे देवताओं के दिन और रात का भी समाधान अच्छी तरह हो जाता है क्योंकि देवता उत्तर ध्रुव के निवासी समझे जाते हैं और उत्तर ध्रुव पर दिन का आरम्भ अथवा सूर्योदय उसी समय होता है जब सूर्य विषुवत रेखा से उत्तर होने लगता है इसीलिये उत्तरायण देवताओं का दिन और दक्षिणायन उनकी रात समझी जाती है। यह युक्तियुक्त भी है। यदि भास्कराचार्य जी इस बात पर विचार करते तो उनको उत्तरायण के सम्बन्ध में यह कल्पना न करनी पड़ती।[1]

संक्रांति का पुण्यकाल

अर्कमानकलाष्षष्ट्या गुणिता भुक्तिभाजिताः।
तदर्धनाड्यस्सङ्क्रान्तेरर्वाक् पुण्यास्तथापराः ॥११॥

अनुवाद—सूर्य के बिम्ब मान की कलाओं को साठ से गुणा करके उसकी दैनिक गति से भाग देने पर जो आवे उसकी आधी घड़ियाँ पहले और पीछे संक्रान्ति का पुण्यकाल होता है।

विज्ञान भाष्य—संक्रान्ति उस समय होता है जिस समय सूर्य बिम्ब का केन्द्र राशि में प्रवेश करता है परन्तु सूर्य बिम्ब का मान ३२ कला के लगभग है इसलिये संक्रान्ति का पुण्यकाल उस समय आरंभ होता है जब सूर्य के बिम्ब का पूर्वी किनारा राशि को प्रवेश करते समय स्पर्श करता है और उस समय तक रहता है जब तक बिम्ब का पच्छिमी किनारा राशि के आदि विन्दु को पार नहीं कर जाता। यह समय मोटे हिसाब से ३२ घड़ी के लगभग होता है जिसका आधा १६ घड़ी है। इस लिये संक्राति से लगभग १६ घड़ी पहले पुण्यकाल का आरंभ होता है और १६ घड़ी बाद तक रहता है। सूक्ष्म गणना के लिये श्लोकों में बतलाये हुये अनुपात से काम लेना चाहिये। संक्रान्ति काल में सूर्य की जो दैनिक गति हो उतनी गति ६० घड़ी में होती है तो सूर्य बिम्ब के समान गति कितनी घड़ियों में होगी। अर्थात्

$$\text{पुण्यकाल} = \frac{\text{सूर्य बिम्ब का मान} \times ६० \text{ घड़ी}}{\text{सूर्य की दैनिक गति}}$$

---

१. दिनं सुराणामयनं यदुत्तरं निशेतरत् सांहितिकैः प्रकीर्तितम्।
दिनोन्मुखेऽर्के दिनमेव तन्मतं निशा तथा तत् फल कीर्तनाय तत् ॥११॥
(गोलाध्याय त्रिप्रश्नवासना)

इससे जो फल आवे उसका आधा संक्रान्तिकाल से घटाने पर पुण्यकाल का आरम्भ जाना जाता है और जोड़ने पर उसकी समाप्ति का समय निकल आता है।

चान्द्र और पितृमान

अर्काद्विनिस्सृत: प्राचीं यद्यात्यहरहश्शशी।
तच्चान्द्रमानमंशैस्तु ज्ञेया द्वादशभिस्तिथि: ॥१२॥
तिथि: करणमुद्वाहक्षौरकर्मादिसत्क्रिया:।
व्रतोपवासयात्राणां क्रिया चान्द्रेण गृह्यते ॥१३॥
त्रिंशता तिथिभिर्मासश्चान्द्र: पित्र्यमहस्स्मृतम्।
निशा च मासपक्षान्ते तयोर्मध्ये विभागत: ॥१४॥

अनुवाद—(१२) चन्द्रमा सूर्य से अलग होकर जो दिन प्रति दिन पूरब की ओर बढ़ता है वही चन्द्रमान है। इस अंतर के १२ अंशों की एक तिथि होती है। (१३) तिथि, करण, विवाह, क्षौर कर्म, मुंडन आदि सब क्रियाएं तथा व्रत, उपवास, यात्रा आदि चान्द्रमान से निश्चय किये जाते हैं। (१४) तीस तिथियों का एक चान्द्रमास होता है जो पितरों का एक अहोरात्र समझा जाता है। चान्द्रमास के अंत में अर्थात् अमावस्या के अन्त में पितरों का मध्याह्न और पक्ष के अन्त अर्थात् पूर्णिमा के अन्त में पितरों की मध्यरात्रि होती है। इस प्रकार शुक्ल पक्ष की अष्टमी के आधे भाग से पितरों की रात्रि का आरम्भ और कृष्ण पक्ष की अष्टमी के आधे भाग से उनके दिन का आरम्भ होता है।

विज्ञान भाष्य—तिथि के सम्बन्ध में मध्यमाधिकार पृष्ठ ८ और स्पष्टाधिकार पृष्ठ २१७ में विशेष चर्चा की गयी है। वहीं पृष्ठ २१८ में करण के सम्बन्ध में भी बहुत कुछ लिखा गया है। पितरों के मध्याह्न और मध्यरात्रि के बारे में भूगोलाध्याय पृष्ठ ७६७-६८ देखिये।

नाक्षत्रमान तथा नक्षत्रानुसार मासों के नाम—

भचक्रभ्रमणं नित्यं नाक्षत्रं दिनमुच्यते।
नाक्षत्रनाम्ना मासास्तु ज्ञेया: पर्वान्तयोगत: ॥१५॥
कार्तिकादिषु संयोगे कृत्तिकादि द्वयं द्वयम्।
अन्त्योपान्त्यौ पञ्चमश्च त्रिधा मासास्त्रयस्स्मृता: ॥१६॥

अनुवाद—(१५) जितने समय में नक्षत्र चक्र का एक भ्रमण पूरा होता है उसे नाक्षत्र दिन कहते हैं। पूर्णिमा के अन्त में चन्द्रमा जिस नक्षत्र में होता है उसी के नाम पर मासों के नाम पड़े हैं। (१६) कार्तिक आदि मासों का संयोग कृत्तिकादि

मास	पूर्णिमा के नक्षत्र क्रम-संख्या सहित	पूर्णिमान्तकाल में नक्षत्रों की वास्तविक स्थिति				
		१९९१	१९९२	१९९३	१९९४	१९९५ विक्रमी
चैत	१४—चित्रा १५—स्वाती	हस्त +	चित्रा	चित्रा	स्वाती	चित्रा
वैशाख	१६—विशाखा १७—अनुराधा	{ विशाखा अनुराधा	विशाखा	विशाखा	अनुराधा	विशाखा
ज्येष्ठ	१८—ज्येष्ठा १९—मूल	मूल	मूल	ज्येष्ठा	मूल	ज्येष्ठा
आषाढ़	२०—पूर्वाषाढा २१—उत्तराषाढा	उत्तराषाढा	उत्तराषाढा	पूर्वाषाढा	उत्तराषाढा	पूर्वाषाढा
श्रावण	२२—श्रवण २३—धनिष्ठा	शतभिषा	धनिष्ठा	श्रवण	धनिष्ठा	धनिष्ठा
भाद्रपद	२४—शतभिषा २५—पूर्वाभाद्रपद	उत्तराभाद्रपद	पू०भाद्रपद	{ शतभिषा उ० भाद्रपद	उ० भाद्रपद	पूर्वाभाद्रपद

मास	पूर्णिमा के नक्षत्र क्रम-संख्या सहित	पूर्णिमान्तकाल में नक्षत्रों की वास्तविक स्थिति				
		१९९१	१९९२	१९९३	१९९४	१९९५ विक्रमी
आश्विन	२६—उत्तराभाद्रपद २७—रेवती १—अश्विनी २—भरणी	अश्विनी	रेवती	भरणी	अश्विनी	रेवती
कार्तिक	३—कृत्तिका ४—रोहिणी	कृत्तिका	भरणी +	रोहिणी	कृत्तिका	भरणी +
मार्गशीर्ष	५—मृगशिरा ६—आर्द्रा	मृगशिरा	मृगशिरा	आर्द्रा	मृगशिरा	रोहिणी +
पौष	७—पुनर्वसु ८—पुष्य	पुष्य	पुनर्वसु	पुष्य	पुनर्वसु	पुनर्वसु
माघ	९—आश्लेखा १०—मघा	मघा	आश्लेखा	पू० फाल्गुनी +	मघा	आश्लेषा
फाल्गुन	११—पूर्वाफाल्गुनी १२—उत्तराफाल्गुनी १३—हस्त	उत्तरा फाल्गुनी	पू० फाल्गुनी	हस्त	उ० फाल्गुनी	पूर्वाफाल्गुनी

नक्षत्रों से दो दो के साथ होता है, केवल अन्तिम मास और उससे ठीक पहले का मास तथा पांचवे मासों का संयोग तीन तीन नक्षत्रों से होता है।

विज्ञान भाष्य—नाक्षत्र दिन की व्याख्या पृष्ठ ७, ३००-३०१, और ३३६ में की गयी है। चान्द्र मासों के नाम उन नक्षत्रों के नाम पर रखे गये हैं जिन पर चंद्रमा पूर्णिमा के दिन रहता है। इस युक्ति से तिथि, मास और नक्षत्रों का जो गठबंधन कर दिया गया है वह संसार के ज्योतिष के इतिहास में अनुपम है। इससे यह अच्छी तरह सिद्ध हो जाता है कि प्राचीन काल में हिन्दू ज्योतिषी कितने प्रतिभावान थे और उनपर दूसरे देशों के ज्योतिष शास्त्र के नकल करने का जो अभियोग लगाया जाता है वह कितना निस्सार और पक्षपात पूर्ण है। अब सूक्ष्म गणना से यह अवश्य सिद्ध होता है कि नक्षत्रों और मासों का यह परस्पर सम्बन्ध कभी-कभी छूट जाता है परन्तु यहाँ यह भी विचार करना होगा कि जो नियम तीन हजार वर्ष से अधिक समय से चला आ रहा है उसका कहीं कहीं ढीला पड़ जाना अचंभे की बात नहीं है और न नियम बनानेवालों की ही अनभिज्ञता का प्रमाण है। पृष्ठ ५५७-५८ में दी हुई सारणी से यह सहज ही जाना जा सकता है कि इस समय कितना अंतर पड़ गया है।

इस सारिणी में १९९४-९५ वि० के नीचे के नक्षत्र बंगला के विशुद्ध सिद्धान्त-पञ्जिका से लिखे गये हैं जो आधुनिक ज्योतिषशास्त्र के आधार पर बनायी जाती है, जिसमें वर्षमान् ३६५ दिन ६ घंटा ९ मिनट ९-५०४ सेकंड का होता है और चित्रा तारे का भोग ठीक १८० अंश माना गया है। शेष तीन वर्षों के नक्षत्र लखनऊ और काशी के साधारण पंचांगों से लिये गये हैं। जिन नक्षत्रों पर धन के चिह्न बने हुए हैं वही उपर्युक्त नियम से कुछ भिन्न हो गये हैं। जहाँ दो नक्षत्र एक साथ दिये हैं वे अधिमासों के सूचक हैं। इससे प्रकट है कि अब भी यह नियम अच्छी तरह काम दे रहा है।

वार्हस्पत्य वर्ष के नाम—

वैशाखादिषु कृष्णे: च योग: पञ्चदशे तिथौ।
कार्तिकादीनि वर्षेषु गुरोर्युक्तोदयास्तमात्॥१७॥

अनुवाद—(जिस प्रकार चन्द्रमा के पूर्णिमान्त काल के नक्षत्रों के नाम से चान्द्रमासों के नाम पड़े हैं इसी प्रकार) वैशाखादि मासों के कृष्णपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि के योग में वृहस्पति के अस्त और उदय होने से इसके कार्तिकादि वर्षों के नाम रखे गये हैं।

विज्ञान भाष्य—जिस समय वृहस्पति सूर्य के बहुत पास आ जाता है उस समय सूर्य के प्रकाश के कारण यह देखा नहीं जा सकता इसलिये अस्त समझा जाता है। फिर जब सूर्य से इतनी दूर हो जाता है कि देख पड़ने लगता है तब उदय समझा जाता है। (देखो उदयास्ताधिकार पृ० ६५६-५७)। यह घटना उस समय के लगभग होती है जब सूर्य और वृहस्पति की युति होती है जो लगभग ३९९ दिन या १३ मास के अंतर पर हुआ करती है। इस काल को 'वार्हस्पत्य वर्ष' कहते हैं। ऐसे वर्षों का नाम उन नक्षत्रों के अनुसार रखा जाता है जिन पर वृहस्पति के उदय या अस्त होने के समय सूर्य और चन्द्रमा दोनों रहते हैं। १६ वें श्लोक में बतलाया गया है कि चान्द्र मासों के नाम उन नक्षत्रों के नाम पर पड़े हैं जिन पर चन्द्रमा पूर्णिमान्त काल में रहता है इसलिये यह सिद्ध है कि सूर्य इन मासों के पूर्णिमान्त नक्षत्रों से १४ वें नक्षत्र पर होता है। जैसे वैशाख मास में पूर्णिमा विशाखा या अनुराधा नक्षत्रों पर होती है तो इस मास में सूर्य विशाखा या अनुराधा के १४ वें नक्षत्र कृत्तिका या रोहिणी में रहेगा। यदि इसी समय बृहस्पति का उदय या अस्त हो तो निश्चय है कि यह भी इन्हीं नक्षत्रों पर या इसके एकाध नक्षत्र आगे पीछे रहेगा और अमावस्या भी इन्हीं नक्षत्रों पर होगी, इसलिये वृहस्पति का 'कार्तिक वर्ष' इसी समय से आरम्भ होगा। अर्थात् वैशाख मास में यदि वृहस्पति का उदय या अस्त हो तो वृहस्पति का 'कार्तिक वर्ष' लगेगा, ज्येष्ठ मास में उदय हो तो 'वार्हस्पत्य मार्गशीर्ष' वर्ष लगेगा इत्यादि। चान्द्र मासों और वार्हस्पत्य वर्षों की दुविधा मिटाने के लिये दोनों में यह अंतर भी कर दिया जाता है कि वार्हस्पत्य वर्षों के नाम के पहले 'महा' लगा देते हैं। परन्तु आजकल इन कार्तिक आदि वर्षों का प्रचार नहीं है।

ध्यान से देखने पर मालूम होगा कि सूर्य-सिद्धान्त का यह नियम बहुत ढीला होता है। वृहस्पति के अस्तकाल से उदय काल का अंतर एक मास के लगभग होता है जिसमें सूर्य दो नक्षत्र से अधिक हट जाता है। यह संभव है कि अस्तकाल के समय सूर्य स्वाती नक्षत्र में हो और उदय काल के समय अनुराधा में। ऐसी दशा में कौन सा वार्हस्पत्य वर्ष मानना चाहिये 'महा चैत्र' या 'महा वैशाख'? शायद इसी दुविधा को दूर करने के लिये आचार्य वराहमिहिर ने वृहत्संहिता में यह नियम दिया है कि उदय काल में वृहस्पति जिस नक्षत्र पर हो उसी के नाम से वृहस्पति के वर्ष का नाम रखना चाहिये[1]। वराहमिहिर ने इन वर्षों के भिन्न-भिन्न फलों की चर्चा की है।

---

१. नक्षत्रेण सहोदयमुपगच्छति येन देवपति मन्त्री।
तत्संज्ञं वक्तव्यं वर्षं मास क्रमेणैव ॥१॥
वर्षाणि कार्तिकादीन्याग्नेयाद्भद्वयानुयोगीनि।
क्रमशस्त्रिभंतु पञ्चममुपांत्यमंत्य च यद्वर्षंम ॥२॥ (गुरुचाराध्याय)

वृहस्पति का वर्ष दूसरे प्रकार का भी होता है जिसे सम्वत्सर कहते हैं (मध्यमाधिकार श्लोक ५५ और उसका भाष्य)। पंचांगों में इन्हीं संवत्सरों की चर्चा रहती है। संकल्प के मंत्रों में तो यह प्रतिदिन काम में आते हैं। ऐसे ६० संवत्सरों का एक चक्र होता है। इनके सिवा ५ संवत्सरों का एक चक्र और होता है जिनके नाम क्रमानुसार यह हैं—(१) संवत्सर, (२) परिवत्सर, (३) इदावत्सर, (४) अनुवत्सर, (५) इद्वत्सर। इनकी चर्चा वेदाङ्ग ज्योतिष तथा वृहत्संहिता में है जहाँ इनके फल भी बतलाये गये हैं।

सावनमान—

उदयादुदयं भानोः सावनं तत्प्रकीर्त्यते।
सावनानि स्युरेतानि यज्ञकालविधिस्तु तैः ॥१८॥
सूतकादि परिच्छेदो दिनमासाब्दपास्तथा।
मध्यमाग्रह भुक्तिश्च सावनेन प्रकीर्त्यते ॥१९॥

अनुवाद—(१८) सूर्य के एक उदय से दूसरे उदय के बीच के समय को सावन दिन कहते हैं। सावन दिनों से यज्ञ करने के समय का विधान किया जाता है। (१९) जन्म का सूतक और चाद्रांयण आदि व्रत की सीमा, दिन, मास और वर्ष के स्वामियों का निश्चिय, ग्रहों की मध्यम गति की गणना सावन दिनों से ही की जाती है।

विज्ञान भाष्य—इस विषय पर मध्यमाधिकार में अच्छी तरह विचार किया गया है। सावन दिनों में जिन जिन कार्यों के करने की अवधि निश्चित की जाती है वे यहाँ गिनाये गये हैं। जिस घर में सन्तान उत्पन्न होती है, अथवा जिस घर में किसी की मृत्यु होतो है वह घर दस, बारह या पन्द्रह दिनों के लिये अपवित्र समझा जाता है। यही सूतक है जिसकी अवधि सावन दिनों के अनुसार निश्चय की जाती है।

दिव्यमान

सुरासुराणामन्योन्यमहोरात्रं विपर्ययात्।
यत्प्रोक्तं तद्भवेद्दिव्यं भानोर्भगणपूरणात् ॥२०॥

अनुवाद—देवताओं और असुरों का जो परस्पर विरोधी अहोरात्र बतलाया गया है वही दिव्यमान है। और सूर्य के एक भगण पूरा होने का समय है।

विज्ञान भाष्य—इसकी चर्चा विस्तार के साथ भूगोलाध्याय श्लोक ४७-५० के भाष्य में की गयी है।

प्राजापत्य तथा ब्राह्ममान

मन्वन्तरव्यवस्था च प्राजापत्यमुदाहृतम् ।
न तत्र द्युनिशोश्छेदः ब्राह्मं कल्पं प्रकीर्तितम् ॥२१॥

अनुवाद– मन्वन्तर की व्यवस्था प्राजापत्य मान का उदाहरण है जहाँ दिन और रात का कोई भेद नहीं है। कल्प ब्राह्ममान कहलाता है ।

विज्ञान भाष्य—कल्प, मन्वन्तर आदि की व्याख्या मध्यमाधिकार के श्लोक १८-२० और उसके विज्ञान-भाष्य में की गयी है ।

माहात्म्य

एतत् ते सर्वमाख्यातं रहस्यं परमाद्भुतम् ।
ब्रह्मतत्परमं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥२२॥
दिव्यं चार्क्षं ग्रहाणाञ्च दर्शित ज्ञानमुत्तमम् ।
विज्ञायार्कादि लोकस्य स्थानं प्राप्नोति तादृशम् ॥२३॥

अनुवाद—(२२) तुझसे यह दूसरा खंड बतलाया गया जो रहस्यमय और बड़ा ही अद्भुत है, यह ब्रह्म रूप है, उत्कृष्ट है, पवित्र है और सब पाप का नाश करने वाला है । (२३) आकाशीय, नाक्षत्र और ग्रहों का उत्तम ज्ञान दिखलाया गया जिसको अच्छी तरह जान कर मनुष्य सूर्यादि लोकों में वैसा ही स्थान प्राप्त कर लेता है ।

विज्ञान भाष्य—सूर्य-सिद्धान्त का पूर्वार्ध पाताधिकार के साथ समाप्त हो गया था जिसका उपसंहार उसके अन्तिम श्लोक में कर दिया गया था । उसके उपरान्त भूगोलाध्याय के आरम्भ में मयासुर के प्रश्न करने पर उत्तरार्ध का आरम्भ किया गया था जो यहाँ आकर समाप्त होता है इसलिये यहाँ इस खंड का भी उपसंहार कर दिया गया ।

उपसंहार

इत्युक्त्वा मयमामन्त्र्य सम्यक्तेनापि पूजितः ।
दिवमुद्गत्य सूर्यशांः प्रविवेश स्वमण्डलम् ॥२४॥
मयोऽथ दिव्यं तज्ज्ञानं ज्ञात्वा साक्षाद्विवस्वतः ।
कृतकृत्यमिवात्मानं मेने निर्धूतकल्मषम् ॥२५॥
ज्ञात्वा तमृषयश्चाथ सूर्यलब्धवरं मयम् ।
परिवव्रुरुपेत्याथो ज्ञानं पप्रच्छुरादरात् ॥२६॥

स तेभ्यः प्रददौ प्रीतो ग्रहाणां चरितं महत् ।
अत्यद्भुततमं लोके रहस्यं ब्रह्मसम्मितम् ।।२७।।

अनुवाद—(२४) यह कह कर सूर्यांश पुरुष मय से विदा होकर और उससे अच्छी तरह पूजित होकर स्वर्ग को जाकर अपने मण्डल में घुस गये। (२५) तब मयासुर सूर्य ने साक्षात् भगवान् से इस दिव्य ज्ञान को प्राप्त करके अपने को पाप रहित और कृतकृत्य माना। (२६) तब ऋषियों ने यह जान कर कि मय को सूर्य भगवान से यह बरदान मिला उसके पास आये और घेर कर आदर के साथ पूछा। (२७) इस पर उसने प्रेम के साथ ग्रहों के इस महान् चरित्र को जो इस लोक में अत्यन्त आश्चर्य उत्पन्न करने-वाला, रहस्य और ब्रह्मज्ञान के समान है उनको बतलाया।

विज्ञान भाष्य—इससे स्पष्ट होता है कि यह सूर्य-सिद्धान्त नामक ज्योतिष ग्रन्थ ऋषियों को मयासुर से मिला जिसने तपस्या करके यह ज्ञान सूर्य भगवान् अथवा सूर्यांश पुरुष से प्राप्त किया था। इससे कुछ विद्वान यह परिणाम निकालते हैं कि यह ग्रन्थ यवन ज्योतिषियों से प्राप्त किया गया था। इस सम्बन्ध में यहाँ कुछ विचार न करके भूमिका में विस्तारपूर्वक लिखा जायगा।

इति सूर्य-सिद्धान्ते मानाध्यायः

किसी-किसी ग्रन्थ में वीजोपनयनाध्याय नामक २१ श्लोकों का एक छोटा अध्याय और लिखा मिलता है जिस पर टीकाकारों ने यह समझ कर टीका नहीं की है कि ग्रन्थ निर्माण-काल में वीज-संस्कार की आवश्यकता नहीं पड़ सकती इसलिये यह अध्याय पीछे से जोड़ा गया है। मेरी लघु सम्मति में यह सम्भव है कि अब तक जो कुछ लिखा गया है वह इसी रूप में सूर्यांश पुरुष से मयासुर को मिला हो परन्तु उसके बाद मयासुर ने कई वर्ष तक जीवित रह कर अपने अनुभव से कुछ अन्तर पाया होगा जिसके अनुसार उसने वीजोपनयनाध्याय अन्त में जोड़ दिया। अथवा मयासुर के बाद किसी अन्य ज्योतिषी ने ही इसे बढ़ाया होगा। भूमिका में इस पर भी प्रकाश डालने का यत्न किया जायगा। इस समय मैं भी यह अध्याय जोड़ देने की धृष्टता करता हूँ।

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा
तद्वद्वेदाङ्ग शास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम् ।।१।।
न देयं तत् कृतघ्नाय वेदविप्लवकाय च ।
अर्थलुब्धाय मूर्खाय साहङ्काराय पापिने ।।२।।
एवं विधाय पुत्रायाप्यदेयं सहजाय च ।
दत्तेन वेद मार्गस्य समुच्छेदः कृतो भवेत् ।।३।।

व्रजेतामन्धतामिस्रं गुरु शिष्यौ सुदारुणम् ।
ततः शान्ताय शुचये ब्राह्मणायैव दापयेत् ॥४॥
चक्रानुपातजो मध्यो मध्यवृत्तांशजः स्फुटः ।
कालेन दृक्समो न स्यात् ततो बीजक्रियोच्यते ॥५॥
राश्यादिरिन्दुरङ्कघ्नो भक्तो नक्षत्रकक्षया ।
शेषं नक्षत्रकक्षायास्त्यजेच्छेषकयोस्तयोः ॥६॥
यदल्पं तद्भजेद्भानां कक्षया तिथिनिघ्नया ।
बीजं भागादिकं तत् स्यात् कारयेत् तद्धनं रवौ ॥७॥
त्रिगुणं शोधयेदिन्दौ जिनघ्नं भूमिजे क्षिपेत् ।
दृग्यमघ्नमृणं ज्ञोच्चे खरामघ्नं गुरावृणम् ॥८॥
ऋणं व्योमनवघ्नं स्याद्दानवेज्यचलोच्चके ।
धनं सप्ताहतं मन्दे परिधीनामथोच्यते ॥९॥
युग्मान्तोक्ताः परिधयो ये ते नित्यं परिस्फुटाः ।
ओजान्तोक्तास्तु ते ज्ञेयाः परबीजेन संस्कृताः ॥१०॥
वच्मि निर्बीजकानोजपदान्ते वृत्त भागकान् ।
सूर्येन्द्वोर्मनवो दन्ता धृतितत्वकलोनिताः ॥११॥
बाणतर्का महीजस्य सौम्यस्याचल बाहवः ।
वाक्पतेरष्टनेत्राणि व्योमशीतांशवो भृगोः ॥१२॥
शून्यर्त्तवोऽर्क पुत्रस्य बीजमेतेषु कारयेत् ।
बीजं खाग्न्युद्धृतं शोध्यं परिध्यंशेषु भास्वतः ॥१३॥
इनाप्तं योजयेदिन्दोः कुजस्याश्वहृतं क्षिपेत् ।
विदश्चन्द्रहृतं योज्यं सूरेरिन्द्रहृतं धनम् ॥१४॥
धनं भृगोर्भुवा निघ्नं रविघ्नं शोधयेच्छने ।
एवं मान्दाः परिध्यंशाः स्फुटाः स्युर्वच्मि शीघ्रकान् ॥१५॥
भौमस्याभ्रगुणाक्षीणि बुधस्याब्धि गुणेन्दवः ।
बाणाक्षा देव पूज्यस्य भार्गवस्येन्दु षड्यमाः ॥१६॥
शनिश्चन्द्राब्धयः शीघ्रा ओजान्ते बीजवर्जिताः ।
द्विघ्नं स्वं कुज भागेषु बीजं द्विघ्नमृणं विदः ॥१७॥
अत्यष्टिघ्नं धनं सूरेरिन्दुघ्नं शोधयेत्कवेः ।
चन्द्रघ्नमृणमार्कस्य स्यूरेभिर्दृक्समा ग्रहाः ॥१८॥
एतद्बीजं मया ख्यातं प्रीत्या परमया तव ।
गोपनीयमिदं नित्यं नोपदेश्यं यतस्ततः ॥१९॥

परीक्षिताय शिष्याय गुरुभक्ताय साधवे।
देयं विप्राय नान्यस्मै प्रतिकञ्चुककारिणे ।।२०।।
बीजं निःशेष सिद्धान्त रहस्यं परमं स्फुटम्।
यात्रापाणिग्रहादीनां कार्याणां शुभसिद्धिदम् ।।२१।।

विज्ञान भाष्य—यह २१ श्लोक मानाध्याय के २३वें श्लोक के उपरान्त और अन्तिम ४ श्लोकों के पहले मिलते हैं और कम से कम ४०० वर्ष पुराने हैं क्योंकि रंगनाथ जी ने अपनी गूढ़ार्थ प्रकाशिका टीका में जो शक १५२५ की लिखी है इसका उल्लेख किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि सूर्य-सिद्धान्त में भी बीज संस्कार करने की आवश्यकता पड़ी थी और हमारे पुराने आचार्य भी ज्योतिष शास्त्र को दोषरहित और सर्वाङ्गपूर्ण बनाने के पक्ष में थे, आजकल के कुछ पंडितों की तरह लकीर के फकीर नहीं थे।

इन श्लोकों की टीका इधर के किसी टीकाकार ने नहीं की है इसलिए मैं भी इसका अनुवाद करना व्यर्थ समझता हूँ क्योंकि इन पुराने बीजों से भी अब काम नहीं चल सकता। अब तो सारी गणना नवीन वेधों से स्थिर करने की आवश्यकता है।

इस प्रकार सूर्य-सिद्धान्त के मानाध्याय नामक १४वें और अन्तिम अध्याय का विज्ञान भाष्य समाप्त हुआ।

परिशिष्ट

सूर्य-सिद्धान्त में प्रयुक्त संख्या सूचक शब्द

०—अम्बर, ख, वियत, व्योम, शून्य

१—इन्दु, कु, निशाकर, रूप

२—अक्षि, अश्वि, अश्विन, दस्त्र, दस्त्रक, द्वि, नेत्र, यम, यमल, लोचन

३—अग्नि, गुण, ज्वलनः, त्रि, त्रिक, पावक, वह्नि, शिखि, हुताश

४—अब्धि, अर्णव, कृत, चतुः, चतुष्क, युग, वेद, समुद्र, सागर

५—अर्थ, इषु, पंच, बाण, मार्गण, विषय, शर

६—अङ्ग, ऋतु, रस, षट्, षड्

७—अग, अद्रि, नग, पर्वत, भूधर, भूमिधर, मुनि

८—अष्ट, कुञ्जर, गज, नाग, भुजङ्ग, वसु, सर्प

९—अङ्क, गो, छिद्र, नव, रन्ध्र

१०—दिक्, दिङ्

११—ईश, ईश्वर, रुद्र, शंकर

१२—अर्क, मास, सूर्य

१३—विश्व

१४—मनु

१५—तिथि

१८—धृति

१९—अतिधृति

२०—कृति, नख

२५—तत्व

३२—रद

३३—सुर

ग्रन्थ सूची

(संस्कृत, हिन्दी या उर्दू के उन ग्रन्थों, पंचांगों या पत्रों की सूची जिनकी सहायता विज्ञान भाष्य में ली गयी है।)

आर्यभटीय परमेश्वराचार्य कृत संस्कृत टीका तथा उदय नारायण सिंह की हिन्दी टीका के साथ, ब्रह्म प्रेस इटावा का सं० १९६३ वि० का छपा।

खंडखाद्यक मराठी के भारतीय ज्योतिः शास्त्र के आधार पर।

गणक तरंगिणी म० म० सुधाकर द्विवेदी की लिखी और मेडिकल हाल प्रेस बनारस की सं० १९४९ वि० की छपी।

गीता रहस्य लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के मराठी पुस्तक का माधवराव सप्रे का हिन्दी अनुवाद जो पूना के चित्रशाला स्टीम प्रेस में सं० १९७३ वि० में छपा था।

ग्रहलाघव मल्लारि, विश्वनाथ और सुधाकर द्विवेदी की संस्कृत टीका सहित और म० म० सुधाकर द्विवेदी द्वारा सम्पादित।

चलनकलन म० म० सुधाकर द्विवेदी कृत।

ज्योतिर्गणित वेंकटेश बापूजी केतकर कृत शक १८१२ का छपा।

तैत्तिरीय संहिता भारतीय ज्योतिःशास्त्र के आधार पर

दामोदरीय भटतुल्य ,, ,,

धर्म-सिन्धु निर्णय सागर प्रेस का शक १८२६ का छपा

नक्षत्र कल्प भारतीय ज्योतिःशास्त्र के आधार पर।

नारद संहिता ,, ,,

निर्णय सिन्धु निर्णय सागर प्रेस का छपा।

पंचसिद्धान्तिका वराहमिहिर कृत और डाक्टर थीबो तथा म० म० सुधाकर द्विवेदी के अंग्रेजी, संस्कृत अनुवाद के साथ मेडिकल, हाल प्रेस बनारस की १८८९ ई० की छपी।

पंचांग (१९८५ वि० के केतकी, चित्रशाला प्रेस का, गुजराती का चैत्री, नवल किशोर प्रेस का, पंचांग प्रवर्तक कमेटी का, बालकृष्ण शास्त्री का, बालकृष्ण तुकाराम का, हिन्दू विश्व-विद्यालय का विश्व पंचांग, शास्त्र शुद्ध ऐक्य वर्द्धक तथा

१९८३ वि० का गणेशदत्त शर्मा का, नवल किशोर प्रेस का, भारत भूषण, विजय और विश्व पंचांग; नाविक पंचांग १९२२ तथा १९२८ ई० के)

बाराही संहिता (बृहत्संहिता) म० म० दुर्गाप्रसाद द्विवेदी की हिन्दी टीका सहित नवल किशोर प्रेस में छपी।

ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त म० म० सुधाकर द्विवेदी की संस्कृत टीका सहित और उन्हीं की सम्पादित, मेडिकल हाल प्रेस बनारस में १९०२ ई० का छपा।

भगवत्गीता

भगवत्गीता रहस्य (देखो गीता रहस्य)

भारतीय ज्योतिःशास्त्र शंकर बालकृष्ण दीक्षित का मराठी में लिखा और पूना के आर्य भूषण प्रेस का शक १८१८ में छपा।

भारत भ्रमण

मकरंदसारिणी वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई की संवत् १९६० वि० की छपी।

मनुस्मृति पं० जनार्दन झा का भाषा टीका सहित कलकत्ता की हिन्दी पुस्तक एजेंसी से सं० १९८१ में प्रकाशित।

महासिद्धान्त द्वितीय आर्यभट का लिखा, म० म० सुधाकर द्विवेदी की टीका सहित चन्द्रप्रभा प्रेस, बनारस की १९१० ई० का छपा।

माधुरी खंड २ संख्या ४ नवल किशोर प्रेस से प्रकाशित मासिक पत्रिका।

मर्यादा १९७८ और १९७९ वि० की, काशी के ज्ञान मण्डल से प्रकाशित मासिक पत्रिका।

मुहूर्त चिन्तामणि पं० रामेश्वर भट्ट की टीका सहित सं० १९७४ वि० का निर्णय सागर प्रेस का छपा।

मुहूर्त तत्व भारतीय ज्योतिः शास्त्र के आधार पर।

रत्नमाल श्रीपति कृत ,, ,,

रत्नकोश लल्ल कृत ,, ,,

रोशनी उर्दू का वैज्ञानिक मासिक पत्र अप्रैल १९१६ ई० की।

लघु मानस भारतीय ज्योतिः शास्त्र के आधार पर।

लल्ल तंत्र भारतीय ज्योतिः शास्त्र के आधार पर।

लीलावती

विज्ञान मासिक पत्र

विशुद्ध सिद्धान्त पंजिका बंगला।

वेदाङ्ग ज्योतिष सोमाकर की टीका तथा म० म० सुधाकर द्विवेदी की टीका सहित और इन्हीं के द्वारा सम्पादित।

वृद्ध गार्गीय संहिता भा० ज्यो शा० के आधार पर।

वृहत्तिथि चिंतामणि गणक तरंगिणी के आधार पर।

शतपथ ब्राह्मण भा० ज्यो० शा० के आधार पर।

शाकल्य ब्रह्मसिद्धान्त ,, ,,

सिद्धान्ततत्वविवेक म० म० सुधाकर द्विवेदी तथा म० म० मुरलीधर शर्मा की टिप्पणियों सहित ब्रजभूषण दास कम्पनी द्वारा बनारस से १९२४ ई० में प्रकाशित।

सिद्धान्त दर्पण चन्द्रशेखर सिंह सामन्त का लिखा और प्रो० योगेशचन्द्र राय द्वारा सम्पादित और १८९९ ई० में प्रकाशित।

सिद्धान्त शिरोमणि (१) गणिताध्याय कलकत्ते के वाचस्पत्य यंत्र का १९१५ ई० का छपा और गोलाध्याय नारायण यंत्र का १८९९ का छपा, (२) म० म० बापूदेव शास्त्री की टिप्पणी सहित बनारस के मेडिकल हाल प्रेस का १८६६ ई० का छपा, (३) गोलाध्याय पं० गिरिजा प्रसाद द्विवेदी द्वारा प्रभा भाषा भाष्य सहित सम्पादित तथा नवल किशोर प्रेस में १९११ ई० का छपा।

सिद्धान्त शेखर सुधा वर्षिणी टीका के आधार पर।

सुन्दरी सिद्धान्त भा० ज्यो० शा० के आधार पर।

सूर्य-सिद्धान्त (१) पं० इन्द्र नारायण द्विवेदी द्वारा अनुवादित और संपादित तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा सं० १९७५ वि० में प्रकाशित।

(२) गूढार्थ प्रकाशित टीका के साथ पं० बल्देव प्रसाद मिश्र द्वारा हिन्दी में अनुवादित और सम्पादित तथा बेंकटेश्वर प्रेस में १८९६ ई० में मुद्रित।

(३) पं० माधव पुरोहित की टीका सहित पं० गिरिजा प्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित और नवल किशोर प्रेस में १९०४ ई० में मुद्रित।

(४) विज्ञानानन्द स्वामी द्वारा बंगला भाषा में अनुवादित और सम्पादित तथा भारत मिहिर यन्त्रालय द्वारा १९०९ ई० में मुद्रित।

(५) म० म० सुधाकर द्विवेदी की सुधावर्षिणी टीका सहित बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी द्वारा १९२५ ई० में दूसरी बार मुद्रित परन्तु लेखक को १९३४ ई० में प्राप्त।

(६) पंच सिद्धान्तिका का डाक्टर थीबो और सुधाकर द्विवेदी द्वारा सम्पादित।

विज्ञान-भाष्य में उपयोग किये गये

अंग्रेजी ग्रन्थों की सूची

Askwith's pure Geometry.
Asutosh Mukhopadhyaya's Geometry of Conics.
Ball's Spherical Astronomy.
Berry's Short History of Astronomy.
Brennand's History of Hindu Astronomy.
Burgess Suryasiddhanta published by Calcutta University in 1935
Encyclopaedia Brittanica.
Godfray's Treatise of Astronomy.
Hall and knight's Trigonometry.
Heath's Popular Astronomy.
Heroes of Science (Astronomer).
Herschel's Outlines of Astronomy.
Imperial Gazetteer.
Kaye's Hindu Astronomy.
L.D. Swami kannu Pillai's Indian Chronology.
Leader 25th Oct. 1939.
Lockyer's Elementary Lessons on Astronomy.
Loney's Elements of Coordinate Geometry.
Loomi's Practical Astronomy.
Nautical Almanac of 1922 and 1928.
Parkers Elements of Astronomy.
Popular Hindu Astronomy Part I (by Kalidas Mukherji).
Scientific American July 1928.
Todhunter and Leathern Spherical Trigonometry.
Williamson Differential Calculus.
